श्रीपार्श्वनाथायनम

॥ ज्ञानप्रदीपक ॥

यह ग्रंथ लोग हितार्थ

श्री श्री साधुजी माहाराज श्री श्री १००८ श्री श्री पूज्य श्री श्री
तानजी ऋष महाराजके समुदायके मुनीराज श्री श्री १००८
श्री श्री एवता ऋषजी महाराज तस्य शिष्य श्री
श्री १००८ श्री श्री तिलोक ऋषजी महाराजकृत

सो

अहमदनगर रहिवासी

पितळिया भगवानदासजी तत् पुत्रचंदनमलनें अपनी माता
रंभाबाई उनकि आज्ञासें धर्मबुद्धिके वास्ते

मुंबई मध्यें

गंगाविष्णु-खेमराज इनके "श्रीवेंकटेश्वर" छापखानेमे छपाकर प्रसिद्धकिया
संवत् १९४७ शाके १८१२ सन १८९० ईसवी

॥ अथ प्रस्तावना ॥



सर्वज्ञ स्वजन साधर्मिक मनुष्यांसु एहविनतीछे के प्रथमहीज आपणा लोकमे नानपणेसे टाबरांने ससा रतरफनी कमांणी कर्वानो उद्यमसीषावे लिषवो तथा पढवो पिणधर्ममार्गमे जांणपणो करावे नही पीछे तरुणपणांमे काइक सगतथी उत्स्रणाहोवेते धपतेपण बुद्धीमंदपरिणाय सीषवारो उद्यमघणोकरे पणअक्षरच- ढेनही तिणसु धर्मार्थ कांम पुतीनां मांहिलो एकहीअर्थसमेनही पिणइणतरेसुं विचारणोजोइजेके मनुष्यभव- सवाहष्टांतेकरीदुर्लभछे तेहीम आपणे पायोछेतो धर्मकरवानी बुद्धिजिणतरेसु वृद्धिथाय तिणतरेसुंकरावि नवत त्वादि जीवाजीवउलखवा शास्त्रसुणवा पोसापडिक्कमणाकरवा धर्मनी वृद्धिकरणनेवारते एहजिज्ञांनप्रदीपक नांमे ग्रंथछपावी प्रसिद्धकर्योछे तेग्रंथमांही अनेकजातिना तवन सझाय छंदपद स्तुति थोकडा सामायिक पडिक्कमणादि बहूमरचनाछे पिणवाच्यांथी मालमपडे ज्ञांनरूपी उजवालो करेछे एहग्रंथघणोज मनुष्यनि उपयोगीछे घणीम धर्मनी उत्स्रणारहरये तेवास्ते सर्वज्ञस्वजनोने एहीमअर्जछेके एह पुस्तकबहुत्वउत्तमछे घणेजपरिश्रमसेशुद्धथयीछे तेमांहीपणअशुद्धहोयतो विद्वज्जन हमारे उपरकृपादृष्टि मेहरबांनगीकरीने शुद्धक र्यो हमारेसे कोइठिकाणे कांना मात अक्षर अनुस्वार पड्यो होयतो क्षमाकरजो ॥ *

ए पुस्तकछापीयोसंवत १९४७ का मीती श्रावण शुद्ध २

अनुक्रमणिका

विषया	पृष्ठांग	विषया	पृष्ठांग
१ नवकारमन्त्रअर्थसहीत	१	१५ सामायकलेवानी पाटीयां	३२
२ तिख्खुत्तारी पाटी अर्थसहित	१	१६ सामायकपाछी पारवानीविधि	३२
३ ईरियावहिनी पाटी अर्थसहित	२	१७ सामायक करवानीविधि	३२
४ तस्सोत्तरीनी पाटी अर्थसहित	३	१८ दशमोपोसो पचखणेकीविधी	३३
५ लोगस्सरी पाटी अर्थसहित	४	१९ दशमोपोसो पाछेपारणेकीविधी	३४
६ करेमिभंते अर्थसहित	५	२० दशमोपोसो पारवानो पाठ	३४
७ नमोथुण अर्थसहित	६	२१ इग्यारमो पोसो लेणेकि विधी	३४
८ सामायक अर्थसहित	७	२२ इग्यारमो पोसो पचखणेको पाठ	३५
९ सामायकनी विधि	७	२३ इग्यारमो पोसो पारवानोपाठ	३५
१० पांचपडिक्कमणाअर्थविधिसहित	८	२४ पोरसीका पचखाण	३५
११ पांचपडिक्कमणानीविधी	३०	२५ एकासणारा पचखांण	३५
१२ श्रावकरी विधिनो आचार	३२	२६ उपवासरा पचखाण	३६
१३ घवदेनेमरानाम पांनो३१मोढुजो	३१	२७ मठाइरा पचखांण	३६
१४ छकायरानाम पांनो३१मोढुजो	३१	२८ सामायक नकरे तिणरोदंड	३६

विषया	पृष्ठांग
२९ सामायकका३२दोषकानांम	३६
३० पोसारा १८ अठारादोषकानांम	३७
३१ श्रावकरा २१ इकवीसगुण	३७
३२ विसबोलकरी तीर्थंकरगोत्रबांधे	३८
३३ १९उगणीसदोषटालने काउसगकरणो	३९
३४ ३२ बत्तीससूत्रांकानांम	४०
३५ वीसअसमाधिना थांनक	४१
३६ इकवीससबला दोष	४१
३७ बावन अनाचार	४२
३८ दश श्रावकनो थोकडो यन्त्रसहीत	४४
३९ सौभाग्यमलजीकृत पदवीद्वार--	४५
४० उचालोकनो थोकडो यन्त्रसहित	५०
४१ त्रिछालोकनो थोकडो यन्त्रसहीत	५२
४२ निचालोकनो थोकडो यन्त्रसहित	५४

विषया	पृष्ठांग
४३ रुपी अरुपीरो थोकडो	५७
४४ निर्जरातत्वरो थोकडो	५८
४५ अरिहंतजिनस्तवनछंद	६२
४६ सिद्धमहाराज छंद	६४
४७ आचार्यछंदमरहठीमे	६५
४८ उपाध्यायछंद	६६
४९ साधूजीनो छंद	६७
५० परमेष्टीछंद अर्द्धनारायमे	६८
५१ अरिहंत छंद मोतिदाम	६८
५२ महावीरजीनो छंद त्रिभंगी	६९
५३ जिनवाणी छंद	७०
५४ २४ तीर्थंकरजिनछंद	७०
५५ मयगजनअर्हंतजिनछंद	७१
५६ परमेष्टीपरमानंदगुणछंद	७४

अनुक्रमणिका

विपया	पृष्ठांग	विपया	पृष्ठांग
५७ समगतछत्तीसी	७५	७१ देवस्तुति पद	१३९
५८ ४ गतआगुवधण सझाय	७७	७२ गुरुस्तुतिपद .	१३९
५९ श्रावकछत्तीसी	७८	७३ धर्मस्तुति पद	१३९
६० साधुवदणा	८०	७४ ज्ञानगुणोपदेशपद	१३९
६१ वृहतआलोवणा	८९	७५ सम्यक्तउपदेशपद	१४०
६२ दशवैकालिकनी१५ सझाय	१०३	७६ चारित्रपद	१४०
६३ अरिहतस्तवन	११६	७७ तपोपदेशपद	१४०
६४ सिद्धस्तवन	११७	७८ क्रोधनिवारण पद	१४०
६५ आचारजस्तवन	११७	७९ माननिवारण पद . .	१४०
६६ उपाध्यायस्तवन	११८	८० मायानिवारणपद ..	१४१
६७ साधुजीरो स्तवन	११८	८१ लोभहरण पद ..	१४१
६८ २४ तीर्थकरना२४स्तवन	१२०	८२ उपदेसी पद	१४१
६९ २० विहरमान २० जिनस्तवन	१३१	८३ श्रावकधर्म उपदेशपद .	१४२
७० चोवीसजिनहितोपदेसपद	१३८	८४ पाप फलोपदेश पद	१४२

अनुक्रमणिका

विपया	पृष्टांग	विपया	पृष्टांग
८१ काटोररे फालकी फासी पद ..	१४२	९९ शप्रहछत्तीसी	१५८
८६ रहोररे घरमधनवसीया पद	१४२	१०० सीतलानो स्तवन ..	१६०
८७ चेतोररे कुटुबके वेगारी पद	१४२	१०१ मभूजी मलेविराजो जीस्तवन	१६१
८८ मानोररे अचलसुखगरजी पद	१४२	१०२ सुकृत करलेरे मूजी	१६१
८९ मानोररे सीपाभणभेरी पद	१४२	१०३ तिनमनोरथरी लांवणी	१६२
९० मतिअकडे जोवनके मदके पद	१४२	१०४ उपदेशी लांवणी	१६३
९१ किउभूलोरे जोवनमे अकडीपद	१४३	१०५ महावीर स्वामीजीरी सुंखडी	१६४
९२ सतगुरुजी कहे जमसपना पद	१४३	१०६ चोवीस तीर्थंकर ध्यानपद	१६६
९३ समचे परमेष्टीस्तवन ...	१४४	१०७ देवस्तुति पद ..	१६६
९४ समचे वीस जिनस्तवन	१४४	१०८ ज्ञानगुणोपदेश पद ..	१६६
९५ समचे वीस विहरमानस्तवन ...	१४४	१०९ श्रीसीमधर स्वामी स्तवन	१६७
९६ महावीरस्वामीरो चोढालियो	१४५	११० उपदेसी पद रवडीभापामे	१६७
९७ मेतारज ऋषीनो ढालियो	१४६	१११ अध्यातम पद	१६७
९८ आणद श्रावणकनो चोढालियो	१५३	११२ अध्यातम पशराथाकी लांवणी	१६८

अनुक्रमणिका

विषया	पृष्ठांग
५७ समगतछत्तीसी	७५
५८ ४ गतआयुबंधण सझाय	७७
५९ श्रावकछत्तीसी	७८
६० साधुवदणा	८०
६१ बृहतआलोयणा	८९
६२ दशवैकालिकनी१५ सझाय	१०३
६३ अरिहतस्तवन	११६
६४ सिद्धस्तवन	११७
६५ आचारजस्तवन	११७
६६ उपाध्यायस्तवन	११८
६७ साधुजीरो स्तवन	११८
६८ २४ तीर्थंकरना२४स्तवन	१२०
६९ २० विहरमान २० जिनस्तवन	१३१
७० चोवीसजिनहितोपदेसपद	१३८

विषया	पृष्ठांग
७१ देवस्तुति पद	१३९
७२ गुरुस्तुतिपद	१३९
७३ धर्मस्तुति पद	१३९
७४ ज्ञानगुणोपदेशपद	१३९
७५ सम्यक्तउपदेशपद	१४०
७६ चारित्रपद	१४०
७७ तपोपदेशपद	१४०
७८ क्रोधनिवारण पद	१४०
७९ माननिवारण पद	१४०
८० मायानिवारणपद	१४१
८१ लोभहरण पद	१४१
८२ उपदेसी पद	१४१
८३ श्रावकधर्म उपदेशपद	१४१
८४ पाप फलोपदेश पद	१४१



अनुक्रमणिका

विषया	पृष्ठांग
११३ सवैया	१६९
११४ महावीरस्वामीजीनोदशोटण	१७१
११५ जिनस्तवनदेशी फागरी	१७४
११६ धर्मफाग उपदेशी स्तवन	१७६
११७ धन्नाजीरी लांवणी	१७७
११८ नेमनाथजीरो स्तवन	१७८
११९ आरज्यांजीनो स्तवन	१७९
१२० श्रीमंदिरस्वामीजी स्तवन	१७९
१२१ २४ दण्डकउपर२४पदवीनो स्तवन	१८०
१२२ मरहठी भाषामे लांवणी	१८१
१२३ ४जातकी स्त्रीयांकाकवित	१८२

विषया	पृष्ठांग
१२४ सुभाषित दुहा	१८३
१२५ निंद्याकी सज्झाय	१८३
१२६ सीतासतीको स्तवन	१८४
१२७ राखडी पुनमनी सज्झाय	१८५
१२८ धनतेरसनी सज्झाय	१८६
१२९ रूपचवदशनी सज्झाय ..	१८६
१३० लांवणी सुकृतधनलीजो ...	१८६
१३१ उपदेशी स्तवन	१८७
१३२ भर्मभंजणकुमतिचपेटोम	१८७
श्रीचरचर्चासज्झायमाला	
१३३ मोलपछत्तीसी	१९६

इति अनुक्रमणिका समाप्तः

॥ श्रीः ॥

॥ श्रीपरमेश्वराय नमः ॥



॥ श्रीनवकारमंत्रलषीएछइएंश्री ॥

॥ णमो अरिहंताण ॥ णमो सिद्धाण ॥ णमो आयरियाणं ॥
॥ णमो उवझायाणं ॥ णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ एसो पंच
॥ णमुक्कारो ॥ सव्वपावप्पणासणो ॥ मंगलाणंच सवेसिं ॥ पढमं
॥ हवइ मगलं ॥ इतिश्रीनवकार ॥ १ ॥

॥ नवकारनो अर्थ लिष्यते ॥

णमो केहता नमस्कारहोजो, अरिहंताण के० कर्मरूपसत्रुनें हाणनार, जेणें चारघनघाती कर्मटाल्या तथा जेनाथी कोई ठगोनथी, अने ते चोत्रीस अतीशयकरी

॥ इति अनुक्रमणिका समाप्तः ॥

॥ तिखुत्तारी पाटीको अर्थ छे ॥

तिखुत्तो के० तीनवार **आयाहिए** के० बेहाथ जोडीने जीमणा कानसूं माथा का नताई **पयाहिए** के० प्रदक्षणा करिने, **वंदामि** के० गुणग्रामकरुछु, **नमसामि** के० मस्तक नमायने नमस्कार करुछु, **सक्कारेमि** के० सत्कार देवुछु **सम्माणेमि** के० सन्मान देवुछु **कल्लाण** के० कल्याणकारी, **मंगलं** के० मंगलकारी, **देवय** के० धर्मदेव समान, **चेइय** के० ज्ञानवंतते छकायका जीवने सुखदायक, **पज्जुवासामि** के० मन वचन कायासूं करने सेवाकरुछु, **मत्थएण वंदामि** के० मस्तकें करीं नमस्कार करुछु

॥ अथइरियावहिपाटीकोअर्थछे ॥

इच्छा कारेण केहतां तुमारी इछापूर्वक **संदेसह** कहेतां आज्ञाकरोतो भगवन् केहेतां महाभाग्य ज्ञानवंत **इरियावहिय** केहेता चालवाना मार्गमाहे जीवबाधादीक सपापक्रिया तेहथकि **पडिक्कमामि** केहेतां निवर्तुछूं पछेगुरुकहे **पडिक्कमेह** के० निवर्त्तो पाप टालो पछे शिष्यकहे, **इछं** केहता प्रमाणछे **इछामि** कहेतां इच्छूछूं **पडिक्कमिउं** केहेता पापकर्मसूं निवर्तणवास्ते **इरिया** कहेता रस्तामाहें **वहियाए**

तथा ३५ स प्रकारनि वाणीयेकरी विराजमान एहवा अरिहतने वाउ सिद्धाणं के० सर्वे कार्यसाध्या, आठकर्म षपावि मुक्तिपोता तथा एकतिसगुणेकरिसहित एहवा जे सिद्ध तेहनें, वादिइ आयरियाण के० जे पाचआचारनेपाले, विजाप्राणिने पलावे तथा छत्तीस गुणेकरिसहितछे एवा आचारजजीने, वादुं उवझायाण के० जे शुद्ध सूत्रार्थजणे, जणावे तथा पचिस गुणेकरीसहित एहवा श्री उपाध्यायजीने वादुं लोए के० लोकअढीद्वीपनामनुष्यक्षेत्रने विषे सवसाहूण के० सर्व साधूने, जे ज्ञानदर्शनचारित्र तपना साधनार तथा सत्तावीस गुणेकरीसहितछे, वली एसो के० अरिहतादिक सवथी पचणमुक्कारो के० पांचनमस्कारछे, ते केवाछे, सवपाव के० ज्ञानावरणादिक सर्वपाप तेहना, प्पणासणो के० विनासकर्णहारछे, मंगलाणच के० सर्वमगलिकमांहि, सवेसिं के० सर्वमे पढम के० मुख्य, हवइ के० छे, मगल के० कल्याणकारक

॥ अथ तिखुत्तारी पाटी लिख्यते ॥

॥ तिखुत्तो आयाहिण पायाहिण वदामि नमसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाण मगल देवय चेइय पज्जुवासामि मत्थएणवदामि ॥ १ ॥ इति ॥ २ ॥

ग ७ जेने **पंचिंदिया** केहे॰ पाचइद्रीवाला शरीर मुख नाक आख ने कान होय ते जलचर थलचर खेचर ए तिर्यंच तथा मनुष्य देवता नारकी सर्व ससारी जीव ते **अभिहया** के॰ सामा आवता हण्या होए **वत्तिया** केता एक ढीगले करिया तथा धूलमे ढक्याहोए **लेसिया** केहतां भोमीमे घस्या तथा लगारेक मसल्या होय, **संघाइया** केहेतां माहोमाहे शरीरनें मेलाविने एकठा मेलव्या होए **संघट्टिया** केहेता थोडो स्पर्श करवेकारि दुहव्या होए **परियाविया** केहेतां सर्व प्रकारें ताप्या पीमा उपजावी होए **किलामिया** केहेता गाढो दु ख उपजाव्यो मृतकप्राए किधा होय**उद्दविया** के॰ त्रास देने हानि चालि सके नही एवा किधा **ठाणाउ** के॰एकस्थानकथी उपाडी ने **ठाए** के॰ बिजा ठिकाणे **संकामिया** के॰ मूक्याहोय, **जीवियाउ** के॰ जीवतयकी **ववरोविया** के॰ मारियाहोय नाशकीधो, **तस्स** केहेता तेसबंधी अतिचार लाग्या ते **मिच्छामिदुक्कड** केहेता पाप मुजने निष्फल थाजो इति

॥ अथतस्सउत्तरीपाटीकोअर्थले ॥

तस्स के॰ तेने **उत्तरी** केहेता विशेषेकरीशुद्ध **करणेण** के॰ करवासारू **पा**

कहेता जावता **विराहणाए** कहेता दु खदिनो होए **गमणागमणे** कहेता जावतां ने आवतां **पाण** केहेता प्राणी **क्कमणे** कहेता पगेंकरी चाप्या होए **बीय** कहेतां बीजने **क्कमणे** कहेतां ० चाप्या होए **हरिय** कहेता हिरवी वनस्पती वगेरे **क्कमणे** कहेता चापी होए, **उसा** केहेता सुक्ष्म अपकाय आकाशथी पडेते **उत्तिंग** कहेता कीडीआनाजाला प्रमुपजीव **पणग** कहेता पांचवर्णी नील फूलण **दग** कहेता पाणी **मट्टी** कहेता काचीमाटी **मक्कडा** कहेता कोलिआवडा **संताणा** कहेता मर्कटना सन्तान **सक्कमणे** केता ए सर्वने पगेंकरी पीरूया तथा मसल्पा **जे** के० जेकोइ, **मे** केहेतां मेपोते **जीवा** के० जीवने **विराहिया** के० दुःखदीनो होए **एगेंदिया** केह० जेने सरीररूप एकज इंद्री होए ते पृथ्वी पाणी अग्नि वायु वनस्पतीना जीव **बेइंदिया** के० शरीर तथा मुख दोए इंद्रीवालाजे शष शीप गम्बेला अलसीया एवा जेनेपग न होए ते बेंद्री **तेइंदिया** के० तीनइंद्रीवाला शरीर मुख नाक होय ते कुंथुवा जू, लीप, माकण, कीमी **चउरिंदिया** केहे० च्यार इंद्री सरीर मुख नाक ने आख होए ते माखी मछर मस विछु भमरी टीम्ह जे तम्नारा ने अगर आठप

ग ७ जेने **पंचिंदिया** केहे० पाचइन्द्रीवाला शरीर मुख नाक आख ने कान होय ते जलचर थलचर खेचर ए तिर्यंच तथा मनुष्य देवता नारकी सर्व ससारी जीव ते **अभिहया** के० सामा आवता हण्या होए **वत्तिया** केता एक ढीगले करिया तथा धू, अमे ढाक्याहोए **लेसिया** केहतां जोमीमे घश्या तथा लगारेक मसल्या होय, **संघाइया** केहेवां माहोमाहे शरीरनें मेलाविने एकठा मेलव्या होए **संघट्टिया** केहेतां थोडो स्पर्श करवेकारे दुहव्या होए **परियाविया** केहेतां सर्व प्रकारें ताव्या पीडा उपजावी होए **किलामिया** केहेता गाढो दुःख उपजाव्यो मृतकप्राए किधा होय**उद्दविया** के० त्रास देनें हाले चाले सके नही एवा किधा **ठाणाउ** के०एकस्थानकथी उपाडी ने **ठाण** के० बिजा ठिकाणे **संकामिया** के० मूक्याहोय, **जीवियाउ** के० जीवतव्यकी **ववरोविया** के० मारियाहोय नाशकीधो, **तस्स** केहेता तेसबंधी अतिचार लाग्या ते **मिच्छामिडुक्कड** केहेता पाप मुजने निष्फल थाजो इति

॥ अथतस्सउत्तरीपाटीकोअर्थले ॥

तस्स के० तेने **उत्तरी** केहेता विशेषेकरीशुद्ध **करणेणं** के० करवासारू **पा**

यत्तित्त के॰ प्रायश्चीत्त पापनि आलोयणा, करणेण के० करवासारु विसोहि के॰ विशुद्ध, निर्मल करणेण के॰ करावासारू विशल्ली के॰ १ माया २ नियाण ३ मिथ्यात् एतीन सल्परादित करणेण के॰ करवासरू पावाण के॰ ससारदे तूना पाप कम्माण के॰ कर्मने निग्घायणं के॰ टालवाने ठाए के॰ अर्थे ग मिकरेमि के॰ एकठामे रहीनकरुछु काउस्सग्ग के॰ कायाने हलाववी नही ते अन्नत्त के॰ आगेकह्यामुजब काया हले तेहनो आगार माफींगे ऊस्ससि एण के॰ उचोस्वासलेवाथी निस्ससिएण के॰ नीचो स्वासमूकवाथी खासिएणं के॰ खासी खोखवा थकि छीएण के॰ छींकआयायकी जम्भाइएणं के॰ जा म्भलि अगर बगासू लेवाथाकि उड्डुएण डकारआव्या थकि वायनिसग्गेण के॰ वायु निकलता थका भमलिए के॰ अकस्मात् चक्री आवाथकि पित्तमुच्छाए के॰ पि त्तनाकोपसू मूर्छाआव्याथका सुहुमेहिं के॰ सूक्ष्म थोडोक अंगसचालेहिं के॰ शा रिरहलावाथी सुहुमेहिं के॰ थोडो खेलसचालेहिं के॰ श्लेष्म तथा मुखना थूक ना चालवाथाकि कफगीलवाथकि सुहुमेहिं के॰ सूक्ष्मथोडो दिट्ठिसंचालेहिं के॰

चक्षुदर्ष्टीहलावथी एवमाईएर्हि के० एआदिकरीने बीजा आगारेर्हि के० स
र्प भीत पडतिहवै अग्नी लागीहोय, राजारो कोप मजारी प्रमुष हिंसक जीव अने
रा जीवलपरेहल घालि नै बेठाइतरादीकाने कावसगपाडेतो भग नहीं आगार छे
तायका अभग्गो के० भागेनही खन्डित होवेनही अविराहिउ के० हानी पोचे
नहीं उज्ज के० होजो मे के० म्हारो काउस्सग्गो के० काया स्थिरराख
वि जाव के० ज्यासुधी अरिहंताण भगवताण के० अरीहतभगवानने नमु
क्कारेण के० नमस्कारकरू त्या सुधीं नपारेमि के० पारुनही ध्यानसपूर्णनकरू
ताव के० त्यासुधीं काय के० म्हारीकायानें शरीरने ठाणेणं के० एकठिकाणे
स्थीरपणे राखीने मोणेण के० अबोलो रहीने झाणेण के० एकाग्रध्यान तणेकरी
नें अप्पाण के० म्हारीकायातेप्रते वोसिरामि के० जा तजुछु आ पाटीकहीनें काउ
स्सग्ग करणो इरियावहीकीपाटी मनमाहे कहेणी नवकार कहीनें पछी कावसग्ग पारिए

॥ अथ लोगस्सकी पाटीको अर्थ छे ॥

लोगस्स के० पचास्तिकायप्रमुष लोकनेविषे, उज्जोयगरे के० उद्योतना करणहार

यच्चित्त के० प्रायश्चीत्त पापनि आलोयणा, करणेण के० करवासारु विसोहि के० विशुद्ध, निर्मल करणेण के० करावासारू विशल्ली के० १ माया २ नियाण ३ मिथ्यात् एतीन सल्यरहित करणेण के० करवासरू पावाण के० ससारहेतूना पाप कम्माण के० कर्मने निग्घायण के० टालवाने ठाए के० अर्थे ठामिकरेमि के० एकठामे रहीनेकरुछु काउस्सग्गं के० कायाने हलाववी नहीते अन्नत्थ के० आगेकह्यामुजब काया हले तेहनो आगार माफीने ऊस्ससिएण के० उचोस्वासलेवाथी निस्ससिएण के० नीचो स्वासमूकवाथी खासिएणं के० खासी खोखला थकि छीएण के० छीकआवाथकी जम्भाइएणं के० जामलि अगर बगासू लेवाथकि उड्डुएण डकारआव्या थकि वायनिसग्गेण के० वायु निकलता थका भमलिए के० अकस्मात् चक्री आवाथकि पित्तमुच्छाए के० पित्तनाकोपसू मूर्छाआव्याथका सुहुमेहिं के० सूक्ष्म थोडोक अगसचालेहिं के० शरिरहलावाथी सुहुमेहिं के० थोडो खेलसचालेहिं के० श्लेष्म तथा मुखना थूकना चालवाथकि कफगीलवाथकि सुहुमेहिं के० सूक्ष्मथोडो दिट्ठिसंचालेहिं के०

नाथजीनें च के॰ वली **मल्लिं** के॰ श्रीमल्लिनाथजीने वंदे के॰ वांदुछुं **मुनिसुव्वय** के॰ श्री मुनीसुव्रतस्वामीप्रत्यें **नमिजिणं** के॰ श्रीनमिजिनने **च** के॰ वली **वंदामि** के॰ नमस्कारकरूंछुं **रिट्ठनेमिं** के॰ श्रीअरिष्टनेमिप्रत्यें **पासं** के॰ श्रीपार्श्वनाथस्वामी प्रत्यें **तह** के॰तथा **वद्धमाणं** के॰ श्रीवर्द्धमानस्वामिप्रत्यें **च** के॰वली **एवं** के॰ एप्रकारे **मए** के॰ म्हारे जीवे **जे** **अभिथुआ** के॰ नामपूर्वकस्तव्याछे **ते** चोविस परमेश्वर केहवाछे **विहुय** के॰ टाल्याछे **रयमला** के॰ कर्मरूपी रज तथा मल **प हीण** के॰ अतिशयकरीनें क्षयकर्याछे **जरमरणा** के॰ जरा तथा मरणनें जेणें क्ष पकर्याछे **चउवीसंपि** के॰ चोविसतीर्थंकर तथा अन्य **जिणवरा** के॰ जिनवर **ति त्थयरा** के॰ तीर्थंकर ते, **मे** के॰ म्हाराउपर **पसीयंतु** के॰ प्रसन्नहोवो, **कित्तिय** के॰ सुन्नवर्णजोगेकरी कीर्तितछे, **वंदिय** के॰ वंदवायोग्यछे, **महिया** के॰ पूज्य छे इंद्रादिकपूजेछे एहवा **जे** के॰ जेतीर्थंकर **ए** के॰ एप्रत्यक्ष **लोगस्स** के॰ लो कनेंअढीद्वीपविषे **उत्तमा** के॰ उत्तम एहवा **सिद्धा** के॰ सिद्धगतथया **तुमे** मुजने **आरुग्ग** के॰ अन्य तथा भाव रागरहित **बोहिलाभं** के॰ श्री जिनधर्मनी

धम्म के॰ धर्म तिथयरे के॰ च्यारतीर्थना करणार, जिणे के॰ रागद्वेषनाजितणार एव
या, अरिहते के॰ अरिहतने, कित्तइस्स के॰ कीर्तिकरुछु चउवीसपि के॰ ऋषभा
दिक चोविस परमेश्वर तथा अन्यनी, केवली के॰ केवलज्ञानीतीर्थकरना नाम कहेछे
उसभ के॰ श्रीऋषभदेवस्वामी, मजियच के॰ श्रीअजितनाथप्रत्यें वदे के॰ वादु
छु सभव के॰ श्रीसभवनाथप्रत्ये मभिणदण के॰ श्रीअभिनदननाथप्रत्यें च
के॰ वली सुमइ के॰ श्रीसुमतिनाथने च के॰ वली पउमप्पह के॰ श्री पद्मप्रभु
स्वामीप्रत्ये सुपास के॰ श्रीसुपार्श्वनाथजीने जिणके॰ रागद्वेषना जितणार च
के॰ वली चदप्पह के॰ श्रीचद्रप्रभुजीने वदे के॰ वादुछु सुविहिं के॰ श्रीसुविधि
नाथजीने च के॰ वली पुप्फदते के॰ श्रीपुष्पदतजीप्रत्यें सीयल के॰ श्रीशीतल
नाथजीने सिज्जंस के॰ श्रीश्रेयासनाथजीनेवासुपुज्ज के॰ श्रीवासुपूज्यस्वामीप्रत्यें चके॰
वली विमल के॰ श्रीविमलनाथजीने मणत के॰ श्रीअनतनाथजीने च के॰ वली जि
ण के॰ राग द्वेषना जीतनार एहवा धम्म के॰ श्रीधर्म नाथजीनें संतिं के॰ श्रीशातिना
थजीने च के॰ वली वदामि के॰ वादुछु कुथु के॰ श्रीकुथुनाथजीने अर के॰ श्रीअर

सावद्य व्यापाररूपपापने भंते के० हे भगवंत पडिक्कमामि के० निवर्तुं छुं निंदामि के० हुं आत्मानिसाखें निंदुं छुं गरिहामी के० गुरून साखें ज विशेषे निंदुं छुं अप्पाणं के० मारी आत्माने तेदुष्ट क्रिया थकी वोसिरामि केतां वोसिरावुं छुं वोसेसे करीत्पजुं छुं.

नमुत्थुणनोअर्थछे

नमुत्थुण कहे० नमस्कारहोवो अरिहताण के० श्री अरिहतदेवने भगवताण के० भगवतने आइगराण के० धर्मना आदिना करनारने तित्थयराण के० तीर्थना स्थापणार एटले साधु साधवी श्रावक श्राविका अने एचारजातना तीर्थना स्थापणार सयसबुद्धाण के० पोतेबोध सम्यक् प्रकारें तत्वना जाणथया पुरिसुत्तमाणं के० पुरुसमाहे उत्तम पुरिससीहाण के० पुरुषमाहे सिंहसमान पुरिसवरपुंडरीयाणं के० पुरुषमाहे पुन्डरीक कमल समान पुरिस के० पुरुषमाहे वर के० प्रधान गंधहत्थीण के० गधहस्ती समानछे लोगुत्तमाण के० लोक माहे उत्तमछे लोगनाहाण के० लोक ना नाथछे लोगहियाण के० लोकना हितकारीछे लोगपईवाण के० लोकने विषे दीपक समानछे लोगपज्जोयगराण केहेता० लोकमाहे उद्योतना करणार अभयदयाणं के० अभयदा

समगतप्राप्तिनो लाभ थवानेअर्थे **समाहिवर** के० प्रधान समाधि **उत्तमं** के० उ त्कृष्टीरुची हणधि **दिंतु** के० देवो **चंदेसु** के० चंद्रमाथीअधीक० **निम्मलयरा** के० अत्यंत निर्मळछे **आइच्चेसु** के० सूर्यसमुदायथकी पण **अहियं** के० अधिक **प यासयरा** के० प्रकाशनाकरणहार **सागरवर** के० प्रधानछेलो स्वयंभूरमण नामा समुद्र तेनीपेरें **गम्भिरा** के० गुणेकरी गम्भीरछे **सिद्धा** के० एहवा जे सिद्ध ते **सिद्धि** के० मुक्तितें **मम** के० मुजने **दिसंतु** के० देवो

करेमिभंतेनोअर्थ

करेमि के० हुं करूंछुं हेपुज्य **सामाइयं** के० समतापरिणामरूप सामायिकने **सावज्ज** के० पाप तेणें करीसहित एहवा **जोगं** के० मनवचन कायाना योग्य तेप्रते **पच्चरकामि** के० पचखूंछुं निषेधकरूंछु **जावके**० ज्यांसुधी **नियमके**० सामायिक व्रतना नियमने **पज्जुवासामिके**० हुं सेवुं छुं रहुंत्यांसुधी **विहं** के० दोयप्रकारेंसु कर्णो करावणो **तिवि हेणं** के० तीनजोगसूं **नकरेमि** के० हुंकरूंनही **नकारवेमि** के० हुंउजापासे नकरावुं **मणसा** के० मनेंकरी **वयसा** के० वचनेंकरी **कायसा** के० कायाएकरि **तस्स** के० ते

सावद्य व्यापाररूपपापने भंते के० हेभगवत पडिक्कमामि के० निवर्तुछु निंदामि के० हु आत्मानिंसार्थे निंदुछु गरिहामी के० गुरून साखें ज विशेषे निंदुछु अप्पाणं के० मारी आत्माने तेदुष्ट क्रिया थकि वोसिरामि केतां वोसिरावूछु वोसेसे करीत्यजुछु.

नमुत्थुणनोअर्थछे

नमुत्थुण कहे० नमस्कारहोवो अरिहताण के० श्री अरीहतदेवने भगवताणं के० भगवतने आइगराण के० धर्मना आदिना करनारने तित्थयराणं के० तीर्थना स्थापणार एटले साधु साधवी श्रावक श्राविका अने एचारजातना तीर्थना स्थापणार सयसबुद्धाण के० पोतेबोध सम्यक् प्रकारें तत्वना जाणथया पुरिसुत्तमाण के० पुरुसमाहे उत्तम पुरिससीहाण के० पुरुषमाहे सिंहसमान पुरिसवरपुंडरीयाण के० पुरुषमाहे पुन्डरीक कमल समान पुरिस के० पुरुषमाहे वर के० प्रधान गंधहत्थीण के० गंधहस्ती समानछे लोगुत्तमाण के० लोक माहे उत्तमछे लोगनाहाण के० लोक ना नाथछे लोगहियाण के० लोकना हितकारीछे लोगपईवाण के० लोकने विषे दीपक समानछे लोगपज्जोयगराण केहता० लोकमाहे उद्योतना करणार अभयदयाणं के० अभयदा

नना देणार चरकुदयाण के • ज्ञानरूप चक्षुना देणार मग्गदयाण के • मोक्षमार्गना देणार
सरणदयाणके • सरणना देणार जीवदयाण के • सजमजीवितव्यनादेनार बोहिदयाण
के • सम कित रूप बोधना देणार धम्मदयाण के • धर्मना देणार धम्मदेसियाण के • धर्म
ना उपदेशना देणार धम्मनायगाणं के • धर्मना नायक धम्मसारहीण के • धर्म
रूप रथना सारथी धम्म के • धर्म विषे वर के • प्रधान चाउरत के • चार गतीना
अंत कर्वा माटे चक्कवट्टीणं के • चक्रवर्ति समानछे दिवो के • बेटसमान ताणं के •
दुखना निवारण करनार सरण के • आधार गइ के • चार गतिमाहे पइग्ग के •
पम्ताजीवने अप्पडिहय के • नही हणाणो एवू वर के • प्रधान नाण के • ज्ञान दं
सण के • केवल दर्शण एटले देषवू धराण के • धरणार विअट्ट के • गयूछे छउमाण के •
छद्मस्थ पणु एटले कर्मरूपी आवरण जिणाण के • राग द्वेषने जीत्याछे जावियाण
के • बिजाने रागद्वेषथकी जिताव्याछे तिन्नाण के • ससार रूपी समुद्रतर्याछे तारया
ण के • बिजाने ससार समुद्रथी तारेछे बुद्धाण के • पोते तत्वज्ञानने समज्या बोहि
याण के • बिजाने तत्वज्ञान समजावणार मुत्ताणं के • पोतेचातुर्गतिक विपाक वि

चित्र कर्म थकि मुकाणं तथा मोयगाणं के० बीजा जव्य प्राणीनें कर्मथकि मुकाव णाछे सव्वन्नूण के० सर्व ज्ञानीछे सव्वदरिसीणं के० सर्वपदार्थना देखणारछे सिव के० सर्व उपद्रव रहित मयल के० अचल मरूए के० रोग रहीत मणत के० मर्ण रहित मरकय के० सर्वकाल निश्चल मव्वाबाह के० बाधा पीमारहित मपुणरावित्ति के० जे गती थकि फीरी ससारने विषे अवतार लेवोनथी एवि सिद्धीगइ के० सिद्धिगतीछे नामधेय के० जे एवु नाम ठाण के० एवु स्थानक संपत्ताणं के० मोक्ष नगर प्रत्यें पाम्याछे एवा अरिहत जणी नमो के० नमस्कारहोजो जिणाण के० कर्मरूपी सत्रुने जितणार तथा श्री

नवमासामायकव्रतनोअर्थछे

पचअइयारा के० पांच अतीचारछे ते जाणियव्वा के० जाणवा नसमायरीयव्वा के० आचरवानहि तजहा के० जेमछे तेम तेआलोउ के० ते कहुछु मणदुप्पणिहाणें के० मने माठो वरत्युहोय वयदुप्पणिहाणे के० वचनमांठु वर्त्युहोए कायदुप्पणिहाणे के० कायामाठी प्रवर्ताविहोए सामाइयस्सइ के० सामायकने अकरणयाए

जिणमयनिउणेणज्झावएण सा मयणसुदरीबाला । तह सिक्खविया जह जिणमयमि कुसलत्तण पत्ता ॥ ६२॥
एगा सत्ता दुविहो नओ य कालत्तय गइचउक्क । पचेव अत्थिकाया, दव्वछक्क च सत्त नया ॥ ६३॥
अट्ठेव य कम्माइ नवतत्ताइ च दसविहो धम्मो । एगारस पडिमाओ बारस वयाइ गिहीण च ॥ ६४ ॥
इच्चाइ वियाराचारसारकुसलत्तण च सपत्ता । अन्ने सुहुमवियारेवि मुणइ सा निययनाम व ॥ ६५ ॥

जिनमतविषये निपुणेन अध्यापकेन–पाठकेन सा मदनसुन्दरीकन्या तथा शिक्षिता–शिक्षां ग्राहिता यथा जिनमते कुशलत्व प्राप्ता ॥ ६२ ॥ सतो भाव' सत्ताऽस्तित्वमित्यर्थ , सा सर्वेष्वपि पदार्थेषु एकैव वर्त्तते, च पुनर्द्विविधो नय' द्रव्यपर्यायादिस्वरूप' तथा कालत्रय गतिचतुष्कं पञ्चैव अस्तिकाया–धर्माधर्माकाशपुद्गलजीवस्वरूपा सन्ति, च पुनर्द्रव्याणां–धर्मास्तिकायादीनां कालद्रव्ययुक्तानां षट्कमस्ति तथा नैगमाद्या सप्त नया सन्ति ॥ ६३ ॥ ज्ञानावरणीयादीनि अष्टैव कर्माणि सन्ति, च पुनर्जीवादीनि नव तत्त्वानि सन्ति, तथा क्षान्त्यादिको दशविधो यतिधर्मो विद्यते, एकादश एकादश दर्शनाद्या श्रावकप्रतिमा सन्ति, च पुनर्गृहिणां स्थूलप्राणातिपातविरमणादीनि द्वादश व्रतानि सन्ति ॥ ६४ ॥ सा मदनसुन्दरी इत्यादयो ये विचाराचारयो सारांरहस्यभूतपदार्था तेषु कुशलत्वं–निपुणत्वं सम्प्राप्ता । च पुन साऽन्यान्–एतद्व्यतिरिक्तान् सूक्ष्मविचारानपि निजकनामवत् मुणति–जानाति ॥ ६५ ॥

कम्माण मूलुत्तरपयडीओ गणइ मुणइ कम्मठिइ । जाणइ कम्मविवाग, बंधोदयदीरण सत ॥ ६६ ॥
जीसे सो उज्झाओ, सतो दतो जिइदिओ धीरो । जिणमयरओ सुबुद्धी, सा किं नहु होइ तस्सीला ? ॥ ६७ ॥
सयलकलागमकुसुला, निम्मलसम्मत्तसीलगुणकलिया । लज्जासज्जा सा मयणसुन्दरी जुव्वण पत्ता ॥ ६८ ॥
अन्नदिणे अब्भितरसहानिविट्ठेण नरवरिंदेण । अज्झावयसहियाओ, अणाविआओ कुमारीओ ॥ ६९ ॥

अष्टौ मूलप्रकृती-पुन सा कर्मणां मूलभेदान् तथाऽष्टपञ्चाशदधिकशतमुत्तरप्रकृतीर्गणयति, तथा-कर्मणां स्थितिं त्रिंशत्कोटीकोटीसागरोपमादिकां जानाति, पुन कर्म्मणां विपाक शुभाशुभानुभवस्वरूप जानाति, तथा-कर्म्मणां बन्धोदयोदीरणया (णा) सत्तास्वरूप जानाति ॥ ६६ ॥ यस्या· सुबुद्धिर्नाम श्रावक उपाध्याय -पाठक सा मदनसुन्दरी तच्छीला-गुरुतुल्यस्वभावा किं नहि भवति ? भवत्येवेत्यर्थ , कीदृश स ? इत्याह-शान्त क्षमायुक्त:, तथा दान्तो-मानमदमयुक्त , पुनर्जितेन्द्रियस्तथा, धीरो-धैर्यवान्, बुद्धिमान् वा पुनर्जिनमते रक्त ईदृशो यस्या गुरु सा तादृशगुणवती कथं न भवेत् ?, सा मदनसुन्दरी यौवन प्राप्ता, कीदृशी सा ? इत्याह-सकलकलागमेषु-समस्तकलाशास्त्रेषु कुशला-निपुणा पुनर्निर्मला ये सम्यक्त्वशीलगुणास्तै कलिता-युक्ता तथा लज्जायां सज्जा-परिपूर्णा प्रगुणा इतियावत् एवंविधा मदनसुन्दरीकन्या बाल्यावस्थामतिक्रम्य यौवनावस्थां प्राप्तवतीत्यर्थ ॥ ६८ ॥ अन्यस्मिन् दिने अभ्यन्तरसभायां निविष्टेन-उपविष्टेन नरवरेन्द्रेन-राज्ञा अध्यापकाभ्यां सहिते द्वे अपि कुमार्यौ आनायिते स्वपार्श्वे इति शेष ॥ ६९ ॥

विणओणयाउ ताओ, सरूवलावन्नखोहिअसहाओ । विणिवेसिआउ रन्ना, नेहेण उभयपासेसु ॥ ७० ॥
हरिसवसेण राया, तासिं बुद्धिपरिक्खणनिमित्त । एगं देइ समस्सा-पयं दुन्हपि समकालं ॥ ७१ ॥
तया "पुन्नेहिं लब्भइ एहु," तो तक्काल अइचवलाइ, अच्चंतगव्वगहिल्लाए सुरसुंदरीइ भणिय, [illegible] पूरेमि [illegible] ॥ ७२ ॥
तथा—धणजुव्वण सुवियड्ढपण, रोगरहिअ निअ देहु । मण वल्लह मेलावडउ, पुन्निहिं लब्भइ एहु ॥ ७३ ॥
तं सुणिय निवो तुट्ठो, पसंसए साहु साहु उज्झाओ । जेणेसा सिक्खविया, परिसाऽवि भणइ नरनाह ॥ ७४ ॥

विनयेन अवनते-नम्रे तथा स्वरूपलावण्येन क्षोभिता-चमत्कारं प्रापिता, सभा याभ्यां ते एतादृशे द्वे कन्ये राज्ञा स्नेहेन
स्वस्य उभयोः पार्श्वयोः विनिवेशिते-स्थापिते उपवेशिते इतियावत् ॥ ७० ॥ राजा हर्षवशेन तयोर्बुद्धिपरीक्षानिमित्तं ताभ्यां द्वाभ्यामपि
कन्याभ्यां समकालं एकं समस्यापदं ददाति ॥ ७१ ॥ एतत् समस्यापदं राज्ञा दत्तं, ततस्तदनन्तरं तत्काल सुरसुन्दर्या भणितं अहो अहं
एतां समस्यां पूरयामि, यूयं शृणुत, कीदृश्या सुरसुन्दर्या-अतिचञ्चलया अतिशयेन चपलया पुनरत्यन्तं गर्वग्रथिलया ॥ ७२ ॥
धनयौवनं सुविदग्धत्वं छेकत्वमित्यर्थः तथा रोगरहितो निजदेहः-स्वशरीरं तथा मनसो वल्लभः प्रियो यः पुरुषस्तेन सार्द्धं
मेलः-सम्बन्धः एतद्वस्तुवृन्दं पुण्यैर्लभ्यते ॥ ७३ ॥ तत् सुरसुन्दरीवाक्यं श्रुत्वा नृपो-राजा तुष्टः सन् प्रशंसनं-श्लाघां करोति स्म,
कथमित्याह-उपाध्यायोऽस्याः पाठको-गुरुः साधु-समीचीन इत्यर्थः, येनैषा पुत्री इत्थं शिक्षिता-पाठिता, तदा पर्षदपि भणति-
हे महाराज! इदं सत्यं-अत्र किमपि मृषा नास्तीत्यर्थः ॥ ७४ ॥

तो रन्ना आइट्ठा, मयणा वि हु पूरए समस्सं त । जिणवयणरया सता दता ससहावसारिच्छ ॥ ७५ ॥
यथा—विणयविवेयपसण्णमणु सीलसुनिम्मलदेहु । परमप्पहमेलावडउ, पुण्णेहि लब्भइ एहु ॥ ७६ ॥
तो तीए उवझाओ, मायावि अ हरिसिआ न उण सेसा । जेण तत्त्वोवएसो न कुणइ हरिस कुदिट्ठीण ॥ ७७ ॥
इओ अ—कुरुजगलमि देसे, सखपुरीनाम पुरवरी अत्थि । जा पच्छा विक्खाया, जाया अहिछत्तनामेण ॥ ७८ ॥

ततो राज्ञा आदिष्टाअनुज्ञाता सती मदनसुन्दर्यपि तां समस्यां पूरयति, कीदृशी मदनसुन्दरी?—जिनवचनेषु रता-रक्ता पुन शान्ता-उपशमयुक्ता तथा दान्ता-इन्द्रियादिदमवती कीदृशीं समस्यां?-स्वस्वभावेन सदृक्षां-सदृशीम् ॥ ७५ ॥ विनय - पूज्यादिषु वन्दननमस्कारादिरूप विवेको-वस्तूनां भेदपरिज्ञान सदसद्विवेचनमित्यर्थ, तथा शीलेन-ब्रह्मचर्येण सुनिर्मल-त्युज्ज्वलो देह', तथा परमउत्कृष्ट पन्था—मार्ग परमपथ मोक्षमार्ग इत्यर्थ तेन सह मेलः—सम्बन्ध एतद्वस्तुवृन्द पुण्यैर्लभ्यते ॥७६॥ ततस्तदनन्तर तस्या मदनसुन्दर्या उपाध्यायो-हर्षित'—तुष्टश्च पुनर्मातापि हर्षिता न पुन शेषा राजादयो लोका ते हर्ष न प्राप्ता इत्यर्थ., कुतइत्याह—येन कारणेन तत्त्वोपदेश कुदृष्टीनां मिथ्यात्विलोकानां हर्ष न करोति, अय भाव'—तस्या वाक्यं तत्त्वोपदेशरूपं राजादयस्तु कुदृष्टयः तेन तत् श्रुत्वा ते हर्ष न प्राप्ता इति, उक्तं च—गुणिनि गुणज्ञो रमतेइत्यादि ॥७७॥ इतश्च- अतः परं यज्जातं तदाह—कुरुजङ्गलदेशे शङ्खपुरीनाम प्रधानपुरी आस्ति, या पुरी पश्चात्—कियत्कालानन्तरं अहिच्छत्रानाम्ना विख्याता—प्रसिद्धा जाता ॥ ७८ ॥

विणओणयाउ ताओ, सरूवलावन्नखोहिअसहाओ । विणिवेसिआउ रन्ना, नेहेण उभयपासेसु ॥ ७० ॥
हरिसवसेण राया, तासिं बुद्धिपरिक्खणनिमित्त । एग देइ समस्सा—पय दुविन्हपि समकाल ॥ ७१ ॥
यथा "पुन्निहिं लब्भइएहु," तो तक्काल अइचचलाइ, अच्चतगव्वगहिलाएसुरसुदरीइ भणिय, हु हु पूरेमि निसुणेह ७२
यथा—धणजुव्वण सुवियड्ढपण, रोगरहिअ निअ देहु । मण वल्लह मेलावडउ , पुन्निहिं लब्भइ एहु ॥७३॥
त सुणिय निवो तुट्ठो, पसंसए साहु साहु उज्झाओ । जेणेसा सिक्खविया, परिसावि भणेइ सच्चमिण ॥ ७४ ॥

विनयेन अवनते—नम्रे तथा स्वरूपलावण्येन क्षोभिता—चमत्कार प्रापिता, समायाभ्यां ते एवंविधे ते द्वे कन्ये राज्ञा स्नेहेन स्वस्य उभयो पार्श्वयोः विनिवेशिते—स्थापिते उपवेशिते इतियावत् ॥७०॥ राजा हर्षवशेन तयोर्बुद्धिपरीक्षानिमित्त ताभ्यां द्वाभ्यामपि कन्याभ्यां समकालं एकं समस्यापदं ददाति ॥ ७१ ॥ एतत् समस्यापदं राज्ञा दत्त, ततस्तदनन्तरं तत्काल सुरसुन्दर्या भणित, अहो अह एतां समस्यां पूरयामि, यूयं शृणुत, कीदृश्या सुरसुन्दर्या—अतिचञ्चलयाअतिशयेन चपलया पुनरत्यन्त गर्व्वेणग्रथिलया ॥ ७२ ॥ धनयौवनं सुविदग्धत्वं छेकत्वमित्यर्थः तथा रोगरहितो निजदेह —स्वशरीरं तथा मनसो वल्लभ -प्रियो य पुरुषादिस्तेन सार्द्धं मेल'-सम्बन्ध एतद्वस्तुवृन्दं पुण्यैर्लभ्यते ॥ ७३ ॥ तत्र सुरसुन्दरीवाक्यं श्रुत्वा नृपो—राजा तुष्ट सन् प्रशसते-इत्थ प्रशसां करोति स्म, कथमित्याह—उपाध्यायोऽस्याः पाठको-गुरु साधु'-समीचीन इत्यर्थ , येनैषा पुत्री इत्थं शिक्षिता-पाठिता, तदा पर्षदपि भणति-हे महाराज ! इदं सत्यं-अत्र किमपि मृषा नास्तीत्यर्थः ॥ ७४ ॥

सी रन्ना आइट्ठा, मयणा वि हु पूरए समस्स त । जिणवयणरया सता दता ससहावसारिच्छ ॥ ७५ ॥
यथा—विणयविवेयपसण्णमणु सीलसुनिम्मलदेहु । परमप्पहमेलावडउ, पुण्णेहिँ लब्भइ एहु ॥ ७६ ॥
तो तीए उवज्झाओ, मायावि अ हरिसिआ न उण सेसा । जेण तत्तोवएसो न कुणइ हरिस कुदिट्ठीण ॥ ७७ ॥
इओ अ—कुरुजगलमि देसे, सखपुरीनाम पुरवरी अत्थि । जा पच्छा विक्खाया, जाया अहिछत्तनामेण ॥ ७८ ॥

ततो राज्ञा आदिष्टाअनुज्ञाता सती मदनसुन्दर्यपि तां समस्यां पूरयति, कीदृशी मदनसुन्दरी?—जिनवचनेषु रता-रक्ता पुन शान्ता-उपशमयुक्ता तथा दान्ता-इन्द्रियादिदमवती कीदृशीं समस्यां?-स्वस्वभावेन सदृक्षां-सदृशीम् ॥ ७५ ॥ विनय:- पूज्यादिषु वन्दननमस्कारादिरूप विवेको-वस्तूनां भेदपरिज्ञान सदसद्विवेचनमित्यर्थ, तथा शीलेन-ब्रह्मचर्येण सुनिर्मल-त्युज्ज्वलो देह', तथा परमउत्कृष्ट पन्था—मार्ग परमपथः मोक्षमार्ग इत्यर्थ तेन सह मेल:—सम्बन्ध एतद्वस्तुवृन्द पुण्यैर्लभ्यते ॥७६॥ ततस्तदनन्तरं तस्या मदनसुन्दर्या उपाध्यायो-हर्षित'—स्तुष्टश्च पुनर्मातापि हर्षिता न पुन शेषा राजादयो लोका ते हर्षं न प्राप्ता इत्यर्थ', कुतइत्याह—येन कारणेन तत्त्वोपदेश कुदृष्टीनां मिथ्यात्विलोकानां हर्षं न करोति, अय भावः—तस्या वाक्य तत्त्वोपदेशरूप राजादयस्तु कुदृष्टय तेन तत् श्रुत्वा ते हर्षं न प्राप्ता इति, उक्त च—गुणिनि गुणज्ञो रमतेइत्यादि ॥७७॥ इतश्च—अतः परं यज्जातं तदाह—कुरुजङ्गलदेशे शङ्खपुरीनाम प्रधानपुरी आस्ति, या पुरी पश्चात्—कियत्कालानन्तरं अहिच्छत्रानाम्ना विख्याता—प्रसिद्धा जाता ॥ ७८ ॥

तत्थत्थि महीपालो कालो इव वेरिआण दमिआरी । पइवँरिस सो गच्छइ, उज्जेणिनिवस्स सेवाए ॥ ७९ ॥
अन्नदिणे तप्पुत्तो, अरिदमनो नाम तारतारुन्नो । संपत्तो पिअठाणे, उज्जेणिं रायसेवाए ॥ ८० ॥
त च निवपणमणत्थ, समागय तत्थ दिव्वरूवधर । सुरसुदरी निरिक्खइ, तिक्खकडक्खेहिँ ताडती ॥ ८१ ॥
तत्थेव थिरनिवेसिअदिट्ठी दिट्ठा निवेण सा बाला । भणिया य कहसु वच्छे! तुज्झ वरो केरिसो होउ ? ॥८२॥
तो तीए हिट्ठाए, धिट्ठाए मुक्कलोअलज्जाए । भणिय तायपसाया, जइ लब्भइ मग्गिय कहवि ॥ ८३ ॥

तत्र-तस्यां नगर्यां वैरिणां काल इव-कालसदृशो दमितारिर्नाम महीपालो राजाऽस्ति, स राजा वर्ष वर्ष प्रति प्रतिवर्ष उज्जयिन्या नगर्या -उज्जयिन्या नगर्या नृपस्य-राज्ञः सेवायै-सेवार्थं गच्छति ॥ ७९ ॥ अन्यस्मिन् दिने तत्पुत्रो अरिदमनो नाम कुमारो राज्ञः सेवार्थं पितृस्थाने स्वयं उज्जयिनीं सम्प्राप्त, कीदृशो अरिदमन ?-तारमुज्ज्वल तारुण्य-यौवन यस्य स तारत रुण्य ॥८०॥ तदा नृपस्य प्रणमनार्थ नमस्कारार्थं-तत्र समागत दिव्यरूपधरं-अद्भुतसौन्दर्यधारक त अरिदमनकुमार सुरसुन्दरी नृपकन्या तीक्ष्णैः कटाक्षै -नेत्रप्रान्तैस्ताडयंती निरीक्षते विलोकयतीति ॥ ८१ ॥ तत्र-तस्मिन्नेव कुमारे स्थिर-निश्चल यथा स्यात्तथा निवेशिता स्थापित दृष्टिर्यया सा एवंविधा सा सुन्दरी-बाला नृपेण दृष्टा भणिता-उक्ता च हे वत्से! त्व कथयस्व तव वरो भर्त्ता कीदृशो भवतु ? ॥८२॥ तत -तदनन्तरं हृष्टया हर्ष प्राप्तया पुनर्धृष्टया धृष्टत्वयुक्तया तथा मुक्ता लोकलज्जा यया सा तया मुक्तलोकलज्जाया तया सुरसुन्दर्या भणितं-उक्तम्, किमुक्तमित्याह-तातस्य-पितुः प्रसादात् यदि कथमपि मार्गित लभ्यते ॥ ८३ ॥

तो सव्वकलाकुसलो, तरुणोवररूवपुण्णलायन्नो। एरिसओ होउ वरो, अहवा ताओच्चिअ पमाण ॥ ८४ ॥
जेण ताय तुम च्चिय, सेवयजणमणसमीहियत्थाण। पूरणपवणो दीससि, पच्चक्खो कप्परूक्खव्व ॥ ८५ ॥
तो तुट्ठो नरनाहो, दिट्ठिनिवेसेण नायतीइमणा। पभणेइ होउ वच्छे! एसऽरिदमणो वरो तुज्झ ॥ ८६ ॥
तो सयलसभालोओ, पभणइ नरनाह! एस सजोगो। अइसोहणोऽहिवल्लीपूगतरूण व निब्भंत ॥ ८७ ॥
अह मयणसुंदरीवि हु, रन्ना नेहेण पुच्छिया वच्छे!। केरिसओ तुज्झ वरो, कीरउ? मह कहसु अविलंब ॥ ८८ ॥

तर्हि सर्व्वकलासु कुशल चतुर पुनस्तरुणो-यौवनवय स्यस्तथा वररूपेण-प्रधानाकृत्या पुण्यं-पवित्रं लावण्यं-सौन्दर्यं यस्य स वर-ईदृको योग्य पुमान् पुरोवर्ती स वरो भवतु, अथवा तात एव प्रमाणं तातो य ददाति स एव वरोस्तु इत्यर्थ ॥८४॥ अथ सा निजेष्टसिद्ध्यर्थं पितरं स्तौति, हे तात! येन कारणेन त्वमेव सेवकजनस्य मन समीहितार्थाना-मनोवाञ्छितकार्याणां पूरणे प्रवण.-स्तत्परो दृश्यसे, क इव?-प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष इव ॥८५॥ ततो नरनाथो-राजा तद्वचनश्रवणात्तुष्ट सन् प्रभणति वक्ति, किं-वक्ति? इत्याह-हे वत्से। एषोऽरिदमन कुमार तव वरोऽस्तु, कीदृशो नरनाथ?-दृष्टिनिवेशेन-कुमारे दृष्टिस्थापनेन ज्ञात तस्या मनो येन स'॥८६॥ततः सकल-समस्त सभालोक प्रभणति-हे नरनाथ! एषोऽनयो' सयोगो निर्भ्रान्तं-निस्सन्देहं अतिशोभनः सञ्जात इति शेष', कयोरिव?-अहिवल्ली पूगतर्वोरिव-नागवल्लीक्रमुकवृक्षयोरिव यथा तयो' सयोगो अतिशोभनोऽस्ति तथाऽनयोरपीत्यर्थ' ॥ ८७ ॥ अथानन्तरं राज्ञा मदनसुन्दर्यपि स्नेहेन पृष्टा-हे वत्से! तव कीदृशको वरो भर्त्ता मया क्रियतां? ममाग्रेऽविलम्ब यथास्यात्तथा शीघ्रमित्यर्थ. कथयस्व ॥८८॥

सा पुण जिणवयणवियारसारसंजणियनिम्मलविवेआ। लज्जागुणिक्कसज्जा, अहोमुही जा न जपेइ ॥ ८९ ॥
ताव नरिंदेण पुणो, पुट्ठा सा भणइ ईसि हसिऊण। ताय! विवेयसमेओ, म पुच्छसि तसि किमजुत्त ॥ ९० ॥
जेण कुलबालिआओ, न कहति हवेउ एस मज्झ वरो। जो किर पिऊहिं दिन्नो, सो चेव पमाणियव्वुत्ति ॥ ९१ ॥
अम्मापिउणोवि निमित्तमित्तमेवेह वरपयाणमि। पाय पुव्वनियद्धो, सबधो होइ जीवाण ॥ ९२ ॥
ज जेण जया जारिसमुवज्जिय होइ कम्म सुहमसुह। त तारिस तया से, सपज्जइ दोरियनिबद्ध ॥ ९३ ॥

जिनवचनानां यो विचारसारस्तेन सञ्जनित-समुत्पादितो निर्मलो विवेको यस्या साऽत एव लज्जागुणे एकसज्जा अद्वितीय-तत्परा सा पुनर्मदनसुन्दरी अधोमुखी सती यावन्न(नुत्तरं)वदाति ॥८९॥ तावन्नरेन्द्रेण पुन पृष्टा सा ईषद्धसित्वा भणति, राजान प्रति कथयति-हे तात! त्वं विवेकसमेतो-विवेकयुक्तोऽसि, मां प्रति अयुक्त किं पृच्छसि? विवेककलितस्य भवतो मां प्रति एतत्प्रच्छनम-युक्तमिति भाव ॥ ९० ॥ कुत इत्याह-येन कारणेन कुलबालिका -सुकुलोत्पन्ना कन्या एव न कथयन्ति, मम एष वरो भवतु, किन्तु य किल मातापितृभ्यां दत्त स एव वर -प्रमाणयितव्य प्रमाणीकर्तव्य ॥९१॥ इह-संसारे वरप्रदाने-कन्याया भर्तृप्रदानविषये मातापितरावपि निमित्तमात्रमेव न पुनस्तात्त्विककारणमिति भाव, प्रायो-बाहुल्येन जीवानां पूर्वस्मिन् भवे निबद्धो रचित सम्बन्धो न भवति, प्रायः येन सह सम्बन्धो रचितो भवेत् तेनैव सह इह सम्बन्धो भवतीत्यर्थ ॥ ९२ ॥ येन प्राणिना यदा यस्मिन् काले यत्-यादृशं शुभमशुभं कर्म उपार्जितं भवति तस्य प्राणिनस्तदा तस्मिन्काले-तथाविध कर्म सम्पद्यते-उदयमायाति, कीदृशं तत्? दोरिकयानिबद्धमिव दोरिकानिबद्धम् ॥ ९३ ॥

जा कन्ना बहुपुन्ना, दिन्ना कुकुलेवि सा हवइ सुहिया । जा होइ हीणपुन्ना, सुकुले दिन्नावि सा दुहिया ॥९४॥
ता ताय ! नायतच्चस्स, तुज्झनो जुज्जए इमो गव्वो । ज मज्झ कयपसयापसायओ सुहदुहे लोए ॥ ९५ ॥
जो होइ पुन्नवलिओ, तस्स तुम ताय ! लहु पसीएसि । जो पुण पुण्णविहूणो, तस्स तुम नो पसीएसि ॥ ९६ ॥
भवियव्वया सहावो, दव्वाइया सहाइणो वावि । पाय पुव्वोवज्जियकम्माणुगया फल दिंति ॥ ९७ ॥
तो दुम्मिओय राया, भणेइ रे तसि मह पसाएण । वत्थालकाराइ, पहिरती कीसिम भणसि ? ॥ ९८ ॥

या कन्या बहुपुण्या भवेत्, सा कुकुले-दरिद्रादिगृहे दत्तापि सुखिता-सुखिनी भवति, या तु हीनपुण्या भवति सा सुकुलेपि दत्ता दु खिता भवति॥९४॥तस्मात्कारणात् हे तात ! ज्ञात तत्त्व येन स ज्ञाततत्त्व तस्य तत्त्वज्ञस्य त गर्वो न युज्यते, यन्मम कृतप्रसादाप्रसादतो लोके सुखदुःखे भवत , मत्कृतप्रसादत' सुख मत्कृतात्प्रसादतो दु'ख भवतीत्यर्थ. अय गर्वस्तव न युक्त' ॥ ९५ ॥ य पुमान् पुण्यवलिक-पुण्येन बलवान् भवति, तस्योपरि हे तात ! त्व लघु-शीघ्र प्रसीदसि-प्रसन्नो भवसि, य पुन पुण्यहीनो भवेत् तस्योपरि त्वं न प्रसीदसि ॥ ९६ ॥ भवितव्यता १ स्वभावो२ वा पुनर्द्रव्याद्या-द्रव्यक्षेत्रकालभावादय. साहाय्यकारिणोपि पूर्वस्मिन् भवे उपार्जितानि यानि कर्म्माणि तानि अनुगता -तत्सम्मिलिता एव फलं ददति, न तु तद्व्यतिरिक्ता' ॥ ९७ ॥ ततश्च-तद्वचनश्रवणानन्तर च राजा दुर्मनस्की भूत सन् भणति, पुत्रीं प्रति कथयति, रे ! त्वं मत्प्रसादेन वस्त्रालङ्कारादि विविधाद्भुतनेपथ्याभूषणादि परिधानासि, इदं प्रागुक्त, पुनः कथं भणसि ? ॥ ९८ ॥

हसिऊण भणइ मयणा, कयसुकयवसेण तुज्झ गेहमि । उप्पन्ना ताय! अहं, तेण माणेमि सुक्खाइं ॥९९॥
पुव्वकय सुकय चिअ, जीवाण सुक्खकारण होइ । दुकय च कय दुक्खाण, कारण होइ निब्मंत ॥ १०० ॥
न सुरासुरेहिं, नो नरवरेहिं, नो बुद्धिबलसमिद्धेहिं । कहवि खलिज्जइ इतो, सुहासुहो कम्मपरिणामो ॥ १०१ ॥
तो रुट्ठो नरनाहो, अहो अहो अप्पपुन्निआ एसा । मज्झ कय किंपि गुण, नो मन्नइ दुव्वियड्ढाय ॥ १०२ ॥

तदा मदनसुन्दरी हसित्वा भणति, हे तात कृतसुकृतवशेन प्राग्भवोपार्जित पुण्यबलात् अहं तव गृहे उत्पन्नास्मि तेन सुखानि मानयामि अनुभवामि ॥ ९९ ॥ हे तात जीवानां पुर्वकृत प्राग्भवोपार्जित सुकृत पुण्यमेव सुखस्य कारण हेतुर्भवति, च पुन' दुष्कृतं पाप प्राग्भवेकृतं सत निर्भ्रान्तं निस्सन्देह दु'खानां कारण भवति ॥ १०० ॥ इन्तोवि आयन् उदयमागच्छन् शुभाशुभ कर्मणां परिणाम' कथमपि केनापि प्रकारेण सुरासुरैर्देवदानवैर्न स्खल्यते, न निराक्रियते नो नरवरै भूपतिभि स्खल्यते, न पुनर्बुद्धिबलसमृद्धै' स्खलति, बुद्धिसमृद्धा महाबुद्धयोबलसमृद्धा' महाबलवन्तस्तैरपि न दूरीक्रियते इत्यर्थ ॥ १०१ ॥ ततस्त-द्वचनश्रवणानन्तरं नरनाथो राजा रुष्ट कुपित' सन् इत्युवाचेति शेष', अहो अहो लोका एषा कन्या अल्पपुण्यिका हीनपुण्या च पुनर्दुर्विदग्धा चातुर्य्यरहितास्ति, अतएव मत्कृत किमपि गुणं न मन्यते ॥ १०२ ॥

---

१ दूरीक्रियते ।

पभणेइ सहालोओ, सामिय ! किमियं मुणेइ मुद्धमई ? । तं चेव कप्परुक्खो, तुट्ठो रुट्ठो कयंतो य ॥ १०३ ॥
मयणा भणेइ धिद्धी, धणलवमित्तत्थिणो इमे सव्वे । जाणंताविं हु अलिअं, मुहप्पियं चेव जपंति ॥ १०४ ॥
जइ ताय ! तुह पसाया, सेवयलोआ हवंति सव्वेवि । सुहिया ता समसेवानिरया किं दुक्खिया एगे ? ॥१०५॥
तम्हा जो तुम्हाणं, रुच्चइ सो ताय ! मज्झ होउ वरो । जइ अत्थि मज्झ पुन्नं, ता होही निग्गुणोवि गुणी ॥१०६॥
जइ पुण पुन्नविहीणा, ताय ! अहं ताव सुंदरोवि वरो । होही असुंदरुच्चिय, नूणं मह कम्मदोसेण ॥ १०७ ॥

अथ समालोक प्रभणति कथयति स, हे स्वामिन्–इयं मुग्धमतिर्मूढबुद्धिर्बाला किं जानाति?, त्वमेव तुष्टः सन् कल्पवृक्षोऽसि वांछितार्थदायकत्वात्, च पुनः रुष्टः सन् कृतान्तो यमतुल्योऽसि सद्योनिग्रहकरणात् ॥ १०३ ॥ एतत्समालोकवचः श्रुत्वा मदनसुन्दरी भणति, एतान् धिग् धिग् अस्तु इमे सर्वे लोका धनस्य लवमात्रं अर्थयन्तेऽभिलपन्तीत्येवं शीला धनलवमात्रार्थिनः जानन्तोऽपि हु निश्चितम् अलीक–मिथ्यावचनं मुखप्रियं–मुखमिष्टमेव जल्पन्ति ॥ १०४ ॥ हे तात ! यदि तव प्रसादात् सर्वेऽपि सेवकलोका सुखिनो भवन्ति तर्हि समा–तुल्या या सेवा तस्यां निरता–तत्परा एके केचित्सेवकलोका दुःखिताः कथं? सर्वेऽपि सुखिन एव युज्यन्ते इति भावः ॥ १०५ ॥ तस्मात् हे तात ! यो युष्मभ्यं रोचते स एव मम वरो भवतु, यदि मम पुण्यमस्ति तर्हि भवद्दत्तो निर्गुणोऽपि वरो गुणी–गुणवान् भविष्यति ॥१०६॥ यदि पुनर्हे तात ! अहं पुण्यविहीनाऽस्मि तर्हि सुन्दरोऽपि वरो नूनं–निश्चितं मम कर्मदोषेण–मदीयदुष्कर्मदोषात् असुन्दर एव भविष्यति ॥ १०७ ॥

तो गाढयर राया, रुट्ठो चिंतेइ दुव्वियड्ढाए। एयाइ कओ लहुओ, अह तओ वेरिणी एसा ॥ १०८ ॥
रोसेण वियडभिउडीभीसणवयण पलोइऊण निव। दक्खो भणेइ मती, सामिय ! रडवाडियासमओ ॥ १०९ ॥
रोसेण धमधमतो, नरनाहो तुरयरयणमारूढो। सामतमतिसहिओ, विणिग्गओ रायवाडीए ॥ ११० ॥
जाव पुराओ बाहिं, निग्गच्छइ नरवरो सपरिवारो। ता पुरओ जणवद, पिच्छइ साडवरमियत ॥ १११ ॥
तो विम्हिएण रन्ना, पुट्ठो मती स नायवुत्तंतो। विन्नवइ देव निसुणह, कहेमि जणवदपरमत्थ ॥ ११२ ॥

ततस्तदनन्तरं राजा गाढवर-अत्यर्थं रुष्टः सन् चिन्तयति, किं चिन्तयतीत्याह-दुर्विदग्धया-अज्ञानवत्या एतया पुत्र्याऽहं लघुकः कृतस्ततस्तस्मात्कारणात् एषा मम वैरिणी वर्तते नतु पुत्रीतिभाव ॥ १०८ ॥ रोषेण-कोपेन विकटा-विकराला या भृकुटी तया भीषण-भयानकं वदन-मुखं यस्य स तं तथाविधं नृपं प्रलोक्य-दृष्ट्वा दक्षश्चतुरो मन्त्री भणति, स्वामिन् राजवाटिकागमनसमयो वर्तते ॥ १०९ ॥ तदा रोषेण धमधमायमानो नरनाथ तुरगरत्न-प्रवराश्वं आरूढ सामन्तैर्मन्त्रिभिश्च सहित सन् राजवाटिकायां निर्गत ॥ ११० ॥ यावन्नरवरो-राजा सपरिवार-परिवारसहित पुराद्बहिर्निर्गच्छति, तावत् पुरतोऽग्रत साडम्बरं-आडम्बरसहितं आयान्तं जनवृन्दं-मनुष्यसमूहं प्रेक्षते-पश्यति ॥ १११ ॥ ततो ज्ञातो वृत्तान्तो येन स ज्ञातवृत्तान्त स मन्त्री अमात्यो विस्मितेन राज्ञा पृष्ट सन् विज्ञपयति, हे देव ! हे महाराज ! यूय निशृणुत अहं जनवृन्दस्य परमार्थं-भावार्थं कथयामि ॥ ११२ ॥

सोमिय ! सरूवपुरिसा, सत्तसया नववयौ ससोंडीरा । दुट्ठकुट्ठमभिभूया, सव्वे एगत्थ समिलिया ॥ ११३ ॥
एगो य ताण बालो, मिलिओ उंबरयवाहिगहियगो। सो तेहिं परिगहिओ, उंबरराणुत्ति कयनामो ॥११४॥
वरवेसरिमारूढो, तयदोसी छत्तधारओ तस्स । गयनासा चमरधरा, घिणिघिणिसद्दा य अग्गपहा ॥ ११५॥
गयकन्ना घंटकरा, मंडलवइ अंगरक्खगा तस्स । दद्दुल थइआइत्तो, गलीअंगुलि नामओ मंती ॥ ११६ ॥

हे स्वामिन् ! सप्त शतानि–सप्तशतसङ्ख्याका नवं वयो येषां ते नववयसो युवान इत्यर्थ, सशौण्डीर्या –पराक्रमवन्त सरूपा–रूपवन्त पुरुषा दुष्टकुष्ठरोगेण अभिभूता –पीडिता एते सर्व्वे एकत्र सम्मिलिता सन्ति ॥ ११३ ॥ च पुनस्तेषां कुष्ठिपुरुषाणां एको बालो मिलितोऽस्ति, कीदृशो बाल ?–उम्बरकव्याधिना–कुष्ठरोगविशेषेण गृहीतमङ्ग यस्य स तथोक्त स बालस्तै कुष्ठिपुरुषै परिगृहीत –सङ्गृहीत कीदृश ?–उम्बरराणउ–इति कृत नाम यस्य स तयोक्त ॥ ११४ ॥ स बालो वरां–प्रधानां वेसरीमश्वतरीं आरूढोऽस्ति, त्वग्दोषी–श्वेतकुष्ठी पुमान् तस्य उम्बरराजस्य छत्रधारकोऽस्ति, गतनासौ गलितनासिकौ पुरुषौ चामरधरौ स्त , तथा रोगवशात् घिणि घिणि इत्येवशब्दो येषां ते एवंविधा नरा तस्याग्रपथा सन्ति अग्रे पन्था येषां ते अग्रगामिन इत्यर्थ ॥११५॥ गतौ–गलितौ कर्णौ येषां ते एवंविधा नरा तस्य घण्टाकरा घण्टावादिन सन्तीत्यर्थ , रक्तमण्डलरोगवन्त पुरुषास्तस्य अङ्गरक्षका सन्ति, (दद्दुल)त्ति दद्रुरोगी पुमान् "थइयाइत्तोति" स्थगीधरस्ताम्बूलधरोऽस्तीत्यर्थ , तथा–गलिताङ्गुलिनामको मन्त्री अस्ति ॥ ११६ ॥

केवि पसूइयवाया, कच्छादब्भेहिँ केवि विकराला । केवि विउचिअपामासमन्निया सेवगा तस्स ॥ ११७ ॥
एव सो कुट्ठिअपेडएण परिवेढिओ महीवीढे । रायकुलेसु भमतो, पजिअदाण पगिण्हेइ ॥ ११८ ॥
सो एसो आगच्छइ, नरवर ! आडबरेण सजुत्तो । ता मग्गमिण मुत्तु, गच्छह अन्न दिस तुब्भे ॥ ११९ ॥
तो वलिओ नरनाहो, अन्नाइ दिसाइ जाव ताव पुरो। तो पेडयपि तीए, दिसाइ वलिय तुरिअ तुरित ॥१२०॥
राया भणेइ मंतिं, पुरओ गतूणिमे निवारेसु । मुहमग्गियपि दाउ, जेणेर्सि दसण न सुह ॥ १२१ ॥

तस्य उम्बरराजस्य केऽपि सेवका प्रसूतिकवातरोगयुक्ता सन्ति, केऽपि कच्छुदर्भभि-र्विकराला भन्ति, केऽपि विचर्चिकापामासमन्विता सन्ति, विचर्चिकाजातीया या पामा तया सँयुक्ता सन्तीत्यर्थ ॥ ११७ ॥ एवममुना प्रकारेण स उम्बरराज' कुष्ठिकानां पेटकेन-समूहेन परिवेष्टित'-समन्तात्परिवृतो महीपीठे-पृथ्वीतले भ्रमन् राजकुलेषु-नृपाणा गृहेषु 'पजियसि' मुखमार्गित दानं प्रगृह्णाति ॥ ११८ ॥ हे नरवर ! हे महाराज ! स एष उम्बरराज आडम्बरेण संयुक्त आगच्छति, तत्तस्मादिम मार्गं मुक्त्वा-त्यक्त्वा यूयं अन्यां दिशं गच्छत ॥ ११९ ॥ ततो नरनाथो-राजा यावदन्यस्यां दिशि वलितस्तावत्पुरोऽग्रे तत कुष्ठिपेटकमपि त्वरित त्वरितं तस्यां दिशि वलितम् ॥ १२० ॥ तदा राजा मन्त्रिण प्रति भणति, त्वं पुरतो-अग्रतो गत्वा इमान् निवारयस्व, किं कृत्वा ?-मुखमार्गितमपि दत्त्वा येन कारणेन एषां कुष्ठिनां दर्शन शुभं नास्ति ॥ १२१ ॥

जा त करेइ मती, गलिअगुलिनामओ दुय ताव । नरवर पुरओ ठाउ, एव भणिउ समाढत्तो ॥ १२२ ॥
सामिअ ! अम्हाण पहू, उंबरनामेण राणओ एसो । सव्वत्थ वि मन्निज्जइ, गरुएहिं दाणमाणेहिं ॥ १२३ ॥
तेणऽम्हाण घणकणयचीरपमुहेहिं कीरइ न किंपि । एतस्स पसायेण, अम्हे सव्वेवि अइसुहिणो ॥ १२४ ॥
किंच–एगो नाह ! समत्थि, अम्ह मणचिंतिओ विअप्पुत्ति । जइ लहइ राणओ राणियति ता सुंदर होइ ॥१२५॥
ता नरनाह ! पसाय, काऊण देहि कन्नग एग । अवरेण कणगकप्पडदाणेण तुम्ह पज्जत्त ॥ १२६ ॥

यावच्चनृपभणित वचन मन्त्री करोति, तावद्गलिताङ्गुलिनामको मन्त्री द्रुत–शीघ्र नरवरस्य–राज्ञ पुरतोऽग्रत स्थित्वा एव भणितु–कथयितु समारब्ध –आरम्भं कृतवान् ॥ १२२ ॥ हे स्वामिन् ! एषोऽस्माक प्रभु–स्वामी उम्बरनाम्ना राजा सर्वत्रापि गुरुकैर्महद्भिर्दानमानैर्मान्यते–नृपादिभि सत्क्रियते इत्यर्थ ॥ १२३ ॥ तेन कारणेन अस्माभिर्धनकनकचीरप्रमुखैः किमपि न क्रियते, धनस्वर्णवस्त्रादिभिरस्माक किमपि कार्यं नास्तीत्यर्थ, एतस्य–उम्बरराज्ञ प्रसादेन वय सर्वेऽपि अतिशयेन सुखिन स्म ॥ १२४ ॥ परं हे नाथ ! एकोऽस्माकं मनश्चिन्तित इत्येवंस्वरूपो विकल्पो–विचारोऽस्ति, यदि अस्माकं राजा इत्येवंस्वरूपा स्वोचितामित्यर्थ, राज्ञीं लभते तर्हि सुन्दरं भवति–शोभन स्यात् ॥ १२५ ॥ तत्तस्मात् हे नरनाथ ! हे राजन् ! प्रसाद कृत्वा एकां कन्यकां देहि अपरेण–अन्येन युष्माकं कनकवस्त्रादिदानेन पर्याप्त–सृत अपरेण नास्माकं कार्यमित्यर्थ ॥ १२६ ॥

तो भणइ रायमती, अहो अजुत्त विमग्गिअ तुमए । को देइ निय धूय, कुट्ठकिलिट्ठस्स जाणतो ? ॥ १२७ ॥
गलिअगुलिणा भणिय, अम्हेहिं सुया निवस्सिमा कित्ती । ज किर मालवराया, करेइ नो पत्थणाभग ॥१२८॥
तो सा निम्मलकित्ती, हारिज्जउ अज्ज नरवरिंदस्स । अहवा दिज्जउ काविहु, धूया कुकुलेवि सभूया ॥ १२९ ॥
पभणेइ नरवरिंदो, दाहिस्सइ तुम्ह कन्नगा एगा । को किर हारइ किर्त्ति, इत्तियमित्तेण कज्जेण ? ॥ १३० ॥
चिंतेइ मणे राया, कोवानलजलियनिम्मलविवेगो । नियधूय अरिभूय, त दाहिस्सामि एयस्स ॥ १३१ ॥

ततो राजमन्त्री भणति, अहो ! त्वयाऽयुक्त विमार्गित कुष्ठरोगेण क्लिष्टाय-क्लेशयुक्ताय पुरुषाय जानन् सन् क पुमान् निजां पुत्रीं ददाति ? अपि तु न कोऽपि ददातीत्यर्थ ॥ १२७ ॥ एतन्नृपमन्त्रिवचन श्रुत्वा गलिताङ्गुलिमन्त्रिणा भणितम्-अस्माभिर्नृपस्य इय कीर्तिः श्रुताऽभूत् यत् किल मालवदेशस्य राजा प्रार्थनाभङ्ग न करोति, य कोऽपि यद्वस्तु याचते तस्मै तद्ददातीत्यर्थ ॥ १२८ ॥ ततस्तस्मात्कारणात् अद्य नरवरेन्द्रस्य सा निर्मलकीर्तिर्हार्यताम्, अथवा कापि कुकुलेऽपि सम्भूता-कुत्सितकुलेऽप्युत्पन्ना कन्या दीयताम् ॥ १२९ ॥ तदा नरवरेन्द्रो राजा प्रभणति-कथयति स्म युष्मभ्य एका कन्यकाऽस्माभिर्दास्यते, किल निश्चित एतावन्मात्रेण कार्येण क स्वकीयां कीर्ति हारयति ? ॥ १३० ॥ कोपानलेन-कोपाग्निना ज्वलितो निर्मलो विवेको यस्य स एवविध सन् राजा मनसि चिन्तयति, किमित्याह-अद तां अरिभूतां-शत्रुतुल्यां निजकन्यां एतस्मै कुष्ठिने दास्यामि ॥ १३१ ॥

सहसा वलिऊण तओ, नियआवासमि आगओ राया । बुल्लावइ त मयणासुदेरिनाम निय धूय ॥ १३२ ॥
हु अज्जवि जइ मन्नसि, मज्झ पसायस्स सभव सुक्ख । ता उत्तम वर ते, परिणाविय देमि भूरि धण ॥ १३३॥
जइ पुण नियकम्म चिय, मन्नसि ता तुज्झ कम्मणाणीओ । एसो कुट्ठिअराणो, होउ वरो किं वियप्पेण ? ॥१३४॥
हसिऊण भणइ बाला, आणीओ मज्झ कम्मणा जो उ । सो चेव मह पमाण, राओ वा रकजाओ वा ॥१३५॥
कोवघेण रन्ना, सो उबरराणओ समाहूओ । भणिओ य तुममिमीए, कम्माणीओसि होसु वरो ॥ १३६ ॥

सहसाऽकस्मात्तस्मात् स्थानात् वलित्वा राजा निजावासे–स्वमन्दिरे आगत., आगत्य च ता मदनसुन्दरीनाम्नीं निजां पुत्रीं आह्वयति ॥ १३२ ॥ आहूय च किं कथयतीत्याह—हु इत्यनादरे अरे ! त्व अद्यापि यदि मम प्रसादसम्भव मत्प्रसादोत्पन्न सुख मन्यसे तर्हि ते–तुभ्य उत्तम–प्रधान वरं–भर्तारं परिणाय्य भूरि–प्रचुर धन दमि (दामि)–प्रयच्छामि ॥ १३३ ॥ यदि पुनर्निजकर्म्मैव त्व मन्यसे तर्हि तव कर्म्मणा आनीत एष कुष्ठिकराजो वरो भवतु, किं विकल्पेन ?, इह विकल्पस्य–विचारस्य किमपि कार्यं नास्तीत्यर्थ ॥ १३४ ॥ एतन्नृपवच श्रुत्वा मदनसुन्दरीबाला हसित्वा भणति, यो मम कर्म्मणा आनीत स एव वरो मम प्रमाण राजा वा भवतु रङ्कजातो–रङ्कपुत्रो वा भवतु ॥ १३५ ॥ एतत्कन्यावच श्रुत्वा कोपान्धेन राज्ञा स उम्बरराज समाहूत –स्वसमीपदेशे आकारितो भणितश्च। किं भणित इत्याह–त्व अस्या कर्म्मणा आनीतोऽसि तेन त्व अस्या वरो भव ॥ १३६ ॥

तेणुत्त नो जुत्त, नरवर ! सुत्तुपि तुज्झ इय वयण । को कणयरयणमाल, बधइ कागस्स कठमि ? ॥ १३७ ॥
एगमह पुव्वकय, कम्म भुजेमि एरिसमणज्ज । अवर च कहमिमीए, जम्म बोलेमि जाणतो ? ॥ १३८ ॥
ता भो नरवर ! जइ देसि कावि ता देसु मज्झ अणुरूव । दासिविलासिणिधूय,नो वा ते होउ कल्लाण ॥१३९॥
तो भणइ नरवरिंदो, भो भो महनदणी इमा किंपि । नो मज्झकय मन्नइ, नियकम्म चेव मन्नेइ ॥ १४० ॥
तेण चिअ कम्मेण, आणीओ तसि चेव जीइ वरो । जइ सा निअकम्मफल, पावइ ता अम्ह को दोसो " ॥१४१॥

एतन्नृपवच श्रुत्वा तेन उम्बरराजेनोक्त हे नरवर ! हे राजन् ! तव इत्येतद्वचन वक्तुमपि न युक्तम् । कथमित्याह–काकस्य-निन्यपक्षिण कण्ठे-गले कनकरत्नमाला-स्वर्णमणिमालां को बध्नाति? न-कोपीत्यर्थ । एतावताह काकतुल्य इय स्वर्णमालातुल्या अतो नेय मद्योग्येतिभाव ॥ १३७ ॥ एकं तु अह ईदृशं अनार्यं अशुभं पूर्वकृत कर्म्म भुञ्जामि, अपर च अन्यत् पुनर्जानन् सन् अह-अस्या उत्तमकन्याया जन्म कथ बोडयामि, ममैतत्कार्य कर्तुमयुक्तमितिभाव ॥ १३८ ॥ ततस्तस्मात् भो नरवर ! हे राजन् ! यदि कामपि कन्यां ददासि तर्हि–ममाऽनुरूपां–मम योग्यां दास्या विलासिन्या वा पुत्रीं दत्स्व–देहि, वाऽथवा ईदृशी कापि न भवेत्तर्हि ते–तव कल्याणं भवतु मम सृतमित्यर्थ ॥१३९॥ ततो नरवरेन्द्रो राजा भणति, भो भो उम्बरराज ! इय मम पुत्री मत्कृत किमपि न मन्यते, केवल निजकर्मैव मन्यते, स्वकृतं कर्म्मैव प्रमाणीकरोतीत्यर्थ ॥ १४० ॥ तेनैव कर्म्मणा त्वमेव अस्या वरो–भर्त्ता आनीतोऽसि साम्प्रतमिह प्रापितोऽसि, यदि सा इय मत्पुत्री निजकर्म्मण फल प्राप्नोति तर्हि अस्माकं को दोष ? ॥ १४१ ॥

तं सोऊण बाला, उद्ठित्ता झत्ति उबरस्स कर । गिण्हइ नियकरेण, विवाहलग्गव साहती ॥ १४२ ॥

सामतमतिअतेउरीउ वारंति तहवि सा बाला । सरयससिसरिसवयणा, भणइ सई सुम्चिअपमाण ॥ १४३ ॥

एगत्तो माउलओ, एगत्तो रुप्पसुदरी माया । एगत्तो परिवारो, रुयइ अहो केरिसमजुत्त ? ॥ १४४ ॥

तहवि न नियकोवाओ, वलेइ राया अईव कढिणमणो । मयणावि मुणियतत्ता, निअसत्ताओ न पचलेइ॥१४५॥

तन्नृपवच श्रुत्वा मदनसुन्दरीबाला कन्या तु उत्थाय झटिति–शीघ्र निजकरेण–स्वहस्तेन उम्बरराजस्य कर गृह्णाति, किं कुर्वतीव ? विवाहलग्नं साधयन्तीव ॥ १४२ ॥ सामन्ता –मन्त्रिण. अन्त पुर्योन्त:पुरनार्यश्च वारयन्ति, तथापि सा बाला शरच्छशिसदृशवदना–शरचन्द्रतुल्यमुखी सती भणति, मम एष एव वर' प्रमाण नान्येन कार्यमित्यर्थ. ॥ १४३ ॥ तस्मिन्नवसरे एकत.–एकस्यां दिशि मदनसुन्दर्या मातुलो–मातुर्भ्राता पुण्यपालो रोदिति, एकस्यां दिशि रूप्यसुन्दरीमाता रोदिति, तथा एकत परिवारस्तत्परिकरो रोदिति, अहो ! इद कीदृशमयुक्त कार्यं जातमिति चिन्तयन्तस्ते सर्वे रुदन्तीत्यर्थ ॥ १४४ ॥ तथापि राजा निजकोपात्–स्वकृतक्रोधाच्च वलते–न निवर्तते इत्यर्थ , कीदृशो राजा ? अतीव–अत्यन्त कठिन–कठोरं मनो यस्य स कठिनमना , मदनसुन्दर्यपि च निजसत्त्वात्स्वधैर्याच्च प्रचलति । कीदृशी सा ? मुणित–ज्ञात तत्त्व यया सा मुणिततत्त्वा ॥ १४५ ॥

त वेसरिमारोविअ, जा चलिओ उबरो निअयठाण । ता भणइ नयरलोओ, अहो अजुत्त अजुत्तति ॥ १४६ ॥
एगे भणति धिद्धी, रायाण जेणिम कयमजुत्त । अन्ने भणति धिद्धी, एय अइदुव्विणीयति ॥ १४७ ॥
केवि निंदति जणणिं, तीए निंदति केवि उवझाय । केवि निंदति दिव्व, जिणधम्म केवि निंदति ॥ १४८ ॥
तहवि हु वियसियवयणा, मयणा तेणुबरेण सह जति । न कुणइ मणे विसाय, सम्म धम्म वियाणती ॥१४९॥
उबरपरिवारेण, मिलिएण हरिसनिब्भरगेण । निअपहुणो भत्तेण, विवाहकिच्चाइ विहियाइ ॥ १५० ॥

तदनन्तरं स उम्बरो राजा तां कुमारीं वेसरीमश्वतरीमारोप्य यावन्निजक स्थान प्रति चलित, तावत् नगरलोक इति इत्थ भणति, किं इत्याह–अहो अयुक्त अयुक्तं इद कार्यमिति शेष ॥ १४६ ॥ तस्मिन्नवसरे एके केचिल्लोका भणन्ति राजान धिक् धिक्–धिक्कारोऽस्तु इत्यर्थ । राज्ञा इद अयुक्त कार्यं कृतम्, अन्ये पुनर्लोका इति भणन्ति, एतां अतिदुर्विनीतां कन्या धिग्धिग् यया पितुर्वचन नाङ्गीकृतमित्यर्थ ॥ १४७ ॥ पुनस्तदा केपि लोकास्तस्या कन्याया जननीं मातर निन्दन्ति, केपि तस्या उपाध्याय पाठक निन्दन्ति, केपि दैवं भाग्य निन्दन्ति, केपि पुनर्जिनधर्मं निन्दन्ति ॥ १४८ ॥ 'हु' इति निश्चित तथापि मदनसुन्दरी कन्या विकसित–विकस्वरं वदन मुख यस्या सा एवम्भूता सती तेन उम्बरेण सह यान्ती–गच्छन्ती, मनसि विषाद न करोति, अत्र हेतुगर्भ विशेषणमाह–कीदृशी सा ? यत सम्यक् धर्मं विजानन्ती ॥ १४९ ॥ ततो मिलितेन उम्बरपरिवारेण विवाहकृत्यानि–विवाहकार्याणि विहितानि–कृतानि कीदृशेन उम्बरपरिवारेण–हर्षनिर्भराङ्गेन हर्षेण निर्भराङ्गेन निर्भर–भृत अङ्ग यस्य स तेन, पुन कीदृशेन ? निजप्रभो –स्वस्वामिनो भक्तेन ॥ १५० ॥

इत्तो–रन्ना सुरसुंदरीइ वीवाहणत्थमुज्झाओ । पुट्ठो सोहणलग्ग, सो पभणइ राय ! निसुणेसु ॥ १५१ ॥
अज्ज चिय दिणसुद्धी, अत्थि पर सोहण गय लग्ग । तइया जइया मयणाइ, तीइ कुट्ठिअकरो गहिओ ॥१५२॥
राया भणेइ हु हु, नाओ लग्गस्स तस्स परमत्थो । अहुणावि हु निअधूय, एय परिणावइस्सामि ॥ १५३ ॥
रायाएसेण तओ, खणमित्तेणावि विहिअसामग्गि । मतीहिं पहिट्ठेहिं, विवाहपव्व समाढत्त ॥ १५४ ॥
त च केरिस— ऊसिअतोरणपयडपडाय, वज्जिरतूरगहीरनिनाय ।
नच्चिरचारुविलासिणिघट्ट, जयजयसद्दकरतसुभट्ट ॥ १५५ ॥

इत• पर राज्ञा सुरसुन्दर्या द्वितीयपुत्र्या विवाहकरणार्थं उपाध्यायोऽध्यापक शुभलग्न पृष्टस्तदा स प्रभणति–वदति, हे राजन् त्वं शृणु ॥ १५१ ॥ अद्यैव दिनशुद्धिरस्ति, इद सम्पूर्णमपि दिन शुद्धमस्तीत्यर्थ, पर केवल शोभन लग्न तु तदा गत यदा तया मदनसुन्दर्य्या कुष्ठिकस्य उम्बरराजस्य करो गृहीत ॥ १५२ ॥ हु हु इत्यनादरे । ततो राजाऽनादरेण भणति, ज्ञातस्तस्य लग्नस्य परमार्थो यत्तया कुष्ठी परिणीत इति भाव, अधुनापि च–साम्प्रतमपि च एतां निजपुत्रीं परिणापयिष्यामि ॥ १५३ ॥ ततस्तद-नन्तर राजादेशेन–नृपाज्ञया प्रहृष्टैर्हर्षपूरितैर्मन्त्रिभिरमात्यै विवाहपर्व–विवाहोत्सव समारब्ध–आरब्ध, कीदृश विवाहपर्व ? क्षण-मात्रेणापि विहिता–कृता सामग्री यस्य तत् विहितसामग्रि ॥ १५४ ॥ तच्च विवाहपर्व कीदृशं ?–तदाह–उच्छ्रितेषु–ऊर्ध्वीकृतेषु तोरणेषु प्रकटा पताका–ध्वजा यत्र तत् तथोक्त, पुनर्वाद्यमानानि यानि तूरा(र्या)णि–वादित्राणि तेषां गम्भीरो निनादो–ध्वनिर्यत्र

पट्टसुयघडओलिज्जमाल, कुरकपूरतबोलविसाल ।
धवलदिअतसुवासिणिवग्ग, वुड्ढपुरंधिकहिअविहिमग्ग ॥ १५६ ॥
मग्गणजणदिज्जतसुदान, सयणसुवासिणिकयसम्माण ।
मद्दलवायचउप्फलल्लोय, जणजणवयमणि जणियपमोय ॥ १५७ ॥

तत्तथोक्त, तथा नृत्यन्–नृत्यं कुर्वन् चारु–मनोज्ञा (नाम्) विलासिनीना–विलासवत्स्त्रीणां वेश्यादीनां 'घट्टत्ति' समुदायो यत्र तत्तथोक्त, पुनर्जयजयशब्द कुर्व्वन्त सुष्ठु–शोभना मह्ना–मह्नलोका यत्र तत्तथोक्त ॥ १५५ ॥ तथा–पट्टांशुकैर्विविधवर्णोत्तमवस्त्रैरन्वितो मण्डपो यत्र तत् तथा, कुरसभादि तद्भोजनोपरि दीयमानानि कर्पूरेण–घनसारेण युक्तानि यानि ताम्बूलानि–नागवल्लीपत्राणि तानि विशालानि–विस्तीर्णानि यत्र तत् तथा, धवलं ददानो–मङ्गलगानं गायन् सुवासिनीनां–वधूटीना वर्ग–समूहो यत्र तत् तथोक्तं, तथा–वृद्धा –पुरन्ध्र्य पुत्रदुहित्रादिपरिवारयुक्ता साध्व्य स्त्रियस्ताभि कथितो विधिमार्गो–विवाहविधानमार्गो यत्र तत् तथोक्तम् ॥ १५६ ॥ तथा–मार्गणजनेभ्यो– याचकलोकेभ्यो दीयमान सुष्ठु–शोभन दान यत्र तत्, पुन स्वजनानां–स्वकीयसम्बन्धिलोकानां सुवासिनीनां च कृत सन्मानो–बहुमानो यत्र तत् तथा, मार्दलाना–मृदङ्गानां वादो–वादन तेन चतुर्गुणा लोका यत्र तत् तथा, जनानां–पौरलोकानां जनपदानां च देशवासिलोकानां मनसि–चित्ते जनित–उत्पादितः प्रमोदो–हर्षो यत्र–तत् तथा ॥ १५७॥

कारिअसुरसुदरिसिणगारँ, सिंगारिअअरिदमणकुमार ।
हथलेवइ मडलविहिचग, करमोयणकरिदाणसुरग ॥ १५८ ॥

एव विहिअविवाहो, अरिदमणो लद्धहयगयसणाहो । सुरसुदरीसमेओ, जा निग्गच्छइ पुरवरीओ ॥ १५९ ॥
ता भणइ सयललोओ, अहोऽणुरूवो इमाण सजोगो । धन्ना एसा सुरसु–दरी य जीए वरो एसो ॥ १६० ॥
केवि पससति निव, केवि वर केवि सुदरिँ कन्न । केवि तीएँ उज्झाय, केवि पससति सिवधम्म ॥ १६१ ॥

तथा कारित सुरसुन्दर्या कन्यायाः शृङ्गारो यत्र तत्, पुन. शृङ्गारितोऽरिदमनकुमारो यत्र तत्, पुन पाणिग्रहणसमये ब्राह्मणेन क्रियमाणो यो मण्डलविधिर्लोकप्रसिद्धस्तेन चङ्ग–रम्य, तथा करमोचने–हस्तमोचनसमये राज्ञा कृत हस्त्यश्वादिदान तेन सुरङ्गम् ॥१५८॥ एवमुक्तप्रकारेण विहित.–कृतो विवाहो यस्य स तथा, लब्धा –प्राप्ता ये हया–अश्वा गजाश्च–हस्तिनस्तैः सनाथ'–सहित', पुन सुरसुन्दर्या–निजस्त्रिया समेतो–युक्तोऽरिदमनकुमारो वर्या पुर्या यावदुज्जयिनीतो निर्गच्छति ॥१५९॥ तावत् सकलोऽपि नगरलोको भणति, अहो ! इति आश्चर्येऽनयोः–कुमारकन्ययोरनुरूपो–योग्य संयोग'–सम्बन्ध. सञ्जात इति शेष', च पुन एपा सुरसुन्दरीकन्या धन्यास्ति यस्या एपोऽरिदमनकुमारो वरो–भर्ता जात' ॥ १६० ॥ पुन. तदवसरे केऽपि लोका. राजानं प्रशसन्ति, केऽपि वरं–कुमार प्रशंसन्ति, केऽपि सुरसुन्दरीं कन्यां प्रशंसन्ति, केऽपि लोकास्तस्याः–कन्याया उपाध्याय–गुरुं प्रशसन्ति, केऽपि पुन. शिवधर्मं प्रशसन्ति ॥ १६१ ॥

अमावस्या-पूर्णिमातिथिषु पर्युषणापर्वणि कल्याणकतिथिषु च सति सामर्थ्ये सत्यवकाशे पौषधं कार्यं शङ्खादिवत्, तद-भावेऽपि न कर्त्तव्योऽपि व्रतकाधिक्यवत्, परमेता अष्टम्यादितिथयः पौषधकर्त्तव्यताया सन्ति, न अन्या ।

ननु-यदि पर्वदिवसेषु एव पौषधकरणं न अन्येषु, तदा नन्दमणिकारेण श्रीज्ञाताधर्मकथाया, उदायनभूपेन श्रीभगवत्या कथं पर्वान्यदिवसेषु अपि पौषधो व्यधायि ? । तथा च तत्पाठः-(पृष्ठम् १७८)

"तएण नदमणिआरसेट्ठी अण्णया गिम्हकालसमयंसि जेट्ठामूलमासम्मि अट्ठमभत्त परिगिण्हति परिगिण्हिसा पोसहसालाए जाव विहरति" इति । श्रीज्ञाताधर्मकथायां त्रयोदशाध्ययने । भगवत्यामुदायनपाठो यथा-(पृष्ठम् ६१८)

"तएण से उदायणे राया अण्णयाकयाइ जेणेव पोसहसाला पोसहिए एगे अबीए पक्खिअ पोसहं पडिजागरमाणे विहरति ।" इति ? ।

उच्यते-यद्यपि अत्र उभयत्र आलापकेषु पर्वपद नास्ति, तथापि अशीत्यधिकैकादशशत ११८० प्रमितवर्षे वर्त्तमाने श्रीविजयसिंहाचार्यकृताया श्रीश्रावकप्रतिक्रमणचूर्णौ नन्दमणिकारस्य अधिकारे पर्वपदमरूपितमस्ति । तथाहि-

"पव्वदियम्मि कम्मि, अट्ठमभत्त पगिण्हइ नंदो । पोसहसाल पविसइ, पोसहमादाय वट्टइ अ ॥" इति ॥ १ ॥

तथा उदायनभूपाधिकारेऽपि श्रीउत्तराध्ययनचूर्णौ (पृष्ठम् ६१८) 'पक्खिअ पोसह'मिति पाठेन पक्षिकायां पर्वभूतायां पौषधकरणं सूचित, तथा च तत्पाठः—

कारे, तथाहि—"जाव नियमं पज्जुवासइ" इति, नियमश्च जघन्यतो मुहूर्त्तमानः, उत्कृष्टतोऽहोरात्रमानकाल इति, पौषधश्च शास्त्रे त्रिधा व्याख्यातः, तथाहि—'पडिपुन्न पोसह सम्म अणुपालेमाणे'त्ति, प्रतिपूर्णमहोरात्र यावत्तृतीयाङ्गे तृतीयाश्वासाधिकारे (पृष्ठम् २३७) अन्यत्रापि ग्रन्थे 'पडिपुण्ण'पदव्याख्याने अयमेवार्थो व्याख्यातोऽस्ति, ततोऽयमहोरात्रमान उत्कृष्टः पौषधः १, तथा—'पोसहं दुहओ पक्खं एगरायं न हायए।' इत्यत्र रात्रिग्रहणं दिवाव्याकुलतया कर्त्तुमशक्नुवन् रात्रावपि पौषधं कुर्यादिति श्रीउत्तराध्ययनवृत्तौ व्याख्यानात् रात्रिपौषधोऽपि द्वितीय २, सर्वगच्छीयगीतार्थाचरणया साम्प्रत क्रियमाणो दैवसिकपौषधस्तृतीयः ३, ननु—भवतु नाम सुबाहोरधिकारेऽपि पर्वान्यदिवसेषु पौषधप्रतिषेधः, पर अभयकुमारेण पर्वदिनानि विनापि पौषधत्रयं व्यधायि। तत्र का वार्त्ता ?, तथा च श्रीज्ञातासूत्रे (३० पत्रे) तत्पाठः—

"अत्थि णं मज्झ सोहम्मकप्पवासी पुव्वसगतिए देवे महिड्ढीए जाव महासोक्खे, त सेय खलु मम पोसहसालाए पोसहियस्स बंभचारिस्स उम्मुक्कमणिसुवण्णस्स ववगयमालावण्णगविलेवणस्स निक्खित्तसत्थमुसलस्स एगस्स अबीयस्स दब्भसंथारोवगयस्स अट्ठमभत्त परिगिण्हित्ता पुव्वसगतिय देवं मणसि करेमाणस्स विहरित्तए, तते ण पुव्वसगतिए देवे मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयारूवे अकालमेहेसु डोहल विणेहिति, एवं संपेहेति संपेहित्ता जेणेव पोसहसाला तेणामेव उवागच्छति उवागच्छित्ता पोसहसाल पमज्जति, पमज्जित्ता उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेइ पडिलेहित्ता दब्भसंथारग पडिलेहेइ पडिलेहित्ता दब्भसंथारग दुरूहइ दुरूहित्ता अट्ठमभत्त परिगिण्हइ परिगिण्हित्ता पोसहसालाए पोसहिए बंभचारी जाव पुव्वसगतिय देव मणसि करेमाणे करेमाणे चिट्ठइ" इत्यत्र। उच्यते—अत्र 'अट्ठमभत्त'इति पाठात् अभयकुमारेणापि,

तस्मात् हेतोः पर्वणि एव तस्य पौषधव्रतस्य निष्ठा अपि परिपूर्णत्वं समभूत्, तथा च नन्दस्य पर्वणि एव पौषधग्रहणनिष्ठे समुपदिष्टे । अथवा सन्देहदोळावलीबृहद्वृत्तौ तु श्रीजिनपालोपाध्यायाः ज्येष्ठपूर्णिमायां पौषधव्रतनिष्ठत्वं प्राहुः (पत्रं ५८) तथाहि–"जेट्ठा–मूलंसि मासंसी" इति, ज्येष्ठपूर्णिमायां अष्टमे भक्ते तृतीयदिवसे पर्वणि एव त्रिदैवसिके प्रतिमान्त्यरात्रौ कायोत्सर्गवत् पौषधस्य संभवात्, कथं नन्दमणिकारदृष्टान्तेन पौषधस्य अपर्वानुष्ठानता ? इति, अत्र एकत्रनिष्ठाकालः चतुर्दश्याम् अन्यत्र तु पञ्चदश्यां, ततः कथं न विरोधः ? उच्यते–भवतु नाम चतुर्दशी वा पूर्णिमा वा निष्ठाकाले, परं उभयत्राऽपि पर्वदिनत्वं तु वर्तते एव, अस्माकं न अत्र विचारः । ननु विपाकसूत्रे प्रथमाध्ययने (पृष्ठम् ९३) "तते ण से सुबाहुकुमारे अन्नया कयाइ चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता पोसहसालं पमज्जति, पमज्जित्ता उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेति, पडिलेहित्ता दब्भसंथारगं संथरति, संथरित्ता दब्भसंथारं दुरूहइ, दुरूहित्ता अट्ठमभत्तं पगिण्हइ, पगिण्हित्ता पोसहसालाए पोसहिते अट्ठमभत्तिए पोसहं पडिजागरमाणे विहरति" इति ॥ सुबाहुकुमारस्य अष्टमः प्रतिपादितः तत्र किं समाधानं ? उच्यते–श्रूयतां नन्दमणिकारोदायनवत् सुबाहोरपि अष्टमस्य संभवात् न दोषः, सुबाहुः अन्यदा कस्मिंश्चित् काले अष्टमेन उपवासत्रयेण युतः सन् चतुर्दशी–अष्टमी–उद्दिष्टा पौर्णमासी–रूपपर्वदिवसेषु पौषधव्रतं अकार्षीत् । पर्वदिनतः प्रागुपवासद्वयं कृत्वा, चतुर्दश्यादिपर्वदिने तु पौषधव्रतं, न तु चतुर्दश्यादिपर्वदिन आदितः कृत्वा एकदिनकृतं पौषधं दिनत्रयेऽपि अनुवर्त्तयति, सर्वगच्छीयगीतार्थानां अनभिमतत्वात्, यतः–पौषधस्तु सामायिकाऽवियुतः सामायिककालस्तु उत्कृष्टतोऽपि अष्टप्रहरिकः, यदुक्तं–श्रीश्रीचन्द्रसूरिभिः प्रतिक्रमणसूत्रवृत्तौ सामायिकादि-

प्रतिलाभित' तद्दिने तस्याः दिनत्रय अभक्तार्थत्वात् अष्टमोऽभूत् । २ ननु–भवतु नाम श्रीअभयकुमारस्य सावद्ययोगप्रवृत्तत्वेन अष्टमे पौषधव्रतत्वाभावः, पर श्रीविजयेन राज्ञा सप्तदिवसानि यावत् पौषधः पालित श्रूयते, तत्र किं कर्तव्य ?, तदधिकारः श्रीवसुदेवहिण्डौ एकोनविंशतिलम्भे (पत्र ३१६) यथा "चउत्थेण भणियं–माहणेण आइट्ठो पोयणाहिवस्स असणिघाओ, न सिरिविजयस्स रण्णो, त सेय णे सत्तरत्त अण्ण राय ठावेउ ति, ततो निमित्तिणा भणिय, 'साहु भो महामती ! सि, एयं कायव, रण्णो जीवियपरिरक्खणनिमित्त अहमवि आगओ, नियमजुत्तो राया नित्थरिहिति उवसग्ग, निमित्तिवयण च परिग्गहेऊण राया जिणायतणमागतो सत्तरोहो, मतीहि वि से वेसमणपडिमा पगइसमग्गेहिं अहिसित्ता सेविज्जए रायोवयारेण, सिरिविजयो वि दब्भसथारोपगतो सत्तरत्त परिचत्तारभपरिग्गहो बभयारी सविग्गो पोसह पालेइ, सत्तमे य दिवसे समततो मेहा पाउब्भूया सलिलभारग(रु)या पवणवेगपवित्थरमाणा विज्जुज्जोइयपासा भयजणणनिट्ठुरगज्जियसणा, ततो मज्झण्हकाले महयासद्देण पासाद वेसमणपडिम च चुण्णयती इदासणी पडिया, राया अभिनदिओ पगतीहिं 'नमो अरिहताणं' ति निग्गतो पोसहसालाओ त्ति, "विट्ठो य तुट्ठेण परियणेण" इति। अत्र उच्यते–श्रीविजयेन सप्ताह पौषधो गृहीत', स च इहलोकार्थं विद्युत्पातलक्षणोपद्रवटालनबुद्ध्या प्रवृत्तत्वात् पर न मोक्षार्थं, तत्राऽपि न स पौषधो व्रतरूप सोच्चारः तस्य, यतस्तेन मध्याह्ने एव विद्युत्पातानन्तर 'नमोऽर्हद्भ्यः' इत्युक्त्वा पौषध पारयित्वा तदैव पौषधागारान्निर्गमनं व्यधायि, पौषधपारणविधेस्तु भिन्नत्वात्, अहोरात्रावसाने च पौषधपारणसमणयत्वाच्च न व्रतरूप' पौषधः, तेन सप्ताह पौषधविधानेनाऽपि न दूषणावकाश' ॥ ४ ॥

'अष्टमभत्त' अष्टमभक्तशब्दवाच्यम् उपवासत्रयमेव व्यधायि, न पौषधव्रतत्रयम्, कुतः ?, पौषधव्रते तु "तम्मिकए पढइ पोत्थय वा वाएइ, धम्मज्झाणं वा झीआयइ, जहा एए साधुगुणा अहं मन्दभग्गो न समत्थो धारेउ एवमाइ विभासेति ।" श्रीआवश्यकचूर्णिपाठात् (पृष्ठम् ३०४) धर्मध्यानं ध्यातव्यम् । अनेन तु अकालमेघवृष्ट्याशंसारूपसावद्यव्यापारचिंतनेन आर्तध्यानं ध्यातम् । ततो नेदं व्रतरूपपौषधत्रयं, तदङ्गीकारे तु श्रीज्ञाताया षोडशाध्ययने (पत्र २१४) "तते णं से पउमनाभे राया कच्छुल्लनारयस्स अतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म दोवईए देवीए रूवे य मुच्छिए दोवईए अज्झोववन्ने जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छई उवागच्छित्ता पोसहसालं जाव पुव्वसंगइअं देवं" इत्यादिपाठात् पद्मनामकृतपौषधस्यापि पौषधव्रतत्वापत्तिः, सा च न कस्यापि इष्टा, जिनधर्मवासनाया अपि तस्मिन् अभावात् । एवं ठाणावृत्तौ–"समयम्मि तओ कण्हो, पोसहसालाए अट्ठमं भत्तं । हरिणेगमेसिदेवं, मणम्मि काउं पगिण्हेइ ॥ १ ॥ उम्मुक्कमणिसुवण्णो, ववगयमाला विलेवणो तत्थ । तणसंथारनिसण्णो, चिट्ठइ जा अट्ठमं पुण्णं ॥ २ ॥" इति वाक्यात् श्रीकृष्णस्य पौषधशब्दवाचकत्वमष्टम मात्रैव दर्शितम्, अपि वा सो जनाभावे प्रत्याख्यानमन्तरेणाऽपि तृतीयदिने अष्टमं स्यादेव, यदुक्तं–श्रीहरिभद्रसूरिभिः श्रीआवश्यकवृत्तौ (पत्र २२२), तथाहि–"तत्थ सामी पोसबहुलपाडिवए इमं एयाणुरूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ चउव्विहं दव्वओ १ खित्तओ २ कालओ ३ भावओ ४ दव्वओ कुम्मासे सुप्पकोणेणं, खित्तओ एलुयं विक्खंभइत्ता, कालओ नियत्तेसु भिक्खायरेसु, भावओ जहा रायधुया दासत्तणं पत्ता, नियलबद्धा, मुंडियसिरा, रोयमाणी, अट्ठमभत्तिया एवं कप्पति सेसं न कप्पति" अत्र चन्दनया न स्वयं अष्टमप्रत्याख्यानं कृतं, १ नाऽपि कस्याऽपि समीपे प्रत्याख्यातं, २ किन्तु यद्दिने भगवान्

सूत्रकृताङ्गवृत्तौ 'उद्दिष्टा'शब्दव्याख्याने कल्याणकदिवसेषु पौषधो दर्शित ॥ ३ ॥ सर्वगच्छीयगीतार्थाचरणया च उपधानतपोवहने पौषधग्रहण लिखितम् ॥ ४ ॥ एवमेतैः सूत्रवृत्त्याद्यक्षरैः इमाभि पूर्वोक्तयुक्तिभि' अनेन च गुरुसम्प्रदायेन पौषधग्रहणनिरूपण लिखितम् । पुनर्यज्ञगवदुक्त तत्प्रमाणमिति ॥

॥ इति पर्वदिने एव पौषधाचरणाधिकारः ॥ २ ॥

ननु-श्रीमहावीरदेवस्य कैश्चित् कल्याणकपञ्चकमेव प्रोच्यते, श्रीखरतरगच्छे तु कल्याणकषट्क, तत्र किं सिद्धान्तादिसाक्ष्यम् ? उच्यते—सर्वत्र-सूत्र-चूर्णि-वृत्तिस्वपरगच्छीयप्रकरणादौ कल्याणकषट्कस्य एव प्ररूपणात् कल्याणकषट्कमेव ।

यदुक्तं-श्रीआचाराङ्गद्वितीयश्रुतस्कन्धे भावनाऽध्ययने-(पत्र ३८७) तथाहि—

"तेण कालेण तेण समएण समणे भगव महावीरे पचहत्युत्तरे यावि होत्था, तंजहा-हत्थुत्तराहिं चुए चइत्ता गब्भ वक्कंते १ हत्थुत्तराहिं गब्भाओ गब्भ साहरिए २ हत्थुत्तराहिं जाए ३ हत्थुत्तराहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ४ हत्थुत्तराहिं कसिणे पडिपुण्णे निव्वाघाए निरावरणे अणते अणुत्तरे केवलवरनाणदसणे समुप्पण्णे ५ साइणा भगव परिनिव्वुडे० ६ ।" इति सूत्रम् । तद्वृत्तिरियम्-'तेण कालेण'मित्यादि 'तेन कालेने'ति दुःषमसुषमादिना 'तेन समयेन'इति विवक्षितेन विशिष्टेन कालेन सता उत्पत्त्यादिकमभूदिति सम्बन्धः । तत्र "पचहत्थुत्तरे आऽवि होत्था" इत्येवमादिना "आरोग्गारोग्ग पसूया" इत्येवमन्तेन ग्रन्थेन भगवतो श्रीवर्द्धमानस्वामिनो विमानच्यवन ब्राह्मणीगर्भाधानम् १ तत शक्रादेशात् त्रिशलागर्भसंहरण २ मुत्पत्ति ३ श्चाभिहिता , 'तत्थ पचहत्थुत्तरे होत्थ'त्ति, हस्त उत्तरो यासामुत्तरफाल्गु-

ननु–यदि पर्वदिवस १ कल्याणक २ पर्युषणापर्व ३ तिथिर्विना पौषधग्रहणं निषेधश्चक्रे। तर्हि उपधानतपोवाहनमध्ये किमिति पौषधग्रहणं सदा कार्यते ? उच्यते–अत्र यद्यपि महानिशीथादौ उपधाने सदा पौषधग्रहणं नोक्तं, तथापि सर्वगीतार्थैः सर्वगच्छीयगीतार्थसम्मततया सर्वेष्वपि सुविहितगच्छेषु नियततया स्वस्वोपधानदिनप्रमाणविधितया स्वस्वतपोयोगविधिप्रकरणेषु निबद्धं दृश्यते, तथैव च तद्गच्छीयोपासकैः क्रियते च। तथाहि–श्रावकश्राविकाणां तु एकस्मिन्नुपधानेऽव्यूढेऽपि गुर्वाज्ञया अनुज्ञानन्दी विधीयमाना दृश्यते, परमेतैरहोरात्रपौषधदिनानि पश्चादपि शीघ्रं सविशेषं पूरणीयानि, इति श्रीचन्द्रगच्छीय–श्रीअजितसूरयः त्रिसप्तत्यधिकद्वादशशत १२७३ वर्षकृते योगविधिप्रकरणे प्रोचुः । १ । पुनरपि पौषधग्रहणपुरस्सरं उपधानतपो विधेयमिति उपधानविधिरुच्यते, इति श्रीअभयदेवसूरिशिष्यपरमानन्दसूरिकृतसामाचारीग्रन्थे ।२। तथाहि "पौषधक्रिया तु यद्यपि महानिशीथे साक्षान्नोक्ता तथापि यथा साधोर्योगेषु आतिशायि क्रियावत्त्वसर्वमतीतम्, तथा श्राद्धानामपि उपधानेषु विलोक्यते" इति श्रीतपागच्छीयश्रीरत्नशेखरसूरिकृते श्रीआचारप्रदीपे (पत्रे १९) । ३ । एवं श्रीबृहद्गच्छीयसामाचार्याम् । ४ । श्रीमानदेवसूरिकृते कुलके । ५ । श्रीखरतरगच्छीय–श्रीजिनपतिसूरिकृतद्वादशकुलकवृत्तौ । ६ । श्रीजिनप्रभसूरिकृतविधिप्रपायाम् । ७ । अन्येष्वपि सामाचारीग्रन्थेषु, आचरणया उपधाने पौषधग्रहणं प्रमाणीकृतमस्ति, अत्राऽयं भावार्थः,–श्रीस्थानाङ्ग १ सूत्रकृताङ्ग २ श्रीउत्तराध्ययनलघुबृहद्वृत्ति ३ योगशास्त्रवृत्ति ४ श्रीऔपपातिकवृत्ति ५ ठाणावृत्ति ६ प्रमुखग्रन्थेषु पर्वदिवसेषु पौषधं प्रतिपादितः ॥ १ ॥ तथा–आवश्यकबृहद्वृत्ति १ श्रावकप्रज्ञप्तिवृत्ति २ पञ्चाशकचूर्णिवृत्ति ३ प्रमुखग्रन्थेषु पर्वाण्यदिवसेषु पौषधनिषेधः प्रत्यपादि ॥ २ ॥ तथा श्रीअभयदेवाचार्यकृत-

ननु—अत्र पूर्वलिखितालापकेषु क्वापि स्थानपदमुक्त, क्वापि च वस्तु पद, पर क्वापि च्यवनगर्भापहारादीना नामग्राह कल्याणकशब्दाभिधेयत्व स्पष्टमुद्दिष्टमस्ति ?, उच्यते—अनेकशः तत्प्रतिपादनात्, यदुक्त—श्रीचन्द्रकुलाम्बरतरणि—श्रीशीलभद्रसूरिः तच्छिष्यशाकम्भरीयनृपप्रतिबोधकश्रीधर्मघोषसूरिः—तच्छिष्यः श्रीयशोभद्रसूरि तच्छिष्यः श्रीदेवसेनगणिः तच्छिष्य श्रीपृथ्वीचन्द्रसूरि तद्विरचिते श्रीपर्युषणाकल्पटिप्पनके। तथाहि—"हस्त उत्तरो यासा ता, बहुवचन बहुकल्याणकापेक्ष" इति ॥ १ ॥ पुनरपि श्रीपर्युषणाकल्पाध्ययननिरुक्ते श्रीविक्रमात्तत्त्वगुणेन्दुवर्षे १३२५ निर्मिते श्रीविनयेन्दुसूरयोऽप्यचोचन्। तथाहि—"तेण कालेण" इति तस्मिन् काले यः पूर्वतीर्थङ्करै श्रीवीरस्य च्यवनादिहेतुर्ज्ञात कथितश्च, यस्मिन् समये तीर्थङ्करच्यवनं स एव समय उच्यते, समय—कालनिर्द्धारणार्थ, यतः—कालो वर्णोऽपि, तथा "हस्त उत्तरो यासा ता हस्तोत्तरा उत्तराफाल्गुन्यः, बहुवचन बहुकल्याणकापेक्ष, तस्या हि विभोश्च्यवनम् १, गर्भाद्गर्भसङ्क्रान्ति' २, जन्म ३, व्रत ४, केवल ५, चाऽभवत्, निर्वृतिस्तु स्वातौ ६, ॥ २ ॥ एव श्रीजिनप्रभसूरयोऽपि सन्देहविषौषध्या कल्याणकशब्द प्रोचु (पत्र २), तथाहि—

"पञ्चसु च्यवन १ गर्भापहार २ जन्म ३ दीक्षा ४ ज्ञान ५ कल्याणकेषु हस्तोत्तरा यस्य स तथा, च्यवनादीनि पञ्च उत्तरफाल्गुनिषु जातानि, निर्वाणस्य स्वातौ सम्भूतत्वादिति भावः" ॥ ३ ॥ एव श्रीसङ्घपट्टकबृहद्वृत्तौ (पत्र ५९६) चैत्र कूटीयप्रशस्तिसत्ककाव्यव्याख्यानावसरे। तथाहि—"क्षुद्राणा लिङ्गिना आचीर्णानि सिद्धान्तोक्तमपि श्रीमहावीरस्य षष्ठ गर्भापहारकल्याणक लङ्घनीयत्वात् न कर्त्तव्यमित्यादिका आचरणा" ॥ ४ ॥ पुनरेतत्सम्मतिप्रतिपादिकं गुणचन्द्रकृतप्राकृतवीरचरित्रम्

नीना वा हस्तोत्तराः तासु पञ्चसु स्थानेषु गर्भाधान १ संहरण २ जन्म ३ दीक्षा ४ ज्ञानोत्पत्ति ५ रूपेषु संवृत्ता, अतः पञ्चहस्तोत्तरो भगवानभूदिति ॥ १ ॥

एष-श्रीस्थानाङ्गसूत्रवृत्तौ पञ्चमस्थानप्रथमोद्देशकेऽपि (पत्र २०७), तथाहि-"समणे भगवं महावीरे पंचहत्थुत्तरे होत्था, तं जहा-हत्थुत्तराहिं चुए चइत्ता गब्भं वक्कंते १ हत्थुत्तराहिं गब्भाओ गब्भं साहरिए २ हत्थुत्तराहिं जाए ३ हत्थुत्तराहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ४ हत्थुत्तराहिं अणंते अणुत्तरे जाव केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने । ५ । साइणा भगवं परिनिव्वुडे । ६ ।" वृत्तिर्यथा—"समणे" इत्यादि, हस्तोपलक्षिता उत्तरा हस्तोत्तरा, हस्तो वा उत्तरो यासां ता हस्तोत्तराः-उत्तराफाल्गुन्यः, पञ्चसु च्यवनगर्भापहरणादिषु हस्तोत्तरा यस्य स तथा 'गर्भात्, गर्भस्थानात्, गर्भ'न्ति गर्भे=गर्भस्थानान्तरे, संहृतो=नीतः, निर्वृतस्तु स्वातिनक्षत्रे कार्त्तिकामावास्यायामिति ॥ २ ॥

इत्थमेव दशाश्रुतस्कन्धचूर्णावपि अष्टमाध्ययने कल्याणकपञ्चकमेवाभाणि । तथाहि—

"तेण कालेण तेण समएण जो भगवता उसभसामिणा सेसतित्थकरेहि य भगवओ वद्धमाणसामिणो चवणादीण छण्ह वत्थूण कालो णाओ दिट्ठो वागरिओ अ ।"

"तेण कालेण तेण समएण"त्ति कालान्तर्गतः समयः, समयादिश्च कालः सामण्णकालओ एस विसेसकालो, समओ हत्थस्स उत्तराओ जाओ हत्थुत्तराओ गगणं च पडुच्च हत्थुत्तरो आसिं ताओ हत्थुत्तराओ उत्तरफग्गुणीओ कह्नी महोरत्तस्स रत्तीए पुव्वरत्तावरत्तंसि" ॥ ३ ॥

ननु–अत्र पूर्वलिखितालापकेषु क्वापि स्थानपङ्कमुक्त, क्वापि च वस्तु पङ्क, पर क्वापि च्यवनगर्भापहारादीना नामग्राह कल्याणकशब्दाभिधेयत्वं स्पष्टमुद्दिष्टमस्ति ?, उच्यते–अनेकश तत्प्रतिपादनात्, यदुक्त–श्रीचन्द्रकुलाम्बरतरणि–श्रीशीलभद्रसूरिः तच्छिष्यशाकम्भरीयनृपप्रतिबोधकश्रीधर्मघोषसूरिः–तच्छिष्यः श्रीयशोभद्रसूरिः तच्छिष्यः श्रीदेवसेनगणि तच्छिष्यः श्रीपृथ्वीचन्द्रसूरिः तद्विरचिते श्रीपर्युषणाकल्पटिप्पनके। तथाहि—"हस्त उत्तरो यासा ताः, बहुवचन बहुकल्याणकापेक्ष" इति ॥ १ ॥ पुनरपि श्रीपर्युषणाकल्पाध्ययननिरुक्ते श्रीविक्रमात्सत्त्वगुणेन्दुवर्षे १३२५ निर्मिते श्रीविनयेन्दुसूरयोऽप्यबोचन् । तथाहि–"तेण कालेण" इति तस्मिन् काले यः पूर्वतीर्थङ्करैः श्रीवीरस्य च्यवनादिहेतुर्ज्ञात कथितश्च, यस्मिन् समये तीर्थङ्करच्यवन स एव समय उच्यते, समयः–कालनिर्द्धारणार्थः, यत –कालो वर्णोऽपि, तथा "हस्त उत्तरो यासा ता हस्तोत्तरा उत्तराफाल्गुन्यः, बहुवचन बहुकल्याणकापेक्ष, तस्या हि विभोश्च्यवनम् १, गर्भाद्गर्भसङ्क्रान्ति' २, जन्म ३, व्रत ४, केवल ५, चाऽभवत्, निर्वृतिस्तु स्वातौ ६, ॥ २ ॥ एव श्रीजिनप्रभसूरयोऽपि सन्देहविषौषध्या कल्याणकशब्द मोचुः (पत्र २), तथाहि–

"पञ्चसु च्यवन १ गर्भापहार २ जन्म ३ दीक्षा ४ ज्ञान ५ कल्याणकेषु हस्तोत्तरा यस्य स तथा, च्यवनादीनि पञ्च उत्तरफाल्गुनिषु जातानि, निर्वाणस्य स्वातौ समूतत्वादिति भावः" ॥ ३ ॥ एव श्रीसङ्घपट्टकबृहद्वृत्तौ (पत्र ५९६) चैत्र कूटीयप्रशस्तिसत्ककाव्यव्याख्यानावसरे । तथाहि–"क्षुद्राणा लिङ्गिना आचीर्णानि सिद्धान्तोक्तमपि श्रीमहावीरस्य षष्ठ गर्भापहारकल्याणकं लज्जनीयत्वात् न कर्त्तव्यमित्यादिका आचरणा" ॥ ४ ॥ पुनरेतत्सम्मतिप्रतिपादिकं गुणचन्द्रकृतप्राकृतवीरचरित्रम्

नीना ता हस्तोत्तराः ताश्च पञ्चसु स्थानेषु गर्भाधान १ संहरण २ जन्म ३ दीक्षा ४ ज्ञानोत्पत्ति ५ रूपेषु संवृत्ताः, अत पञ्चहस्तोत्तरो भगवानभूदिति ॥ १ ॥

एवं-श्रीस्थानाङ्गसूत्रवृत्तौ पञ्चमस्थानप्रथमोद्देशकेऽपि (पत्र ३०७), तथाहि-"समणे भगव महावीरे पंचहत्थुत्तरे होत्था, त जहा-हत्थुत्तराहिं चुए चइत्ता गब्भं वक्कते १ हत्थुत्तराहिं गब्भाओ गब्भं साहरिए २ हत्थुत्तराहिं जाए ३ हत्थुत्तराहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारिअं पव्वइए ४ हत्थुत्तराहिं अणते अणुत्तरे जाव केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने । ५ । साइणा भगव परिनिव्वुडे । ६ ।" वृत्तिर्यथा—"समणे"इत्यादि, हस्तोपलक्षिता उत्तरा हस्तोत्तरा, हस्तो वा उत्तरो यासा ता हस्तोत्तराः—उत्तराफाल्गुन्यः, पञ्चसु च्यवनगर्भापहरणादिषु हस्तोत्तरा यस्य स तथा 'गर्भात्, गर्भस्थानात्, गर्भ'न्ति गर्भे=गर्भस्थानान्तरे, संहृतो=नीतः, निर्वृतस्तु स्वातिनक्षत्रे कार्त्तिकामावास्यायामिति ॥ २ ॥

इत्यमेव दशाश्रुतस्कन्धचूर्णावपि अष्टमाध्ययने कल्याणकषट्कमेवमाणि । तथाहि—

"तेण कालेण तेणं समएण जो भगवता उसभसामिणा सेसतित्थंकरेहि य भगवओ वद्धमाणसामिणो चवणादीण छण्हं वत्थूण कालो णाओ दिट्ठो वागरिओ अ ।"

"तेण कालेण तेण समएण"ति कालान्तर्गत समयः, समयादिश्च कालः सामण्णकालओ एस विसेसकालो, समओ हत्थस्स उत्तराओ आओ हत्थुत्तराओ गगणं च पढुम हत्थुत्तरो आसि ताओ हत्थुत्तराओ उत्तरफग्गुणीओ छट्ठी अहोरत्तस्स रत्तीए पुव्वरत्तावरत्तंसि" ॥ ३ ॥

ननु—अत्र पूर्वलिखितालापकेषु क्वापि स्थानपङ्कमुक्त, क्वापि च वस्तु पङ्क, पर क्वापि च्यवनगर्भापहारादीना नामग्राह कल्याणकशब्दाभिधेयत्वं स्पष्टमुद्दिष्टमस्ति ?, उच्यते—अनेकशः तत्प्रतिपादनात्, यदुक्त—श्रीचन्द्रकुलाम्बरतरणि—श्रीशी-लभद्रसूरिः तच्छिष्यशाकम्भरीयनृपप्रतिबोधकश्रीधर्मघोषसूरिः—तच्छिष्यः श्रीयशोभद्रसूरिः तच्छिष्यः श्रीदेवसेनगणिः तच्छिष्यः श्रीपृथ्वीचन्द्रसूरिः तद्विरचिते श्रीपर्युषणाकल्पटिप्पनके। तथाहि—"हस्त उत्तरो यासा ता, बहुवचन बहुकल्याण-कापेक्ष" इति ॥ १ ॥ पुनरपि श्रीपर्युषणाकल्पाध्ययननिरुक्ते श्रीविक्रमात्तत्त्वगुणेन्दुवर्षे १३२५ निर्मिते श्रीविनयेन्दुसूरयोऽप्य-घोचन्। तथाहि—"तेण कालेण" इति तस्मिन् काले य पूर्वतीर्थङ्करैः श्रीवीरस्य च्यवनादिहेतुर्ज्ञात कथितश्च, यस्मिन् समये तीर्थङ्करच्च्यवन स एव समय उच्यते, समयः—कालनिर्द्धारणार्थः, यत —कालो वर्णोऽपि, तथा "हस्त उत्तरो यासा ता हस्तोत्तरा उत्तराफाल्गुन्यः, बहुवचन बहुकल्याणकापेक्ष, तस्या हि विभोश्च्यवनम् १, गर्भाद्गर्भसङ्क्रान्तिः २, जन्म ३, व्रत ४, केवल ५, चाऽभवत्, निर्वृतिस्तु स्वातौ ६, ॥ २ ॥ एव श्रीजिनप्रभसूरयोऽपि सन्देहविषौषध्या कल्याणक-शब्द प्रोचुः (पत्र २), तथाहि—

"पञ्चसु च्यवन १ गर्भापहार २ जन्म ३ दीक्षा ४ ज्ञान ५ कल्याणकेषु हस्तोत्तरा यस्य स तथा, च्यवनादीनि पञ्च उत्तर-फाल्गुनिषु जातानि, निर्वाणस्य स्वातौ संभूतत्वादिति भावः" ॥ ३ ॥ एव श्रीसङ्घपट्टकबृहद्वृत्तौ (पत्र ५९६) चैत्र कूटीयप्र-शस्तिसत्ककाव्यव्याख्यानावसरे। तथाहि—"क्षुद्राणां लिङ्गिना आचीर्णानि सिद्धान्तोक्तमपि श्रीमहावीरस्य षष्ठ गर्भापहारक ल्याणक लज्जनीयत्वात् न कर्त्तव्यमित्यादिका आचरणा" ॥ ४ ॥ पुनरेतत्सम्मतिप्रतिपादिक गुणचन्द्रकृतप्राकृतवीरचरित्रम्

नीना वा हस्तोत्तराः ताश्च पञ्चसु स्थानेषु गर्भाधान १ संहरण २ जन्म ३ दीक्षा ४ ज्ञानोत्पत्ति ५ रूपेषु संवृत्ता, अतः पञ्चहस्तोत्तरो भगवानभूदिति ॥ १ ॥

एवं-श्रीस्थानाङ्गसूत्रवृत्तौ पञ्चमस्थानप्रथमोद्देशकेऽपि (पत्र २०७), तथाहि-"समणे भगवं महावीरे पंचहत्थुत्तरे होत्था, तं जहा-हत्थुत्तराहिं चुए चइत्ता गब्भं वक्कंते १ हत्थुत्तराहिं गब्भाओ गब्भं साहरिए २ हत्थुत्तराहिं जाए ३ हत्थुत्तराहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ४ हत्थुत्तराहिं अणंते अणुत्तरे जाव केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने । ५ । साइणा भगवं परिनिव्वुडे । ६ ।" वृत्तिर्यथा-"समणे"इत्यादि, हस्तोपलक्षिता उत्तरा हस्तोत्तरा, हस्तो वा उत्तरो यासां ता हस्तोत्तराः-उत्तराफाल्गुन्यः, पञ्चसु च्यवनगर्भापहरणादिषु हस्तोत्तरा यस्य स तथा 'गर्भात्, गर्भस्थानात्, गर्भ'न्ति गर्भे=गर्भस्थानान्तरे, संहृतो=नीतः, निर्वृतस्तु स्वातिनक्षत्रे कार्त्तिकामावास्यायामिति ॥ २ ॥

इत्यमेव दशाश्रुतस्कन्धचूर्णावपि अष्टमाध्ययने कल्याणकषट्कमेवामाणि । तथाहि-

"तेण कालेण तेण समएण जो भगवता उसभसामिणा सेसतित्थकरेहि य भगवओ वद्धमाणसामिणो चवणादीण छण्हं वत्थूण कालो णाओ दिट्ठो वागरिओ अ ।"

"तेण कालेण तेण समएण"ति कालान्तर्गतः समयः, समयादिश्च कालः सामण्णकालओ एस विसेसकालो, समओ हत्थस्स उत्तराओ जाओ हत्थुत्तराओ गगणं च पडुच्च हत्थुत्तरो जासिं ताओ हत्थुत्तराओ उत्तरफग्गुणीओ छट्ठी अहोरत्तस्स रत्तीए पुव्वरत्तावरत्तसि" ॥ ३ ॥

ननु—अत्र पूर्वलिखितालापकेषु क्वापि स्थानषट्कमुक्त, क्वापि च वस्तु षट्क, पर क्वापि च्यवनगर्भापहारादीना नामग्राह कल्याणकशब्दाभिधेयत्व स्पष्टमुद्दिष्टमस्ति ?, उच्यते—अनेकधा: तत्प्रतिपादनात्, यदुक्त—श्रीचन्द्रकुलाम्बरतरणि—श्रीशीलभद्रसूरिः तच्छिष्यशाकम्भरीयनृपप्रतिबोधकश्रीधर्मघोषसूरिः—तच्छिष्य श्रीयशोभद्रसूरिः तच्छिष्यः श्रीदेवसेनगणिः तच्छिष्यः श्रीपृथ्वीचन्द्रसूरिः तद्विरचिते श्रीपर्युषणाकल्पटिप्पनके। तथाहि—"हस्त उत्तरो यासां ताः, बहुवचन बहुकल्याणकापेक्ष" इति ॥ १ ॥ पुनरपि श्रीपर्युषणाकल्पाध्ययननिरुक्ते श्रीविक्रमात्तत्त्वगुणेन्दुवर्षे १३२५ निर्मिते श्रीविनयेन्दुसूरयोऽप्यवोचन् । तथाहि—"तेण कालेण" इति तस्मिन् काले य पूर्वतीर्थङ्करे श्रीवीरस्य च्यवनादिहेतुर्ज्ञातः कथितश्च, यस्मिन् समये तीर्थङ्करच्यवन स एव समय उच्यते, समय —कालनिर्द्धारणार्थ , यतः—कालो वर्णोऽपि, तथा "हस्त उत्तरो यासा ता हस्तोत्तरा उत्तराफाल्गुन्यः, बहुवचन बहुकल्याणकापेक्ष, तस्या हि विभोश्च्यवनम् १, गर्भाद्गर्भसङ्क्रान्ति २, जन्म ३, व्रत ४, केवलं ५, चाऽभवत्, निर्वृतिस्तु स्वातौ ६, ॥ २ ॥ एव श्रीजिनप्रभसूरयोऽपि सन्देहविषौषध्या कल्याणकशब्द प्रोचुः (पत्र २), तथाहि—

"पञ्चसु च्यवन १ गर्भापहार २ जन्म ३ दीक्षा ४ ज्ञान ५ कल्याणकेषु हस्तोत्तरा यस्य स तथा, च्यवनादीनि पञ्च उत्तरफाल्गुनिषु जातानि, निर्वाणस्य स्वातौ सभूतत्वादिति भावः" ॥ ३ ॥ एव श्रीसङ्घपट्टकबृहद्वृत्तौ (पत्र ५९६) चैत्र कूटीयप्रशस्तिसत्ककाव्यव्याख्यानावसरे । तथाहि—"क्षुद्राणा लिङ्गिना आचीर्णानि सिद्धान्तोक्तमपि श्रीमहावीरस्य षष्ठ गर्भापहारकल्याणक लज्जनीयत्वात् न कर्त्तव्यमित्यादिका आचरणा" ॥ ४ ॥ पुनरेतत्सम्मतिप्रतिपादिक गुणचन्द्रकृतप्राकृतवीरचरित्रम्

॥ ५ ॥ प्रवचनसारोद्धार ॥ ६ ॥ श्रीआवश्यकसूत्रवृत्ति ॥ ७ ॥ प्रमुखग्रन्था बहव सन्ति, तदर्थिना ते निरीक्षणीयाः ।

अथ च श्रीपञ्चाशकसूत्रे श्रीहरिभद्रसूरिकृते (पत्र १५८) "इय ते दिणा पसत्था" इत्यादिगाथात्रिके श्रीमहावीरस्य कल्याणकपञ्चकमेवोक्तम्, श्रीअभयदेवसूरिणाऽपि तत्तथैव व्याख्यातम्, न तु नाऽस्तीति निषेधपरं वचनं, तदभिप्रायं तु त एव बहुश्रुता वा जानन्ति ।

अत्र प्रवादीत् कोऽपि प्रतिवादी–ननु च्यवनादीनां चतुर्णां कल्याणकत्वं भवतु, परं गर्भापहारस्य नेति । मैवम्—यत, उक्तपूर्ववक्ष्यमाणसूत्र-वृत्ति चूर्णि-प्रकरणादिषु कुत्रापि एवं विवेचनं पूर्वसूरिभिः पापभीरुभिर्नोक्तं, यदुत श्रीमहावीरस्य च्यवनादीनां कल्याणकत्वं गर्भापहारस्य नेति, तर्हि स्वचित्तविकल्पितकुविकल्पेन केन उत्सूत्रवादिना ? उच्यते–अपि च च्यवनाद्यन्तर्वर्तिनो गर्भापहारस्य कल्याणकत्वे तत्समुदायाद् अपनीयमाने च्यवनादीनामपि अकल्याणकत्वापत्तिरापद्येत । तथा च हैमन्यायसूत्रम्–'सन्नियोगशिष्टानामेकापायेऽन्यतरस्याप्यपायः ।' अतो हेतोः पञ्चहस्तोत्तरो भगवानभूत् इत्यु-क्त्वात्र (च्यवन) भवनक्रियायाः सर्वत्र समानत्वात् । यदि च्यवनादीनि चत्वारि कल्याणकानि, तर्हि गर्भापहारस्य कल्याणकत्वं निराकर्तुं साक्षादिन्द्राणामपि अशक्यं, न च वाच्यं गर्भापहारस्य आश्चर्यभूतत्वाद् अनाराध्यत्वम्, एवं चेत्तर्हि मल्लिजिनस्यापि स्त्रीत्वे तीर्थङ्करस्य आश्चर्यभूतत्वेन अमान्यत्वं भावि । तथा च सति श्वेताम्बरधर्मेऽपि दिगम्बरधर्मत्वा-भ्युपगमः स्यादिति १ । पुनरपि एकसमये ऋषभाद्यष्टोत्तरशत सिद्ध, तस्यापि उत्कृष्टावगाहनायां सिद्धत्वेन आश्चर्यभू-तत्वात् अनाराध्यत्वेन भवन्यत्वापत्तिः स्यात् २ ततश्च्यवनादिवत् गर्भापहारस्यापि कल्याणकत्वं आराध्यत्वं युक्तिमत् ।

तथैव श्रीआगमिकगच्छीय-श्रीजयतिलकसूरयोऽपि सम्यक्त्वसम्भवनाम्नि महाकाव्ये सुलसाचरित्रे (पत्र ८६) सप्तश-तश्लोकमन्याग्रे सम्यक्त्वपरीक्षणनाम्नि षष्ठे सर्गे अम्बडमुनिकृतवर्द्धमानस्वामिषट्कल्याणकस्तवनाधिकारे षट्कल्याणका-ना आराध्यत्वेन स्तुतिश्चक्रिरे । तथाहि—

"देवानन्दोदरे श्रीमान्, श्वेतपक्षे सदा शुचि । अवतीर्णोऽसि मासस्यापा ऽऽढस्य शुचिता ततः ॥ १ ॥ त्रिशला सर्व-सिद्धेच्छा, त्रयोदश्यामसूयतः । तवावतारस्तेनैषा, सर्वसिद्धा त्रयोदशी ॥ २ ॥ शुक्लत्रयोदश्या यश्चाऽचल मेरु प्रचालयन् । चित्रं कृतवाँस्तद्योगाच्च, चैत्रमासोऽपि कथ्यते ॥ ३ ॥ यस्याघदशम्यां दुर्ग-मोक्षमार्गस्य शीर्षकम् । चारित्रमाहतं युक्ता, मासोऽस्य मार्गशीर्षता ॥ ४ ॥ दशम्या यस्य शुक्लाया, केवलश्रीरहो त्वया । इत्यादत्ता तेन मासोऽस्य, युक्ता माधवता प्रभो ! ॥ ५ ॥ तव निर्वाणकल्याणं, यद्दिने आगमिष्यति । ततो न वेद्मि नाथोऽहं, माद्दशोऽध्यक्षवेदिन ॥ ६ ॥ सिद्धार्थराजा-ङ्गजदेवराज !, कल्याणकैः षड्भिरिति स्तुतस्त्वम् । तथाविधे ह्यान्तरवैरिषट्कं, यथा जयाम्याशु तवप्रसादात् ॥ ७ ॥ इति स्तुत्वा जिनाधीशं, त्रि' प्रणम्याऽम्बडो मुनि । विस्मितास्यः समासीनोऽश्रौषीच्च धर्मदेशनाम् ॥ ८ ॥" इति ॥ १ ॥

तथा कोटिमितसमवायाङ्गसूत्रे (पत्रं १०५) श्रीअभयदेवसूरिकृततट्टीकाया च श्रीमहावीरस्य गर्भापहारस्य पोट्टिलभ-वात् पञ्चमभवत्वेन प्रमाणीकृतत्वात् । तथाहि–"समणे भगव महावीरे तित्थगरभवग्गहणाओ छट्ठे पोट्टिलभवग्गहणे एगं वासकोर्डिं सामण्णपरिआगं पाउणित्ता सहस्सारे कप्पे सव्वट्ठे विमाणे देवत्ताए उववण्णे ।"

वृत्तिर्यथा–'समणे'त्यादि,यतो भगवान् पोट्टिलाभिधानो राजपुत्रो बभूव, तत्र च वर्षकोटिं प्रव्रज्या पालितवान् इत्येको भवः

। १ । ततो देवोऽभूदिति द्वितीयः । २ । ततो नन्दनाभिधानो राजसूनुः 'छत्राग्र'नगर्यां जज्ञे इति तृतीयः । ३ । तत्र भवे यर्पलक्षं सर्वदा मासक्षपणेन तपस्तप्त्वा दशमे देवलोके पुष्पोत्तर प्रवरविजयपुण्डरीकाभिधाने विमाने देवोऽभवदिति चतुर्थ । ४ । ततो ब्राह्मणकुण्डग्रामे ऋषभदत्तस्य ब्राह्मणस्य भार्याया देवानन्दाऽभिधानाया कुक्षौ उत्पन्न इति पञ्चम । ५ । तत त्र्यशीतितमे दिवसे क्षत्रियकुण्डग्रामे नगरे सिद्धार्थमहाराजस्य त्रिशलाभिधानभार्याया कुक्षौ इन्द्रवचनकारिणा हरिणेगमेषि-नाम्ना देवेन संहृतः, तीर्थंकरतया जात इति षष्ठः । ६ । उक्तभवग्रहण विना हि नान्यत्तवग्रहण षष्ठ श्रूयते भगवत इति, एतदेव षष्ठभवग्रहणतया व्याख्यात, यस्माच्च भवग्रहणादिद षष्ठं तदपि एतस्मात् षष्ठमेव इति सुष्ठु उच्यते, तीर्थंकर-भवग्रहणात्षष्ठे पोट्टिलभवग्रहणे इति ॥ २ ॥

ननु—तपागच्छीयप्राक्तनसूरिकृतग्रन्थेऽपि क्वापि गर्भापहारस्य कल्याणकता प्रतिपादिताऽस्ति ? उच्यते—तपागच्छीय-श्रीकुलमण्डनसूरिणा कल्पसूत्रावचूरौ स्पष्टं तद्भणनात्, तथाहि—"पच हत्थुत्तरे होत्थ त्ति" हस्तादुत्तरस्या दिशि वर्तमानत्वात् हस्तोत्तरा हस्त उत्तरो यासा ता हस्तोत्तरा=उत्तराफाल्गुन्यः, बहुवचन-बहुकल्याणकापेक्ष पञ्चसु च्यवन १ गर्भापहार २ जन्म ३ दीक्षा ४ ज्ञान ५ कल्याणकेषु हस्तोत्तरा यस्य सः, तथा निर्वाणस्य स्वातौ जातत्वादिति ६ ॥ ३ ॥

पुनः श्रीकुलमण्डनसूरिकृतटिप्पनकेऽपि, तथाहि—

पञ्चहस्तोत्तर आसीत्, हस्त उत्तरोऽग्रेसरो यासा ता उत्तरफाल्गुन्यः, बहुवचन=बहुकल्याणकापेक्ष, तस्मां हि विभो च्यवनम् १, गर्भाद्गर्भसङ्क्रान्तिः २ जन्म ३ व्रतं ४ केवल ५ चाभवत् निर्वृतिस्तु स्वाती १ ॥ ४ ॥

ननु-तर्हि कथं तपागच्छीया गुरवो गर्भापहारस्य कल्याणकत्वं न श्रद्दधन्ति ? उच्यते—ते एव जानन्ति-तेषामेव च जिनवचनलोपस्य निजगुरुपारम्पर्यलोपस्य च दोषो भावी, का हानिः अस्माकं इति ॥

॥ इति श्रीमहावीरदेवस्य षट्कल्याणकाधिकारः ॥ ३ ॥

ननु—केऽपि परविघ्नसन्तोषिणः प्रलपन्ति यदुत नवाङ्गीवृत्तिकारकः श्रीस्तम्भनकपार्श्वनाथप्रकटकः श्रीअभयदेवसूरिः श्रीखरतरगच्छे न बभूव, किन्तु अन्यगच्छे इति, तत्र केषां ग्रन्थानां सम्मत्या एतादृशः प्रभावक श्रीअभयदेवसूरिः श्रीखरतरगच्छे एव बभूवेति निर्णीयते ?, उच्यते—येषां गच्छे श्रीअभयदेवसूरीणां गुरुशिष्यपरम्परा मिलति तेषामेव गच्छे श्रीअभयदेवसूरिर्जात इति, सा तु तस्य परम्परा श्रीखरतरगच्छे एव, नाऽन्यगच्छेषु । यदुक्तं गुणचन्द्रगणिना एकोनचत्वारिंशदधिकैकादशशतवर्षे ११३९ निर्मितस्य पञ्चविंशत्यधिकद्वादशसहस्र १२०२५ प्रमाणस्य श्रीवीरचरित्रस्य प्रशस्तौ, (३३९ पत्रे) तथाहि—

इय सुक्कज्झाणाणल निदड्ढघणघातिकम्मदारुस्स । गोयमपहुस्स सहसा, उप्पन्नं केवलं नाणं ॥ १ ॥ बारसवासाणि विहो-हिऊणभवे सिवं गए तंमि । भयवं सुहम्मसामी, निव्वाणपयं पयासेइ ॥ २ ॥ तम्मि वि चिरकालं विहरिऊण सिरिजंबुसामिणो दाउं । गच्छगणाणमणुन्नं, सपत्ते सिद्धिवासम्मि ॥ ३ ॥ एवं विज्जाहरसुरनर-सुरिंदसंदोहवंदणिज्जेसु । समइक्कंतेसु महापहूसु सेज्जंभवाईसु ॥ ४ ॥ अइसयगुणरयणनिही मिच्छत्ततमंधलोयदिणनाहो । दूरुच्छारियवइरो, वइरस्सामी समुप्पन्नो ॥ ५ ॥ साहाइ तस्स चंदेकुलम्मि निप्पडिमपसमकुलभवणं । आसि सिरिवद्धमाणो, मुणिनाहो संजमनि

हिय ॥ ६ ॥ बहलकलिकालतमपस-रपूरिआसेसविसमसमभागो । दीवेण व मुणीण, पयासिओ जेण मुत्तिपहो ॥ ७ ॥
मुणिवइणो तस्स हरि-हासससिअजसपसाहिआसस्स । आसि दुवे वरसीसा, जयपयडा सूरससिणोव ॥ ८ ॥ भवजलहिवी-
इसभं-तभविअसताणतारणसमत्थो । बोहित्थोव महत्थो, सिरिसूरिजिणेसरो पढमो ॥ ९ ॥ गुरुसाराओ धवलाओ, 'सुविहिआ'
खरयसाहुसतई आया । हिमवंताओ गंग-व निग्गया सयलजणपुज्जा ॥ १० ॥ अण्णो अ पुण्णिमाच-दसुदरो बुद्धिसागरो
सूरी । निम्मविअपवरवागरण-छदसत्थो पसत्थमई ॥ ११ ॥ एगंतवायविलसिर परवाइकुरंगभगसीहाण । तेसिं सीसो
जिणच-दसूरिनामा समुप्पण्णो ॥ १२ ॥ सवेगरंगसाला, न केवल कवविरइणा जेण । भवजणविम्हयकरी, विहिया
सजमपवित्तीऽवि ॥ १३ ॥ ससमयपरसमयण्णू, विसुद्धसिद्धंतदेसणाकुसलो । सयलमहिवलयवित्तो अन्नोऽभयदेवसूरित्ति
॥ १४ ॥ जेणालकारधरा, सलक्खणा वरपया पसन्ना य । नवंगवित्तिरयणे-ण भारई कामणिव कया ॥ १५ ॥ तेसिं अत्थि
विणेओ, समत्थसत्थत्थबोहकुसलमई । सूरी पसण्णचंदो, चंदो इव जणमणाणदो ॥ १६ ॥ तव्वयणेण सिरिसुम-इवाइ-
गाणं विणेअलेसेण । गणिणा गुणचदेण, रइअं सिरिवीरचरिअमिम ॥ १७ ॥ अग्रे २२ पद्यानि सन्ति—नद सिहिरुद्द-
संखे, ११३९ वोक्कते विक्कमाउ कालम्मि । जेट्ठस्स सुद्धतइआ, तिहिम्मि सोमे समत्तमिम ॥ ५० ॥—अत्रैव गुरुशिष्य-
परम्परा—चान्द्रे कुले श्रीवर्द्धमानसूरिर्बभूव, तस्य शिष्यद्वयम्, प्रथमः श्रीजिनेश्वरसूरिः, द्वितीयो बुद्धिसागरश्च, तयोः

१ देवचन्द्र—लालभाई—जैनपुस्तकोद्धारसंस्थाद्वारा मुद्रितपुस्तके तु 'खरयसाहुसंतई आया' इत्यत्र 'सुविहिया (निम्मला उ) साहुसंतई आया' इति परिवर्तितपाठः मन्यते, सि द स चासमीचीनः, डॉ पी पीटर्सन् रिपोर्ट ३-२५ पृष्ठेऽपि उपरितनमूलपाठ एव परिलभ्यते ।

शिष्यद्वय श्रीजिनचन्द्रसूरिः नवाङ्गीवृत्तिकारकः श्रीअभयदेवसूरिश्च, तयोः शिष्यः श्रीप्रसन्नचन्द्राचार्य तद्वचनेन श्रीसु-मतिवाचकशिष्येण पं० गुणचन्द्रगणिना इद श्रीवीरचरित्र रचितम् इति ॥ १ ॥

पुनरपि श्रीअभयदेवसूरीणामेव शिष्याः वर्द्धमानसूरयः षष्ठ्यधिकैकादशशत ११६० वर्षकृतैकादशसहस्र ११००० प्रमिते श्रीआदिनाथचरित्रे प्रशस्तौ प्रोचुः, तथाहि—"खमदमसंजमगुणरोहणो विजिअवुज्झयाणगो । आसी सिरिवद्धमाणो, सूरी सव्वत्यसुपसिद्धो ॥ १ ॥ सूरिजिणेसरसिरिबु द्धिसागरा सागरोव गभीरा । सुरगुरुसुक्कसरित्था, सहोअरा तस्स दो सीसा ॥ २ ॥ वागरणछंदनिघंटु—कव्वनाडयपमाणसमएसु । अणिवारिअप्पआरा, जाणमईसव्वसत्थेसु ॥ ३ ॥ ताण विणेओ सिरिअभ-यदेवसूरित्ति नाम विक्खाओ । विजयक्खो पच्चक्खो, कयविक्कयसगहो धम्मे ॥ ४ ॥ जिणमयभवणब्भतर-गूढपयत्थाण पयडणे जस्स । दीवयसिहिव विमला, विसुद्धबुद्धी पवित्थरिआ ॥ ५ ॥ ठाणाइनवंगाण, पचासयपमुह-पगरणाणं च । विवरणकरणेण कओ, उवयारो जेण सघस्स ॥ ६ ॥ इक्कोव दोव तिन्निव, कहवि तु लग्गेण जइगुणा हुति । कलिकाले जमि पुणो, बुच्छ स सव्वेहि वि गुणेहिं ॥ ७ ॥ सीसेहिं तस्स रइअ, चरिअमिण वद्धमाणसूरीहिं । होउ पढत सुणता—ण कारण मोक्खसुक्खस्स ॥ ८ ॥ विक्कमनिवकालाउ, सएसु षकारसेसु सट्ठेसु । सिरिजयसिंहनरिंदे, रज्ज परिपालयंतम्मि ॥ ९ ॥ खभाइत्थठिएहिं, सियपक्खे चित्तविजयदसमीए । पुस्सेणं सुरगुरुणो, समत्थियं चरियमिय ति ॥ १० ॥ लोगुत्तमचरियमिणं, काऊण जमज्जिय सुह किं पि । उत्तमगुणाणुराओ, भवे भवे तेण मह होज्ज ॥ ११ ॥ पुधा-

1 पत्तनस्थप्राच्यजैनभाण्डागारीयग्रन्थसूच्यां प्रथमायां (१५० पत्रे)

हिय ॥ ६ ॥ बहलकलिकालतमपस-रपूरिआसेसविसमसममागो । दीवेण व मुणीणं, पयासिओ जेण मुत्तिपहो ॥ ७ ॥ मुणियइणो तस्स हरि-हद्दासत्तिअजसपसाहिआसस्स । आसि दुवे वरसीसा, जयपयडा सूरससिणोव ॥ ८ ॥ भवजलहिवीइसंभं-तमवियसंताणतारणसमत्थो। बोहित्थोव महत्थो, सिरिसूरिजिणेसरो पढमो ॥ ९ ॥ गुरुसाराओ धवलाओ, 'सुविहिआ' खरयसाहुसतई जाया। हिमवंताओ गंग-व निग्गया सयलजणपुज्जा ॥ १० ॥ अण्णो अ पुण्णिमाच-दसुंदरो बुद्धिसागरो सूरी। निम्मविअपवरवागरण-छंदसत्थो पसत्थमई ॥ ११ ॥ एगंतवायविलसिर-परवाइकुरंगमगसीहाण । तेसिं सीसो जिणच-दसूरिनामा समुप्पण्णो ॥ १२ ॥ संवेगरंगसाला, न केवलं कव्वविरइणा जेण। भवजणविम्हयकरी, विहिया संजमपवित्तीऽवि ॥ १३ ॥ ससमयपरसमयण्णू, विसुद्धसिद्धंतदेसणाकुसलो । सयलमहिवलयवित्तो अन्नोऽभयदेवसूरित्ति ॥ १४ ॥ जेणालंकारधरा, सलक्खणा वरपया पसन्ना य । नवअंगवित्तिरयणे-ण भारई कामिणिव्व कया ॥ १५ ॥ तेसिं अत्थि विणेओ, समरयसत्थत्थबोहकुसलमई । सूरी पसण्णचंदो, चंदो इव जणमणाणंदो ॥ १६ ॥ तव्वयणेण सिरिसुम-इवाइगाणं विणेअलेसेण । गणिणा गुणचंदेणं, रइअं सिरिवीरचरिअमिमं ॥ १७ ॥ अग्रे २३ पद्यानि सन्ति—नंद सिहिरुद्दसखे, ११३९ वोक्कते विक्कमाउ कालम्मि। जेट्ठस्स सुद्धतइआ, तिहिम्मि सोमे समत्तमिम ॥ ५० ॥—अत्रेयं गुरुशिष्यपरम्परा—चान्द्रे कुले श्रीवर्द्धमानसूरिर्बभूव, तस्य शिष्यद्वयम्, प्रथमः श्रीजिनेश्वरसूरिः, द्वितीयो बुद्धिसागरश्च, तयोः

---

१ देवचन्द्र-लालभाई-जैनसंस्थाद्वारा मुद्रितपुस्तके तु 'खरयसाहुसतई जाया' इत्यत्र 'सुविहिया (निम्मला ?) साहुसतई जाया' इति परिवर्तितपाठो लभ्यते, किं तु स चासमीचीनः, डॉ पी पीटर्सन् रिपोर्टस्य १०५ पृष्ठेऽपि उपरितनमूलपाठ एव पठितत्वात् ।

शिष्यद्वय श्रीजिनचन्द्रसूरिः नवाङ्गीवृत्तिकारक[1] श्रीअभयदेवसूरिश्च, तयोः शिष्यः श्रीप्रसन्नचन्द्राचार्यः तद्वचनेन श्रीसुमतिवाचकशिष्येण पं० गुणचन्द्रगणिना इद श्रीवीरचरित्र रचितम् इति ॥ १ ॥

पुनरपि श्रीअभयदेवसूरीणामेव शिष्याः वर्द्धमानसूरय पञ्चाधिकैकादशशत ११६० वर्षकृतैकादशसहस्र ११००० प्रमिते श्रीआदिनाथचरित्रे प्रशस्तौ प्रोचुः, तथाहि–"समदमसजमगुणरोहणो विजिअदुज्जयाणगो। आसी सिरिवद्धमाणो, सूरी सवत्थसुपसिद्धो ॥ १ ॥ सूरिजिणेसरसिरिबुद्धिसागरा सागरोव गभीरा। सुरगुरुसुक्कसरित्था, सहोअरा तस्स दो सीसा ॥ २ ॥ वागरणछदनिघट्टु–कव्वनाडयपमाणसमएसु। अणिवारिअप्पआरा, जाणमईसव्वसत्थेसु ॥ ३ ॥ ताण विणेओ सिरिअभ–यदेवसूरित्ति नाम विक्खाओ। विजयक्खो पक्खक्खो, कयविक्कयसगहो धम्मे ॥ ४ ॥ जिणमयभवणब्भतर–गूढपयत्थाण पयडणे जस्स। दीवयसिहिव्व विमला, विसुद्धबुद्धी पवित्थरिआ ॥ ५ ॥ ठाणाइनवगाण, पचासयपमुहपगरणाण च। विवरणकरणेण कओ, उवयारो जेण सघस्स ॥ ६ ॥ इक्कोव दोव तिन्निव, कहवि तु लग्गेण जइगुणा हुति। कलिकाले जमि पुणो, वुच्छ स सव्वेहि वि गुणेहिं ॥ ७ ॥ सीसेहिं तस्स रइअ, चरिअमिण वद्धमाणसूरीहिं। होउ पढत सुणंता–ण कारण मोक्खसुक्खस्स ॥ ८ ॥ विक्कमनिवकालाव, सएसु एक्कारसेसु सट्ठेसु। सिरिजयसिंहनरिंदे, रज्जं परिपालयंतम्मि ॥ ९ ॥ खंभाइत्थठिएहिं, सियपक्खे चित्तविजयदसमीए। पुस्सेणं सुरगुरुणो, समत्थियं चरियमिय ति ॥ १० ॥ लोगुत्तमचरियमिण, काऊण जमज्जिय सुहं किं पि। उत्तमगुणाणुराओ, भवे भवे तेण मह होज्ज ॥ ११ ॥ पुव्वा-

---

1 पत्तनस्थप्राच्यजैनभाण्डागारीयग्रन्थसूच्यां प्रथमायां (३५० पत्रे)

घरेण गणिय–स्स सयसखा इमस्स गंथस्स। एक्कारस उ सहस्सा, सलोगसखाइ नायव्वा ॥ १२ ॥ अत्राऽपि गुरुशिष्य-पारम्पर्यं इदं–चान्द्रे कुले श्रीवर्धमानसूरिः बभूव, तस्य शिष्यौ श्रीजिनेश्वरसूरि-श्रीबुद्धिसागरौ, तयोः विनेयः स्थानाङ्गादि-नवाङ्गीवृत्तिकारकः श्रीअभयदेवसूरिः, तस्य शिष्यैः श्रीवर्धमानाचार्यैः इदं श्रीआदिनाथचरित्रं रचितमिति ॥ २ ॥

तथा तथैव गुरुशिष्यपारम्पर्यं, श्रीछत्रापल्लीयश्रीविबुधप्रभसूरिशिष्य–श्रीपद्मप्रभसूरिभिरपि चतुर्नवत्यधिकद्वादशशत-वर्ष १२९४ विनिर्मिते श्रीमुनिसुव्रतस्वामिचरित्रे भवत्रयनिबद्धे पर्वत्रितयप्रमाणे पञ्चदशप्रस्तावे स्पष्टीकृतः तथाहि—“पूर्वं चान्द्रकुले बभूव विपुले श्रीवर्धमानप्रभुः, सूरिर्मङ्गलभाजन सुमनसां सेव्यः सुवृत्तास्पदम्। शिष्यस्तस्य जिनेश्वरः समजनि स्याद्वादिनामग्रणीः, बन्धुस्तस्य च बुद्धिसागर इति त्रैवेद्यपारङ्गमः ॥ १ ॥ सूरिः श्रीजिनचन्द्रो–ऽभयदेवगुरुर्नवाङ्गवृत्तिकरः श्रीजिनभद्रमुनीन्द्रो, जिनेश्वरविभोस्त्रयः शिष्याः ॥ २ ॥ चक्रे श्रीजिनचन्द्रसूरिगुरुभिर्धुर्य्युः प्रसन्नाभिध–स्तेन ग्रन्थचतुष्टयीस्फुटमतिः श्रीदेवभद्रप्रभुः। देवानन्दमुनीश्वरोऽभवदतश्चारित्रिणा ग्रामणीः, संसाराम्बुधिपारगामिजनताकामेषु कामसखा ॥ ३ ॥ यन्मुखावासवास्तव्या, व्यवस्यति सरस्वती। गन्तु नाऽन्यत्र स न्यायः, श्रीमान् देवप्रभः प्रभुः ॥ ४ ॥ मुकुरतुलामङ्कुरयति, वस्तुप्रतिबिम्बविशदमतिवृसम्। श्रीविबुधप्रभाचितं, न बिभर्ते वैपरीत्य तु ॥ ५ ॥ तत्पदपद्मभ्रमर–श्चक्रे पद्मप्रभश्चरितमेतत्। विक्रमतोऽतिक्रान्ते, वेदग्रहरवि १२९४ मिते समये ॥ ६ ॥ इत्यादि ॥ अत्राऽपि चान्द्रे कुले श्रीव-

1 जेसलमेरभाण्डागारीयग्रन्थानां सूच्यां (१० पत्रे)।

र्धमानसूरि' बभूव, तस्य द्वौ शिष्यौ–श्रीजिनेश्वरसूरिः श्रीबुद्धिसागरश्च, श्रीजिनेश्वरसूरेः त्रयः शिष्याः–श्रीजिनचन्द्रसूरि, नवाङ्गवृत्तिकारकः श्रीअभयदेवसूरिः, श्रीजिनभद्रसूरिश्च इत्यादि ॥ २ ॥

एवमेव गुरुपरम्परायां श्रीरुद्रपल्लीयखरतरश्रीसङ्घतिलकाचार्या अपि सप्तविंशत्यधिकचतुर्दशशत १४२७ वर्षे कृतायां सम्यक्त्वसप्ततिकावृत्तौ (२३७ पत्रे) प्रोचिवांसः, तथाहि—

'श्रीवीरशासनमहोदधितः प्रसूतः, प्रोद्यत्कलाभिरभितः प्रथितः पृथिव्याम् । माद्यन्महःप्रसरनाशिततामसोऽस्ति, श्रीचन्द्रगच्छ इति चन्द्र इवाऽद्भुतश्रीः ॥ १ ॥ तत्राऽऽसीद्धरणेन्द्रवन्द्यचरणः श्रीवर्धमानो गुरु–स्तत्पट्टे च जिनेश्वरः सुविहितश्रेणीशिरःशेखरः । तच्छिष्योऽभयदेवसूरिरभवन्नवाङ्गीमहा–वृत्तिस्तम्भनपार्श्वनाथजिनराड्मूर्त्तिप्रकाशैककृत् ॥ २ ॥ तत्पट्टपूर्वाचलचूलिकाया, भास्वानिव श्रीजिनवल्लभाख्यः । सच्चक्रसम्बोधनसावधान–बुद्धिः प्रसिद्धो गुरुमुख्य आसीत् ॥ ३ ॥ तच्छिष्यो जिनशेखरो गणधरो जज्ञेऽतिविज्ञाग्रणीस्तत्पादाम्बुजराजहंससदृश श्रीपद्मचन्द्रः प्रभुः । तत्पट्टाम्बुधिवर्धने कुवलयप्रोद्यत्प्रबोधैकधीः, श्रीमान् श्रीविजयेन्दुरिन्दुवदभूच्छश्वत् कलालङ्कृतः ॥ ४ ॥ पट्टे तदीयेऽभयदेवसूरि–रासीद्द्वितीयोऽपि गुणाद्वितीयः । जातो यतोऽयं जयतीह रुद्र–पल्लीयगच्छ' सुतरामतुच्छः ॥ ५ ॥ तत्पादाम्भोजभृङ्गोऽजनि जिनसमयाम्भोजपाथोधिजन्मा, सूरीन्द्रो देवभद्रोऽनुपमशमरमारामभेयोपमानः । तस्याऽन्तेवासिमुख्यः कुमततमतितमश्चण्डमार्तण्डकल्पः, कल्पद्रुः कल्पितार्थप्रवितरणविधौ श्रीप्रभानन्दसूरिः ॥ ६ ॥ ज्योतिस्तोमैरमाने प्रतिहतजगतीवर्त्तितेजस्वितेज–स्फूर्त्तौतत्पट्टपूर्वाचलविमललसन्मौलिमौलीयमानौ । श्रीमान् श्रीचन्द्रसूरिर्विमलशशिगुरुश्चाऽप्रमेयप्रभावौ, जातौ

श्रीराजहंसाविव भविकजनप्रबूहबोधैकदक्षौ ॥ ७ ॥ आकाश्मीरमरीणचारुधिषणान् वादीन्द्रवृन्दारकान्, माथद् वादविधौ विजित्य जगति प्राप्तप्रतिष्ठोदयाः ॥ सूरीन्द्रा गुणशेखराः स्मयहराः शृंगारचन्द्रक्षमाधीशा-भ्यर्च्यपदाम्बुजा समभवंस्तत्पट्ट-शृंगारिणः ॥ ८ ॥ श्रीसंघतिलकाचार्या-स्तत्पदाम्भोजरेणवः ॥ सम्यक्त्वसप्ततेर्वृत्तिं, विदधुस्तत्त्वकौमुदीम् ॥ ९ ॥ असम्पिष्ठ्यवरस्य सोमतिलकाचार्यानुजस्याधुना, श्रीदेवेन्द्रमुनीश्वरस्य वचसा सम्यक्त्वसत्सप्तते ॥ श्रीमद्विक्रमवत्सरे द्विनयनाम्भोधिक्षपाकृत(१४२२)प्रमे, श्रीसारस्वतपत्तने विरचिता दीपोत्सवे वृत्तिका ॥ १० ॥ सा सोमकलशवाचक-वरानुजैरत्र विहितसा-हाय्यै ॥ प्रथमाऽऽदर्शे लिखितो-पाध्यायैः श्रीयशःकलशैः ॥ ११ ॥ मेधामान्द्यात्प्रमादाच्च, यदवद्यमिहाजनि ॥ तत्प्रसद्य महाधियः, शोधयन्तु विशारदाः ॥ १२ ॥ द्वादशात्मेव संसारे द्विविधात्मेव बोधकृत् ॥ इयं सम्यक्त्वतत्त्वानां, कौमुदी द्योतता भुवि ॥ १३ ॥ इत्यादि ॥ ४ ॥

पुनः श्रीरुद्रपल्लीयखरतरकृतप्रबन्धे एषा एव परम्परा । तथाहि—चान्द्रे कुलेऽस्मिन्नमलैश्चरित्रैः, प्रभुर्बभूवाऽभयदेवसूरिः । नवाङ्गवृत्तिच्छलतो यदीय-मद्यापि जागर्त्ति यशःशरीरम् ॥ १ ॥ तस्मान्मुनीन्दुर्जिनवल्लभो यस्तथा प्रभामाप निजैर्गुणौघैः । विपश्चितां संयमिनां च वर्ये धुरीणता तस्य यथाऽधुनाऽपि ॥ २ ॥ तेषामन्वयमण्डनं समभवत् सजीवनं दुःसमा-मूर्छालस्य (?) मुनिव्रतस्य भवन निःसीमपुण्यश्रियः । श्रीमन्तोऽभयदेवसूरिगुरवस्ते यद्वियुक्तैर्गुणैः, दृष्ट तादृश-मादृग्यान्तरमहो दिक्चक्रमाक्रम्यते ॥ ३ ॥ यतिपतिरथ देवभद्रनामा, समजनि तस्य पदावतंसवेश्यः । दधुरचरितभावरोगयोगा-ज्जगति रसायनता यदीयवाच ॥ ४ ॥ तदीयपट्टे प्रतिभासमुद्रः, श्रीमान् प्रभानन्दमुनीश्वरोऽभूत् । स वीतराग-

स्तवनेष्वमीषु, विनिर्ममे दुर्गपदप्रकाशम् ॥ ५ ॥ 'एष सपादशतयुत–विंशतिशतपरिमितप्रबन्धोऽयम् । लिखितः प्रथमादर्शे, गणिना हर्षेन्दुना शमिना' ॥ ६ ॥ अत्राऽपि शिष्यपरम्परा एव–चन्द्रकुले नवाङ्गीवृत्तिकारकाः श्रीअभयदेवसूरयोऽभूवन्, तेषां शिष्य' श्रीजिनवल्लभसूरिः, तदन्वयेऽभयदेवसूरिः, तत्पट्टे श्रीदेवभद्रसूरिः, तत्पट्टे प्रभानन्दसूरिः, इत्यादि इति ॥ ५ ॥

तथा श्रीजिनपतिसूरिविनिर्मितपञ्चलिङ्गीविवरणप्रशस्तौ (पत्रे १८६) अपि च इत्थमेव गुरुशिष्यपरम्परा अस्ति, तथाहि–'न रजनिकृतसाफल्य, सदा न नक्षत्रवुधपरिगृहीतम् । अस्ति कुलं चान्द्रमहो, न तमो हत्या येन प्रथितम् ॥ १ ॥ तत्र न वियति प्रसितो, बुधो नवीनो न सूर्यसहचरितः । अनिशापतितनय' श्री-जिनेश्वर' सूरिरजनिष्ट ॥ २ ॥ यस्मिन् गोष्ठ्या कलयति कला हेलया जल्पकेलौ, कम्बूलानामपि निरवधिस्वेदधाराप्रवाहम् । शङ्के सारस्वतरसरय क्षोभतापानुषङ्गा–दङ्गान्यन्तःप्लवनशुभग वाविनामुद्वमन्ति ॥ ३ ॥ सम्प्राप्तेऽनुविधेयतापदमिति चौलुक्यमाणिक्यता, श्रीमद्दुर्लभराजि जल्पकयया वल्गद्विकल्पस्पृशा । प्रत्याख्यायत दैवदेवकुलिकान् दर्पोन्नमत्कन्धरान्, संविग्नमतिना विहारपदवीं श्रुत्या समाधत्त यः ॥ ४ ॥ शिष्यौ बभूवतुरमुष्य मनुष्यमौलेर्विफुल्लमुग्धहृयशःप्रवहप्रबन्धौ । आद्यस्तयो प्रतिकल स्वनिवेशसिद्ध्यै, विद्याप्रसादवदनो जिनचन्द्रसूरिः ॥ ५ ॥ नर्तयितु सवेगं, पुनर्नृणा लुप्तनृत्यमिव कलिना । संवेगरङ्गशाला, येन विशाला व्यरचि रुचिरा ॥ ६ ॥ द्वितीय प्रज्ञातोऽभवदभयदेवो मुनिपति–र्विविक्तादेयायास्तरितमपनीयान्तरपटीम् । अकार्षीद् यो गुह्यस्वरसरससंवेदनकृते, नवाङ्ग्यास्तन्वङ्ग्यास्तनुविवरण कामुक इव' ॥ ७ ॥ इत्यादि ॥ ६ ॥

इत्यमेव श्रीरुद्रपल्लीयखरतरगच्छमण्डनश्रीतिलकोपाध्यायविरचितगौतमपृच्छाप्रकरणप्रशस्तौ गुरुपरम्परा दर्शिताऽस्ति । तथाहि–'श्रीवर्धमान इति चन्द्रकुलाम्बरार्क–स्तस्माज्जिनेश्वरमुनीश्वर एव जज्ञे । रङ्गम्नवाङ्गविवृतिप्रथनप्रसिद्ध–माहात्म्य-भूरभयदेवगुरुस्ततश्च ॥ १ ॥ सूरिर्बभूव जिनवल्लभनामधेय–स्तत्पादपद्ममधुकृज्जिनशेखराख्यः । पद्मेन्दुरिन्दुनिभकीर्त्ति-भरो बभूव, सूरिस्ततो यतिपतिर्विजयेन्दुनामा ॥ २ ॥ तस्माद्बभूवाऽभयदेवसूरि–र्विध्वस्तविस्तारिकुवादिगर्वं । श्रीदेवभद्रोऽप कृतोरुभद्र–स्ततः प्रभानन्दमुनीश्वरश्च ॥ ३ ॥ श्रीचन्द्रसूरिः सुगुरुस्तदीये, पट्टावतंसप्रतिमोऽधुनाऽस्ति । अस्य द्वितीयस्तु धियाऽद्वितीयो, जज्ञे मुनीन्द्रो विमलेन्दुनामा ॥४॥ आचार्यधुर्यत्वमवापिता' श्री–श्रीचन्द्रसूरिप्रवरेखयोऽमी । श्रीचारुचन्द्रो जिनभद्रसूरि–र्गुणाम्बुधिः श्रीगुणशेखरश्च ॥ ५ ॥ एतैरेव वितीर्णो–पाध्यायपदो मुनीश्वरोत्तंसैः । श्रीदेवभद्रयतिपति–शिष्यः श्री-श्रीतिलकनामा ॥ ६ ॥ गौतमपृच्छाप्रकरण–विवरणमिदमल्पबुद्धिविभवोऽपि । भव्यजनोपकृतिकृते, कृतवानभ्यर्थित कृतिभिः ॥ ७ ॥ छन्दोलङ्कृतिलक्षण–दोषैर्दुष्टमस्ति किमपीह । तदखिलमपि मदनुग्रह–बुद्ध्या शोध्य विमलधीभि' ॥ गगनतले परिखेलति० ॥ ९ ॥ कल्याणाचलमूर्त्तिका० ॥ १० ॥ इत्यादिद्वादशपद्यानि, अत्राऽपि गुरुपरम्परा इयं–चन्द्रे कुले वर्धमानसूरिः बभूव, तत्पट्टे श्रीजिनेश्वरसूरिः, तस्य शिष्यो नवाङ्गीवृत्तिकारकः श्रीअभयदेवसूरिः तत्पट्टे श्रीजिनवल्लभसूरिः इत्यादि ॥ ७ ॥

---

१ संस्कृत ऐण्ड प्राकृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन् कापोरी ऑफ दि बॉम्बे ब्रैंच ऑफ दि रॉयल एशियाटिक सोसायटी (११०-११ पृष्ठौ)

अपि च रुद्रपल्लीयखरतरगच्छाधिपति–श्रीअभयदेवसूरयोऽपि अष्टसप्तत्यधिकद्वादशशत १२७८ वर्षकृतद्वाविंशतिशतश्लोकमानजयन्तविजयकाव्यप्रशस्तौ (११८ पत्रे) अमुमेव परम्परां कथयामासुः । तथाहि—

"आसीच्चन्द्रकुलाम्बराम्बरमणिः श्रीवर्धमानप्रभोः, पादाम्भोरुहचञ्चरीकचरितश्चारित्रिणामग्रणीः । स श्रीसूरिजिनेश्वरस्त्रिपथगापायःप्रवाहैरिव, स्वैरं यस्य यशोभरैस्त्रिजगतः पावित्र्यमासूत्रितम् ॥ १ ॥ अभवदभयदेव सूरिरस्मात् स यस्य, प्रभुरभजत तोषं स्तम्भने पार्श्वनाथः । प्रकटितविकटार्थां सङ्गसाम्राज्यवृत्त्यै, व्यधित निधिसमाना यश्च वृत्तिं नवाङ्ग्याः ॥ २ ॥ तच्छिष्यो जिनवल्लभः प्रभुरभूद्विश्वम्भराभामिनी–भास्वद्भालललामकोमलयशःस्तोमः शमारामभूः । यस्य श्रीनरवर्मभूपतिशिरःकोटीररत्नाङ्कुर–ज्योतिर्जालजलैरपुष्यत सदा पादारविन्दद्वयी ॥ ३ ॥ अत्रापि सूरिगुरुपरंपरायामेव चन्द्रकुले श्रीवर्द्धमानसूरिर्बभूव, तच्छिष्यः श्रीजिनेश्वरसूरिः तस्य शिष्यः श्रीस्तंभनपार्श्वनाथमूर्तिप्रकटको नवाङ्गीवृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिः, 'तच्छिष्या श्रीजिनवल्लभसूरिः' इत्यादिनवपद्यानि ॥ ८ ॥

पुनः श्रीरुद्रपल्लीयखरतरगच्छाधिपति–श्रीदेवेन्द्रसूरयोऽपि गुरुशिष्यक्रमं तथैवाऽऽहुः श्रीप्रश्नोत्तररत्नमालावृत्तौ एकोनत्रिंशदधिकचतुर्दशशत १४२९ वर्षकृतायां (पत्रं ५६७), तथाहि–"श्रीवर्धमानजिनशासनमेरुभूपा–भूते सुधर्मगणनायकभद्रशाले । श्रीकोटिकाख्यगणकल्पतरौ सुपत्र–शाखेऽत्र गुच्छ इव राजति चन्द्रगच्छः ॥ १ ॥ तस्मिन् महोज्ज्वलफलोपमितिं दधानः, श्रीवर्धमान इति सूरिवरो बभूव । यस्याऽग्रतः समगुणोद्धरणोरगेन्द्रः, सूरीन्द्रमन्त्रविविधोपनिपत्प्रकारान् ॥ २ ॥ ततोऽस्तदोषो नियतं विवस्वान्, जिनेश्वरः सूरिवरः समासीत् । नो चेत्कथं श्रीधनपालचित्ता–न्महातम-

इत्थमेव श्रीरुद्रपल्लीयखरतरगच्छमण्डनश्रीतिलकोपाध्यायविरचितगौतमपृच्छाप्रकरणनाम्नो गुरुपरम्परा दर्शिताऽस्ति । तथाहि—'श्रीवर्धमान इति चन्द्रकुलाम्बरार्क—स्तस्माज्जिनेश्वरमुनीश्वर एव जज्ञे । रत्नसनाऽजनि नृसिंहयाश्रिय—माहात्म्य-भूरभयदेवगुरुस्ततश्च ॥ १ ॥ सूरिर्बभूव जिनवल्लभनामधेय—स्तत्पादपद्ममधुकृज्जिनशेखराख्यः । पद्मेन्दुरिन्दुरिव कीर्ति-भरो बभूव, सूरिस्ततो यतिपतिर्विजयेन्दुनामा ॥ २ ॥ तस्माद्बभूवाऽभयदेवसूरि—र्निःसलविसारिकुवादिगर्वं । श्रीदेवभद्रोऽथ कृतोरुभद्र—स्ततः प्रभानन्दमुनीश्वरश्च ॥ ३ ॥ श्रीचन्द्रसूरिः सुगुरुस्तदीये, पट्टानतमप्रतिमोऽधुनाऽस्ति । अस्य द्वितीयस्तु धियाऽद्वितीयो, जज्ञे मुनीन्द्रो विमलेन्दुनामा ॥ ४ ॥ आचार्यधुर्यत्वमवापिता' श्री-श्रीचन्द्रसूरिमनरैरजयोऽमी । श्रीचारुचन्द्रो जिनभद्रसूरि—र्गुणाम्बुधि श्रीगुणशेखरश्च ॥ ५ ॥ एतैरेव वितीर्णो—पाध्यायपदो मुनीश्वरोचसैः । श्रीदेव-भद्रयतिपति—शिष्यः श्री-श्रीतिलकनामा ॥ ६ ॥ गौतमपृच्छाप्रकरण—विवरणमिदमल्पबुद्धिविभवोऽपि । भव्यजनोपकृति-कृते, कृतवानभ्यर्थितः कृतिभिः ॥ ७ ॥ छन्दोलङ्कृतिलक्षण—दोषैर्दुष्टमस्ति किमपीह । तदखिलमपि मदनुग्रह—बुद्ध्या शोध्यं विमलधीभिः ॥ गगनतले परिखेलति० ॥ ९ ॥ कल्याणाचलभूमिका० ॥ १० ॥ इत्यादिद्वादशपद्यानि, अत्राऽपि गुरुपरम्परा इयं—चन्द्रे कुले वर्धमानसूरिः बभूव, तत्पट्टे श्रीजिनेश्वरसूरिः, तस्य शिष्यो नवाङ्गीवृत्तिकारकः श्रीअभयदेव-सूरिः तत्पट्टे श्रीजिनवल्लभसूरिः इत्यादि ॥ ७ ॥

---

१ संस्कृत ऐण्ड प्राकृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन् दि लायब्रेरी ऑफ दि बॉम्बे ब्रांच ऑफ दि रॉयल एशियाटिक सोसायटी (३१०–११ पृष्ठौ)

अपि च रुद्रपल्लीयखरतरगच्छाधिपति–श्रीअभयदेवसूरयोऽपि अष्टसप्तत्यधिकद्वादशशत १२७८ वर्षकृतद्वाविंशति-शतश्लोकमानजयन्तविजयकाव्यप्रशस्तौ (१९८ पत्रे) अमुमेव परम्परां कथयामासुः । तथाहि—

"आसीच्चन्द्रकुलाम्बराम्बरमणिः श्रीवर्धमानप्रभो, पादाम्भोरुहचञ्चरीकचरितश्चारित्रिणामग्रणीः । स श्रीसूरिजिनेश्वरस्त्रिपथगापाथःप्रवाहैरिव, स्वैरं यस्य यशोभरैस्त्रिजगतः पावित्र्यमासूत्रितम् ॥ १ ॥ अभवदभयदेवः सूरिरस्मात् स यस्य, प्रमुरभजत तोषं स्तम्भने पार्श्वनाथः । प्रकटितविकटार्थां सत्प्रसाद्यस्य वृत्त्यै, व्यधित निधिसमाना यश्च वृर्त्ति नवाङ्ग्याः ॥ २ ॥ तच्छिष्यो जिनवल्लभः प्रभुरभूद्विश्वम्भरामामिनी–भास्वद्भालललामकोमलयशःस्तोमः शमारामभूः । यस्य श्रीनरवर्मभूपतिशिरःकोटीररत्नाङ्कुर–ज्योतिर्जालजलैरपुष्यत सदा पादारविन्दद्वयी ॥ ३ ॥ अत्रापि सूरिगुरुपरम्परायामेव चन्द्रकुले श्रीवर्द्धमानसूरिर्बभूव, तच्छिष्यः श्रीजिनेश्वरसूरिः तस्य शिष्यः श्रीस्तम्भनपार्श्वनाथमूर्तिप्रकटको नवाङ्गीवृत्तिकारकः श्रीअभयदेवसूरिः, 'तच्छिष्या श्रीजिनवल्लभसूरिः' इत्यादिनवपद्यानि ॥ ८ ॥

पुनः श्रीरुद्रपल्लीयखरतरगच्छाधिपति–श्रीदेवेन्द्रसूरयोऽपि गुरुशिष्यक्रमं तथैवाऽऽहुः श्रीप्रश्नोत्तररत्नमालावृत्तौ एकोनत्रिंशदधिकचतुर्दशशत १४२९ वर्षकृतायां (पत्र ५६७); तथाहि–"श्रीवर्धमानजिनशासनमेरुभूया–भूते सुधर्मगणनायकभद्रशाले । श्रीकोटिकाख्यगणकल्पतरौ सुवज्र–शाखेऽत्र गुच्छ इव राजति चन्द्रगच्छः ॥ १ ॥ तस्मिन् महोज्ज्वलफलोपमितिं दधानः, श्रीवर्धमान इति सूरिवरो बभूव । यस्याऽग्रतः समगृणोद्धरणोरगेन्द्रः, सूरीन्द्रमन्त्रविविधोपनिपत्प्रकारान् ॥ २ ॥ ततोऽस्तदोषो नियतं विवस्वान्, जिनेश्वरः सूरिवरः समासीत् । नो चेत्कथं श्रीधनपालचित्ता–न्महातम-

इत्थमेव श्रीरुद्रपल्लीयखरतरगच्छमण्डनश्रीतिलकोपाध्यायविरचितगौतमपृच्छाप्रकरणप्रशस्तौ गुरुपरम्परा दर्शिताऽस्ति । तथाहि–'श्रीवर्धमान इति चन्द्रकुलाम्बरार्क–स्तस्माज्जिनेश्वरमुनीश्वर एव जज्ञे । रङ्गनवाङ्गविवृतिप्रथनप्रसिद्ध–माहात्म्यभूरभयदेवगुरुस्ततश्च ॥ १ ॥ सूरिर्बभूव जिनवल्लभनामधेय–स्तत्पादपद्ममधुकृज्जिनशेखराख्यः । पद्मेन्दुरिन्दुनिभकीर्त्तिभरो बभूव, सूरिस्ततो यतिपतिर्विजयेन्दुनामा ॥ २ ॥ तस्माद्बभूवाऽभयदेवसूरि–र्विध्वस्तविस्तारिकुवादिगर्वः । श्रीदेवभद्रोऽथ कृतोरुभद्र–स्तत' प्रभानन्दमुनीश्वरश्च ॥ ३ ॥ श्रीचन्द्रसूरिः सुगुरुस्तदीये, पट्टावतंसप्रतिमोऽधुनाऽस्ति । अस्य द्वितीयस्तु धियाऽद्वितीयो, जज्ञे मुनीन्द्रो विमलेन्दुनामा ॥४॥ आचार्यधुर्यत्वमवापिता' श्री–श्रीचन्द्रसूरिप्रवरैस्त्रयोऽमी । श्रीचारुचन्द्रो जिनभद्रसूरि–र्गुणाम्बुधिः श्रीगुणशेखरश्च ॥ ५ ॥ एतैरेव वितीर्णो–पाध्यायपदो मुनीश्वरोच्चसैः । श्रीदेवभद्रयतिपति–शिष्यः श्री श्रीतिलकनामा ॥ ६ ॥ गौतमपृच्छाप्रकरण–विवरणमिदमल्पबुद्धिविभवोऽपि । भव्यजनोपकृतिकृते, कृतवानभ्यर्थित कृतिभिः ॥ ७ ॥ छन्दोलङ्कृतिलक्षण–दोषैर्दुष्टमस्ति किमपीह । तदखिलमपि मदनुग्रह–बुद्ध्या शोध्य विमलधीभिः ॥ गगनतले परिखेलति० ॥ ९ ॥ कल्याणाचलमूर्विका० ॥ १० ॥ इत्यादिद्वादशपद्यानि, अत्राऽपि गुरुपरम्परा इय–चन्द्रे कुले वर्धमानसूरिः बभूव, तत्पट्टे श्रीजिनेश्वरसूरिः, तस्य शिष्यो नवाङ्गीवृत्तिकारकः श्रीअभयदेवसूरिः तत्पट्टे श्रीजिनवल्लभसूरिः इत्यादि ॥ ७ ॥

१ संस्कृत ऐण्ड प्राकृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन् लायब्रेरी ऑफ दि बॉम्बे ब्रैंच ऑफ दि रॉयल एशियाटिक सोसायटी (११०–११ पन्नो)

अपि च रुद्रपल्लीयखरतरगच्छाधिपति-श्रीअभयदेवसूरयोऽपि अष्टसप्तत्यधिकद्वादशशत १२७८ वर्षकृतद्वाविंशति-
शतश्लोकमानजयन्तविजयकाव्यप्रशस्तौ (१९८ पत्रे) अमुमेव परम्परा कथयामासुः। तथाहि—
शतश्लोकमानजयन्तविजयकाव्यप्रशस्तौ ... पादाम्भोरुहचञ्चरीकचरितश्चारित्रिणामग्रणीः। स श्रीसूरिजिनेश्व
"आसीच्चन्द्रकुलाम्बराम्बरमणिः श्रीवर्धमानप्रभोः, पादाम्भोरुहचञ्चरीकचरितश्चारित्रिणामग्रणीः। स श्रीसूरिजिनेश्व
रस्त्रिपथगापाथःप्रवाहैरिव, स्वैरं यस्य यशोभरैस्त्रिजगतः पावित्र्यमासूत्रितम् ॥ १ ॥ अभवदभयदेव सूरिरस्मात् स
यस्य, प्रभुरभजत तोषं स्तम्भने पार्श्वनाथः। प्रकटितविकटार्था सद्गुसाम्राज्यपृथ्व्यै, व्यधित निधिसमाना यश्च वृत्तिं नवा-
ङ्गयाः ॥ २ ॥ तच्छिष्यो जिनवल्लभः प्रभुरभूद्विश्वम्भराभामिनी-भास्वद्भालललामकोमलयशःस्तोमः शमारामभूः। यस्य श्री-
नरवर्मभूपतिशिरःकोटीररत्नाङ्कुर-ज्योतिर्जालजलैरपुष्यत सदा पादारविन्दद्वयी ॥ ३ ॥ अत्रापि सूरिगुरुपरम्परायामेव चन्द्र-
कुले श्रीवर्धमानसूरिर्बभूव, तच्छिष्य श्रीजिनेश्वरसूरिः तस्य शिष्यः श्रीस्तम्भनपार्श्वनाथमूर्तिप्रकटको नवाङ्गीवृत्तिकारक
श्रीअभयदेवसूरिः, 'तच्छिष्या श्रीजिनवल्लभसूरि' इत्यादिनवपद्यानि ॥ ८ ॥

पुनः श्रीरुद्रपल्लीयखरतरगच्छाधिपति-श्रीदेवेन्द्रसूरयोऽपि गुरुशिष्यक्रमं तथैवाऽऽहुः श्रीप्रश्नोत्तररत्नमालावृत्तौ एको-
नत्रिंशदधिकचतुर्दशशत १४२९ वर्षकृतायां (पत्र ५६७), तथाहि—"श्रीवर्धमानजिनशासनमेरुभूपा-भूते सुधर्मगणना-
यकभद्रशाले। श्रीकोटिकाख्यगणकल्पतरौ सुवज्र-शाखेऽत्र गुच्छ इव राजति चन्द्रगच्छः ॥ १ ॥ तस्मिन् महोज्ज्वलफलो-
पमितिं दधानः, श्रीवर्धमान इति सूरिवरो बभूव। यस्याऽमतः समगृणोद्धरणोरगेन्द्र, सूरीन्द्रमन्त्रविविधोपनिपत्प्रका-
रान् ॥ २ ॥ ततोऽस्तदोषो नियतं विवस्वान्, जिनेश्वरः सूरिवरः समासीत्। नो चेत्कथं श्रीधनपालचित्ता-न्महातम-

क्षोममपाकरोद्द्राक् ॥ ३ ॥ तस्माद्बभूवाऽभयदेवसूरि–र्यः स्तम्भने पार्श्वजिनेन्द्रमूर्त्तिम् । प्रकाश्य शस्याश्च नवाङ्गवृत्ती कृत्वा कृतार्थं स्वजनुस्तवान ॥ ४ ॥ तदनु जिनवल्लभाख्यः, प्रख्यातः समयकनककषपट्टः । यत्प्रतिबोधनपटहो,–ऽधुनाऽपि दन्ध्वन्यते जगति" ॥ ५ ॥ इत्यादित्रयस्त्रिंशत्पद्यानि सन्ति ॥ ९ ॥

एव पुनः श्रीदशगणधरसंबन्धगर्भित–श्रीपार्श्वनाथचरित्रे १२१६७ श्लोकमिते वसुरसरुद्र ११६८ वर्षे श्रीदेवभद्राचार्यैः अपि प्रशस्तौ प्रोक्त । तथाहि—

"तित्थंमि वद्ध(ढ)ते तस्स, भगवओ तियसवंदणिज्जंमि । चंदकुलंमि पसिद्धो, विउलाए वइरसाहाए ॥ १ ॥ सिरिवद्धमाणसूरी–अहेसि तवनाणचरणरयणनिही । जस्सवि सुमरतो, लोगो रोम च मुयइ ॥ २ ॥ तस्साऽसि दोन्नि सीसा, जयविक्खाया दिवायरससिव्व । आयरिअजिणेसरबुद्धिसागरायरिअनामाणो ॥ ३ ॥ तेसिं च पुणो जाया, सीसा दो महियलंमि सुपसिद्धा । जिणचंदसूरिनामो, बीओऽभयदेवसूरित्ति ॥ ४ ॥ सिद्धंतवित्तिविरयण-पगरणउवयारियभव्वलोयाण । को ताण गुणलव पि हु, होज्ज समत्थो पवित्थरिउं ॥ ५ ॥ तेसिंविणेअस्स पसन्नचंदसूरिस्स सव्वगुणनिहिणो । पयपउमसेवगेहिं, सुमइउवज्झायसिस्सेहिं ॥ ६ ॥ संवेगरंगसाला–राहणसत्थं जगंमि वित्थरिअं । रइअं च वीरचरिअं, जेहिं कहारयणकोसो(सा)य ॥ ७ ॥ सोवन्निंदियमरिअ–मुणिसुव्वयवीरभवणरमणीए । भरुअच्छे तेहिं ठिए, सुमंदिरे

1 डॉ० पिटर्सन् रिपोर्ट में ३ पृष्ठ ६७ ।

आमदत्तस ॥ ८ ॥ सिरिदेवभद्दसूरीहिं, विरइअं पासनाहचरिअमिमं । लिहिय पढमिल्लुय पोत्थयमि गणिअमलचंदेणं"
॥ ९ ॥ इत्यादि ॥ १० ॥

एवं श्रीअर्बुदाचले श्रीवस्तुपालवसतौ देवकुलिकाप्रशस्तौ अपि लिखितमस्ति ॥

स्वस्ति श्रीनृपविक्रमसं० १२९३ मिति वैशाखशुक्ल १५ दिने शनौ, अद्येह श्रीअर्बुदाचलमहातीर्थे अणहिल्लपुरवास्तव्यप्राग्वाड्ज्ञातीय-श्रीचन्द्र० इत्यादिबहुनामानि सन्ति, ततः श्रीशान्तिनाथबिम्बं कारितं, प्रतिष्ठितं च नवाङ्गीवृत्तिकारक-श्रीअभयदेवसूरिसन्तानीयैः श्रीधर्म्मघोषसूरिभिः इत्यादि । अत्र मधुकरश्रीखरतरगच्छीय-श्रीधर्मघोषसूरयो ज्ञेया ॥ ११ ॥

एवमेव श्रीद्वीपासन्न-श्रीउनानगरे भूमिगृहान्तर्वर्त्तिप्रतिमाप्रशस्तौ अपि लिखितमस्ति, यथा "नवाङ्गीवृत्तिकारकश्रीअभयदेवसूरिसन्तानीयैः श्रीधर्मघोषसूरिभिः प्रतिष्ठितं" ॥ १२ ॥

एवं श्रीवीजापुरनगरे खरतरश्रावकहम्मीरपुरनरेश्वरमन्त्रिविजयपालपुत्रमन्त्रिदेवाकारितदेवगृहपट्टिकायां बहूनि प्रशस्तिकाव्यानि लिखितानि सन्ति[1], तत्र श्रीवर्धमानसूरित आरभ्य लघुजिनेश्वरसूरिं यावत् एकैकेन काव्येन श्रीवर्धमानसूरि १ श्रीदुर्लभराजपर्षत् खरतरविरुदप्रापक-श्रीजिनेश्वरसूरि २ श्रीजिनचन्द्रसूरि ३ नवाङ्गीवृत्तिकारक-श्रीअभयदेवसूरि ४ श्रीजिनवल्लभसूरि ५ श्रीजिनदत्तसूरि ६ प्रमुखा वर्णिता सन्ति, सा पट्टिका श्यामवर्णा सांप्रतं वीजापुरे सयतशालामध्ये भित्तौ स्थापिताऽस्ति स्वयं मया दृष्टा च, पुनः कौतुकिना तत्र गत्वा द्रष्टव्या ॥ १३ ॥

---

१ श्रीमद्बुद्धिसागरसूरिकृतविजापुरवृत्तान्तग्रन्थस्य प्रस्तावनायां '५ पत्रे, ९२' श्लोकात् ११५ श्लोकपर्यन्तम् ।

ननु-श्रीअभयदेवसूरिभिरपि स्वय क्वापि ग्रन्थे पूर्वोक्तगुरुशिष्यपरम्परा प्रोक्ताऽस्ति ? उच्यते-बहुशो यत श्रीस्थानाङ्गवृत्तौ विंशत्यधिकैकादशशतवर्षे ११२० कृताया द्विशतद्विपञ्चाशदधिकचतुर्दशसहस्र १४२५२ प्रमाणाया प्रान्ते (पत्र ५२७) उक्तम्, तथाहि-"श्रीस्थानाङ्गस्य महानिधानस्य इव उन्मुद्रणमिव अनुयोग प्रारभ्यते इति। तच्चन्द्रकुलीनप्रवचनप्रणीता प्रतिबद्धविहारहारिचरित्र-श्रीवर्द्धमानमुनीन्द्रपादोपसेविन' प्रमाणादिव्युत्पादनप्रवणप्रकरणप्रबन्धप्रणायिनः प्रबुद्धमतिबन्धकप्रवक्तृप्रवीणाप्रतिहतप्रवचनार्थप्रधानवाक्प्रसरस्य सुविहितमुनिजनमुख्यस्य श्रीजिनेश्वराचार्यस्य तदनुजस्य च व्याकरणादिशास्त्रकर्तुः श्रीबुद्धिसागराचार्यस्य चरणकमलचञ्चरीककल्पेन श्रीमदभयदेवसूरिनाम्ना मया महावीरजिनराजसन्तानवर्तिना महाराजवंशजन्मनेव संविग्नमुनिवर्गप्रवरश्रीमदजितसिंहाचार्यान्तेवासि-यशोदेवगणिनामधेयसाधोः उत्तरसाधकस्य इव विद्याक्रियाप्रधानस्य साहाय्येन समर्थितम् ॥ १४ ॥ एवमेव श्रीसमवायाङ्गसूत्रवृत्तिप्रशस्तौ (१६० पत्रे) अपि पट्टानुक्रमोऽस्ति, तदर्थिना ते ग्रन्था विलोकनीया. ॥ १५ ॥ एवमेव श्रीभगवतीवृत्तिप्रशस्तौ (९८० पत्रे) अपि ॥ १६ ॥ एवमेव श्रीज्ञाताधर्मकथावृत्तिप्रशस्तौ (२५४ पत्रे) अपि ॥ १७ ॥ एवमेव श्रीअनुत्तरोपपातिकदशावृत्तिप्रशस्तौ (८ पत्रे) अपि ॥ १८ ॥ एवमेव श्रीप्रश्नव्याकरणवृत्तिप्रशस्तौ (१६५ पत्रे) अपि ॥ १९ ॥

एवमेव श्रीपञ्चाशकवृत्तौ (२०१ पत्रेऽपि) सा एव गुरुपरम्परा, तथाहि-"यस्मिन्नतीते श्रुतसयमश्रिया-वप्राप्नुवत्यावपरं तथाविधम्। स्वस्था(स्था) श्रयं सयसतोऽतिदुःस्थिते, श्रीवर्धमानः स यतीश्वरोऽभवत् ॥ १ ॥ शिष्योऽभवत्तस्य जिनेश्वराख्यः, सूरिः कृतानिन्द्यविचित्रशास्त्रः। सदा निरालम्बविहारवर्ती, चन्द्रोपमश्चन्द्रकुलाम्बरस्य ॥ २ ॥

शब्दादिलक्ष्मप्रतिपादकानघ-ग्रन्थप्रणेता प्रवर
अन्योऽपि वित्तो भुवि बुद्धिसागरः पाण्डित्यचारित्रगुणैरनो(नू)पमैः । शिष्यस्तयोरेव विमुग्धबुद्धि-र्ग्रन्थार्थ-
क्षमायताम् ॥ ३ तयोरिमा शिष्यवरस्य वाक्याद्, वृत्तिं व्यधात् श्रीजिनचन्द्रसूरेः । न चास्ति टीकेह न
बोधेऽभयदेवसूरिः ॥ ४ ॥ बोधो न शास्त्रार्थगतोऽस्ति तादृशो, न तादृशी वाक्पटुतास्ति मे तथा । मयि विहितकृपास्तद्धी-
वृद्धनिर्मिता, हेतु परं मेऽत्र कृतौ विमोर्वचः ॥ ५ ॥ यदिह किमपि दृब्ध बुद्धिमान्द्याद्विरुद्धं, ॥ ६ ॥ चतुरधिकविं-
घनाः शोधयन्तु । निपुणमतिमतोऽपि प्रायशः सावृतेः स्यात्, न हि न मतिविमोहः किं पुनर्मादृशस्य ॥ ७ ॥ अणहिलपाटकनगरे, सघवरैर्वर्त-
शातियुते, वर्षसहस्रे शते च सिद्धेयम् । धवलकपुरे वसतौ, धनपत्योर्बकुलधवकियोः ॥ ७ ॥ इत्यादि । एव एषा एव गुरुपरम्परा श्रीअभयदेवसूरिभिः
मानबुधमुख्यैः । श्रीद्रोणाचार्यै-र्विद्वद्भिः शोधिता चेति" ॥ ८ ॥ ॥ २० ॥
स्वकृतानेकग्रन्थप्रशस्तौ लिखिताऽस्ति, जिज्ञासुभिः ते ग्रन्था विलोकनीयाः ॥ २० ॥

ननु—अन्यगच्छीयसूरिभिः अपि इदमेव गुरुशिष्यपारम्पर्यं श्रीअभयदेवसूरीणां क्वापि ग्रन्थे लिखितमस्ति ? उच्यते—
अनेकेषु ग्रन्थेषु अनेकैः लिखित वरीवर्ति । तथाहि—

"जिणवल्लहगणिलिहिय, सुहुमत्थवियाररयमिण सुयणा । निसुणंतु मुणंतु सय, परे वि बोहिंतु सोहिंतु ॥ १५२ ॥"

व्याख्या—'जिनवल्लहगणि' त्ति श्रीजिनवल्लभगणिनामकेन मतिमता सकलार्थसङ्ग्राहिस्थानाङ्गाद्यङ्गोपाङ्गपञ्चाशकादिशास्त्र-
वृत्तिविधानावाप्तावदातकीर्त्ति-सुधाधवलितधरामण्डलाना श्रीमदभयदेवसूरीणां शिष्येण लिखित कर्म्मप्रकृत्यादिगंभीर-

शास्त्रेभ्यः समुद्धृत्य इत्थं जिनवल्लभगणिलिखितम्। इति सार्द्धशतकवृत्त्या (९९ पत्रे) एकसप्तत्यधिकैकादशशतवर्षे ११७१ कृतायां श्रीचित्रावालगच्छीय-श्रीधनेश्वरसूरयः प्राहुः ॥ २१ ॥

ननु-तपागच्छीयसूरिभिः अपि श्रीअभयदेवसूरीणां पूर्वोक्ता गुरुशिष्यपरम्परा क्वापि प्रोक्ताऽस्ति ? उच्यते-श्रीकल्पान्तर्वाच्ये तपागच्छीयश्रीहेमहंससूरिभिः भिन्नभिन्नगच्छप्रभावकाधिकारे तथैव प्रतिपादिताऽस्ति, तथाहि—'श्रीउपकेशवंशे श्रीरत्नप्रभसूरि हुआ, जिये कोरंटे नगरइ अनइ ओसिंए समकालै एकसमे एकलग्ने प्रतिष्ठा कीधी १। चित्रावालगच्छीय-श्रीवादिदेवसूरि हुआ। जीए हेमराज अनातणैं, आस्थानिं गुणचन्द्र दिगम्बर जीतौ २। नवाङ्गीवृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरि जिणे थंभणे सेढी नदीनें उपकंठि श्रीपार्श्वनाथतणी स्तुति करी, धरणेन्द्रसाहाय्ये श्रीपार्श्वबिम्बप्रत्यक्ष कीधो, शरीरतणौ कोढरोग उपसमाव्यौ, तच्छिष्य श्रीजिनवल्लभसूरि हुआ, चारित्रनिर्मल अनेक ग्रन्थ तणौ निर्माण कीधौ। इणे अनुक्रमइं श्रीखरतरपक्षइ सूरिवर अनेक हुआ सातिशय' इत्यादि ॥ २२॥

पुनः तपागच्छनायक-श्रीसोमसुन्दरशिष्यमहोपाध्याय-श्रीचारित्रगणिविनेय प० श्रीसोमधर्मगणिविरचिताया (सं० १५०३ वर्षे) श्रीउपदेशसप्ततिकायां निष्पन्नाया द्वितीयाधिकारे सप्तमोपदेशे (पत्र ४३), तथाहि—

"जयत्यसौ स्तम्भनपार्श्वनाथः, प्रभावपूरैः परितः सनाथः। स्फुटीचकाराभयदेवसूरि-र्यां भूमिमध्यास्थितमूर्त्तिमिद्धम् ॥ १ ॥ पुरा श्रीपत्तने राज्य, कुर्वाणे भीमभूपतौ। अभूवन् भूतले ख्याताः, श्रीजिनेश्वरसूरयः ॥ २ ॥ सूरयोऽभयदेवाख्या-स्तेषा पट्टे दिदीपिरे। येभ्यः प्रतिष्ठामापन्नो, गच्छः खरतराभिधः ॥ ३ ॥" इत्यादि ॥ २३ ॥

पुनः उपदेशतरङ्गिण्यां श्रीमुनिसुन्दरसूरयोऽपि प्रोचुः । तथाहि—"व्याख्याताभयदेवसूरिरमलप्रज्ञो नवाङ्गयाः पुन-र्व्याना जिनदत्तसूरिरददाद्दीक्षा सहस्रस्य तु । प्रौढः श्रीजिनवल्लभो गुरुरभूद् ज्ञानादिलक्ष्म्या पुन-र्ग्रन्थान् श्रीतिलकश्चकार विविधांश्चन्द्रप्रभाचार्यवत् ॥ १ ॥" इति ॥ २४ ॥

एव श्रीअणहिल्लपत्तने स० १६१७ मिते युगप्रधानश्रीजिनचन्द्रसूरिभिः सम श्रीअभयदेवसूरिं आश्रित्य तपागच्छीयधर्मसागरेण विवादे प्रारब्धेऽनेकग्रन्थदर्शनपूर्वं चतुरशीतिगच्छाचार्यैं एकीभूय धर्म्मपक्ष कक्षीकृत्य—अङ्गीकृत्य च सर्वगच्छीयसङ्घसमक्ष साक्ष्य प्रदत्त स्वहस्ताक्षरैः मतानि लिखितानि । यदुत श्रीस्तम्भनकपार्श्वनाथमूर्त्तिप्रकटको नवाङ्गीवृत्तिकारकः श्रीअभयदेवसूरि श्रीखरतरगच्छे एव नाऽन्यत्र गच्छे बभूव इति । इय वार्त्ता आबालगोपाल प्रसिद्धा अस्ति, पुनस्तदर्थिना इद मतपत्र द्रष्टव्यम्—

अत्र मतपत्रमिदम्—

"सं० १६१७ मिते कार्त्तिक सुदि ७ दिने शुक्रवारे श्रीपाटणनगरे श्रीखरतरगच्छनायकवादिकन्दकुद्दालभट्टारक-श्रीजिनचन्द्रसूरि चौमासी कीधी । तिवारइ ऋषीमती धर्मसागरै कुडी चरचा माडी, ज उ अभयदेवसूरि नवाङ्गीवृत्तिकर्त्ता श्रीथभणापार्श्वनाथप्रकटकर्ता, ते खरतरगच्छे न हूआ । एहवी वात सामली तिवारे श्रीजिनचन्द्रसूरि समस्तदर्शन एकठा कीधा, पछै समस्त दर्शन नइ पूछयो, जे श्रीअभयदेवसूरि नवाङ्गीवृत्तिकर्त्ता थभणपार्श्वनाथप्रकटकर्ता किसै गच्छइ हूआ ? तिवारैं समस्त दर्शन मिली अनै घणा ग्रन्थ जोया । पछै इम कह्यो—जे श्रीअभयदेवसूरि खरतरगच्छे

हूवा सद्दी, सत्य समस्त दर्शन घणा ग्रथ ओई नई सद्दी कीधी, सद्दी वार १०८ ॥ अत्र साखिभट्टारककर्मसुन्दरसूरिमत १, सिद्धान्तीया-वडगच्छा-श्रीथिरचन्द्रसूरिमत २, जावडीयागच्छे श्रीहर्षविनयमतम् ३, नीगमीया-तपागच्छे श्रीकल्याणरत्नसूरिमत ४, बृहत्तपागच्छे श्रीसिद्धसूरिमतम् ५, विवदणीक वारे जिया-खडखडता-तपागच्छे श्रीपरमानन्दसूरिमत ६, सिद्धान्तीया-वडगच्छा-श्रीमहीसागरसूरिमतम्, ७ काछेला-पुनमीयागच्छे उदयरत्नसूरिमतम् ८, पीपलियागच्छे विमलचन्द्रसूरिमतम् ९, त्रांठारीआ-पूनमिआगच्छे श्रीविद्याप्रभसूरिमतं १०, ढढेरिया-पुनमीयागच्छे श्रीसयमसागरसूरिमतम् ११, कुतबपुरा-तपागच्छे श्रीविनयतिलकसूरिमतम् १२, वोकडियागच्छे देवानन्दसूरिमत १३, सिद्धान्तीयागच्छे पन्यासप्रमोदहंसमतम् १४, पाल्हणपुरागच्छे वादिनयकीर्त्तिमतम् १५, पाल्हणपुरीशाखातपागच्छे वा० रगनिधानमतं १६, अचलगच्छे पं० मावरत्नमत १७, छापरियापुनमीयागच्छे प० उदयराजमतं १८, साधुपुनमीयागच्छे पं० वा० नगामत १९, मलधारीगच्छे प० गुणतिलकमत २०, ओसवालगच्छे प० रत्नहर्षमत २१, धवलपर्वीबामावलीयागच्छे पन्यास रगामत २२, चित्रावालगच्छे वा० क्षेमामतं २३, चिन्तामणीया पाडा वा० गुणमाणिक्यगणिमत २४, आगमीया उपाध्यायसुमतिशेखरमतम् २५, वेगडाखरतर प० पद्ममाणिक्यमत २६, बृहत्खरतर वा० मुनिरत्नमतम् २७, चित्रावालजोगीवाडई पं० राजामतं २८, कोरण्टवालगच्छे चेला-हासामत २९, विवदणीक-खिराजुमामत ३०, आगमीया मोकलमत ३१, खरतर-उपाध्याय श्रीजयलाभमत ३२, कार्त्तिकसुदि ७ शुक्रवारे सर्वदर्शनी मिली, मत्रूलस कीधी, धर्मसागर ऋषिमती तेडाव्यो, पुणि धर्मसागर दर्शनमाहि न आव्यउ, वार तीन मनुष्य करी तेडाव्यो, पछे

छिपी रह्यो, पण न आवे, तिवारै फाती सुदि १२ दिने सर्वदर्शन मिली चरचाये पोटो जाणीने निह्नव थाप्यौ, जिन-दर्शन बाहिर कीधौ सही । सही १०८ । सर्वदर्शनसम्मत श्रीअभयदेवसूरि नवाङ्गीवृत्तिकर्त्ता थंभणा पार्श्वनाथ प्रकट-कर्त्ता ते खरतर गच्छइ हुआ, पत्तनीयसमस्तदर्शनिभिः विचार्य मत लिखितम्" ॥

अथ ग्रन्थसाक्ष्य लिख्यते–श्रीतपागच्छीय–हेमहंससूरिकृतकल्पान्तर्वाच्ये १, भावहडाकृत–गुरुपर्वप्रभावकग्रन्थे २, तपा-लघुशाखालघुपट्टावल्या ३, तपाकृते आचारप्रदीपे ४, सन्देहदोलावलीखरतरग्रन्थप्रामाण्यसाधके ५, कुमरगिरिस्थिततपा-सामग्रीसाधुपट्टावल्या ६, श्रीजिनवल्लभसूरिकृत–सार्द्धशतककर्म्मग्रन्थमध्ये ७, श्रीचित्रावालगच्छीयश्रीधनेश्वरसूरिकृत–वृत्ति-परम्परासाधके ८, तपाकल्याणरत्नसूरिचिरन्तनटिप्पनकद्वये ९, छापरीया–पुनमीया–पट्टावल्यां १०, साधुपुनमीयापट्टा-वल्या ११, गुर्वावलीग्रन्थे १२, प्रभावकचरित्रे चन्द्रप्रभसूरिप्रणीते १३, सर्गे (१६१ पत्रे) श्रीअभयदेवसूरिचरित्रे १३, पल्लीवालगच्छीय म० श्रीआमदेवसूरिकृतप्रभावकचरित्रे १४, पीपलीया–उदयरत्नप्रारम्भेण जीवानुशासने १५, तथा तपा–श्रीसोमसुन्दरसूरिराज्ये कृतोपदेशसप्ततिग्रन्थे १६, किं बहुना ४१ ग्रन्थमध्ये । हुडी–श्रीअभयदेवसूरि नवाङ्गीवृत्ति-कर्त्ता श्रीस्तम्भनकपार्श्वनाथप्रकटकर्त्ता खरतरगच्छे बभूव–सर्वदर्शनिमतोपेतं मूलपत्रं अणहिल्लपत्तनभाण्डागारे मुक्त अस्ति, तद् आलोक्य एतल्लिखित अस्ति, ये च न मन्यन्ते ते निह्नवाः ।

अथ स्तम्भतीर्थमतानि लिख्यन्ते–स्वस्ति श्रीस्तम्भनाधीशं नत्वा श्रीस्तम्भतीर्थमध्ये समस्तदर्शनिभिर्लिखितम् । श्री-अभयदेवसूरि श्रीथंभणपार्श्वनाथ प्रकटकारक नवाङ्गीवृत्तिकारक खरतरगच्छे हुआ, केई एक इम नथी सरदहिता, राग-

हुवा सही, सत्य समस्त दर्शन घणा ग्रथ जोई नइ सही कीधी, सही वार १०८ ॥ अत्र साखिभट्टारककमंसुन्दरसूरिमत १, सिद्धान्तीया-वडगच्छा-श्रीथिरचन्द्रसूरिमतं २, जावडीयागच्छे श्रीहर्षविनयमतम् ३, नीगमीया-तपागच्छे श्रीकल्याणरत्नसूरिमत ४, वृद्धतपागच्छे श्रीसिद्धसूरिमतम् ५, विवदणीक चारे जिया-खडखडता-तपागच्छे श्रीपरमानन्दसूरिमत ६, सिद्धान्तीया-वडगच्छा-श्रीमहीसागरसूरिमतम्, ७ काछेला-पुनमीयागच्छे उदयरत्नसूरिमतम् ८, पीपलियागच्छे विमलचन्द्रसूरिमतम् ९, आठाडीआ-पूनमिआगच्छे श्रीविद्याप्रभसूरिमत १०, ढढेरिया-पुनमीयागच्छे श्रीसयमसागरसूरिमतम् ११, कुतबपुरा-तपागच्छे श्रीविनयतिलकसूरिमतम् १२, वोकडियागच्छे देवानन्दसूरिमत १३, सिद्धान्तीयागच्छे पन्यासप्रमोदहससमतम् १४, पाल्हणपुरागच्छे वादिनयकीर्त्तिमतम् १५, पाल्हणपुरीआसातपागच्छे वा० रगनिधानमतं १६, अचलगच्छे पं० भावरत्नमत १७, छापरियापुनमीयागच्छे प० उदयराजमतं १८, साधुपुनमीयागच्छे पं० वा० नगामत १९, मलधारीगच्छे प० गुणतिलकमत २०, ओसवालगच्छे प० रत्नहर्षमत २१, धवलपर्वीवामाचलीयागच्छे पन्यास रंगामत २२, चित्रावालगच्छे वा० क्षेमामतं २३, चिन्तामणीया पाडा वा० गुणमाणिक्यगणिमत २४, आगमीया उपाध्यायसुमतिशेखरमतम् २५, वेगडाखरतर प० पद्ममाणिक्यमत २६, वृहत्खरतर वा० मुनिरत्नमतम् २७, चित्रावालजोगीवाडई पं० राजामतं २८, कोरण्टवालगच्छे चेला-हासामत २९, विवदणीक-लिराछुमामत ३०, आगमीया मोकलमत ३१, खरतर-उपाध्याय श्रीजयलाभमत ३२, कार्त्तिकसुदि ७ शुक्रवारे सर्वदर्शनी मिली, मत्स कीधी, धर्मसागर ऋषिमती तेडाव्यो, पुणि धर्मसागर दर्शनमाहि न आव्यउ, वार तीन मनावण करी तेडाव्यो, पछै

छिपी रह्यो, पण न आवे, तिवारे काती सुदि १२ दिने सर्वदर्शन मिली चरचाये पोटो जाणीने निह्नव थाप्यौ, जिन-दर्शन वाहिर कीधौ सही। सही १०८। सर्वदर्शनसम्मत श्रीअभयदेवसूरि नवाङ्गीवृत्तिकर्त्ता थमणा पार्श्वनाथ प्रकट-कर्त्ता ते खरतर गच्छइ हुआ, पत्तनीयसमस्तदर्शनिभिः विचार्य मत लिखितम्" ॥

अथ ग्रन्थसाक्ष्य लिख्यते—श्रीतपागच्छीय—हेमहंससूरिकृतकल्पान्तर्वाच्ये १, भावहडाकृत—गुरुपर्वप्रभावकग्रन्थे २, तपा-लघुशाखालघुपट्टावल्या ३, तपाकृते आचारप्रदीपे ४, सन्देहदोलावलीखरतरग्रन्थप्रामाण्यसाधके ५, कुमरगिरिस्थिततपा-सामग्रीसाधुपट्टावल्या ६, श्रीजिनवल्लभसूरिकृत—सार्द्धशतककर्म्मग्रन्थमध्ये ७, श्रीचित्रावालगच्छीयश्रीधनेश्वरसूरिकृत—वृत्ति-परम्परासाधके ८, तपाकल्याणरत्नसूरिचिरन्तनटिप्पनकद्वये ९, छापरीया—पुनमीया—पट्टावल्या १०, साधुपुनमीयापट्टा-वल्या ११, गुर्वावलीग्रन्थे १२, प्रभावकचरित्रे चन्द्रप्रभसूरिप्रणीते १३, सर्गे (१९१ पत्रे) श्रीअभयदेवसूरिचरित्रे १३, पल्लीवालगच्छीय भ० श्रीआमदेवसूरिकृतप्रभावकचरित्रे १४, पीपलीया—उदयरत्नप्रारम्भेण जीवानुशासने १५, तथा तपा—श्रीसोमसुन्दरसूरिराज्ये कृतोपदेशसप्ततिग्रन्थे १६, किं बहुना ४१ ग्रन्थमध्ये। हुंडी—श्रीअभयदेवसूरि नवाङ्गीवृत्ति-कर्त्ता श्रीस्तम्भनकपार्श्वनाथप्रकटकर्त्ता खरतरगच्छे बभूव—सर्वदर्शनिमतोपेत मूलपत्र अणहिलपत्तनभाण्डागारे मुक्त अस्ति, तद् आलोक्य एतल्लिखित अस्ति, ये च न मन्यन्ते ते निह्नवाः।

अथ स्तम्भतीर्थमतानि लिख्यन्ते—स्वस्ति श्रीस्तम्भनाधीशं नत्वा श्रीस्तम्भतीर्थमध्ये समस्तदर्शनिभिर्लिखितम्। श्री-अभयदेवसूरि श्रीथमणपार्श्वनाथ प्रकटकारक नवाङ्गीवृत्तिकारक खरतरगच्छे हुआ, केई एक इम नथी सरदहिता, राग-

हूवा सही, सत्य समस्त दर्शन घणा मथ जोई नइ सही कीधी, सही वार १०८ ॥ अत्र साखिभट्टारकक्रमंसुन्दरसूरि-मतं १, सिद्धान्तीया-वडगच्छा-श्रीथिरचन्द्रसूरिमतं २, जावडीयागच्छे श्रीहर्षविनयमतम् ३, नीगमीया-तपागच्छे श्रीकल्याणरत्नसूरिमत ४, बृहत्तपागच्छे श्रीसिद्धसूरिमतम् ५, बिंवदणीक बारे जिया-खडखडता-तपागच्छे श्रीपरमानन्द-सूरिमत ६, सिद्धान्तीया-वडगच्छा-श्रीमहीसागरसूरिमतम्, ७ काछेला-पुनमीयागच्छे उदयरत्नसूरिमतम् ८, पीपलिया-गच्छे विमलचन्द्रसूरिमतम् ९, आठाईआ-पूनमिआगच्छे श्रीविद्याप्रभसूरिमत १०, ढढेरिया-पुनमीयागच्छे श्रीसयम-सागरसूरिमतम् ११, कुतबपुरा-तपागच्छे श्रीविनयतिलकसूरिमतम् १२, वोकडियागच्छे देवानन्दसूरिमत १३, सिद्धा-न्तीयागच्छे पन्यासप्रमोदहसमतम् १४, पाल्हणपुरागच्छे वादिनयकीर्त्तिमतम् १५, पाल्हणपुरीशाखातपागच्छे वा० रग-निधानमत १६, अंचलगच्छे प० भावरत्नमत १७, छापरियापुनमीयागच्छे प० उदयराजमतं १८, साधुपुनमीयागच्छे प० वा० नगामत १९, मलधारीगच्छे प० गुणतिलकमतं २०, ओसवालगच्छे प० रत्नहर्षमत २१, धवलपक्षीयासाप-लीयागच्छे पन्यास रगामत २२, चित्रावालगच्छे वा० क्षेमामतं २३, चिन्तामणीया पाखा वा० गुणमाणिक्यगणि-मतं २४, आगमीया उपाध्यायसुमतिशेखरमतम् २५, खेगडाखरतर प० पद्ममाणिक्यमत २६, बृहत्खरतर वा० मुनि-रत्नमतम् २७, चित्रावालओगीवासई पं० राजामत २८, कोरण्टवालगच्छे चेला-हासामत २९, बिंवदणीक-सिराछुमामत ३०, आगमीया मोकलमत ३१, खरतर-उपाध्याय श्रीजयलाभमतं ३२, कार्त्तिकसुदि ७ शुक्रवारे सर्वदर्शनी मिली, मत-लस कीधी, धर्मसागर ऋषिमती तेडाव्यो, पुणि धर्मसागर दर्शनमांहि न आव्यउ, वार तीन मनकव करी तेडाव्यो, पछै

छिपी रह्यो, पण न आवे, तिवारे काती सुदि ११ दिने सर्वदर्शन मिली परचाये पोटो आणीने निह्नव थाप्यो, जिन-दर्शन बाहिर कीधो सही । सही १०८ । सर्वदर्शनसम्मत श्रीअभयदेवसूरि नवाङ्गीवृत्तिकर्त्ता थंभणा पार्श्वनाथ प्रकट-कर्त्ता ते खरतर गच्छ हुआ, एतत्‌ीयसमस्तदर्शनिभिः विचार्य मत लिखितम्” ॥

अथ ग्रन्थसाक्ष्य लिख्यते—श्रीतपागच्छीय-हेमहंससूरिकृतकल्पान्तर्वाच्ये १, भायहडाकृत—गुरुपर्वप्रभावकग्रन्थे २, तपा-लघुशालालघुपट्टावल्या ३, तपाकृते आचारप्रदीपे ४, सन्देहदोलावलीखरतरग्रन्थप्रामाण्यसाधके ५, कुमरगिरिस्थिततपा-सामग्रीसाधुपट्टावल्या ६, श्रीजिनवल्लभसूरिकृत—सार्द्धशतककर्म्मग्रन्थमध्ये ७, श्रीचित्रावालगच्छीयश्रीधनेश्वरसूरिकृत—वृत्ति-परम्परासाधके ८, तपाकल्याणरत्नसूरिचिरन्तनटिप्पनकद्वये ९, छापरीया—पुनमीया—पट्टावल्या १०, साधुपुनमीयापट्टा-वल्या ११, गुर्वावलीग्रन्थे १२, प्रभावकचरित्रे चन्द्रप्रभसूरिप्रणीते १३, सर्गे (१११ पत्रे) श्रीअभयदेवसूरिचरित्रे १३, पल्लीवालगच्छीय भ० श्रीआमदेवसूरिकृतप्रभावकचरित्रे १४, पीपलीया—उदयरत्नप्रारम्भेण जीयानुशासने १५, तथा तपा—श्रीसोमसुन्दरसूरिराज्ये कृतोपदेशसप्ततिग्रन्थे १६, किं बहुना ४१ ग्रन्थमध्ये । दुजी—श्रीअभयदेवसूरिः नवाङ्गीवृत्ति-कर्त्ता श्रीस्तम्भनकपार्श्वनाथप्रकटकर्त्ता खरतरगच्छे बभूव—सर्वदर्शनिमतोपेत मूलपत्र अणहिलपत्तनभाण्डागारे मुक्त अस्ति, तद् आलोक्य एतल्लिखित अस्ति, ये च न मन्यन्ते ते निह्नवाः ।

अथ स्तम्भतीर्थमतानि लिख्यन्ते—स्वस्ति श्रीस्तम्भनाधीश नत्वा श्रीस्तम्भतीर्थमध्ये समस्तदर्शनिभिर्लिखितम् । श्री-अभयदेवसूरि श्रीथंभणपार्श्वनाथ प्रकटकारक नवाङ्गीवृत्तिकारक खरतरगच्छे हुआ, केई एक इम नथी सरदहिता, राग-

हूवा सही, सत्य समस्त दर्शन घणा ग्रंथ जोई नइ सही कीधी, सही चार १०८ ॥ अत्र साक्षिभट्टारककर्मसुन्दरसूरिमत १, सिद्धान्तीया-वडगच्छा-श्रीथिरचन्द्रसूरिमत २, जाघडीयागच्छे श्रीहर्षविनयमतम् ३, नीगमीया-तपागच्छे श्रीकल्याणरत्नसूरिमत ४, बृहत्तपागच्छे श्रीसिद्धसूरिमतम् ५, विवदणीक चारे जिया-खडखडता-तपागच्छे श्रीपरमानन्दसूरिमत ६, सिद्धान्तीया-वडगच्छा-श्रीमहीसागरसूरिमतम्, ७ काछेला-पुनमीयागच्छे उदयरत्नसूरिमतम् ८, पीपलियागच्छे विमलचन्द्रसूरिमतम् ९, त्रांठारीआ-पूनमिआगच्छे श्रीविद्याप्रभसूरिमत १०, ढढेरिया-पुनमीयागच्छे श्रीसयमसागरसूरिमतम् ११, कुवडपुरा-तपागच्छे श्रीविनयतिलकसूरिमतम् १२, वोकडियागच्छे देवानन्दसूरिमत १३, सिद्धान्तीयागच्छे पंन्यासप्रमोदहसमतम् १४, पाल्हणपुरागच्छे वाविनयकीर्त्तिमतम् १५, पाल्हणपुरीशाखातपागच्छे वा० रगनिधानमतं १६, अचलगच्छे पं० मावरत्नमत १७, छापरियापुनमीयागच्छे प० उदयराजमत १८, साधुपुनमीयागच्छे पं० घा० नगामत १९, मलधारीगच्छे पं० गुणतिलकमतं २०, ओसवालगच्छे प० रत्नहर्षमत २१, धवलपर्वीयासाचलीयागच्छे पन्यास रगामत २२, चित्रावालगच्छे वा० क्षेमामत २३, चिन्तामणीया पाडा वा० गुणमाणिक्यगणिमतं २४, आगमीया उपाध्यायसुमतिशेखरमतम् २५, बेगडाखरतर प० पद्ममाणिक्यमत २६, बृहत्खरतर वा० मुनिरत्नमतम् २७, चित्रावालजोगीवाडई पं० राजामतं २८, कोरण्टवालगच्छे चेला-हासामतं २९, विवदणीक-सिराहुआमतं ३०, आगमीया मोकलमत ३१, खरतर-उपाध्याय श्रीजयलाभमत ३२, कार्तिकसुदि ७ शुक्रवारे सर्वदर्शनी मिली, मजलस कीधी, धर्मसागर ऋषिमती तेडाव्यो, पुणि धर्मसागर दर्शनमाहि न आव्यउ, चार तीन मजलस करी तेडाव्यो, पछे

पट्टे विदीपिरे। येभ्यः प्रतिष्ठामापन्नो, गच्छः खरतराभिधः ॥ ३ ॥ तेषामाचार्यवर्याणां, मान्यानां भूभृतामपि। कुष्ठव्याधिरभूद्देहे, प्राच्यकर्माऽनुभावत ॥ ४ ॥ तत श्रीगुर्जरत्रायां सभाणकपुर प्रति। शक्त्यल्पत्वेऽपि ते चक्रुर्विहारं मुनिपुङ्गवाः ॥ ५ ॥ रोगग्रस्ततयाऽत्यन्तं, सम्भाव्य स्वायुषः क्षयम्। मिथ्यादुष्कृतदानार्थं, सर्वं सङ्घं समाह्वयत् ॥ ६ ॥ तस्यामेव निशीथिन्यां, स्वप्ने शासनदेवता। प्रभो! स्वपिषि जागर्षि, किं? वेत्याह गुरुं प्रति ॥ ७ ॥ रोगेण क्वास्ति? मे निद्रे-त्युक्ते देवी गुरुं जगौ। उन्मोटयत तद्धेतोः सूत्रस्य नव कुकुटी (कुक्कुटीः?) ॥ ८ ॥ शक्तेरभावात्किं कुर्वे?, साऽऽह मैवं वचो वद। त्वमद्यापि नवाङ्गया यद्-वृत्तिः स्फीताः करिष्यसि ॥ ९ ॥ श्रीसुधर्मकृतग्रन्थान्, कथमर्थापयाम्यहम्?। पङ्गो मत्येति को नाम?, मेर्वारोहणकौशलम् ॥ १० ॥ देव्याह यत्र सन्देहाः, स्मर्तव्याऽहं त्वया तदा। यथा भिनद्मि तान् सर्वान्, पृष्ट्वा सीमन्धरं जिनम् ॥ ११ ॥ रोगग्रस्तः कथं मातः!, करोमि विवृतीरहम्?। माऽवादीस्तत्प्रतीकारे, किन्तूपायमिमं शृणु ॥ १२ ॥ अस्ति स्तम्भनकग्रामे, सेढीनाममहानदी। तस्यां श्रीपार्श्वनाथस्य, प्रतिमाऽस्त्यतिशायिनी ॥ १३ ॥ यत्र च क्षरति क्षीरं, प्रत्यहं कपिलेति गौः। तत्खुरोत्खातभूमौ च, द्रक्ष्यसि प्रतिमामुखम् ॥ १४ ॥ तदेव सम्भाव तद् बिम्बं वदस्व भावत। यथा त्वं स्वस्थदेहः स्याः, इति प्रोच्य गता सुरी ॥ १५ ॥ प्रातर्जागरितास्तेऽथ, स्वप्नार्थमवबुध्य च। सम समग्रसङ्घेन, चेलुः स्तम्भनकं प्रति ॥ १६ ॥ तत्र गत्वा यथा स्थाने, प्रेक्ष्य पार्श्वजिनेश्वरम्। उल्लसत्सर्वरोमाञ्चा, एवं ते तुष्टुवुर्मुदा ॥१७॥ "जय तिहुयणवरकप्परुक्ख जय जिणधन्नंतरि, जय तिहुयणकल्लाणकोस दुरिअकरिकेसरि। तिहुयणजणअविलंघियाण भुवणत्तयसामिय, कुणसु सुहाइ जिणेसपास थंभणयपुरट्ठिय ॥ १ ॥" वृत्ते तु षोडशे साऽर्चा, सर्वाङ्ग प्रकटाऽभ-

द्वेपना घाल्या कुबुद्धि साद्या, ते सापखा दुखीहुस्ये सही १०८, सिद्धान्तनेमेलि नवागीवृत्तिने वृद्ध सम्प्रदायनें मेलि, नेह न मानइ ते घणा कूडा पडे छे । समस्त दर्शन वैसी श्रीनवागीप्रशस्ति जोई वृद्धसम्प्रदाय जोईनें सही कीधी, जे श्रीअमयदेवसूरि खरतरगच्छे हूआ । अत्र साखि—ओसवालगच्छे प० सींहामत १ अचलगच्छे प० लक्ष्मीनिधानमत २ वृद्धशालीयतपागच्छे श्रीसौभाग्यरत्नसूरिमत ३ वडागच्छे उ० विनयकुशलमत ४ कोरटवालगच्छे प० पद्मशेखरमत ५ पूर्णिमागच्छे प० रत्नधीरमत ६ वडगच्छातपागच्छे प० रत्नसागरमत ७ मलधारीगच्छे क्षमासुन्दरमत ८ अचलीयागच्छे पूर्णचन्द्रमत ९ साडेरा—समयरत्नमत १० आगमीयागच्छे ऋषिराममतम् ११ सुधर्मघोषगच्छे ऋषिरत्नसागरमत १२ कडूआमती—पोमसीमत १३ श्रीखरतरगच्छे श्रीअमयदेवसूरि स० ११११ श्रीथमणो पार्श्वनाथ प्रगट कीधो, स० ११२० श्रीनवाङ्गीवृत्ति कीधी, सं० १२०४ श्रीरुद्रपल्लीगच्छे अमयदेवसूरि बीजा हूआ न माने ते अभागीया, खोटु बोलीने चारित्र गमाडे छे । तथा के इक कदाग्रही इम कहे—जे श्रीअमयदेवसूरि नवाङ्गीवृत्तिकर्त्ता श्रीथमणपार्श्वनाथप्रकटकारक खरतरगच्छे न हूआ, ते महाउत्सूत्रवादी आणिवा, जिणे कारणें तपागच्छनायक श्रीसोमसुन्दर सूरिना शिष्यनी कीधी उपदेशसत्तरी ग्रन्थ तेमांहि १२ मइ उपदेशे (४१ पत्रे) ते कालना गीतार्थ सवेगी हूआ । तिणे खरतरगच्छे कह्या छे ते हुवी लिखी अइ छे ॥

जयत्यसौ स्तम्भनपार्श्वनाथः, प्रभावपूरैः परितः सनाथः । स्फुटीचकाराभयदेवसूरि—र्यो भूमिमध्यस्थितमूर्तिमिद्धम् ॥१॥ पुरा श्रीपत्तने राज्य, कुर्वाणे भीमभूपतौ । अभूवन् भूतले ख्याताः, श्रीजिनेश्वरसूरयः ॥ २ ॥ सूरयोऽभयदेवाख्या—स्तेषा

३४ श्रीसर्वदेवसूरि ३५ श्रीअजितदेवसूरि ३६ श्रीविजयसिंहसूरि ३७ श्रीसोमप्रभसूरि ३८ श्रीमुनिचन्द्रसूरि ३९ श्रीअजितसिंहसूरि ४० श्रीविजयसेनसूरि ४१ श्रीमणिरत्नसूरि ४२ श्रीजगच्चन्द्रसूरि ४३ श्रीदेवेन्द्रसूरि ४४ श्रीधर्मघोषसूरि ४५ श्रीसोमप्रभसूरि ४६ श्रीसोमतिलकसूरि ४७ श्रीजयानन्दसूरि ४८ श्रीदेवसुन्दरसूरि ४९ श्रीज्ञानसागरसूरि ५० श्रीकुलमण्डनसूरि ५१ श्रीसोमसुन्दरसूरि ५२ श्रीजयचन्द्रसूरि ५३ श्रीमुनिसुन्दरसूरि ५४ श्रीरत्नशेखरसूरि ५५ श्रीलक्ष्मीसागरसूरि ५६ श्रीसुमतिसाधुसूरि ५७ श्रीहेमविमलसूरि ५८ श्रीआनन्दविमलसूरि ५९ श्रीविजयदानसूरि ६० श्रीहीरविजयसूरि ६१ श्रीविजयसेनसूरि ६२ श्रीविजयदेवसूरिप्रमुखाः ६३। एवमन्येषु अपि आगमिक १ पूर्णिमापक्षीय २ विधिपक्षीयादि ३ गच्छेषु पट्टावल्या एतादृशप्रभावक–श्रीअभयदेवसूरिनाम न क्वाऽपि लिखितमस्ति, ततो यस्य पितामहगुरुः श्रीवर्द्धमानसूरिः गुरुश्च श्रीजिनेश्वरसूरि सतीर्थ्यश्च श्रीजिनचन्द्रसूरिः शिष्यो यस्य श्रीजिनवल्लभसूरिः प्रशिष्यश्च श्रीजिनदत्तसूरिः स्वय च श्रीस्तम्भनकपार्श्वनाथमूर्त्तिप्रटको नवाङ्गीवृत्तिकारकश्च, एतादृशः प्रभावकः श्रीअभयदेवसूरिः श्रीखरतरगच्छे एव जातः, नाऽन्यत्र।

॥ इति श्रीअभयदेवसूरेः खरतरगच्छेशत्वाधिकारः ॥ ४ ॥

ननु–आत्मीयगच्छे प्रतिक्रमणान्ताः साधवः–"आयरिय उवज्झाए"त्ति, गाथा त्रिक कथ न पठन्ति ? उच्यते–आवश्यकादिषु साधूना नामग्राह तस्य अनुक्तत्वात्। ननु–तर्हि श्रावकाः कथ कथयन्ति ? सत्यं, श्रीजिनवल्लभसूरिभिः निजसामाचार्यां उक्तत्वात्, तथाहि–"दाऊण वदण तो, पणगाइसु जइसु खामए तिन्नि। किइकम्म किरिअ ठिओ सड्ढो गाहा तिग पढई ॥ १६ ॥" अत्र आह परः–ननु–श्रीप्रवचनसारोद्धारबृहद्वृत्तौ रात्रिप्रतिक्रमणाधिकारे (४० पत्रे) "वदणय गा-

घत् । अत एवाऽमश्रूचे तैः, पञ्चक्सेति पद कृतम् ॥ १८ ॥ "फणिफणफारफुरतरयणकररंजियनहयल, फलिणीकंदलदल-तमालनीलुप्पलसामल । कमठासुरउवसग्गवग्गसंसग्गअगंजिय, जय पच्चक्खजिणेसपास थंभणयपुरट्ठिय ॥ १८ ॥" एवं द्वात्रिंशता वृत्तैः, तुष्टुवुः पार्श्वतीर्थपम् । श्रीसङ्घोऽपि महापूजाद्युत्सवाँस्तत्र निममे ॥ १९ ॥ अन्त्य वृत्तद्वय तत्र त्यक्त्वा देव्युपरोधतः । चक्रिरे त्रिंशता वृत्तैः, स प्रभावं स्तव हि ते ॥ २० ॥ तत्कालरोगनिर्मुक्ताः, सूरयस्तेऽपि जज्ञिरे । नव्यकारितचैत्ये च, प्रतिमा सा निवेशिता ॥ २१ ॥ स्यानाज्ञविनषाज्ञानां, चक्रुस्ते विवृतीः क्रमात् । देवतावचन न स्यात्, कल्पान्तेऽपि हि निष्फलम् ॥ २२ ॥ इत्यादि समस्तवृत्तान्तजाणी करी जे सवेगी गीतार्थ छे ते समस्तसिधा कहिस्यै, वत्सूत्रयी बीहता थका बीजाई पूर्वाचार्य अनेरे गच्छि हूआ तेहिं इम कह्या जे श्रीअभयदेवसूरि नवाङ्गीवृत्तिकर्त्ता थंभणापार्श्वनाथ प्रकटणहार "जयतिहुयण बत्रीसी" कारक श्रीखरतरगच्छि हूआसही सन्देह नही ॥ न च वाच्यं एतादृशः प्रभावक श्रीअभयदेवसूरिः तपागच्छे न बभूव, कथ तत्पट्टावल्यां तन्नाम असवत् ? । तत्पट्टानुक्रमस्तु अयम्—"श्रीवर्धमान १ श्रीसुधर्म २ जम्बू ३ प्रभव ४ श्रीसिज्जंभव ५ श्रीयशोभद्र ६ श्रीसम्भूतिविजय ७ श्रीस्थूलभद्र ८ श्रीसुहस्ति ९ श्रीसुस्थित १० श्रीइन्द्रदिन्न ११ श्रीदिन्नसूरि १२ श्रीसिंहगिरि १३ श्रीवज्रस्वामि १४ श्रीवज्रसेन १५ श्रीचन्द्रसूरि १६ श्रीसामन्तभद्रसूरि १७ श्रीदेवसूरि १८ श्रीप्रद्योतनसूरि १९ श्रीवादिदेवसूरि २० श्रीमानतुङ्गसूरि २१ श्रीवीरसूरि २२ श्रीजयदेवसूरि २३ श्रीदेवानन्दसूरि २४ श्रीविक्रमसूरि २५ श्रीनरसिंहसूरि २६ श्रीसमुद्रसूरि २७ श्रीमान् देवसूरि २८ श्रीविबुधप्रभसूरि २९ श्रीजयानन्दसूरि ३० श्रीरविप्रभसूरि ३१ श्रीयशोभद्रसूरि ३२ श्रीविमलचन्द्रसूरि ३३ श्रीउद्योतनसूरि

चित्तां शोकेन १ दृप्तचित्तां हर्षेण २ यक्षाविष्टा=देवताधिष्ठितां ३ उन्मादप्राप्तां वातादिना ४ उपसर्गप्राप्ता तिर्यङ्मनुष्या-
दिना नीयमानां ५ साधिकरणा कलहयन्तीं ६, षड्भिः स्थानैः वक्ष्यमाणैः निर्ग्रन्थाः—साधवो निर्ग्रन्थ्याः च साध्व्यः तथाविध-
निर्ग्रन्थाभावे मिश्राः सन्तः साधर्मिक=समानधर्मयुक्त साधुं इत्यर्थ, 'समायरमाणे'त्ति समाद्रियमाणाः—साधर्मिकं प्रति
आदर कुर्वाणाः समाचरन्तो वा उत्पाटनाविव्यवहारविषयीकुर्वन्तो, न अतिक्रामन्ति आज्ञा स्त्रीभिः सह विहार १—स्वा-
ध्याया २—वस्थानादि न कार्यं इत्यादिरूपा, पुष्टालम्बनत्वात् इति 'अतोहिंतो व'त्ति गृहादेः मध्याद् बहिर्नयन्तो वाशब्दा
विकल्पार्थाः, वाहिहिंतो व'त्ति गृहादेः बहिस्तात् निर्बहिः—अत्यन्तबहिः बहिस्तात्तरा नयन्तः, 'उपेक्षमाणा' इति उपेक्षा द्विवि-
धा—व्यापारोपेक्षा अव्यापारोपेक्षा च, तत्र व्यापारोपेक्षया त उपेक्षमाणा तद्विषयाया छेदनबन्धनादिकाया समयप्रसिद्ध-
क्रियाया व्याप्रियमाणा इत्यर्थः, अव्यापारोपेक्षया च मृतकस्वजनादिभिः त सत्क्रियमाण उपेक्षमाणाः तत्र उदासीना
इत्यर्थः, तथा 'उवासमाण'त्ति पाठान्तरेण 'भयमाण'त्ति वा रात्रिजागरणात् तदुपासना विदधानाः, 'उवसामेमाणा'त्ति
पाठान्तरे त क्षुद्रव्यन्तराधिष्ठितं समयप्रसिद्धविधिनोपशमयन्त इति, तथा 'अणुन्नवेमाण'त्ति तत्स्वजनादीन् तत्परिष्ठा-
पनाय अनुज्ञापयन्तः, 'तुसिणीए'त्ति तूष्णींभावेन सम्प्रजन्तः तत्परिष्ठापनार्थं आगमानुज्ञातत्वात् सर्वं इदं आज्ञाऽतिक्र-
माय न भवति इति ।" अत्र स्पष्टमेव साधूनां साध्वीभिः समं विहारो न्यषेधि ॥ १ ॥

तथा पुनर्निषेधमाह—"जे भिक्खू आगंतागारे जाव परिआवहेसु वा एगो एगित्थिए सद्धिं विहार वा करेज्ज सज्झायं वा करेज्ज असणं वा पाण वा साइम वा साइम वा आहारेज्ज उच्चारपासवणं वा परिट्ठवेइ, अण्णयर वा (अणारिअ) आणा-

चिन्मते न पठंति च" इति श्रीभावदेवसूरिकृतयतिदिनचर्यायां (८२ पत्रे)। अथ पञ्चवस्तुकसूत्रे साधुप्रतिक्रमणाधिकारे (७७ पत्रे) 'आयरिय उवज्झाए' इत्यादि गाथात्रिक भणितमस्ति, तत्रापि तद्गच्छीयसामाचारी एव प्रमाणम् ॥ अथवा 'तत्त्व पुनः केवलिनो विदन्ति' यथाऽस्ति तथा प्रमाणं, नाऽस्माकं कोऽपि अभिनिवेशः, असद्गच्छसामाचारी चेयम्, यस्माथव', 'आयरिय उवज्झाए'त्ति गाथात्रिक न पठन्तीति ॥

॥ इति आयरिय उवज्झाए श्रावकपठनाधिकारः ॥ ५ ॥

ननु-केषाञ्चिद्गच्छे साम्प्रत साधूनां साध्वीभि सम विहारो दृश्यते,आत्मगच्छे तु तन्निषेधः, तत् कथम् ? अत्रोच्यते, सूत्रवृत्त्यादौ साधूनां स्त्रीभि सह विहारः १ स्वाध्याय' २ अवस्थानादेः ३ निषेधात्, यदुक्त स्थानाङ्गसूत्रे षष्ठस्थानके प्रथमोद्देशके (३५२ पत्रे), तथाहि—

"छहिं ठाणेहिं निग्गथे निग्गथीं गिण्हमाणे वा अवलमाणे वा नाइक्कमति, त जहा-खित्तचित्त १ दित्तचित्त २ जक्खाइडं ३ उम्मायपत्त ४ उवसग्गपत्त ५ साहिकरण ६ ॥ छहिं ठाणेहिं निग्गथा निग्गंथीओ अ साहम्मिअ कालगय समायरमाणा नाइक्कमति, तजहा-अतोहिंतो वा बाहिं णीणेमाणा वा १ बाहिं हिंतो वा निबाहिं णीणेमाणा २ उवेहमाणा वा ३ उवासमाणा वा ४ अणुन्नवेमाणा वा ५ तुसिणीते वा सपव्वयमाणा ६ ॥ तट्टीका-अनन्तरं गणधरगुणा उक्ताः, गणधरकृतमर्यादया च वर्तमानो निर्ग्रन्थो न आज्ञा अतिक्रामति इति एतत् सूत्रद्वयेनाऽऽह-तत्र प्रथम पञ्चमस्थानके व्याख्यातमेव, तथापि किंचिदुच्यते गृह्णन्=भीयादौ अवलम्बयन् ...

चित्ता शोकेन १ हप्तचित्ता हर्षेण २ यक्षाविष्टा=देवताधिष्ठितां ३ उन्मादप्राप्तां वातादिना ४ उपसर्गप्राप्ता तिर्यङ्मनुष्या-
विना नीयमाना ५ साधिकरणा कलहयन्ती ६, षड्भिः स्थानैः वक्ष्यमाणैः निर्ग्रन्थाः—साधवो निर्ग्रन्थ्याः च साध्व्यः तथाविध-
निर्ग्रन्थाभावे मिश्राः सन्त साधर्मिक=समानधर्मयुक्तं साधुं इत्यर्थं, 'समायरमाणे'त्ति समाद्रियमाणाः—साधर्मिकं प्रति
आदर कुर्वाणाः समाचरन्तो वा उत्पाटनादिव्यवहारविषयीकुर्वन्तो, न अतिक्रामन्ति आज्ञा स्त्रीभिः सह विहार १–स्वा-
ध्याय २–वस्त्रादि न कार्यं इत्यादिरूपा, पुष्टालम्बनत्वात् इति 'अतोहिंतो व'त्ति गृहादेः मध्यात् वहिर्नयन्तो वाशब्दा
विकल्पार्थाः, बाहिहिंतो व'त्ति गृहादेः बहिस्तात् निर्वहिः—अत्यन्तवहिः बहिस्तात्तरा नयन्तः, 'उपेक्षमाणा' इति उपेक्षा द्विवि-
धा–व्यापारोपेक्षा अव्यापारोपेक्षा च, तत्र व्यापारोपेक्षया त उपेक्षमाणा तद्विषयाया छेदनबन्धनादिकाया समयप्रसिद्ध-
क्रियाया व्याप्रियमाणा इत्यर्थः, अव्यापारोपेक्षया च मृतकस्वजनादिभिः त सत्क्रियमाण उपेक्षमाणाः तत्र उदासीना
इत्यर्थः, तथा 'उवासमाण'त्ति पाठान्तरेण 'भयमाण'त्ति वा रात्रिजागरणात् तदुपासना विदधानाः, 'उवसामेमाणा'त्ति
पाठान्तरे त क्षुद्रव्यन्तराधिष्ठितं समयप्रसिद्धविधिनोपशमयन्त इति, तथा 'अणुन्नवेमाण'त्ति तत्स्वजनादीन् तत्परिष्ठा-
पनाय अनुज्ञापयन्तः, 'तुसिणीए'त्ति तूष्णींभावेन सम्प्रव्रजन्तः तत्परिष्ठापनार्थं आगमानुज्ञातत्वात् सर्वं इदं आज्ञाऽतिक्र-
माय न भवति इति।" अत्र स्पष्टमेव साधूना साध्वीभिः समं विहारो न्यषेधि ॥ १ ॥

तथा पुनर्निषेधमाह—"जे भिक्खू आगंतागारे जाव परिआवहेसु वा एगो एगित्थिए सद्धिं विहारं वा करेज्ज सज्झायं
वा करेज्ज असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहारेज्ज उच्चारपासवणं वा परिट्ठवेइ, अण्णयरं वा (अणारिअं) आणा-

चिन्मते न पठंति च" इति श्रीभावदेवसूरिकृतयतिदिनचर्यायां (८६ पत्रे)। अथ पञ्चवस्तुकसूत्रे साधुप्रतिक्रमणाधिकारे (७७ पत्रे) 'आयरिय उवज्झाए' इत्यादि गाथात्रिकं भणितमस्ति, तत्रापि तद्गच्छीयसामाचारी एव प्रमाणम् ॥ अथवा 'तत्त्वं पुन' केवलिनो विदन्ति' यथाऽस्ति तथा प्रमाणं, नाऽस्माकं कोऽपि अभिनिवेशः, असद्गच्छसामाचारी चेयम्, यत्साधवः, 'आयरिय उवज्झाए'त्ति गाथात्रिकं न पठन्तीति ॥

॥ इति आयरिय उवज्झाए श्रावकपठनाधिकारः ॥ ५ ॥

ननु–केषांचिद्गच्छे साम्प्रतं साधूनां साध्वीभिः समं विहारो दृश्यते,आत्मगच्छे तु तन्निषेधः, तत् कथम् ? अत्रोच्यते, सूत्रवृत्त्यादौ साधूनां स्त्रीभिः सह विहारः १ स्वाध्याय २ अवस्थानादेः ३ निषेधात्, यदुक्तं स्थानाङ्गसूत्रे षष्ठस्थानके प्रथमोद्देशके (३५२ पत्रे), तथाहि—

"छहिं ठाणेहिं निग्गंथे निग्गंथीं गिण्हमाणे वा अवलंबमाणे वा नाइक्कमति, तं जहा–खित्तचित्तं १ दित्तचित्तं २ जक्खाइट्ठं ३ उम्मायपत्तं ४ उवसग्गपत्तं ५ साहिकरणं ६ ॥ छहिं ठाणेहिं निग्गंथा निग्गंथीओ अ साहम्मिअं कालगयं समायरमाणा नाइक्कमति, तंजहा–अंतोहिंतो वा बाहिं णीणेमाणा वा १ बाहिं हिंतो वा निबाहिं णीणेमाणा २ उवेहमाणा वा ३ उवासमाणा वा ४ अणुन्नवेमाणा वा ५ तुसिणीते वा संपव्वयमाणा ६ ॥ तट्टीका–अनन्तरं गणधरगुणा उक्ताः, गणधरकृतमर्यादया च वर्त्तमानो निर्ग्रन्थो न आज्ञां अतिक्रामति इति एतत् सूत्रद्वयेनाऽऽह–तत्र प्रथमं पञ्चमस्थानके व्याख्यातमेव, तथापि किंचिदुच्यते गृह्णन्=भीवादौ अवलम्बयन्, हस्तबाहुकलादौ गृहीत्वा न अतिक्रामति आज्ञामिति गम्यते । क्षिप्त-

चित्तां शोकेन १ दृप्तचित्ता दर्पेण २ यक्षाविष्टा=देवताधिष्ठिता ३ उन्मादप्राप्ता वातादिना ४ उपसर्गप्राप्ता तिर्यङ्मनुष्यादिना नीयमाना ५ साधिकरणां कलहयन्तीं ६, पद्भिः स्थानैः वक्ष्यमाणैः निर्ग्रन्थाः—साधवो निर्ग्रन्थ्याः च साध्व्यः तथाविधनिर्ग्रन्थ्याभावे मिश्राः सन्तः साधर्मिक=समानधर्मयुक्तं साधु इत्यर्थः, 'समायरमाणे'त्ति समाद्रियमाणा —साधर्मिकं प्रति आदरं कुर्वाणाः समाचरन्तो वा उत्पाटनादिव्यवहारविषयीकुर्वन्तो, न अतिक्रामन्ति आज्ञा स्त्रीभिः सह विहार १—स्वाध्याया २—वस्थानादि न कार्यं इत्यादिरूपा, पुष्टालम्बनत्वात् इति 'अतोर्द्धितो व'त्ति गृहादेः मध्याद् वहिर्नयन्तो वाशब्दा विकल्पार्थाः, वाहिर्हितो व'त्ति गृहादे वहिस्तात् निर्बहिः—अत्यन्तबहिः बहिस्तात्तरा नयन्तः, 'उपेक्षमाणा' इति उपेक्षा द्विविधा—व्यापारोपेक्षा अव्यापारोपेक्षा च, तत्र व्यापारोपेक्षया त उपेक्षमाणाः तद्विषयाया छेदनबन्धनादिकाया समयप्रसिद्धक्रियाया व्याप्रियमाणा इत्यर्थः, अव्यापारोपेक्षया च मृतकस्वजनादिभिः त सत्क्रियमाण उपेक्षमाणाः तत्र उदासीना इत्यर्थः, तथा 'उवासमाण'त्ति पाठान्तरेण 'भयमाण'त्ति वा रात्रिजागरणात् तदुपासना विदधानाः, 'उवसामेमाणा'त्ति पाठान्तरे त क्षुद्रव्यन्तराधिष्ठित समयप्रसिद्धविधिनोपशमयन्त इति, तथा 'अणुन्नवेमाण'त्ति तत्स्वजनादीन् तत्परिष्ठापनाय अनुज्ञापयन्तः, 'तुसिणीए'त्ति तूष्णींभावेन सम्प्रव्रजन्तः तत्परिष्ठापनार्थं आगमानुज्ञातत्वात् सर्वं इद आज्ञाऽतिक्रमाय न भवति इति।" अत्र स्पष्टमेव साधूनां साध्वीभिः सम विहारो न्यषेधि ॥ १ ॥

तथा पुनर्निषेधमाह—"जे भिक्खू आगंतागारे जाव परिआवहेसु वा एगो एगित्थिए सर्द्धिं विहार वा करेज्ज सज्झायं वा करेज्ज असणं वा पाण वा खाइम वा साइम वा आहारेज्ज उच्चारपासवण वा परिट्ठवेइ, अण्णयर वा (अणारिअ) आणा-

रिअं निठ्ठुर असमणपाउग्गं कह कहेइ कहंतं वा साइज्जति तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासिय परिहारट्ठाण अणुग्घाइयं" इत्यादि इति श्रीनिशीथेऽष्टमोद्देशके ॥ उक्तः सप्तमः, इदानीं अष्टम "तस्स इमो सम्बंधो कहितो"—

"कहिया खलु आगारा, ते उ कहिं? कतिविहा? य विण्णेया। अगतागारादीसुं, सविगारविहारमादीया ॥ १ ॥" सत्तममत्तं अतसुत्ते(इ)त्थी पुरिसागारा कहिता, ते कहिं हवेज्ज? अगतागाराविसु, ते आगतागारादी इह समति कतिविहा गाने अगारा निण्णेया? इह अपुव्वकवियाणि—

व्याख्या–एगो साहू एगाए इत्थिआए सद्धिं समाणं गामाओ गामंतर विहारो अहवा गयागय चंकमण सज्झाय करेइ, असणादिअं वा आहारेति उच्चारं पासवणं वा परिठवेइ, एगो एगत्थिआए सद्धिं विहारभूमिं गच्छति, अणारिआ कामकहा निरन्तर वा अप्पिय कहं कहेति, काम निठ्ठुरकहाओ एता चेव असमणपाउग्गा, अथवा देसभत्तकहादी जा संजमोवका-रिका ण भवति, सा सव्वा असमणपाउग्गा ॥

"आगतगारे आरामागारे कुलावसत्थे। पुरिसित्थिएगऽणेगे चउक्कभयणा, दुयक्कोऽवि ॥२॥" एगो एगित्थिए सद्धिं, एगो अणेगित्थीए सद्धिं, अणेगा एगित्थिए सद्धिं, अणेगा अणेगित्थिए सद्धिं, जा कामकहा सा उ होइ अणारिया तत्थ लोइया णरवाहणदत्तकथा लोगुत्तरिया तरंगवती मलयवती मगधसेणादी, चउत्तरिया निठ्ठुरमलीकरण आगवयदोससामण्णया ॥ ३ ॥

"अवि मायर पि सद्धिं, कहावि एगाणियस्स पडिसिद्धा। किं पुण? अगारिगादी, तरुणित्थीणं सहगयस्स ॥ ४ ॥"

माइभगिणिमादीहिं अगमित्थीहिं सद्धिं एगागिअस्स धम्मकहावि काउ ण वट्टइ, किं पुण अण्णाहिं तरुणित्थीहिं सद्धिं ? ॥ ५ ॥"

"अण्णावि अप्पसत्थासु थीसु कहा किमु अणारिय असब्भ चंकमणपाणभोअणे उच्चारेसु तु सविसेसो ॥ ६ ॥" भयणपया चउभंगो

"भयणपयाण चउण्हं, अण्णयरजुते अ संजए सते। जे भिक्खू विहरेज्जा, अहवा करेज्ज सज्झाय ॥७॥" भयणपया चउभगो

पुव्वुत्तो। असणादि वा आहारे उच्चारे उच्चारिं च आयरिज्जाहि निठुरमसा(हु) जहुत्त। अन्नयर कह जो कहेइ, ॥८॥ सो आणा अणवत्थ, मिच्छत्तविराहण तहा दुविहं, पावति जम्हा तेणं एए पया विवज्जेज्जा ॥९॥ बितियपदमणप्पज्झे, गेलण्णुवसग्गरोहगद्धाणे। संभमभयवासासु न कप्पंति विहाराइ काउं, कारणे पुण करेज्जावि ॥ ९ ॥ दारगाहा—अणणच अणप्पज्झो सो सयाणि विहारादीणि करेज्जा, इआणि गेलण्णे य, खति समादीण निक्खमणे ॥ १ ॥ दारगाहा—अणणच अणप्पज्झो सो चेव य वितिअपए गिलण्णे अद्धसमुद्देसे ॥ १० ॥ कंठा। इयाणिं उद्देसंमि चउत्थे गेलण्णे जो विही समक्खाओ सो चेव य वितिअपए गिलण्णे अद्धसमुद्देसे ॥ १० ॥ कंठा। इयाणिं उवसग्गेत्ति तत्थिम उदाहरण—कुलवसंमि पहीणे, ससगभसगेहिं होइ आहरण। सुकुमालिअपवज्जा, सपच्चवाया य फासेण ॥ ११ ॥ इत्यादि निशीथभाष्यचूर्ण्यौं अष्टमोद्देशके-किंच यत्र संयत्यो भवन्ति तत्र क्षेत्रे अपि अनवस्थान साधूनां आस्तां विहारादि ॥ २ ॥ तथा चोक्तं बृहत्कल्पसूत्रभाष्यवृत्तिषु द्वितीयखण्डे—"से गामसि वा जाव राय, हाणींसि वा एगगवडाए एगदुवाराए एगनिक्खमणपवेसाए नो कप्पइ निग्गंथाण य निग्गंथीण य एगयओ वत्थए" ॥ अथाऽस्य सूत्रस्य कः सम्बन्ध ? इत्याह—गामनगराइएसु तेसु अ खेत्तेसु कत्थ वसिअव ? जत्थ न वसति श्रमणीम-

म्भासे निग्गमपहे वा, ग्रामनगरादिषु तेषु पूर्वसूत्रोक्तेषु क्षेत्रेषु कुत्र वस्तव्य इति चिन्तायां अनेन सूत्रेण प्रतिपाद्यते, यत्र "अभ्यासे" प्रतिश्रयासन्ने "निर्गमपथे वा" निर्गमनद्वारे श्रमण्यो न वसति भवन्ति तत्र वस्तव्यं इति । + + + "जहा तस्स रायपुत्तस्स वेओहिं अवगा अपत्थियंपि कार्ड पडिसिद्धा, तहा भगवयाऽवि साहूण अबंभपडिसेवा इह परत्थ य अपत्थियत्ति काउ पडिसिद्धा, तप्परिहरणे वा ओम इत्थीपसुपडगसंसत्ताए वसहीए सजयखेत्ते अ ण ठायव ॥" एवा-मता साधुभिः साध्वीभिः समं न विहर्त्तव्यम्, यत्र च साधवः साध्वीः प्रतिक्षेत्रान्तरं नयन्ति, तत्राऽपि अमी एव न-यन्ति, नाऽन्ये । यदुक्त, पञ्चानां=आचार्योपाध्यायप्रवर्तकस्थविरगणावच्छेदकानां एकतरः संयतीः नयति, ताश्च स्त्रीसा-र्थेन समं संविग्नेन परिणतवयसा नेतव्या । इति बृहत्कल्पभाष्ये चतुर्थोद्देशके ॥ ३ ॥

गणधरस्य एव साध्वीना क्षेत्रान्तरनयने अधिकारः, तत्प्रकारश्च निशीथभाष्यचूर्णौ अष्टमोद्देशके जीतकल्पे च प्रोक्तः–"जया खेत्ताओ खेत्त संजतीओ संचारिज्जति तदा निब्भए निराबाहे साहू पुरओ ठिआ, ताओ मग्गओ पट्ठिआ आगच्छति, भयाइ कारणे पुण साधूना पुरओ मग्गओ संजतीओ संचारिज्जंति, तया निब्भए निराबाहे साहू पुरओ ठिआ ताओ य मग्गओ पट्ठिआ आगच्छति, भयाइकारणे पुण साधूण पुरओ मग्गओ पक्खापक्खिसय वा समंतओ वा ठिआ गच्छति, "णिपच्च गाहा" संजतीण सनाधिणो से संजया तेहिं सहिओ गणधरो अप्पबितिओ अप्पतितिओ वा निपच्चवाए णेति सपच्चवाए सत्थेण समं णेति, ओ मा सजमो सहस्सजोधाती सत्थे वा कयकरणो तेण सहिओ णेति, "उमयट्ठा० गाहा" एगे आयरिआ भणति पुरओ वि ठिआ संयतीओ गच्छंति, किं कारणम् ? आह, काइअसण्णाणिवेधुसजयं मा मरुणीए उहिति सोयवत्तणि तम्हा पुरओ गच्छतु त ण

जुञ्जति कम्हा ? तासिं अविणओ भण्णति 'लोगविरुद्ध च' तम्हा उभय जयणाए कारेज्जा, का जयणा ? जत्थ एगो काइ-असण्ण वोसिरति, तत्थ सवेपि चिट्ठति, ततो (सजइओ) वि चिट्ठते दट्ठुं मग्गतो चेव चिट्ठति, ताओ वि पिट्ठओ सरी-रचिंत करेंति एव दोसा न भवति" इत्यादि ।

साध्वीना क्षेत्रान्तरनेता गणधरश्च ईदृग् इष्यते—

"पिअधम्मे दढधम्मे, संविग्गोऽवज्जओअतेजस्सी । सगहुवग्गह कुसलो, सुत्तत्यविऊ गणाहिवई ॥ १ ॥"

व्याख्या—"पिअधम्मो०" प्रिय इष्टो धर्मः श्रुतचारित्ररूपो यस्य स प्रियधर्मः, यस्तु तस्मिन् एव धर्मे दृढो द्रव्यक्षेत्रा-घापदुदयेऽपि निश्चलः स दृढधर्मो राजदन्तादिवत् दृढशब्दस्य पूर्वनिपातः, संविग्नो द्विधा—द्रव्यतो भावतश्च, तत्र द्रव्यतो मृगः सदैव त्रस्तमानसत्वात्, भावतो यः संसारभयोद्विग्नः पूर्वरात्रापररात्रकाले संप्रेक्षते—'किं मया कृत ?, किं वा कर्तव्य-शेष ?, किं वा शक्यमपि तपःकर्मादिक किं अह न करोमि ?' इत्यादि, "वज्जित्ति" अकारप्रश्लेषाद् अवद्यं=पाप, सूचनात् सूत्रं इति कृत्वा तद्भीरुः अवद्यभीरुः, ओजः तेजश्च उभयमपि वक्ष्यमाणलक्षण तद् विद्यते यस्य स ओजस्वी तेजस्वी चेति, 'संग्रहो' द्रव्यतो वस्त्रादिभिः भावतः सूत्रार्थाभ्यां, 'उपग्रहो' द्रव्यत औषधादिभिः, भावतो ज्ञानादिभिः, एतयोः सयति-विषययोः सग्रहोपग्रहयोः कुशलः, तथा 'सूत्रार्थविद्' गीतार्थः, एष एवंविधो गणधराधिपतिः आर्यिकाणा गणधरः स्थाप-नीयः । अथ ओजस्वी इति व्याचष्टे—

'जे भिक्खू सगणच्चियाए परगणच्चियाए निग्गंथीए सम गामाणुगाम दूइज्जमाणे पुरओ गच्छमाणे पिट्ठओ रीअमाणे ओहयमणसकप्पे चिंतासोगसागरं सपविट्ठो करयलपल्हत्थमुहे अट्टज्झाणोवगए विहार करेइ जाव करेंत वा साइज्जति जाव त सेयमाणे आवज्जति चाउम्मासिअं परिहारट्ठाणं अणुग्घइयं" इति ॥ ६ ॥

अत्रेदं तात्पर्यम्-श्रीस्थानाङ्गसूत्राभिप्रायेण साधूनां स्त्रीभिः समं विहारो निषिद्धः, तथा निशीथभाष्याभिप्रायेण साधूना स्त्रीभिः सम चतुर्मासाऽपि विहारो न्यषेधि, करणे तु बहवो दोषाः प्रतिपादिताः, ग्लानादिनिमित्ते ताभिः सम विहारविधिः उक्तः, स तु कारणिकः, अपवादपद उत्सर्गपदे स्थाप्यमान तु उत्सूत्राय भवतीति । तथा श्रीबृहत्कल्पभाष्यवचनप्रामाण्यात्तु-श्रीआचार्योपाध्यायप्रवर्तकस्थविरगणावच्छेदकानां बहुश्रुतानां परिणतवयस्कानां संविग्नाना अन्यतरः कोऽपि स्त्रीसम्बन्धिसार्थयोगेन साध्वीः क्षेत्रान्तरे नयति, तत्राऽपि आचार्यः संवेगी निर्विकारो मात्रादिः सहस्रयोधिशस्त्रकलाकुशलो द्वित्रिसाधुसमन्वितो विलोक्यते नाऽन्यः, एतादृशः पूर्वोक्तनिशीथभाष्यबृहत्कल्पविधिना साध्वीः क्षेत्रान्तरे प्रापयति न यादृशः तादृशः, अतोऽत्र इदं आकूतम्—सामान्यसाधुना तु साध्वीनां क्षेत्रान्तरे प्रापणं निषिद्धं, आचार्यादिपञ्चक प्रापयति तत्र तु कारण उक्त, तथा पुनः साध्वीभि सम विहारनिषेधसूत्रं तु स्पष्टमेव पूर्वं उपदिष्टमस्ति, तथा लोकविरुद्धश्चायम्—ताभिः समं विहार' ये केऽपि पश्यन्ति तेऽपि निन्दन्ति—अहो ब्रह्मचर्यधारिणोऽमी योगियोगिनीवत् ये वनिताभि' विरहिता दिनमपि स्थातुं न शक्नुवन्ति । अपरं च तेषामपि मध्ये केचिद्भुक्तभोगाः, केचिदभुक्तभोगाः, केचिद्युवानः, ततस्तेषां वा दृष्ट्वा कथं चेतोवृत्तौ कलाकेलिकल्लोलाः जलधिजलवेला इव प्रसरन्त्यो वारयन्ते, तदनिवारणेन कदाचित्कथञ्चित्

शीलव्रतभङ्गे द्वयोरपि बोधिबीजनाशः स्यात्। यदुक्तम्—"चेइयदव्वविणासे, १ रिसिघाए पवयणस्स उड्डाहे। संजइ च उत्थभगे, मूलग्गीबोहिलाभस्स ॥ १ ॥" इत्यादि, न च सर्वेऽपि साम्प्रतीकाः साधवः श्रीस्थूलभद्रस्वामिसधर्माणः सन्ति, तत-तत्समयेऽपि तत्समतां न केऽपि सिंहगुहावासितत्सतीर्थ्यसाधुप्रमुखा लेभिरे, ततः सम्प्रति तथाविधाः कथं भवेयुः ?, तासां सङ्गतिः एव असङ्गता ओतोः इवाऽऽखूनाम्। यदुक्त श्रीउत्तराध्ययनसूत्रे ३२ अध्ययने (६२५ पत्रे)—

"जहा विरालावसहस्स मूले, न मूसगाण वसही पसत्था। एमेव इत्थीनिलयस्स मज्झे, न बंभयारिस्स समो निवासो" ॥ १३ ॥ इत्यादि ॥७॥ तत आधुनिकसाधुभिः साध्वीभिः समं विशेषतो विहारो न कार्यः, जिनाज्ञाभङ्गात्। तत्प्रसङ्गेन महानर्थकोटिप्रादुर्भावाच्च ॥

ननु—तपागच्छे साम्प्रत किमिति साध्वीभिः सम साधवो विहार कुर्वन्ति ? उच्यते—सिद्धान्तादिषु निष्कारण प्रकट निषेधे अपि, तपागच्छीयश्रीविजयचन्द्रसूरिणा एकादशनवीनाऽऽचरणासु साध्वीभिः सम साधूना विहारस्य स्थापितत्वात्, यदुक्त तपागच्छीयप्रबन्धे, तथाहि—

"श्रीजगच्चन्द्रसूरिणा वीजापुरे स० १२८५ 'तपा' इति नाम लब्ध द्वादशवर्षाचाम्लकरणेन, तच्छिष्यौ श्रीदेवेन्द्रसूरि १ श्रीविजयचन्द्रसूरी २ तत्र प्रथमो देवेन्द्रसूरिः तत्पट्टे स्थापितः, द्वितीयस्तु आचार्यत्वेन गच्छप्रवर्तकः तदनु ॥ श्रीदेवेन्द्रसूरौ मालवक गते, गूर्जरधरित्र्या विजयचन्द्रसूरिणा सर्वगच्छावर्जनार्थं निर्विकृतिकप्रत्याख्याने निर्विकृतिकग्रहणम् १, साधुभिः सम साध्वीविहारस्थापन २, तत्कालीनोष्णोदकग्रहण ३, साधुसाध्वीना वस्त्रपोट्टिकाप्रदानम् ४, हरितफल-

सद्यस्कद्वितीयव्याख्याने, बहुदिवससम्भृतगोधूममण्डकं व्याख्यातं, ततः पर्युषितद्विदलपर्युषितगोधूममण्डकयोः द्वयोरपि ग्रहणं स्वयं अङ्गीकरणेन भगवता साधूनामपि अनुज्ञातम् । एवमाचाराङ्गचूर्णौ अपि, तथाहि–'सुचिते णाम कुसणं वा असूचित भत्त, सीतपिंडो–वासी सतक्कूरो पुराणकुम्मासो वि पज्जुसिअकुम्मासो अदु वक्कस पुलाग वा उद्दे पिंडे अलद्धए दविए, पक्को पुराणधण्णवक्कसं पुराणसतुगा च पुराणगोरसो वा पुराणगोधूममण्डको वा, पुलाग णाम अवयवो निष्फावादि, लद्धेवि पज्जत्ते, दविओ नाम न रागं गच्छति" इत्यादि, अत्राऽपि पर्युषितद्विदलगोधूमयोः ग्रहण व्याख्यात ॥ २ ॥

न च वाच्यं, श्रीमहावीरदेवस्य लोकातीतमार्गत्वात् भवतु नाम पर्युषितद्विदलादिग्रहण, पर विधिवादेन साधुभि अपि कुत्राऽपि तद्ग्रहण व्यधायि ? उच्यते–श्रीऔपपातिकप्रथमोपाङ्गे (१९ पत्रे) बालतपोऽधिकारे श्रीमहावीरशिष्यसाधुभिः तद्ग्रहण कृतं, तथाहि–

'तेणं कालेण इत्यादि, यावत्, अन्नगिलायए' ततश्च–"अरसाहारे विरसाहारे अंताहारे पंताहारे लुहाहारे सेत रस परिचाए' इत्यादि ॥"

व्याख्या–'अन्नगिलाय'त्ति अन्न–भोजन विना ग्लायति, अन्नग्लायकः, स च अभिग्रहविशेषात् प्रातरेव दोषात् न "अरसाहारे"त्ति सुगिति इत्यादि, "अरसो" हिंग्वादिभिः असंस्कृतः आहारो यस्य स तथा, "विरसाहारे"त्ति विगतरसः पुराणधान्यौदनादिः "अंताहारे"त्ति, अन्ते भवं अन्त्य=जघन्यधान्यं वल्लादि "पंताहारे"त्ति, प्रकर्षेण अन्त्ये वल्लाद्येव भुक्तावशेषं पर्युषितं वा 'लूहाहारेत्ति रूक्ष–रूक्षस्वभाव', इत्यादि, अत्रापि पंताहारव्याख्याने पर्युषितवल्लादिग्रहण साधूनामपि अनुज्ञात-

मेव ॥३॥ एव सूत्रकृताङ्गेऽपि क्रियास्थानकाधिकारे साधुवर्णके (३३२ पत्रे), तथाहि—"अदुत्तर च ण उक्खित्तचरगा × × अतचरगा पतचरगा × × अताहारा पताहारा अरसाहारा विरसाहारा लूहाहारा तुच्छाहारा अतजीवी पतजीवी" इत्यादि ॥४॥

तथा स्थानाङ्गेऽपि पञ्चमस्थानके प्रथमोद्देशके साधूनां अभिग्रहाधिकारे (२९६ पत्रे), तथाहि—

"पच ठाणाइं समणाण जाव अन्मणुन्नायाइ भवति, त जहा उक्खित्तचरते निक्खित्तचरते अतचरते पतचरते लूहचरते" व्याख्या—इतश्च साधुधर्मभेदस्य बाह्यतपोविशेषस्य वृत्तिसंक्षेपाभिधानस्य भेदाः 'उक्खित्तचरए' इत्यादिना अभिधीयन्ते, तत्र उत्क्षिप्त स्वप्रयोजनाय पाकभाजनात् उद्धृत तदर्थं अभिग्रहविशेषात् चरति—तद्गवेषणाय गच्छति इति उत्क्षिप्तचरकः १, एव सर्वत्र, नवर निक्षिप्त=अनुद्धृत २, अन्ते भव आन्त=भुक्तावशेषं वल्लादि ३, प्रकृष्ट आन्त=प्रान्त तदेव पर्युषित ४, रूक्षं=निःस्नेहं इति ५, इह च भावप्रत्ययप्रधानत्वेन उत्क्षिप्तचरकत्व इत्यादि द्रष्टव्य, एव उत्तरत्राऽपि भावप्रधानता दृश्या, इह च आद्यौ भावाभिग्रहौ इतरे द्रव्याभिग्रहाः, अत्राऽपि प्रान्तशब्देन पर्युषितवल्लादि व्याख्यातम् ॥ ५ ॥

पुनरपि श्रीस्थानाङ्गे चतुर्थस्थानके द्वितीयोद्देशके (२१९ पत्रे), तथाहि—

"चउव्विहे आहारे पन्नत्ते तजहा—उवक्खरसपन्ने १, उवक्खडसपन्ने २, सभावसपन्ने ३, परिजुसियसपन्ने ४" व्याख्या—उपस्क्रियते अनेन इति उपस्करो हिङ्ग्वादि', तेन सपन्नो युक्तः उपस्करसपन्नः तथा उपस्करण उपस्कृत=पाक इत्यर्थः, तेन सपन्न ओदनमण्डकादिः उपस्कृतसपन्नः पाठान्तरेण नो उपस्करसपन्नो—हिङ्ग्वादिभि असस्कृत ओदनादिः, स्वभावेन—पाक विना सपन्नः—सिद्धो द्राक्षादिः स्वभावसपन्नः, 'परिजुसिय'त्ति पर्युषित=रात्रिपरिवसन तेन सपन्नः पर्युषितसपन्नः

सप्तम्यद्वितीयव्याख्याने, बहुदिवससम्भृतगोधूममण्डकं व्याख्यात, ततः पर्युषितद्विदलपर्युषितगोधूममण्डकयोः द्वयोरपि ग्रहणं स्वयं अङ्गीकरणेन भगवता साधूनामपि अनुज्ञातम् । एवमाचाराङ्गचूर्णौ अपि, तथाहि–'मुचिते णाम कुम्मणि व असूचित भक्त, सीतपिंडो–वासी तत्कूरो पुराणकुम्मासो वि पज्जुसिअकुम्मासो अवु चकसं पुलाग वा उद्दे पिंडे अठद्वए दविए, एकतो पुराणधण्णवकसं पुराणसतुगा च पुराणगोरसो वा पुराणगोधूममण्डको वा, पुलाग णाम अवयवो निष्फावादि, उभेवि पज्जुसे, दविओ नाम न रागं गच्छति" इत्यादि, अत्राऽपि पर्युषितद्विदलगोधूमयो ग्रहण व्याख्यात ॥ २ ॥

न च वाच्य, श्रीमहावीरदेवस्य लोकातीतमार्गत्वात् भवतु नाम पर्युषितद्विदलादिग्रहण, पर विधिवादेन साधुभि अपि कुत्राऽपि तद्ग्रहणं व्यधायि ? उच्यते–श्रीऔपपातिकप्रथमोपाङ्गे (३९ पत्रे) बाह्यतपोऽधिकारे श्रीमहावीरशिष्यसाधुभि तद्ग्रहण कृतं, तथाहि–

'तेणं कालेण इत्यादि, तावत्, अन्नगिलायए' ततश्च–"अरसाहारे विरसाहारे अंताहारे पंताहारे लुहाहारे सेव रस परिचाए' इत्यादि ॥"

व्याख्या–'अन्नगिलाय'त्ति अन्न–भोजन विना ग्लायति, अन्नग्लायकः, स च अभिग्रहविशेषात् प्रातरेव दोषान्न "अरसाहारे"त्ति भुगिति इत्यादि, "अरसो" हिंग्वादिभिः असंस्कृत आहारो यस्य स तथा, "विरसाहारे"त्ति विगतरसः पुराणधान्यौदनादिः "अंताहारे"त्ति, अन्ते भव अन्त्य=अधम्यधान्यं वल्लादि "पंताहारे"त्ति, प्रकर्षेण अन्त्यं वल्लाद्येव भुक्तावशेषं पर्युषितं वा 'लूहाहारे'त्ति रूक्ष–रूक्षस्वभाव', इत्यादि, अत्रापि पंताहारव्याख्याने पर्युषितवल्लादिग्रहण साधूनामपि अनुज्ञात-

मेव ॥३॥ एवं सूत्रकृताङ्गेऽपि क्रियास्थानकाधिकारे साधुवर्णके (३३१ पत्रे), तथाहि—"अदुत्तरं च णं उक्खित्तचरगा × × अंतचरगा पंतचरगा × × अंताहारा पंताहारा अरसाहारा विरसाहारा लूहाहारा तुच्छाहारा अंतजीवी पंतजीवी" इत्यादि ॥४॥

तथा स्थानाङ्गेऽपि पञ्चमस्थानके प्रथमोद्देशके साधूनां अभिग्रहाधिकारे (२९६ पत्रे), तथाहि—

"पंच ठाणाइं समणाणं जाव अब्भणुन्नायाइं भवंति, तं जहा उक्खित्तचरते निक्खित्तचरते अंतचरते पंतचरते लूहचरते" व्याख्या—इतश्च साधुधर्मभेदस्य बाह्यतपोविशेषस्य वृत्तिसंक्षेपाभिधानस्य भेदाः 'उक्खित्तचरए' इत्यादिना अभिधीयन्ते, तत्र उत्क्षिप्तं स्वप्रयोजनाय पाकभाजनात् उद्धृतं तदर्थं अभिग्रहविशेषात् चरति—तद्गवेषणाय गच्छति इति उत्क्षिप्तचरकः १, एवं सर्वत्र, नवरं निक्षिप्तं=अनुद्धृतं २, अन्ते भवं आन्तं=भुक्तावशेषं वल्लादि ३, प्रकृष्टं आन्तं=प्रान्तं तदेव पर्युषितं ४, रूक्षं=निःस्नेहं इति ५, इह च भावप्रत्ययप्रधानत्वेन उत्क्षिप्तचरकत्वं इत्यादि द्रष्टव्यं, एवं उत्तरत्राऽपि भावप्रधानता दृश्या, इह च आद्यो भावाभिग्रहो इतरे द्रव्याभिग्रहाः, अत्राऽपि प्रान्तशब्देन पर्युषितवल्लादि व्याख्यातम् ॥ ५ ॥

पुनरपि श्रीस्थानाङ्गे चतुर्थस्थानके द्वितीयोद्देशके (२१९ पत्रे), तथाहि—

"चउव्विहे आहारे पन्नत्ते तंजहा—उवक्खरसंपन्ने १, उवक्खडसंपन्ने २, सभावसंपन्ने ३, परिजुसियसंपन्ने ४" व्याख्या—उपस्क्रियते अनेन इति उपस्करो हिङ्ग्वादिः, तेन संपन्नो युक्तः उपस्करसंपन्नः तथा उपस्करणं उपस्कृतं=पाक इत्यर्थः, तेन संपन्नं ओदनमण्डकादि उपस्कृतसंपन्नं पाठान्तरेण नो उपस्करसंपन्नो—हिङ्ग्वादिभिः असंस्कृतः ओदनादिः, स्वभावेन—पाकं विना संपन्नः—सिद्धो द्राक्षादिः स्वभावसंपन्नः, 'परिजुसिय'त्ति पर्युषितं=रात्रिपरिवसनं तेन संपन्नः पर्युषितसंपन्नः

इडुरिकादिः, यतः ताः पर्युषितकञ्जीकृताः अम्लरसाः भवन्ति, आरनालस्थिताम्रफलादिः वा इति, अत्राऽपि पर्युषितशब्दस्य तथैव अर्थव्याख्यानात् ॥ ६ ॥ एवं ओघनिर्युक्तिसूत्रवृत्त्योः अपि (९७ पत्रे), तथाहि–

"खित्त तिहा करेत्ता, दोसीणे नीणिअंमि अ भयति। अन्नो लद्धो बहुओ, थोवं दे मा य रूसेज्जा ॥२४५॥ अहव ण दोसीणं चिय, आयामो देहि दहि भवं खीरं। खीरे भगगुरुपेज्जा, थोवं थोवं च सव्वत्थ ॥२४६॥" व्याख्या–क्षेत्रं त्रिधा कृत्वा त्रिभिः भागैः विभज्य एको विभागः प्रत्युषसि एव हिण्ड्यते, अपरो मध्याह्ने हिण्ड्यते, अपरो (अन्त्यो) अपराह्ने, एवं ते भिक्षां अटन्ति, 'दोसीणे नीणियंमि य भयति' 'दोसीणे' पर्युषिते आहारे निस्सारिते सति वदन्ति–'अण्णो लद्धो बहुओ' अन्य आहारो लब्धः प्रचुरः ततश्च 'थोवं दे'त्ति स्तोकं ददस्व–स्वल्पं प्रयच्छ, 'मा य रूसेज्ज'त्ति मा वा रोषं ग्रहीष्यसि अनादरजनितम्, एतच्चाऽसौ परीक्षार्थं करोति, किं अयं लोको दानशीलो न वा? इति, अत्राऽपि 'दोसीण'पदव्याख्याने पर्युषिताहारग्रहणं अनुमतं ॥७॥ पुनरपि ओघनिर्युक्तिः तत्र वृत्तिपाठः पर्युषितद्विदला-ऽऽहारग्रहणसूचकः (१८७ पत्रे) तथाहि–

"अंतंव भोक्खामि–त्ति बेसए भुंजए य तह चेव। एस ससारणिविट्ठो, ससारओ उट्ठिओ साहू ॥ ५७१ ॥" व्याख्या–इदानीं ससारः कदाचिद् भोजनार्थं उपविशन् भवति कदाचिद् उपविष्टः कदाचिद् उत्थितः, एतत् प्रदर्शनाय आह–'अंतवं' अन्त्य–प्रत्यवर वल्लचणकादि तदपि अन्त्यं पर्युषितं चणकादि अन्त्यं अपि अन्त्यं अन्त्यान्त्यं भक्षयिष्यामि इति, एवंविधेन परिणामेन उपविष्टो भण्डस्या भुङ्क्ते यः तथैव एष साधुः शुभपरिणामत्वात् ससार उपविष्टः ससारश्च उत्थितः तस्य शुभपरिणामस्य अप्रतिपतितत्वात्, एवमेव भङ्गत्रितयं योजनीयं, तत्र प्रथमो भङ्गः ससारो निविट्ठो ससारो उट्ठिओ १

ससारो निविट्ठो असारो उट्ठिओ विइओ भंगो २ असारो निविट्ठो ससारो उट्ठिओ तइओ भंगो ३ असारो निविट्ठो असारो उट्ठिओ एस चउत्थो भंगो ४ सारश्चाऽत्र ज्ञानादिः, आदिग्रहणात् दर्शन चारित्र चेति तेन ज्ञानादिना सहितो यः साधुः स ससारो भण्यते इत्यादि ॥ ८ ॥

एव प्रश्नव्याकरणे प्रथमसवरद्वारे (१०० पत्रे) "अंतचरएहिं" इत्यादि–व्याख्या–अन्त=वल्लचणकादि, प्रान्त–तदेव भुक्तावशेष पर्युषितं वा ॥ ९ ॥

ननु–यथा विधिवादेन पर्युषितद्विदलादिकग्रहण दृश्यते तथा चरितानुवादेनाऽपि क्वाऽपि अस्ति? उच्यते–अस्तीति, श्रीभगवतीसूत्रे नवमशतके त्रयस्त्रिंशत्तमोद्देशके (४८४ पत्रे), तथाहि–जमालिना पर्युषितद्विदलवल्लचणकादिग्रहणात् तथाहि–"तते णं तस्स जमालिस्स अणगारस्स तेहिं अरसेहि" इत्यादि । "अरसेहि अ"त्ति हिङ्ग्वादिभि असस्कृतत्वात् अविद्यमानरसैः, 'विरसेहि य'त्ति–पुराणत्वात् विगतरसैः, 'अतेहि य'त्ति अरसतया सर्वधान्यान्तवर्त्तिभि वल्लचणकादिभिः, 'पतेहिअ'त्ति तैरेव भुक्तावशेषत्वेन पर्युषितत्वेन वा प्रकर्षेण अन्तवर्त्तित्वात् प्रान्ते, ॥ १० ॥ तथैव ज्ञाताधर्मकथाया पञ्चमाध्ययने (१११ पत्रे) सेलकाचार्यैरपि शैथिल्यावस्थायाः प्रागपि तद्ग्रहणात् तथाहि–"तते ण तस्स सेलगरस रायरिसिस्स तेहिं अंतेहि य पतेहि य तुच्छेहि य" इत्यादि–व्याख्या–'अतेहि य'त्ति इत्यादि अन्तैः=वल्लचणकादिभिः, प्रान्तैः–तैरेव भुक्तावशेषै पर्युषितैः वा इत्यादि ॥ ११ ॥

ननु-तपागच्छीया आधुनिकाः पर्युषितवल्लचणकपूपिकादीनां ग्रहणं श्रीआचाराङ्ग-सूत्रकृताङ्ग-स्थानाङ्ग-भगवती-ज्ञाताधर्मकथा-औपपातिक-ओघनिर्युक्त्यादिसूत्रवृत्तिषु साक्षाद्भगवताऽनुज्ञातमपि निषेधयन्तो दृश्यन्ते, परं तद्गच्छीयप्राक्तनसूरिकृतग्रन्थेऽपि निषेधोऽस्ति न वा ? उच्यते-निषेधो दूरे तिष्ठतु, प्रत्युत तद्ग्रहणं अनुज्ञातमस्ति, यदुक्तं तपागच्छीयरत्नशेखरसूरिभिः पञ्चाधिकपञ्चदशशततवर्षे १५०६ कृतायां श्रीश्राद्धप्रतिक्रमणवृत्तौ विधिकौमुदीनाम्न्यां चतुर्मासिकाभिग्रहाधिकारे श्रावकानधिकृत्य पर्युषितद्विदलपूपिकापर्पटवटकादि-शुष्कशीततन्दुलीयकादि-पत्रशाकदुम्परकलादिरिकखर्जूरद्राक्षाखण्डशुण्ठ्यादीनां कुन्थुकुन्थीलिकादिसंसक्तिसम्भवात् त्यागः, औषधादिविशेषकार्ये तु सम्यक् शोधनादियतनया एव तेषां ग्रहणमित्यादि, एवमथवा चातुर्मासिके पर्युषितद्विदलादीनां निषेधं वदता च आचार्येण शीतकालादौ तद् अप्रतिषेधात् तद्ग्रहणं उक्तमेव । पुनर्विधिकौमुद्यामेव तपागच्छनायक-श्रीरत्नशेखरसूरिणा पर्युषितपूपिकानां निषेधो न कृत, किन्तु पर्युषितद्विदलपूपिकानिषेधः ? काकोक्तिः इयं । तथाहि-

पर्युषितद्विदलपूपिकादि १ केवलजलराद्धकूरादि २ तथाऽन्यदपि सर्वं कुथितान्न पर्युषितोदनपक्वान्नादि वा अभक्ष्यत्वेन वर्जनीयमिति, तन्निषेधश्च अस्माभिरपि सर्वैः क्रियते एव, को नाम कुथितान्नपर्युषितद्विदलपूपिकाः स्वीकरोति ? इति ।

ननु-ये च तपागच्छीयाः पर्युषितवल्लचणकमाषादिद्विदलानां पर्युषितगोधूममण्डकपूपिकादीनां च ग्रहणनिषेधं कुर्वन्ति, ते ? किं सूत्राक्षराणि दर्शयन्ति, किं वा स्वगच्छवृद्धपरम्परां वदन्ति ?, उच्यते-स्वगच्छपरम्परामेव, यदुक्तं तपागच्छाचार्य-हीरविजयसूरिप्रसादीकृतप्रश्नोत्तरसमुच्चये नवमप्रश्ने (३९ पत्रे), तथाहि-

"औपपातिकसूत्रे साधुवर्णनाधिकारे 'पताहारे' इत्यस्य वृत्तौ पर्युषितं वल्लचणकादीनि इति व्याख्यातमस्ति, तथा च पर्युषितपूपिकाभक्षणावराणा खाद्यादीनां तद्विषये दोषोद्धट्टनं कथं युक्तिमत्? इति प्रश्नः, तत्रोत्तर तत्र—"निप्पावचणकमाई अत एत च होइ यावन्न" इति बृहत्कल्पभाष्ये जिनकल्पिकाधिकारे, एतद्वृत्तौ च 'वावन्न'शब्देन विनष्टमिति व्याख्यातमस्ति, तत्त्वं तु तत्त्वविद्वेद्यम्, आत्मनां तु पर्युषिताग्रहणेऽविच्छिन्नवृद्धपरम्पराराधनं सशक्तिसद्भावे तद्दोषवर्जनं च गुणाय एव इति बोध्य ॥९॥" इत्याद्यक्षरैः श्रीहीरविजयसूरिभिरपि स्वगच्छीयसर्वगीतार्थसम्मततया वृद्धपरम्परैव प्रमाणीकृता नाऽन्यत् किमपि, तथा पुनस्तपागच्छीय-श्रीमुनिसुन्दरसूरिकृतषडावश्यकबालावबोधेऽपि "मज्जे महुम्मि मंसम्मि नवणीयम्मि" इत्यादि गाथायां अभक्ष्यव्याख्यानाधिकारे चलितरसशब्देन कुथितान्नमेव व्याख्यात,न पर्युषितान्न । तथा च तत्पाठ—

"चलितरस जे कुहिउअन्न १ चउवीस पहुरओ ओदनादिक २ सोलपहुर उपरु दही ३" इत्यादि ।

पुनरप्याह कश्चित्—ननु—रात्रिरक्षित प्रातर्वल्लचणकमाषादिद्विदल गोधूममण्डक च विनश्यति, ततश्चलितरसत्वेन अभक्ष्य भवेत्, कथंकार सुविहितसाधुभिः गृह्यते? उच्यते—सत्यं, अत्राऽय परमार्थः, यदा यच्चलितरस ज्ञायते तदा तन्न ग्राह्यमेव, तत्राऽपि अयं निश्चयो नाऽस्ति, यद् रात्रिरक्षित प्रातर्वल्लचणकादि गोधूममण्डकादि विनश्यते एव, तद्दिनसत्क नेति, उभयथापि विरोधदर्शनात् कथ कदाचिच्छीतकालादौ रात्रिरक्षितमपि न विनश्यति? कदाचित्तु उष्णकालादौ तद्दिनसत्कवल्लादि गोधूममण्डकादि तत्कालमपि कस्यापि सयोगे विनश्यत् दृश्यते । तत आत्मना गच्छे एषा सिद्धान्ताद्यक्ष

ननु-तपागच्छीया आधुनिकाः पर्युषितवल्लचणकपूपिकादीनां ग्रहणं श्रीआचाराङ्ग-सूत्रकृताङ्ग-स्थानाङ्ग-भगवती-ज्ञाताधर्मकथा-औपपातिक-ओघनिर्युक्त्यादिसूत्रवृत्तिषु साक्षाद्भगवताऽनुज्ञातमपि निषेधयन्तो दृश्यन्ते, परं तद्गच्छीयप्राक्तनसूरिकृतग्रन्थेऽपि निषेधोऽस्ति न वा ? उच्यते-निषेधो दूरे तिष्ठतु, प्रत्युत तद्ग्रहणं अनुज्ञातमस्ति, यदुक्तं तपागच्छीयरत्नशेखरसूरिभिः षडधिकपञ्चदशशतवर्षे १५०६ कृतायां श्रीश्राद्धप्रतिक्रमणवृत्तौ विधिकौमुदीनाम्न्यां चतुर्मासिकाभिग्रहाधिकारे श्रावकानधिकृत्य पर्युषितद्विदलपूपिकापर्पटवटकादि-शुष्कशीततन्दुलीयकादि-पत्रशाकतुम्परकखादिरिकखर्जूरद्राक्षाखण्डशुण्ठ्यादीनां फुल्लिकुन्थ्वीलिकादिससक्तिसम्भवात् त्यागः, औषधादिविशेषकार्ये तु सम्यक् शोधनादियतनया एव तेषां ग्रहणमित्यादि, एतावता चातुर्मासिके पर्युषितद्विदलादीनां निषेधं वदता च आचार्येण शीतकालादौ तद् अप्रतिषेधात् तद्ग्रहणं उक्तमेव । पुनर्विधिकौमुद्यामेव तपागच्छनायक-श्रीरत्नशेखरसूरिणा पर्युषितपूपिकानां निषेधो न कृतः, किन्तु पर्युषितद्विदलपूपिकानिषेधः ? काकोक्तिः इयं । तथाहि-

पर्युषितद्विदलपूपिकादि १ केवलजलराद्धकूरादि २ तथाऽन्यदपि सर्वं कुथितान्नं पर्युषितौदनपक्वान्नादि वा अभक्ष्यत्वेन वर्जनीयमिति, तन्निषेधश्च अस्माभिरपि सर्वैः क्रियते एव, को नाम कुथितान्नपर्युषितद्विदलपूपिकाः स्वीकरोति ? इति । ननु-ये च तपागच्छीयाः पर्युषितवल्लचणकमाषादिद्विदलानां पर्युषितगोधूममण्डकपूपिकादीनां च ग्रहणनिषेधं कुर्वन्ति, ते ? किं सूत्राक्षराणि दर्शयन्ति, किं वा स्वगच्छवृद्धपरम्परां वदन्ति ?, उच्यते-स्वगच्छपरम्परामेव, यदुक्तं तपागच्छाचार्य-हीरविजयसूरिप्रसादीकृतप्रश्नोत्तरसमुच्चये नवमप्रश्ने (१९ पत्रे), तथाहि-

वेसु पसत्थो जिणमए तहा जोगो । अट्ठमी पन्नरसीसुय, निअमेण हविज्ज पोसहिओ ॥ १ ॥” पुन तत्रैव “चउद्दसिअट्ठमिपुण्णमासिणीसु पडिपुन्न पोसह सम्म अणुपालइ” इति ॥१५॥ कल्पसूत्रे (३५ पत्रे), यथा “नवमल्लई नवलेच्छई कासीकोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो अमावसाए पाराभोय पोसहोववास पट्ठविंसु” इति, पुनरपि श्रीवृहद्गच्छाधीश्वरश्रीसर्वदेवसूरिशिष्यविनयचन्द्रोपाध्यायशिष्यमुनिचन्द्रेण अब्धिमुनिरुद्र ११७४ वर्षे विरचिताया श्रीउपदेशपदवृत्त्या (५३ पत्रे) कृष्णपक्षो अमावास्यापर्यन्तः शुक्लपक्षश्च पौर्णमासीपर्यन्तः प्रोक्तः, तथाहि–

“इह चन्द्रमासस्य द्वौ पक्षौ–तत्र आद्यः कृष्णो द्वितीयश्च शुक्लः, तत्र च कृष्णपक्षो अमावास्यापर्यन्तः शुक्लश्च पौर्णमासी परिनिष्ठितः । एव च अमावास्या पक्षसधितया व्यवह्रियते । पौर्णमासी च माससन्धितया, ततो अमावास्या इय सधिः अमावास्यासन्धिः, अग्रेतनपक्षात्यन्तसन्निधानलक्षण' तस्मिन् समाप्त इति योगः ॥ १७ ॥ इत्यादिसिद्धान्ताक्षरैः पञ्चदश्या एव पक्षस्य पूर्तिप्रतिपादनात् पञ्चदश्या एव पाक्षिकप्रतिक्रमण युक्त, प्रयोगश्च पञ्चदश्यां एव पाक्षिकप्रतिक्रमण सम्पूर्ण पक्षत्वात्, यत्र न सम्पूर्ण पक्ष', तत्र न पाक्षिकप्रतिक्रमण, यथा द्वादश्या सपूर्णपक्षो न भवति, न अय अनुष्णं तेजोऽवयवी इत्यादिवत् प्रत्यक्षविरुद्धः, पञ्चदश्या एव पाक्षिकप्रतिक्रमणस्य आगमे दृश्यमानत्वात् नाऽस्ति सर्वज्ञ इत्यादिवत् पञ्चदश्या पाक्षिकप्रतिक्रमण, अय पक्षः आगमविरुद्धः नाऽस्ति इति उक्ते कोऽपि प्राह—अहो ! आगमविरुद्धोऽय पक्ष , यतः–आगमे चतुर्दश्या पाक्षिकशब्दस्य प्ररूपणात्, यतः श्रीव्यवहारवृत्तिकार श्रीमलयगिरिः–पाक्षिक कृष्णचतुर्दशीरूप

लभमाणः चान्द्रो मास, एकपौर्णमासीपरावर्तनः चान्द्रो मास इति यावत् ॥ १० ॥ अथवा चन्द्रचारनिष्पन्नत्वाद् उपचारतो मासोऽपि चान्द्रः २, चः समुच्चये, दीर्घत्वं आर्षत्वात्, इत्थमेव श्रीसूर्यप्रज्ञप्त्या अपि चान्द्रमासप्ररूपणा ॥११॥ किं च पाक्षिकक्षामणकावसरे त्रिःकृत्वः कल्याणोदन्तप्रश्नेन पाक्षिकप्रतिक्रमण पञ्चदश्या एव सूचित, तदेवाऽऽह–"दिवसो पोसहो पक्खो वइक्कंतो अन्नो मे ! कल्लाणेण" इति, एतच्चूर्णिः–"पोसहो अट्ठमीचउद्दसीसु उववासकरण" वृत्तिश्च (यशोदेवकृताया ७२ पत्रे) दिवसो=दिनः, किंविधः ? पोषधः=पर्वरूपः, तथा पक्षोऽर्धमासरूपो व्यतिक्रान्तोऽतिलङ्घित , अन्यच्च पक्ष' इति वर्तते, 'मे' भवता शुभेन=कल्याणेन युक्त इति गम्यते ॥१२॥ अत्राह कोऽपि स्थूलमति । ननु–उपवासादि पाक्षिककृत्य चतुर्दश्यामेव उक्त, तद्बलेन च पाक्षिकप्रतिक्रमणमपि चतुर्दश्यामेव युज्यते ? मैवम्, तदभिप्रायापरिज्ञानात्, यतो दशाश्रुतस्कन्धसूत्रे पञ्चदशायाम्, तच्चूर्णौ च पाक्षिकशब्दस्य चतुर्दशीतः पार्थक्येन भणनात्, तथाहि—

'पक्खिअपोसहिएसु समाहि पत्ताण ति' सूत्र । चूर्णिर्यथा–"पक्खिअ पक्खिअमेव पक्खिए पोसहो पक्खिअपोसहो वा चाउद्दसी अट्ठमीसु वा समाहिपत्ताण" । अत्र यदि 'पक्खिअ'शब्देन चतुर्दशी गृहीता अभविष्यत् तदा पार्थक्येन चतुर्दशीग्रहणं नाऽकारिष्यत् व्यर्थत्वात्, तस्मात् 'पक्खिअ'शब्देन पञ्चदश्येव, तत्र पाक्षिके पोषध उपवासश्चतुर्दश्यामष्टम्या चेति ॥ १३ ॥ पुनर्व्यवहारसूत्रदशमोद्देशके, (४१ पत्रे) तथाहि–"पक्खिअपोसहिएसु कारयति तव सय, करोति च । भिक्खायरिए तहा निछुजति पर सय वा वी ॥ २०८ ॥ व्याख्या–पाक्षिके अर्धमासपर्वणि पौपधिके च अष्टम्यादिषु पर्वसु पर तपः कारयति स्वयमपि करोति च ॥१४॥ एवं आवश्यकचूर्णौ अपि, (उत्त० २०४ पत्रे) तथाहि–"सव्वेसु कालप-

वेसु पसत्थो जिणमए तहा जोगो । अट्ठमी पन्नरसीसुय, निममेण हविज्ज पोसहिओ ॥ १ ॥" पुन तत्रैव "चउद्दसिअट्ठमिपुण्णमासिणीसु पडिपुन्न पोसह सम्म अणुपालइ" इति ॥१५॥ कल्पसूत्रे (३५ पत्रे), यथा "नवमल्लई नवलेच्छई कासीकोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो अमावसाए पाराभोय पोसहोववास पट्ठविंसु" इति, पुनरपि श्रीबृहद्गच्छाधीश्वरश्रीसर्वदेवसूरिशिष्यविनयचन्द्रोपाध्यायशिष्यमुनिचन्द्रेण अश्विमुनिरुद्र ११७४ वर्षे विरचिताया श्रीउपदेशपदवृत्त्या (५२ पत्रे) कृष्णपक्षो अमावास्यापर्यन्तः शुक्लपक्षश्च पौर्णमासीपर्यन्त प्रोक्तः, तथाहि–

"इह चन्द्रमासस्य द्वौ पक्षौ–तत्र आद्यः कृष्णो द्वितीयश्च शुक्लः, तत्र च कृष्णपक्षो अमावास्यापर्यन्तः शुक्लश्च पौर्णमासी परिनिष्ठितः । एव च अमावास्या पक्षसधितया व्यवह्रियते । पौर्णमासी च माससन्धितया, ततो अमावास्या इव सधिः अमावास्यासन्धिः, अग्रेतनपक्षात्यन्तसन्निधानलक्षण तस्मिन् समाप्त इति योग ॥ १७ ॥ इत्यादिसिद्धान्ताक्षरैः पञ्चदश्या एव पक्षस्य पूर्तिप्रतिपादनात् पञ्चदश्यां एव पाक्षिकप्रतिक्रमण युक्तं, प्रयोगश्च पञ्चदश्या एव पाक्षिकप्रतिक्रमण सम्पूर्ण पक्षत्वात्, यत्र न सम्पूर्ण पक्षः, तत्र न पाक्षिकप्रतिक्रमण, यथा द्वादश्या सपूर्णपक्षो न भवति, न अय अनुष्ण तेजोऽवयवी इत्यादिवत् प्रत्यक्षविरुद्धः, पञ्चदश्या एव पाक्षिकप्रतिक्रमणस्य आगमे दृश्यमानत्वात् नाऽस्ति सर्वज्ञ इत्यादिवत् पञ्चदश्या पाक्षिकप्रतिक्रमणं, अय पक्षः आगमविरुद्धः नाऽस्ति इति उक्ते कोऽपि प्राह—अहो ! आगमविरुद्धोऽयं पक्षः, यतः–आगमे चतुर्दश्या पाक्षिकशब्दस्य प्ररूपणात्, यतः श्रीव्यवहारवृत्तिकारः श्रीमलयगिरिः–पाक्षिक कृष्णचतुर्दशीरूप

प्रोक्तवान्, नैष, सम्यग् परिज्ञानाभावात्, तथाहि—न तत्र पाक्षिकप्रतिक्रमणाधिकार किन्तु विद्यासाधनविचार एव, तथाहि—(षष्ठविभागे ४५ पत्रे)

"विज्जाणं परिवाडी, पव्वे पव्वे य दिंति (देंति) आयरिया। मासद्धमासिआण, पव्व पुण होइ मज्झ तु ॥२५१॥ पक्खस्स अट्ठमी खलु, मासस्स य पक्खिअं मुणेयव्वं। अन्नपि होइ पव्व, उवरागो चदसूराण ॥२५२॥" व्याख्या—आचार्या पर्वणि पर्वणि विद्यानां परिपाटीः ददति, विद्याः परावर्त्तन्ते इति भावः, अथ पर्व किमुच्यते ? तत् आह—मासार्धमासयोः मध्य पुन पर्व भवति, एतदेवाऽऽह—अर्धमासस्य पक्षात्मकस्य मध्यं अष्टमी सा खलु पर्व, मासस्य मध्य पाक्षिक पक्षेण निर्वृत्त ज्ञातव्य, तच्च कृष्णचतुर्दशीरूप अवसातव्यं, तत्र प्रायो विद्यासाधनोपचारभावात् "बहुलादिका मासा" इति वचनाच्च, न केवल एतदेव पर्व किन्तु अन्यदपि पर्व भवति, यत्र उपरागो ग्रहण चन्द्रसूर्ययोः, एतेषु च पर्वसु विद्यासाधनप्रवृत्ते ॥ २५१ ॥ २५२ ॥ १८ ॥ अत्र सूत्रकारेण चतुर्दश्या नामाऽपि न गृहीत । चूर्णिकारेण—'कण्हपक्खस्स चउद्दसीए विज्जासाहणोवयारो ।' इत्यादिभिः अक्षरैः तच्च 'कृष्णचतुर्दशीरूप' इत्याद्यक्षरैः वृत्तिकारेणाऽपि विद्यासाधन उक्त, न पाक्षिकप्रतिक्रमण, तच्च पाक्षिक कृष्णचतुर्दशीरूप प्रोक्त मलयगिरिणा तदभिप्रायं न जानीम, तत कथ आगमविरोध ? अथ यदि कृष्णचतुर्दश्या एव पाक्षिक तदा एकस्या चतुर्दश्या पक्षो द्वितीयचतुर्दश्यां मासः, एव च कृते मासस्य मध्य पाक्षिक भवति, परन्तु पूर्वोक्तपक्षस्य मध्ये अष्टमी न भवति 'बहुलादिका मासा' इत्यपि विरुध्येत, किंच विशेषणं व्यवच्छेदक इति कृत्वा तच्च कृष्णचतुर्दशीरूपं, एतद्छलेन चतुर्दश्यां पाक्षिक कुर्वाणेन मासे मासे पाक्षिकप्रतिक्रमण कर्तव्य भाद्रपदशुक्लपञ्चम्यां एव पर्युषणाप्रतिक्रमण-

त्या पर्युषणाप्रतिक्रमणस्य सांवत्सरिकं नाम तथा पाक्षिकप्रतिक्रमणस्याऽपि मासिक इति नाम युक्तं परन्तु तथा न
घत्, यथा पर्युषणाप्रतिक्रमणस्य सांवत्सरिकं नाम तथा पाक्षिकप्रतिक्रमणस्याऽपि मासिक इति नाम युक्तं परन्तु तथा न
दृश्यते, तेन चतुर्दश्या पाक्षिकप्रतिक्रमण इति षदतां स्थाने स्थाने महान् विरोध, तेन च पञ्चदश्या एव पाक्षिकप्रतिक्र-
मणं प्रतिपत्तव्य, येन न सिद्धान्तादिशास्त्रैः सम विरोधः, अन्यथा पदे पदे विरोधो भावी, तथा आलोचनाऽपि च पञ्च-
दश्यां न निषिद्धा, यदुक्त व्यवहारभाष्ये-(द्वितीयविभागे ४० पत्रे)

"पडिकुट्ठेल्लगदिवसे, वज्जेज्जा अट्ठमिं च नवमिं च। छट्ठिं च चउत्थिं च बारसिं दुण्णपि पक्खाणं ॥ भा० १२६ ॥" एतेन
ये वदन्ति अमावस्यां न आलोचना दीयते तदपास्त, तथा कोऽपि प्राह-अमावास्या आलोचना निषिद्धा, कथ अगृहीतालोच-
नाना तत्र पाक्षिकप्रतिक्रमणं घटते ? इति चेत् तर्हि चतुर्दश्या अपि आलोचना निषिद्धा, यदुक्त श्रीआवश्यके-(४७१पत्रे)
"चाउद्दसिं पण्णरसिं च वज्जिज्जा अट्ठमिं च नवमिं च। छट्ठिं च चउत्थिं बारसिं च दुण्हपि पक्खाण ॥ १ ॥" पर एतदालोचना-
न्तरं अपेक्ष्य भविष्यति, यदुक्त श्रीपर्युषणाकल्पे-'पक्खि आ आरोवणा' पक्षे पक्षे आलोचना ग्राह्या, तेन पञ्चदश्यामेव आलो-
चना आदाय तत्रैव प्रतिक्रमण विधेय नाऽत्र कोऽपि दोष, आवश्यकचूर्णौ (११३ पत्रे) तथा "ततो सागरचंदो कमलामेला
य सामिसगासे धम्म सोऊण गहिआणुव्वयाणि सावगाणि सवुत्ताणि, तओ सागरचंदो अट्ठमीचउद्दसीसु सुण्णघरे सुसाणेसु
वा एगराइअं पडिमं ठाइ" इत्याद्यनेकालापकैः नानासिद्धान्तोक्तैः अष्टम्या चतुर्दश्या उपवासादि कृत्य उक्तमस्ति, यदि तत्पा-
क्षिककृत्यं इति कृत्वा चतुर्दश्यां पाक्षिकप्रतिक्रमण स्थाप्यन्ते तथा अष्टम्या अपि पाक्षिकप्रतिक्रमण कर्तव्य स्यात्, प्रयोगश्च
अष्टम्यादि अपि पाक्षिकप्रतिक्रमणं तत्राऽपि पाक्षिककृत्यस्य क्रियमाणत्वात् यत्र यत्र पाक्षिककृत्य क्रियते तत्र तत्र पाक्षिक-

प्रोक्तवान्, नैवं, सम्यग् परिज्ञानाभावात्, तथाहि–न तत्र पाक्षिकप्रतिक्रमणाधिकार किन्तु विद्यासाधनविचार एव, तथाहि–(पष्ठविभागे ४५ पत्रे)

"विज्जाणं परियारी, पव्वे पव्वे य दिंति (देंति) आयरिया। मासद्धमासिआण, पव्वं पुण होइ मज्झ तु ॥२५१॥ पक्खस्स अट्ठमी खलु, मासस्स य पक्खिअं मुणेयव्वं। अन्नपि होइ पव्व, उवरागो चंदसूराणं॥२५२॥" व्याख्या–आचार्याः पर्वणि पर्वणि विद्याना परिपाटीः ददति, विद्याः परावर्तन्ते इति भावः, अथ पर्व किमुच्यते ? तत् आह–मासार्धमासयोः मध्य पुन पर्व भवति, एतदेवाऽऽह–अर्धमासस्य पक्षात्मकस्य मध्य अष्टमी सा खलु पर्व, मासस्य मध्य पाक्षिक पक्षेण निर्वृत्त ज्ञातव्य, तच्च कृष्णचतुर्दशीरूप अवसातव्यं, तत्र प्रायो विद्यासाधनोपचारभावात् "बहुलादिका मासा" इति वचनाच्च, न केवल एतदेव पर्व किन्तु अन्यदपि पर्व भवति, यत्र उपरागो ग्रहण चन्द्रसूर्ययो, एतेषु च पर्वसु विद्यासाधनप्रवृत्ते ॥ २५१ ॥ २५२॥ १८॥ अत्र सूत्रकारेण चतुर्दश्या नामाऽपि न गृहीत। चूर्णिकारेण–'कण्हपक्खस्स चउद्दसीए विज्जासाहणोवयारो।' इत्यादिभि अक्षरैः तच्च 'कृष्णचतुर्दशीरूप' इत्याद्यक्षरैः वृत्तिकारेणाऽपि विद्यासाधन उक्त, न पाक्षिकप्रतिक्रमण, तच्च पाक्षिक कृष्णचतुर्दशीरूपं प्रोक्त मलयगिरिणा तदभिप्राय न जानीमः, तत कथ आगमविरोध ? अथ यदि कृष्णचतुर्दश्या एव पाक्षिक तदा एकस्या चतुर्दश्यां पक्षो द्वितीयचतुर्दश्यां मासः, एव च कृते मासस्य मध्य पाक्षिक भवति, परन्तु पूर्वोक्तपक्षस्य मध्ये अष्टमी न भवति 'बहुलादिका मासा' इत्यपि विरुध्येत, किंच विशेषणं व्यवच्छेदक इति कृत्वा तच्च कृष्णचतुर्दशीरूपं, एवच्छलेन चतुर्दश्या पाक्षिकं कुर्वाणेन मासे मासे पाक्षिकप्रतिक्रमणं कर्तव्यं भाद्रपदशुक्लपञ्चम्या एव पर्युषणाप्रतिक्रमण-

पूआ तओ नाम, पयट्ठो तत्थ ऊसवो” ॥ ८३ ॥ इति । पुन –‘नयरम्मि घरावासे’ इत्यादि कालिकाचार्यकथाया पट्प-
ञ्चाशत्प्रमाणगाथाया अङ्काष्टयक्ष १३८९ वर्षे श्रीधर्मप्रभसूरिकृताया, तथाहि–
“आयरेणा वि हु पज्जो–सविअ तो निवो भणइ तुट्ठो । भयव ! अणुगाहिउ ह, ज मह्रे अतेउरीण तु ॥ ४२ ॥
“पक्खोववासपारण–दिवसमि भत्तमेसणासुद्ध । साहूणुत्तरपारण–दिवसमि भविस्सए बहुअ ॥ ४३ ॥” इति ॥

ननु–यदि पञ्चदश्या पाक्षिकप्रतिक्रमण आसीत्, तदा कथ साम्प्रत चतुर्दश्या विधीयते ? उच्यते–श्रीकालिकाचार्ये
आचीर्णत्वात्, यदुक्त ठाणावृत्तौ श्रीहेमाचार्यगुरुश्रीदेवचन्द्रसूरिभिः । तथाहि–

“एव च कारणे ण कालगायरिएहिं चउत्थीए पज्जोसवण पवत्तिअ, समत्थसघेण य अणुमन्निअ, तव्वसेण य पक्खिअईणि चउद्दसीए आयरियाणि, अन्नहा आगमुत्ताणि पुण्णिमाए’त्ति ।” एव श्रीकालिकाचार्यकथाया अतिजीर्णाया २६९ श्लोक-
मिताया अपि उक्त, तथाहि–

“राइणा भणिअ–जइ एव तो चउत्थीए भवतु, सूरिहिं भणिअ–एव होउ नत्थि अणत्थो सो भणिअमागमे “आ-
यरेणा वि पज्जोसविअव्व”मिति तओ हरिसवसुफुल्ललोअणेण जपिअ राइणा भयव ! महापसाओ महतो अम्हाणम-
णुग्गहो जओ मम अतेउरिआण पक्खोववासपारणए साहूण उत्तरपारणय भविस्सइ, तओ गिहे गतूण समाइट्ठिवाओ
अतेउरिआओ तुम्हाण ममावसाए उववासो होही पारणेअ साहूण उत्तरपारणय भविस्सइ, ता तत्थ अहा पवत्तेहिं
भत्तपाणेहिं साहुणो पडिलामेह, जओ भणिअमागमे–“पहसतगिलाणमि अ, आगमगहणे अ लोभकरणे अ । उत्तर-

प्रतिक्रमण, यथा चतुर्दश्या तथा यथा अष्टम्या न भवति तथा चतुर्दश्या अपि मा भवतु, किंच चतुर्दश्या पाक्षिकप्रतिक्रमण अङ्गीकुर्वता सूत्रोक्ता पूर्णिमां विहाय चतुर्मासिक अपि तत्र एव प्रतिक्रमणीय, यत चतुर्मासिके अष्टौ पक्षा भवन्ति ते च तन्मते चतुर्दश्यां एव पूर्णतां अगच्छन्, पाक्षिकस्य तत्र एव करणत्वात्, अथ चतुर्मासिकसंबन्धी पक्ष प्रतिपद आरभ्यते पाक्षिकसंबन्धी तु अन्यत एव इति चेत् तर्हि कोऽयं अर्धजरतीन्यायः ? तथा च सति महान् सूत्रविरोध' तत्र ईदृग् अर्थस्य अदर्शनात् न युक्त एव, ततश्च कृष्णचतुर्दशीरूप इति चेत् तर्हि सकलमपि पूर्वोक्त दूषणकदम्बक तत्पश्चा-द्भम अनुधावति, किंच एवं चतुर्दश्यां पाक्षिकप्रतिक्रमण कुर्वता पूर्णमास्या चतुर्मासिक आचरता चतुर्मासिकसम्बन्धि तपो बाध्यते स्थानाङ्गवाचे पाक्षिकचतुर्मासिकयोः मध्य दिनाभावात्, ननु किमर्थं तद्दिन ईक्षते ? उच्यते—पाक्षिके चतुर्थस्य करणात्, चतुर्मासिके षष्ठसंभवात् मध्यं दिन अन्तरेण तच्च न घटते, तस्मात् युक्त्याऽपि पाक्षिक पञ्चदश्या एव युज्यते, पुनरपि प्रयोगो न चतुर्दश्या पाक्षिकप्रतिक्रमणं अपूर्णपक्षत्वात्, यत्र यत्र असंपूर्ण पक्षत्व तत्र तत्र न पाक्षिकप्रतिक्रमण यथा दशम्या, किंच श्रीकालिकाचार्यकथायां शतगाथाप्रमाणाया श्रीभावदेवसूरिकृताया पक्षोपवासपारणे साधूना अष्टमोत्तरपारणस्य प्रोक्तत्वात् पाक्षिक पर्व पञ्चदश्या एव आगत, तथाहि—

"मम अतेउरी पक्खोववासपारणए अओ । साहूण फासुहं भत्तं, होही उत्तरपारणे ॥ ८१ ॥ एव पर्व चउत्थीए, कय कालगसूरिणा । एअ पज्जोसवणाकप्प, समसंघेण मन्निअ ॥ ८२ ॥ साहू पूआरओ लोओ, आओ तप्पभिइ तओ । साहू

सारोद्धारसूत्रवृत्त्योः षट्त्रिंशदुत्तरशततमद्वारे (२५५ पत्रे) स्वकायपरकायशस्त्रोपहत प्रासुक जलं साधूना ग्रहणोचित प्रत्यपादि, तथाहि–

"उसिणोदग तिदंडु-क्कलिअ फासुअजल च जइ कप्प। नवरि गिलाणाइकए, पहरतिगोवरिवि धरिअव ॥ ८८१ ॥
जायइ सचित्तया से, गिम्हम्मि पहरपचगस्सुवरिं ॥ चउपहरुवरिंससिरे, वासासु पुणो तिपहरुवरिं ॥ ८८२ ॥

त्रिभिर्दण्डैः–उत्कालैः उत्कलित=आवृत्त यदुष्णोदकं, तथा यत् प्रासुक स्वकायपरकायशस्त्रोपहतत्वेनाऽचित्तीभूत जल तदेव यतीना कल्प्य–ग्रहीतु उचित, इह किल प्रथमे दण्डे जायमाने कश्चित् परिणमति कश्चिन्न इति मिश्रः १, द्वितीये प्रभूतः परिणमति स्तोकोऽवतिष्ठते २, तृतीये तु सर्वोऽपि अप्कायोऽचित्ती भवतीति दण्डत्रयग्रहण, इद च सर्वमपि प्रहरत्रयमध्ये एव उपभोक्तव्य, प्रहरत्रयादूर्ध्वं पुनः कालातिक्रान्तदोषसम्भवेन उपभोगानर्हत्वात् न धारणीयं, नवर केवलं ग्लानादिकृते ग्लानवृद्धाना अर्थाय प्रहरत्रिकादपि ऊर्ध्वं धर्तव्य,–॥ ८८१ ॥ 'जायइ' इत्यादि गाहा। जायते=भवति सचित्तता 'से'त्ति, तस्य उष्णोदकस्य प्रासुकजलस्य वा ग्लानाद्यर्थं धृतस्य 'ग्रीष्मे' उष्णकाले प्रहरपञ्चकस्योपरि–प्रहरपञ्च–कादूर्ध्वं कालस्याऽतिरूक्षत्वात् चिरेण एव जीवससक्तिसद्भावात्, तथा शिशिरे=शीतकाले कालस्य स्निग्धत्वात् प्रहरचतु–ष्टयादूर्ध्वं सचित्तता भवति, "वर्षासु" वर्षाकाले पुनः कालस्याऽतिस्निग्धत्वात् प्रासुकीभूतमपि जल भूय' प्रहरत्रयादूर्ध्वं सचित्तीभवति, तदूर्ध्वमपि यदि ध्रियते तदा क्षारः प्रक्षेपणीयः–सर्जिकादिकं क्षेप्तव्य, येन भूयः सचित्त न भवतीति ॥ ८८२ ॥ इति ॥ ४ ॥

पौषध्यां (१४४ पत्रे) श्रीजिनप्रभसूरिभिः 'सुद्धवियड'त्ति, शुद्धविकटं उष्णोदक १ वर्णान्तरादिप्राप्त शुद्धजल २ चेति, वर्णान्तरादिप्राप्तजलस्य प्राधान्येन उक्तत्वात् । न च वाच्य श्रीजिनप्रभसूरिभि कस्य ग्रन्थस्य सम्मत्या व्याख्येय व्यधायीति । श्रीकुलमण्डनसूरिकृतायां श्रीकल्पसूत्रावचूर्णौ तथैव व्याख्यानात्, तथाहि—

"वासावास पज्जोसविअस्स अट्ठमभत्तिअस्स भिक्खुस्स कप्पति तओ पाणगाइ पडिगाहित्तए, त जहा—आयामे वा १ सोवीरे वा २ सुद्धवियडे वा ३ । अत्र 'सुद्धवियड'त्ति, शुद्धविकट उष्णोदक १ वर्णान्तरादिप्राप्त शुद्धजल २ चेत्यादि ॥ १॥

एवमेव श्रीयतिदिनचर्यासूत्रवृत्त्योरपि (६५ पत्रे) । तथाहि—

"गिण्हिज्ज आरनालं आंबिलधोवणतिदंडउक्कलिअं । वण्णतराइपत्त, फासुअसलिलपि तदभावे ॥ १०२ ॥ व्याख्या—पिण्डग्रहणसमये साधुः आरनाल=अवश्रावण गृह्णीयात् १ आम्बिलं=काञ्जिक २ तन्दुलादिधावनजल ३ त्रिदण्डोत्कलित उष्णोदक ४ वर्णान्तरादिप्राप्त अन्यत् प्रासुकजलमपि ५ गृह्णीयादिति योगः, पर तदभावे—तस्य उष्णोदकस्याऽप्राप्तौ यदाहुः,—"उस्सेइम १ ससेइम २ तंदुल ३ तिल ४ तुस ५ जवोदगा ६ ऽऽयाम ७ । सोवीर ८ सुद्धवियड ९ अंबड १० अंबाडय ११ कविट्ठ १२ ॥ १ ॥ माउलिंग १३ दक्खा १४ दाडिम १५ खजूर १६ नालियर १७ कयर १८ बयरफल १९ । आमलय २० चिंचापाणगाई २१ पढमगभणिआई ॥ २ ॥

पुनः श्रीआचाराङ्गवृत्तौ शस्त्रपरिज्ञाऽध्ययने तृतीयोद्देशके (४२ पत्रे), तथाहि—

अतो यद्वाऽग्न्यादिसम्पर्कात् परिणामान्तरापन्नं वर्णादिभिः तत् अचित्त साधुपरिभोगाय कल्पते इति ॥ ३॥ एव प्रवचन-

पुन" निशीथभाष्यचूर्णिर्यथा—'फासुअमुवग'त्ति जं वुत्तं तस्स इमा वक्खा—"तुबरे फले अ पत्ते रुक्खसिलो तुप्पमद्दणाईसु ।" इत्यादि । तुबरसद्दो रुक्खसद्दे संबद्धो तुबरः-वृक्षः, सो अ समूलपत्तपुप्फफलो जम्मि उदगे पडिओ तेण परिणामिअं घिप्पइ, अहवा तुबरफला हरीतक्यादयः तुबरपत्राः पलाशपत्रादयः 'रुक्ख'त्ति—रुक्खकोटरे कडुफलपत्तपरिणामिअ घिप्पइ'सिल'त्ति, कश्चिच्छिलाया अनन्तरं रुक्खछल्ली कुट्टिआ तम्मि अ सढिअ उदगं त परिणामिअं घिप्पइ जत्थ वा सिलाए तुप्परिणामिअं उदग त घिप्पइ, "तुप्पो" पुण मयगकलेवरवसा भण्णइ, "मद्दणाइसु" हस्त्यादिमर्दित आदिसद्दो हस्त्यादिकमर्दने इत्यादि । एव पिण्डनिर्युक्तिवृत्त्योरपि । तथाहि—

"दवओ परिणओ तिलतुवराईहिं दवेहिं ।" विभीतकादिकषायद्रव्यै अपि मिश्रोदकानि वर्णा(दी)नि परिणतानि प्रासुकानि, अत्र आदिशब्दात् यथासम्भव वर्णादिपरिणामहेतूनि गोमयरक्षादिद्रव्याणि सर्वाणि ज्ञेयानि, । पुन ओघनिर्युक्तौ (१२१ पत्रे), तथाहि—

"सीउण्हखारखत्ते, अग्गी लोणूसअविले नेहे । वक्कतजोणिएण, पओयण तेणिम होंति ॥ ९४९ ॥

एतद्वृत्ति—"सीउण्हा"—पसिद्धा, "खारो"—तिलकरीरखाराई, खत्त—उपरडिआ कयवरो, अग्गीलोणा पसिद्धाओ गो पसुखारदल, अविल—सोवीराई, 'नेहो'—तिल्लघयवसाई, एएहिं जो परिणओ' इति । पुन निशीथभाष्ये यथा—

"सीएअरफासु चउद्दा, दवे ससडुमीसग खित्त । काले पोरसि परओ, वण्णाई परिणयं भावे॥ १ ॥" इति, एव कल्प-

पुनरपि सुविहितसाधूनां पानीयत्रिकग्रहणे कषायद्रव्यमिश्रितपानीयस्य ग्रहीतुं कल्पत्वेन उक्तत्वात्, तथाहि—

"अम्बजल १ उण्ह वा २ कसायदवेहिं मीसिअं वावि ३। कप्पइ अईण नऽण्ण, सुविहिअ कप्पट्ठिआण च ॥ २ ॥" इति ॥ ५ ॥ पुनः वर्णगन्धरसस्पर्शैः परिणत पानीयं प्रासुक संयतो गृह्णीयाद् इति विधिवादेनाऽपि प्रोक्तत्वात्, तथाहि—

"वण्णरस–गंधपणं, परिणय फरसेण वा । अजीवं फासुअं नच्चा, पडिगाहेज्ज संजए ॥ १ ॥" इति ॥ ६ ॥

ननु–वर्णान्तरप्राप्तपानीय साधूना योग्य च सम्मतया दर्शित तत्तथैव, पर कै द्रव्यै केन च विधिना प्रासुक तत् स्यात्, केषु च ग्रन्थेषु प्रोक्तम्? इत्याह–श्रीबृहत्कल्पभाष्ये, तथाहि–

"वण्णरसगंधफासा, जह दवे जम्मि उक्कडा हुति । तह तह चिर न चिट्ठइ, असुभेसु सुभेसु कालेण ॥ १ ॥" व्याख्या–यस्मिन् द्रव्ये यथा वर्णरसगन्धस्पर्शा उत्कटा–उत्कटतरा भवन्ति, तथा तथा तेन तेन द्रव्येण सह मिश्रित उदक चिर न तिष्ठति, क्षिप्रं क्षिप्रतर परिणमति, किं अविशेषेण? न इत्याह–येऽशुभा वर्णादय उत्कटा तेषु एव क्षिप्र परिणमति, ये तु शुभा वर्णादयः तेषु उत्कटेषु कालेन परिणमते चिरादित्यर्थ, अत्रैव निदर्शनमाह–"जो चदणे कडुरसो, ससट्ठजलेण दूसणा जाओ । सो सत्थ दगस्स सत्थ, फासो उ उवग्गहं कुणइ ॥ १ ॥" व्याख्या–इह तन्दुलोदक चन्दनेन काऽपि मिश्रित तत्र चन्दनस्य यः कटुको रसः स तन्दुलोदकस्य शस्त्र, पर यः स्पर्श शीतलः स जलस्योपग्रह करोति इति कृत्वाऽचिरेण तत्परिणमति, एव संसृष्टजलस्यापि या दूषणा आम्लरसता सा उदकस्य शस्त्र, स्पर्शस्तु शीतलत्वाद् उपग्रहकारी अतः चिरेण परिणमति, इति ॥

श्राद्धाः प्राय उष्णोदक न पिबन्ति, तत्रापि त्रिदण्डोत्कलितमेव कल्पते, नाऽन्यथा, तादृश तु प्रायशो दुर्लभ साधूनुद्दिश्य क्रियमाण तु आधाकर्मदोषभाक् भवति, सति च तस्मिन् द्वयोरपि दातृमहीत्रो अहिताय अल्पायुष्याय च भवति, कसेल्लकप्रासुकनीर तु आरमना गच्छे श्राद्धा विशेषत श्राद्धिकाश्च पिबन्ति, तैस्तु तत् स्वार्थं क्रियमाणमस्ति, तन्मध्ये साधुभिरपि यतनया गृह्यमाण न दोषाय स्यात्, ततः सिद्धान्तमूलत्वेन गच्छपरम्परया च कसेल्लकप्रासुकपानीय गृह्यते इति ॥ ९ ॥

॥ इति कसेल्लकपानीयविचारः (अधिकारः) ॥ ९ ॥

ननु–श्रीखरतरगच्छीयाः श्राद्धा आचाम्ले द्रव्यद्वय गृह्णन्ति, नाऽधिक, तत्किम् ? उच्यते–श्रीमज्जिनवल्लभसूरिशिष्य–श्रीजिनदत्तसूरिभिः सन्देहदोलावलीसूत्रे (११६ पत्रे) द्रव्यद्वयस्य एव प्रतिपादितत्वात्, तथाहि–

"गिहिणो इह विहि आय विलस्स कप्पति दुन्नि दवाइ । एग समुचिअमन्न, बीअ पुण फासुअ नीर ॥ १०४ ॥" इति ॥

अत्र उचित अपि नीरमेव, न तु काञ्जिका १ अवस्रवण २ तक्रे ३ क्षुरसादीनि ४ तेषा हि पानकाहारत्वेऽपि शुद्ध्यहेतुत्वेन आचमनादिकार्यस्य अनर्हत्वात्, अत एव प्रत्याख्यानचूर्णावपि जलमेव उक्त । तथाहि–

"जावइअ उवजुज्जइ, तावइअ मायणे गहेऊण । जलबिन्दुड काउ, भुत्तव एस इत्य विही ॥ १ ॥

एवं द्रव्यद्वयातिरिक्तद्रव्यनिषेधः श्रीजिनपतिसूरिभिरपि सामाचारीमध्ये २५ लिखितः ॥ १ ॥ तथाहि–

"आयचिले पप्पड १ घुग्घरिआ २ सेढमिआ ३ इडुरिआ ४ तकाइ ५ निसेहो त्ति ॥२॥ पुनः जीर्णपुस्तकेषु अपि आचाम्लप्रत्याख्यानपाठे–"सूरे उग्गए पुरिमड्ढ पच्चक्खामि तिविह चउव्विहं पि आहार असण पाण खाइमं साइम अन्नत्थणाभोगेण

कपानीय प्रासुकत्वेन तपागच्छेशहीरविजयसूरि-प्रसादीकृतप्रश्नोत्तरसमुच्चये तच्छिष्य प० कीर्तिविजयगणिसमुच्चिते प० जगमालगणिकृतत्रयोदशप्रश्नेऽपि (३१ पत्रे) प्रोक्त, तथाहि–

वर्णान्तरप्राप्त कसेल्लकनीर प्रासुक भवति न वा ? तत्रोत्तर–वर्णान्तरप्राप्त कसेल्लकनीर प्रासुकं भवति पर आत्मीयवृद्धै अनाचीर्ण इति ज्ञेय, एवं पुनस्तत्रैव ग्रन्थे श्रीपचन्द्रसङ्घकृत १५ प्रश्नेऽपि (८४ पत्रे), तथाहि–मतान्तरीयस्य कदाचिदुपवासादिप्रत्याख्यानं क्रियते, तत्र 'पाणस्से'त्युच्चारणमाश्रित्य किं विधेय ?, यतस्तस्य कसेल्लकादिपानीयपाने कथ तत्पालन भवतीति ? तत्रोत्तरम्–अत्र मतान्तरीयस्य प्रत्याख्यानकरणे 'पाणस्से'त्युच्चारणे स यदि कसेल्लकादिपानीय पिबति तदा प्रत्याख्यानभङ्गो ज्ञातो नाऽस्ति,यतः कसेल्लकक्षेपेऽपि पानीय प्रासुक भवति, पर आत्मना आचरणा नाऽस्तीति नो गृह्यते इति । ननु–त्रिविधाहारप्रत्याख्याने कसेल्लकस्य स्वादिमत्वात् कथ न प्रत्याख्यानभङ्गः ?, उपवासप्रत्याख्याने च कथ न द्रव्यद्वयापत्तिर्भवेद् ? उच्यते–कसेल्लकस्वादो हि तथा नीरेण सम तदात्मना परिणतो यथा न नीरात्पृथग्भूतो ज्ञायते, अतो न प्रत्याख्यानभङ्गो नाऽपि च द्रव्यद्वयापत्तिः, एव येषा सम्प्रदाये त्रिफलापानीय पीयमानमस्ति तैरपि यद्यपि हरीतकीबिभीतके स्वादिमे आमलकाद्य अशने, तथापि तन्मिश्रितोदकपानेन त्रिविधाहारप्रत्याख्यानभङ्गो मन्यते, नापि उपवासप्रत्याख्याने द्रव्यत्रयगणना, अन्यथा प्रत्याख्यानभङ्गः सम्पद्येत इति ॥

ननु–पूर्वमुष्णोदकाभावे वर्णान्तरप्राप्तपानीयग्रहण उपदिष्ट, साम्प्रत तु वर्णान्तरप्राप्तमेव प्रासुकोदक गृह्यते तत्किमिति ? उच्यते–नाऽस्माभिः एकान्तेन कसेल्लकप्रासुकपानीयमेव गृह्यते, किन्तु उष्णोदकमपि गृह्यते, पर साम्प्रतं

श्राद्धाः प्राय उष्णोदकं न पिबन्ति, तथापि त्रिदण्डोत्कलितमेव कल्पते, नाऽन्यथा, तादृशं तु प्रायशो दुर्लभं साधूनुद्दिश्य क्रियमाणं तु आधाकर्मदोषभाक् भवति, सति च तस्मिन् द्वयोरपि दातृग्रहीत्रोः अहिताय अल्पायुष्याय च भवति, कसेल्लकप्रासुकनीरं तु आत्मनो गच्छे श्राद्धा विशेषतः श्राद्धिकाश्च पिबन्ति, तेषु तत् स्वार्थं क्रियमाणमस्ति, तन्मध्ये साधुभिरपि यतनया गृह्यमाणं न दोषाय स्यात्, ततः सिद्धान्तमूलत्वेन गच्छपरम्परया च कसेल्लकप्रासुकपानीयं गृह्यते इति ॥ ९ ॥

॥ इति कसेल्लकपानीयविचार (अधिकारः) ॥ ९ ॥

ननु–श्रीखरतरगच्छीयाः श्राद्धा आचाम्ले द्रव्यद्वयं गृह्णन्ति, नाऽधिकं, तत्किम् ? उच्यते–श्रीमज्जिनवल्लभसूरिशिष्य–श्रीजिनदत्तसूरिभिः सन्देहदोलावलीसूत्रे (११६ पत्रे) द्रव्यद्वयस्य एव प्रतिपादितत्वात्, तथाहि–

“गिहिणो इह बिहि आय बिलस्स कप्पति दुन्नि दव्वाइं । एग समुचिअसनं, बीअं पुण फासुअं नीरं ॥ १०४ ॥” इति ॥

अत्र उचितं अपि नीरमेव, न तु काञ्जिका १ अवस्रावण २ तक्रं ३ क्षुरसादीनि ४ रोगा त्ति पानकाकारोऽपि शुद्ध-हेतुत्वेन आचमनादिकार्यस्य अनर्हत्वात्, अत एव प्रत्याख्यानचूर्णावपि उक्तं । तथाहि–

“जावइअं उवजुञ्जइ, तावइअं भायणे गहेऊण । जलबिन्दुव कार्जं, भुत्ते एस इणं विही ॥ १ ॥

एवं द्रव्यद्वयातिरिक्तद्रव्यनिषेधः श्रीजिनपतिसूरिभिरपि सामाचारीमध्ये २५ लिखितः ॥ १ ॥ तथाहि–

“आयबिले पप्पड १ घुग्घरिआ २ बेढमिआ ३ इड्डुरिआ ४ तणाइ ५ निसेहो त्ति ॥२॥ पुनः जीर्णपुस्तकेषु गाथे आचाम्ल प्रत्याख्यानपाठे–“सूरे उग्गए पुरिमड्ढ पच्चक्खामि तिविहं चउव्विहं पि आहार असणं पाणं खाइमं साइमं अन्नत्थणाभोगेणं

सहसागारेण पच्छन्नकालेण दिसामोहेण साहुवयणेण महत्तरागारेण सव्वसमाहिवत्तियागारेण आयम्बिल पच्चक्खामि अन्नत्थ-णाभोगेणं सहसागारेण लेवालेवेण उक्खित्तविवेगेणं गिहत्थससट्ठेण पारिट्ठावणियागारेण महत्तरागारेण सव्वसमाहिवत्तिया-गारेण एकासणं पच्चक्खामि तिविहंपि आहार" इत्यादि, दसविसए सव्वनिअमा अन्नत्थणाभोगेण सहसागारेण महत्तरागा-रेण सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि" अयं पाठः श्रीजेसलमेरुभाण्डागारे सं० १२१५ लिखितपुस्तिकायां अस्ति ॥ ३ ॥

ननु-मूलग्रन्थे क्वाऽपि द्रव्यद्वयं प्रतिपादितं अस्ति? उच्यते-महानिशीथसूत्रे तच्चूर्णौ च "दोहिं दव्वेहिं आयम्बिलेहिं" ॥ ४ ॥ एवं श्रीआवश्यकबृहद्वृत्तौ, तथाहि—"एवं जहन्ने मज्झिमे उक्कोसेऽवि आयम्बिले दव्वदुगेण सव्वत्थ भणिअव्व"। पुन अत्राऽर्थे सूक्ष्मधिया श्रीहरिभद्रसूरिकृतावश्यकबृहद्वृत्तिः विचारणीया, तत्पाठस्तु (८५५ पत्रे) अयम्-

"एत्थ आयबिल च भवति आयबिलपाउग्ग च, तत्थोदणे आयबिल आयबिलपाउग्ग च, आयबिला सकूरा, जाणि कूरविहाणाणि आयबिलपाउग्गं, तंदुलकणिआउ कुडतो पीट्ठ पिहुगा पिट्ठपोवलियाओ रालगा मंडगादि कुम्मासा पुव्व पाणिएण कड्ढिज्जति, पच्छा उक्खलीए पीसति, ते तिविहा-सण्हा मज्झिमा थूला, एते आयबिल आयबिलपाउग्गाणि, पुण जे तस्स तुसमीसा कणिआउ कक्कुगा य पयमादि, सत्तुआ जवाण गोधूमाण विहिआण वा, पाउग्ग पुण गोधूम-भुज्जिया पिचुगाला य जाव भुंजिज्जा जे अ अतएण ण तीरति पीसितु, तस्सेव णिहारे कणिक्कादि वा, एयाणि आय-बिलपाउग्गाणि, त तिविह पि आयंबिल तिविह उक्कोस १ मज्झिम २ जहण्ण ३ च, दव्वओ कलमसालिकूरो उक्कोस जं वा जस्स पत्थं रुच्चइ वा राळगो सामागो वा जहण्णो, सेसा मज्झिमा, जो सो कलमसालिकूरो सो रस पडुच्च तिविधो

उक्कोसं ३ तं चेव तिविधं पि आयबिल णिज्जरागुण पडुच्च तिविध उक्कोसो णिज्जरागुणो, मज्झिमो जहण्णोत्ति, कलमसालिकूरो दव्वतो उक्कोस, दवं चउत्थरसिएण समुद्दिसति, रसओ वि उक्कोस तस्सच्चएणऽवि आयामेण उक्कोस रसओ, गुणतो जहण्ण थोवा णिज्जरति भणित भवति, सो चेव कलमोदणो जदा अन्नेहिं आयामेहिं तदा दव्वतो उक्कोसो, रसतो मज्झिमो, गुणतो वि मज्झिमो चेव, सो चेव जदा उण्होदएण तदा दव्वतो उक्कोस, रसतो जहण्ण, गुणओ मज्झिम चेव, जेण दव्वओ उक्कोस न रसओ, इआणिं जे मज्झिमा ते चाउलोदणा तेन दव्वओ मज्झिमा आयंबिलेण रसओ उक्कोसा गुणओ मज्झिमा तहेव च उण्होदएण दव्वओ मज्झ, रसओ जहण्ण, गुणओ मज्झ, मज्झिम दव्वति काऊण, रालगतणकूरा दव्वओ जहण्ण, आयविलेण रसओ उक्कोस, गुणओ मज्झ ते चेव आयामेण दव्वओ जहण्ण, रसओ मज्झ, गुणओ मज्झ, ते चेव उण्होदएण दव्वओ जहण्ण, रसओ जहण्ण, गुणओ उक्कोस बहुणिज्जरत्ति भणित होति, अहवा उक्कोसे तिण्णि विभासा—उक्कोसउक्कोस उक्कोसमज्झिम उक्कोसजहण्ण कंजियआयामउण्होदएहिं जहण्णा मज्झिमा उक्कोसा णिज्जरा, एव तिसु विभासितव ॥ ५ ॥ एव श्रीहरिभद्रसूरिकृतश्रावकधर्मप्रज्ञप्तिवृत्तौ अपि एतादृश एव पाठोऽस्ति ॥६॥ तथा—द्वार्विशत्यभ्यधिकै-कादशवत्सरशतैस्तु विक्रमतः। अकृतैना नमिसाधु, शिष्य श्रीशालिसूरीणाम् ॥१॥ इति प्रशस्तिसद्भावेन ११२२ वर्षे नमिसाधुकृतषडावश्यकवृत्तौ विशेषो यथा विशेषस्तु कलमशालिचतुर्थरसकाद्युत्कृष्ट शेषकूरः चतुर्थरसकादिश्च मध्यमः उष्णोदकादिश्च जघन्यो गुणतश्च बह्वी निर्जरा उत्कृष्टे मध्यमा मध्यमेऽल्पा च जघन्ये चेति, एव च स्थिते कलमशालिकूर कलमशालिकञ्जिकेन उत्कृष्ट, उत्कृष्टेन यदा भुज्यते तदा जघन्या=निर्जरा अल्पे-

सहसागारेण पच्छन्नकालेण दिसामोहेण साहुवयणेण महत्तरागारेण सवसमाहिवत्तियागारेण आयंबिल पच्चक्खामि अन्नत्थणाभोगेण सहसागारेण लेवालेवेणं उक्खित्तविवेगेणं गिहत्थसंसट्ठेण पारिट्ठावणियागारेण महत्तरागारेण सवसमाहिवत्तियागारेण एकासण पच्चक्खामि तिविहंपि आहार" इत्यादि, दसविसए सवनिअमा अन्नत्थणाभोगेण सहसागारेण महत्तरागारेण सवसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि" अयं पाठः श्रीजेसलमेरुभाण्डागारे सं० १२१५ लिखितपुस्तिकाया अस्ति ॥ ३ ॥

ननु–मूलग्रन्थे क्वाऽपि द्रव्यद्वय प्रतिपादित अस्ति? उच्यते–महानिशीथसूत्रे तच्चूर्णौ च "दोहिं दवेहिं आयंबिलेहिं" ॥ ४ ॥ एवं श्रीआवश्यकबृहद्वृत्तौ, तथाहि—"एव जहन्ने मज्झिमे उक्कोसेऽवि आयंबिले दवदुगेण सवत्थ भणिअव" । पुनः अत्राऽर्थे सूक्ष्मधिया श्रीहरिभद्रसूरिकृतावश्यकबृहद्वृत्ति विचारणीया, तत्पाठस्तु (८५५ पत्रे) अयम्–

"एत्थ आयंबिल च भवति आयंबिलपाउग्ग च, तत्योदणे आयंबिल आयंबिलपाउग्ग च, आयंबिला सकूरा, जाणि कूरविहाणाणि आयंबिलपाउग्ग, तंदुलकणिआउ कुडतो पीट्ठ पिहुगा पिट्ठपोवलियाओ रालगा मण्डगादि कुम्मासा पुव पाणिएण कड्डिज्जति, पच्छा उक्खलीए पीसंति, ते तिविहा–सण्हा मज्झिमा थूला, एते आयंबिल आयंबिलपाउग्गाणि, पुण जे तस्स तुसमीसा कणिआउ कक्कुगा य एवमादि, सत्तुआ जवाणं गोधूमाण वीहिआण वा, पाउग्ग पुण गोधूम भुज्जिया पिचुगाला य जाव भुंजिज्जा से स जतएण ण तीरति पीसिसु, तस्सेव णिद्दारे कणिक्कादि वा, एयाणि आयंबिलपाउग्गाणि, त तिविह पि आयंबिल तिविह उक्कोस १ मज्झिम २ जहण्ण ३ च, दवओ कलमसालिकूरो उक्कोस जं वा जस्स पत्थं रुचइ वा रालगो सामागो वा जहण्णो, सेसा मज्झिमा, जो सो कलमसालिकूरो सो रस पडुच्च तिविधो

उक्कोसं ३ तं चेव तिविध पि आयबिल णिज्जरागुण पडुच्च तिविध उक्कोसो णिज्जरागुणो, मज्झिमो जहण्णोत्ति, कलम सालिकूरो दयतो उक्कोस, दयं चउत्थरसिएण समुद्दिसति, रसओ वि उक्कोस तस्सच्चपणऽवि आयामेण उक्कोस रसओ, गुणतो जहण्ण थोवा णिज्जरति भणित भवति, सो चेव कलमोदणो जदा अन्नेहिं आयामेहिं तदा दयतो उक्कोसो, रसतो मज्झिमो, गुणतो वि मज्झिमो चेव, सो चेव जदा उण्होदएण तदा दयतो उक्कोस, रसतो जहण्ण, गुणओ मज्झिम चेव, जेण दयओ उक्कोस न रसओ, इमाणिं जे मज्झिमा ते चाउलोदणा तेन दयओ मज्झिमा आयबिलेण रसओ उक्कोसा गुणओ मज्झिमा तहेव च उण्होदएण दयओ मज्झ, रसओ जहण्ण, गुणओ मज्झ, मज्झिम दयति कारुणं, रालगतणकूरा दयओ जहण्ण, आयबिलेण रसओ उक्कोस, गुणओ मज्झ ते चेव आयामेण दयओ जहण्ण, रसओ मज्झ, गुणओ मज्झ, ते चेव उण्होदएण दयओ जहण्ण, रसओ जहण्ण, गुणओ उक्कोस बहुणिज्जरत्ति भणित होति, अहवा उक्कोसे तिण्णि विभासा—उक्कोसउक्कोस उक्कोसमज्झिम उक्कोसजहण्ण कजियआयामउण्होदएहिं जहण्णा मज्झिमा उक्कोसा णिज्जरा, एव तिसु विभासितव ॥ ५ ॥ एव श्रीहरिभद्रसूरिकृतश्रावकधर्मप्रज्ञप्तिवृत्तौ अपि एतादृश एव पाठोऽस्ति ॥६॥ तथा—द्वाविंशत्यभ्यधिकै–कादशवत्सरशतैस्तु विक्रमत । अकृतैना नमिसाधुः, शिष्यः श्रीशालिसूरीणाम् ॥१॥ इति प्रशस्तिसद्भावेन ११२२ वर्षे नमिसाधुकृतषडावश्यकवृत्तौ विशेषो यथा विशेषस्तु कलमशालिचतुर्थरसकाद्युत्कृष्ट शेषकूरः चतुर्थरसकादिश्च मध्यम उष्णोदकादिश्च जघन्यो गुणतश्च वह्वी निर्जरा उत्कृष्टे मध्यमा मध्यमेऽल्पा च जघन्ये चेति, एव च स्थिते कलमशालिकूरः कलमशालिकाञ्जिकेन उत्कृष्टः, उत्कृष्टेन यदा भुज्यते तदा जघन्या=निर्जरा अल्पे-

त्यर्थः, तथा उत्कृष्ट द्रव्य जघन्यरसेन भुज्यते, तदा मध्यमो निर्जरा गुण इत्यादिभङ्गका द्रष्टव्या इति, अयमर्थो द्रव्य-रसयोः द्वयोः उत्कृष्टत्वे जघन्या निर्जरा एकैकोत्कृष्टत्वे मध्यमा द्वयोर्जघन्यत्वे उत्कृष्टा निर्जरा इति, अपि चात्र सर्वेष्वपि पूर्वोक्तेषु भङ्गकेषु जघन्य १ मध्यमो २ त्कृष्टरूपेषु ३ शालिप्रभृतीना अन्नाना मध्यादेकतरत् अन्न, अथ च काञ्जिकप्रभृतीनां नीराणा च मध्यात् एकतरन्नीरं आचाम्लमध्ये ग्राह्यत्वेन प्रोक्त, पर न कुत्राऽपि एवरूपो भङ्गको लिखितो, यदुत–एकस्मिन् आचाम्ले शालिप्रभृत्यन्नानां मध्यात् अन्नद्वय तत्रय वा अथ च काञ्जिकप्रभृतिनीरमध्यात् नीरद्वय तत्रय वा ग्राह्यमिति ॥ ७ ॥ ननु द्रव्यद्वयस्य एव ग्रहणे नियमिते कथ दन्तशोधन विना मुखशुद्धिः ?–तत्राऽर्थे सन्देहदोलावली गाथा (११७ पत्रे) यथा–

जो पुण सिलिमाई विणा, मुहसुद्धिं काउमित्थमसमत्थो । सो कडुअकसायरस, सिलिअ गिण्हइ न से भगो ॥१०६॥ अनाहारत्वात् ॥ ८ ॥ यदुक्त–'निंबाईण' गाहा, अतो बहुनिर्जराहेतुत्वेन उत्कृष्टाऽऽचाम्ले द्रव्यद्वयग्रहण युक्त, पुन अत्रार्थे वृद्धपरंपरागतसामाचार्येव प्रमाण, किमेतत्प्रामाण्यात् निर्विकृतिकाऽऽचाम्लोपवासादिषु सचित्तनियममेव न कुर्वन्ति श्राद्धाः किञ्च उपवासे एकमेव द्रव्य न गृह्णन्ति, ततो यथा सूत्राक्षरादर्शनेऽपि अत्र अवश्यतया सचित्तनियमः क्रियते, एव द्व्यधिक-द्रव्यनियमोऽपि इति सन्देहदोलावलिबृहद्वृत्तिवचनप्रामाण्यात् वृद्धपरम्परागतसामाचार्या उत्कृष्टाऽऽचाम्लत्वेन द्रव्यद्वयमेव आचाम्ले गृह्यते, ततो यन्नागवत्केवलिभाषित तत्प्रमाण नाऽत्राऽस्माक कोऽप्यभिनिवेशः इति ॥

॥ इति आचाम्ले द्रव्यद्वयग्रहणाधिकारः ॥ १० ॥

नतु-केचिद्वदन्ति अपक्वदुग्धेन समं द्विदलभक्षणं अभक्ष्यदोषभाक्, तत् किम्? उच्यते—न चैतत् सङ्गतिमङ्गति, काऽपि तद्दोषस्याऽनुक्तत्वात् इति, आह परः, उच्यते-

ननु-भो! "आमगोरससम्पृक्त-द्विदलादिषु जन्तवः। दृष्टाः केवलिभिः सूक्ष्मा-स्तस्मात् तानि विवर्जयेत् ॥ ७१ ॥", इति श्रीहेमाचार्यकृतश्रीयोगशास्त्र(१७१ पत्रे)वचनप्रामाण्यात् आमगोरससम्पृक्तद्विदले सूक्ष्मजन्तूत्पत्तिसद्भावेन तद्व-र्जनस्य सुतरां प्रोक्तत्वात् तद्दुष्टता एव समागता। न च वाच्यं गोरसशब्देन दधितक्रे। परं दुग्धं न?, उच्यते-श्रीहेमाचार्यैः गोरसशब्देनाऽभिधानचिन्तामणौ (१६७ पत्रे) दधि १ दुग्ध २ घोल ३ रूपार्थत्रयस्य प्रोक्तत्वात्, तथाहि-"दुग्धं तु सोमजं, गोरसः क्षीरमूधस्यं, स्तन्यं पुंसवनं पयः ॥ ६८ ॥ १ तथा (१६८ पत्रे) "क्षीरजं=दधि गोरसश्च २" पुनः (१६९ पत्रे) "दण्डाहतं कालशेयं-घोलारिष्टानि गोरसः रसायनं ३" इति। तत आमगोर-सेन समं द्विदलभक्षणे स्पष्टं अभक्ष्यदोषः?, सत्यं, यद्यपि आमगोरसशब्देन अपक्वदुग्धमपि समायात, परं द्विदलदोषाधि-कारे आमगोरसशब्दस्य प्रवृत्तिः अनुत्कालितदधितक्रयोः एव विषये, तयोः द्वयोः एव ग्रन्थादौ व्याख्यातत्वात्, यदुक्तं "श्रीतपागणसरोजरविश्रीदेवसुन्दरगणेन्द्रविनेयः, श्राद्धवर्गविहिताग्रहतः श्रीसोमसुन्दरगुरुः कुरुतेऽदः ॥ १ ॥" इति ग्रन्थादौ सद्भावेन तपागच्छनायकश्रीसोमसुन्दरसूरिभिः श्रीयोगशास्त्रबालावबोधे, तथाहि-

"आमगोरससंपृक्तं, द्विदलं पुष्पितौदनम्। दध्यहर्द्वितयातीतं, क्वथिताश्नं विवर्जयेत्" ॥ ७ ॥

व्याख्या–"आम गोरस-अणऊकाल्या दूध दही छासि ते मांहि मिल्यौ विदल कठवल अने वासीकटूउल अने आदि शब्द लगे फूल्यो जे रान्ध्यो उदन १ कुहणादिक २ तथा विविहलो-सोल पहुर ऊपहरा दहीमाहि ३ अनइ वासीयकठउलादिक कुहिआ अन्न ४ पतलां सवि हि माहि दृष्टा केवलज्ञानीये सूक्ष्मजीव उपजता दीठा, ते भणी ए सगला ही श्रावके वर्जिआ इति ।"अत्रार्थे योगशास्त्रावचूर्णिरपि विलोकनीया, "तत्राऽऽमगोरसशब्देन अनुत्कालितदधि–तक्रवस्तुद्वयस्य एव व्याख्यानात्", तथा विहाय एक कश्चिद् गच्छं, अन्येषु गच्छेषु आमदुग्धमध्ये द्विदलग्रहणनिषेधो नाऽस्ति, प्रत्युत प्रवृत्तिः वर्त्तते, अथ क्वाऽपि ग्रन्थेऽपक्वदुग्धमध्ये द्विदलनिषेधः प्रोक्तो भवेत्, तदा स ग्रन्थो विचार्येत, परं स ग्रन्थो नाऽस्तीति सम्भाव्यते इति ॥

॥ इति अपक्वदुग्धमध्ये द्विदलग्रहणाधिकार ॥ ११ ॥

ननु–आत्मनां गच्छे मुद्गादीनामिव सङ्गरादीनामपि द्विदलत्वं गण्यते, केषाचिद्गच्छे तु न इति, तत्र को विचारः? उच्यते,—श्रीजिनदत्तसूरियुगप्रधानैः उत्सूत्रपदोद्घट्टने सङ्गरादीना द्विदलत्वे अमन्यमाने उत्सूत्रस्य प्ररूपितत्वं उक्तमस्ति, तथाहि–

"कडुअसगरियाओ न हुति विदलति विरुहगाऽणत इति उत्सूत्र", ॥ १ ॥ एवमेव श्रीजिनप्रभसूरिभिः विधिप्रपाया सम्यक्त्वारोपणविधौ प्रत्यपादि, तथाहि–

सगरफलिआमुग्गमउठमासमसूरकलायचणयचवलवल्लकुलत्थमिस्थिआ, कडुअगोआरमाइ विदलाइ गोरसेण सह न जिमेअव्वाइं एएसिं राइत्तिअ न कायव" इति ॥ २ ॥

इत्यमेव चैत्यवन्दनकुलकेऽपि, (९७ पत्रे) तथा हि–

"संगरफलिमुग्गमुहट्ठमासकङ्कुअपमुक्कसबिदलाइ । सह गोरसेण न जिमेए य रायत्तिअं न करे ॥ १८ ॥
अम्मि य पीलिज्जते, मणय पि न नेहनिग्गमो हुज्जा । तुम्भिअदलाइ दीसति मित्थिगाईण जह लोए ॥ १९ ॥" ॥ ३ ॥
एव श्रीजिनपतिसूरिभिरपि निजसामाचारीमन्थे ८ मत्यपादि, तथाहि-"सगर कङ्कुअगोयराइ विदल" इति ३ ।
ननु-पूर्वाचार्यग्रन्थेऽपि क्वाऽपि सङ्गरादीनां द्विदलत्वसम्मति अस्ति ? उच्यते—यद्यपि साम्प्रत प्रवर्त्तमाना श्रीसिद्धसेनसूरिकृता श्रीप्रवचनसारोद्धारवृत्तिः तत्र सा नाऽस्ति, पर श्रीआनन्दसूरिभिः श्रीप्रवचनसारोद्धारगाथाद्वितीयार्द्धं व्याख्यानयद्भिः स्ववृत्तौ तथैवोक्त, तथाहि-

"दहिए विगयगयाइं, घोलवडाँ घोलसिहरिणि करवो । लवणकणदहिअमहिअ सगरगाइम्मि अप्पडिए ॥ १ ॥"

व्याख्या-लवणकणैः जीरकलवणलेशैः युक्त दधि हस्तेन मथितं वस्त्रेण गालित तदपि राञ्युषित सत् कल्पते, निर्विकृतिकमत्याख्यानवतां, क्वाऽपि देशे सङ्गराद्यपि तत्र प्रक्षिप्यते, इत्याशङ्क्याऽऽह, पर सङ्गरादौ अपतिते सति, तत्र तु द्विदलदोषसम्भवात् न कल्पते इत्यर्थ. ॥ ४ ॥ एवं यतिदिनचर्याया अपि, तथा हि-"फलियावग्गे तह सगर वल्ला चवला य होला येति" ॥ ५ ॥ ननु-सङ्गरादीना मुद्गादीनामिव द्विदलत्वसाधक लक्षणमस्ति न वा ? उच्यते-बाढ अस्तीति ब्रूम , तथा हि-

न य सगरवीयाओ तिलुप्पत्तिं कयाइवि सभवइ । दलिए तुम्भि दलाइ मुग्गाईण च दीसति ॥ १ ॥ इत्यादि ॥ ६ ॥
पुनः केवलिना दृष्ट सत्यमिति ॥

॥ इति सङ्गरप्रमुखाणा द्विदलत्वाधिकार. ॥ १२ ॥

ननु–केषाचित् गच्छे श्राद्धानपि साधूनिव "पाणस्स लेवाडेण वा" इत्यादिपानषडागारा उच्चारयन्ति, आत्मना गच्छे तु न इति, तत्र किं निदानम्? उच्यते–

शास्त्रे निषिद्धत्वात्, वृद्धाना असंमतत्वात्, युक्तियुक्तत्वाच्च, यतः श्राद्धाना पानकागारषट्कनिषेध श्रीजिनदत्तसूरयः उत्सूत्रपदोद्घट्टने प्रोचिवासः, तथाहि–

"अजिअसंतिहारगिरी पाणागारे समुच्चरइ" तदुत्सूत्रमिति ॥ १ ॥ एव श्रीजिनपतिसूरयोऽपि निजसामाचार्यां १२ लिखन्ति स्म; तथाहि–"सावयाण पाणस्स लेवाडेण वा इच्चाइ पाणगागार अणुच्चारण" इति ॥ २ ॥ ननु–पूर्वसूरिभिरपि क्वाऽपि ग्रन्थे तन्निषेधो भणितोऽस्ति? उच्यते—श्रीबृहद्भाष्ये; तथा हि–"प प छ आगारा साहूणं, न पुण सड्ढाण" इति ॥ ३ ॥ एवं श्रीप्रत्याख्यानभाष्ये त्र्यशीत्यधिकैकादश ११८३ शतवर्षे निर्मिताया तद्वृत्तौ च, तथाहि–"एते पानकागारा यतीनामेव, न तु श्राद्धानां, न खलु श्राद्धाः सर्वविरतयः इति" ॥ ४ ॥ ननु–वृद्धानां असमतत्व युक्तियुक्तत्व च कथं? इत्याह–श्रूयतां सावधानीभूय विचार्यतां च चक्षुषी निमील्य, अत्र अय परमार्थ —यतीना एकाशनादिप्रत्याख्यानवतां भिक्षावृत्तित्वेन यथालब्धसर्वपानकानि गृह्णतां पिबता च तदपवादभूताः, "पाणस्स लेवाडेण वा" इत्यादि षडागारा अपि उच्चारयितुं कल्पन्ते एव, पर सचित्तपरिहारिणा गृहस्थाना एकाशनादिप्रत्याख्यानवतां आरम्भवशित्वेन पानकापवादसेवार्थं षडागारान् उच्चारयितु न घटामाटीकते। न च वाच्य गृहस्थाना अपि भिक्षावृत्तिः अस्तु,

को दोषो गृहस्थानां एकादशप्रतिमाया अर्वाक् भिक्षावृत्तेः अष्टकग्रन्थादौ पौरुषघ्नीत्वेन निषिद्धत्वात् । अथ यतिन इव गृहस्था अपि पानकपडागारान् उच्चरिष्यन्ति, तदा गृहस्था अपि यतिन इव उपवासादित्रिविधाहारप्रत्याख्यानमध्ये सौवीराद्यवश्रावणादिपानीयानि अपि पास्यन्ति, न च एषा सौवीरादिपानीयपानप्रवृत्तिः, केषाञ्चिदपि गच्छे दृश्यते । तदपाने च तदपवादागाराणां अपि समुच्चारणे स्पष्टं असंगतिरेव, नहि विशेष्याभावे विशेषणसंभवः, प्रत्युत पानकपडागारोच्चारण अन्तरेणाऽपि सर्वगच्छेषु सचित्तपरिहारिणः श्राद्धाः सन्ध्याया द्विविधत्रिविधाहारदिवसचरिमप्रत्याख्यानकरणानन्तर रात्रौ प्रासुकपानीय पिबन्तो दृश्यन्ते । अपि च यथा दिवसचरिमप्रत्याख्याने अनुच्चारितेषु अपि पानकागारेषु रात्रौ गृहस्थाः शुद्धोदक पिबन्ति, तथा अन्येषु अपि दैवसिकप्रत्याख्यानेषु पानकोच्चारं विनाऽपि पानीय पिबन्तु, का विचारणा ? उभयत्र समानत्वात्, किं च खर्जूर-तिल-तन्दुलधावना-ऽवश्रावणादीनि पानकानि, यथा रात्रौ गृहिणा अपेयानि तथा दिवा अपि अपेयानि एव, तत्पानस्य धर्मे अभिमुखानां अप्रतिपत्तिहेतुत्वेन अप्रतिपन्नधर्माणा, विपरिणामहेतुत्वेन वैधर्मिकाणा, जिनधर्मस्य निन्दाकृतौ प्रेरकत्वेन च महादोषत्वात् तेन पानकोच्चारणं अनर्थक एव, आह परः—न तु तद् अनर्थकं, यतो यद्यपि फोगरज—दाडिमछल्ल्यादिभिः प्रासुकीकृत जल त्रिविधाहारेण पातु कल्पते एव, तेषा कषायवृक्षफलछल्लीचूर्णत्वेन अनाहारकत्वात्, तथापि बिभीतकादिना प्रासुकीकृतं न कल्पते एव, तस्य च स्वादिमाहारत्वादिति । तदर्थं पानकागारान् उच्चरन्तु गृहस्थाः इति चेत् ? न, वस्तुगत्या बिभीतकादेः अपि कटुफलत्वेन अनाहारकत्वात्, न च वाच्य पानमङ्गभिया

तेण । जत्तेण होइअवं, सुहाणुबंधप्पहाणेणं ॥ ४ ॥ संभवइ अकाले वि हु, कुसुम महिलाण तेण देवाण । पूयाए अहिगारो, नओ इओ होइ सुत्तुत्तो ॥ ५ ॥ लोगुत्तमदेवाण समुच्चणे समुचिओ इह नेओ सुइगुण जिट्ठत्तणओ, लोए लोउत्तरे पुरिसो ॥ ६ ॥ न छिवंति जहा देहं, ओसरणे भावजिणवरिंदाणं । तह तप्पडिम पि सय, पूअंति न जुवनारीओ ॥ ७ ॥" इत्यादि, अत्र इद रहस्यम्–श्रीजिनदत्तसूरिभिः इदं निषिद्ध, यदुत तरुणस्त्री मूलप्रतिमा स्वकरेण चन्दनादिविलेपनेन पूजयेदिति न अन्यत् किमपि। ननु–तर्हि या बाला वृद्धा च सा अन्यगच्छीयबालवृद्धस्त्रीवत् प्रतिमापूजा कुर्वंती कथ न दृश्यते ? उच्यते–तथाविधाया रूढेः दुर्वार्यत्वात्, कुर्वन्तु ता, प्रतिमापूजा को निवारक ?, कुर्वन्ति अपि च ता बालाः वृद्धाश्च काश्चन स्त्रियः कुत्रचित् ॥

॥ इति तरुणस्त्रिया, मूलप्रतिमापूजानिषेधाधिकार ॥ १४ ॥

ननु–आत्मीयो गच्छः सुविहितः तर्हि सांप्रत श्राद्धाः "दसण १ वय २ सामाइय ३ पोसह ४ पडिमा य ५ बभ ६ सचित्ते ७ । आरंभ ८ पेस ९ उद्दिट्ठ १०, वज्जए समणभूए अ ॥ १ ॥" इत्येवरूपा एकादश प्रतिमाः कथ न वहंति ? उच्यते–सप्रति काले दुःषमकालानुभावेन संहनन–साहस–बलधैर्याभावात्, निरतिचारसम्यक्त्वादि पालयितु न शक्यते, पुनः कायोत्सर्गप्रतिमाया पञ्चमासीं यावत् शून्यमठे श्मशाने वा चतुरः प्रहरान् कायोत्सर्गं कृत्वा पौषधिकीरात्रिः अतिवाहयितु अशक्या । पुनः भूत–प्रेतव्यन्तरादिदुष्टानिष्टदेवतादिकृतोपसर्गे सति प्रादुर्भूतप्रभूतभीत्या च मनोधैर्य क्षणमपि न तिष्ठति, प्रत्युत अपायापत्तिश्च स्यादिति तद्वहननिषेधो युक्तिमान् । ननु–कैः तद्वहननिषेधोऽकारि? उच्यते—युगप्रधान-

श्रीजिनदत्तसूरिप्रमुखै' । क्व ? कस्मिन् ग्रन्थे ? इत्याह–"पुरिसित्थीओ पडिमा, वहंति तत्थाऽइमा चउरो ॥ ६ ॥" तदुत्सूत्र इति श्रीजिनदत्तसूरिकृतोत्सूत्रपदोद्घट्टनकुलके षष्ठगाथायां ॥ १ ॥ एव श्रीजिनपतिसूरिभिरपि निजसामाचार्यां तन्निषेधो लिलिखे, तथाहि–"संपइ काले सावयपडिमाओ न वहिज्जते ॥ २ ॥" ननु–तत प्राक्तनग्रन्थेऽपि क्वाऽपि प्रतिमावहननिषेधो दृश्यते ? उच्यते–तीर्थोद्धारप्रकीर्णके तद्व्यवच्छेदस्य प्रतिपादना, तथाहि–

साहूणऽग्गोयरओ वुच्छिन्नो दूसमाणुभावाओ । अज्जाण पणवीसं सावयधम्मो अ वुच्छिन्नो ॥ १ ॥ एतद्गाथार्थस्तु अय तथाहि–साधूनां=महात्मना पूर्वं प्रमादाल्पत्वेन 'अग्गोऽयरओ' त्ति अग्रवेयार (अग्रावतारः) परिधानविशेषः साधुजनप्रतीत' आसीत्, स संप्रति व्युच्छिन्नः, कटिपट्टकस्य अन्यथा करणात् कस्मात् दु'षमानुभावात् १ तथा आर्यिकाणां साध्वीनां पञ्चविंशत्युपकरणानां आसन्, संप्रति तानि अपि व्यवच्छिन्नानि २ तथा श्रावकधर्मः श्रावकैकादशप्रतिमारूपो धर्मोऽपि व्यवच्छिन्नः ३ न च वाच्य श्रावकधर्मशब्देन सम्यक्त्वमूलस्थूलद्वादशव्रतरूपो धर्मो व्यवच्छिन्नः, एतद्वचनस्य द्वादशव्रतरूपश्रावकधर्मस्य प्रत्यक्ष क्रियमाणत्वेन अघटमानत्वात्, तद्व्यवच्छेदस्य तु साधुधर्मव्यवच्छेदेन सहभावित्वाच्च, साधुधर्मस्तु आदुःप्रसहसूरिं स्थास्यति, ततः तत्सहभावित्वेन श्रावकधर्मोऽपि द्वादशव्रतरूपः तावन्त काल स्थाता। ननु–तीर्थोद्धारप्रकीर्णकगाथातुर्यपदस्य केन अर्थो व्याख्यातः ? यदुत 'एकादशप्रतिमारूपो धर्मो व्यवच्छिन्नः' ? उच्यते–तरुणप्रभसूरिणा स्वकृतषडावश्यकबालावबोधे इत्थमेव प्रतिपादितत्वात्, तथाहि–

"साहूणंऽगोयरओ, वुच्छिन्नो दूसमाणुभावाओ । अज्जाण पणवीस, सावयधम्मो अ वुच्छिन्नो ॥ १ ॥" अत्र साधु-

गाहित्तए तं० तिलोदग वा तुसोदग वा जवोदग वा । वासावासं पज्जोसविअस्स अट्ठमभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पति, तओ पाणगाइं पडिगाहित्तए तं० आयामे वा सोवीरे वा सुद्धवियडे वा इत्यादि" श्रीदशाश्रुतस्कन्धाष्टमाध्ययनादिषु (कल्पसूत्रे सामाचार्यां) चतुर्थषष्ठाष्टमादिप्रत्याख्यानस्य स्पष्ट नामश्रवणात् । कथङ्कारं नो उपलभः ?, सत्य, श्रूयतां श्रुती दत्त्वा, विचार्यतां च क्षण चक्षुषी निमील्य । अत्र इदं रहस्यं—एतानि चतुर्थ-षष्ठाष्टमादीनि प्रत्याख्यानकारापणक्षणे नामग्राह न उच्चार्यंते किन्तु केनाऽपि एकोपवासः कृतः तस्य उपवासस्य चतुर्थं इति सज्ञा १, एव उपवासद्वयस्य षष्ठ इति सज्ञा २, उपवासत्रयस्य अष्टम इति सज्ञा ३, यावत् षोडशोपवासानां चतुर्स्त्रिशत्तम इति सज्ञा वर्तते, तथैव श्रीस्थानाङ्गवृत्तौ अपि तृतीयस्थाने चतुर्थस्य अर्थं एकोपवासः, एव षष्ठस्य अर्थं उपवासद्वय, अष्टमस्य अर्थं उपवासत्रय इत्यादि व्याख्यातमस्ति । तथा च तद्वृत्तिपाठः (१४७ पत्रे)—चउत्थेत्यादिसूत्राणि चतुर्दश व्यक्तानि, केवल एक पूर्वदिने, द्वे उपवासदिने, चतुर्थपारणकदिने भक्त=भोजन परिहरति यत्र तपसि तत् चतुर्थं भक्त, तदस्य अस्ति स चतुर्थभक्तिक, तस्य एवं अन्यत्राऽपि, शब्दव्युत्पत्तिमात्र एतत् प्रवृत्तिस्तु चतुर्थभक्तादिशब्दाना एकाद्युपवासादिषु इति । अथ च श्रीआवश्यकसूत्रेऽपि उपवासपाठस्तु अय (८५३ पत्रे) तथाहि—"सूरे उग्गए अब्भत्तट्ठं पच्चक्खाइ" इत्यादि, पर न तु एव यदुत 'सूरे उग्गए चउत्थ पच्चक्खाइ' एवं छट्ठभत्त अट्ठमभत्त यावत् चउतीसभत्त । अथ यदि पुनः प्रथमदिने एव षष्ठविधायिनः षष्ठसञ्ज्ञा स्यात् तदा षष्ठभक्तिकमुनेः प्रथमदिनेऽपि पूर्वोक्तानि तिल-तुष-जवोदकानि द्वितीयदिने कल्पनीयानि उपादेयानि स्यु षष्ठभक्तिकत्वात्, पर न च चतुर्थप्रायोग्यपानीयानि, न च एवं प्रवृत्तिः कुत्राऽपि, एव अष्टमभक्तिकस्याऽपि साधो

प्रथमदिने तृतीयदिनप्रायोग्याणि आयाम-सौवीर शुद्धविकटानि त्रीणि पानकानि ग्राह्याणि स्यु' अष्टमभक्तिकत्वात्, परं न चतुर्थपष्ठप्रायोग्याणि पानकानि, एव विकृष्टभक्तिकस्याऽपि महामुनेः प्रथमदिने एव उष्णविकटमेव पानीयं उपादेय स्यात् न तत्स्वेदिमादिक, असंगत च एतत्, यत तृतीयदिनात् उपर्येव तच्छरीर देवताधिष्ठित इति, प्रथमद्वितीयतृतीय-दिनेषु विकृष्टभक्तिकस्य शेषपानकाना अस्वीकारे भगवदाज्ञाभङ्गः स्यात्, यतो विकृष्टभक्तिकस्य एक उष्ण विकटमेव पानक अनुज्ञात, यदाह-श्रीमद्भद्रबाहुस्वामी श्रीकल्पसूत्रे साधुसामाचार्यां, तथाहि-

'विकट्ठभत्तिअस्स भिक्खुस्स कप्पति एगे उसिण वियडे' इति, किं च युगपत् अष्टमप्रत्याख्याने प्रथमदिने चतुर्विधाहारपरिहारिणः अग्रिमदिनद्वये पानकाहारकर्तुः अष्टमप्रत्याख्यातुः प्राग्दिने कथ प्रत्याख्यान सगतिं अङ्गति?। तथा अष्टमप्रत्याख्यानकृत्, उपासकः पाण्मासिकतपश्चिन्तनावसरे आद्यदिने अष्टम कर्तु शक्नोमि इति उक्तौ सत्या, द्वितीयदिने किं तपः कर्तु शक्नोमि इति ब्रूयात्? एव तृतीयेऽपि दिने किं ब्रूयात्? न च वाच्य दिनत्रयेऽपि अष्टम कर्तुं शक्नोमि इति वक्तव्य अनवस्थाप्राप्तेः, कथं तृतीयदिनेऽपि? यदि अष्टमप्रत्याख्यान करोति तदा पुन' उपवासद्वय अग्रेऽपि कर्तव्य स्यात्, तदकरणे च अष्टमशब्दप्रतिज्ञाभङ्गः स्यात्, तथा अष्टाह्निका कर्तुकामस्य श्राद्धादे' प्रथमदिने एव अष्टादशभक्तयुगपत्प्रत्याख्याने एकस्य कस्याऽपि कथचित् उपवासस्य भङ्गे अष्टाह्निकाया अपि भङ्ग आपद्येत, पुनरपि केनाऽपि उपवासद्वय कृत आसीत्, पश्चात् अकस्मात् तृतीयोपवासः कृतः तस्य अष्टमं कथ्यते न वा? । अथ यदि षष्ठाष्टमादीनां उच्चाररूपता स्यात्, तदा अभक्तार्थादिवत् तेषामपि आकारयत्वापत्तिः स्यात् न च सा क्वाऽपि दृष्टा

गाहित्तए तं० तिलोदगं वा तुसोदग वा जवोदगं वा । वासावासं पज्जोसविअस्स अट्ठमभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पति, तओ पाणगाइं पडिगाहित्तए त० आयामे वा सोवीरे वा सुद्धवियडे वा इत्यादि" श्रीदशाश्रुतस्कन्धाष्टमाध्ययनादिषु (कल्पसूत्रे सामाचार्यां) चतुर्थषष्ठाष्टमादिप्रत्याख्यानस्य स्पष्ट नामश्रवणात् । कथङ्कार नो उपलभः ?, सत्य, श्रूयता श्रुती दत्त्वा, विचार्यता च क्षण चक्षुषी निमील्य । अत्र इद रहस्य—एतानि चतुर्थ-षष्ठाष्टमादीनि प्रत्याख्यानकारापणक्षणे नामग्राह न उच्चार्यते किन्तु केनाऽपि एकोपवासः कृतः तस्य उपवासस्य चतुर्थ इति सज्ञा १, एव उपवासद्वयस्य षष्ठ इति सज्ञा २, उपवासत्रयस्य अष्टम इति सज्ञा ३, यावत् षोडशोपवासानां चतुर्स्त्रिंशत्तम इति सज्ञा वर्तते, तथैव श्रीस्थानाङ्गवृत्तौ अपि तृतीयस्थाने चतुर्थस्य अर्थं एकोपवासः, एव षष्ठस्य अर्थं उपवासद्वय, अष्टमस्य अर्थं उपवासत्रय इत्यादि व्याख्यातमस्ति । तथा च तद्वृत्तिपाठः (१४७ पत्रे)—चउत्थेत्यादिसूत्राणि चतुर्दश व्यक्तानि, केवल एक पूर्वदिने, द्वे उपवासदिने, चतुर्थपारणकदिने भक्त=भोजन परिहरति यत्र तपसि तत् चतुर्थ भक्त, तदस्य अस्ति स चतुर्थभक्तिक' तस्य एवं अन्यत्राऽपि, शब्दव्युत्पत्तिमात्र एतत् प्रवृत्तिस्तु चतुर्थभक्तादिशब्दाना एकाद्युपवासादिषु इति । अथ च श्रीआवश्यकसूत्रेऽपि उपवासपाठस्तु अय (८५३ पत्रे) तथाहि—"सूरे उग्गए अब्भत्तट्ठं पच्चक्खाइ" इत्यादि, पर न तु एव यदुत 'सूरे उग्गए चउत्थ पच्चक्खाइ' एवं छट्ठभत्त अट्ठमभत्त यावत् चउतीसभत्त । अथ यदि पुनः प्रथमदिने एव षष्ठविधायिनः षष्ठसज्ञा स्यात् तदा षष्ठभक्तिकमुनेः प्रथमदिनेऽपि पूर्वोक्तानि तिल-तुष-यवोदकानि द्वितीयदिने कल्पनीयानि उपादेयानि स्यु षष्ठभक्तिकत्वात्, परं न च चतुर्थप्रायोग्यपानीयानि, न च एवं प्रवृत्ति कुत्राऽपि, एव अष्टमभक्तिकस्याऽपि साधो

प्रथमदिने तृतीयदिनप्रायोग्याणि आयाम-सौवीर-शुद्धविकटानि त्रीणि पानकानि ग्राह्याणि स्युः अष्टमभक्तिकत्वात्, पर न चतुर्थषष्ठप्रायोग्याणि पानकानि, एव विकृष्टभक्तिकस्याऽपि महामुनेः प्रथमदिने एव उष्णविकटमेव पानीयं उपादेय स्यात् न तत्स्वेदिमादिक, असगत च एतत्, यत तृतीयदिनात् उपर्येव तच्छरीर देवताधिष्ठित इति, प्रथमद्वितीयतृतीय-दिनेषु विकृष्टभक्तिकस्य शेषपानकानां अस्वीकारे भगवदाज्ञाभङ्गः स्यात्, यतो विकृष्टभक्तिकस्य एक उष्ण विकटमेव पानक अनुज्ञात, यदाह—श्रीभद्रबाहुस्वामी श्रीकल्पसूत्रे साधुसामाचार्यां, तथाहि—

'विकट्ठभत्तिअस्स भिक्खुस्स कप्पति एगे उसिण वियडे' इति, किं च युगपत् अष्टमप्रत्याख्याने प्रथमदिने चतुर्विधा-हारपरिहारिणः अग्रिमदिनद्वये पानकाहारकर्तुः अष्टमप्रत्याख्यातुः प्राग्दिने कथ प्रत्याख्यान सगतिं अङ्गति ? । तथा अष्टमप्रत्याख्यानकृत्, उपासकः पाण्मासिकतपश्चिन्तनावसरे आद्यदिने अष्टम कर्तुं शक्नोमि इति उक्तौ सत्या, द्विती-यदिने किं तपः कर्तुं शक्नोमि इति ब्रूयात् ? एव तृतीयेऽपि दिने किं ब्रूयात् ? न च वाच्य दिनत्रयेऽपि अष्टम कर्तुं शक्नोमि इति वक्तव्य अनवस्थाप्राप्तेः, कथ तृतीयदिनेऽपि ? यदि अष्टमप्रत्याख्यानं करोति तदा पुनः उपवासद्वय अग्रेऽपि कर्तव्य स्यात्, तदकरणे च अष्टमशब्दप्रतिज्ञाभङ्गः स्यात्, तथा अष्टाह्निका कर्तुकामस्य श्राद्धादेः प्रथमदिने एव अष्टादशभक्तयुगपत्प्रत्याख्याने एकस्य कस्याऽपि कथञ्चित् उपवासस्य भङ्गे अष्टाह्निकाया अपि भङ्ग आपद्येत, पुनरपि केनाऽपि उपवासद्वय कृत आसीत्, पश्चात् अकस्मात् तृतीयोपवासः कृतः तस्य अष्टमं कथ्यते न वा ? । अथ यदि षष्ठाष्टमादीनां उच्चाररूपता स्यात्, तदा अभक्तार्थादिवत् तेषामपि आकारयत्वापत्तिः स्यात् न च सा क्वाऽपि दृष्टा

श्रुता च, ततः श्राद्धादिः चतुर्थं-षष्ठं-अष्टमं वा यावत् चतुस्त्रिंशत्तमं वा करोतु पर प्रत्यह प्रत्याख्यान एकोपवासस्य
एव कार्यते न तु षष्ठाष्टमादीना तेषा सज्ञामात्रत्वात् । अत्राऽऽह परः—ननु-प्रथमदिने अष्टमकर्तुं अष्टमकर्तृत्व न
उच्यते, तदा तृतीयदिने तस्य कुतो अष्टमकर्तृत्वं अभ्यागतम् ? उच्यते—आगमादेव, क आगम ? इत्याह श्रीभ-
गवतीसूत्रे सप्तमशतके नवमोद्देशके (१२० पत्रे), तथाहि—

'तते ण से वरुणे नागनत्तुए अण्णया कयाइ रायाभिओगेण गणाभिओगेण बलाभिओगेण रहमुसले सगामे आणत्ते
समाणे छट्ठभत्तिए अट्ठमभत्त अणुवट्टेति अट्ठमभत्त अणुवट्टेत्ता कोडुबिअपुरिसे सद्दावेइ सद्दावेइत्ता' इत्यादि । पुन
श्रीपञ्चमाङ्गे एव तृतीयशतके (१७१ पत्रे)

तथाहि—"ते ण काले ण ते ण समएणं अह गोयमा ! छउमत्थकालिआए एक्कारसवासपरिआए छट्ठ छट्ठेण अणिक्खि-
त्तेण तवो कम्मेण सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगाम दूइज्जमाणे जेणेव सुसमारपुरे नगरे,
जेणेव असोअवणसडे उज्जाणे, जेणेव असोअवरपायवे, जेणेव पुढविसीलावट्टओ तेणेव उवागच्छामि उवागच्छित्ता असो-
गवरपायवस्स हेट्ठा पुढविसीलापट्टयंसि अट्ठमभत्त परिगिण्हामि, दोवि पाए साहट्टु-वग्घारिअपाणी एगपोग्गलनिविट्ठदिट्ठी
अणिमिसनयणे ईसिपब्भारगएण काएण अहापणिहिएहिं गत्तेहिं सव्विदिएहिं गुत्तेहिं एगराइय महापडिम उवसपज्जित्ताण
विहरामि" इति, अत्र उभयवरुण १ श्रीमहावीरयोर्द्वितीयदिने षष्ठभक्तिकनामत्वे सति तृतीयदिने अष्टमभक्तिकत्व जात,
पर प्रथमद्वितीयदिनयोर्न अभूत् इति, तथा "अण्णे भणंति एव चिंतेअव-किं मए पच्चक्खातव ? जइ आवस्सगमादि-

आणं जोगाणं सक्केति संघरणं काउं तो अब्भत्तट्ठ वयसति, असक्केंतो पुरिमड्ढायंबिलेगट्ठाण, असक्केंतो निव्वीयं असक्केंतो पोरिसमाइ विभासा, अह चउत्थभत्तिओ छट्ठ ववसइ छट्ठभत्तिओ अट्ठममिच्चादि विभासा" इति श्रीआवश्यकचूर्णौ (२१४ पत्रे) अत्राऽपि चतुर्थभक्तिको अभूत् प्रथमदिने, अथ च द्वितीयदिने तपश्चिन्तनावसरे षष्ठमनोरथो जातः, ततः षष्ठः कृतः ततो विचारयन्तु, तस्य षष्ठकर्तुः प्रथमदिवसे चतुर्थभक्तिकत्वं कथित, न षष्ठभक्तिकत्व, एव छट्ठभत्तिओ अट्ठम ववसइ, अत्राऽपि अष्टमकर्तुरपि द्वितीयदिने षष्ठभक्तिकत्वेन प्रोक्तमिति । इति प्रत्यह प्रत्याख्यान एकोपवासस्य एव कार्यते न षष्ठाष्टमादीनां इति ॥ १६ ॥

॥ इति अनेकोपवासप्रत्याख्याननिषेधाधिकार ॥ १६ ॥

ननु-श्रीखरतरगच्छीयाः श्राद्धाः सामायिकदण्डकोच्चार वारत्रय कुर्वन्ति, तत्स्वगच्छपरम्परया किं वा ग्रन्थानुसारेण ? उच्यते-ग्रन्थानुसारेण एव, कथ ? इत्याह-श्रीजिनपतिसूरिभिः स्वकृतसामाचार्यां सामायिकदण्डकोच्चारस्य वारत्रय पठनोपदेशात्, तथाहि-"पडिक्कमणाइसु सामाइदडगो नवकारो अ वारतिग भणिज्जइ १" एव श्रीजिनप्रभसूरिभिरपि अभाणि, तथाहि-"नमुक्कारतिगपुव्व करेमि भते ! सामाइय इच्चाइ दडग वोसिरामि पज्जत वारतिग कड्डिअ खमासमणेण इरिय पडिक्कमिअ" इत्यादि २ इत्थमेव श्रीतरुणप्रभसूरिभिरपि स्वकृतबालावबोधे प्रोचे, तथाहि-"मुहपत्ती पडिलेही एक खमा० सामाइय संदिसावेमि, बीय ख० सामाइय ठाएमि ती० ख० देइकरी अर्धावनतगात्र हु तउ तिण्ह नमस्कार कही त्रिणि वार करेमि भते० इसउ सामायिक सूत्र त्रिणि वार कहइ" इत्यादि ३ । ननु-काऽपि जीर्णग्रन्थेऽपि सामायिकदण्डकोच्चार

पाठो वारत्रय पठितोऽस्ति ? उच्यते–श्रीव्यवहारभाष्ये चतुर्थोद्देशके यतीनां दीक्षाग्रहणे (५८ पत्रे) प्रोक्तत्वात्, तथाहि– "अप्पो वा थिरहत्थो, सामाइअतिगुणमक्खगहण च । तिगुण पादक्खिणण, नित्थारग गुरुगुणविवड्ढी ॥ २०९ ॥" तट्टीकाकारैः मलयगिरिभिरपि त्रिःकृत्वः सामायिकोच्चारणं व्याख्यातमस्ति ४, पुनर्व्यवहारभाष्यटीकाया तत्रैव लिखित "यतीनां व्रतोच्चारे कार्यमाणे सति एकैक व्रत गुरुर्यदि वारत्रयं नोच्चारयति तदा गुरोश्चतुर्लघुनामप्रायश्चित्तापत्ति स्यात्", तथाहि– (५८ पत्रे) "अप्पत्ते अकहित्ते अणहिगय अपरिच्छ अइक्कमे पासे । एक्केक्को चउगुरुगा, चोअग सुत्त तु कारणिअं ॥ २११ ॥" तत्र अतिक्रमे एकैकस्य व्रतस्य वारत्रय अनुच्चारणे एतेषु सर्वेषु प्रत्येक एकैकस्मिन् प्रायश्चित्त चत्वारो गुरुकाः । ४ । ननु–इदं सामायिकदण्डकोच्चारण वारत्रयं तु यतीना दीक्षाग्रहणादौ प्रतिपादित, न श्रावकाणा नामग्राह ? सत्य, यद्यपि श्रावकाणा नामग्राह न उक्तं, तथापि श्रावकाणामपि सामायिकनवमव्रतोच्चारे कथ वारत्रय न उच्चार्यते ? व्रतोच्चारविधिः सर्वेषां सर्वत्र समानत्वात् श्रावकाणा साध्वनुगामिक्रियाकरणत्वोपदेशत्वाच्च । न च वाच्य खरतरगच्छे एव वारत्रयं दण्डकोच्चारण, अन्येष्वपि बहुषु गच्छेषु सम्यक्त्वव्रतशीलव्रताद्युच्चारे वारत्रय तदुच्चारस्य पठ्यमानत्वात् । ननु–आवश्यकचूर्णि १ तट्टीका २ पञ्चाशकवृत्ति ३ नवपदप्रकरणविवरण ४ पौषधविधिप्रकरणादिषु ५ कथ सामायिकोच्चारस्य बहुत्व न दर्शितम् ? उच्यते—तत्राऽपि सामान्यतया उक्तौ अपि जात्यैकवचनमिति न्यायेन बहुत्वं ज्ञेय । यतो यथा ओघनिर्युक्तौ "सामाइय उभयकाल पडिलेहा" इति पाठे सामान्यतया सामायिकशब्द उक्तः, तथापि तद्वृत्तिकृता श्रीद्रोणाचार्येण 'सामाइअ ति' सामायिक वारत्रयमाकृष्य स्वपितीति व्याख्यातं । एव उत्तराध्ययनेष्वपि षड्विंशाध्ययने प्रतिक्रमणा-

ध्ययनाधिकारे (५४४ पत्रे) "काउस्सग्ग तओ कुज्जा" अय पाठः सामान्यतः कायोत्सर्गाभिधायी अपि टीकाकृता "कायोत्सर्ग–चारित्र १ दर्शन २ श्रुतज्ञान ३ शुद्धिनिमित्त कायोत्सर्गत्रयलक्षणं जातौ एकवचनं, ततो गुरुवन्दनाद् अनन्तर कुर्याद्" इति व्याख्यातं, एव अत्राऽपि आवश्यकचूर्ण्यादिषु सामान्यतः सामायिकाभिधानेऽपि अन्यग्रन्थसम्मत्या सम्प्रदायाच्च तत् त्रयं अवसेयम् । ननु–रात्रिपौषधिकाना शयनावसरे सामायिकदण्डकत्रय तु साक्षाद् दर्शित=वत्सल–पर अन्यत्र अन्यदा सामायिकग्रहणसमये न तत् त्रित्वं दर्शित ?, सत्य, यदि शयनसमयेऽपि तत्त्रय अभ्यनुज्ञात तदा सामायिकव्रत उच्चरद्भिः सद्भिः विशेषतः तत् त्रित्व प्राप्यम् । तथा निशीथचूर्णौ अपि सामायिकदण्डकत्रयोच्चारण स्पष्ट उद्दिष्ट अस्ति, तथाहि–"एव जहा जाय दाय वामपासे वि अस्स आयरिओ भणइ इमस्स साहुस्स सामाइअस्स आरुहावण करेमि काउस्सग्ग, अन्ने भणति उच्चारावण करेमि काउस्सग्गं', उभयथाऽपि अविरुद्धं "अन्नत्थ ऊससिएण जाव वोसिरामित्ति, लोगस्स उज्जोयगरे चिंतेता वा नमो अरिहंताण पढित्ता पच्छा पव्वावणत्तेण सेहो सामाइय तिक्खुत्तो कड्ढइ" इत्यादि ॥

ननु–यदि भवता गच्छे सामायिकग्रहणाधिकारे वारत्रय सामायिकदण्डकोच्चारः, तदा भवत्पूर्वजैः श्रीजिनवल्लभसूरिभिः पौषधविधिप्रकरणे । सामायिकोच्चाराधिकारे किमिति वारत्रयं सामायिकदण्डकोच्चारो न प्रतिपादितः ? उच्यते—सत्य, यद्यपि श्रीजिनवल्लभसूरिभिः आवश्यकवृत्तिचूर्ण्यनुसारेण (१२ पत्रे) "पचमगलं कड्ढित्ता भणइ करेमि भते ! सामाइय" इत्यादिपाठः सामान्यतया एव लिखितः, तथापि तेषा अभिप्रायः तच्छिष्य–प्रशिष्यैः एव ज्ञायते न अपरैः, अत एव तत्पट्टपरम्परागतैः श्रीजिनप्रभसूरि १ श्रीजिनपतिसूरि २ श्रीतरुणप्रभसूरिभिः ३ तदभिप्राय जानद्भिः विधिप्रपा १

पाठो वारत्रय पठितोऽस्ति ? उच्यते—श्रीव्यवहारभाष्ये चतुर्थोद्देशके यतीना दीक्षाग्रहणे (५८ पत्रे) प्रोक्तत्वात्, तथाहि—"अण्णो वा थिरहत्थो, सामाइअतिगुणमट्ठगहणं च । तिगुणं पादक्खिणं, नित्थारग गुरुगुणविवड्ढी ॥ ३०९ ॥" तट्टीकाकारैः मलयगिरिभिरपि त्रिःकृत्वः सामायिकोच्चारणं व्याख्यातमस्ति ४, पुनर्व्यवहारभाष्यटीकाया तत्रैव लिखित "यतीनां व्रतोच्चारे कार्यमाणे सति एकैकं व्रत गुरुर्यदि वारत्रयं नोच्चारयति तदा गुरोश्चतुर्लघुनामप्रायश्चित्तापत्ति स्यात्", तथाहि– (५८ पत्रे) "अप्पत्ते अकहित्ते अणहिगय अपरिच्छ अइक्कमे पासे । एक्केक्को चउगुरुगा, चोअग सुत्त तु कारणिअ ॥ ३११ ॥" तत्र अतिक्रमे एकैकस्य व्रतस्य वारत्रय अनुच्चारणे एतेषु सर्वेषु प्रत्येक एकैकस्मिन् प्रायश्चित्त चत्वारो गुरुकाः । ४ । ननु–इदं सामायिकदण्डकोच्चारण वारत्रयं तु यतीना दीक्षाग्रहणादौ प्रतिपादित, न श्रावकाणा नामग्राह ? सत्य, यद्यपि श्रावकाणां नामग्राहं न उक्तं, तथापि श्रावकाणामपि सामायिकनवमव्रतोच्चारे कथं वारत्रय न उच्चार्यते ? व्रतोच्चारविधिः सर्वेषां सर्वत्र समानत्वात् श्रावकाणा साध्वनुगामिक्रियाकरणत्वोपदेशत्वाच्च । न च वाच्यं खरतरगच्छे एव वारत्रय दण्डकोच्चारणं, अन्येष्वपि बहुषु गच्छेषु सम्यक्त्वव्रतशीलव्रताद्युच्चारे वारत्रय तदुच्चारस्य पठ्यमानत्वात् । ननु–आवश्यकचूर्णि १ तट्टीका २ पञ्चाशकवृत्ति ३ नवपदप्रकरणविवरण ४ पौषधविधिप्रकरणादिषु ५ कथ सामायिकोच्चारस्य बहुत्वं न दर्शितम् ? उच्यते—तत्राऽपि सामान्यतया उक्तौ अपि जात्यैकवचनमिति न्यायेन बहुत्वं ज्ञेय । यतो यथा ओघनिर्युक्तौ "सामाइय उभयकाल पडिलेहा" इति पाठे सामान्यतया सामायिकशब्द उक्तः, तथापि तद्वृत्तिकृता श्रीद्रोणाचार्येण 'सामाइअं ति' सामायिक वारत्रयमाकृष्य स्थापितीति व्याख्यातं । एव उत्तराध्ययनेष्वपि षड्विंशाध्ययने प्रतिक्रमणा-

चलवलइ करी प्रमार्जिवानुं कार्ज करइ, पणि महात्मानी परि मुख आगइ धरइ नहीं, तिहा आचरणाज्ञ प्रमाण इत्यादि" एवं तपागच्छाधिराजश्रीरत्नशेखरसूरिणाऽपि स्वकृतश्राद्धविधिविनिश्चये लिखितमस्ति, कायोत्सर्गकरणावसरे वन्दनकदानावसरे च "रजोहरणं चरणपार्श्वे मोक्तव्यमिति भणितमस्ति" ननु–तपागच्छीयसूरिप्रमुखैः साधुवत् रजोहरणधरण निषिद्ध वर्तते तर्हि कथ तपागच्छीयश्राद्धा क्रिया कुर्वन्तः साधुवत् रजोहरण बिभ्रति ? उच्यते–तत्राऽर्थे तद्गुरव एव प्रष्टव्याः, न वय काञ्चन निन्दामः ॥ १८ ॥

॥ इति श्रावकाणा चलवलक नैश्चयिकं न भवतीति विचारः ॥ १८ ॥

ननु–आत्मीयगच्छे पौषधिकाः सत्यपि सामायिकमते पुनरपि रात्रिपश्चिमप्रहरे सामायिक नवीन गृह्णन्ति, तत्कथ ? उच्यते–युक्तियुक्तत्वात्, का युक्ति ? इत्याह–श्रूयता, सामायिकस्य जघन्यो मुहूर्त्तमेकं, उत्कृष्टश्च अष्टौ यामा कालो, ध्यानशतकेऽभ्यधायि, ततो गतरात्रे मुहूर्त्तशेषे सामायिक गृहीत आसीत्, पुनरग्रिमरात्रेरपि मुहूर्त्ते शेषे अष्टौ यामाः सपूर्णा बभूवुः, तत्सपूर्णताभवनेन सामायिककालोऽपि अष्टप्रहररूप उत्कृष्टः सपूर्णोऽजनिष्ट, पौषधश्च सामायिकानुगतोऽतः सामायिक नवीन अवश्य ग्राह्यमेव ॥

ननु–नवीनसामायिकग्रहणे शास्त्राक्षराणि अपि सन्ति ? उच्यते–सन्तीति, कानीत्याह–श्रीजिनवल्लभसूरिभिः पौषधविधिप्रकरणे (६८ पत्रे) उक्तत्वादिति तथाहि–"तओ राईए चरमे जामे उट्ठेऊण इरियावहिअ पडिक्कमिअ सक्कत्थएण

पुनः सङ्घाचारवृत्तौ तपागच्छीयश्रीधर्मकीर्त्युपाध्यायेनाऽपि "सेलिणकविंठु तुगं पुण, अगीयसे हाइयाण समाव। संभवइ गिहत्याण वि, कयाइ एगत्तभावमि ॥ १ ॥" इत्युक्तत्वात्, सेलिणकविठुकायोत्सर्गदूषणद्वय, अगीतार्थशिष्याणां लगत् मोक्ष, गृहस्थस्य तु एतद्दूषणद्वयं, कदाचित् एकत्वभाव गतस्य भवतुक पर न सर्वदा, एकत्वभावश्च गृहस्थस्य एकादशप्रतिमायामेव न अर्वाक्। अत्र इद रहस्यम्,—कदाचित् यतनानिमित्त श्राद्धो रजोहरण बिभर्ति तथापि क्रिया कुर्वन् साधुवत् न मुखाग्रादौ रक्षति, यतः श्रीअनुयोगद्वारसूत्रवृत्त्योः (३० पत्रे) अपि रजोहरणादीना यथोचितव्यापारनियोगे अर्पितत्वेन युक्तत्वभणनात्, तथाहि—

"से किं तं लोगुत्तरिअं भावावस्सय जण्ण इमे समणे वा समणी वा सावओ वा साविआ वा तच्चित्ते तम्मणे तल्लेसे तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते तदप्पिअकरणे तब्भावणाभाविए (एगमणे अविमाणजिणवयणधम्मरागरत्तमणे) अण्णत्य कत्यइ मण अकरेमाणे उभओकाल आवस्सय करेंति। से तं लोगुत्तरिअ भावावस्सयं", अत्र "तदप्पिअकरणे" इति पदस्य वृत्तिर्यथा तदर्पितकरणः करणानि तत्साधकतमानि, देह—रजोहरणमुखवस्त्रिकादीनि तस्मिन् आवश्यके यथोचितव्यापारनियोगेन अर्पितानि—नियुक्तानि येन स तथा सम्यक् यथास्थानन्यस्तोपकरण इत्यर्थः।

पुनरपि तपागच्छनायकश्रीसोमसुन्दरसूरि–श्रीजयचन्द्रसूरि–श्रीविशालराजसूरि–श्रीरत्नशेखरसूरि–श्रीउदयनन्दसूरिपद्कमलसेविना शिष्यहेमहंसगणिना श्राद्धवराभ्यर्थनया कृते श्रीषडावश्यकबालावबोधेऽपि लिखितमस्ति यथा—"श्रावको वन्दन ददन् चलवलकेन प्रमार्जनस्य एव कार्यं करोति न तु महात्मवत् मुखाग्रे रक्षति, तथाहि—"वादणा देतउ श्रावक

चलवलइ करी प्रमार्जिवानुंज कार्ज करइ, पणि महात्मानी परि मुख आगइ धरइ नहीं, तिहा आचरणाज प्रमाण इत्यादि" एव तपागच्छाधिराजश्रीरत्नशेखरसूरिणाऽपि स्वकृतश्राद्धविधिविनिश्चये लिखितमस्ति, कायोत्सर्गकरणावसरे वन्दनकदानावसरे च "रजोहरणं चरणपार्श्वे मोक्तव्यमिति भणितमस्ति" ननु-तपागच्छीयसूरिप्रमुखैः साधुवत् रजोहरणधरण निषिद्ध वर्तते तर्हि कथं तपागच्छीयश्राद्धाः क्रिया कुर्वन्तः साधुवत् रजोहरण बिभ्रति ? उच्यते-तत्राऽर्थे तद्गुरव एव प्रष्टव्याः, न वय काश्चन निन्दामः ॥ १८ ॥

॥ इति श्रावकाणां चलवलक नैश्चयिक न भवतीति विचारः ॥ १८ ॥

ननु-आत्मीयगच्छे पौषधिकाः सत्यपि सामायिकमते पुनरपि रात्रिपश्चिमप्रहरे सामायिक नवीन गृह्णन्ति, तत्कथ ? उच्यते-युक्तियुक्तत्वात्, का युक्ति ? इत्याह-श्रूयता, सामायिकस्य जघन्यो मुहूर्त्तमेक, उत्कृष्टश्च अष्टौ यामाः कालो, ध्यानशतकेऽभ्यधायि, ततो गतरात्रे मुहूर्त्तशेषे सामायिक गृहीत आसीत्, पुनरग्रिमरात्रेरपि मुहूर्त्ते शेषे अष्टौ यामाः संपूर्णा बभूवुः, तत्संपूर्णताभवनेन सामायिककालोऽपि अष्टप्रहररूप उत्कृष्टः सपूर्णोऽजनिष्ट, पौषधश्च सामायिकानुगतोऽतः सामायिक नवीन अवश्य ग्राह्यमेव ॥

ननु-नवीनसामायिकग्रहणे शास्त्राक्षराणि अपि सन्ति ? उच्यते-सन्तीति, कानीत्याह-श्रीजिनवल्लभसूरिभिः पौषधविधिप्रकरणे (३८ पत्रे) उक्तत्वादिति तथाहि-"तओ राईए चरमे जामे उट्ठेऊण इरियावहिअं पडिकमिअ सक्कत्थएण

पुनः सङ्घाचारवृत्तौ तपागच्छीयश्रीधर्मकीर्त्युपाध्यायेनाऽपि "खेलिणकायवद्दु दुग पुण, अगीयस होइयाण समाव । सभवइ गिहत्थाण वि, कयाइ एगत्तभावमि ॥ १ ॥" इत्युक्तत्वात्, खेलिणकविट्ठुकायोत्सर्गदूषणद्वय, अगीतार्थशिष्याणां लगत् मोक्ष, गृहस्थस्य तु एतद्दूषणद्वयं, कदाचित् एकत्वभाव गतस्य भवतुक्त पर न सर्वदा, एकत्वभावश्च गृहस्थस्य एकादशप्रतिमायामेव न अर्वाक् । अत्र इद रहस्यम्,—कदाचित् यतनानिमित्त श्राद्धो रजोहरण बिभर्ति तथापि क्रिया कुर्वन् साधुवत् न मुखाग्रावो रक्षति, यतः श्रीअनुयोगद्वारसूत्रवृत्त्योः (१० पत्रे) अपि रजोहरणादीनां यथोचितव्यापारनियोगे अर्पितत्वेन युक्तत्वभणनात्, तथाहि–

"से किं तं लोगुत्तरिअ भावावस्सय जण्ण इमे समणे वा समणी वा सावओ वा साविआ वा तच्चित्ते तम्मणे तल्लेसे तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते तदप्पिअकरणे तब्भावणाभाविए (एगमणे अविमाणजिणवयणधम्मरागरत्तमणे) अण्णत्थ कत्थइ मण अकरेमाणे उभओकाल आवस्सय करेंति । से त लोगुत्तरिअ भावावस्सयं", अत्र "तदप्पिअकरणे" इति पदस्य वृत्तिर्यथा तदर्पितकरणः करणानि तत्साधकतमानि, देह–रजोहरणमुखवस्त्रिकादीनि तस्मिन् आवश्यके यथोचितव्यापारनियोगेन अर्पितानि—नियुक्तानि येन स तथा सम्यक् यथास्थानन्यस्तोपकरण इत्यर्थः ।

पुनरपि तपागच्छनायकश्रीसोमसुन्दरसूरि–श्रीजयचन्द्रसूरि–श्रीविशालराजसूरि–श्रीरत्नशेखरसूरि–श्रीउदयनन्दसूरिपदकमलसेविना शिष्यहेमहंसगणिना श्राद्धवराभ्यर्थनया कृते श्रीषडावश्यकबालावबोधेऽपि लिखितमस्ति यथा–"श्रावको वन्दन ददन् चलचलकेन प्रमार्जनस्य एव कार्य करोति न तु महात्मवत् मुखाग्रे रक्षति, तथाहि—"वादणा देतउ श्रावक

...य, तं ...

५१२ ॥" पुनस्तत्रैव ग्रन्थ ...

२। ४। पुनः श्रीहरिभद्रसूरिविराच...

–उग्घाडापोरुसी ताव सो पजिमितो, परिचा मिणात ...

ताधे ठाइदय इति" । ५ । एवमेव श्रीआवश्यकलघुवृत्तावपि तिलकाचार्य...

भमां श्रीशीतलाचार्यसबन्धिवन्दनाधिकारे (५१२ पत्रे), तथाहि–"जे तुज्झ भाइणिज्जा ...

पविट्ठा, तेण कहिअं, तुट्ठो, इमेसिं पि रत्तिं सुहेण अज्झवसाणेण चउण्हवि केवलणाण समुप्पन्न, पभाए ...

दिवाइ पलोएइ, एत्ताहे मुहुत्तेणं एहिंति, पोरिसिपि सुत्त मण्णो करेंति अच्छति, उग्घाडाए अत्थपोरिसिति अतिचिरा-

त्थिय ते देवकुलिअं गया, ते वीअरागाणा न आढयति, दडओऽणेण ठविणो पडिक्कतो, आलोइए भणति–कओ

वंदामि ? भणति–जओ मे पडिहायति जो चिंतेति–अहो दुट्ठसेहा निठ्ठयति" । ७ । इत्थमेव श्रीआवश्यकचूर्णावपि

...उग्घाड अत्थ पोरिसिति, अतिचिराविए देवकुलिअं गया ते अ वीअरागाणा ठायति, दडओ टविउ पडिक्कतो" इत्या-

दि । ८ । ननु–यत्त्वच्छीयपूर्वाचार्यकृतेऽपि ग्रन्थे क्वाऽपि उग्घाडा पोरिसी भणिताऽस्ति? उच्यते–अनेकेषु ग्रन्थेषु तथा

...के ... श्रीरत्नशेखरसूरिणा स्वकृतश्राद्धविधिकौमुद्या (४२० पत्रे), तथाहि–"तत्र प्रतिक्रमण पर्यन्ते

चेइए वंदिअ पुत्तं च पुत्तिं पेहिअ नमुक्कारपुव्वं सामाइअसुत्त कड्ढिअ सदिसाविअ सज्झाय कुणइ जाव पडिक्कमणवेला, तओ पुव्वविहिणा पडिक्कमिअ पडिलेहणाइअ करेइ” ।१। एव श्रीजिनप्रभसूरिभिरपि विधिप्रपाया अभाणि—

“तओ पच्छिमरयणीए उट्ठिअ इरियावहिअ पडिक्कमिअ कुसुमिणदुस्सुमिणकाउसग्ग सय उस्सास, मेहुणसुमिणे अट्ठुत्तरसयउस्सास करिअ सक्कत्थय भणिअ पुव्वुत्तविहिए सामाइय काउ सज्झाय सदिसाविअ ताव करेइ जाव पडिक्कमणवेला” ।२। एयमेव श्रीतरुणप्रभसूरिकृतषडावश्यकबालावबोधेऽपि ज्ञेय ॥३॥ ननु—जीर्णग्रन्थस्याऽपि एतत्सम्मतिरस्ति ? उच्यते, श्रीपञ्चाशकचूर्णौ तथैव प्रोक्तत्वात् तथाहि—“तओ राइए चरमजामे उट्ठिऊण इरियावहिअ पडिक्कमिअ पुत्तिं च पोत्तिं पेहिअ नमुक्कारपुव्व सामाइयसुत्त कड्ढिअ सदिसाविअ सज्झाय कुणइ” ॥४॥ इति ॥१९॥

॥ इति पौषधिकाना पश्चिमरात्रौ नवीनसामायिकग्रहणाधिकार ॥१९॥

ननु—तपागच्छप्रमुखगच्छेषु साधवः पादोनप्रहरे प्रतिलेखनासमये “उग्घाडा पोरिसी” इति न भणन्ति किन्तु “बहुपडिपुन्ना पोरिसी” इति, आत्मनां गच्छे तु “उग्घाडा पोरिसी” इति भणन्ति तत्र किं गच्छाचारः प्रमाण ?, किं वा शास्त्रोक्तिः ? उच्यते—शास्त्रोक्तिरेव, का शास्त्रोक्तिः ? इत्याह—श्रीविधिप्रपाया (१४ पत्रे) श्रीजिनप्रभसूरिभिः तथैव भणनात्, तथाहि—“ तत्थ देवसिअ पडिक्कम रयणिपढमपहर जाव सुज्झइ, राइय पुण आवस्सयचुण्णिअभिप्पायेण उग्घाडापोरिसिं जाव, ववहाराभिप्पाएण पुण पुरिमड्ढ जाव सुज्झइ” इत्यादि ।१।

एवमेव श्रीतरुणप्रभसूरिविनिर्मितश्रीषडावश्यकबालावबोधेऽपि ।२। ननु—प्राक्तनपूर्वाचार्यविरचितग्रन्थेष्वपि एत-

त्सम्मतिरस्ति ? उच्यते—अस्तीति, कथं ? इत्याह-श्रीप्रवचनसारोद्धारसूत्रे (१९९ पत्रे) ५९२ गाथाशकले तथैव उक्तत्वात्, तथाहि-"उवगरणचउद्दसगं, पडिलेहिज्जइ दिणस्स पहरतिगे । उग्घाडपोरिसीए उ पत्तनिज्जोगपडिलेहा ॥ ५९२ ॥" पुनस्तत्रैव ग्रन्थे (४८ पत्रे) १०९ गाथाव्याख्याने "साधुवचन-उद्घाटा पौरुषी" इत्यादिक विभ्र-मकारणम् । ४ । पुनः श्रीहरिभद्रसूरिविरचितावश्यकबृहद्वृत्तौ (८५२ पत्रे) प्रत्याख्यानाधिकारेऽपि, तथाहि-"साहुणो भणति-उग्घाडापोरुसी ताव सो पजिमितो, परित्ता मिणाति अण्णो वा मिणाति, तेण से भुजतस्स कहित ण पूरितति ताहे ठाइयव्वं इति" । ५ । एवमेव श्रीआवश्यकलघुवृत्तावपि तिलकाचार्यकृतायां । ६ । पुन श्रीआवश्यकवृत्तौ हारि-भद्र्या श्रीशीतलाचार्यसबन्धिवन्दनाधिकारे (५१२ पत्रे), तथाहि-"जे तुज्झ भाइणिज्जा ते आगया वियालोत्ति न पविट्ठा, तेण कहिअ, तुट्ठो, इमेसिं पि रत्तिं सुहेण अज्झवसाणेण चउण्हवि केवलणाणं समुप्पन्न, पभाए आयरिया दिसाउ पलोएइ, एत्ताहे मुहुत्तेण एहिंति, पोरिसित्ति सुत्त मण्णे करेंति अच्छति, उग्घाडाए अत्यपोरिसिति अतिचिरा-विएय ते देवकुलिअ गया, ते वीअरागाणा न आढयाति, दडओडणेण ठविणो पडिक्कतो, आलोइए भणति-कओ वंदामि ? भणति-जओ मे पडिहायति सो चिंतेति-अहो दुट्ठसेहा निल्लज्जाति" । ७ । इत्थमेव श्रीआवश्यकचूर्णावपि "उग्घाडाए अत्थ पोरिसिति, अतिचिराविए देवकुलिअ गया ते अ वीअरागाणा ठायंति, दडओ ठविउ पडिक्कतो" इत्या-दि । ८ । ननु-तपागच्छीयसूरिकृतेऽपि ग्रन्थे क्वाऽपि उग्घाडा पोरिसी भणिताऽस्ति ? उच्यते-अनेकेषु ग्रन्थेषु तथा थोडे श्रीतपागच्छनायकश्रीरत्नशेखरसूरिणा स्वकृतश्राद्धविधिकौमुद्या (४२० पत्रे), तथाहि-"तच्च प्रतिक्रमण पञ्चभेद

दैवसिकं रात्रिकं पाक्षिकं चातुर्मासिकं सांवत्सरिकं चेति। एषां कालस्तु उत्सर्गेण एवं उक्तः, "अद्ध निवुड्डे बिंबे, सुत्तं कड्ढंति गीअत्था। इअवयणपमाणेणं, देवसि आवस्सए कालो ॥ १ ॥" रात्रिकस्य चैव आवस्सगस्स समए, निद्दामुद्दं चयंति आयरिआ। तह तं कुणंति जह दस-पडिलेहाणतरं सूरो ॥ २ ॥" अपवादस्तु दैवसिकं दिवसतृतीयप्रहरादर्वाक् अर्धरात्रं यावत्। योगशास्त्रवृत्तौ तु मध्याह्नादारभ्य अर्धरात्रं यावत् इत्युक्तं, रात्रिकं अर्धरात्रादारभ्य मध्याह्नं यावत्। उक्तं च—

"उग्घाडपोरिसिं जा, सइ अवस्सयस्सचुन्नीए। ववहाराभिप्पाया, भणंति पुण जाव पुरिमड्ढं ॥ २ ॥" पाक्षिकचातुर्मासिकसांवत्सरिकाणि तु पक्षाद्यन्तेषु च स्युः। ९। पुनरपि श्रीदेवेन्द्रसूरिविरचितश्रीश्राद्धदिनकृत्यवृत्तौ अपि प्रमाणं, तथाहि—"साधुवचनं उग्घाडा पोरिसी इत्यादि विभ्रमकारणं। १०।" पुनरपि श्रीदेवेन्द्रसूरिकृतप्रत्याख्यानभाष्येऽपि तथाहि—"साहुवयण उग्घाडा पोरिसी तणुसुच्छया समाहित्ति" इत्यादि २५ गाथायाम्। ११।

॥ इति उग्घाडा पोरिसी भणनाधिकारः ॥ २० ॥

ननु—श्रीखरतरगच्छे पुत्रादिजन्मनि तन्मरणे च जातमृतकं सूतकं गण्यते, तत्राऽपि पुत्रस्य एकादशदिनानि पुत्र्याश्च द्वादशदिनानि यावत् तद्गृहे खरतरसाधवो भिक्षां न गृह्णन्ति, तपागच्छादिगच्छेषु तु केषुचित् न सूतकशङ्काशङ्कुः, तत्र मूलतः क्वाऽपि शास्त्रे सूतकगृहवर्जनं समुपदिष्टं वर्तते न वा? उच्यते—श्रीजिनपतिसूरिभिः निजसामाचार्यां प्रोक्तत्वात्, तथाहि—"सघवइसूरिपयकुलेसु वि दसाह सुअसूअगकुलाण च एगारसाह पुत्तिआ सूअग बारसाह मयगकुलाण च वज्जणं ॥ २१ ॥" एवं तरुणप्रभसूरिकृतश्रीषडावश्यकबालावबोधे २ पुनरन्यग्रन्थीयगाथाबालावबोधव्याख्यानेऽपि यथा—

"उकायदयार्थतो यि, मंजओ गुणइ गुलई मोर्हि । आहारे नीरगे, गुगहिज [illegible] अ ॥ ७ ॥" [illegible]
पिंडगहणे अ सूतक मृतक रजकं पणक प्रभृतिक गे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
रूप तणइ प्रहणि दुमइ इति संबंध करियउ । ३ । ननु-[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
उच्यते-सन्तीति, श्रीसूत्रकृदङ्गसूत्रवृत्त्योः (२८० पत्रे), [illegible] [illegible], [illegible]-"[illegible] [illegible], [illegible]
अ । सागारिअ च पिंड च, त विज्ज परिजाणिआ ॥ ११ ॥" व्याख्यालेशः-[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible], [illegible]
वा सागारिकपिण्ड इति सूतकगृहपिण्ड [illegible] [illegible] वा, [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible]
परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिहरेदिति" ० [illegible] ११ गाथायाम् ॥ ४ ॥ पुनः श्री[illegible] [illegible]
प्रथमाध्ययने चतुर्थोद्देशके (३०७ पत्रे),

तथा हि-"सिक्खागा नागेणे [illegible] [illegible] वा [illegible] वा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
सनिरुद्धाए नो मग्रा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]' इति । [illegible] [illegible] -
'वसमानाः' मासकल्पविहारिणः ते [illegible], प्राघूर्णका [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]—
'यथा क्षुल्लकोऽयं ग्रामः अल्पगृहभिक्षादो वा, तथा [illegible]-[illegible], [illegible] [illegible]' इति [illegible] [illegible]
नार्थं, अतिशयेन क्षुल्लक इत्यर्थः, [illegible] [illegible] । इति [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
येय ब्रूयात्" इति । ५ । पुनः श्रीनिशीथभाष्यचूर्णौ यथा "जे भिक्खू [illegible] [illegible] [illegible]-[illegible]-[illegible]-

दैवसिकं रात्रिकं पाक्षिकं चातुर्मासिकं सांवत्सरिकं चेति। एषां कालस्तु उत्सर्गेण एव उक्तः, "अद्ध निवुड्डे बिंबे, सुत्तं कड्डति गीअत्था। इअवयणपमाणेण, देवसि आवस्सए कालो ॥ १ ॥" रात्रिकस्य चैव आवस्सगस्स समए, निद्दामुद्दं चयति आयरिआ। तह तं कुणंति जह दस-पडिलेहाणंतरं सूरो ॥ २ ॥" अपवादस्तु दैवसिक दिवसतृतीयप्रहरादर्वाक् अर्धरात्रं यावत्। योगशास्त्रवृत्तौ तु मध्याह्नादारभ्य अर्धरात्रं यावत् इत्युक्तं, रात्रिकं अर्धरात्रादारभ्य मध्याह्नं यावत्। उक्तं च-

"उग्घाडपोरिसिं जा, सइ अवस्सयस्सचुण्णीए। ववहाराभिप्पाया, भणंति पुण जाव पुरिमड्ढं ॥ २ ॥" पाक्षिकचातुर्मासिकसांवत्सरिकाणि तु पक्षाद्यन्तेषु च स्युः। ९। पुनरपि श्रीदेवेन्द्रसूरिविरचितश्रीश्राद्धदिनकृत्यवृत्तौ अपि अभाणि, तथाहि-"साधुवचन उग्घाडा पोरिसी इत्यादि विभ्रमकारण। १०।" पुनरपि श्रीदेवेन्द्रसूरिकृतप्रत्याख्यानभाष्येऽपि तथाहि-"साहुवयण उग्घाडा पोरिसी तणुसुच्छया समाहित्ति" इत्यादि २५ गाथायाम्। ११।

॥ इति उग्घाडा पोरिसी भणनाधिकारः ॥ २० ॥

ननु-श्रीखरतरगच्छे पुत्रादिजन्मनि तन्मरणे च आतमृतक सूतक गण्यते, तत्राऽपि पुत्रस्य एकादशदिनानि पुत्र्याश्च द्वादशदिनानि यावत् तद्गृहे खरतरसाधवो भिक्षां न गृह्णन्ति, तपागच्छादिगच्छेषु तु केषुचित् न सूतकशङ्काशङ्कु, तत्र मूलतः क्वाऽपि शास्त्रे सूतकगृहवर्जनं समुपदिष्टं वर्तते न वा? उच्यते—श्रीजिनपतिसूरिभिः निजसामाचार्यां प्रोक्तत्वात्, तथाहि-"सव्वत्थसूरिपयकुलेसु वि दसाह सुअसूअगकुलाण च एगारसाहं पुत्तिआ सूअग बारसाह मयगकुलाण च वज्जणे ॥ २१ ॥" एवं तरुणप्रभसूरिकृतश्रीषडावश्यकबालावबोधे २ पुनरन्यग्रन्थीयगाथाबालावबोधव्याख्यानेऽपि यथा—

"छक्कायदयावंतो वि, सजओ कुणइ दुलह बोहिं । आहारे नीहारे, दुगछिए पिंडगहणे अ ॥ १ ॥" इत्यत्र दुगछिए पिंडगहणे अ सूतक मृतक रजक वर्णकर प्रमृतिक जे छइ दुगछित निंदित कुल तिहा पिंड असन-पान-खादिम-स्वादिम-रूप तणइ ग्रहणि हुवइ इति संबध करियउ । ३ । ननु-काऽपि मूलसूत्र भाष्य-चूर्णि-वृत्त्यादौ अपि अक्षराणि सन्ति ? उच्यते-सन्तीति, श्रीसूत्रकृदङ्गसूत्रवृत्त्यो (१८० पत्रे), तथैव उक्तत्वात्, तथाहि-"सपसारी कयकिरिए, पसिणायतणाणि अ । सागारिअ च पिंड च, त विज्ज परिजाणिआ ॥ १६ ॥" व्याख्यालेशः-सागारिकः=शय्यातरः, तस्य पिण्ड=आहार, यदि वा सागारिकपिण्ड इति सूतकगृहपिण्ड जुगुप्सित वर्णापसदपिण्ड वा, चशब्दः समुच्चये । एतत्सर्वं विद्वान्=ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिहरेदिति" ९ अध्ययने १६ गाथायाम् ॥ ४ ॥ पुनः श्रीआचाराङ्गे द्वितीयश्रुतस्कन्धे प्रथमाध्ययने चतुर्थोद्देशके (३०५ पत्रे),

तथा हि-"भिक्खागा नामेगे एवमाहसु समाणा वा वसमाणा वा गामाणुगाम दूइज्जमाणे खुड्डाए खलु अय गामे सनिरुद्धाए नो महालए से हता भयतारो बाहिरगाणि गामाणि भिक्खायरिआए वयह' इति । वृत्त्येकदेशो यथा-'वसमाना' मासकल्पविहारिणः ते एवभूता, प्राघूर्णकान् समायातान् ग्रामानुग्राम दूयमानान् गच्छत एव ऊचुः-'यथा क्षुल्लकोऽय ग्राम अल्पगृहभिक्षादो वा, तथा सनिरुद्ध-सूतकादिना, नो महान्' इति पुनर्वचन आदरख्यापनार्थं, अतिशयेन क्षुल्लक इत्यर्थ, ततो हन्त ! इति आमन्त्रण, यूय भवन्तः=पूज्या बहिर्ग्रामेषु भिक्षाचर्यार्थं व्रजत इत्येव ब्रूयात्" इति । ५ । पुन श्रीनिशीथभाष्यचूर्णौ यथा "जे भिक्खू दुगछिअकुलेसु असणाइ-वत्थाइ-वसहि-

दैवसिकं रात्रिकं पाक्षिकं चातुर्मासिकं सांवत्सरिकं चेति । एषा कालस्तु उत्सर्गेण एव उक्तः, "अद्ध निवुड्डे बिंबे, सुत्त कड्डति गीअत्था । इयवयणपमाणेण, देवसि आवस्सए कालो ॥ १ ॥" रात्रिकस्य चैव आवस्सगस्स समए, निद्दामुद्द चयति आयरिआ । तह तं कुणति जह दस-पडिलेहाणतरं सूरो ॥ २ ॥" अपवादस्तु दैवसिकं दिवसतृतीयप्रहरादर्वाक् अर्धरात्रं यावत् । योगशास्त्रवृत्तौ तु मध्याह्नादारभ्य अर्धरात्रं यावत् इत्युक्तं, रात्रिकं अर्धरात्रादारभ्य मध्याह्नं यावत् । उक्तं च–

"उग्घाडपोरिसिं जा, सइ अवस्सयस्सचुण्णीए । ववहाराभिप्पाया, भणति पुण जाव पुरिमड्ढ ॥ २ ॥" पाक्षिकचातुर्मासिकसांवत्सरिकाणि तु पक्षाद्यन्तेषु च स्युः ।९। पुनरपि श्रीदेवेन्द्रसूरिविरचितश्राद्धदिनकृत्यवृत्तौ अपि अभाणि, तथाहि–"साधुवचनं उग्घाडा पोरिसी इत्यादि विभ्रमकारणं । १० ।" पुनरपि श्रीदेवेन्द्रसूरिकृतप्रत्याख्यानभाष्येऽपि तथाहि–"साहुवयण उग्घाडा पोरिसी तणुसुत्थया समाहित्ति" इत्यादि २५ गाथायाम् । ११ ।

॥ इति उग्घाडा पोरिसी भणनाधिकारः ॥ २० ॥

ननु–श्रीखरतरगच्छे पुत्रादिजन्मनि तन्मरणे च जातमृतकं सूतकं गण्यते, तत्राऽपि पुत्रस्य एकादशदिनानि पुत्र्याश्च द्वादशदिनानि यावत् तद्गृहे खरतरसाधवो भिक्षां न गृह्णन्ति, तपागच्छादिगच्छेषु तु केषुचित् न सूतकशङ्काशङ्कुः, तत्र मूलतः क्वाऽपि शास्त्रे सूतकगृहवर्जनं समुपदिष्टं वर्तते न वा ? उच्यते—श्रीजिनपतिसूरिभिः निजसामाचार्यां प्रोक्तत्वात्, तथाहि–"सधम्मइसुरिपयकुलेसु वि दसाह सुयसूअगकुलाण य एगारसाह पुत्तिआ सूअग बारसाह मयगकुलाण य वज्जणे ॥ २१ ॥" एव तरुणप्रभसूरिकृतश्रीपडावश्यकबालावबोधे ...

"छक्कायदयावंतो वि, संजओ कुणइ दुल्लहं बोहिं । आहारे नीहारे, दुगंछिए पिंडगहणे अ ॥ १ ॥" इत्यत्र दुगंछिए पिंडगहणे अ सूतक मृतक रजक वर्णकर प्रमृतिक जे छइ दुगंछित निंदित कुल तिहां पिंड असन-पान-खादिम-स्वादिम-रूप तणइ ग्रहणि हुतइ इति संबंध करिवउ । ३ । ननु-कोऽपि मूलसूत्र भाष्य-चूर्णि-वृत्त्यादौ अपि अक्षराणि सन्ति ? उच्यते-सन्तीति, श्रीसूत्रकृदङ्गसूत्रवृत्त्यो: (१८० पत्रे), तथैव उक्तत्वात्, तथाहि-"सपसारी कयकिरिए, पसिणायतणाणि अ । सागारिअं च पिंड च, तं विज्ज परिजाणिआ ॥ १६ ॥" व्याख्यालेशः-सागारिकः=शय्यातरः, तस्य पिण्ड=आहार, यदि वा सागारिकपिण्ड इति सूतकगृहपिण्ड जुगुप्सित वर्णापसदपिण्ड वा, चशब्दः समुच्चये । एतत्सर्वं विद्वान्=ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिहरेदिति" ९ अध्ययने १६ गाथायाम् ॥ ४ ॥ पुन. श्रीआचाराङ्ग द्वितीयश्रुतस्कन्धे प्रथमाध्ययने चतुर्थोद्देशके (३०५ पत्रे),

तथा हि-"भिक्खागा नामेगे एवमाहंसु समाणा वा वसमाणा वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे खुड्डाए खलु अयं गामे संनिरुद्धाए नो महालए से हंता भयंतारो बाहिरगाणि गामाणि भिक्खायरिआए वयह' इति । वृत्त्येकदेशो यथा-'वसमानाः' मासकल्पविहारिण: ते एवंभूताः, प्राघूर्णकान् समायातान् ग्रामानुग्रामं दूयमानान् गच्छत एव ऊचु:-'यथा क्षुल्लकोऽयं ग्राम अल्पगृहभिक्षादो वा, तथा संनिरुद्धः-सूतकादिना, नो महान्' इति पुनर्वचनं आदरख्यापनार्थं, अतिशयेन क्षुल्लक इत्यर्थ, ततो हन्त ! इति आमन्त्रण, यूयं भवन्तः=पूज्या बहिर्ग्रामेषु भिक्षाचर्यार्थं व्रजत इत्येव ब्रूयात्" इति । ५ । पुन श्रीनिशीथभाष्यचूर्णौ यथा "जे भिक्खू दुगंछिअकुलेसु असणाइ-वत्थाइ-वसहि-

सज्झाय वा करेइ" इत्यादि पञ्चलघुअ तेसिं एसो मे दोसरूव पत्तविहा गाहा इत्तरिअत्ति सूअगगाहा निज्जूढा जे ठप्पाकया सिलागा पडिअत्ति, आवकहिआ जे जत्थ वीसए आदि जुगिआ जहा दक्खिणापहे लोहगार कलाला लादेसु, नड-यरुडचम्मकारादि एए आवकहिआ ६।" पुनः श्रीनिशीथचूर्णौ "जे भिक्खू ठवणा कुलाइ" इत्यादि ठवणा गाहा, समासो संखेवे, लोइअ दुविहा इत्तिआ १ आवकहिआ २ इमे इत्तिरिआ सूअगगाहा कालावहीए जे ठप्पाकया ते निज्जूढा जेत्ति कुला जत्थ विसए जुगिआ अभोज्या इत्यर्थः। कम्मेण वा सिप्पेण वा जाइए वा कम्मे पहा वि आसाधिका मोरपोसगा सिप्पेहिट्ठा पहाविआ तेरिमापतकरा निल्लेवा जातीए पाणा डुंबा मोरुत्तिआय, खलुशब्दो अवधारणे, ते चेय अन्नत्थ जुगिआ जहा सिंधूए निल्लेवगा इत्यादि। ७। पुनरेवमेव श्रीनिशीथषोडशोद्देशकभाष्यचूर्णिषु अपि तथाहि-

"दुविहा दुगंछिआ खलु, इत्तरिआ हुंति आवकहिआ य। एएसिं नाणत्तं, वुच्छामि आणुपुव्वीए॥ १॥ सूअगमयकुलाइ, इत्तरिआ जे हवंति निज्जूढा जे जत्थ जुगिआ खलु, ते हुंती आवकहिआ उ ॥ २॥ तेसु असण वत्थाइं, वसही विप्परिणामो तहेव कुच्छिया। तेसिं पि होइ संका, सव्वे एआरिसा मन्ने॥ ३॥" इति भाष्यम्। अत्र चूर्णिव्याख्यासूअगगाहा कालावहीए जे वप्पाकया ते निज्जूढा, भक्तपानग्रहणादौ निषिद्धाः १ जे कुला जत्थ विसए जुगिआ दुगंछिआ अभोज्या इत्यर्थः, कम्मेण १ सिप्पेण वा २ जाइए वा ३, कम्मे न्हावियाइणो १ सिप्पे वि ठार न्हाविआइणो २ हिंडान्हाविया तेरिमाजाइए पाणाइणो ३, पुनरपि श्रीदशवैकालिकसूत्रे पञ्चमाध्ययने श्रीहरिभद्रसूरिकृतायां वृहद्वृत्तौ च (१६६ पत्रे) सूतकादिकुले प्रवेशस्य वर्जनीयत्वेन उक्तत्वात्, तथाहि-

'पडिकुट्ठकुलं न पविसे, मामग परिवज्जए । अचियत्तकुल न पविसे, चिअत्त पविसे कुल ॥ १७ ॥ व्याख्या–प्रतिकुष्ट कुल द्विविधम्–इत्वरं यावत्कथिक च, इत्वरं सूतकयुक्तं, यावत्कथिकं अभोज्य, एतन्न प्रविशेत् शासनलघुत्वप्रसंगात् । अत्राऽर्थे प्रशमरतिसूत्रवृत्ती अपि (४० पत्रे), तथा–

"लोकः खल्वाधारः, सर्वेषा ब्रह्मचारिणा यस्मात् । तस्माल्लोकविरुद्ध, धर्मविरुद्धं च सत्याज्यम् ॥ १३१ ॥ व्याख्या–लोको जनपदः, खलुशब्दो अवधारणे, लोक एव आधारः सर्वेषा ब्रह्मचारिणा, यस्मात् ब्रह्म–संयम सप्तदशभेद, तद्योगात् सयमिनः तेषां सर्वेषामिति गच्छवासिना गच्छानिर्गताना च, तस्मात् लोके यद्विरुद्ध जात–मृतक–सूतक समूह–निराकृतादिगृहेषु भिक्षादिग्रहण अभोज्येषु च परिहार्यं, तथा चाऽऽर्षे–

"जे जहिं दुगुछिआ खलु, पव्वावणवसहिभत्तपाणेसु । जिणवयणे पडिकुट्ठा, वज्जेअव्वा पयत्तेण ॥ १ ॥" यच्च लोके–

कदेशे विरुद्ध मद्य–मांस–लशुन–बीजानन्तकायादि धर्मसाधनविरुद्ध अनेकं तदपि परिहार्यमिति ॥ १३१ ॥ इतश्च लोके–कवार्तान्वेषण श्रेयोहेतुः इति दर्शयति । ननु–दशदिनादिमान अपि कुत्राऽपि प्रोक्तमस्ति ?, उच्यते–श्रीव्यवहारभाष्यवृत्तौ श्रीमलयगिरिसूरिभि दशदिनमानं उक्तं अस्ति, तथाहि–"जातसूतक नाम जन्मानन्तरं दशाऽहानि यावत्, मृतकसूतक मृतानन्तरं दश दिवसान् यावत् । १ । पुनरपि व्यवहारभाष्यवृत्तौ प्रथमोद्देशके, तथाहि–"लौकिक द्विधा, इत्वर यावत्क–थिकं च, तत्र इत्वर मृतकसूतकादि; तथाहि–लोके सुतकादि दश दिवसान् यावत् वर्ज्यते इति, यावत्कथिक वरुड–छिम्प–क–चर्मकार–डुम्बादि एते हि यावज्जीव शिष्टैः सभोगाविना वर्ज्यन्ते इति । २ । पुनः निशीथचूर्णौ परिहारनिदोषाधिकारे

"लोइओ दुविहो इत्तरिओ आवकहिओ अ, इत्तरिओ सूयगाविसु दसादिदियसपरिवज्जण, आवकहिओ जहा नट्ट–वरुड–छिंपग–चम्मार डुंबा य, लोउत्तरिओ सेज्जादाण–अभिगमसड्ढादि आवकहिओ रायपिंडो इति ३। पद्मपुराणेऽपि उक्तम्–"मृते स्वजनमात्रेऽपि, सूतक जायते किल। अस्तंगते दिवानाथे, भोजन क्रियते कथम्? ॥ १ ॥" तथा लौकिकसूतकमपि एवं, तथाहि–"सूतक वृद्धिहानिभ्या, दिनानि त्रीणि द्वादश। प्रसूतिस्थानमासैक, वासराः पञ्च गोत्रिणाम् ॥ १ ॥ प्रसूतिं च मृते बाले, देशान्तरमृते रणे। सन्ताने मरण चैव, दिनैक सूतक मतम् ॥ २ ॥ यद्दिने सूतके जाते, गते द्वादशके दिने। जिनाभिषकपूजायां, पात्रदानेन शुद्ध्यति ॥ ३ ॥ पक्षाहा सूतक क्षत्रे, शूद्रे पक्षैकसूतकम्। दशाहा ब्राह्मणे विद्धि, द्वादशाहा वैश्यमाचरेत् ॥ ४ ॥ सतीसूतक हत्या च, पापं षाण्मासिक भवेत्। अन्येषामात्महत्याना, यथापाप च कल्पयेत् ॥ ५ ॥ अश्वी–चेटिका–महिषी–गोप्रसूतिर्गृहाङ्गणे। सूतक दिनमेक स्यात्, गृहबाह्ये न सूतकम् ॥ ६ ॥ दासी दासस्तथा कन्या, जायते म्रियते यदि। त्रिरात्र सूतक ज्ञेय, गृहमध्येऽतिदूषितम् ॥ ७ ॥ यदि गर्भविपत्तिः स्यात्, श्रवणे चाऽपि योषिताम्। यावन्मास स्थितो गर्भ–स्तावद्दिनानि सूतकम् ॥ ८ ॥ महिषीपक्षके क्षीर, गोक्षीर च दिना दश। अष्टक च अजाक्षीर, पश्चात् क्षीरं प्रवर्त्तकम् ॥ ९ ॥ इत्यादिस्वशासनपरशासनसम्मत्या समर्थितं सूतकवर्जनम् ॥ २१ ॥

॥ इति जातमृतकसूतकपिण्डनिषेधाधिकारः ॥ २१ ॥

ननु–खरतरगच्छीयाः श्राद्धाः प्रतिक्रमणसूत्रान्ते उत्तिष्ठन्तः "तस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्से ति" वाक्य न कथयन्ति, वाचा अनुच्चरन्तो मनस्येव तदर्थं ध्यायन्तीति, अत्र काऽपि अन्यसम्मतिरस्ति? उच्यते—अस्तीति, श्रीजिनपतिसूरिभि

सामाचार्यां स्पष्ट उक्तत्वात् । तथाहि—"सायया पडिक्कमणसुत्तते तस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्सेति न भणति", इति ॥ १ ॥ पुनरपि श्रीतरुणप्रभसूरिकृतषडावश्यकबालावबोधेऽपि, तथाहि—"तस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्स" इसउ पद श्रावक प्रतिक्रमणप्राति आम्नायतणा अभावइ तओ केइएक पढइ नही, केइएक पुणि पढइ, तथापि हि "अब्भुट्ठिओमि आराहणाए विरओमि विराहणाए" ए पद जुगलु तिहाजि सघपियु छइ, तिण कारणि मतिवर्तमानु जाणिवु (१५२ पत्रे) ॥ २ ॥ एव श्रीचन्द्रसूरिकृतप्रतिक्रमणवृत्तौ अपि तथैव उक्तम्, तथाहि—"तस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्स" इत्यादि द्वादशाक्षरी वाचा अनुचरन् श्राद्ध उत्तिष्ठतीति ॥ ३ ॥ एवं श्रीजिनप्रभसूरिकृतविधिप्रपायामपि "तस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्सेति" वाक्य न लिखितमस्ति, तथाहि—तत्पाठः—"तओ पुत्तीए कट्ठासण पाउछण वा पडिलेहिअ, वाम जाणु हिट्ठा दाहिण च उड्ढं काउ करजुअगहिअपुत्ती सम्म पडिक्कमणसुत्त भणइ, तओ दवभावुट्ठिओ अब्भुट्ठिओमि इच्चाइ दडगं पढित्ता वदण दाउ", इत्यादि ॥ ४ ॥ २२ ॥

॥ इति तस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्स कथननिषेधाधिकार ॥ २२ ॥

ननु—आत्मना गच्छे श्रावणस्य वृद्धौ द्वितीयश्रावणद्वितीयपक्षे, भाद्रपदवृद्धौ प्रथमभाद्रपदद्वितीयपक्षे श्रीपर्युषणापर्वकरणात् आषाढचातुर्मासकात् पञ्चाशता दिनैरेव यत्पर्युषणापर्व क्रियते, तत्कुत्र तदक्षराणि सन्ति ? उच्यते—श्रीजिनपतिसूरिभिः निजसामाचार्यां ११ तथैव उक्तत्वात्, तथाहि—"सावणे भद्दवए वा अहिगमासे चउम्मासाओ पण्णासइमे दिणे पज्जोसवणा कायव्वा न असीइमे" इति ॥ ११ ॥ ननु—यैः आषाढचातुर्मासकात् अशीत्या दिनै श्रीपर्युषणापर्व विधी

कारयेदिति । पुनः श्रीपर्युषणाकल्पटिप्पणकेऽपि उक्तं "नो से कप्पइ त रयणिं ति" भाद्रपदशुक्लपञ्चमीं अतिक्रमितु इत्यादि, एव सर्वत्र पर्युषणाकर्तव्यस्य भाद्रपदशुक्लपञ्चम्यामेव प्रोक्तत्वात्, न क्वाऽपि श्रावणे तत्कर्तव्यता दृश्यते इति चेत्कथ्य, कथ ? इत्याह-मूलपक्षे आषाढवृद्धौ "नो तं रयणिं उवायणावित्तए ति" सामान्यसूत्रापेक्षया "अभिवड्डिअमि वीसेति" विशेषसूत्रस्य बलीयस्त्वात्, श्रावणेऽपि पर्युषणासत्कसर्वकर्तव्यकरणात्, ततोऽस्माक लौकिकटिप्पणकानुसारेण श्रावणवृद्धौ आषाढवृद्धौ इव श्रावणेऽपि पर्युषणापर्वकुर्वतां सिद्धान्तपक्षिकरणात् को दोष ?, पुनरपि कार्तिकचातुर्मासकाधिकारे तु चन्द्रसवत्सरापेक्षया पर्युषणातो दिनैः सप्तत्या एव तस्य जैनाम्नायेन अवर्धितवर्षेऽपि सप्तत्या दिनैः तस्य सभवः पौषाषाढयोः एव वृद्धेः, लौकिकटिप्पणकानुसारेण तु भाद्रपदाश्वयुजवृद्धौ दिनशतसभवः स्यात्, दीपमालिकाऽनन्तरमेव चतुर्मासकर्मसभवात्, शेलकज्ञाते कार्तिकपूर्णिमाया चतुर्मासकप्रतिक्रमणस्य उक्तत्वादिति, न च असक्रान्तिमासोऽधिकमासः स्फुट स्यादिति भास्कराचार्योक्तत्वात्, असक्रान्तिमासे कथ पर्युषणा ? इति वाच्य, तस्मिन् लग्नकार्यस्य एव निषिद्धत्वात्, दीक्षा-स्थापना-प्रतिष्ठालक्षणं नाऽन्यत् धर्मकर्म, यत उक्त नारचन्द्रीयद्वितीयप्रकरणे (१४५ पत्रे), तथाहि-

"रविक्षेत्रगते जीवे, जीवक्षेत्रगते रवौ । दीक्षामुपस्थापना चाऽपि, प्रतिष्ठां च न कारयेत् ॥ ४५ ॥ वर्षशुद्धि -हरिश्चयनेऽधिकमासे, गुरुशुक्रास्ते न लग्नमन्वेष्य, लग्नेशांशाधिपयोर्नीचाऽस्तमने च न शुभ स्यात् ॥ ४६ ॥" ततो असक्रान्तिमासे पर्युषणाकरणप्रतिषेधो न घटते, इत्यल विस्तरेण ॥ तत इद स्थित श्रावणवृद्धौ द्वितीयश्रावणशुक्लचतुर्थ्यां, भाद्रपद-

वृद्धौ प्रथमभाद्रपदशुक्लचतुर्थ्यां पर्युषणापर्व कर्तव्य न अशीत्या दिनै', इद च स्थल बहुगम्भीरार्थं, मया तु पूर्वगीतार्थप्रतिपादितसिद्धान्ताक्षरयुक्त्यनुसारेण लिखित अस्ति, न स्वगच्छकल्पित, पुनर्यथाऽस्ति तथा बहुश्रुता विदन्ति ॥ २३ ॥

॥ इति श्रावणभाद्रपदयोः वृद्धौ ५० पञ्चाशद्दिनै' पर्युषणा कार्या इत्यधिकार' ॥ २३ ॥

ननु–श्रीखरतरगच्छे कदाचित् कुत्रचित् कल्पसूत्र गीतार्था नव वाचनानि वाचयन्ति, कदापि क्वाऽपि एकादशवाचनाभिः, कदापि कुत्राऽपि त्रयोदशवाचनाभिः वाचयन्ति, तपागच्छीयादिगीतार्थास्तु नवभिरेव वाचनाभि नाऽधिकन्यूनाभि, तत्र किमपि नियामक वर्तते न वा? उच्यते—सत्य, भोः! पूर्वो मूलविधिः कल्पसूत्रश्रवणस्य श्रूयता, तथाहि–"तहा गिहत्थाणं अन्नतित्थिआण गिहत्थीण अन्नतित्थीणीण उसेणाण संजईण च अग्गओ पज्जोसवणाकप्पो न कड्ढिअव्वो, सम्मीसवाससकाइदोसप्पसंगाओ, पज्जोसवणाकप्पो दिवसओ कड्ढिउं न चेव कप्पइ, जत्थ वि खेत्त पडुच्च कड्ढिज्जइ, जहा दिवसओ, आणंदपुरे मूलचेइयहरे सव्वजणसमक्ख कड्ढिज्जइ, तत्थ वि साहू नो कड्ढइ, पासत्थो कड्ढइ, त साहू सुणिज्जा न दोसो, आणंदपुर नाम सपइ वडनगर महाठाण भण्णइ, पासत्थाण कड्ढगस्स असइ दंडगेण वा अब्भत्थिओ सड्ढेहिं वा साहू ताहे दिवसओ सभाए सय कड्ढइ, पज्जोसवणाकप्पे य कड्ढणे इमा सामायारी। अप्पणो उवस्सए पादोसिए आवस्सए कए काल घेत्तु काले सुद्धे वा असुद्धे वा पट्ठवित्ता कड्ढिज्जइ एगो कड्ढइ सेसा उद्धट्ठिआ सुणंति, एव चउसु वि राईसु पज्जोसवणाराईए पुण कड्ढिए सव्वे (साहवो) साहू कप्पसमप्पावणिअ काउस्सग्ग (करेंति) करिंता पज्जोसवणाकप्पस्स समप्पावणिअ करेमि काउस्सग्गं ज खंडिअ ज विराहिअ ज न पडिपूरिअ तस्स उत्तरीकरणेण जाव वोसिरामित्ति सव्वो दंडओ कड्ढिअव्वो

जाय घोसरामित्ति लोगस्स उज्जोअगरं चिंतिऊण उस्सारित्ता पुणो लोगस्स उज्जोअगर कड्ढित्ता सव्वे साहुणो निसीअंति,
जेण कड्ढिओ सो ताहे कालस्स पडिक्कमइ, ताधे वरिसाकाल ठवणा ठविज्जइ, एसो विधि भणियो जइ उ कड्ढिज्जते गिहत्था
अण्णतित्थिआ उसण्णा च आगच्छिज्जा तो वि ण किज्जा इत्यादि" इति श्रीनिशीथचूर्णौ दशमोद्देशके, इत्यमेव श्रीदशाश्रुत
स्कन्धचूर्णौ अपि, एवमेव श्रीसन्देहविषौषधिवृत्तिप्रान्तेऽपि, एतद्ग्रन्थानुसारेण पूर्वं पञ्चरात्रे प्रतिक्रमणानन्तरं पाक्षिकसू-
त्रपाठवत् साधूना कल्पसूत्रश्रवणं उपलभ्यते, पर अयं विधिः व्यवच्छिन्नः । सांप्रत तु श्रीवीरनिर्वृतेः नवसु वर्षशतेषु अशी-
त्यधिकेषु गतेषु आनन्दपुरे पुत्रमरणार्त्तध्रुवसेननृपसन्तोषनिमित्त सभासमक्ष कल्पो वाचयितु प्रारब्ध, यदुक्त श्रीकल्प-
सूत्रावचूरौ, तथाहि—केचित्तु इदं आहुः यत् "इयत्कालातिक्रमे ध्रुवसेननृपस्य पुत्रमरणार्त्तस्य समाधये आनन्दपुरे समायां
अय ग्रन्थो वाचयितु मारब्ध इति" अन्यत्र तु सर्वसम्मतचिरन्तनग्रन्थेषु कुत्रापि वाचनानियमो न कृतः, पूर्वसूरिभिः
प्रस्तुत निशीथचूर्णौ प्रोक्तमस्ति "ये नववाचनाभिः कल्प वाचयन्ति ते पार्श्वस्था इति" अत एव ऐदंयुगीना—गीतार्था
प्रतिगच्छ स्वपरम्परया यथारुचि वाचना विदधानाः सन्ति, न च वाच्यं वय मूलविध्यनुसारेण पञ्च दिनानि कल्प वाच-
यन्तो नववाचनानियमः कुर्वाणाः स्मः, कथ तद्विधिलेशस्याऽपि अभावात्, कथ तदनुसारिता ? कथ इत्याह—मूलविधौ
रात्रौ पार्श्वस्थपार्श्वश्रवणं, सांप्रत तु दिवसे, पूर्वं तु गृहस्थादीनां असमक्षं, संप्रति तु तत्समक्ष, पूर्वं तु एकवार, अधुना तु
दिवसमध्येऽपि वारद्वय वाचनं, अथ ये नववाचनातो अधिकवाचनावाचने जिनाज्ञाबाह्यत्व वदन्ति तेषामपि इद अज्ञा-
नविजृम्भित, यतोऽत्र सूत्रोक्तविधिविपरीतत्वेन गीतार्थाचरणतो गच्छपरम्परा वर्तते । पुनः श्रीहीरविजयसूरिप्रसादीकृत-

प० कीर्तिविजयगणिसमुच्चिते ग्रन्थे प० सेलकर्षिगणिकृतप्रश्नाधिकारे प्रथमप्रश्नोत्तरसमुच्चये (९२ पत्रे) तच्छिष्य प्रश्नोत्तरसमुच्चये (९२ पत्रे) तच्छिष्य -कल्पश्नेऽपि प्रोक्तं, तथाहि-"नवक्षणैः कल्पसूत्र वाच्यते, कैश्चिदधिकैरपि वाच्यते, तदक्षराणि क सन्ति ? इति, तत्रोत्तरम्-कल्पसूत्रं नवक्षणैः वाच्यते परम्परात १ अन्तर्वाच्यमध्ये नवक्षणविधानाक्षरसद्भावाच्चेति २ अत्राऽपि नववाचनावाचने गच्छपरम्परा एव, प्रत्युत्तरिता न तदक्षराणि दर्शितानि, अन्तर्वाच्यं तु तत्कुल आधुनिक च, तत इद रहस्यं आगतम्—मूलपक्षः परम्परा एव, प्रत्युत्तरिता न तदक्षराणि दर्शितानि, अन्तर्वाच्यं तु तत्कुल आधुनिक च, तत इद रहस्यं आगतम्—मूलपक्षः कोऽपि नाऽस्ति काऽपि, पश्चात् येषा नववाचनानां गच्छपरम्परा ते नववाचनाभिः वाचयन्तु, अथ च येषा गच्छे नवाधिकवाचनानां परम्परा ते तदेकादशक तत्त्रयोदशक वा कुर्वन्तु, न कस्याऽपि निन्दा कार्या धर्मार्थिभि गच्छपरम्पराया व्यवस्थायाश्च स्वरुच्यनुयायित्वात् ॥ २४ ॥

॥ इति कल्पसूत्रवाचने नवयाचनानियमाभावविचारः ॥ २४ ॥

ननु-"करेमि भंते ! पोसहं आहारपोसहं देसओ सव्वओ च" इत्यादिपाठसद्भावात् पौषधो द्विविधो देशतः सर्वतश्च सर्वत्र प्रतिपादितः, ततो यथा देशतः पौषधोच्चारे श्रावका पानीय पिबन्ति तथा एकाशनादिकरणेन भोजनमपि कथ न कुर्वन्तु ? देशत इति पाठस्य अत्राऽपि भङ्गाभावात्, उच्यते-सत्यं, पर उपधान विना पौषधे त्रिधाहारप्रत्याख्यानस्य चतुर्धाहारप्रत्याख्यानस्य वा उपवासस्य एव घटमानत्वात् पौषधोपवासरूपशब्दव्याख्यानस्याऽपि श्रीतत्त्वार्थभाष्यवृत्तौ (९२ पत्रे) तथैव उक्तत्वाच्च, तथाहि-

पौषधोपवासो नाम इत्यादिना पौषधस्वरूप निरूपयति, रूढ्या पौषधशब्दः पर्वसु वर्तते, पर्वाणि च अष्टम्यादि-

तिथयः पूरणात् पर्व धर्मोपचयहेतुत्वात्, तत्र=पौषधे पर्वणि उपवासः पौषधोपवासः त्रिविधस्य चतुर्विधस्य वाऽऽहारस्य छेदः इत्यादि, एवमेव श्रीसमवायाङ्गसूत्रवृत्तौ श्रीअभयदेवसूरिभि व्याख्यानात् (१९ पत्रे), तथाहि—"पौषध पर्वदिन अष्टम्यादिः तत्रोपवासोऽभक्तार्थं पौषधोपवास इति इय व्युत्पत्तिरेव, प्रवृत्तिस्तु अस्य शब्दस्य आहारशरीरसत्कारब्रह्मचर्यव्यापारपरिवर्जनेषु इति ज्ञेयमिति"। ननु—तर्हि श्रीजिनवल्लभसूरिभिः श्रीपौषधविधिप्रकरणे (३५ पत्रे) कथ पौषधमध्ये भोजन प्रतिपादितम् ? तथाहि—

"जो पुण आहारपोसही देसओ सो पुण्णे पच्चक्खाणे तीरिए अ खमासमणदुगेण मुहपत्तिं पडिलेहिअ खमासमणेण वंदिअ भणइ—इच्छाकारेण संदिसह पारावह पोरिसी पुरिमड्ढ चउविहाहार एगासण निव्वीय आयंबिल वा कय, जा काचि वेला तीए पारावेमि, तओ सक्कत्थएण चेइए वंदिअ सज्झाय सोलस वीस वा सिलोगे काउ जहासंभवममितिहिसंविभाग दाउं मुह हत्थपाए पडिलेहिअ नवकारपुव्वमरत्तदुट्ठो भुंजइ", इति। अत्रोत्तरं—यद्यपि अत्र पौषधमध्ये भोजन उक्त, पर एतदुपधान आश्रित्य अभ्यधायि, येषा पुन गच्छे पौषधमध्ये भोजन अनुज्ञात तेषा अपि अपवादत एव न उत्सर्गत। तथा चोक्तं तपागच्छीयसोमसुन्दरसूरिशिष्यहेमहंसगणिकृतषडावश्यकबालावबोधेऽपि, तथाहि—

"तृतीयशिक्षाव्रत पौषधोपवासः, स च पर्वतिथिषु अहोरात्र यावत् चतुर्विधाहारपरित्यागेन, तथा न शक्नोति चेत् तदा त्रिविधाहारपरित्यागेन, एवमपि अशक्तौ अपवादत आचाम्लादि समुच्चार्य भोजन क्रियते इत्यादि" न च अपवादपदं उत्सर्गपदे क्षेप्तव्य, तस्य पदृमर्यादा भिन्नत्वेन अभिधानात्, उपधानविचारस्तु अयम्—उपधानानि श्रीमहानिशीथसूत्रे

सामान्यतया प्रोक्तानि, पर यद्यपि तत्र उपधानतपसि पौषधव्रत न उक्त, तथापि समस्तगच्छीयगीतार्थसम्मततया सर्वेषु अपि धर्मगच्छेषु नियत यथा स्वस्वोपधानादिप्रमाणतया तत्र स्वस्वतपोयोगविधिप्रकरणेषु गीतार्थैः निबद्ध दृश्यते, तैं कार्यमाण च उपासकै उपलभ्यते। तत्र श्रीअभयदेवसूरिशिष्यपरमानन्दकृतयोगविधिग्रन्थे चतुश्चत्वारिंशदधिकद्वादश-शतवर्षे १२४४ लिखिते यथा "पौषधग्रहणपुरस्सर उपधानतपो विधेयमिति अत उपधानविधिः उच्यते इति १" पुनः श्रीचन्द्रगच्छीय–श्रीअजितदेवसूरिकृतयोगविधौ त्रिसप्तत्यधिकद्वादशशतवर्षे १२७३ कृते यथा "श्रावकश्राविकाणा तु एकस्मिन् उपधाने अव्यूढेऽपि गुर्वाज्ञया अनुज्ञानन्दी विधीयमाना दृश्यते, पर एतैः अहोरात्रपौषधदिनानि पश्चादपि शीघ्र सविशेष पूरणीयानि २" पुनरपि–तपागच्छीय-श्रीरत्नशेखरसूरिकृते श्रीआचारप्रदीपे (१९ पत्रे), यथा–

पौषधग्रहणक्रिया तु यद्यपि श्रीमहानिशीथे साक्षात् नोक्ता, तथाऽपि यथा साधो योगेषु अतिशायि क्रियावत्त्व सर्वप्रतीत तथा श्राद्धाना अपि उपधानेषु विलोक्यते ३" पुनरपि श्रीखरतरगच्छाधिपति–श्रीजिनपतिसूरिकृतद्वादशकुलकवृत्ति – वडगच्छीयजीर्णसामाचारी–श्रीजिनप्रभसूरिकृतविधिप्रपा–श्रीमान्देवसूरिकृतकुलकप्रमुखग्रन्था विलोकनीयाः ॥

ननु–श्रीविधिप्रपाया "मुहपत्तिं पडिलेहिअ वंदिअ भणइ भगवन्! भातपाणी पारावेह, उवहाणवाही भणइ–नयकार-सहिअ चउविहाहार, इअरो भणइ–पोरिसिं पुरिमड्ढं वा तिविहाहार चउविहाहार वा एगासण निव्विइअ आयंबिल वा जा काइ वेलातीए भत्तपाण पारावेमि त्ति", श्रीजिनप्रभसूरिभिः 'उवहाणवाही भणइ इअरो भणइ' इति भेदद्वयोक्त्या पौषध-मध्ये उपधान विनाऽपि कथं भोजन अनुज्ञातम्? उच्यते—तत्परमार्थं लघुखरतरगच्छीया श्रीजिनप्रभसूरय एव जानन्ति,

सूरेः हि श्रीऋषभदेवशिष्यस्य न व्यभिचरति शिंशपत्वे वृक्षत्ववत् । तथा तपागच्छीयमन्येऽपि सूरिप्रतिष्ठा एव स्थाने स्थाने दृश्यते, यदुक्त–तपाश्रीसोमसुन्दरसूरि–तच्छिष्यमहोपाध्याय–श्रीचारित्रगणितद्विनेय–प० सोमधर्मगणिविरचितायां उपदेशसप्ततिकायां द्वितीयाधिकारे अष्टमोपदेशे (३८ पत्रे), तथाहि–"निर्मापितं पासिलसंज्ञकेन, श्रद्धावता श्राद्धवरेण चैत्यम् । आरासणे श्रीगुरुदेवसूरि–प्रतिष्ठितं तीर्थमभूत् क्रमेण ॥ १ ॥" पुनः अत्रैव सम्बन्धप्रान्ते (४० पत्रे)—

"गोगाकस्य सुतेन मन्दिरमिदं श्रीनेमिनाथप्रभो–स्तुङ्गं पासिलसञ्ज्ञितेन सुधिया श्रद्धावता मन्त्रिणा । शिष्यैः श्रीमुनिचन्द्रसूरिसुगुरोर्निर्ग्रन्थचूडामणे–र्वादीन्द्रैः प्रभुदेवसूरिगुरुभिर्नेमेः प्रतिष्ठा कृता ॥ १ ॥" एतदक्षरानुसारेण सूरिः एव प्रतिष्ठाकृत् संभाव्यते, पुनः यथार्थता यथार्थवेदिगम्या इति ॥ २६ ॥

॥ इति सूरेः प्रतिष्ठाधिकारः ॥ २६ ॥

ननु–आत्मना गच्छे चतुर्दशीहानौ चतुर्दशीकृत्य पौषधग्रहणपाक्षिकातिचारालोचनादिकं पूर्णिमायां क्रियते, अन्यगच्छेषु तु केषुचित् त्रयोदश्यां विधीयते तत्कथं ? उच्यते—पूर्णिमायाः पर्वतिथित्वेन मूलपक्षे सिद्धान्ते प्रत्याख्यातत्वात् पूर्णिमायां एव तत्सङ्गतिं अङ्गति ?, अपि च पर्वभूतां पूर्णिमां अमावास्यां वा विहाय अपर्वभूतायां त्रयोदश्यां कथं पाक्षिककृत्यं क्रियेत ?, को नाम विज्ञमन्यो निकटवर्तिनीं बृहत्प्रवाहां गङ्गां तीर्थभूतां विहाय अतीर्थभूते कूपे स्नानं समाचरेत् ?, पुनः त्रयोदश्यां तिथ्यां तत्करणे तु आगमाचरणयोः द्वयोः मध्ये एकस्याऽपि पक्षस्य अनाराधितत्वं स्यात् । यदुक्तं श्रीजिनप्रभसूरिभिः विधिप्रपायां, तथाहि–

"नवर चाउम्मासिए तह चउद्दसीह्रासे पुण्णिमा जुज्जइ, तेरसीगहणे आगमआयरणाण अन्नतरपि न आराहिअ होज्जा" इति, ननु-एतदर्थसंवादिका जीर्णग्रन्थे सम्मतिः अपि अस्ति ? उच्यते—अस्त्येव, कथं ? इत्याह-श्रीहरिभद्रसूरिभिः स्वकृततत्त्वविचारसारग्रन्थे तथैव उक्तत्वात्, तथाहि-"भयइ जहिं तिहिहाणी, पुव्वतिही विद्धिआ य सा किरइ । पक्खी न तेरसीए, कुज्जा सा पुण्णिमासीए ॥ १ ॥ इति", । एवमेव श्रीउमास्वातिवाचका अपि स्वकृतायां आचारवल्लभायां प्रोचुः, तथाहि-"तिहिपडणे पुव्वतिही, कायव्वा जुत्ताधम्मकज्जेसु । चाउद्दसी विलोवे, पुण्णिमिअं पक्खिपडिकमणं ॥ १ ॥" इति, इत्यमेव श्रीज्योतिष्करण्डेऽपि अकथि, तथाहि-"छट्ठिसहिआ न अट्ठमि, तेरसिसहिअं न पक्खिअं होइ । पडिवयसहिअं न कया वि, इअ भणिअं वीअरागेहिं ॥ १ ॥" ? इति, ननु-यथा चतुर्दशीहानौ अग्रिमतिथिपूर्णिमायां अमावास्यां वा पाक्षिकं कर्तव्यं क्रियते, तथा अष्टमीहानौ नवमीतिथौ अष्टमीकर्तव्यं क्रियतां, परं सप्तम्यां कथं क्रियते ? उच्यते-सत्यं, भो यौक्तिक ! श्रूयतां, पूर्णिमायास्तु पर्वतिथित्वेन तत्र पाक्षिककृत्यं घटां आटीकते, परं नवमी तु अपर्वतिथिः, ततो नवमीतिथेः अपर्वतिथित्वेन सप्तम्यां साम्येऽपि अष्टमीसत्कभोगबहुलत्वेन वरं सप्तम्यां एव अष्टमीकृत्यं, यदुक्तं श्रीजिनप्रभसूरिभिः विधिप्रपाग्रन्थे, तथाहि-

"जया य पक्खिआइपव्वतिही पडइ तया पुव्वतिही चेव तब्भुत्तिबहुला पच्चक्खाणपूआइसु घिप्पइ, न उत्तरा तब्भोगगंधस्स वि अभावाओ इति", एतदर्थसंवादिका गाथा अपि च श्रीसूर्यप्रज्ञप्तौ श्रूयते । तथाहि-"पज्जुसणे चउमासे, पक्खिअपव्वऽट्ठमीसु कायव्वा । जाए उदए सूरो, ताओ तिहिओ न अन्नाओ ॥१॥" इति, न च 'क्षये पूर्वा तिथिः ग्राह्या' इति

सूरे हि श्रीऋषभदेवशिष्यस्य न व्यभिचरति शिंशपत्वे वृक्षत्ववत् । तथा तपागच्छीयग्रन्थेऽपि सूरिप्रतिष्ठा एव स्थाने स्थाने दृश्यते, यदुक्त–तपाश्रीसोमसुन्दरसूरि–तच्छिष्यमहोपाध्याय–श्रीचारित्रगणितद्विनेय–प० सोमधर्मगणिविरचितायां उपदेशसप्ततिकायां द्वितीयाधिकारे अष्टमोपदेशे (३८ पत्रे), तथाहि–"निर्मापितं पासिलसञ्ज्ञकेन, श्रद्धावता श्राद्धवरेण चैत्यम् । आरासणे श्रीगुरुदेवसूरि–प्रतिष्ठितं तीर्थमभूत् क्रमेण ॥ १ ॥" पुनः अत्रैव सम्बन्धप्रान्ते (४० पत्रे)—

"गोगाकस्य सुतेन मन्दिरमिदं श्रीनेमिनाथप्रभो–स्तुङ्गं पासिलसञ्ज्ञितेन सुधिया श्रद्धावता मन्त्रिणा । शिष्यैः श्रीमुनिचन्द्रसूरिसुगुरोर्निर्ग्रन्थचूडामणे–र्वादीन्द्रैः प्रभुदेवसूरिगुरुभिर्नेमेः प्रतिष्ठा कृता ॥ १ ॥" एतदक्षरानुसारेण सूरि एव प्रतिष्ठाकृत् समाव्यते, पुनः यथार्थता यथार्थवेदिगम्या इति ॥ २६ ॥

॥ इति सूरेः प्रतिष्ठाधिकारः ॥ २६ ॥

ननु–आत्मनां गच्छे चतुर्दशीहानौ चतुर्दशीकृत्य पौषधग्रहणपाक्षिकातिचारालोचनादिकं पूर्णिमायां क्रियते, अन्यगच्छेषु तु केषुचित् त्रयोदश्यां विधीयते तत्कथं ? उच्यते—पूर्णिमायाः पर्वतिथित्वेन मूलपक्षे सिद्धान्ते प्रत्याख्यातत्वात् पूर्णिमाया एव तत्सङ्गतिं अङ्गति ?, अपि च पर्वभूतां पूर्णिमां अमावास्यां वा विहाय अपर्वभूतायां त्रयोदश्यां कथं पाक्षिकं कृत्यं क्रियेत ?, को नाम विज्ञमन्यो निकटवर्तिनीं पुण्यप्रवाहां गङ्गां तीर्थभूतां विहाय अतीर्थभूते कूपे स्नानं समाचरेत् ?, पुनः त्रयोदश्यां तिथ्यां तत्करणे तु आगमाचरणयोः द्वयोः मध्ये एकस्याऽपि पक्षस्य अनाराधितत्वं स्यात् । यदुक्तं श्रीजिनप्रभसूरिभिः विधिप्रपायां, तथाहि–

पौषधं पर्वदिनानुष्ठान, तच्च द्वेधा-इष्टजनभोजनदानादिरूप, आहारादिपौषधरूप च, तत्र शङ्ख इष्टजनभोजनदानरूप पौषध कर्तुकामः सन् यदुक्तवान् तद्दर्शयत-इद उक्त इति, अथ यदि शतकादिश्रावकैः भोजनानन्तर पौषधो गृहीतो अभविष्यत् तदा तत्र पौषधपारणप्रस्तावोऽपि प्रोक्तो अभविष्यत्, पर न उक्तः इति नो गृहीतः, न च वक्तव्य यथा तथा पौषधकरण मन्य एव, एवं चेत्तर्हि प्रभाते भुक्त्वा पौषधः कर्तव्यः, ततः पुनरपि सन्ध्याया पौषधमध्ये भुक्त्वा पौषधकरणं पौषधस्य आराधन कर्तव्यं, न च अय पौषधो लाभाय भवेत्, यदि अतिप्रसङ्गनिवारणार्थं भोजनद्वयी पौषधो गीतार्थैः निषिद्धः, तदा अस्माकीनगीतार्थैः अपि अतिप्रसङ्गनिवारणार्थं पौषधमध्ये भोजन निषिद्ध अस्ति, पुनः सिद्धान्तवचन प्रमाण, न अस्माक कोऽपि पक्षपात ॥ २९ ॥

॥ इति भोजनानन्तर पौषधग्रहणनिषेधाधिकारः ॥ २९ ॥

ननु-श्रीखरतरगच्छे यदि चतुष्पर्वी कल्याणकादितिथिं च विना पौषधग्रहण निराकृत, तर्हि उपधानमध्ये कथ श्राद्धाना सदा पौषधग्रहण कार्यते ? उच्यते-सत्य, यद्यपि उपधानाधिकारे श्राद्धाना श्रीमहानिशीथसूत्रे पौषधग्रहण न अलेखि, तथापि समस्तगच्छीयगीतार्थसम्मततया सर्वेषु अपि धर्मगच्छेषु गीतार्थैं स्वस्वोपधानदिनप्रमाणतया तत्र स्वस्वतपोयोग-विधिप्रकरणेषु निबद्ध, ततो अस्मद्गीतार्थवृद्धैः अपि अन्यगीतार्थसम्मत्या आचरणया उपधानमध्ये पौषधग्रहण प्रमाणीकृत, उपधानमध्ये पौषधग्रहणपारणादिसर्वविधिः श्रीखरतरगच्छाधिपतिश्रीजिनवल्लभसूरिभि श्रीपौषधविधिप्रकरणे प्रोक्तोऽस्ति, तथैव श्रीजिनपतिसूरिभिः द्वादशकुलकवृत्तौ, पुनः श्रीजिनप्रभसूरिभिः विधिप्रपाया, अपि च श्रीअभयदेव-

मेण जुत्ताओ। ता अवरविद्धअवरा, वि हुज्ज न हु पुव्वतविद्धा ॥ ४ ॥" इति, "क्षये पूर्वा तिथिर्ग्राह्या, वृद्धौ ग्राह्या तथोत्तरा" इदमपि वाक्यं श्रीरत्नशेखरसूरिणा विधिकौमुदीग्रन्थे उमास्वातिवचनपरिघोषतया लिखितं अस्ति ॥ २८ ॥

॥ इति तिथिवृद्धौ प्रथमा तिथिः मान्या इत्यधिकारः ॥ २८ ॥

ननु—श्रीखरतरगच्छे श्रावकाः भुक्त्वा पौषधं कथं न गृह्णन्ति तपागच्छीयश्रावकवत्? उच्यते,—भुक्त्वा पौषधग्रहणं जीर्णग्रन्थेषु सर्वसम्मतेषु केषुचित् अपि दृष्टं श्रुतं वा नाऽस्ति, न च श्रीभगवतीसूत्रे द्वादशशतकप्रथमोद्देशके शङ्ख-श्रावकाधिकारे–(५५२ पत्रे) ॥

"तए णं से संखे समणोवासए ते समणोवासए एवं वयासी–तुब्भे णं देवाणुप्पिआ! विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेह, तए णं अम्हे तं विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं आसाएमाणा विसाएमाणा परिभुंजेमाणा परिभाएमाणा पक्खिअं पोसहं पडिजागरमाणा विहरिस्सामो" इति अक्षरदर्शनात् वक्तव्यं, अत्र भोजनानन्तरं पौषधग्रहणं प्रतिपादितं अस्ति तदभिप्रायापरिज्ञानात्, अतोऽत्र पौषधशब्देन व्यापारपौषधो व्याख्यातोऽस्ति, न तु आहारपरित्यागरूपः। यदुक्तं एतदालापकवृत्तौ (५५५ पत्रे) तथाहि–

"पक्खिअं पोसहं पडिजागरमाणा विहरिस्सामो त्ति" पक्षे=अर्धमासि भवं पाक्षिकं पौषधं=अव्यापारपौषधं प्रतिजाग्रतोऽनुपालयन्तो विहरिष्यामः=स्थास्यामः, यच्च इह अतीतकालीनप्रत्ययान्तत्वेऽपि वार्तमानिकप्रत्ययोपादानं तद्भोजनानन्तरं एव अक्षेपेण पौषधाभ्युपगमप्रदर्शनार्थं, एवं उत्तरत्राऽपि गमनिका कार्या इत्येके, अन्ये तु व्याचक्षते–इह किल

पौपधं पर्वविनानुष्ठान, तच्च द्वेधा-इष्टजनभोजनदानादिरूप, आहारादिपौपधरूप च, तत्र शङ्ख इष्टजनभोजनदानरूप पौपध कर्तुकामः सन् यदुक्तवान् तद्दर्शयत-इद उक्त इति, अथ यदि शतकादिश्रावकैः भोजनानन्तर पौपधो गृहीतो अभविष्यत् तदा तत्र पौपधपारणप्रस्तावोऽपि प्रोक्तो अभविष्यत्, परं न उक्तः इति नो गृहीतः, न च वक्तव्य यथा तथा पौपधकरण मन्य एव, एव चेत्तर्हि प्रभाते भुक्त्वा पौपधः कर्तव्यः, ततः पुनरपि सन्ध्याया पौपधमध्ये भुक्त्वा पौपधकरणं पौपधस्य आराधन कर्तव्य, न च अय पौपधो लाभाय भवेत्, यदि अतिप्रसङ्गनिवारणार्थं भोजनद्वयी पौपधो गीतार्थैः निपिद्धः, तदा अस्माकीनगीतार्थैः अपि अतिप्रसङ्गनिवारणार्थ पौपधमध्ये भोजन निपिद्ध अस्ति, पुनः सिद्धान्तवचन प्रमाण, न अस्माक कोऽपि पक्षपातः ॥ २९ ॥

॥ इति भोजनानन्तर पौपधग्रहणनिपेधाधिकारः ॥ २९ ॥

ननु-श्रीखरतरगच्छे यदि चतुष्पर्वी कल्याणकादितिथिं च विना पौपधग्रहण निराकृत, तर्हि उपधानमध्ये कथ श्राद्धाना सदा पौपधग्रहण कार्यते ? उच्यते-सत्य, यद्यपि उपधानाधिकारे श्राद्धाना श्रीमहानिशीथसूत्रे पौपधग्रहण न अलेखि, तथापि समस्तगच्छीयगीतार्थसम्मततया सर्वेषु अपि धर्मगच्छेषु गीतार्थैः स्वस्वोपधानदिनप्रमाणतया तत्र स्वस्वतपोयोग-विधिप्रकरणेषु निबद्ध, ततो अस्मद्गीतार्थवृद्धैः अपि अन्यगीतार्थसम्मतया आचरणया उपधानमध्ये पौपधग्रहण प्रमाणीकृत, उपधानमध्ये पौषधग्रहणपारणादिसर्वविधिः श्रीखरतरगच्छाधिपतिश्रीजिनवल्लभसूरिभि श्रीपौपधविधिप्रकरणे प्रोक्तोऽस्ति, तथैव श्रीजिनपतिसूरिभिः द्वादशकुलकवृत्तौ, पुनः श्रीजिनप्रभसूरिभिः विधिप्रपाया, अपि च श्रीअभयदेव-

मेण जुत्ताओ । ता अवरविद्धअवरा, वि हुज्ज न हु पुव्वतविद्धा ॥ ४ ॥" इति, "क्षये पूर्वा तिथिर्ग्राह्या, वृद्धौ ग्राह्या तथोत्तरा" इदमपि वाक्य श्रीरत्नशेखरसूरिणा विधिकौमुदीग्रन्थे उमास्वातिवचनपरिघोषतया लिखितं अस्ति ॥ २८ ॥

॥ इति तिथिवृद्धौ प्रथमा तिथिः मान्या इत्यधिकारः ॥ २८ ॥

ननु–श्रीखरतरगच्छे श्रावका भुक्त्वा पौषध कथ न गृह्णन्ति तपागच्छीयश्रावकवत् ? उच्यते,—भुक्त्वा पौषधग्रहण जीर्णग्रन्थेषु सर्वसम्मतेषु केषुचित् अपि दृष्ट श्रुत वा नाऽस्ति, न च श्रीभगवतीसूत्रे द्वादशशतकप्रथमोद्देशके शङ्खश्रावकाधिकारे– (५५२ पत्रे) ॥

"तए णं से संखे समणोवासए ते समणोवासए एव वयासी–तुब्भे ण देवाणुप्पिआ ! विउल असण पाण खाइम साइम उवक्खडावेह, तए ण अम्हे त विउल असण पाण खाइम साइम आसाएमाणा विसाएमाणा परिभुजेमाणा परिभाएमाणा पक्खिअ पोसह पडिजागरमाणा विहरिस्सामो" इति अक्षरदर्शनात् वक्तव्य, अत्र भोजनानन्तर पौषधग्रहण प्रतिपादितं अस्ति तदभिप्रायापरिज्ञानात्, अतोऽत्र पौषधशब्देन व्यापारपौषधो व्याख्यातोऽस्ति, न तु आहारपरित्यागरूप । यदुक्त एतदालापकवृत्तौ (५५५ पत्रे) तथाहि–

"पक्खिअ पोसह पडिजागरमाणा विहरिस्सामो त्ति" पक्षे=अर्धमासि भव पाक्षिक पौषध=अव्यापारपौषध प्रतिजाग्रतोऽनुपालयन्तो विहरिष्यामः=स्थास्यामः, यच्च इह अतीतकालीनप्रत्ययान्तत्वेऽपि वार्तमानिकप्रत्ययोपादान तद्भोजनानन्तर एव अक्षेपेण पौषधाभ्युपगमप्रदर्शनार्थं, एव उत्तरत्राऽपि गमनिका कार्या इत्येके, अन्ये तु व्याचक्षते–इह किल

उत्सर्गतः प्रावरणग्रहण नाऽस्ति, पर अपवादत श्रीजिनदत्तसूरियुगप्रधानैः सन्देहदोलावल्या (६८ पत्रे) काष्ठदाहशीताविकारण आश्रित्य प्रावरणत्रय उक्त अस्ति, तथाहि–

"उस्सग्गनपूर्ण सावगस्स परिहाण साडगादयर । कप्पइ पाउरणाइ, न सेसमववायओ तिण्णि ॥ ४६ ॥"

ननु–मूलग्रन्थे तु न क्वाऽपि श्रावकाणा प्रावरण दृश्यते ? सत्य, पर सामायिकस्थः श्रावको यतितुल्य सर्वत्र प्रतिपादित । यतीनां तु शीताद्यपवादे कल्पत्रयस्य क्रमेण प्रावरणं उक्त, तथाहि ओघनिर्युक्तिभाष्य–'जाहे तह वी न तरे, ताहे निविड्ढग पाउणे खोम। तेण वि असंथरंतो, दो खोमी पाउणा ताहे ॥ १ ॥ "तइवी असंथर तो तइआणं ओण्णि पाउणे" इति' ततः "पागुरण संदिसावेमि पागुरण पडिगाहमि" इति क्षमाश्रमणद्वय दत्त्वा, गुरोः पार्श्वे आदेश लात्वा, प्रावरणं गृह्णता सांप्रतीना शक्त्यभावे अपवादपद अङ्गीकुर्वता न दोषभाक्त्वम् । ननु–केषाञ्चित् गच्छे गुरो पार्श्वे "पागुरण सदिसावेमि पांगुरण पडिगाहमि" इति क्षमाश्रमणद्वय अदत्त्वा एव पागुरणं गृह्यते तत्कथम् ? उच्यते–दोष एव तेषा समाभ्यते, तत्राऽर्थे ते एव प्रष्टव्याः, तत्क्षमाश्रमणद्वय कुत्राऽन्तर्भवतीति वा ॥ २४ ॥

॥ इति सामायिकादौ उत्सर्गतः प्रावरणनिषेधाधिकारः ॥ २४ ॥

ननु–प्रतिक्रमणस्थापने आत्मना गच्छे क्षमाश्रमणचतुष्क दीयते, तत्कुत्र प्रतिपादित अस्ति ? उच्यते—"यदित्तु चेइआइ, दाउ चउराइ समासमणे । भूनिहिअसिरो सयला–इयारमिच्छुक्कड देइ ॥ १ ॥" इति श्रीजिनवल्लभसूरिकृत'प्रति-

ननु-श्रीखरतरगच्छीयाः श्राद्धाः प्राभातिकसामायिकग्रहणे पूर्वं वइसण संदिसावेमि वइसण ठाएमि, पश्चात् सज्झाय संदिसावेमि सज्झायं करेमि इति वदन्ति, सायन्तनसामायिकग्रहणे तु पूर्वं सज्झाय संदिसावेमि सज्झाय करेमि, पश्चात् वइसण संदिसावेमि वइसण ठाएमि इति ब्रुवते, तत्र किं व्यत्ययकथने कारणम् ? सामायिकविधे तुल्यत्वात् उभयत्र, उच्यते-सत्य, परं श्रीजिनवल्लभसूरिकृतपौषधविधिप्रकरणे श्रीजिनप्रभसूरिविरचितश्रीविधिप्रपाग्रन्थे श्रीपञ्चाशकचूर्णौ च रात्रिपौषधिकश्रावकस्य सामायिकग्रहणावसरे प्रातः वइसणाक्षमाश्रमणद्वयदानात् अनु स्वाध्यायक्षमाश्रमणद्वयदानं प्रोक्तं, पुनः तत्रैव पञ्चाशकचूर्ण्यादौ पौषधिकस्य सायं प्रथमं स्वाध्यायक्षमाश्रमणद्वयदानं, तदनु वइसणाक्षमाश्रमणद्वयदानं उक्तं, यथा पौषधे तथा सामायिकेऽपि उभयत्राऽपि क्रियायाः तुल्यत्वात्, तथा श्रीआवश्यकचूर्णौ प्राभातिकसामायिकग्रहणे "उवविट्ठो पढइ" इत्यादिपाठप्रामाण्यात्, 'उवविट्ठ'शब्देन वइसणा क्षमाश्रमणे, 'पढइ'शब्देन स्वाध्यायक्षमाश्रमणे, सायन्तनसामायिकग्रहणे तु सर्वेष्वपि स्वाध्यायक्षमाश्रमणाभ्यां, अनु वइसणाक्षमाश्रमणदानं सम्मतं एव इति किं विचार्यं ? अत्र पौषधविधिप्रकरण-विधिप्रपा-पञ्चाशकचूर्णि-आवश्यकचूर्णि-पाठस्तु तत्तद्ग्रन्थविलोकनेन ज्ञातव्यः ॥

॥ इति सामायिकग्रहणे प्रभाते पूर्वं वइसणं ततः स्वाध्यायम् इति अधिकारः ॥ ३३ ॥

ननु-"पावरणं पमुत्तूण गिण्हत्ता मुहपत्तिअ । वत्थकायविसुद्धीए करेइ पोसहा इअ ॥ १ ॥" इति व्यवहारचूर्णिवचनात्, तथा "सो अ किर सामाइअं करिंतो मउडं अवणेइ कुंडलाणि नाममुद्दं तंबोलपावारगमाइ वोसिरइ" इति आवश्यकचूर्णिपाठप्रामाण्यात्, प्रावरणनिषेधे सति किमिति सामायिकपौषधादौ श्रावकैः प्रावरणं गृह्यते ? उच्यते-यद्यपि

उत्सर्गतः प्रावरणग्रहण नाऽस्ति, पर अपवादतः श्रीजिनदत्तसूरियुगप्रधानैः सन्देहदोलावल्यां (९८ पत्रे) काष्ठदाहशीतादिकारणं आश्रित्य प्रावरणत्रय उक्त अस्ति, तथाहि–

"उस्सग्गनएण सावगस्स परिहाण साडगादवर । कप्पइ पाउरणाइ, न सेसमववायओ तिण्णि ॥ ४६ ॥"

ननु–मूलग्रन्थे तु न क्काऽपि श्रावकाणा प्रावरण दृश्यते ? सत्य, पर सामायिकस्थः श्रावको यतितुल्यः सर्वत्र प्रतिपादितः । यतीना तु शीताद्यपवादे कल्पत्रयस्य क्रमेण प्रावरण उक्तं, तथाहि ओघनिर्युक्तिभाष्य–'जाहे तह वी न तरे, ताहे निविट्ठेग पाउणे खोम। तेण वि असधरतो, दो खोमी पाउणा ताहे॥ १ ॥ "तहवी असयर तो तइआणं ओर्णिग पाउणे" इति' ततः "पांगुरण सदिसावेमि पांगुरण पडिघापमि" इति क्षमाश्रमणद्वयं दत्त्वा, गुरोः पार्श्वे आदेश लात्वा, प्रावरण गृह्णता सामतीनां शक्त्यभावे अपवादपद अङ्गीकुर्वता न दोपभाक्त्वम् । ननु–केपाचित् गच्छे गुरो पार्श्वे "पागुरण संदिसावेमि पागुरण पडिघापमि" इति क्षमाश्रमणद्वय अदत्त्वा एव पागुरण गृह्यते तत्कथम् ? उच्यते–दोप एव तेपा समान्यते, तत्राऽर्थे ते एव प्रष्टव्याः, तत्क्षमाश्रमणद्वय कुत्राऽन्तर्भवतीति वा ॥ ३४ ॥

॥ इति सामायिकादौ उत्सर्गतः प्रावरणनिपेधाधिकारः ॥ ३४ ॥

ननु–प्रतिक्रमणस्थापने आत्मना गच्छे क्षमाश्रमणचतुष्क दीयते, तत्कुत्र प्रतिपादित अस्ति ? उच्यते—"वंदित्तु चेइआइ, दाउं चउराइ खमासमणे । भूनिहिअसिरो सयला–इयारमिच्छुक्कड देई ॥ १ ॥" इति श्रीजिनवल्लभसूरिकृत'प्रति-

क्रमणसामाचारी' पाठसद्भावात् । पुनः "इरिया कुसुमिणुसग्गो, सक्कत्थय साहुनमण सज्झाय । चउरो वि खमासमणा, सवस्स वि दुइओ चेव ॥ १० ॥" इत्यादि भावदेवसूरिकृत(८ पत्रे)यतिदिनचर्याग्रन्थसम्मत्या च क्षमाश्रमणचतुष्कं एव सङ्गतिं अङ्गति, एवं तरुणप्रभसूरिकृतबालावबोधे अपि, तथाहि—"देववन्दना अनन्तरं तओ पाछइ एक खमासमणि आचार्यमिश्र वांदीयइ १ बीअ खमासमणि उपाध्यायमिश्र वांदीयइ २ तओ पाछइ एक खमासमणि भगवत वर्तमान-गुरु वांदीयइ ३ चउथी खमासमणि सर्वसाधु वांदीयइ ४ इसी परे चउरादि खमासमण देइ करी गोडिलिया होइ, मायउ भुइ लिगाडी, मुहपत्ति मुहि दीधा हुति हाथ जोडिए "सवस्स वि देवसिअ" इत्यादि कहीये छेहिं, "इच्छाकारेण संदि-स्सह" इस पद न कहियइ, तस्स मिच्छामि दुक्कड कही करी उभा थइ करेमि भंते ! इत्यादि, एवमेव रात्रिप्रतिक्र-मणस्थापनासमयेऽपि क्षमाश्रमणचतुष्कं लिखित अस्ति, एव श्रीजिनप्रभसूरिकृतविधिप्रपाया अपि क्षमाश्रमणचतुष्क एव, तथाहि "चेइआइ वंदित्तु चउराइ खमासमणेहिं आयरियाई वंदिअ भूनिहिअसिरो "सवस्स वि देवसिअ" इच्चाइ दंड-गेण सयलाइयारमिच्छामि दुक्कड दाउं" इत्यादि। ननु–तपागच्छीयगीतार्थैः अपि क्वाऽपि प्रतिक्रमणप्रारम्भे क्षमाश्रमणचतु-ष्टय उक्त अस्ति? उच्यते—तपागच्छीय–श्रीजयचन्द्रसूरिभिः प्रतिक्रमणहेतुगर्भग्रन्थे स्पष्ट तस्य प्रतिपादनात्, तथाहि—"चतुरादिक्षमाश्रमणैः श्रीगुरून् वन्दते" इत्यादि । ननु–तर्हि साम्प्रतीनाः तपागच्छीयाः साध्वादयः "भगवन् ! देवसिअ पडिकमणु ठाउं" इत्येवरूप पञ्चम क्षमाश्रमण अनुक्त अपि कथं ददते ? उच्यते—तत्राऽर्थे ते एव प्रष्टव्याः, पुनः तपा-

गच्छीयाः प्रथमक्षमाश्रमणे श्रीभगवन् यांवुं इति वदन्ति, तत्र भगवच्छब्देन किं देवो वा गुरुः वा ?, न देवः, तस्य च देववन्दनाधिकारे पूर्वं वन्दितत्वेन पुनरुक्तदोषसंभवात्, नाऽपि गुरुः, गुरुवन्दने आचार्यवन्दनस्य पृथक्क्षमाश्रमणेन प्रतिपादितत्वात्, नाऽपि आचार्यात् अधिको गुरु कोऽपि सभाव्यते, अत्र बहु विचार्यमपि तेषाम् ॥ ॥ इति ॥ ३५ ॥

॥ इति प्रतिक्रमणस्थापने क्षमाश्रमणचतुष्क एव न तत्पञ्चकम् ॥ ३५ ॥

ननु–लौकिकटिप्पणकानुसारेण कार्तिकवृद्धौ कस्मिन् कार्तिके चतुर्मासिकप्रतिक्रान्त्यादिकृत्य क्रियमाण अस्ति ? उच्यते– प्रथमकार्तिके एव, यदुक्त श्रीखरतरगच्छीयसामाचारीपत्रे, तथाहि–"काती वधइ तउ पहिलीइ काती चउमासउ कीजइ । १ ।" इत्यमेव श्रीजिनपतिसूरिसामाचार्यां अपि, तथाहि–"कत्तिअवुड्ढीए पढमकत्तिए चेव चाउम्मासिअ पडिक्कमिज्जइ, सेसमासवुड्ढीए पंचसु मासेसु चउमास कीरइ" इति १४ सामाचारी । २ । ननु–यथा श्रीखरतरगच्छे कार्तिकवृद्धौ प्रथमकार्तिके एव चतुर्मासिकप्रतिक्रान्त्यादिकृत्य क्रियते, तथा अन्यगच्छेषु अपि क्वाऽपि एव वर्तते न वा ? उच्यते—श्रीतपागच्छीयपट्टावल्यां अवदातवर्णनाधिकारे, श्रीसोमप्रभसूरय प्रथमकार्तिके एव प्रतिक्रम्य विहृताः सन्ति, तथाहि तत्पट्टावलीप्रबन्ध –"सं० १३१० वर्षे श्रीसोमप्रभसूरिणा जन्म २१ दीक्षा ३२ सूरिपद, श्रीगुरुदत्तमन्त्रपुस्तिका "चारित्र मे प्रयच्छत मन्त्रपुस्तिकां न" इत्युक्त्वा न गृहीता, अपरयोग्याभावात् गुरुभिः जले वोलिता सा, श्रीसोमप्रभसूरिणा एकादशाङ्गाना सूत्रार्थौ कण्ठस्थौ, भीमपल्ल्या चतुर्मासी अवस्थिता, एकादशसु अपरेषु आचा-

क्रमणसामाचारी' पाठसद्भावात् । पुनः "इरिया कुसुमिणुसग्गो, चक्कत्थय साहुनमण सज्झाय । चउरो वि खमासमणा, सव्वस्स वि दंडओ चेव ॥ १० ॥" इत्यादि भावदेवसूरिकृत(८ पत्रे)यतिदिनचर्याग्रन्थसम्मत्या च क्षमाश्रमणचतुष्क एव सङ्गतिं अङ्गति, एवं तरुणप्रभसूरिकृतमालावबोधे अपि, तथाहि—"देववन्दना अनन्तर तओ पाछइ एक खमासमणि आचार्यमिश्र वांदीयइ १ बीअ खमासमणि उपाध्यायमिश्र वांदीयइ २ तओ पाछइ एक खमासमणि भगवंत वर्तमान-गुरु वांदीयइ ३ चउथी खमासमणि सर्वसाधु वांदीयइ ४ इसी परे चउरादि खमासमण देइ करी गोडिलिया होइ, माथउ भुइ लिगाडी, मुहपत्ति मुहि दीधा हुति वाय जोडिए "सव्वस्स वि देवसिअ" इत्यादि कहीये छेहिं, "इच्छाकारेण संदि-स्सह" इसुं पद न कहियइ, तस्स मिच्छामि दुक्कड कही करी उभा थइ करेमि भंते ! इत्यादि, एवमेव रात्रिप्रतिक्र-मणस्थापनासमयेऽपि क्षमाश्रमणचतुष्कं लिखितं अस्ति, एवं श्रीजिनप्रभसूरिकृतविधिप्रपाया अपि क्षमाश्रमणचतुष्क एव, तथाहि "चेइआइ वंदित्तु चउराइ खमासमणेहिं आयरियाई वंदिअ भूनिहिअसिरो "सव्वस्स वि देवसिअ" इच्चाइ दंड-गेण सयलाइयारमिच्छामि दुक्कडं वाउ" इत्यादि। ननु—तपागच्छीयगीतार्थैः अपि क्वाऽपि प्रतिक्रमणप्रारम्भे क्षमाश्रमणचतु-ष्टय उक्त अस्ति? उच्यते—तपागच्छीय-श्रीजयचन्द्रसूरिभिः प्रतिक्रमणहेतुगर्भग्रन्थे स्पष्ट तस्य प्रतिपादनात्, तथाहि—"चतुरादिक्षमाश्रमणैः श्रीगुरून् वन्दते" इत्यादि । ननु—तर्हि साम्प्रतीनाः तपागच्छीयाः साध्वादय "भगवन् ! देवसिअ पडिकमणु ठाउं" इत्येवंरूप पञ्चम क्षमाश्रमणं अनुक्त अपि कथ ददते ? उच्यते—तत्राऽर्थे ते एव प्रष्टव्याः, पुनः तपा-

सागा, मुग्गगय आमगोरसुम्मीस । संसज्जए अ इयरा, तह्वि हु, नियमा वु दोसायत्ति ॥ १ ॥” इति आत्मसंयमविराधनारूपी द्वौ दोषौ इत्यर्थ ॥ पुनरपि तथैव श्रीकुमारपालभूपालशुश्रूषितश्रीहेमचन्द्रसूरिभि अपि उक्तं, तथाहि–

“आमगोरससंपृक्त–द्विदलादिषु जन्तवः । दृष्टा केवलिभि' सूक्ष्मा–स्तस्मात् तानि विवर्जयेत् ॥१॥” अत्र इदं रहस्य—अत्र सर्वत्र एवं प्रतिपादित यदुत अनुत्कालितगोरसेन समं मीलिते द्विदलान्ने समूर्च्छत्सूक्ष्मत्रसजीवविराधनादोषो भवति । ननु–मुखे यदा आमगोरसद्विदलान्नयोः संयोगो भवति, तदा सूक्ष्मत्रसजीवा समूर्च्छन्ति इति बहवो लोकाः प्रतिपादयन्ति तत्र किं उत्तरम् ? उच्यते—तयोः मुखसयोगे तदुत्पत्त्यक्षराणि न दृष्टानि, प्रत्युत निषेधो दृश्यते । यदुक्त श्रीजिनभद्रसूरिपट्टालङ्कारश्रीजिनचन्द्रसूरिविजयराज्ये श्रीमेरुसुन्दरनामोपाध्यायैः स्वकृतसाधिकशतप्रश्नोत्तरग्रन्थे, तथाहि–“विदल किम जीव उपजइ तत्रार्थे श्रीवडाकल्पना भाष्यमांहे गाथा कही जइ–“जइ मुग्गमासपमुहं, विदल कच्चमि गोरसे पडइ । ता तसजीवुप्पत्तिं, भणति दहिए वि तिदिणुवरिं ॥ १ ॥” अत्र काचा गोरसमाहि विदलान्न पडइ तिवारइ त्रसजीव उपजइ, पणि कंठतालुया नइ योगइ नही कह्या, वलि जिणदिहाडइ विदल जिमइ छइ तिणदिहाडइ गोरस केइ नही जिमता, ते स्यु कारण ? तत्रार्थे ते वात अयुक्ता, जे भणी विदलान्न जेतलइ जिमउ तेतलइ उदराग्नियोगि ते परिपक्व हुयउ, ते भणी तिवारइ तक्रादि लीजइ तउ दोष न हुवइ, तेह तक्रादिक उदराग्नि मुखि पडता सामानि परिपक्व थायइ तेहभणी एह दोष नहीं, यतो “विदलं कच्चमि गोरसे पडइ” इतिवचनात्, इति ९४ प्रश्ने” ॥ २७ ॥

॥ इति अनुत्कालितगोरसेन समं मीलिते द्विदलान्ने दोषाधिकारः ॥ २७ ॥

येषु वारयस्तु अपि कार्तिकद्वये प्रथमे कार्तिके मते, न तु पक्षः, ते आचार्याः चतुर्मासके प्रतिक्रम्य विहृताः" इत्यादि ॥

॥ इति कार्तिकवृद्धौ प्रथमकार्तिके चतुर्मासिकप्रतिक्रमणाधिकारः ॥ ३६ ॥

ननु–आमगोरसेन समं द्विदलान्न भुञ्जानाना दोषः प्रतिपादितः सर्वत्र, तत्तु सङ्गतिं अङ्गति, पर स दोष किं स्यात्-स्यादिभोजनादिभाजनस्थितेन आमगोरसेन सम मीलिते द्विदले भवति १ किं वा मुखे प्रक्षिप्ते २ किं वा गिलनानन्तर ३ ? उच्यते—आद्ये विकल्पे द्विदलदोषो भवति, पर न मुखे प्रक्षिप्ते, नाऽपि गिलनानन्तर, यतः श्रीसन्देहदोलावलीसूत्रवृत्त्यो (९३ पत्रे) आमगोरसमध्ये द्विदले पतिते दोषो भवति, इत्यमेव उक्तत्वात्, तथाहि–

"उक्कालियंमि तक्के, विदलक्खेवे वि नत्थि तद्दोसो । अतत्तगोरसंमि य, पडिअ संसप्पए विदल ॥ ६६ ॥"

व्याख्या–'उत्कालिते' अग्नितापात् अत्युष्णीभूते, 'तक्रे' गोरसे तक्र गोरसभेदाना दध्यादीनां उपलक्षण, द्वे दले यस्य तद्विदल–मुद्गादि, तस्य 'क्षेपे'ऽपि न्यासेऽपि, किं पुनः द्विदलकवलगिलनानन्तर उत्कालिततक्राद्यात्मकप्रवले अवलेह्यादिपाने, इति अपेः अर्थः, 'नाऽस्ति' न भवति तद्दोषो=द्विदलदोषो जीवविराधनालक्षण । अत्र हेतु आह–यत इति अध्याहार्य, यतः कारणात् 'अतप्तगोरसे' आमगोरसे 'पतित' सगत 'द्विदलं' पालक्यालट्टशाकमुद्गादि संसर्पति=संसज्जति सम्मूर्च्छत्सूक्ष्मत्रसजीवयुक्त भवति इत्यर्थः ॥ इत्यमेव श्रीदुर्लभराजसमालब्धजयवादश्रीजिनेश्वरसूरिभिः अपि उक्तम्, तथाहि–" जइ मुग्गमासपमुहं, विदल आमंमि गोरसे पडइ । ता तसजीवुप्पत्ती, भणंति दहिअंमि तिदिणुवरिं ॥ १ ॥"

ननु–पूर्वाचार्यग्रन्थेषु अपि इत्थं प्रतिपादित अस्ति न वा ? उच्यते–श्रीकल्पभाष्ये तथैव प्रतिपादना, तथाहि–"पालकलट्ट-

॥ अथ द्वितीयः प्रकाशः ॥

॥ श्रीमत्पार्श्वनाथाय नमः ॥

ननु—श्रीजिनशासने संप्रति कति आगमाः सन्ति ? उच्यते—पञ्चचत्वारिंशत्, यदुक्तं—"इक्कारस अंगाइं ११, बारसउवंगाइं २३ दस पइण्णा ३३ य । छ च्छेअ ३९ मूलचउरो ४३, नंदी ४४ अणुयोगदाराइं ४५ ॥ १ ॥" पृथक् पृथक् नामानि अपि इत्थ—श्रीआचाराङ्ग १ सूत्रकृताङ्ग २ स्थानाङ्ग ३ समवायाङ्ग ४ भगवती ५ ज्ञाताधर्मकथा ६ उपासकदशाङ्ग ७ अन्तकृद्दशाङ्ग ८ अनुत्तरोपपातिकदशाङ्ग ९ प्रश्नव्याकरण १० विपाकश्रुत ११ चेति एकादश अङ्गानि । औपपातिक १ राजप्रश्नीय २ जीवाभिगम ३ प्रज्ञापना ४ सूर्यप्रज्ञप्तिः ५ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिः ६ चन्द्रप्रज्ञप्ति ७ निरयावली ८ कल्पावतंसिका ९ पुष्पिका १० पुष्पचूलिका ११ वह्निदशोपाङ्ग १२ चेति द्वादश उपाङ्गानि पूर्वमीलने २३ । चतुःशरणप्रकीर्णक १ चन्द्रावेध्यकः २ आतुरप्रत्याख्यान ३ महाप्रत्याख्यान ४ भक्तप्रत्याख्यान ५ तन्दुलवैकालिक ६ गणिविद्या ७ मरणसमाधिः ८ देवेन्द्रस्तवः ९ संस्तारकप्रकीर्णकं १० चेति दश प्रकीर्णकानि पूर्वमीलने ३३ । निशीथ १ महानिशीथ २ व्यवहार ३ बृहत्कल्पः ४ जीतकल्पः ५ दशाश्रुतस्कन्धः ६ चेति षट् छेदग्रन्थाः पूर्वमीलने ३९ । ओघनिर्युक्तिः १ पिण्डनिर्युक्तिः २ दशवैकालिक ३ उत्तराध्ययन ४ चेति चत्वारि मूलसूत्राणि । क्वाऽपि विचारामृतसंग्रहादौ ओघनिर्युक्तिस्थाने

खरतरगच्छाधीशा, जिनचन्द्रयुगप्रधानगुरुराजाः । श्रीपातसाहिमान्या, समभूवन् भूमिविख्याता ॥ १ ॥
श्रीपूज्यमुख्यशिष्याः, दक्षाः श्रीसकलचन्द्रनामानः । मद्गुरवो गुणगुरव–स्तेषामेष प्रसादो मे ॥ २ ॥
सप्तत्रिंशन्मितैरेवं, पूर्णं प्रश्नोत्तरैः स्फुटम् । प्रकाश प्रथम चक्रे, गणिः समयसुन्दरः ॥ ३ ॥
इति श्रीसामाचारीशतके पञ्चमकाशो श्रीसमयसुन्दरोपाध्यायविरचिते प्रथमः प्रकाशः सम्पूर्ण ॥ १ ॥

इति श्रीसमयसुन्दरोपाध्यायविरचिते सामाचारी-
शतके प्रथमः प्रकाशः समाप्तः ॥

महानिशीथ २ दशप्रकीर्णक १२ अनुयोग (द्वाराणि) १३ एते त्रयोदश, तेषां पूर्वाचार्यछद्मस्थप्रणीतत्वात्, मम मनस्तु गणधरदेवभाषित एव प्रीतिं जनयति न अन्यत्, अत्रार्थे रे मनोमतिशिष्य ! शृणु निश्चलमनोदानेन गणधरदेवभाषिता तु द्वादशाङ्गी अभूत् मूलतः, तत्राऽपि दृष्टिवादः सूत्रार्थाभ्यां व्यवच्छिन्नः, सांप्रतं एकादश अङ्गानि गणधरभाषितानि, अन्यागमाः सर्वेऽपि छद्मस्थैः पूर्वाचार्यैः अङ्गेभ्यः उद्धृता सन्ति, यथा प्रज्ञापना श्रीश्यामाचार्येण कृता, यदुक्तं प्रज्ञापना प्रथमपादे (५ पत्रे) अन्यकृत गाथाद्वयं इदम्, तथाहि—'वायगवरवंसाओ, तेवीसइमेण धीरपुरिसेण। दुद्धरधरेण मुणिणा, पुव्वसुयसमिद्धबुद्धीण ॥ १ ॥ सुयसागरा विणेऊ—ण जेणं सुअरयणमुत्तमं दिन्नं । सीसगणस्स भगवओ, तस्स नमो अज्जसामस्स ॥ २ ॥ एतट्टीकायां एतद्गाथाद्वयव्याख्यानं अपि अस्ति, श्रीऋषिमण्डलसूत्रेऽपि ११९ गाथायाम्, यथा—'निज्जूढा जेण तया, पन्नवणा सव्वभावपन्नवणा । तेवीसइमो पुरिसो, जाओ सामज्जनामुत्ति ॥ १ ॥ स च श्रीश्यामाचार्यः श्रीमहावीरात् ३३५ वर्षे जातो, यदुक्तं विचारसारे—"सिरिवीराउ गएसुं, पणतीसहिएसु तिसयवरिसेसुं । पढमो कालिगसूरी, जाओ सामज्जनामुत्ति ॥ १ ॥" ॥ १ ॥ तथा दशाश्रुतस्कन्धस्तु श्रीभद्रबाहुस्वामिना चतुर्दशपूर्वधरेण श्रीमहावीरदेवत सप्तत्यधिकशत १७० वर्षे जाते तेन विनिर्मितः ॥ २ ॥ श्रीदशवैकालिकसूत्रमपि श्रीसुधर्मस्वामिनः चतुर्थपट्टधरेण श्रीशय्यंभवसूरिणा विहितम् ॥ ३ ॥ श्रीउत्तराध्ययनसूत्रं तु श्रीपाक्षिकवृत्तौ "ऋषिभाषितानि उत्तराध्ययनानि" इति व्याख्यातत्वात् ऋषिभाषितं ॥ ४ ॥ एवं अन्येऽपि आगमाः छेदग्रन्थादिका अवशिष्टाः सर्वेऽपि पूर्वाचार्यकृता एव सन्ति, ततः त्वं एकादश अङ्गानि एव मन्यस्व न द्वात्रिंशत् आगमान् । अथ यदि उपाङ्गादीन् द्वात्रिंशत् आगमान् मानयिष्यसि तदा

आवश्यकनिर्युक्तिः अस्ति पूर्वमीलने ४३ नन्दीसूत्र ४४ अनुयोगद्वार ४५ इति ४५ आगमाः । एतानि एव आगमनामानि श्रीजिनप्रभसूरिभिः अपि स्वकृतसिद्धान्तस्तवे प्रोक्तानि, तथाहि—

"सिरिवीरजिण सुयरय—ण रोहण पणमिऊण । भत्तीए कित्तेमि तप्पणीअ सिद्धातमह जगप्पईव ॥ १ ॥ पढम आयारग १, सूअगडं २ ठाणंग ३ समवायं ४ । भगवइअंग ५ नाया—धम्मकहो ६ वासगदसा ७ य ॥ २ ॥ अतग डदसा ८ णुत्तर—वाइदसा ९ पण्हवागरणनामं १० । सुहदुक्खविवागसुअ ११, दिट्ठीवायं १२ च अगाणि ॥ ३ ॥ उववाई १ रायपसे—णिअ २ तह जीवाभिगम ३ पन्नवणा ४ । जंबुपन्नत्ती ५ च—द ६ सूरपन्नत्ति ७ नामाओ ॥ ४ ॥ निरयावलिआ ८ कप्पा—वयंसि ९ पुप्फिया १० पुप्फचूला य ११ । वह्णीदसा १२ य एए, बारसुवगाण नामाणि ॥ ५ ॥ चउसरण १ चंदविज्झग २, आउर ३ महपुवपच्चक्खाण ४ च । भत्तपइण्णा ५ तंदुल—वेयालीय ६ च- गणिविज्जा ७ ॥ ६ ॥ मरणसमाही ८ देविं—दथओ ९ संथार १० इय दस पइण्णा । वीरत्थय गच्छाया—रपमुह चउ दससहस्स पुरा ॥ ७ ॥ दसवेआलिअ १ तह ओ—घ २ पिंडनिज्जुत्ति ३ उत्तरज्झयणा ४ । चत्तारि मूलगया, नंदी १ अणुयोगदाराइं २ ॥ ८ ॥ निसीह १ कप्पववहा—र २ पंचकप्पो ३ दसासुअक्खधो ४ । तह महनिसीह ५ एए, छ—च्छेआ जीअकप्पो ६ अ ॥ ९ ॥ पंचपरमिट्ठसामा—इयाइ आवस्सय च छ—च्छेअ । निज्जुत्तिचुण्णिवित्ती, विसे- सआवस्सयाइजुअ ॥ १० ॥ इअ जिणपहेण गुरुणा, रइअ सिद्धतनाममेगत्त । पणयालीसपमाण, निअजिअनामेण नायव ॥११॥" अत्र आह कोऽपि मनोमतिशिष्यः—ननु—अहं द्वात्रिंशत् एव आगमान् मानयिष्यामि, न त्रिचत्वा…

महानिशीथ २ दशप्रकीर्णक १२ अनुयोग (द्वाराणि) १४ एते त्रयोदश, तेषां पूर्वाचार्यछद्मस्थप्रणीतत्वात्, मम मनस्तु गणधरदेवभाषित एव प्रीतिं जनयति न अन्यत्, अत्रार्थे रे मनोमतिशिष्य ! शृणु निश्चलमनोदानेन गणधरदेवभाषिता तु द्वादशाङ्गी अभूत् मूलतः, तत्राऽपि दृष्टिवादः सूत्रार्थाभ्यां व्यवच्छिन्नः, सांप्रतं एकादश अङ्गानि गणधरभाषितानि, अन्यागमाः सर्वेऽपि छद्मस्थैः पूर्वाचार्यैः अङ्गेभ्यः उद्धृताः सन्ति, यथा प्रज्ञापना श्रीश्यामाचार्येण कृता, यदुक्तं प्रज्ञापना प्रथमपादे (५ पत्रे) अन्यकृत गाथाद्वयं इदम्, तथाहि—'वायगवरवंसाओ, तेवीसइमेण धीरपुरिसेण। दुद्धरधरेण मुणिणा, पुव्वसुयसमिद्धबुद्धीण ॥ १ ॥ सुयसागरा विणेऊ—ण जेण सुअरयणमुत्तमं दिन्नं । सीसगणस्स भगवओ, तस्स नमो अज्जसामस्स ॥ २ ॥ एतट्टीकाया एतद्गाथाद्वयव्याख्यान अपि अस्ति, श्रीऋषिमण्डलसूत्रेऽपि १९१ गाथायाम्, यथा—'निज्जूढा जेण तया, पन्नवणा सव्वभावपन्नवणा । तेवीसइमो पुरिसो, जाओ सामज्जनामुत्ति ॥ १ ॥ स च श्रीश्यामाचार्यः श्रीमहावीरात् ३३५ वर्षे जातो, यदुक्तं विचारसारे—"सिरिवीराउ गएसु, पणतीसहिएसु तिसयवरिसेसु । पढमो कालिगसूरी, जाओ सामज्जनामुत्ति ॥ १ ॥" ॥ १ ॥ तथा दशाश्रुतस्कन्धस्तु श्रीभद्रबाहुस्वामिना चतुर्दशपूर्वधरेण श्रीमहावीरदेवतः सप्तत्यधिकशत १७० वर्षे जाते तेन विनिर्मितः ॥ २ ॥ श्रीदशवैकालिकसूत्रमपि श्रीसुधर्मस्वामिनः चतुर्थपट्टधरेण श्रीशय्यंभवसूरिणा विहितम् ॥ ३ ॥ श्रीउत्तराध्ययनसूत्रं तु श्रीपाक्षिकवृत्तौ "ऋषिभाषितानि उत्तराध्ययनानि" इति व्याख्यातत्वात् ऋषिभाषितं ॥ ४ ॥ एवं अन्येऽपि आगमाः छेदग्रन्थादिका अवशिष्टाः सर्वेऽपि पूर्वाचार्यकृता एव सन्ति, ततः त्वं एकादश अङ्गानि एव मन्यस्व न द्वात्रिंशत् आगमान् । अथ यदि उपाङ्गादीन् द्वात्रिंशत् आगमान् मानयिष्यसि तदा

मारितः इति कथ न विरोधः ? ॥ १ ॥ अपि च श्रीज्ञाताधर्मकथायां (२०१ पत्रे) "तए णं सा सूमालिआ अज्जा अणोहट्टिआ अनिवारिआ सच्छदमई अभिक्खण अभिक्खण हत्थे धोवेइ जाव चेएति, तत्थवि अ ण पासत्था पासत्थविहारी, ओसन्ना ओसन्नविहारी कुसीला कुसीलविहारी ससत्ता ससत्तविहारी बहूणि वासाणि सामण्णपरिआग पाउणति अद्धमासिआए सलेहणाए तस्स ठाणस्स अणालोइअ अपडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा ईसाणे कप्पे अण्णयरसि विमाणसि देवगणिअत्ताए उववन्ना, तत्थेगइआण देवीणं नवपलिओवमाई ठिई पन्नत्ता, तत्थण सूमालिआए देवीए नव पलियमाइ ठिई पन्नत्ता" अपि च श्रीज्ञाताधर्मकथाया विराधितसयमा सुकुमारिकाऽऽर्या ईशाने कल्पे देवगणिकात्वेन उत्पन्ना इत्यादि प्रोक्त अस्ति, एतत् सूत्रविसवादि च इद श्रीभगवतीसूत्र (४९ पत्रे), यथा "विराहिअसजमाण कहिं उववाओ ? गोयमा ! जहन्नेण भवणवासु, उक्कोसेणं सोहम्मे कप्पे" इति। अत्र इदं रहस्य—ज्ञातायां विराधितसयमाया अपि सुकुमारिकाया ईशाने देवलोके उत्पाद उक्त, भगवत्यां तु उत्कर्षेण अपि विराधितसंयमस्य सौधर्मे एव उत्पाद ,तर्हि कथ न विसवाद ? ॥ २ ॥ पुन श्रीजीवाभिगमसूत्रे (३७ पत्रे) "से किं त थलयरपरिसप्पसमुच्छिमा ? २ दुविहा पन्नत्ता, त जहा—उरगपरिसप्पसमुच्छिमा, भुयगपरिसप्पसंमुच्छिमा। से किं त उरगपरिसप्पसमुच्छिमा ? २ चउविहा पन्नत्ता, त जहा—अही १ अयगरा २ आसालिआ ३ महोरगा ४। से किं त अही ? अही दुविहा पन्नत्ता, त जहा—दव्वीकरा मउलिणो अ, से किं त दव्वीकरा ? दव्वीकरा अणेगविहा पन्नत्ता, त जहा—आसीविसा जाव से त दव्वीकरा। से किं त मउलिणो ? मउलिणो अणेगविहा पन्नत्ता, तजहा—दिव्वा गोणसा जाव से त मउलिणो; से तं अही। से किं तं अयगरा ? अयगरा एगागारा पन्नत्ता, से त अयगरा।

से किं त आसालिआ ? १ आसालिआ २ जहा पन्नवणाए। से त आसालिआ। से किं तं महोरगा ? महोरगा जहा पन्नवणाए, से तं महोरगा। जे यावण्णे तहप्पगारा ते समासओ दुविहा पन्नत्ता, तं जहा–पज्जत्ता य, अपज्जत्ता य त चेव, नवरि सरीरोगाहणा जहन्नेण अंगुलस्सऽसंखेज्जभाग उक्कोसेणं जोयणपुहुत्त" एतत्सूत्रविरोधि तु इद श्रीप्रज्ञापनासूत्र (४६ पत्रे), तथाहि–

कहिणं भंते ! आसालिआ संमुच्छंति ? गोयमा ! अंतोमणुस्सखित्ते अड्ढाइज्जेसु दीवेसु निव्वाघाएणं पन्नरससु कम्मभूमिसु वाघाय पडुच्च पंचसु महाविदेहेसु चक्कवट्टिखंधावारेसु बलदेवखंधावारेसु वासुदेवखंधावारेसु मंडलिअखंधावारेसु महामंडलिअखंधावारेसु गामनिवेसेसु निगमनिवेसेसु खेडनिवेसेसु नगरनिवेसेसु कब्बडनिवेसेसु मडंबनिवेसेसु दोणमुहनिवेसेसु पट्टणनिवेसेसु आगरनिवेसेसु आसमनिवेसेसु संवाहनिवेसेसु रायहाणीनिवेसेसु एएसिणं चेव विणासेसु एत्थ णं आसालिआ संमुच्छंति। जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागमित्ताए ओगाहणाए उक्कोसेणं बारसजोयणाइं तयणुरूवं च णं विक्खंभबाहल्लेणं भूमिं दालित्ता णं समुट्ठेइ, असन्नी मिच्छदिट्ठी अन्नाणी पचींदी अंतोमुहुत्तऽद्धाउया चेव कालं करेइ, अत्र अयं विरोधः–पुनः जीवाभिगमसूत्रे संमूर्च्छिमोरःपरिसर्पभेदेषु आसालिकसर्पान् आश्रित्य शरीरावगाहना जघन्येन अङ्गुलासंख्यभागा उत्कृष्टा अवगाहना च योजनपृथक्त्वं इति उक्तं, प्रज्ञापनासूत्रे तु द्वादश योजनानि इति। २। अपि च श्रीस्थानाङ्गसूत्रे (३९८ पत्रे) "जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे अतीताए उसप्पिणीए सत्त कुलगरा होत्था, तं जहा–मित्तदामे १ सुदामे अ २, सुपासे अ ३ सयपमे ४। विमलघोसे ५ सुघोसे त ६, महाघोसे ७ अ सत्तमे ॥१॥" एतद्विसंवादि च श्रीस्थानाङ्गस्य एव दशमं स्थानम् तथाहि–(५१८ पत्रे) जंबुद्दीवे २ दीवे भारहे वासे अतीताए उसप्पिणीए दस कुलगरा होत्था, तं जहा–सय-

मारितः इति कथ न विरोधः ? ॥ १ ॥ अपि च श्रीज्ञाताधर्मकथाया (२०६ पत्रे) "तए ण सा सूमालिआ अज्जा अणोहट्टिआ अनिवारिआ सच्छदमई अभिक्खण अभिक्खण हत्थे धोवेइ जाव चेएति, तत्थवि अ ण पासत्था पासत्थविहारी, ओसन्ना ओसन्नविहारी कुसीला कुसीलविहारी संसत्ता ससत्तविहारी बहूणि वासाणि सामण्णपरिआग पाउणति अद्धमासिआए संलेहणाए तस्स ठाणस्स अणालोइअ अपडिक्कता कालमासे काल किच्चा ईसाणे कप्पे अण्णयरंसि विमाणसि देवगणिअत्ताए उयवन्ना, तत्थेगइआण देवीणं नवपलिओवमाइं ठिई पन्नत्ता, तत्थण सूमालिआए देवीए नव पलिवमाइ ठिइं पन्नत्ता" अपि च श्रीज्ञाताधर्मकथाया विराधितसंयमा सुकुमारिकाऽऽर्या ईशाने कल्पे देवगणिकात्वेन उत्पन्ना इत्यादि प्रोक्त अस्ति, एतत् सूत्रविसंवादि च इद श्रीभगवतीसूत्र (४९ पत्रे), यथा "विराहिअसजमाण कहिं उववाओ ? गोयमा ! जहन्नेण भवणवासु, उक्कोसेण सोहम्मे कप्पे" इति। अत्र इदं रहस्य—ज्ञातायां विराधितसयमाया अपि सुकुमारिकाया ईशाने देवलोके उत्पाद उक्तः, भगवत्या तु उत्कर्षेण अपि विराधितसंयमस्य सौधर्मे एव उत्पादः, तर्हि कथ न विसवाद ? ॥ २ ॥ पुन श्रीजीवाभिगमसूत्रे (३७ पत्रे) "से किं त थलयरपरिसप्पसमुच्छिमा ? २ दुविहा पन्नत्ता, त जहा—उरगपरिसप्पसमुच्छिमा, भुयगपरिसप्पसमुच्छिमा । से किं तं उरगपरिसप्पसमुच्छिमा ? २ चउव्विहा पन्नत्ता, त जहा—अही १ अयगरा २ आसालिआ ३ महोरगा ४ । से किं त अही ? अही दुविहा पन्नत्ता, तं जहा—दव्वीकरा मउलिणो अ, से किं त दव्वीकरा ? दव्वीकरा अणेगविहा पन्नत्ता, तं जहा—आसीविसा जाव से तं दव्वीकरा । से किं त मउलिणो ? मउलिणो अणेगविहा पन्नत्ता, तंजहा—दिव्वा गोणसा जाव से त मउलिणो; से तं अही। से किं त अयगरा ? अयगरा एगागारा पन्नत्ता, से त अयगरा ।

दस अज्झयणा पन्नत्ता, त जहा—उवमा १ संखा २ इसिभासिआइ ३ आयरिअभासिआइ ४ महावीरभासिआइ ५ खोमग पसिणाइ ६ कोमलपसिणाइ ७ अद्दा[द्दा]गपसिणाइ ८ अगुट्ठपसिणाइ ९ बाहुपसिणाइ १०" इति अत्र अय विरोध'—अत्र उक्त 'एतानि दश अध्ययनानि श्रीप्रश्नव्याकरणे सन्ति,' तानि कानि ? न एतादृशानि नामानि क्वाऽपि सन्ति, नाऽपि अर्थवक्तव्यता सङ्गतिः, साम्प्रत तु पञ्च आश्रवद्वाराणि पञ्च संवरद्वाराणि च सन्ति ॥ ७॥

एवं श्रीजीवाभिगमसूत्रे नारकाणां संहनन न उक्त, अथ च उत्तराध्ययनसूत्रे एकोनत्रिंशदध्ययने मास नारकाणा उक्तम् ॥ ८ ॥ तथा श्रीआचाराङ्गसूत्र द्वितीयश्रुतस्कन्धे पिण्डैषणाऽध्ययने चतुर्थोद्देशके पञ्चरसनवविकृतिग्रहण अनगाराणा उक्तं, श्रीस्थानाङ्गे भगवत्यां च मासनिषेधः प्रत्यपादि, दशवैकालिके मद्यनिषेध ॥ ९ ॥ तथा दशवैकालिकादौ उक्तम्—साधव षड्जीवनिकायरक्षकाः सचित्तपृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पत्यादिसघट्टे आहार अपि न गृह्णन्ति । पुन श्रीआचाराङ्गे श्रीकल्पसूत्रे च साधूनां नदीलङ्घन नद्युत्तरण वर्षति अपि मेघे आहारार्थं गमन च समनुज्ञातम् ॥ १० ॥ श्रीभगवत्यादौ श्रावकाणा पञ्च-दश कर्मादानानि निवारितानि ॥ उपासकदशासूत्र आनन्दकामदेवादीना पञ्चशतहलवाहनेऽपि श्रावकत्व श्लाघितम् ॥ ११ ॥ तथा प्रथमोपाङ्गे तापसाना उत्कृष्टा गति ज्योतिष्केषु प्रोक्ता ॥ भगवत्या तु तामलितापस ईशानकल्पे समुत्पन्न ॥ १२ ॥ तथा सूत्रकृताङ्गे साधो' स्त्रीसङ्गतो त्रिविध त्रिविधेन परिहार' प्रत्यपादि । श्रीस्थानाङ्गे तु साधु प्रपतन्तीं साध्वीं स्वहस्तेन अवलम्बयेत् इति उक्तम् ॥ १३ ॥ ज्ञातायां श्रीकृष्णवासुदेवस्य अन्त'पुर्यो द्वात्रिंशत्सहस्रा लिखिता , अन्तकृते च षोडश-सहस्राः ॥ १४ ॥ तथा अष्टमाङ्गे श्रीकृष्णो द्वादशमो जिनो भावी इति निगदित, समवायाङ्गे तु त्रयोदशम इति ॥ १५ ॥

जले १ सयाऊ य २ अणतसेणे अ ३ अमिंतसेणे अ ४ । तक्कसेणे अ ५ भीमसेणे अ ६ महाभीमसेणे सत्तमे ७ ॥२॥ ददरहे ८ दसरहे ९ सयरहे १०" इयं विघटना यदुत—अतीतोत्सर्पिण्या एकस्मिन् एव स्थानाङ्गे सप्तमस्थाने सप्त, दशमस्थाने दश कुलकरा उक्ताः ॥ ४ ॥ तथा पुनः श्रीस्थानाङ्गे (३९८ पत्रे) "जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे आगमिस्साए उसप्पिणीए सत्त कुलकरा भविस्संति, त जहा—मित्तवाहणे १ सुभोमे अ २, सुप्पभे अ ३ सयपभे ४ । दत्ते ५ सुहुमे ६ [सुहे सुव्वे य] सुबंधू अ ७ आगमेस्सिण होक्खई ॥ १ ॥" एतत्सूत्रविसंवादि च दशम स्थान (५१८ पत्रे), तथाहि—जंबुद्दीवे २ दीवे भारहे वासे आगमिस्साए उसप्पिणीए दस कुलगरा भविस्सति, त जहा—सीमकरे १ खेमधरे २ सीमकरे ३ खेमधरे ४ विमलवाहणे ५ संमुती ६ पडिसुए ७ दढधणू ८ दसधणू ९ सतधणू १०" अत्राऽपि सप्ताना दशभिः सम कुलकरसङ्ख्यया विरोधः ॥ ५ ॥ तथा श्रीस्थानाङ्गसूत्रे (३९८ पत्रे)वर्तमानावसर्पिण्यां सप्त कुलकरा उक्ताः, तथाहि—

जम्बुद्दीवे दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए सत्त कुलगरा होत्था, तं जहा—"पढमित्थ विमलवाहण १ चक्खुम २ जसम ३ चउत्थमभिचंदे ४ । तत्तो य पसेणइ ५ पुण, मरुदेवे चेव ६ नाभी य ७ ॥ १ ॥" इति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्या (१३२ पत्रे) तु पञ्चदश उक्ताः, तथाहि—"तीसेणं समाए पच्छिमे तिभागे पलिओवमट्ठभागावसेसे एत्थणं इमे पण्णरस कुलगरा समुप्पज्जित्था, त जहा—सुमई १ पडिस्सुई २ सीमकरे ३ सीमधरे ४ खेमकरे ५ खेमधरे ६ विमलवाहणे ७ चक्खुम ८ जसम ९ अभिचंदे १० चंदाभे ११ पसेणई १२ मरुदेवे १३ नाभी १४ उसभे त्ति १५" इति, सप्तकुलकराणां पञ्चदशकुलकरसङ्ख्यया समं विसंवादः ६ । तथा श्रीस्थानाङ्गे दशमस्थाने (५०९ पत्रे) एव प्रत्यपादि 'पण्हावागरणदसाण

तथ्य इति १२ पत्रे । ततः पञ्चचत्वारिंशदपि आगमाः एकसमानकर्तृकाः, छद्मस्थैः एकसमानबुद्ध्या माननीयाः, न अत्र शङ्काशङ्कु' हृदि रक्षणीयो विचक्षणैः ॥ ४८ ॥

॥ इति ४५ आगमस्थापनाधिकारः ॥ ४८ ॥

ननु–केषु केषु आगमेषु जिनप्रतिमा अस्ति, केन केन च सा पूजिता वन्दिता वाऽस्ति ? तद्दर्शयन्तु, उच्यते—श्रीज्ञाताधर्मकथायां षोडशाध्ययने (२१० पत्रे) द्रौपद्या जिनप्रतिमा पूजिताऽस्ति, तथाहि–"तएण सा दोवई रायवरकन्ना जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मज्जणघर अणुपविसइ, अणुपविसित्ता न्हाया कयवलिकम्मा कयकोउअमगलपायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइ मगलाइ वत्थाइ पवराइं परिहिआ, मज्जणघराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव जिणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जिणघर अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जिणपडिमाण आलोए पणाम करेइ, पणाम करित्ता लोमहत्थय परामुसइ, एवं जहा सूरिआभो जिणपडिमाओ अच्चेइ, अच्चेइत्ता तहेव भाणिअव जाव धूव डहइ धूवं डहित्ता वाम जाणु अचेइ दाहिण जाणु धरणियलसि निवेसेइ, निवेसित्ता तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणियलसि नमेइ, नमेइत्ता ईसिं पच्चुण्णमइ करयल जाव कट्टु एव वयासी "नमोत्थु णं अरिहताण भगवताण जाव ठाण संपत्ताणं" वदइ नमसइ, नमसित्ता जिणघराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव अतेउरे तेणेव उवागच्छइ" इत्यादि, अत्र इदं रहस्यम्—द्रौपदीश्राविकया प्रतिमा पूजिता, पुन अत्राऽर्थे श्रूयतां अत्र "जेणेव जिणघरे तेणेव उवागच्छइ" इति उक्तं, इद जिनगृहणं शाश्वत अशाश्वत वा ? न आद्यपक्षो दक्षः, एतत्स्थाने शाश्वतचैत्यस्य सिद्धान्ते अनभिधानेन

तथा चतुर्दशपूर्विणो जघन्यतोऽपि लान्तके गच्छन्ति, कार्तिकस्तु चतुर्दशपूर्वधरोऽपि सौधर्मे समुत्पन्न" ॥ १६ ॥ एवं प्रत्यागम शतशो विसंवादाः सन्ति किं क्रियते ? ननु–यदि एक एव श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणः पञ्चचत्वारिंशतोऽपि आगमाना संकलना कृतवान् तर्हि कथं एतावन्तो विसंवादा लिखिता तेन ? उच्यते–एक तु कारण इद, यथा यथा यस्मिन् यस्मिन् आगमे मृतावशिष्टसाधुभिः यद् यद् उक्त तथा तथा तस्मिन् तस्मिन् आगमे श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणेन अपि पुस्तकारूढीकृतं, नहि पापभीरवो महान्त इद सत्यं, इदं तु असत्यं इति एकान्तेन प्ररूपयन्ति इति, द्वितीय तु कारणं इद, यथा वल्लभ्या यस्मिन् काले देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणतो वाचना प्रवृत्ता, तथा तस्मिन् एव काले मथुरानगर्यां अपि स्कन्दिलाचार्यतोऽपि द्वितीया वाचना प्रवृत्ता, तदा तत्कालीनमृतावशिष्टछद्मस्थसाधुमुखविनिर्गतागमालापकेषु सकलनायां विस्मृतत्वादिदोष एव वाचनाविसंवादकारको जातः । यदुक्त श्रीज्योतिष्करण्डकवृत्तौ, तथाहि–"इह स्कन्दिलाचार्यप्रवृत्तौ दुष्षमानुभावतो दुर्भिक्षप्रवृत्त्या साधूनां पठनगणनादिक सर्वं अपि अनश्यत्, ततो दुर्भिक्षातिक्रमे सुभिक्षप्रवृत्तौ द्वयोः सङ्घयो मेलापको अभूत्, तद् यथा, एको वल्लभ्यां, एको मथुरायां, तत्र सूत्रसंघट्टने वाचनाभेदो जात", विस्मृतयोः हि सूत्रार्थयोः स्मृत्वा स्मृत्वा संघट्टने भवति अवश्य वाचनाभेदः, न काचिद् अनुपपत्तिः, तत्र अनुयोगद्वारादिक इदानीं वर्तमान माथुरीवाचनानुगत, ज्योतिष्करण्डकसूत्रकर्ता च आचार्यो वाल्लभ्यः, तत इद सख्यास्थानप्रतिपादनवाल्लभ्यवाचनानुगत, इति न अस्य अनुयोगद्वारप्रतिपादितैः सख्यास्थानैः सह विसदृशत्वं उपलभ्य विचिकित्सि-

तव्य इति १२ पत्रे । ततः पञ्चचत्वारिंशदपि आगमाः एकसमानकर्तृकाः, छद्मस्थैः एकसमानबुद्ध्या माननीयाः, न अत्र शङ्काशङ्कु इति रक्षणीयो विचक्षणैः ॥ ३८ ॥

॥ इति ४५ आगमस्थापनाधिकारः ॥ ३८ ॥

ननु—केषु केषु आगमेषु जिनप्रतिमा अस्ति, केन केन च सा पूजिता वन्दिता चाऽस्ति ? तद्दर्शयन्तु, उच्यते—श्रीज्ञाताधर्मकथायां षोडशाध्ययने (२१० पत्रे) द्रौपद्या जिनप्रतिमा पूजिताऽस्ति, तथाहि—"तएण सा दोवई रायवरकन्ना जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मज्जणघर अणुपविसइ, अणुपविसित्ता न्हाया कयवलिकम्मा कयकोउअमंगलपायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवराइं परिहिआ, मज्जणघराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव जिणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जिणघर अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जिणपडिमाण आलोए पणाम करेइ, पणाम करित्ता लोमहत्थयं परामुसइ, एवं जहा सूरिआभो जिणपडिमाओ अच्चेइ, अच्चेइत्ता तहेव भाणिअव्व जाव धूवं डहइ धूवं डहित्ता वाम जाणु अंचेइ दाहिण जाणु धरणियलंसि निवेसेइ, निवेसित्ता तिक्खुत्तो मुद्धाण धरणियलंसि नमेइ, नमेइत्ता ईसिं पच्चुण्णमइ करयल जाव कट्टु एवं वयासी "नमोत्थु णं अरिहंताण भगवंताण जाव ठाण संपत्ताण" वदइ नमसइ, नमंसित्ता जिणघराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव अंतेउरे तेणेव उवागच्छइ" इत्यादि, अत्र इद रहस्यम्—द्रौपदीश्राविकया प्रतिमा पूजिता, पुनः अत्राऽर्थे श्रूयतां अत्र "जेणेव जिणघरे तेणेव उवागच्छइ" इति उक्त, इदं जिनगृहण शाश्वत अशाश्वत वा ? न आद्यपक्षो दक्षः, एतत्स्थाने शाश्वतचैत्यस्य सिद्धान्ते अनभिधानेन

तथा चतुर्दशपूर्विणो जघन्यतोऽपि लान्तके गच्छन्ति, कार्तिकस्तु चतुर्दशपूर्वधरोऽपि सौधर्मे समुत्पन्नः ॥ १६ ॥ एवं प्रत्यागमं शतशो विसंवादाः सन्ति किं क्रियते ? ननु—यदि एक एव श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणः पञ्चचत्वारिंशतोऽपि आगमानां संकलनां कृतवान् तर्हि कथं एतावन्तो विसंवादा लिखिता तेन ? उच्यते—एकं तु कारणं इदं, यथा यथा यस्मिन् यस्मिन् आगमे मृतावशिष्टसाधुभिः यद् यद् उक्तं तथा तथा तस्मिन् तस्मिन् आगमे श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणेन अपि पुस्तकारूढीकृतं, नहि पापभीरवो महान्तः इदं सत्यं, इदं तु असत्यं इति एकान्तेन प्ररूपयन्ति इति, द्वितीयं तु कारणं इदं, यथा वल्लभ्यां यस्मिन् काले देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणतो वाचना प्रवृत्ता, तथा तस्मिन् एव काले मथुरानगर्यां अपि स्कन्दिलाचार्यतोऽपि द्वितीया वाचना प्रवृत्ता, तदा तत्कालीनमृतावशिष्टछद्मस्थसाधुमुखविनिर्गतागमालापकेषु सकलनायां विस्मृतत्वादिदोष एव वाचनाविसंवादकारको जातः । यदुक्तं श्रीज्योतिष्करण्डकवृत्तौ, तथाहि—"इह स्कन्दिलाचार्यप्रवृत्तौ दुष्षमानुभावतो दुर्भिक्षप्रवृत्त्या साधूनां पठनगणनादिकं सर्वं अपि अनश्यत्, ततो दुर्भिक्षातिक्रमे सुभिक्षप्रवृत्तौ द्वयोः सङ्घयोः मेलापको अभूत्, तद् यथा, एको वल्लभ्यां, एको मथुरायां, तत्र सूत्रसंघट्टने वाचनाभेदो जातः, विस्मृतयोः हि सूत्रार्थयोः स्मृत्वा स्मृत्वा संघट्टने भवति अवश्यं वाचनाभेदः, न कदाचिद् अनुपपत्तिः, तत्र अनुयोगद्वारादिकं इदानीं वर्तमानं माथुरीवाचनानुगतं, ज्योतिष्करण्डकसूत्रकर्ता च आचार्यो वाल्लभ्यः, तत इदं सङ्ख्यास्थानप्रतिपादनं वाल्लभ्यवाचनानुगतं, इति न अस्य अनुयोगद्वारप्रतिपादितैः सङ्ख्यास्थानैः सह विसदृशत्वं उपलभ्य विचिकित्सि-

तव्य इति १३ पत्रे । ततः पञ्चचत्वारिंशदपि आगमाः एकसमानकर्तृकाः, छद्मस्थैः एकसमानबुद्ध्या माननीयाः, न अत्र शङ्काशङ्कुः हृदि रक्षणीयो विचक्षणैः ॥ ९८ ॥

॥ इति ४५ आगमस्थापनाधिकार ॥ ९८ ॥

ननु—केषु केषु आगमेषु जिनप्रतिमा अस्ति, केन केन च सा पूजिता वन्दिता चाऽस्ति ? तद्दर्शयन्तु, उच्यते—श्रीज्ञाताधर्मकथाया षोडशाध्ययने (२१० पत्रे) द्रौपद्या जिनप्रतिमा पूजिताऽस्ति, तथाहि—"तएण सा दोवई रायवरकन्ना जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता न्हाया कयबलिकम्मा कयकोउअमंगलपायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइं मंगलाइं वत्थाइं पवराइं परिहिआ, मज्जणघराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव जिणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जिणघरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जिणपडिमाणं आलोए पणामं करेइ, पणामं करित्ता लोमहत्थयं परामुसइ, एवं जहा सूरिआभो जिणपडिमाओ अच्चेइ, अच्चेइत्ता तहेव भाणिअव्व जाव धूवं डहइ धूवं डहित्ता वामं जाणुं अंचेइ दाहिणं जाणुं धरणियलंसि निवेसेइ, निवेसित्ता तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणियलंसि नमेइ, नमेइत्ता ईसिं पच्चुण्णमइ करयल जाव कट्टु एवं वयासी "नमोत्थु णं अरिहंताणं भगवंताणं जाव ठाणं संपत्ताणं" वंदइ नमंसइ, नमंसित्ता जिणघराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव अंतेउरे तेणेव उवागच्छइ" इत्यादि, अत्र इदं रहस्यम्—द्रौपदीश्राविकया प्रतिमा पूजिता, पुनः अत्राऽर्थे श्रूयतां अत्र "जेणेव जिणघरे तेणेव उवागच्छइ" इति उक्तं, इदं जिनगृहं शाश्वतं अशाश्वतं वा ? न आद्यपक्षो दक्षः, एतत्स्थाने शाश्वतचैत्यस्य सिद्धान्ते अनभिधानेन

तथा चतुर्दशपूर्विणो जघन्यतोऽपि लान्तके गच्छन्ति, कार्तिकस्तु चतुर्दशपूर्वधरोऽपि सौधर्मे समुत्पन्न ॥ १६ ॥ एवं
मत्यागम शतशो विसंवादाः सन्ति किं क्रियते ? ननु–यदि एक एव श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणः पञ्चचत्वारिंशतोऽपि
आगमानां संकलना कृतवान् तर्हि कथं एतावन्तो विसंवादा लिखिता तेन ? उच्यते–एकं तु कारण इदं, यथा यथा
यस्मिन् यस्मिन् आगमे मृतावशिष्टसाधुभिः यद् यद् उक्तं तथा तथा तस्मिन् तस्मिन् आगमे श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणेन
अपि पुस्तकारूढीकृतं, नहि पापभीरवो महान्त इदं सत्यं, इदं तु असत्यं इति एकान्तेन प्ररूपयन्ति इति, द्वितीयं तु कारण
इदं, यथा वलभ्यां यस्मिन् काले देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणतो वाचना प्रवृत्ता, तथा तस्मिन् एव काले मथुरानगर्यां अपि
स्कन्दिलाचार्यतोऽपि द्वितीया वाचना प्रवृत्ता, तदा तत्कालीनमृतावशिष्टछद्मस्थसाधुमुखविनिर्गतागमालापकेषु सकल-
नायां विस्मृतत्वादिदोष एव वाचनाविसंवादकारको जातः । यदुक्तं श्रीज्योतिष्करण्डकवृत्तौ, तथाहि–"इह स्कन्दिलाचा-
र्यप्रवृत्तौ दुष्षमानुभावतो दुर्भिक्षप्रवृत्त्या साधूनां पठनगणनादिकं सर्वं अपि अनश्यत्, ततो दुर्भिक्षातिक्रमे सुभिक्ष-
प्रवृत्तौ द्वयोः संघयोः मेलापको अभूत्, तद् यथा, एको वलभ्यां, एको मथुरायां, तत्र सूत्रार्थसंघटने वाचनाभेदो जातः,
विस्मृतयोः हि सूत्रार्थयोः स्मृत्वा स्मृत्वा संघट्टने भवति अवश्यं वाचनाभेदः, न कदाचिद् अनुपपत्तिः, तत्र अनुयोग-
द्वारादिकं इदानीं वर्तमानं माथुरीवाचनानुगतं, ज्योतिष्करण्डकसूत्रकर्ता च आचार्यो वालभ्यः, तत इदं संख्यास्थानप्र-
तिपादनं वालभ्यवाचनानुगतं, इति न अस्य अनुयोगद्वारप्रतिपादितैः संख्यास्थानैः सह विसदृशत्वं उपलभ्य विचिकित्सि-

मान्यत्वेन यौवनादिमदोत्कटतया नारदस्य न उत्थानादि चक्रे इति, यतः सूत्रे गणधरदेवोक्तं अनुत्थानादौ असयताविरतादिक हेतुं मुक्त्वा नवीनस्वगच्छकल्पितहेतुं वदतः तव महोत्सूत्रदोषापत्तिः भविष्यति इति, अपि च यदि द्रौपदी श्राविका न अभविष्यत् तदा नमोत्थु ण कथं अकथयिष्यत्, नहि श्रावकधर्मं विना कोऽपि नमोत्थु ण पठति जिनप्रतिमाग्रे कथयति सा। पुन प्राह मनोमतिशिष्यः ननु–द्रौपद्या जिनप्रतिमा पूजिता पर धर्मार्थं न, किन्तु विवाहसमयत्वात् ससारार्थं, तत्राऽर्थे शृणु रे मूर्ख! यदि कोऽपि विद्यमान तीर्थङ्कर पूर्वं वन्दयित्वा वा साधु वा पूर्वं प्रतिलाभयित्वा सामायिक वा पूर्वं लात्वा पश्चात् भोजन कुरुते, तर्हि किं विद्यमानतीर्थङ्करवन्दनादिपुण्य संसारार्थं किं पतिष्यति? प्रत्युत एवं प्रशसा कर्तव्या तस्याः "अहो! धन्या एषा द्रौपदी, अहो! दृढ अस्या सम्यक्त्व, अहो! शस्यं अस्या श्राविकात्व, यद्युत विवाहादिकर्तव्यव्यग्रतायां अपि जिनप्रतिमा पूजितवती" इति। न च वाच्यं अनया तु पूर्वजन्मनि निदानं व्यधायि, तेन तस्मिन् सति कथं तस्याः सम्यक्त्ववत्त्व श्राविकात्वं चेति? द्रौपदीकृतनिदानस्य "निव १ धणि २ नारी ३ नर ४ सुर ५ अप्पप्पविहार ६ आयविआरत्त ७ सड्डुत्त ८ दरिदत्त ९ चइज्ज नवनिआणाइ ॥ १ ॥" इति निदाननवके न अन्तर्भावात् निदानता एव न भवति, यथा कथंचित् चतुर्थनिदानमध्ये अन्तर्भावेऽपि अध्यवसायविशेषेण तस्य निदानताया अभावात् तस्याः श्राविकात्व न व्याहन्यते, अपि च तादृशनिदानसद्भावे ब्रह्मदत्तचक्रवर्तिवत् न विरतिः उदय एति, द्रौपदी तु प्रव्रजिता अतो न तस्याः निदानता १ तथा श्रीभगवतीसूत्रे २० शतके नवमोद्देशके (७९३ पत्रे), यथा विद्याचारणजङ्घाचारणसाधुभिः शाश्वतानि नन्दीश्वरादिसत्कानि अशाश्वतानि च, भरतक्षेत्रसत्कानि चैत्यानि

तदुक्तौ स्फुटं तत्सूत्रदोषापत्तेः, अथ यदि अशाश्वतं तर्हि केनचित् कारित एव भविष्यति, न च मिथ्यात्विना तत् करणे अधिकारः, ततः कैश्चित् श्रावकैः एव तत् जिनगृहं कारित इति निश्चयः, न च वक्तव्यं द्रौपदी तु अत्र श्राविका न उक्ता, किं तु राजवरकन्या कथिता इति, यतो राजवरकन्या इति उक्तौ श्राविकात्वं न व्याहन्यते, यथा श्रीउत्तराध्ययने द्वाविंशतितमे अध्ययने (४९२ पत्रे) राजीमती रायवरकन्या प्रोक्ता, तर्हि न सम्यक्त्वधारिणी न श्राविका ? तत्पाठो यथा—

"सोऊण रायकन्ना, पव्वज्जं सा जिणस्स उ । नीहासा उ निराणंदा, सोगेण य समुच्छिआ ॥ २८ ॥ राईमई विचिंतेइ, धिगत्थु [धिरत्थु] मम जीविअं । जाऽहं तेण परिच्चत्ता, सेअं पव्वइउं मम ॥ २९ ॥ अह सा भमरसन्निभे, कुच्चफणगप्पसाहिए । सयमेव लुंचई केसे, धिइमती ववस्सिआ ॥ ३० ॥ वासुदेवो अ णं भणइ, लुत्तकेसिं जिइंदिअं । संसारसागरं घोरं, तर कन्ने ! लहुं लहुं ॥ ३१ ॥ अह सा रायवरकन्ना, सुट्ठिआ नियमव्वए । जाई कुलं च सीलं च, रक्खमाणी तयं वदे ॥ ४० ॥" इति, तथा पुनः श्रीज्ञाताया (१३५ पत्रे) मल्लिकुमारी अपि राजवरकन्या प्रोक्ताऽस्ति, तथाहि—तए णं कुंभए तेसिं संवच्छराणं जाव पडिक्खइ, पडिच्छित्ता मल्लीं विदेहवररायकन्नं सद्दावेइ, सद्दावित्ता तं दिव्वं कुंडलजुयलं मल्लीए विदेहवररायकन्नगाए पिणद्धेति, पिणद्धित्ता पडिविसज्जेइ" इति, अपि च रे मनोमते ! शिष्य ! चक्षुषी क्षणं निमील्य विचारय, यतो द्रौपदी श्राविका, तत एव नारदस्य असंयताऽविरताऽप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मणो न उत्थानादिभक्तिं कृतवती, तत्पाठो ज्ञातासूत्रे यथा (२१६ पत्रे) "तते णं सा दोवई कच्छुल्लनारयं अस्संजय अविरय अपडिहयपच्चक्खायपावकम्मं तिकट्टु नो आढाति नो परिआणाइ नो अब्भुट्ठेइ नो पज्जुवासइ" इति, न च वाच्यं द्रौपदी पञ्चभर्तृ-

आराहणा (सूत्र ६८३), से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चइ जंघाचारणे ? जंघाचारणे गोयमा ! तस्स ण अट्ठमं अट्ठमेण अणिक्खित्तेण तवोकम्मेण अप्पाणं भावेमाणस्स जंघाचारणलद्धीनाम लद्धी समुप्पज्जइ, से तेणट्ठेण जाव एव वुच्चइ जंघाचारणे, जंघाचारणस्स ण भंते ! कह सीहा गति कह सीहे गइविसए पन्नत्ते ? गोयमा ! अयन्न जंबुद्दीवे दीवे एव जहेव विज्जाचारणस्स, णवरं तिसत्तक्खुत्तो अणुपरिअट्टित्ताण हव्वमागच्छेज्जा, जंघाचारणस्स णं गोयमा ! तहा सीहा गई तहा सीहे गतिविसए पन्नत्ते सेसं तं चेव । जंघाचारणस्स णं भंते ! तिरिअ केवतिए गइविसए पन्नत्ते ? गोयमा ! से णं इतो एगेण उप्पाएण रुअगवरे दीवे समोसरण करेइ, करित्ता तहिं चेइआइं वदति, वदित्ता ततो पडिनिअत्तमाणे वितिएण उप्पाएण नदीसरवरदीवे समोसरण करेइ, करित्ता तहिं चेइआइं वंदइ वदित्ता इहमागच्छइ, आगच्छित्ता इह चेइआइं वदइ, जंघाचारणस्स ण गोयमा ! तिरिअ एवतिए गइविसए पन्नत्ते, । जंघाचारणस्स ण भंते ! उड्ढं केवतिए गइविसए पन्नत्ते ? गोयमा ! से ण इतो एगेण उप्पाएण पंडगवणे समोसरण करेइ, करित्ता तहिं चेइआइं वदइ, वदित्ता तओ पडिनिअत्तमाणे वितिएण उप्पाएण नदणवणे समोसरण करेइ, करित्ता तहिं चेइआइं वदइ, वदित्ता इहमागच्छइ, आगच्छित्ता इह चेइआइं वंदइ, जंघाचारणस्स ण गोयमा ! उड्ढं एवतिए गइविसेए पन्नत्ते, से ण तस्स ठाणस्स अणालोइअअपडिक्कते कालं करेइ नत्थि तस्स आराहणा, से णं तस्स ठाणस्स आलोइअपडिक्कते काल करेइ अत्थि तस्स आराहणा, सेव भंते ! सेव भंते ! जाव विहरति (सूत्र ६८४)" ॥ इति विंशतितमशतके नवमोद्देशकः सम्पूर्णः ॥

इह विद्याचारणेन तिर्यग्लोके मानुषोत्तरपर्वते नन्दीश्वरपर्वते च चैत्यानि वन्दितानि, ऊर्ध्वलोके च नन्दनवने पाण्डु-

"कइविहा णं भंते ! चारणा पन्नत्ता ? गोयमा ! चारणा दुविहा पन्नत्ता, तं जहा–विज्जाचारणा य जंघाचारणा य, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ विज्जाचारणा ? विज्जाचारणा गोयमा ! तस्स णं छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं विज्जाए उत्तरगुणलद्धिं खममाणस्स विज्जाचारणलद्धीनाम लद्धी समुप्पज्जइ, से तेणट्ठेणं जाव विज्जाचारणा०, विज्जाचारणस्स णं भंते ! कहं सीहा गई कहं सीहे गइविसए पन्नत्ते ? गोयमा ! अयन्न जंबुद्दीवे दीवे जाव किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं देवे णं महिड्ढीए जाव महेसक्खे जाव इणामेवत्तिकट्टु, केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं तिहिं अच्छरानिवाएहिं तिक्खुत्तो अणुपरिअट्टित्ता णं हव्वमागच्छेज्जा, विज्जाचारणस्स णं गोयमा ! तहा सीहा गई तहा सीहे गइविसए पन्नत्ते। विज्जाचारणस्स णं भंते ! तिरिअं केवतिए गतिविसए पन्नत्ते ? गोयमा ! से णं इओ एगेणं उप्पाएणं माणुसुत्तरे पव्वए समोसरणं करेइ, समोसरणं करित्ता तहिं चेइआइं वंदइ, वंदित्ता बितिएणं उप्पाएणं नंदीसरवरे दीवे समोसरणं करेइ, समोसरणं करित्ता तहिं चेइआइं वंदइ, वंदित्ता तओ पडिनिअत्तति २ इहमागच्छइ, आगच्छित्ता इह चेइआइं वंदइ। विज्जाचारणस्स णं गोयमा ! तिरिअं एवतिए गतिविसए पन्नत्ते। विज्जाचारणस्स णं भंते ! उड्ढं केवतिए गइविसए पन्नत्ते ? गोयमा ! से णं इओ एगेणं उप्पाएणं नंदणवणे समोसरणं करेइ, करित्ता तहिं चेइआइं वंदइ वंदित्ता, बितिएणं उप्पाएणं पंडगवणे समोसरणं करेइ, करित्ता तहिं चेइआइं वंदइ, वंदित्ता तओ पडिनियत्तति तओ २ इहमागच्छइ, आगच्छित्ता इह चेइआइं वंदइ, वंदित्ता विज्जाचारणस्स णं गोयमा ! उड्ढं एवतिए गइविसए पन्नत्ते। से णं तस्स ठाणस्स अणालोइअपडिक्कंते कालं करेइ, नत्थि तस्स आराहणा, से णं तस्स ठाणस्स आलोइअपडिक्कंते कालं करेइ अत्थि तस्स

स्स ण अट्ठमं अट्ठमेण अणि-
णं जाव एवं वुच्चइ जघाचारणे,
जम्बुद्दीवे दीवे एव जहेय विज्जा-
चारणस्स, णवरं ... गोयमा ! तहा सीहा गई तहा सीहे
गतिविसए पन्नत्ते सेसं त चेव । जंघाचारणस्स णं भंते ! तिरियं केवतिए गइविसए पन्नत्ते ? गोयमा ! से णं इतो
एगेणं उप्पाएणं रुअगवरे दीवे समोसरणं करेइ, करित्ता तहिं चेइआइं वंदति, वंदित्ता ततो पडिनिअत्तमाणे वितिएणं
उप्पाएणं नंदीसरवरदीवे समोसरणं करेइ, करित्ता तहिं चेइआइं वंदइ वंदित्ता इहमागच्छइ, आगच्छित्ता इह चेइआइं
वंदइ, जंघाचारणस्स णं गोयमा ! तिरिअं एवतिए गइविसए पन्नत्ते, । जंघाचारणस्स णं भंते ! उड्ढं केवतिए गइविसए
पन्नत्ते ? गोयमा ! से णं इतो एगेणं उप्पाएणं पंडगवणे समोसरणं करेइ, करित्ता तहिं चेइआइं वंदइ, वंदित्ता तओ
पडिनिअत्तमाणे वितिएणं उप्पाएणं नंदणवणे समोसरणं करेइ, करित्ता तहिं चेइआइं वंदइ, वंदित्ता इहमागच्छइ, आग-
च्छित्ता इह चेइआइं वंदइ, जंघाचारणस्स णं गोयमा ! उड्ढं एवतिए गइविसेए पन्नत्ते, से णं तस्स ठाणस्स अणालोइअ-
अपडिक्कंते कालं करेइ नत्थि तस्स आराहणा, से णं तस्स ठाणस्स आलोइअपडिक्कंते कालं करेइ अत्थि तस्स आराहणा, सेवं
! सेवं भंते ! जाव विहरति (सूत्र ६८४)" ॥ इति विंशतितमशतके नवमोद्देशकः सम्पूर्णः ॥

विद्याचारणेन तिर्यग्लोके मानुषोत्तरपर्वते नन्दीश्वरपर्वते च चैत्यानि वन्दितानि, ऊर्ध्वलोके च नन्दनवने पाण्डु-

"कइविहा णं भंते ! चारणा पन्नत्ता ? गोयमा ! चारणा दुविहा पन्नत्ता, तं जहा–विज्जाचारणा य जंघाचारणा य, से केणट्ठे णं भंते ! एवं वुच्चइ विज्जाचारणा ? विज्जाचारणा गोयमा ! तस्स णं छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं विज्जाए उत्तरगुणलद्धिं खममाणस्स विज्जाचारणलद्धीनामं लद्धी समुप्पज्जइ, से तेणट्ठेणं जाव विज्जाचारणा०, विज्जाचारणस्स णं भंते ! कहं सीहा गई कहं सीहे गइविसए पन्नत्ते ? गोयमा ! अयन्नं जंबुद्दीवे दीवे जाव किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं देवे णं महिड्ढीए जाव महेसक्खे जाव इणामेवत्तिकट्टु, केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं तिहिं अच्छरानिवाएहिं तिक्खुत्तो अणुपरियट्टित्ता णं हव्वमागच्छेज्जा, विज्जाचारणस्स णं गोयमा ! तहा सीहा गई तहा सीहे गइविसए पन्नत्ते। विज्जाचारणस्स णं भंते ! तिरियं केवतिए गतिविसए पन्नत्ते ? गोयमा ! से णं इओ एगेणं उप्पाएणं माणुसुत्तरे पव्वए समोसरणं करेइ, समोसरणं करित्ता तहिं चेइआइं वंदइ, वंदित्ता बितिएणं उप्पाएणं नंदीसरवरे दीवे समोसरणं करेइ, समोसरणं करित्ता तहिं चेइआइं वंदइ, वंदित्ता तओ पडिनियत्तति २ इहमागच्छइ, आगच्छित्ता इह चेइआइं वंदइ। विज्जाचारणस्स णं गोयमा ! तिरियं एवतिए गतिविसए पन्नत्ते। विज्जाचारणस्स णं भंते ! उड्ढं केवतिए गइविसए पन्नत्ते ? गोयमा ! से णं इओ एगेणं उप्पाएणं नंदणवणे समोसरणं करेइ, करित्ता तहिं चेइआइं वंदइ वंदित्ता, बितिएणं उप्पाएणं पंडगवणे समोसरणं करेइ, करित्ता तहिं चेइआइं वंदइ, वंदित्ता तओ पडिनियत्तति तओ २ इहमागच्छइ, आगच्छित्ता इह चेइआइं वंदइ, वंदित्ता विज्जाचारणस्स णं गोयमा ! उड्ढं एवतिए गइविसए पन्नत्ते। से णं तस्स ठाणस्स अणालोइअपडिक्कंते कालं करेइ, नत्थि तस्स आराहणा, से णं तस्स ठाणस्स आलोइअपडिक्कंते कालं करेइ अत्थि तस्स

आराहणा (सूत्र ६८३), से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चइ जंघाचारणे ? जंघाचारणे गोयमा ! तस्स ण अट्ठमं अट्ठमेण अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेण अप्पाणं भावेमाणस्स जंघाचारणलद्धीनाम लद्धी समुप्पज्जइ, से तेणट्ठेण जाव एवं वुच्चइ जंघाचारणे, जंघाचारणस्स ण भंते ! कह सीहा गति कह सीहे गइविसए पन्नत्ते ? गोयमा ! अयन्न जंबुद्दीवे दीवे एव जहेव विज्जाचारणस्स, णवर तिसत्तक्खुत्तो अणुपरिअट्टित्ताण हव्वमागच्छेज्जा, जंघाचारणस्स ण गोयमा ! तहा सीहा गई तहा सीहे गतिविसए पन्नत्ते सेस त चेव । जंघाचारणस्स णं भंते ! तिरिअ केवतिए गइविसए पन्नत्ते ? गोयमा ! से ण इतो एगेण उप्पाएणं रुयगवरे दीवे समोसरण करेइ, करित्ता तहिं चेइआइ वदति, वदित्ता ततो पडिनिअत्तमाणे बितिएण उप्पाएण नंदीसरवरदीवे समोसरण करेइ, करित्ता तहिं चेइआइं वंदइ वदित्ता इहमागच्छइ, आगच्छित्ता इह चेइआइ वदइ, जंघाचारणस्स ण गोयमा ! तिरिअ एवतिए गइविसए पन्नत्ते, । जंघाचारणस्स ण भंते ! उड्ढं केवतिए गइविसए पन्नत्ते ? गोयमा ! से णं इतो एगेण उप्पाएण पंडगवणे समोसरण करेइ, करित्ता तहिं चेइआइ वदइ, वदित्ता तओ पडिनिअत्तमाणे बितिएण उप्पाएण नंदणवणे समोसरण करेइ, करित्ता तहिं चेइआइ वंदइ, वदित्ता इहमागच्छइ, आगच्छित्ता इह चेइआइ वंदइ, जंघाचारणस्स ण गोयमा ! उड्ढं एवतिए गइविसए पन्नत्ते, से ण तस्स ठाणस्स अणालोइअअपडिक्कंते कालं करेइ नत्थि तस्स आराहणा, से ण तस्स ठाणस्स आलोइअपडिक्कंते कालं करेइ अत्थि तस्स आराहणा, सेव भंते ! सेवं भंते ! जाव विहरति (सूत्र ६८४)" ॥ इति विंशतितमशतके नवमोद्देशकः सम्पूर्णः ॥

इह विद्याचारणेन तिर्यग्लोके मानुषोत्तरपर्वते नन्दीश्वरपर्वते च चैत्यानि वन्दितानि, ऊर्ध्वलोके च नन्दनवने पाण्डु-

कथने च चैत्यानि वन्दितानि, तानि च स्थानकचतुष्केऽपि शाश्वतचैत्यानि ज्ञेयानि, गत आगतो च नन्दन नन्दन- चैत्यानि वन्दितानि, एवं जङ्घाचारणेन अपि रुचके नन्दीश्वरे च तिर्यग्लोके पाण्डुकवने नन्दने च ऊर्ध्वलोके स्थानचतुष्के शाश्वतचैत्यवन्दना अकारि, अत्राऽऽगमने वारद्वय च अशाश्वतार्हत्सु शाश्वतार्हत्सु वन्दना विधेः. अत्राऽऽह मनोमतिशिष्यः ननु–विद्याचारणा जङ्घाचारणाश्च चैत्यवन्दनार्थंगतागता परं गमनाऽऽलोचितार्थ सिद्धान्त प्रोक्ता", अरे अत्रार्थे गणधराभिप्राय शृणु, एभिः लब्धि प्रयुक्ता, तेन लब्ध्युपजीवित्वेन प्रमादस्थानं सेवितं, तत्तु प्रमादस्थान गुरुसमीपं आगत्य अवश्यं आलोचयितव्य, अन्यथा विराधकत्व आपद्येत, पर चैत्यवन्दनायाः आलोचना तत्र गमन एव न घटां आटीकते, गमनागमनालोचना तु सकृति अकृति एव, यदि हस्तशतादुपरि गम्यते तदा भवि आगतेन गमनागमन गुरुसमक्ष आलोचयितव्यं एव, किं वाच्य नन्दीश्वरद्वीपरुचकद्वीपगमनागमनयो ?, यदुक्तं श्रीआवश्यकनिर्युक्तौ—

"हत्थसयादागंतुं, गंतु च मुहुत्तग जहिं चिट्ठे। पंथे वा वच्चंते, नइसंतरणे पडिक्कमण ॥ १ ॥" पुन श्रीदशवै-कालिकसूत्रे पञ्चमाध्ययनेऽपि (१७८ पत्रे) आलोचनाविधिः, तथाहि–

"विणएण पविसित्ता, सगासे गुरुणो मुणी। इरियावहियमायाय, आगओ अ पडिक्कमे ॥ ८८ ॥ आभोइत्ताण नीसेसं, अईआरं च जहक्कम। गमणागमणे चेव, भत्तपाणे व संजए ॥ ८९ ॥ उज्जुप्पन्नो अणुव्विग्गो, अव्वक्खित्तेण चेतसा। आलोए गुरुसगासे, जं जहा गहिअं भवे ॥ ९० ॥ न सम्ममालोइअं हुज्जा, पुव्विं पच्छा व जं कडं। पुणो पडिक्कमे

साहुदेहस्स
तस्स, वोसट्ठो चिंतए इमं ॥ ११ ॥ अहो जिणेहिं असावज्जा, वित्ती साहूण देसिआ । मुक्खसाहणहेउस्स, साहुदेहस्स
धारणा ॥ १२ ॥ नमुक्कारेण पारित्ता, करित्ता जिणसंथवं । सज्झायं पट्ठवित्ता णं, वीसमेज्ज खणं मुणी ॥ १३ ॥ पुन
श्रीगौतमस्वामिना श्रीउपासकदशाङ्गे (२१ पत्रे) गमनागमनं आलोचितं अस्ति, तथाहि—

"तते णं से भगवं गोयमे आणंदेणं समणोवासएणं एवंवुत्ते समाणे, संकिए कंखिए वितिगिच्छिए भेदसमा-
वन्ने आणंदस्स समणोवासगस्स अंतियाओ पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमित्ता जेणेव दूइपलासे चेइए, जेणेव समणे
भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते गमणागमणे पडिक्क-
मइ, पडिक्कमित्ता एसणमणेसणं आलोएइ, आलोइत्ता भत्तपाणं पडिदंसेइ, पडिदंसित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ
नमंसइ" इत्यादि, एवं स्थाने स्थाने साधुभिः आहारार्थं गत्वा आगत्य गुरुपार्श्वे गमनागमनं आलोचितं अस्ति ।
पुनरपि आह मनोमतिः ननु—यदि विद्याचारणा जङ्घाचारणाश्च अन्तराले कदाचित् कालं कुर्युः तदा कुत्र यान्ति ?
उच्यते—गतिः तेषां सूत्रे न लिखिताऽस्ति परं त्वमपि विद, आहारार्थं विद्यमानतीर्थङ्करवन्दनार्थं वा गत्वा कदा
चित् साधुः म्रियते तदा कुत्र गच्छेत् ? अत्र इदं रहस्यं जानीहि—अत्र भावस्य एव प्रधानत्वं ज्ञेयं, यथा संविग्नगी-
तार्थसमीपे साधुः आलोचनाग्रहणार्थं गच्छन् अन्तराले एव कालं कुर्वन् शुद्धभावत्वेन सुगतिमेव गच्छेत् तथा विद्या-
चारणा जङ्घाचारणा अपि सुगतिभाज एव । अपि च मनुष्यक्षेत्राद् बहिः न केऽपि म्रियन्ते मनुष्यक्षेत्रान्तरं अपि "दु-
समुद्दे तिन्नि सेस अट्ठे" इति उक्तत्वात्, लवणसमुद्रादौ सिद्धान्ते उक्ता, अथ च पञ्चचत्वारिंशल्लक्षयोजनमिते क्षेत्रे

"यत्र एकः सिद्धः तत्र अनन्ताः सिद्धाः" इत्येवंप्रकारेण सर्वमपि सिद्धक्षेत्रं सिद्धजीवव्याप्तं तदा एव जातं यदा तदधः पञ्चचत्वारिंशल्लक्षयोजनप्रमिते मनुष्यक्षेत्रेऽपि समश्रेण्या सर्वत्र अनन्ताः सिद्धाः, ततो मनुष्यक्षेत्रान्तःसमुद्रेऽपि अनन्ताः सिद्धाः सन्ति ते के ? तान् विचारय, विचारय । तथा श्रीऔपपातिकसूत्रे (९७ पत्रे) अम्बडश्रावकाधिकारो यथा—

'अम्बडस्स ण नो कप्पइ अण्णउत्थिए वा अण्णउत्थियदेवयाणि वा अण्णउत्थियपरिग्गहिआणि वा अरिहंतचेइआणि वंदित्तए वा नमंसित्तए वा जाव पज्जुवासित्तए वा, नन्नत्थ अरिहंते वा अरिहंतचेइआणि वा" इत्यादि, अत्र अर्हच्चैत्यादिजिनप्रतिमा इति ॥ ३ ॥ एवं श्रीउपासकदशासूत्रे (१४ पत्रे) आनन्दश्रावकाधिकारेऽपि, तथाहि—"नो खलु मे भंते ! कप्पइ अज्जप्पभिइं अन्नउत्थिए वा अन्नउत्थिअदेवयाणि वा अन्नउत्थिअपरिग्गहिआणि अरिहंतचेइआणि वा वंदित्तए वा नमंसित्तए वा" अत्राऽपि चैत्यानि अर्हत्प्रतिमालक्षणानि यथा भौतपरिगृहीतानि वीरभद्र २ महाकालादीनि ॥ ४ ॥ तथा श्रीप्रश्नव्याकरणसूत्रे तृतीयसंवरद्वारे (१२२ पत्रे) चैत्यवैयावृत्तिकरणे कर्मनिर्जरा प्रोक्ता, तथाहि—

"अह केरिसए पुणाइ आराहए वयमिणं ? जे से उवहि–भत्त–पाण संगहण–दाणकुसले अच्चंतबाल–दुब्बल–गिलाण–वुड्ढखमके पवत्ति–आयरिय–उवज्झाए सेहे साहम्मिए तवस्सीकुल–गण–संघ–चेइअट्ठे अ निज्जरट्ठी वेयावच्चं अणिस्सिअं दसविहं बहुविहं करेइ" व्याख्याऽपि यथा (१२९ पत्रे) 'जे से' इत्यादि योऽसौ उपधेः भक्तपानानां च दानं च संग्रहणं च तयोः कुशलो=विधिज्ञो यः स तथा, बालश्च दुर्बलश्च इत्यादि समाहारद्वन्द्वः, ततो अत्यन्त यद्बाल–दुर्बल–

ग्लान-वृद्ध-क्षपक तत् तथा, तत्र विषये वैयावृत्य करोति इति योगः, तथा प्रवृत्त्याचार्योपाध्याये इह द्वन्द्वैकत्वात् प्रवृत्त्यादिषु, तत्र प्रवृत्तिलक्षण इद—

"तवसजमजोगेसुं, जो जोगो तत्थ त पवत्तेइ । असहु च नियत्तेइ, गणतत्तिल्लो पवित्ती उ ॥ १ ॥ इतरौ प्रतीतौ तथा 'सेहे'त्ति शैक्षे-अभिनवप्रव्रजिते साधर्मिके=समानधर्मके लिङ्गप्रवचनाभ्या तपस्विनि-चतुर्थभक्तादिकारिणि, तथा कुल=गच्छसमुदायरूप चन्द्रादिक, गणः=कुलसमुदायः कोटिकादिकः, सङ्घः=तत्समुदायरूपः, चैत्यानि जिनप्रतिमा, एतासा योऽर्थः-प्रयोजन स तथा, तत्र च निर्जरार्थी-कर्मक्षयकामः वैयावृत्य-व्यावृत्तकर्मरूप उपष्टम्भन इत्यर्थः, अनिश्रित-कीर्त्यादिनिरपेक्षं दशविध-दशप्रकार आह च-

"वेयावच्च वावड-भावो इह धम्मसाहणनिमित्त । अन्नाइयाण विहिणा, संपायणमेस भावत्थो ॥ १ ॥
आयरिय उवज्झाए, थेरे तवस्सी गिलाण सेहाणं । साहम्मिअ कुलं गणे सं-घ संगय तमिह कायव्व ॥ २ ॥"

इति, बहुविध भक्तपानादिदानभेदेन अनेकप्रकार करोति इति ॥ अत्राऽऽह मनोमतिशिष्य ॥

ननु-प्रश्नव्याकरणे आश्रवद्वारे (१२ पत्रे) निगदित अस्ति "ये विहार-प्रासाद चैत्य-देवकुलादीना अर्थे पृथिवीजीवान् हिंसन्ति ते मन्दबुद्धिकाः" ततोऽह कथ प्रासाद-चैत्यदेवकुलानि मानयामि ? तत्पाठोऽपि (८ पत्रे) यथा-'किं ते ? करिसाणपोक्खरणी-वावि-विप्पिणी-कूव-सर-तलाग-चिति-वेति-खाति अ-आराम-विहार-थूभ-पागार-दार-गोपुर-अट्टालग-चरिआ-सेतु-सकम-पासाय-विकप्प-भवण-घर-सरण-लेण-आवण-चेइअ-देवकुल-चित्तसभा-

पया—आयतण—आवसह—भूमिघर—मंडवाण य कए भायण—भंडोवगरणस्स विविहस्स य अट्ठाए पुढविं हिंसति मंद-बुद्धिया" अत्र उच्यते, रे पूर्वापराविचारक ? अत्र विहारो—बौद्धाद्याश्रयः, प्रासादो—नरेन्द्राश्रयः, जिनप्रासादस्य तु प्रायो जिनगृह सिद्धायतनं च इति संज्ञात्वात्, चैत्यानि व्यन्तरादिदेवप्रतिमाः, देवकुलानि च सशिखरलौकिकहरिहरादिदेवप्रासादाः, अयं अर्थो ज्ञेयः, अन्यथा "चेइयट्ठे निज्जरट्ठी" इति संवरद्वारे चैत्यवैयावृत्तिकारको निर्जराभागी कथं उक्तः ?, नहि गणधरदेववचन पूर्वापरविसंवादि स्यात्, अपि च राजप्रश्नीयोपाङ्गादौ (१७ पत्रे) प्रोक्त—"एय मे पेच्चा हियाए सुहाए खमाए निस्सेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सतित्तिकट्टु एवं संपेहेइ" इति, मोक्षपर्यन्तं पूजाफलं विपटेत, न च वाच्य चैत्यशब्दस्य अन्यार्थं कोऽपि भविता (भाव्यते) इति, चैत्यशब्दस्य कुत्राऽपि वृक्षाद्यर्थं वाचकत्वेऽपि तद्वैयावृत्तिकरणे निर्जराभागित्वासंभवात् ॥ ४ ॥ एवं श्रीऔपपातिकोपाङ्गे (२ पत्रे) चम्पानगरीवर्णनेऽपि अर्हच्चैत्यानि प्रतिपादितानि सन्ति, पाठान्तरे तथाहि—

"अरिहंतचेइअजणवय-विसण्णिविट्ठबहुलेत्ति" व्याख्या यथा—अर्हच्चैत्यानां १ जनानां २ व्रतिनां च ३ विविधानि यानि संनिविष्टानि—पाटकाः तैः बहुलेति विग्रहः ॥ ५ ॥ तथा श्रीभगवत्यां चमरोद्देशके चमरेन्द्रेणाऽपि सौधर्मं गच्छता अर्हच्चैत्यनिश्रा गृहीताऽस्ति, (१७० पत्रे) तथाहि—

"किं निस्साए णं भंते ! असुरकुमारा देवा उड्ढं उप्पयंति जाव सोहम्मो कप्पो ? गोयमा ! से जहानामए—इह सबरा इ वा बब्बरा इ वा टंकणा इ वा भुत्तुया इ वा पल्हया इ वा पुलिंदा इ वा एगं महं गड्डं वा खड्डं वा दुग्गं वा-

दरिं वा विसम वा पव्वय वा नीसाए सुमहळमवि आसबल वा हत्थिबल वा जोहबल वा धणुबल वा आगलेति एवा
मेव असुरकुमारा वि देवा णण्णत्थ अरिहते वा अरिहतचेइआणि वा अणगारे वा भाविअप्पणो निस्साए उड्ढ उप्पयंति
जाव सोहम्मो कप्पो । × × × (१७५ पत्रे) तते ण तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो इमेयारूवे अज्झत्थिए ४ जाव समु-
प्पज्जित्था–णो खलु पहू चमरे असुरिंदे असुरराया नो खलु समत्थे चमरे असुरिंदे असुरराया, णो खलु विसए चम-
रस्स असुरिंदस्स असुररण्णो अप्पणो निस्साए उड्ढ उप्पइत्ता जाव सोहम्मो कप्पो, णण्णत्थ अरिहते वा अरिहतचेइ
आणि वा अणगारे वा भाविअप्पणो णीसाए उड्ढ उप्पयति जाव सोहम्मो कप्पो" इत्यादि ॥ ६ ॥ पुन श्रीराजप्रश्नीयो-
पाङ्गे (१०४ पत्रे) सूर्याभदेवेन यथा जिनप्रतिमापूजा विस्तरेण विहिताऽस्ति, तथा श्रूयता, तथाहि–"तए ण से सूरि-
यामे देवे पोत्थयरयणं गिण्हति, गिण्हित्ता पोत्थयरयण मुयइ, मुयइत्ता पोत्थयरयण विहाडेइ, विहाडित्ता पोत्थयरयण वाएइ,
पोत्थयरयण वाएत्ता धम्मिअ ववसाय गिण्हइ, गिण्हित्ता पोत्थयरयण पडिनिक्खिवति, पडिनिक्खिवित्ता सीहासणाओ
अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता ववसायसभाओ पुरच्छिमिल्लेण दारेण पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव नदापुक्खरणी तेणेव
उवागच्छइ, उवागच्छित्ता णंदापुक्खरणिं पुरच्छिमिल्लेण तोरणेण पुरच्छिमिल्लेण तिसोवाणपडिरूवएण पच्चोरुहइ, पच्चो-
रुहित्ता हत्थपाय पक्खालेइ, पक्खालित्ता आयंते चोक्खे परमसुइभूए एग मह सेअ रययामय विमल सलिलपुण्ण मत्त-
गयमुहागितिकुभसमाण भिंगार पगिण्हइ, पगिण्हित्ता जाइ तत्थ उप्पलाइ जाव सतसहस्सपत्ताइ ताइ गिण्हइ, गिण्हित्ता
णदातो पुक्खरणीतो पच्चोरुहति, पच्चोरुहित्ता जेणेव सिद्धायतणे तेणेव पहारेत्थ गमणाए (सूत्र ४२) (१०५ पत्रे)

तते ण त सूरिआभ देव बहवे आभिओगिआ देवा य देवीओ अ अप्पेगइआ फलसहत्थगया जाव अप्पेगइआ धूवकडुच्छुय हत्थगया हट्ठतुट्ठ जाव सूरियाभ देव पिट्ठओ पिट्ठओ समणुगच्छति तए ण से सूरिआभे देवे चउहिं सामाणिअसाहस्सीहिं जाव अण्णेहिं य बहूहिं य सूरियाभ जाव देवेहिं य देवीहिं य सद्धिं सपरिवुडे, सव्वड्ढीए सव्वबलेहिं जाव णातियरवेण जेणेव सिद्धायतणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सिद्धायतण पुरच्छिमिल्लेण दारेण अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव देवच्छदए जेणेव जिणपडिमाओ तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जिणपडिमाण आलोए जिणपडिमाण पणाम करेइ, पणाम करित्ता लोमहत्थग गिण्हइ, गिण्हित्ता जिणपडिमाण लोमहत्थेण पमज्जइ, पमज्जित्ता जिणपडिमाओ सुरभिणागधोदएण ण्हाणेइ, ण्हाणित्ता सरसेण गोसीसचदणेण गायाइ अणुलिंपइ, अणुलिंपइत्ता सुरभिगधकासाइएण गायाइ लूहेति-लूहित्ता जिणपडिमाण अहयाइ देवदूसजूयलाइ नियंसेइ, नियसित्ता पुप्फारुहण मल्लारुहण गधारुहण चुण्णारुहण वन्नारुहण वत्थारुहण आभरणारुहणं करेइ, करित्ता आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारिअ मल्लदामकलाव करेइ, करित्ता कयग्गहगहियकरयलपब्भट्ठविप्पमुक्केण दसद्धवन्नेण कुसुमेण मुक्कपुप्फपुजोवयारकलिअ करेइ, करित्ता जिणपडिमाण पुरओ अच्छेहिं सण्हेहिं रययामएहिं अच्छरसातदुलेहिं अट्ठट्ठमगले आलिहइ, त जहा—सोत्थिअ जाव दप्पण, तयाणतर च ण चदप्पभरयणवइरवेरुलिअविमलदड कचणमणिरयणभत्तिचित्त कालागुरुपवरकुदुरुक्कतुरुक्कडज्झतमघमघतगधुद्धुआभिराम च गधवट्टिं धुववट्टिं विणिम्मुयत वेरुलिअमय कडुच्छुय पग्गहिअ पयत्तेणं धूव दाऊण जिणवराण अट्ठसयविसुद्धगध(गन्थ)जुत्तेहिं अत्थजुत्तेहिं अपुणरुत्तेहिं महाविचेतेहिं सथुणइ, सथुणित्ता पच्छा सत्तट्ठपयाइ पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता वाम जाणु अचेइ,

अचित्ता दाहिण जाणु धरणितलंसि निहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणितलंसि नियाडेइ, निवाडित्ता एगसाडिअ उत्तरासंगं करेइ, करित्ता ईसिं पच्चुण्णमइ, पच्चुण्णमित्ता करयलपरिग्गहिअं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी–"नमुत्थुणं अरहंताणं जाव ठाणं संपत्ताणं" इति ॥ अत्राऽऽह मनोमतिशिष्य —

ननु–सूर्याभदेवेन प्रतिमावत् स्तम्भादीनि अपि अनेकवस्तूनि पूजितानि सन्ति, कथं तर्हि सम्यक्त्वधारी ? उच्यते,—अहो ! विमृश स्तम्भादीनि पूजितानि, परं जिनप्रतिमां विना कस्याऽग्रे नमुत्थुणं कथितं स्यात् ? तदा दर्शय, अथ च स्तम्भादीनां पूजा यदि व्यधायि तदा सम्यक्त्वस्य किं ? यदि श्रीआदिनाथपुत्रेण श्रीभरतचक्रवर्तिना चक्ररत्नं पूजितं, किं तर्हि तस्य सम्यक्त्वं गतं ? चक्ररत्नपूजाक्षराणि श्रीजम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्या(१८४ पत्रे) यथा–

"तते णं से भरहे राया तस्स आउहघरिअस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठ जाव सोमणस्सिए विकसितवरकमलनयणवयणे पयलिअवरकडगतुडिअकेऊरमउडकुंडलहारविरायंतरइअवच्छे पालंबपलंबमाणघोलंतभूसणधरे ससंभमं तुरिअं चवलं नरिंदे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता पाउयाओ ओमुअति, ओमुइत्ता एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ, करित्ता अंजलिमउलिअग्गहत्थे चक्करयणाभिमुहे सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता वामं जाणुं अंचेइ, अंचित्ता दाहिणं जाणुं धरणितलंसि निहट्टु करयल जाव अंजलिं कट्टु चक्करयणस्स पणामं करेइ" इति, पुनः श्रीअभयकुमारेण पूर्वसंगतिकं देवं मनसि कृत्वा निजलघुमातृदोहदपूरणनिमित्तं अष्टमभक्तं अकारि, तर्हि किं सम्यक्त्वधारी न ? तदक्षराणि अपि श्रीज्ञाताधर्मकथासत्कानि (३० पत्रे) "तए णं

तते णं तं सूरिआभं देवं बहवे आभिओगिआ देवा य देवीओ य अप्पेगइआ कलसहत्थगया जाव अप्पेगइआ धूवकडुच्छुय हत्थगया हट्ठतुट्ठ जाव सूरियाभं देवं पिट्ठओ पिट्ठओ समणुगच्छति तए णं से सूरिआभे देवे चउहिं सामाणिअसाहस्सीहिं जाव अण्णेहिं य बहूहिं य सूरियाभ जाव देवेहिं य देवीहिं य सद्धिं संपरिवुडे, सव्वड्ढीए सव्वबलेहिं जाव णातियरवेणं जेणेव सिद्धायतणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सिद्धायतणं पुरच्छिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव देवच्छंदए जेणेव जिणपडिमाओ तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जिणपडिमाणं आलोए जिणपडिमाणं पणामं करेइ, पणामं करित्ता लोमहत्थगं गिण्हइ, गिण्हित्ता जिणपडिमाणं लोमहत्थेणं पमज्जइ, पमज्जित्ता जिणपडिमाओ सुरभिणा गंधोदएणं ण्हाणेइ, ण्हाणित्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं गायाइं अणुलिंपइ, अणुलिंपइत्ता सुरभिगंधकासाइएणं गायाइं लूहेति-लूहित्ता जिणपडिमाणं अहयाइं देवदूसजुयलाइं नियंसेइ, नियंसित्ता पुप्फारुहणं मल्लारुहणं गंधारुहणं चुण्णारुहणं वन्नारुहणं वत्थारुहणं आभरणारुहणं करेइ, करित्ता आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारिअ मल्लदामकलावं करेइ, करित्ता कयग्गहगहियकरयलपब्भट्ठविप्पमुक्केणं दसद्धवन्नेणं कुसुमेणं मुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिअं करेइ, करित्ता जिणपडिमाणं पुरओ अच्छेहिं सण्हेहिं रययामएहिं अच्छरसातंदुलेहिं अट्ठट्ठमंगले आलिहइ, तं जहा–सोत्थिअ जाव दप्पणं, तयाणंतरं च णं चंदप्पभरयणवइरवेरुलिअविमलदंडं कंचणमणिरयणभत्तिचित्तं कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवमघमघंतगंधुद्धुआभिरामं च गंधवट्टिं धूववट्टिं विणिम्मुयंतं वेरुलिअमयं कडुच्छुयं पग्गहिअ पयत्तेणं धूवं दाऊण जिणवराणं अट्ठसयविसुद्धगंथ(गन्त्थ)जुत्तेहिं अत्थजुत्तेहिं अपुणरुत्तेहिं महावित्तेहिं संथुणइ, संथुणित्ता पच्छा सत्तट्ठपयाइं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता वामं जाणुं अंचेइ,

जहारिह एव वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! सव्वरयणामए महइमहालए तओ चेइअथूमे करेह, एग भगवओ तित्थगरस्स चिइगाए, एग गणहरचिइगाए, एग अवसेसाण अणगाराण चिइगाए, तते णं ते बहवे जाव करिति, तते णं ते बहवे भवणवइ जाव वेमाणिआ देवा तित्थगरस्स परिनिव्वाणमहिम करेइ, करित्ता जेणेव नदीसरवरे दीवे तेणेव उवागच्छंति तते णं से सक्के देविंदे देवराया पुरच्छिमिल्ले अजणगपव्वए अट्ठाहिअ महामहिम करेंति, तए णं सक्कस्स देविंदस्स चत्तारि लोगपाला चउसु दहिमुहगपव्वएसु अट्ठाहिय महामहिम करेंति, ईसाणे देविंदे देवराया उत्तरिल्ले अजणगे अट्ठाहिअ, तस्स लोगपाला चउसु दहिमुहपव्वगेसु अट्ठाहिअ, चमरो अ दाहिणिल्ले अजणगे तस्स लोगपाला दहिमुहगपव्वएसु, बली पच्चत्थिमिल्ले अजणगे, तस्स लोगपाला दहिमुहगपव्वएसु, तते ण ते बहवे भवणवइवाणमतर जाव अट्ठाहिआओ महामहिमाओ करेंति, करित्ता तेणेव साइ साइ विमाणाइं जेणेव साइ साइ भवणाइ जेणेव साओ साओ सभाओ सुहम्माओ, जेणेव सगा सगा माणवगा चेइअखभा तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु जिणसकहाओ पक्खिवंति, पक्खिवित्ता अग्गेहिं वरेहिं गधेहिं अ मल्लेहिं अ अच्चेंति, अच्चित्ता विउलाइ भोगभोगाइ भुजमाणा विहरति" इति ॥ ८ ॥ एव जीवाभिगमसूत्रे (२४९ पत्रे) विजयदेवेनाऽपि यथा जिनप्रतिमापूजा व्यधायि, तथा श्रूयतां—

"तते ण तस्स विजयस्स देवस्स आभियोगिया देवा पोत्थयरयण उवणेंति, तए ण से विजये देवे पोत्थयरयण गिण्हइ, गिण्हित्ता पोत्थयरयण अके मुअइ पोत्थयरयण मुइत्ता पोत्थयरयण विहाडेइ, पोत्थयरयण विहाडेत्ता पुण पोत्थ-

तस्स अभयकुमारस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—नो खलु सक्का माणुस्सएण उवाएण मम चुल्लमाउ-याए धारिणीए देवीए अकालडोहलमणोरहसंपत्तिं करेत्तए, णण्णत्थ दिव्वेण उवाएण, अत्थि ण मज्झ सोहम्मकप्पवासी पुव्वसंगतिए देवे महिड्ढिए जाव महासोक्खे, त सेअ खलु मम पोसहसालाए पोसहियस्स बंभयारिस्स उम्मुक्कमणिसुवण्णस्स ववगयमालावण्णगविलेवणस्स निक्खित्तसत्थमुसलस्स एगस्स अबीअस्स दब्भसथारोवगयस्स अट्ठमभत्त परिगिण्हित्ता पुव्वसगतिकं देव मणसि करेमाणस्स विहरित्तए, तते ण पुव्वसंगतिए देवे मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयारूवे अकालमेहेसु डोहलं विणेहित्ति, एवं संपेहेइ, सपेहित्ता जेणेव पोसहसाला तेणामेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता पोसहसाल पमज्जति, पमज्जित्ता उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता दब्भसथारग पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता दब्भसथारग दुरुहइ, दुरुहित्ता अट्ठमभत्त परिगिण्हइ, परिगिण्हित्ता पोसहसालाए पोसहिए बंभयारी जाव पुव्वसगतिय देव मणसि करेमाणे करेमाणे चिट्ठति" इत्यादि ॥ ७ ॥ तथा पुनः यदि शक्रादयो देवेन्द्राः जिनदंष्ट्रा अपि पूजयन्ति, तदा जिनप्रतिमाया किं वाच्यम् ? तत्राऽर्थे जम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्या (१५८ पत्रे) यदुक्त तत् श्रोतव्य, तथाहि—

तते ण से सक्के देविंदे देवराया भगवओ तित्थगरस्स उवरिल्ल दाहिण सकह गेण्हइ, ईसाणे देविंदे देवराया उवरिल्लं वाम सकह गेण्हइ, चमरे असुरिंदे असुरराया हिट्ठिल्ल दाहिण सकह गेण्हइ, बली वइरोअणिंदे वइरोअणराया हिट्ठिल्ल वाम सकह गेण्हइ, अवसेसा भवणवइ जाव वेमाणिया देवा जहारिहं अवसेसाइ अगमगाइ, केई जिणभत्तीए, केई जितमेयतिकट्टु केई धम्मोत्ति कट्टु गेण्हति, तते णं से सक्के देविंदे देवराया बहवे भवणवइ जाव वेमाणिए देवे

सुरभिणा गंधोदएण ण्हाणेइ, ण्हाणित्ता दिव्वाए सुरभिगंधकासाइए गाताइं लूहेइ, लूहित्ता सरसेणं गोसीसचंदणेण गाताणि अणुलिंपइ, गाताणि अणुलिंपेत्ता जिणपडिमाणं अहयाइं सेआइं दिव्वाइं देवदूसजुअलाइं नियंसेइ, निअसित्ता अग्गेहिं वरेहिं अ गंधेहिं अ मल्लेहिं अ अच्चेइ, अच्चित्ता पुप्फारुहणं मल्लारुहणं गंधारुहणं वण्णारुहणं चुण्णारुहणं आभरणारुहणं करेति, करित्ता आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारिअमल्लदामकलावं करेइ, करित्ता अच्छेहिं सण्हेहिं [सेएहिं] रययामएहिं अच्छरसातंदुलेहिं जिणपडिमाणं पुरओ अट्ठट्ठमंगलए आलिहति, तं जहा—सोत्थिअ सिरिवच्छ जाव दप्पण अट्ठट्ठमंगलगे आलिहति, आलिहित्ता कयग्गाहग्गहिअकरयलपब्भट्ठविप्पमुक्केण दसद्धवण्णेण कुसुमेण मुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिअं करेइ, करित्ता चंदप्पभवइरवेरुलिअविमलदंडं कंचणमणिरयणभत्तिचित्तं कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवगंधुत्तमाणुविद्धं धूमवट्टिं विणिम्मुअंतं वेरुलिआमयं कडुच्छुयं पग्गहित्तु पयत्तेण धूवं दाऊण जिणवराणं अट्ठसयविसुद्धगंथजुत्तेहिं महावित्तेहिं अत्थजुत्तेहिं अपुणरुत्तेहिं संथुणइ, संथुणित्ता सत्तट्ठ पयाइं ओसरइ, ओसरित्ता वामं जाणुं अंचेइ, अंचेइत्ता दाहिणं जाणुं धरणितलंसि निवाडेइ तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणितलंसि नमेइ, नमित्ता ईसिं पच्चुण्णमति, पच्चुण्णमित्ता कडगतुडिअथंभिआओ भुयाओ पडिसाहरइ, पडिसाहरित्ता करयलपरिग्गहिअं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं [एव] वयासी—नमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं जाव सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपत्ताणं त्तिकट्टु वंदइ नमंसइ” इत्यादि, पुनः अत्रैव अग्रे पत्रान्तरे विजयदेवेन जिनसक्थानि अपि पूजितानि सन्ति, तत्पाठो यथा (२५१ पत्रे) “जेणेव सुहम्मा सभा तेणेव पहारेत्थ गमणाए, तए णं तस्स विजयदेवस्स चत्तारि सामाणिअसाहस्सीओ एअप्पभिइं जाव सव्विड्ढीए जाव नाइयरवेणं जेणेव सुहम्मा सभा

यरयण घाएइ पोत्थयरयण वाएत्ता धम्मिअ ववसायं पगिण्हइ, धम्मिय ववसायं पगिण्हित्ता पोत्थयरयण पडिनिक्खिवइ, पडिनिक्खिवित्ता सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता ववसायसभाओ पुरत्थिमिल्लेण दारेण पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव नदा पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता नदा पुक्खरिणीं अणुप्पयाहिणीकरेमाणे पुरत्थिमिल्लेण दारेण अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता पुरत्थिमिल्लेण तिसोपाणपडिरूवगएण पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता हत्थ पाय पक्खालेइ, पक्खालित्ता एग मह सेअ रययामय विमलसलिलपुण्ण मत्तगयमहामुहाकितिसमाण भिंगार पगिण्हइ, भिंगारं पगिण्हित्ता जाइं तत्थ उप्पलाइ पउमाइ जाव सयसहस्सपत्ताइ ताइं गिण्हइ, गिण्हित्ता नदाओ पुक्खरिणीओ पच्चुत्तरेइ, पच्चुत्तरित्ता जेणेव सिद्धायतणे तेणेव पहारेत्थ गमणाए ॥ तए ण तस्स विजयस्स देवस्स चत्तारि सामाणिअसाहस्सीओ जाव अन्ने अ बहवे वाणमंतरा देवा य देवीओ अ अप्पेगइआ उप्पलहत्थगया जाव हत्थगया विजय देवं पिट्ठओ पिट्ठओ अणुगच्छंति । तए ण तस्स विजयस्स देवस्स बहवे आभिओगिया देवा देवीओ अ कलसहत्थगया जाव धूवकडुच्छुयहत्थगया विजय देव पिट्ठओ पिट्ठओ अणुगच्छंति । तए ण से विजए देवे चउहिं सामाणिअसहस्सीहिं जाव अन्नेहिं य बहूहिं वाणमंतरेहिं देवेहिं य देवीहिं अ सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए सव्वजुईए जाव निग्घोसणाइअरवेण जेणेव सिद्धाययणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सिद्धायतण अणुप्पयाहिणी करेमाणे करेमाणे पुरत्थिमिल्लेण दारेण अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता जेणेव देवच्छंदए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता आलोए जिणपडिमाण पणामं करेइ, पणाम करित्ता लोमहत्थग गिण्हइ, लोमहत्थग गिण्हित्ता जिणपडिमाओ लोमहत्थएण पमज्जइ, पमज्जित्ता

वया पन्नत्ता, तं जहा—पुरत्थिमिल्ले अंजणगपव्वए १ दाहिणिल्ले अंजणगपव्वए २ पच्चत्थिमिल्ले अंजणगपव्वए ३ उत्तरिल्ले अंजणगपव्वए ४, ते णं अंजणगपव्वया चउरासीति जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेण एगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं मूले दसजोयणसहस्साइं विक्खंभेणं, तदणंतरं च णं मायाए मायाए परिहायेमाणा परिहायेमाणा उवरिमेगं जोयणसहस्सं विक्खंभेणं पन्नत्ता, मूले इक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसए परिक्खेवेणं, उवरिं तिन्नि तिन्नि जोयणसहस्साइं एगं च छावट्ठं जोयणसयं परिक्खेवेणं, मूले वित्थिन्ना (विच्छिन्ना) मज्झे संखित्ता उप्पिं तणुआ० गोपुच्छसंठाणसंठिआ सव्वअंजणमया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा नीरया निप्पंका निक्कंकडच्छाया सप्पभा समिरीया सउज्जोया पासाईया दरिसणीया अभिरूवा पडिरूवा, तेसि णं अंजणगपव्वयाणं उवरिं बहुसमरमणिज्जभूमिभागा पन्नत्ता, तेसि णं बहुसमरमणिज्जभूमिभागाणं बहुमज्झदेसभागे चत्तारि सिद्धायतणा पन्नत्ता, ते णं सिद्धाययणा एगं जोयणसयं आयामेणं पन्नत्ता, पन्नासं जोयणाइं विक्खंभेणं, बावत्तरिं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, तेसिं सिद्धाययणाणं चउदिसिं चत्तारि दारा पन्नत्ता, तं जहा—देवदारे १ असुरदारे २ नागदारे ३ सुवण्णदारे ४, तेसु णं दारेसु चउव्विहा देवा परिवसंति, तं जहा—देवा १ असुरा २ नागा ३ सुवण्णा ४, तेसि णं दाराणं पुरओ चत्तारि मुहमंडवा पन्नत्ता, तेसि णं मुहमंडवाणं पुरओ चत्तारि पेच्छाघरमंडवा पन्नत्ता, तेसि णं पेच्छाघरमंडवाणं बहुमज्झदेसभागे चत्तारि वइरामया अक्खाडगा पन्नत्ता, तेसि णं वइरामयाणं अक्खाडगाणं बहुमज्झदेसभागे चत्तारि मणिपीढिआओ पन्नत्ता, तासां णं मणिपीढिआणं उवरिं चत्तारि सीहासणा पन्नत्ता, तेसि णं सीहासणाणं उवरिं चत्तारि विजयदूसा पन्नत्ता, तेसि णं विजयदूसगाणं बहुमज्झदेसभागे चत्तारि वइरामया अंकुसा पन्नत्ता, तेसु णं वइ-

तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता त णं सभ सुधम्म अणुप्पयाहिणी करेमाणे करेमाणे पुरत्थिमिल्लेण अणुपविसइ, अणुपवि-सित्ता आलोए जिणसकहाणं पणाम करेइ, करित्ता जेणेव मणिपेढिआ जेणेव माणवचेइअखभे जेणेव वइरामया गोलवट्टस-मुग्गका तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता लोमहत्थयं गिण्हइ, गिण्हित्ता वइरामए गोलवट्टसमुग्गए लोमहत्थएण पमज्जइ, पमज्जित्ता वइरामए गोलवट्टसमुग्गए विहाडेइ, विहाडित्ता जिणसकहाओ लोमहत्थएण पमज्जइ, पमज्जित्ता सुरभिणा गधो-दएण तिसत्तखुत्तो जिणसकहाओ पक्खालेइ, पक्खालित्ता सरसेण गोसीसचदणेण अणुलिंपइ, अणुलिंपेत्ता अग्गेहिं वरेहिं गधेहिं मल्लेहिं अ अच्चिणइ, अच्चिणित्ता धूव दलयइ, दलित्ता वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु पडिनिक्खिवति, पडिनिक्खिवित्ता माणवक चेइयखभ लोमहत्थएणं पमज्जइ, पमज्जित्ता दिव्वाए उदगधाराए अब्भुक्खेइ, अब्भुक्खेइत्ता सरसेणं गोसीसचदणेण चच्चए दलयति, दलित्ता पुप्फारुहणं जाव आसत्तोसत्त० कयग्गाह० धूवं दलयति, धूव दलित्ता जेणेव सभाए सुहम्माए बहु-मज्झदेसभाए त चेव दारच्चणिआ" इत्यादि ॥ ८ ॥ पुनः श्रीजीवाभिगमे चन्द्रविमाने चन्द्रवक्तव्यताया (२८२पत्रे) तथाहि–

"चदस्स ण जोतिसिंदस्स जोतिसरण्णो चदवर्डेसए विमाणे सभाए सुहम्माए माणवगसि चेइयखभसि वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहुआओ जिणसकहाओ सन्निक्खित्ताओ चिट्ठति, जाओ ण चंदस्स जोइसिंदस्स जोइसरण्णो अन्नेसिं च बहूण जोइसिआण देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ जाव पज्जुवासणिज्जाओ" इत्यादि ॥ ९ ॥ अथ श्रीस्थानाङ्गसूत्रे चतु-र्थस्थानके द्वितीयोद्देशके (२२९ पत्रे) शाश्वतजिनप्रतिमाग्रे अष्टाह्निकामहोत्सवं देवाः कुर्वन्ति, तथा निशम्यता, तथाहि–

"[अथ–नन्दीश्वरविचारः] नदीसरवरस्स णं दीवस्स चक्कवालविक्खंभस्स बहुमज्झदेसभागे चउद्दिसिं चत्तारि अंजणगप-

गाण एव आयसगाण थालाण पातीण सुपतिट्ठकाणं मणगुलिआण वातकरगाण चिसाण रयणकरडगाण" इत्यादि ॥ १० ॥ तथा चमरेन्द्रादयोऽपि ईशानान्ता इन्द्रा निजनिजसौधर्मादिसभाया स्थिता , तत्रवर्तिन्यो जिनदंष्ट्राः पूजनीया अर्चनीयाश्चेति ज्ञात्वा तत्समक्ष अप्सरोभिः सम मैथुनमपि न सेवन्ते । यदुक्त श्रीभगवतीसूत्रे दशमशतके पञ्चमोद्देशके (५०२ पत्रे), तथाहि–

"चमरस्स ण भते! असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो कति अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ ? अज्जो ! पच अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ तजहा–काली १ रायी २ रयणी ३ विज्जु ४ मेहा ५ तत्थ ण एगमेगाए देवीए अट्ठट्ठ देवीसहस्सा परिवारो पन्नत्तो, पभू ण भते! ताओ एगमेगा देवी अण्णाइ अट्ठट्ठदेवी सहस्साइ परिवार विउवित्तए ? एवामेव सपुव्वावरेण चत्तालीस देवीसहस्सा, से त तुडिए, पभू ण भते! चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया चमरचचाए रायहाणीए सभाए चमरसि सीहासणसि तुडिएणं सद्धिं दिव्वाइ भोगभोगाइ भुजमाणे विहरित्तए?, णो तिणट्ठे समट्ठे, से केणट्ठे ण भते! एव वुच्चइ? णो पहू चमरे असुरिंदे चमरचचाए रायहाणीए जाव विहरित्तए ? अज्जो चमरस्स ण असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो चमरचचाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए माणवए चेइयखमे वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहूओ जिणसकहाओ सनिक्खित्ताओ चिट्ठति, जाओ ण चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो अण्णेसिं च बहूण असुरकुमाराण देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ वदणिज्जाओ नमसणिज्जाओ पूयणिज्जाओ सक्कारणिज्जाओ सम्माणणिज्जाओ कल्लाण मगल देवय चेइअ पज्जुवासणिज्जाओ भवति तेसिं पणिहाए नो पभू, से तेणट्ठेणं अज्जो ! एव वुच्चति–णो पहू चमरे असुरिंदे जाव राया चमरचंचाए जाव विहरित्तए

रामएसु अकुसेसु चत्तारि कुंभिआ मुत्तादामा पन्नत्ता, ते ण कुंभिआ मुत्तादामा पत्तेय पत्तेय अन्नेहिं तदद्धउच्चत्तपमाणमित्तेहिं चउहिं अद्धकुंभिकेहिं मुत्तादामेहिं सव्वाओ समंता संपरिक्खित्ता, तेसि ण पेच्छाघरमंडवाण पुरओ चत्तारि मणिपीढिआओ पन्नत्ताओ, तासि णं मणिपीढिआण उवरिं चत्तारि चत्तारि चेतितथूभा पन्नत्ता, तासि ण चेतितथूभाण पत्तेय पत्तेय चउद्दिसिं चत्तारि मणिपीढिआओ पन्नत्ता, तासि ण मणिपीढिआण उवरिं चत्तारि जिणपडिमाओ सव्वरयणामईओ संपलिअंक निसन्नाओ थूभाभिमुहाओ चिट्ठंति, त जहा–रिसहा १ वद्धमाणा २ चंदाणणा ३ वारिसेणा ४" इत्यादि ॥ ९ ॥ पुन श्रीजीवाभिगमसूत्रे (२३३ पत्रे) शाश्वतजिनप्रतिमापूजाधिकार , तथाहि–

"तासि णं जिणपडिमाण पिट्ठओ पत्तेअ पत्तेअ छत्तधारपडिमाओ पन्नत्ताओ, ताओ ण छत्तधारपडिमाओ हिमरययकुंदेंदुसप्पकासाइं सकोरेंटमल्लदामधवलाइं आतपत्ताइं सलील ओहारेमाणीओ चिट्ठति । तासि ण जिणपडिमाण उभओ पासिं पत्तेअ पत्तेअ चामरधारपडिमाओ पन्नत्ताओ, ताओ ण चामरधारपडिमाओ चंदप्पहवइरवेरुलियनाणामणिकणगरयणविमलमहरिहतवणिज्जुज्जलविचित्तदंडाओ चिल्लिआओ संखककुंददगरययमतमथितफेणपुंजसण्णिकासाओ सुहुमरययदीहवालाओ धवलाओ चामराओ सलील ओहारेमाणीओ चिट्ठति । तासि ण जिणपडिमाण पुरओ दो दो नागपडिमाओ, दो दो जक्खपडिमाओ, दो दो भूतपडिमाओ, दो दो कुंडधारपडिमाओ विणओणयाओ पायवडिआओ पंजलिउडाओ संनिक्खित्ताओ चिट्ठति, सव्वरयणामतीओ अच्छाओ सण्हाओ लण्हाओ घट्ठाओ मट्ठाओ नीरयाओ निप्पंकाओ जाव पडिरूवाओ । तासि ण जिणपडिमाण पुरओ अट्ठसय घंटाण अट्ठसय चंदणकलसाण एव अट्ठसय भिंगार-

गाण एव आयसगाण थालाणं पातीण सुपतिट्ठकाणं मणगुलिआण वातकरगाण चित्ताण रयणकरंडगाण" इत्यादि ॥ १० ॥ तथा चमरेन्द्राद्योऽपि ईशानान्ता इन्द्रा निजनिजसौधर्मादिसभायां स्थिताः, तत्रवर्तिन्यो जिनदंष्ट्रा पूजनीया अर्चनीयाश्चेति ज्ञात्वा तत्समक्ष अप्सरोभिः सम मैथुनमपि न सेवन्ते । यदुक्त श्रीभगवतीसूत्रे दशमशतके पञ्चमोद्देशके (५०३ पत्रे), तथाहि–

"चमरस्स ण भते! असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो कति अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ? अज्जो! पच अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ तजहा–काली १ रायी २ रयणी ३ विज्जु ४ मोहा ५ तत्थ ण एगमेगाए देवीए अट्ठट्ठ देवीसहस्सा परिवारो पन्नत्तो, पभू ण भते! ताओ एगमेगा देवी अण्णाइ अट्ठट्ठदेवी सहस्साइ परिवार विउव्वित्तए? एवामेव सपुव्वावरेण चत्तालीस देवीसहस्सा, से त तुडिए, पभू ण भते! चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया चमरचचाए रायहाणीए सभाए चमरसि सीहासणसि तुडिएण सद्धिं दिव्वाइ भोगभोगाइ भुजमाणे विहरित्तए?, णो तिणट्ठे समट्ठे, से केणट्ठे ण भते! एव वुच्चइ? णो पहू चमरे असुरिंदे चमरचचाए रायहाणीए जाव विहरित्तए? अज्जो चमरस्स ण असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो चमरचचाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए माणवए चेइयखभे वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहूओ जिणसकहाओ सनिक्खित्ताओ चिट्ठति, जाओ ण चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो अण्णेसिं च बहूण असुरकुमाराण देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ वदणिज्जाओ नमसणिज्जाओ पूयणिज्जाओ सक्कारणिज्जाओ सम्माणणिज्जाओ कल्लाण मगल देवय चेइअ पज्जुवासणिज्जाओ भवति तेसिं पणिहाए नो पभू, से तेणट्ठेणं अज्जो! एव वुच्चति–णो पहू चमरे असुरिंदे जाव राया चमरचंचाए जाव विहरित्तए

पहू णं अज्जो चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया चमरचंचाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए चमरंसि सीहासणंसि चउ-सट्ठीए सामाणियसाहस्सीहिं तायत्तीसाए जाव अण्णेहिं य बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं अ देवीहिं य सद्धिं संपरिवुडे महयाहय जाव भुंजमाणे विहरित्तए०, केवल परियारिड्ढीए णो चेव णं मेहुणवत्तिअं (सूत्र ४०५)" इत्यादि, अत्र तेषां देवानां स्त्रीशब्दश्रवणरूपदर्शनप्रमुखरूपो भोग उक्तः, न मैथुनसेवा, एवं तेषां लोकपालानामपि आलापका ज्ञेया ॥११॥

पुनः मरणसमाधिप्रकीर्णकमध्येऽपि (९७ पत्रे) चैत्यभक्तिः प्रोक्ताऽस्ति, तथाहि–"अरिहंतसिद्धचेइअ–गुरुसु अयधम्म-साहुवग्गे अ। आयरिअउवज्झाए, पवयणे सव्वसंघे अ॥ १९॥ एएसु भत्तिजुत्ता, पूअंता अहरहं अणण्णमणा। सम्मत्तमणुस-रित्ता, परित्तसंसारिआ हुंति ॥ २० ॥ सुविहिअ! इमं पइण्णं, असद्दहंतेहिं णेगजीवेहिं। बालमरणाणि तीए, मयाइं काले अणंताइं ॥२१॥" ॥१२॥ पुनरपि नामस्तवे "कित्तिअवंदिअमहिआ" तत्र कीर्तिता नामादिभिः, वन्दिता मनोवाक्कायैः, महिताः पुष्पादिभिः, "सव्वलोए अरिहंतचेइआणं करेमि काउस्सग्गं वंदणवत्तिआए पूअणवत्तिआए" इत्यादि। १३। पुनः "जावंति चेइआइं, उड्ढे अ अहे अ तिरिअ लोए अ। सव्वाइं ताइं वंदे, इह संतो तत्थ संताइं॥ १॥" ॥ १४ ॥ एवं श्रीआवश्यकनिर्युक्तौ (११९ पत्रे) अपि श्रीअष्टापदतीर्थे भरतकारितजिनप्रतिमादिवर्णनं, तथाहि–

"थूभसय भाउगाणं, चउवीसं चेव जिणहरे कासी। सव्वजिणाणं पडिमा, वण्णपमाणेहिं निअएहिं ॥४५॥ (मू० भा०)

आयंसघरपवेसो, भरहे पडणं च अंगुलीअस्स। सेसाणं उम्मुअणं, संवेगो नाण दिक्खा अ ॥ ४३६ ॥" न च वाच्य–आवश्यकनिर्युक्तेः पञ्चचत्वारिंशदागमेभ्योऽतिरिक्तत्वेन न तद्वचनं प्रमाणमिति–आवश्यकनिर्युक्तेः चतुर्दशपूर्वधर-

श्रीभद्रबाहुस्वामिप्रणीतत्वात् श्रीकल्पसूत्रस्य इव सुतरां मान्यत्वात्, नहि समानैककर्तृकग्रन्थेषु एको मान्योऽन्ये
तु अमान्या इति ॥ १५ ॥

तथा श्रीजम्बूद्वीपप्रज्ञप्तौ पुनः भणितं, तथाहि-"तित्थयरगुणा पडिमा-सु नत्थि निस्संसय वियाणतो । तित्थयरत्ति
नमंतो, सो पावइ निज्जर विउल ॥ १ ॥" ॥ १६ ॥ पुन श्रीआवश्यकनिर्युक्तौ (४९१ पत्रे) वंदनाध्ययने यथा-
"अकसिणपवत्तगाण, विरयाविरयाण एस खलु जुत्तो । संसारपयणुकरणो, दव्वथए कूवदिट्ठंतो ॥ १ ॥" ॥ १९४ ॥ (भा०)
श्रीमहानिशीथसूत्रेऽपि यथा-

"काउं पि जिणायतने-हिं मंडिअं सव्वमेइणीपिट्ठं । दाणाइचउक्केण, सुट्ठु वि गच्छिज्ज अच्चुयं न परओ ॥ १ ॥" ॥१८॥
गणिविद्याप्रकीर्णकेऽपि (७१ पत्रे) यथा-"धणिट्ठा सयभिसा साई, सवणो अ पुणव्वसू । एएसु गुरुसुस्सूसं, चेइआण च
पूअणं ॥ ३८ ॥" इति, ॥ १९ ॥ एवं देवेन्द्रस्तवेऽपि भवनपत्यधिकारे पूजाधिकारो यथा-

"कणगमणिरयणथूभिअ-रम्माइं चेइआइं भवणाइं । एएसिं दाहिणओ, सेसाण उत्तरे पासे ॥ १ ॥" ॥ २० ॥
पुनः देवेन्द्रस्तवे व्यन्तराधिकारेऽपि (८१ पत्रे) यथा-"मणिकणगरयणथूभिअ-जवूणय[चे]नेइआइं भवणाइं । एएसिं
दाहिणओ, सेसाण उत्तरे पासे ॥ ७८ ॥ तथा च (९२ पत्रे) "तत्थ विमाणा बहुविहा, पासायपगइचेइयारम्मा । वेरु-
लिअथूभिआगा, रयणामयदामलंकारा ॥ २४२ ॥" ॥ २२ ॥ तथा अनार्यदेशोत्पन्नोऽपि आर्द्रकुमार श्रीअभयकुमारसु-
क्तजिनप्रतिमादर्शनेन जातिस्मरणज्ञानेन प्रतिबोधं अवाप्य आर्यदेशे समागत्य दीक्षां गृहीतवान्, नाऽपि प्रतिमादर्शनं

विना तस्य प्रतिबोधकारणं क्वाऽपि दृष्टं श्रुतं वा, तदक्षराणि तु श्रीद्वितीयाङ्गनिर्युक्तौ (३८६ पत्रे) श्रीभद्रबाहुस्वामिकृताया, तथाहि–

"गामे वसतपुरए, सामइओ घरणिसहिअ [ओ] निक्खतो । भिक्खायरिआदिट्ठा, ओहासिअभत्तवेहास ॥ १९१ ॥ सवेगसमावन्नो, माई भत्त चइत्तु दिअलोए । चइऊण अद्दपुरे, अद्दसुओ अद्दओ जाओ ॥ १९२ ॥ पीती अ दोण्ह दूओ, पुच्छणमभयस्स पट्ठवे सोऽवि । तेणावि सम्मदिट्ठि–त्ति होज्ज पडिमा रहंमि गया ॥ १९३ ॥" इति ॥ २३ ॥ तथा श्रीबृहत्कल्पेऽपि तीर्थङ्कर १ सामान्यकेवलि २ चतुर्दशपूर्वधर ३ सपूर्णपूर्वधर ४ संविग्नशुद्धचारित्रि ५ असंविग्नचारित्रि ६ साधुसदृशवेषमात्रधारि ७ द्वादशव्रतधारिश्रावक ८ निष्केवलसम्यक्त्वधारि ९ जिनप्रतिमाना १० दर्शाना दर्शनेन भव्यजीवाना भावग्राममोक्षज्ञानादिलाभो जायमानो निगदितोऽस्ति, तथाहि–"तित्थयरा १ जिण २ चउदस ३, भिन्ने ४ संविग्ग ५ तह य असंविग्गो ६ । सारूविअ ७ वय ८ दंसण ९–पडिमाओ १० भावगामाओ ॥ १ ॥" इति ॥ २४ ॥ पुनः श्रीबृहत्कल्पच्छेदग्रन्थे साधो प्रायश्चित्ताधिकारे एव प्रोक्त अस्ति, कोऽपि महात्मा क्वाऽपि ग्रामादौ जिनप्रासाद दृष्ट्वा चैत्य नमस्कर्तुं मध्ये गतः, तत्र कथञ्चित् असमार्यमाणे चैत्ये भगवत्प्रतिमाया उपरिष्टात् लूताकौलिकजालकभ्रमरीगृहादिकं दृष्ट्वा स यदि उपेक्षां कुर्यात्, कोऽर्थो यदि स्वयं तत् न दूरीकुर्यात्, तदा गुरुप्रायश्चित्त प्राप्नोति, तत्करणे तु लघुप्रायश्चित्तम्, तत्राऽर्थे तत्रत्या गाथा यथा–

"लूआ कोलिगआलिग–कोत्यलहारी अ उवरिगेहे अ । साडतमसाडते, लहुगा गुरुगा य भत्तीए ॥१॥" इति ॥ २५ ॥

पुन श्रीतीर्थोद्गालिप्रकीर्णकेऽपि श्रेणिकजीवपद्मनाभतीर्थङ्करदीक्षाधिकारे जलजस्थलजकुसुमैः भगवतः पूजा प्रतिपादिताऽस्ति, तथाहि–"चदप्पहाइ सीआ, अविरहिआजम्ममरणमुक्कस्स । आसत्तमल्लदामा, जलयथलयदीवकुसुमेहिं ॥ १ ॥" इति ॥ २६ ॥ इत्थ चैत्यस्तवेऽपि पूजा "पूअणवत्तिआए" इति ॥ २७ ॥ श्रीउत्तराध्ययननिर्युक्तौ (३२१ पत्रे) अपि गौतमेन जिनप्रतिमा वन्दिताऽस्ति, तथाहि–

"सोऊण त भगवओ, गच्छइ तहि गोअमो पहिअकित्ती । आरुहइ त नगवर, पडिमाओ वदइ जिणाण ॥ २९१ ॥"

पुनः श्रीआवश्यकनिर्युक्तौ (२१० पत्रे) यथा–

"तत्तो अ पुरिमताले, वग्गुर ईसाण अच्चए पडिमा । मल्लीजिणायण पडिमा, उण्णाए वसि बहुगोट्ठी ॥ ४९० ॥"

पुनः श्रीआवश्यकचूर्णौ (२९५ पत्रे) तत्सम्बन्धलेशोऽपि यथा–"तेण कालेणं तेणं समएण ईसाणे देविंदे देवराया जहा अभिसेगे जाव जाणमाणेण सविड्ढीए सामी तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण काऊण वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता, जाव पजलिकडे भगवओ चरिअ आगायमाणे सामिमि विसदिट्ठीए पज्जुवासेमाणे चिट्ठइ, वग्गुरो य सेट्ठी त काल ण्हाओ ओल्लपडसाडओ सपरिजणो महया इड्ढीए विविहकुसुमहत्थगतो त आयतण अच्चओ जाति, त च विलिवयमाण ईसाणिंदो पासइ, भणति य भो वग्गुरा ! तुब्भ पच्चक्खतित्थगरस्स महिम ण करेसि, तो पडिम अच्चतो जासि, जा एस महइमहावीरवद्धमाणसामी जगनाहेति लोगपूज्जेति, सो आगओ मिच्छादुक्कड काउ खमेति महिम करेइ" इति ॥ ३० ॥ श्रीसमवायाङ्गसूत्रे (६० पत्रे) जलज–१ स्थलज–२ वैक्रिय–३ पुष्पै उपचारकरण देवाना यथा–"चोत्तीस बुद्धाइसेसा

विना तस्य प्रतिबोधकारण काऽपि दृष्ट श्रुत वा, तदक्षराणि तु श्रीद्वितीयाङ्गनिर्युक्तौ (३८९ पत्रे) श्रीभद्रबाहुस्वामिकृताया, तथाहि–

"गामे वसतपुरए, सामइओ घरणिसहिअ [ओ] निक्खतो। भिक्खायरिआदिट्ठा, ओहासिअभत्तवेहास ॥ १९१ ॥ संवेगसमावन्नो, माई भत्त चइत्तु दिअलोए। चइऊण अद्दपुरे, अद्दसुओ अद्दओ जाओ ॥ १९२ ॥ पीती अ दोण्ह दूओ, पुच्छणमभयस्स पट्ठवे सोऽवि। तेणावि सम्मदिट्ठि–त्ति होज्ज पडिमा रहम्मि गया ॥ १९३ ॥" इति ॥ २३ ॥ तथा श्रीबृहत्कल्पेऽपि तीर्थङ्कर १ सामान्यकेवलि २ चतुर्दशपूर्वधर ३ सपूर्णपूर्वधर ४ संविग्नशुद्धचारित्रि ५ असविग्नचारित्रि ६ साधुसदृशवेषमात्रधारि ७ द्वादशव्रतधारिश्रावक ८ निष्केवलसम्यक्त्वधारि ९ जिनप्रतिमाना १० दशाना दर्शनेन भव्यजीवानां भावप्रासमोक्षज्ञानादिलाभो जायमानो निगदितोऽस्ति, तथाहि–"तित्थयरा १ जिण २ चउदस ३, भिन्ने ४ सविग्ग ५ तह य असंविग्गो ६। सारूविअ ७ वय ८ दसण ९–पडिमाओ १० भावगामाओ॥ १ ॥" इति ॥ २४ ॥ पुनः श्रीबृहत्कल्पच्छेदग्रन्थे साधो प्रायश्चित्ताधिकारे एव प्रोक्तं अस्ति, कोऽपि महात्मा काऽपि ग्रामादौ जिनप्रासाद दृष्ट्वा चैत्यं नमस्कर्तुं मध्ये गतः, तत्र कथञ्चित् असमार्ज्यमाणे चैत्ये भगवत्प्रतिमाया उपरिष्टात् लूताकौलिकजालकञ्चमरीगृहादिक दृष्ट्वा च यदि उपेक्षा कुर्यात्, कोऽर्थो यदि स्वय तत् न दूरीकुर्यात्, तदा गुरुप्रायश्चित्त प्राप्नोति, तत्करणे तु लघुप्रायश्चित्तम्, तत्राऽर्थे तत्रत्या गाथा यथा–

"लूआ कोलिगजालिग–कोत्थलहारी अ उवरिगेहे अ। साडतमसाडते, लहुगा गुरुगा य भत्तीए ॥१॥" इति ॥ २५ ॥

उदायनस्य राज्ञः प्रभावत्याः देव्याः सत्का देवदत्ताऽभिधाना दासी अभूत्, सा च देवनिर्मिता गोशीर्षचन्दनमयीं श्रीमन्महावीरप्रतिमां राजमन्दिरान्तर्वर्तिचैत्यभवनव्यवस्थितां प्रतिचरति स्म, तद्वन्दनार्थं च श्रावक कोऽपि देशान् संचरन् समायातः, तत्र च आगतोऽसौ रोगेण अपटुशरीरो जात, तया च सम्यक् परिचरितः, तुष्टेन च तेन सर्वकामिक आराधितदेवतावितीर्ण गुटिकाशत अदायि, तया च "अह कुब्जा विरूपा सुरूपा भूयास" इति मनसि विभाव्य एका गुटिका भक्षिता, तत्प्रभावात् सा सुवर्णवर्णा जाता, इति सुवर्णगुलिका इति नाम्ना प्रसिद्धिं उपगता, ततोऽसौ चिन्तितवती–"जाता मे रूपसपदा एतया च किं भर्तृविहीनया ? तत्र तावत् अय राजा पितृतुल्यो न कामयितव्य, शेषास्तु पुरुषमात्र अतः किं तै ?" ततः उज्जयिन्याः पतिं चण्डप्रद्योतराज मनसि आधाय गुटिका भक्षिता, ततोऽसौ देवतानुभावात् ता विज्ञाय तदानयनाय हस्तिरत्न आरुह्य तत्राऽऽयातः, आकारिता च तेन सा, तया उक्त आगच्छामि यदि प्रतिमा नयसि, तेन उक्त–"तर्हि श्वो नेष्यामि ।" ततोऽसौ स्वनगरीं गत्वा तद्रूपा प्रतिमा कारयित्वा ता आदाय तथैव रात्रौ आयात', स्वकीयप्रतिमा देवतानिर्मितप्रतिमास्थाने विमुच्य ता सुवर्णगुलिका च गृहीत्वा गतः, प्रभाते चण्डप्रद्योतगन्धहस्तिविमुक्तमूत्रपुरीषगन्धेन विमदान् स्वहस्तिनो विज्ञाय ज्ञातचण्डप्रद्योतागमोऽपगतप्रतिमासुवर्णगुलिकानयनोऽसौ उदायनराजा पर कोप उपगतो दशभि महाबले राजभिः सह उज्जयिनीं प्रति प्रस्थितः, अन्तरा पिपासाबाधितसैन्य त्रिपुष्करकरणेन देवतया निस्तारितसैन्यः अक्षेपेण उज्जयिन्याः बहिः प्राप्तो रथारूढश्च धनुर्वेदकुशलतया सन्नद्धहस्तिरत्नारूढ चण्डप्रद्योत प्रजिहीर्षुः मण्डलया

पन्नत्ता त जहा–"अवट्ठिए" इत्यादि + + + तत्र जलथलयभासुरपभूएणं विंटट्ठाइणा दसद्धवन्नेण कुसुमेण जाणुस्सेहप्पमाणमित्ते पुप्फोवयारे किज्जइ" इति ॥ ३१ ॥ पुन आवश्यकचूर्णिः (२५७ पत्रे) यथा "सव्वलोए अरिहतचेइआइ वदणवत्तिआए" इत्यादि, अस्य व्याख्या–"न केवल पचवीसाए (खेवि) जाव सव्वलोए सिद्धादी अरिहता चेइआणि स तेसिं चेव प्रतिकृतिलक्षणानि, 'चिती संज्ञाने', संज्ञान उत्पद्यते काष्ठकर्मादिषु प्रतिकृतिं दृष्ट्वा यथा अरिहतपडिमा एसा इति, अण्णे भणति अरहंता–तित्थगरा तेसिं चेइआणि अरहंतचेइआणि आर्हत्प्रतिमा इत्यर्थः, तेसिं वन्दनादिप्रत्यय 'ठामि काउस्सग्ग' इति योग, तत्र वन्द्यत्वात् तेषां वन्दनार्थं कायोत्सर्गं करोमि" इत्यादि ॥ ३२ ॥ श्रीदशाश्रुतस्कन्धनिर्युक्तौ २४२ पत्रेऽपि यथा–"वोहिण पडिमा उदयण–पभावई उप्पायदेवदत्तहे । मरणुववायतावस–नयण तह भीसणा समणी ॥ १ ॥ गधारगिरी–देवय–पडिमा गुलिआगिलाण पडिमरणे । पज्जोमहरणपुक्खर–करण गहणामओ सयणा ॥ २ ॥" इति ॥ ३३ ॥ पुन श्रूयतां (श्रीप्रश्नव्याकरणसूत्रे ८५ पत्रे)—

"विपुलमोहाभिभूअसन्ना, मेहुणमूलं च सुवए तत्थ तत्थ वत्तपुव्वा सगामा जणक्खयकरा सीआए १ दोवईए २ रुप्पिणीए ३ पउमावईए ४ ताराए ५ कचणाए ६ रत्तसुभद्दाए ७ अहिल्लिआए ८ सुवण्णगुलिआए ९ किन्नरीए १० सुरूवविज्जुमईए ११ रोहिणीए १२ य, अन्नेसु अ एवमाइएसु बहवो महिलाकएसु सुव्वति" इति श्रीप्रश्नव्याकरणसूत्रसन्धात्, प्रभावत्या दास्याः देवदत्ताभिधानायाः सुवर्णगोलका इति नाम जात, तत्र प्रतिमाव्यतिकर एव पूर्वदशाश्रुतस्कन्धनिर्युक्तिलिखितो हेतुः, नाऽन्यः, तत्सम्बन्धः तद्वृत्तिगतो (८९ पत्रे) विस्तरेण यथा–"सिन्धुसौवीरेषु जनपदेषु विदर्भकनगरे

यथा श्रीउपदेशमालासूत्रे[प्रकरणे]-"गाहाण सयग्गं, पणसया चेव चालीसा" इति उक्त, पर प्रान्त्यगाथा तद्व्यतिरिक्ताऽस्ति एव अत्राऽपि ज्ञेय ॥ ३९ ॥

॥ इति जिनप्रतिमापूजाधिकारः ॥ ३९ ॥

ननु-पूजनीया जगति ज्ञानादयो गुणाः, तद्योगात् तद्वानपि विद्यमानतीर्थङ्करवत्, परं जिनप्रतिमा तु काष्ठपाषाणादिमयी अचेतना च, ततो ज्ञानादिगुणराहित्येन कथङ्कार पूजार्हा जिनप्रतिमा काष्ठादिपुत्तलकवत् ? अत्र उच्यते—सत्य, पर श्रूयतां परमार्थः—

"नामजिणा जिणनामा १, ठवणजिणा जिणवरिंदपडिमाओ २ । दव्वजिणा जिणजीवा ३, भावजिणा समवसरणत्था[त्था] ४ ॥ १ ॥ इति श्रीआवश्यकनिर्युक्तौ श्रीभद्रबाहुस्वामीवचनात् जिनप्रतिमास्थापनाजिनः, तद्दर्शने च सति समवसरणादिस्थो भावजिनः स्मृतिं आयाति, तत्स्मृतौ च तद्गुणचिन्तने चाऽनन्तो लाभः समतिपद्यते, सद्यः दुर्गतिनाश सुगतिप्राप्तिश्चाऽपि भवेतामिति, अत्राऽर्थे दृष्टान्तो यथा-भगवता उक्त-'भो साधो! त्व चित्रलिखितनारीं मा द्राक्षीः, तद्दर्शने नारी स्मृतिं आयास्यति, तत्स्वरूपचिन्तने च दुर्गतौ पात स्यात्, यदुक्त श्रीदशवैकालिकसूत्रे (२३६ पत्रे)—

"चित्तभित्तिं न निज्झाए, नारिं वा सुअलंकिअं । भक्खर पिव दट्ठूण, दिट्ठिं पडिसमाहरे ॥ ५५ ॥" इति ।' ततो यथा चित्रनारीदर्शने अशुभपरिणामः प्रादुर्भवति तथा जिनप्रतिमादर्शने शुभपरिणामो जायते समानयुक्तित्वात् सगतिं अङ्गति च एतत्, पुनरपि श्रूयता उपासकदशादौ (१२ पत्रे), "अन्नउत्थियदेवयाणि वा" इत्यादि उक्तत्वात्, हरिहरप्रमुखमिथ्यात्विदेव—

श्रमन्त चलनतलशरव्यथितहस्तिनो भुवि निपातनेन वशीकृतवान्, 'दासीपतिः' इति ललाटपट्टे मयूरपिच्छेन अङ्कितवान् इत्यादि ॥ २४ ॥ पुनः भक्तप्रतिज्ञाप्रकीर्णके (२१ पत्रे) जिनभवनजिनबिम्बप्रतिष्ठा प्रतिपादिताऽस्ति, तथाहि—

"अनियाणोदारमणो, हरिसवसविसट्टकञ्चुयकरालो । पूयइ गुरु सघ, साहम्मिअमाइ भत्तीए ॥ ३० ॥ निअदव्वम-पुव्वजिणिं-दभवणजिणबिंबवरपइट्ठासु । विअरइ पसत्थपोत्थय-सुतित्थतित्थयरपूआसु ॥ ३१ ॥" न च इद वक्तव्य अत्र—अहो ! (३१ पत्रे) "सत्तरिसय जिणाण, व गाहाण समयखित्तपन्नत्तं । आराहतो विहिणा, सासयसुक्ख लहइ मुक्ख ॥ १ ॥" इति उक्तत्वेन अत्र प्रकीर्णके सप्ततिगाथासंख्या उक्ताऽस्ति, अनिआणेत्यादिगाथाद्वये सति द्वासप्ततिगाथा भवन्ति, तत इद गाथाद्वय केनाऽपि नव्य कृत्वा मध्ये क्षिप्त अस्तीति न मानयामि इति, युक्तियुक्तत्वात्, कथ इत्याह—अरे ! शृणु, इद गाथाद्वय प्रतिमोत्थापकमतप्रादुर्भावात् पूर्वं कृत पश्चाद्वा ? न तावत्पूर्व, प्रयोजनमन्तरेण पूर्वं तत्करणस्य असगतत्वात् नाऽपि पश्चात्, यतः प्रतिमोत्थापकमत त्रिंशदधिकपञ्चदशशत १५३० वर्षे प्रादुर्भूत, तन्मतसंवत्प्राक्लिखितासु भक्तप्रतिज्ञाप्रकीर्णकप्रतिषु (२४ पत्रे) सर्वत्र तद्गाथाद्वयस्य दर्शनात्, अपि चाऽस्मिन्नेव भक्तप्रज्ञाप्रकीर्णके—

"अरिहतसिद्धचेइअ-पवयणआयरिअसव्वसाहूसु । [तिव] तित्थकरेसु भत्तिं, तिगरणसुद्धेण भावेण ॥ १ ॥" इति गाथा वर्तते, तस्याः का वार्ता ? अत्राऽपि चैत्यभक्तिः प्रतिपादिताऽस्ति, पुन संख्यासकलनविचार' श्रूयता—अत्र गाथाद्वयवर्धनेऽपि न संख्या विघटेत, यत, प्रथमान्त्यगाथयोः तद्विचाराभावात्, तद्विचारप्रतिपादिका गाथा' सप्तति एव,

यथा श्रीउपदेशमालासूत्रे[प्रकरणे]–"गाहाण सयग, पचसया चेव चालीसा" इति उक्त, पर प्रान्त्यगाथा तदुन्यतिरिक्ताऽस्ति एव अत्राऽपि ज्ञेय ॥ ३९ ॥

॥ इति जिनप्रतिमापूजाधिकारः ॥ ३९ ॥

ननु–पूजनीया जगति ज्ञानादयो गुणाः, तद्योगात् तद्वानपि विद्यमानतीर्थङ्करवत्, पर जिनप्रतिमा तु काष्ठपाषाणादिमयी अचेतना च, ततो ज्ञानादिगुणराहित्येन कथङ्कार पूजार्हा जिनप्रतिमा काष्ठादिपुत्तलकवत् ? अत्र उच्यते—सत्य, पर श्रूयता परमार्थः–

"नामजिणा जिणनामा १, ठवणजिणा जिणवरिंदपडिमाओ २ । दव्वजिणा जिणजीवा ३, भावजिणा समवसरणट्ठा[त्था] ४ ॥ १ ॥ इति श्रीआवश्यकनिर्युक्तौ श्रीभद्रबाहुस्वामीवचनात् जिनप्रतिमास्थापनाजिन, तद्दर्शने च सति समवसरणादिस्थो भावजिनः स्मृतिं आयाति, तत्स्मृतौ च तद्गुणचिन्तने चाऽनन्तो लाभः संप्रतिपद्यते, सद्यः दुर्गतिनाश सुगतिप्राप्तिश्चाऽपि भवेतामिति, अत्राऽर्थे दृष्टान्तो यथा–भगवता उक्त–'भो साधो! त्व चित्रलिखितनारीं मा द्राक्षीः, तद्दर्शने नारी स्मृतिं आयास्यति, तत्स्वरूपचिन्तने च दुर्गतौ पात स्यात्, यदुक्त श्रीदशवैकालिकसूत्रे (२३६ पत्रे)–

"चित्तभित्तिं न निज्झाए, नारिं वा सुअलंकिअ । भक्खर पिव दट्ठूण, दिट्ठिं पडिसमाहरे ॥ ५५ ॥" इति ।' ततो यथा चित्रनारीदर्शने अशुभपरिणामः प्रादुर्भवति तथा जिनप्रतिमादर्शने शुभपरिणामो जायते समानयुक्तित्वात् सगतिं अङ्गति च एतत्, पुनरपि श्रूयता उपासकदशादौ (१२ पत्रे), "अन्नउत्थियदेवयाणि वा" इत्यादि उक्तत्वात्, हरिहरप्रमुखमिथ्यात्विदेव–

भ्रमन्त चलनतलशरव्यथितहस्तिनो भुवि निपातनेन वशीकृतवान्, 'दासीपतिः' इति ललाटपट्टे मयूरपिच्छेन अङ्कितवान् इत्यादि ॥ २४ ॥ पुनः भक्तप्रतिज्ञाप्रकीर्णके (२१ पत्रे) जिनभवनजिनबिम्बप्रतिष्ठा प्रतिपादिताऽस्ति, तथाहि–

"अनियाणोदारमणो, हरिसवसविसट्टकचुयकरालो । पूएइ गुरु सघ, साहम्मिअमाइ भत्तीए ॥ ३० ॥ निअदव्वमपुव्वजिणिं–दभवणजिणबिंबवरपइट्ठासु । विअरइ पसत्थपोत्थय–सुतित्थतित्थयरपूआसु ॥ ३१ ॥" न च इद वक्तव्य अत्र—अहो ! (३१ पत्रे) "सत्तरिसय जिणाण, च गाहाण समयखित्तपन्नत्त । आराहतो विहिणा, सासयसुक्ख लहइ मुक्ख ॥ १ ॥" इति उक्तत्वेन अत्र प्रकीर्णके सप्ततिगाथासंख्या उक्ताऽस्ति, अनिआणेत्यादिगाथाद्वये सति द्वासप्ततिगाथा भवन्ति, तत इद गाथाद्वय केनाऽपि नव्य कृत्वा मध्ये क्षिप्त अस्तीति न मानयामि इति, युक्तियुक्तत्वात्, कथ इत्याह–अरे ! शृणु, इद गाथाद्वय प्रतिमोत्थापकमतप्रादुर्भावात् पूर्वं कृतं पश्चाद्वा ? न तावत्पूर्वं, प्रयोजनमन्तरेण पूर्वं तत्करणस्य असगतत्वात् नाऽपि पश्चात्, यतः प्रतिमोत्थापकमत त्रिंशदधिकपञ्चदशशत १५३० वर्षे प्रादुर्भूत, तन्मतसवत्प्राक्लिखितासु भक्तप्रतिज्ञाप्रकीर्णकप्रतिषु (२४ पत्रे) सर्वत्र तद्गाथाद्वयस्य दर्शनात्, अपि चाऽस्मिन्नेव भक्तप्रज्ञाप्रकीर्णके–

"अरिहतसिद्धचेइअ–पवयणआयरिअसव्वसाहूसु । [तिव्व] तित्थकरेसु भत्तिं, तिगरणसुद्धेण भावेण ॥ १ ॥" इति गाथा वर्तते, तस्याः का वार्ता ? अत्राऽपि चैत्यभक्तिः प्रतिपादिताऽस्ति, पुनः सख्यासकलनविचार' श्रूयता—अत्र गाथाद्वयवर्धनेऽपि न संख्या विघटेत, यत. प्रथमान्त्यगाथयोः तद्विचाराभावात्, तद्विचारप्रतिपादिका गाथा' सप्तति एव,

यथा श्रीउपदेशमालासूत्रे[प्रकरणे]–"गाहाण सयग, पचसया चेव चालीसा" इति उक्त, परं प्रान्त्यगाथा तद्व्यतिरिक्ताऽस्ति एष अत्राऽपि ज्ञेय ॥ २९ ॥

॥ इति जिनप्रतिमापूजाधिकारः ॥ २९ ॥

ननु–पूजनीया जगति ज्ञानादयो गुणाः, तद्योगात् तद्वानपि विद्यमानतीर्थङ्करवत्, पर जिनप्रतिमा तु काष्ठपाषाणादिमयी अचेतना च, ततो ज्ञानादिगुणराहित्येन कथङ्कार पूजार्हा जिनप्रतिमा काष्ठादिपुत्तलकवत् ? अत्र उच्यते—सत्य, पर श्रूयता परमार्थः–

"नामजिणा जिणनामा १, ठवणजिणा जिणवरिंदपडिमाओ २ । दव्वजिणा जिणजीवा ३, भावजिणा समवसरणत्था[त्था] ४ ॥ १ ॥ इति श्रीआवश्यकनिर्युक्तौ श्रीभद्रबाहुस्वामीवचनात् जिनप्रतिमास्थापनाजिन, तद्दर्शने च सति समवसरणादिस्थो भावजिनः स्मृतिं आयाति, तत्स्मृतौ च तद्गुणचिन्तने चाऽनन्तो लाभः समतिपद्यते, सद्य दुर्गतिनाश सुगतिप्राप्तिश्चाऽपि भवेतामिति, अत्राऽर्थे दृष्टान्तो यथा–भगवता उक्त–'भो साधो! त्व चित्रलिखितनारीं मा द्राक्षीः, तद्दर्शने नारी स्मृतिं आयास्यति, तत्स्वरूपचिन्तने च दुर्गतौ पातः स्यात्, यदुक्त श्रीदशवैकालिकसूत्रे (२३६ पत्रे)–

"चित्तभित्तिं न निज्झाए, नारिं वा सुअलंकिअ । भक्खर पिव दट्ठूण, दिट्ठिं पडिसमाहरे ॥ ५५ ॥" इति ।' ततो यथा चित्रनारीदर्शने अशुभपरिणामः प्रादुर्भवति तथा जिनप्रतिमादर्शने शुभपरिणामो जायते समानयुक्तित्वात् सगतिं अङ्गति च एतत्, पुनरपि श्रूयता उपासकदशादौ (१२ पत्रे), "अन्नउत्थियदेवयाणि वा" इत्यादि उक्तत्वात्, हरिहरप्रमुखमिथ्यात्विदेव–

प्रयच्छन्ति, तृषितस्य पानीय पाययन्ति, न च साधवः, तेषा भगवता निवारितत्वात् । अन्यत् दूरे तिष्ठतु, कोऽपि धीवरो
वदति "भो साधो ! यदि त्व मम रोटिकां (अपूपिकां)ददासि तदाऽह मत्स्यजाल मुञ्चामि" तथापि साधुः न तं दृष्ट्वा
तन्मोचयेत्, अपि च पुष्पादिभिः साधवः पूजा न कुर्वन्ति, सचित्तस्पर्शने तेषा अनधिकारात्, परं पुष्पादिभिः भगवत्पूजातो
यत् पुण्य जायते तद् इच्छन्ति, यदुक्तं "वदणवत्तिआए पूअणवत्तिआए सक्कारवत्तिआए सम्माणवत्तिआए" इत्यादि,
तथा पुनः श्रीआचाराङ्गद्वितीयश्रुतस्कन्धे प्रान्ते तृतीयचूलाया (३८५ पत्रे) भगवता महता महेन जन्मादिस्था-
भुवोऽपि वन्द्यत्वेन उक्ताः सन्ति, तथाहि–

"जम्माभिसेअनिक्खम–ण चरणनाणुप्पया य निव्वाणे । दिअलोअभवणमदर–नदीसरभोम नगरेसु ॥ २२४ ॥ अट्ठा-
पयमुज्जिंते, गयग्गपयए अ धम्मचक्के अ । पासरहावत्तनग, चमरुप्पाय च वंदामि ॥ २२५ ॥" व्याख्या–"तीर्थंकृतां
जन्मभूमिषु तथा निष्क्रमण–चरण–ज्ञानोत्पत्तिनिर्वाणभूमिषु तथा देवलोकभवनेषु मन्दरेषु तथा नन्दीश्वरद्वीपादौ
भौमेषु च पातालभवनेषु यानि शाश्वतानि चैत्यानि तानि वन्देऽह इति द्वितीयगाथाया अन्ते क्रिया इति, एव अष्टापदे
तथा श्रीमदुज्जयन्तगिरौ, गजाग्रपदे दशार्णकूटवर्तिनि तथा तक्षशिलाया धर्मचक्रे, तथा अहिच्छत्राया पार्श्वनाथस्य पर
णेन्द्रमहिमास्थाने, एव रथावर्ते पर्वते वैरस्वामिना यत्र पादोपगमन कृत, यत्र च श्रीमद्वर्धमान आश्रित्य चमरेन्द्रेण उत्प-
तनं कृत, एतेषु स्थानेषु यथासभव अभिगमनवन्दनपूजनोत्कीर्तनादिकाः क्रिया कुर्वतो दर्शनशुद्धि भवति इति"।
यथा भगवतीसूत्रे (३ पत्रे) आदौ एव श्रीसुधर्मस्वामिगणधरदेवेन अचेतनाया अपि ब्राह्मीलिपे प्रणामः कृतोऽस्ति,

तथाहि-"नमो अरिहंताण नमो सिद्धाण नमो आयरियाणं नमो उवज्झायाणं नमो लोए सव्वसाहूण (५ पत्रे) णमो बंभीए लिवीए" इति, अर्थोऽपि अयं श्रीअभयदेवसूरिकृतवृत्तिगतः-लिपिः पुस्तकादौ अक्षरविन्यासः, सा च अष्टादशप्रकाराऽपि श्रीमन्नाभेयजिनेन स्वसुताया ब्राह्मीनामिकाया दर्शिता, ततो ब्राह्मी इति अभिधीयते, आह च-"लेह लिवीविहाण, जिणेण बंभीइ दाहिण करेणं" इति, अतो 'ब्राह्मी' इति स्वरूपविशेषण लिपेः इति, तदाऽत्र ब्राह्मीलिपेः यो वेत्ता तस्मै नमस्कारो भविष्यति इति अर्थान्तर कार्यं, तस्य सर्वथाविरुद्धत्वात्, कथं ? इत्याह-श्रूयता, नमो ब्राह्मीलिपेः यो वेत्ता तस्मै इति अर्थे क्रियमाणे दूषणत्रयं, कथ ? एक तु वेत्तीति पदं सूत्रे नाऽस्ति, अर्थकरणे कुतः आनीत ? १, द्वितीयं तु व्याकरणादिषु असंगतिः २, तृतीयं तु तस्याः वेत्ता कः साधु श्रावको वा ? नाऽऽद्यः पक्षः, यतः तस्य अर्हदादिपञ्चकान्यतरत्वेन पूर्वं उक्तत्वात् पुनरुक्तदोषपोषस्य प्रसगात्, नाऽपि श्रावकः, तस्य नमस्कारकरणे सुधर्मस्वामिनोऽनुचितत्वेन असंभवात्, तत उभयथाऽपि विरुद्धत्वात् इय नमस्कारकरणं न श्रेयस्कर इति । पुनः 'नमो बंभीए' इति वाक्यस्य अर्थे व्यक्तिः, श्रीसमवायाङ्गसूत्रतो ज्ञेया । पुनः श्रीभद्रबाहुस्वामिना दशधा स्थापना श्रीओघनिर्युक्तिसूत्रे (१२८ पत्रे) प्रोक्ताऽस्ति, तत्र गाथा-

'अक्खे १ वराडए वा २ कट्ठे ३ पोत्थे ४ व चित्तकम्मे वा ५ । सब्भावमसब्भावा, ठवणापिंड वियाणाहि ॥ ३३४ ॥ व्याख्या-स्थापना द्विविधा-सद्भावस्थापना असद्भावस्थापना चेति, तत्र अक्षविषया सद्भावस्थापना असद्भावस्थापना च भवति । कथ ? यदा एक एव अक्षः पिण्डकल्पनया बुद्ध्या कल्प्यते तदा असद्भावस्थापना, यत्र पुनः

ते एव अक्षाः त्रिप्रभृतय एकत्र स्थाप्यन्ते तदा सद्भावस्थापना, एवं वराटकेषु १ कपर्दकेषु २ तथा काष्ठकर्मणि २
वा इति । यदा एक एव काष्ठं पिण्डः एष इत्येवं कल्प्यते तदा असद्भावस्थापना, यदा तु एकत्र बहूनि मिलि-
तानि पिण्डत्वेन कल्प्यन्ते तदा सद्भावस्थापना, एवं 'पुस्ते' [पोतलिकादौ] पुत्तलिकादिषु अपि, एवं चित्रकर्मणि अपि,
यदा एकचित्रकर्मणि पुद्गलपिण्ड इति स्थाप्यते तदा असद्भावपिण्डस्थापना, यदा त्रिप्रभृतिपिण्डबुद्ध्या कल्प्यते तदा
सद्भावस्थापना, एवं सद्भावपिण्ड असद्भावपिण्ड च जानीहि । इत्यादि स्थापनापिण्डाधिकारे । पुनः श्रीअनुयोगद्वारसूत्रे
(१२ पत्रे) स्थापनावश्यक यथा ॥

"से किं तं ठवणावस्सयं ? ठवणावस्सय २ जण्ण कट्ठकम्मे वा १ चित्तकम्मे वा २ पोत्थकम्मे वा ३ लेप्पकम्मे वा ४
गंथिमे वा ५ वेढिमे वा ६ पूरिमे वा ७ संघाइमे वा ८ अक्खे वा ९ वराडए वा १० एगो वा अणेगो वा सब्भाव-
ठवणा वा असब्भावठवणा वा आवस्सएत्ति ठवणा ठविज्जइ से त ठवणावस्सय (सूत्र १०)" इति, एतद्व्याख्या-एत-
द्वृत्तितो ज्ञेया, पुनः विचार्यतां मनोमते रे ! तव नूतनम् मतं त्रिंशदधिकपञ्चदशशतवर्षे १५३० प्रवर्तितं, परं काऽपि
तीर्थे श्रूयते जीवत्स्वामिप्रतिमा, पुनः घङ्घाणीनामग्रामे सांप्रतमेव भूमिगृहाद् बह्व्यो पुरातन्यो जिनप्रतिमाः प्रकटीबभूवु-
स्ता अतिपुरातनाः सन्ति, तत्र तत्र लिखितप्रशस्तिर्संवद् एव प्रतिभूः । पुना रामसैन्यग्रामे अपि अतिजीर्णा श्रीऋषभदेव-
प्रतिमा प्रादुर्भूताऽस्ति, एवं शतशः स्थाने स्थाने शतशः प्रतिमा इति । पुनः श्रीदशाश्रुतस्कन्धे स्थविरावल्यां श्रीभद्रबाहु-
स्वामिना देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणपर्यन्ता भाविनः साधवो वन्दिताः सन्ति, यस्मिन् अवसरे वन्दिताः तदवसरे ते साधुजीवाः

चतुर्गतिवर्तमानाः। ननु—भावश्रमणाः क्वाऽभूवन्? ततो भाविजिना अपि द्रव्यजिना इति हेतोः नमस्कारार्हाः, तथा स्थापनायाः रूपार्हत्वात् भावार्हद्वत् जिनप्रतिमाऽपि पूजनीया इति रहस्य, पुनरपि पिण्डनिर्युक्तौ तद्वृत्तौ च (६ पत्रे) पिण्डस्थापनाया एव स्वरूपं, तथाहि—"ठवणापिंड अतो वोच्छं" तत्समर्थयमानः स एव आह—

"अक्खे १ वराडए वा २, कट्ठे ३ पोत्थे ४ व चित्तकम्मे वा ५। सब्भाव ६ मसब्भाव ७, ठवणापिंड वियाणाहि ॥ ७ ॥" व्याख्या—सत इव=विद्यमानस्य इव भाव सत्ता=सद्भावः, किं उक्तं भवति?—स्थाप्यमानस्य इन्द्रादेः अनुरूपाङ्गोपाङ्गचिह्नवाहनप्रहरणादिपरिकररूपो य आकारविशेषो यद्दर्शनात् साक्षाद् विद्यमान इव इन्द्रादिः लक्ष्यते स सद्भावः, तदभावो असद्भावः, तत्र सद्भाव असद्भावं च आश्रित्य अक्षे—चन्दनके वराटके—कपर्दके, वाशब्दोऽङ्गुलीयकादिसमुच्चयार्थः, उभयत्राऽपि च जातौ एकवचनं, तथा काष्ठे—दारुणि पुस्ते=टिंगलिकादौ, वाशब्दो लेप्यपाषाणसमुच्चये, चित्रकर्मणि वा या पिण्डस्य स्थापना साऽक्षादिः, काष्ठादिषु आकारविशेषो वा पिण्डत्वेन स्थाप्यमानः स्थापनापिण्ड, इयं अत्र भावना—यदा काष्ठे लेप्ये उपले चित्रकर्मणि वा प्रभूतद्रव्यसश्लेषरूपः पिण्डाकार साक्षाद् विद्यमान इव आलिख्यते, यद्वा अक्षाः कपर्दकाः अङ्गुलीयकादयो वा एकत्र सश्लेष्यापिण्डत्वेन स्थाप्यन्ते यथा एष पिण्डः स्थापित इति, तदा तत्र पिण्डाकारस्य उपलभ्यमानत्वात् सद्भावतः पिण्डस्थापना, यदा तु एकस्मिन् अक्षे वराटके अङ्गुलीयके वा पिण्डत्वेन स्थापना एष पिण्डो मया स्थापित इति, तदा तत्र पिण्डाकारस्य अनुपलभ्यमानत्वात्, अक्षादिगतपरमाणुसङ्घातस्य च अविवक्षणाद् असद्भावतः पिण्डस्थापना, चित्रकर्मणि अपि यदा एकबिन्द्वालिखनेन पिण्डस्थापना, यथा एष पिण्ड

आलिखित इति विवक्षा तदा प्रभूतद्रव्यसंश्लेषाकारादर्शनात् असद्भावपिण्डस्थापना, यदा पुनः एकबिन्द्वालिखनेऽपि एप मया गुडपिण्डः ओदनपिण्डः सक्तुपिण्डो वा आलिखित इति विवक्षा तदा सद्भावतः पिण्डस्थापना ॥ अमुं एव सद्भावासद्भावस्थापनाविभाग भाष्यकृत् उपदर्शयति—

"इक्को व असब्भावे, तिण्ह ठवणा उ होइ सब्भावे । चित्तेसु असब्भावे, दारुमलेप्पोवले सियरो ॥ ७ ॥"

व्याख्या—एकोऽक्षो वराटकोऽङ्गुलीयकादिः वा यदा पिण्डत्वेन स्थाप्यते तदा सा पिण्डस्थापना, 'असद्भावे' असद्भावविषया, असद्भाविकी इत्यर्थः ॥

तत्र पिण्डाकृतेः अनुपलभ्यमानत्वात्, अक्षादिगतपरमाणुसङ्घातस्य च अविवक्षणात् । यदा तु त्रयाणा अक्षाणा वराटकानां अङ्गुलीयकादीना वा परस्परं एकत्र संश्लेषकरणेन पिण्डत्वेन स्थापना तदा सा पिण्डस्थापना, 'सद्भावे' सद्भाविकी, तत्र पिण्डाकृतेः उपलभ्यमानत्वात्, त्रयाणां चेति उपलक्षणं, तेन द्वयोः अपि बहूना च इत्यपि द्रष्टव्य । तथा 'चित्रेपु'—चित्रकर्मसु यदा एकबिन्द्वालिखनेन पिण्डस्थापना तदा साऽपि असद्भावे, यदा तु चित्रकर्मसु अपि अनेकबिन्दुसंश्लेषालिखनेन प्रभूतद्रव्यसङ्घातात्मकपिण्डस्थापना तदा सा सद्भावस्थापना, पिण्डाकृते तत्र दर्शनात् । तथा दारुकलेप्योपलेषु पिण्डाकृतिसंपादनेन या पिण्डस्य स्थापना स 'इतरः' सद्भावस्थापनापिण्डः, तत्र पिण्डाकारस्य दर्शनात् ॥ तद् एवं उक्तः स्थापनापिण्डः इति ॥ ४० ॥

॥ इति जिनप्रतिमास्थापना जिन—इत्यधिकारः ॥ ४० ॥

ननु–जिनप्रतिमापूजायाः फल किं ? का च जिनप्रतिमापूजकस्य गतिः ?, तद् आगमाक्षरैः दर्शयतु, उच्यते—यदेव विद्यमानतीर्थङ्करस्य वन्दनपूजादिफलं तदेव जिनप्रतिमापूजाया अपि फल सा एव गतिश्चाऽपि, श्रीराजप्रश्नीयोपाङ्गे (१७ पत्रे) विद्यमानतीर्थङ्करस्य वन्दनादिफल यथा "त महाफलं खलु देवाणुप्पियाण तहारूवाण अरहंताणं भगवंताणं नामगोअस्स वि सवणयाए ? किमग ! पुण अभिगमणवंदणनमसणपडिपुच्छणपज्जुवासणयाए ! त सेय खलु एगस्स वि आयरिअस्स धम्मिअस्स सुवयणस्स सवणयाए किमग ! पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए ? त गच्छामि [गच्छामो] णं देवाणुप्पिय समण भगव महावीर वदामि नमसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाण मगल चेइयं देवय पज्जुवासामि, एअ मे पिच्चा हिआए सुहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सति त्तिकट्टु एवं सपेहेइ' इत्यादि ॥ १ ॥ एवमेव श्रीविपाकसूत्रे चम्पानगर्यां श्रीमहावीरसमवसरणे श्रीमहावीरदेवस्य वन्दनादिफल, तथाहि–"एतेणं पेच्चभवे हिआए सुहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामिअत्ताए भविस्सति त्तिकट्टु" इत्यादि ॥ २ ॥ इत्थमेव श्रीभगवतीसूत्रादौ सर्वत्र ज्ञेय । अथ जिनप्रतिमापूजायाः फलं श्रीराजप्रश्नीयोपाङ्गे (९८ पत्रे) प्रोक्तं तन्निशम्यता, तथाहि–"तए णं तस्स सूरिआभस्स देवस्स पचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तीभाव गयस्स समाणस्स इमेयारूवे [अज्झत्थिए] अब्भत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुपज्जित्था–किं मे पुर्वि करणिज्ज ? किं मे पच्छा करणिज्ज ? किं मे पुर्वि सेयं ? किं मे पच्छा सेय ? किं मे पुर्वि पि पच्छावि करणिज्जं ? किं मे पुर्वि पि पच्छा वि हिआए सुहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामिअत्ताए भविस्सइ ? तए ण तस्स सूरिआभस्स देवस्स सामाणिअपरिसोववण्णगा देवा सूरिआभस्स

आलिखित इति विवक्षा तदा प्रभूतद्रव्यसंश्लेषाकारादर्शनात् असद्भावपिण्डस्थापना, यदा पुनः एकबिन्द्वालिखनेऽपि एष मया गुडपिण्डः ओदनपिण्डः सक्तुपिण्डो वा आलिखित इति विवक्षा तदा सद्भावतः पिण्डस्थापना ॥ अमुं एव सद्भावासद्भावस्थापनाविभाग भाष्यकृद् उपदर्शयति—

"इक्को उ असब्भावे, तिण्ह ठवणा उ होइ सब्भावे । चित्तेसु असब्भावे, दारुमलेप्पोवले सियरो ॥ ७ ॥"

व्याख्या–एकोऽक्षो वराटकोऽङ्गुलीयकादिः वा यदा पिण्डत्वेन स्थाप्यते तदा सा पिण्डस्थापना, 'असद्भावे' असद्भावविषया, असद्भाविकी इत्यर्थः ॥

तत्र पिण्डाकृतेः अनुपलभ्यमानत्वात्, अक्षादिगतपरमाणुसङ्घातस्य च अविवक्षणात् । यदा तु त्रयाणा अक्षाणा वराटकानां अङ्गुलीयकादीनां वा परस्परं एकत्र संश्लेषकरणेन पिण्डत्वेन स्थापना तदा सा पिण्डस्थापना, 'सद्भावे' सद्भाविकी, तत्र पिण्डाकृतेः उपलभ्यमानत्वात्, त्रयाणां चेति उपलक्षणं, तेन द्वयोः अपि बहूना च इत्यपि द्रष्टव्य । तथा 'चित्रेषु'–चित्रकर्मसु यदा एकबिन्द्वालिखनेन पिण्डस्थापना तदा साऽपि असद्भावे, यदा तु चित्रकर्मसु अपि अनेकबिन्दुसंश्लेषालिखनेन प्रभूतद्रव्यसङ्घातात्मकपिण्डस्थापना तदा सा सद्भावस्थापना, पिण्डाकृतेः तत्र दर्शनात् । तथा दारुकलेप्योपलेषु पिण्डाकृतिसंपादनेन या पिण्डस्य स्थापना स 'इतरः' सद्भावस्थापनापिण्डः, तत्र पिण्डाकारस्य दर्शनात् ॥ तद् एवं उक्तः स्थापनापिण्डः इति ॥ ४० ॥

॥ इति जिनप्रतिमास्थापना जिन–द्रव्याधिकारः ॥ ४० ॥

ननु–जिनप्रतिमापूजायाः फलं किं? का च जिनप्रतिमापूजकस्य गतिः?, तदू आगमाक्षरैः दर्शयतु, उच्यते—यदेव विद्यमानतीर्थङ्करस्य वन्दनपूजादिफलं तदेव जिनप्रतिमापूजाया अपि फलं सा एव गतिश्चाऽपि, श्रीराजप्रश्नीयोपाङ्गे (१७ पत्रे) विद्यमानतीर्थङ्करस्य वन्दनादिफलं यथा "त महाफलं खलु देवाणुप्पियाण तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं नामगोअस्स वि सवणयाए? किमंग! पुण अभिगमणवंदणनमंसणपडिपुच्छणपज्जुवासणयाए! त सेयं खलु एगस्स वि आयरिअस्स धम्मिअस्स सुवयणस्स सवणयाए किमंग! पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए? त गच्छामि [गच्छामो] णं देवाणुप्पिय समणं भगवं महावीरं वंदामि नमसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं चेइयं देवयं पज्जुवासामि, एअं मे पिच्चा हिआए सुहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सति त्तिकट्टु एवं सपेहेइ' इत्यादि ॥ १ ॥ एवमेव श्रीविपाकसूत्रे चम्पानगर्यां श्रीमहावीरसमवसरणे श्रीमहावीरदेवस्य वन्दनादिफलं, तथाहि–"एतेणं पेच्चभवे हिआए सुहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामिअत्ताए भविस्सति त्तिकट्टु" इत्यादि ॥ २ ॥ इत्थमेव श्रीभगवतीसूत्रादौ सर्वत्र ज्ञेयं। अथ जिनप्रतिमापूजायाः फलं श्रीराजप्रश्नीयोपाङ्गे (९८ पत्रे) प्रोक्तं तन्निशम्यतां, तथाहि–"तए णं तस्स सूरिआभस्स देवस्स पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तीभावं गयस्स समाणस्स इमेयारूवे [अज्झत्थिए] अब्भत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुपज्जित्था–किं मे पुव्विं करणिज्जं? किं मे पच्छा करणिज्जं? किं मे पुव्विं सेयं? किं मे पच्छा सेयं? किं मे पुव्विं पि पच्छावि करणिज्जं? किं मे पुव्विं पि पच्छा वि हिआए सुहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामिअत्ताए भविस्सइ? तए णं तस्स सूरिआभस्स देवस्स सामाणिअपरिसोववण्णगा देवा सूरिआभस्स

देवस्स इमेआरूवमज्झत्थिअ जाव समुप्पन्नं समभिजाणित्ता जेणेव सूरिआभे देवे तेणेव उवागच्छति, सूरिआभं देवं करयलपरिग्गहिअं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति, वद्धावित्ता एवं वयासी–एवं खलु देवाणुप्पिआणं सूरिआभे विमाणे सिद्धायतणंसि जिणपडिमाणं जिणुस्सेहपमाणमित्ताणं अट्ठसयं सनिक्खित्तं चिट्ठति, सभाए णं सुहम्माए माणवए चेइए खंभे वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहूओ जिणसकहाओ सन्निक्खित्ताओ चिट्ठति, ताओ णं देवाणुप्पिआणं अण्णेसिं च बहूणं वेमाणियाणं देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ जाव पज्जुवासणिज्जाओ, तं एयं णं देवाणुप्पिआणं पुव्विं करणिज्जं, तं एयं णं देवाणुप्पिआणं पच्छा करणिज्जं तं एयं णं देवाणुप्पियाणं पुव्विं सेयं, तं एयं णं देवाणुप्पियाणं पच्छा सेयं, तं एयं णं देवाणुप्पिआणं पुव्विं पि पच्छा वि हिआए सुहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामिअत्ताए भविस्सति"। पुनः श्रूयतां देवपूजाफलं साधोः पञ्चमहाव्रतपालनस्य श्रीस्थानाङ्गे तृतीयस्थाने चतुर्थोद्देशके (१७६ पत्रे) प्रोक्तं, तदेव फलं जिनप्रतिमापूजनस्याऽपि प्रोक्तं, तथाहि–

"तओ ठाणा अववसितस्स अहिताते असुभाते अखमाते अणिस्सेसाते अणाणुगामिअत्ताते भवति, तं–से णं मुंडे भवित्ता अगारातो अणगारिअं पव्वतिते निग्गंथे पावयणे संकिते कंखिते वितिगिच्छिते भेदसमावन्ने कलुससमावन्ने निग्गंथं पावयणं णो सद्दहति णो पत्तियति णो रोएति, तं परिस्सहा अभिजुंजिअ अभिजुंजिअ अभिभवंति, नो से परिस्सहे अभिजुंजिअ अभिजुंजिअ अभिभवति" से णं मुंडे भवित्ता अगारातो अणगारितं पव्वतिते पंचहिं महव्वएहिं संकिते जाव कलुससमावन्ने पंचमहव्वताइं नो सद्दहति जाव णो से परिस्सहे अभिजुंजिअ अभिजुंजिअ अभिभवति।

से णं मुंडे भवित्ता आगारातो अणगारियं पव्वतिते छर्हिं जीवनिकाएहिं निस्संकए [किते] जाव परिसहे अभिजुंजिअ अभिजुंजिअ अभिभवति । णो त परिसहा अभिभवति २ ॥"

व्याख्याऽपि यथा—अनन्तरं मरणमुक्त, मृतस्य तु जन्मान्तरे यथाविधस्य यद्वस्तु त्रय यस्मै सपद्यते तस्य तस्मै दर्शयितुमाह—'तओ ठाणा इत्यादि' त्रीणि स्थानानि—प्रवचनमहाव्रतजीवनिकायलक्षणानि अव्यवसितस्य—अनिश्चयवतोऽपराक्रमवतो वाऽहिताय अपथ्याय—असुखाय—दुःखाय अक्षमाय—असंगतत्वाय अनिःश्रेयसाय—अमोक्षाय अननुगामिकत्वाय—अशुभानुबन्धाय भवन्ति। 'से णं'ति यस्य त्रीणि स्थानानि अहितादित्वाय भवन्ति। स शङ्कितो—देशत' सर्वतो वा सशयवान्, काङ्क्षितस्तथैव मतान्तरस्यापि साधुत्वेन मन्ता विचिकित्सितः—फल प्रति शङ्कोपेतः अत एव भेदसमापन्नो—द्वैधीभावमापन्न एवमिद न चैवमितिमतिक, कलुषसमापन्नो—नैतदेवमितिप्रतिपत्तिकः । ततश्च निर्ग्रन्थानामिद नैर्ग्रन्थक, प्रशस्त प्रगत प्रथम वा वच नमिति प्रवचन—आगमो दीर्घत्व प्राकृतत्वात्, न श्रद्धत्ते सामान्यतो न प्रत्येति—न प्रतीतिविषयी करोति न रोचयति—न चिकीर्षाविषयी करोति 'त'मिति य एवंभूतस्त प्रव्रजिताभास परिसह्यन्ते इति परीषहा—क्षुधादय अभियुज्य अभियुज्य—सम्बन्धमुपगत्य प्रतिस्पर्ध्य वा अभिभवन्ति—न्यक्कुर्वन्ति इति, शेष सुगमं । उक्तविपर्ययसूत्रं प्राग्वत्, किन्तु हित—प्रदोपकर इह परत्र च आत्मनः परेषा च पथ्यान्नभोजनवत्, सुख आनन्दः तृषितस्य शीतलपानमिव, क्षम उचित तथाविधव्याधिव्याघातकौषधपानमिव, निःश्रेयस निश्चित श्रेयः—प्रशस्य भावतः पचनमस्कारकरणमिव अनुगामिक अनुगमनशील भास्वरद्रव्यजनितच्छायेवेति ॥ ४ ॥

पुनः श्रीपाक्षिकसूत्रेऽपि, तथाहि–"एस खलु पाणाइवायस्स वेरमणे हिए सुहे खमे निस्सेयसिए आणुगामिए" इत्यत्र इद रहस्य—पंचमहाव्रतपालनस्य यत् "हिआए सुहाए खमाए निस्सेसिआए आणुगामिआए" इत्यनेन फलमुक्त तदेव जिनप्रतिमापूजाया अपि फलमुक्त, पुनश्चैत्यस्य जिनप्रतिमारूपस्य वैयावृत्तिकरणे कर्म निर्जरारूपं फल श्रीप्रश्नव्याकरणे सवरद्वारे (१२२ पत्रे) प्रोक्त, तथाहि–

"अचंत-बाल-दुब्बल-गिलाण वुड्डखमके पवत्ति-आयरिअ-उवज्झाए सेहे साहम्मिए तवस्सी कुलगण संघ चेइअट्ठे अ निज्जरट्ठी वेयावच्चं अणिस्सियं दसविह बहुविह करेइ अ" अथ जिनप्रतिमापूजकस्य सूर्याभदेवस्य श्रीराजप्रश्नीयोपाङ्गे (४४ पत्रे) श्रीमहावीरदेवेन या गतिरुक्ता ता श्रूयतां, तथाहि–

"तए ण से सूरिआमे देवे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्म सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हयहियए उट्ठाए उट्ठेति, उट्ठित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ, नमसइ वंदित्ता नमसित्ता एव वयासी—अह णं भंते ! सूरिआमे देवे किं भवसिद्धिए किं अभवसिद्धिए १ सम्मद्दिट्ठी मिच्छदिट्ठी ? २ परित्तसंसारिए अणतसंसारिए ? ३ सुलभबोहिए दुल्लभबोहिए ? ४ आराहए विराहए ? ५ चरिमे अचरिमे ? ६ तए णं समणे भगवं महावीरे सूरिआभं देवं एव वयासी–सूरिआभा ! तुम णं भवसिद्धिए नो अभवसिद्धिए १ सम्मदिट्ठी नो मिच्छदिट्ठी २ परित्तससारी नो अणंतसंसारी ३ सुलभबोही नो दुल्लभबोही ४ आराहए नो विराहए ५ चरिमे नो अचरिमे ६ । तए ण से सूरिआमे देवे समणेणं भगव-

या महावीरेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए परमसोमणस्से" इत्यादि । पुनः श्रीबृहत्कल्पे जिनप्रतिमादर्शनात् ज्ञानदर्शनचारित्रलाभरूपो भावग्रामः कथितोऽस्ति, तथाहि–

"तित्थयरा १ जिन २ चउदस ३ भिन्ने ४ संविग्ग ५ तह य असविग्गे ६ सारूविय ७ वय ८ दंसण ९ पडिमाओ १० भावगामाओ ११ ॥ ४१ ॥"

॥ इति जिनप्रतिमापूजाफलाधिकारः ॥ ४१ ॥

ननु–प्रतिमायाः पूजने षट्कायवधेन महानारम्भो जायते, कथ ? पूर्वं पाषाणादिघटने सचित्तपाषाणच्छेदादिना पृथ्वीकायवधः १ प्रतिमायाः स्नानकारापणे एकस्मिन् जलबिन्दौ केवलिनाऽसङ्ख्याता जीवा दृष्टाः प्रतिपादिताश्चेति हेतोरप्कायवधः २ धूपोत्क्षेपे दीपप्रज्वालने चाऽग्निकायवधः ३ शङ्खादिवाद्यवादने वायुकायवधः ४ कुसुममालादीना कण्ठादिपरिधापने वनस्पतिकायवध ५ दीपादौ पतङ्गादिजीवमरणेन त्रसकायवधः ६ इति । जैनधर्मस्तु जीवदयामयः, तत्कथ मानयामि जिनप्रतिमापूजाम् ?, इत्यत्र उच्यते—ननु–जिनधर्मो निःकेवल जीवदयारूपो वाऽऽज्ञासहितदयारूपो वा ? नाऽऽद्यः पक्ष कक्षीकार्यः, भगवदुक्तागमपक्षेण सम प्रत्यक्ष विरोधस्य लक्ष्यमाणत्वात् । कथ यदि श्रीवीतरागदेवेन निःकेवल जीवदयारूपो धर्मः प्ररूपितोऽभविष्यत् तदा साधूना नदीलङ्घनादिकं कर्तव्यं भगवान् नाऽकथयिष्यत् ?, तत्रापि पृथिव्यादिजीवाना वधस्य प्रत्यक्ष जायमानत्वात् । नदीलङ्घनं च श्रीस्थानाङ्गसूत्रे पञ्चमस्थाने द्वितीयोद्देशके प्रथमालापके (३०८ पत्रे), तथाहि–"नो कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा इमाओ उद्दिट्ठाओ गणिआओ वितजिता-

तो पंच महण्णवातो महानदीओ अंतो मासस्स दुक्खुत्तो वा तिक्खुत्तो वा उत्तरित्तए वा संतरित्तए वा, त जहा–गंगा १ जउणा २ सरऊ ३ एरावती ४ मही, ५ पंचहिं ठाणेहिं कप्पति, त जहा–भतसि वा १ दुब्भिक्खसि वा २ पव्वहेज्ज व ण कोइ ३ दओघसि वा एज्जमाणंसि महता वा ४ अणारितेसु य" इत्यादि । पुनः श्रीआचाराङ्गसूत्रे द्वितीयश्रुतस्कन्धे तृतीयाध्ययने ईर्यायाः प्रथमोद्देशके (१४६ पत्रे) "से भिक्खू वा भिक्खुणी वा पुव्वामेव तिरिच्छसंपातिम नाव जाणिज्जा, जाणित्ता से तमायाए एगंतमवक्कमिज्जा २ भडग पडिलेहिज्जा २ एगओ भोअणभडग करिज्जा २ ससी–सोवरिअं काय पाए पमज्जिज्जा २ सागारं भत्त पच्चक्खाइज्जा, एग पाय जले किच्चा एग पाय थले किच्चा ततो सजयामेव नावं दुरुहिज्जा ॥ (सूत्र १४१) । से भिक्खू वा भिक्खुणी वा नाव दुरुहमाणे नो नावाओ पुरतो दुरुहिज्जा, नो नावाओ मग्गओ दुरुहिज्जा, नो नावाओ मज्झओ दुरुहिज्जा, नो बाहाओ पगिज्झिय २ अगुलिआए उद्दिसिअ २ ओणमिअ २ उन्नमिअ २ निज्झाइज्जा । से ण परो नावागओ नावागयं वइज्जा–आउसतो ! समणा ! एय ता तुम नाव उक्कसाहिज्जा वा वुक्कसाहि वा खिवाहि वा रज्जूआए वा गहाय आकसाहि, नो से त परिन्न परिजाणिज्जा, तुसिणीओ उवेहिज्जा । से ण परो नावागओ नावाग० वइज्जा आउसंतो ! समणा ! नो सचाएसि तुम नावं उक्कसित्तए वा वुक्कसित्तए वा खित्तए वा रज्जूयाए वा गहाय आकसित्तए वा, आहर, एयं नावाए रज्जूअ सय चेव ण वयं नावं उक्कसिस्सामो । वा जाव रज्जूए वा गहाय आकसिस्सामो, णो से तं प० तुसिणीओ वइज्जा, से ण परो नावागओ नावा गय वइज्जा । आउसंतो ! समणा ! एअ ता तुमं नावं आलित्तेण वा पीढएण वा वंसेण वा वलएण वा अवल्लुएण वा वाहेहि, नो से तं प० तुसि० ।

से णं परो० एय ता तुमं नावाए उदय हत्थेण वा पाएण वा मत्तेण वा पडिग्गहेण वा नावाउस्सिंचणेण वा उस्सिंचाहि, णो से तं। से ण परो आउसंतो ! समणा ! एयं तुम नावाए उत्तिंग हत्थेण वा पाएण वा बाहुणा वा ऊरुण वा उदरेण वा सीसेण वा काएण वा उस्सिंचणेण वा चेलेण वा मट्टियाए वा कुसपत्तएण वा कुविंदएण वा पिहेहि, नो से त। से भिक्खू वा भिक्खुणी वा नावाए उत्तिंगेण उदय आसवमाण पेहाए उवरुवरिं नाव कज्जवावेमाणिं पेहाए नो पर उवसंकमित्तु एव बूया–आउसतो ! गाहावई एय ते नावाए उदय उत्तिंगेण आसवइ उवरुवरिं नावा वा कज्जलावेइ, एयप्पगार मण वा वाय वा नो पुरओ कट्टु विहरिज्जा, अप्पुस्सुए अवहिल्लेसे एगतगएण अप्पाणं विउसेज्जा समाहीए, तओ० सं०, नावासतारिमे य उदए आहारिय रीइज्जा, एय खलु सया जइज्जासित्तिबेमि × × × × से ण परो णावा० आउसंतो ! समणा ! एय ता तुम छत्तग वा जाव चम्मछेयणग वा गिण्हाहि, एआणि तुम विरूवरूवाणि सत्थजायाणि धारेहि, एय ता तुम दारग वा दारिग वा पज्जेहि णो से त × × × × से ण परो नावागए नावागय वएज्जा–आउसतो ! एस ण समणे नावाए भडभारिए भवति, से ण बाहाए गहाय नावाओ उदगसि पक्खिविज्जा, एयप्पगार निग्घोस सुच्चा निसम्म से अ चीवरधारी सिया खिप्पामेव चीवराणि उव्वेढिज्ज वा निवेढिज्ज वा उप्फेस वा करिज्जा, अह पुण एवं जाणिज्जा अभिक्कतकूरकम्मा खलु बाला बाहाहिं गहाय नावाओ उदगंसि पक्खिविज्जा से पुव्वामेव वइज्जा–आउसतो ! गाहावती मा मेत्तो बाहाए गहाय नावओ उदगसि पक्खिवह, सय चेव ण अह नावाओ उदगसि ओगाहिस्सामि से णेव वयतं परो सहसा बलसा बाहाहिंग० नावाओ उदगसि पक्खिविज्जा, त णो सुमणे सिआ, नो दुम्मणे सिआ, नो

जाव समद्दीए तओ सजयामेव उदगसि उच्चावय मण नियच्छिज्जा, णो तेसिं बालाण घयाए वहाए समुट्ठिज्जा, अप्पुस्सुए जाव समहीए तओ सजयामेव उदगसि पविज्जा × × × × से भिक्खू वा भिक्खुणी वा उदगंसि पवमाणे नो हत्थेण हत्थ पाएण पाय काएण काय आसाइज्जा, से अणासायणाए अणासायमाणे तओ सजयामेव उदगंसि पविज्जा । से भिक्खू वा भिक्खुणी वा उदगसि पवमाणे नो उम्मुग्गनिमुग्गिअ करिज्जा, मामेय उदगं कन्नेसु वा अच्छीसु वा नक्कसि वा मुहसि वा परिआवज्जिज्जा, तओ, सजयामेव उदगसि पविज्जा । से भिक्खू वा उदगसि पवमाणे दुब्बलिअ पाउणिज्जा, खिप्पामेव उवहिं विगिंचिज्ज वा विसोहिज्ज वा, नो चेव ण साइज्जिज्जा, अह पुण जाणिज्जा पारए सिआ उदगाओ तीर पाउणित्तए, तओ सजयामेव उदउल्लेण वा ससिणद्धेण वा काएण उदगतीरे चिट्ठिज्जा । से भिक्खू वा भिक्खुणी वा उदउल्ल वा कायं वा ससिणद्ध वा काय नो आमज्जिज्जा वा, णो पमज्जिज्जा वा सलिहिज्जा वा निलिहिज्जा वा उवलिज्जा वा उवट्टिज्जा वा आयाविज्ज वा पयाविज्ज वा अह पुण एव जाणिज्जा विगओदओ मे काए छिन्नसिणेहे काए तहप्पगार काय आमज्जिज्ज वा पयाविज्ज वा, तओ सजयामेव गामाणुगाम दूइज्जमाणे णो परेहि सद्धिं परिजविअ २ गामाणुगाम दूइज्जिज्जा ।" पुनरत्रैव तृतीयाऽध्ययनस्य द्वितीयोद्देशके (३४९ पत्रे) एव जङ्घाप्रमाणनदीजललङ्घनविधिमाह, तथाहि—"से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अतरा से जघासंतारिमे उदग [गे] सिआ, से पुव्वामेव ससीसोवरिय काय पाए य पमज्जिज्जा २ एगं पाय जले किच्चा एग पाय थले किच्चा ततो संजयामेव जघासतारिमे उदगसि आहारिअ रीएज्जा" इत्यादि ॥

पुनः श्रीकल्पसूत्रेऽपि तृतीयसामाचार्यां (२५३ पत्रे) नदीलङ्घन चक्र आहारार्थे, तथाहि—"वासावास पज्जोसवियाण

कप्पइ निग्गयाण वा निग्गथीण वा सवओ समंता सक्कोसं जोयण भिक्खायरिआए गतुं, पडिनियत्तए × × × × एरावई कुणालाए जत्थ चक्किआ सिआ, एग पाय जले किच्चा, एग पाय थले किच्चा, एव चाकिआ, एव ण कप्पइ सवओ समता सक्कोस जोयण भिक्खायरियाए गतु पडिनियत्तए" इत्यादि। तथा पुनरपि श्रीकल्पे त्रयोदशसामाचार्यां (२६३ पत्रे) अल्पवृष्टौ जायमानायामपि निग्रन्थाना निग्रन्थीनां च भक्तपानार्थं गमन अनुज्ञात श्रीमहावीरदेवेन, तथाहि—

"वासावासं पज्जोसविअस्स पडिग्गहधारिस्स भिक्खुस्स नो कप्पइ वग्घारिअवुट्ठिकायसि गाहावइकुल भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा। कप्पइ से अप्पवुट्ठिकायसि सतरुत्तरसि गाहावइकुल भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा" इति वर्षत्यपि मेघे अनस्तमिते सूर्ये साधोः वसतौ आगमने एव आराधकत्व उक्त, तत्र स्थितौ तु विराधकत्व, अत्र आज्ञा एव प्रमाण। निष्केवल जीवदयापक्षे तु अनागमन श्रेयस्कर, आगमनादिना जाताया अप्कायविराधनाया तत्राऽभावात्, तत्सामाचारीपाठोऽपि तत्रैव यथा—

"वासावास पज्जोसविअस्स निग्गथस्स निग्गथीए वा गाहावइकुल पिंडवायपडिआए अणुपविट्ठस्स निगिज्झिय निगिज्झिय वुट्ठिकाए निवइज्जा, कप्पइ से अहे आरामंसि वा अहे उवस्सयंसि वा, अहे विअडगिहसि वा अहे रुक्खमूलसि वा उवागच्छित्तए", (पुनः २६४ पत्रे) "नो से कप्पइ पुवगहिएण भत्तपाणेण वेल उवायणावित्तए, कप्पइ से पुवामेव विअडग भुच्चा पिच्चा पडिग्गहग सलिहिअ सलिहिअ सपमज्जिय सपमज्जिय एगाययं भडग कट्टु सावसेसे सूरे जेणेव उवस्सए तेणेव उवागच्छित्तए, नो से कप्पइ त रयणिं तत्थेव उवायणावित्तए" इति। पुन श्रूयतां—श्रावकाणा साधूना

उच्चावय मण नियच्छिज्जा, णो तेसिं बालाण घयाए वहाए समुट्ठिज्जा, अप्पुस्सुए जाव समहीए तओ संजयामेव उदगंसि पविज्जा × × × × से भिक्खू वा भिक्खुणी वा उदगंसि पवमाणे नो हत्थेण हत्थं पाएण पायं काएण कायं आसाइज्जा, से अणासायणाए अणासायमाणे तओ संजयामेव उदगंसि पविज्जा । से भिक्खू वा भिक्खुणी वा उदगंसि पवमाणे नो उम्मुग्गनिमुग्गिअं करिज्जा, मामेयं उदगं कन्नेसु वा अच्छीसु वा नक्कंसि वा मुहंसि वा परिआवज्जिज्जा, तओ, संजयामेव उदगंसि पविज्जा । से भिक्खू वा उदगंसि पवमाणे दुब्बलिअं पाउणिज्जा, खिप्पामेव उवहिं विगिंचिज्ज वा विसोहिज्ज वा, नो चेव णं साइज्जिज्जा, अह पुण जाणिज्जा पारए सिआ उदगाओ तीरं पाउणित्तए, तओ संजयामेव उदउल्लेण वा ससिणद्धेण वा काएण उदगतीरे चिट्ठिज्जा । से भिक्खू वा भिक्खुणी वा उदउल्लं वा कायं वा ससिणद्धं वा कायं नो आमज्जिज्ज वा, णो पमज्जिज्ज वा संलिहिज्ज वा निल्लिहिज्ज वा उव्वलिज्ज वा उवट्टिज्ज वा आयाविज्ज वा पयाविज्ज वा अह पुण एवं जाणिज्जा विगओदओ मे काए छिन्नसिणेहे काए तहप्पगारं कायं आमज्जिज्ज वा पयाविज्ज वा, तओ संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जमाणे णो परेहिं सद्धिं परिजविअ २ गामाणुगामं दूइज्जिज्जा ।" पुनरत्रैव तृतीयाऽध्ययनस्य द्वितीयोद्देशके (३४९ पत्रे) एवं जङ्घामप्रमाणनदीजललङ्घनविधिमाह, तथाहि—"से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से जंघासंतारिमे उदगे [गं] सिआ, से पुव्वामेव ससीसोवरियं कायं पाए य पमज्जिज्जा २ एगं पायं जले किच्चा एगं पायं थले किच्चा तओ संजयामेव जंघासंतारिमे उदगंसि आहारिअं रीएज्जा" इत्यादि ॥

पुनः श्रीकल्पसूत्रेऽपि तृतीयसामाचार्यां (२५२ पत्रे) नदीलङ्घनं उक्तं आहारार्थे, तथाहि—"वासावासं पज्जोसवियाणं

महावीरं वंदति नमंसंति वंदित्ता नमंसित्ता पसिणाइं पुच्छति पसिणाइं पुच्छित्ता अट्ठाइं परिआदियंति अ० २ उट्ठाए
उट्ठेति उ० २ समणस्स भ० महा० अंतियाओ कोट्ठयाओ चेइयाओ पडिनि० प० २ जेणेव सावत्थी नगरी तेणेव पहा-
रेत्थ गमणाए । तए णं से संखे समणोवासए ते समणोवासए एवं वयासी-तुब्भे ण देवाणुप्पिया ! विउल असण पाण
खाइम साइम उवक्खडावेह, तए ण अम्हे त विउल असण पाण खाइम साइम आसाएमाणा विसाएमाणा परिभुजेमाणा परि-
भाएमाणा पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणा विहरिस्सामो, तए णं ते समणोवासगा संखस्स समणोवासगस्स एयमट्ठं
विणएण पडिसुणंति, तए ण तस्स संखस्स समणोवासगस्स अयमेयारूवे अब्भत्थिए जाव समुप्पज्जित्था-नो खलु मे
सेयं त विउल असण पाण जाव साइम आसाएमाणस्स जाव ४ पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणस्स विहरित्तए, सेअं
खलु मे पोसहसालाए पोसहियस्स बंभचारिस्स उम्मुक्कमणिसुवन्नस्स ववगयमालावन्नगविलेवणस्स निक्खित्तसत्थमुसलस्स
एगस्स अबिइयस्स दब्भसंथारोवगयस्स पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणस्स विहरित्तए त्तिकट्टु एवं संपेहेति २ जेणेव
सावत्थी नगरी जेणेव सए गिहे जेणेव उप्पला समणोवासिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता उप्पलं समणोवासियं
आपुच्छइ, आपुच्छित्ता जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोसहसालं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता पोसह-
सालं पमज्जइ, पो० २ उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेइ उ० पडि० २ दब्भसंथारगं संथरति, दब्भ० सं० २ दब्भसंथारगं
दुरूहइ, दु० २ पोसहसालाए पोसहिए बंभयारी जाव पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणे विहरइ । तए णं ते समणोवासगा
जेणेव सावत्थी नगरी जेणेव साइं २ गिहाइं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता विउल असण पाण खाइमं साइम उवक्खा-

च सर्वधर्मकर्तव्य पृथिव्याद्यारम्भपूर्वकमेव दृश्यते, यतो यद स्वं श्रेणिककोणिकतुङ्गिकानगरीवास्तव्यश्रावकादीना भग-
वद्वन्दनार्थं गमनाऽऽगमने पृथिव्यप्वनस्पतिकुन्थुपिपीलिकादिजीवाना उपमर्दन जात न वा? जातमेव, न च वक्तव्य
जीवोपमर्दे तेषा पुण्यमपि जातं न भविष्यतीति । तेषां हि—

"आए सुहाए खमाए निस्सेअसाए अणुगामिअत्ताए भविस्सइ" इति फलस्योक्तत्वात् । अपि च पुष्कलिश्रावकेण पाक्षिकपर्वण्यपि साधर्मिकाणां भोजनादिना साधर्मिकवात्सल्य चक्रे, तत्र तस्यारम्भो लग्नो न वा? न च वाच्यं तस्याऽऽरम्भ
एव लग्न, न शुभ फल भावि इति । यतस्तत्रैव तस्य पुण्यपुष्टेः फलस्योक्तत्वात् । यदुक्तं श्रीभगवतीसूत्रे द्वादशशतके प्रथ-
मोद्देशके (५५२ पत्रे) तथाहि—

"तेण कालेण तेण समएण सावत्थी नाम नगरी होत्था, वण्णओ कोट्ठए चेइए वण्णओ, तत्थ ण सावत्थीए नगरीए
बहवे संखप्पामोक्खा समणोवासगा परिवसंति, अड्ढा जाव अपरिभूया अभिगयजीवाजीवा जाव विहरंति, तस्स णं
संखस्स समणोवासगस्स उप्पलानामं भारिआ होत्था, सुकुमाल जाव सुरूवा समणोवासिया अभिगयजीवाजीवा
जाव विहरति । तत्थ णं सावत्थीए नगरीए पोक्खलीनाम समणोवासए परिवसइ अड्ढे अभिगयजाव विहरइ, तेण
कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे परिसा निग्गया जाव पज्जुवासति, तए ण ते समणोवासगा इमीसे कहा आलभि-
याए जाव पज्जुवासइ, तएण समणे भगवं महावीरे तेसिं समणोवासगाण तीसे य महति० धम्मकहा जाव परिसा
पडिगया, तए ण ते समणोवासगा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्म सोच्चा निसम्म हट्ठ तुट्ठ० समणं भगवं

महावीर वंदंति नमसंति वंदित्ता नमसित्ता पसिणाई पुच्छति पसिणाई पुच्छित्ता अट्ठाइ परिआदिअंति अ० २ उट्ठाए उट्ठेति उ० २ समणस्स भ० महा० अंतियाओ कोट्ठयाओ चेइयाओ पडिनि० प० २ जेणेव सावत्थी नगरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए । तए णं से संखे समणोवासए ते समणोवासए एवं वयासी–तुज्झे णं देवाणुप्पिया ! विउलं असण पाण खाइम साइम उवक्खडावेह, तए णं अम्हे त विउल असण पाण खाइम साइम आसाएमाणा विसाएमाणा परिभुंजेमाणा परिभाएमाणा पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणा विहरिस्सामो, तए ण ते समणोवासगा संखस्स समणोवासगस्स एअमट्ठं विणएणं पडिसुणंति, तए ण तस्स संखस्स समणोवासगस्स अयमेयारूवे अब्भत्थिए जाव समुप्पज्जित्था–नो खलु मे सेयं त विउलं असणं पाणं जाव साइम आसाएमाणस्स जाव ४ पक्खिअ पोसहं पडिजागरमाणस्स विहरित्तए, सेअं खलु मे पोसहसालाए पोसहिअस्स बंभचारिस्स उम्मुक्कमणिसुवण्णस्स ववगयमालावण्णगविलेवणस्स निक्खित्तसत्थमुसलस्स एगस्स अबिइयस्स दब्भसंथारोवगयस्स पक्खिअं पोसहं पडिजागरमाणस्स विहरित्तए त्तिकट्टु एवं संपेहेति २ जेणेव सावत्थी नगरी जेणेव सए गिहे जेणेव उप्पलासमणोवासिआ तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता उप्पलं समणोवासियं आपुच्छइ, आपुच्छित्ता जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोसहसालं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता पोसहसालं पमज्जइ, पो० प २ उच्चारपासवणभूमीं पडिलेहेइ, उ० पडि० २ दब्भसंथारगं संथरति, दब्भ० सं० २ दब्भसंथारगं दुरूहइ, दु० २ पोसहसालाए पोसहिए बंभयारी जाव पक्खिअं पोसहं पडिजागरमाणे विहरइ । तए ण ते समणोवासगा जेणेव सावत्थी नयरी जेणेव सयाइं गिहाइं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता विउलं असण पाण खाइम साइम उवक्खा-

दावेंति उ० २ अण्णमण्णे सद्दावेंति अ० स० २ एव वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हेहिं से विउले असणपाणखा-इमसाइमे उवक्खडाविए, संखे य ण समणोवासए नो हव्वमागच्छइ, त सेय खलु देवाणुप्पिया ! अम्ह सख समणोवा-सग सद्दावेत्तए। तए ण से पोक्खली समणोवासए ते समणोवासए एव वयासी—अच्छह ण तुज्झे देवाणुप्पिया ! सुणिव्वुया वीसत्था अहण्ण सख समणोवासग सद्दावेमित्तिकट्टु तेसिं समणोवासगाण अतिआओ पडिनिक्खमइ प० २ सावत्थीए नगरीए मज्झमज्झेण जेणेव सखस्स समणोवासगस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सखस्स समणो वासगस्स गिह अणुपविट्ठे। तए णं सा उप्पला समणोवासिआ पोक्खलिं समणोवासग एज्जमाण पासइ पासित्ता हट्ठतुट्ठ० आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता सत्तट्ठ पयाइ अणुगच्छइ अणुगच्छित्ता पोक्खलिं समणोवासगं वदति नमसति, वदित्ता नमसित्ता आसणेण उवनिमतेइ, आ० २ एवं वयासी—सदिसंतु ण देवाणुप्पिया ! किमागमणप्पयोअण ? तए णं से पोक्खली समणोवासए उप्पल समणोवासिय एव वयासी—कहिन्न देवाणुप्पिये ? सखे समणोवासए ? तए ण सा उप्पला समणोवासिआ पोक्खल समणोवासग एव वयासी—एव खलु देवाणुप्पिया ! सखे समणोवासए पोसहसालाए पोसहिए बभयारी जाव विहरइ। तए ण से पोक्खली समणोवासए जेणेव पोसहसाला जेणेव सखे समणोवासए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गमणागमणाए पडिक्कमइ, ग० २ सख समणोवासग वदति नमसति, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—एव खलु देवाणुप्पिया ! अम्हेहिं से विउले असण जाव साइमे उवक्खडाविए तं गच्छामोण देवाणुप्पिया ! त विउल असण जाव साइम आसाए-माणा जाव पडिजागरमाणा विहरामो। तए ण से संखे समणोवासए पोक्खलिं समणोवासग एव वयासी—नो खलु कप्पति

देवाणुप्पिया ! त विउल असण पाणं साइमं साइमं आसाएमाणस्स जाव पडिजागरमाणस्स विहरित्तए, कप्पइ मे पोसह-सालाए पोसहिअस्स जाव विहरित्तए, त छन्देणं देवाणुप्पिया ! तुब्मे त विउल असण पाण साइम साइमं आसाएमाणा जाव विहरइ, तए ण से पोक्खली समणोभासए सखस्स समणोवासगस्स अतियाओ पोसहसालाओ पडिनिक्खमति, पडिनिक्ख-मित्ता । सावत्थिं नगरिं मज्झमज्झेणं जेणेव ते समणोवासगा तेणेव उवागच्छइ" इत्यादि। अपि च श्राद्धाना साधुवन्दनार्थं सामायिकपौषधग्रहणार्थं धर्मशालाया गमनागमने, तथा क्षुधितस्य भोजनप्रदाने, तृषितस्य पानीयपाने आरम्भो जायते न वा? तथा साधवे अन्न [दान] ददता उष्णपान्यस्थाल्युद्घाटने उष्णबाष्पादिना वायुकायस्य सर्वत्र भ्रमरसूक्ष्मत्रसजीवाना च घातो भवति न वा?। तथा कश्चिच्छिकामोटने बादरवायुकायादिवधो भवति न वा?। तथा धान्यादिना सर्पादिजीवमोचने आरम्भो जायते न वा?। सर्वत्र भवत्येव इति रहस्य, तस्य प्रत्यक्ष दृश्यमानत्वेन अपलपितु अशक्यत्वात्। पुनर्यद सामायिकपौषधादिकधर्मकर्तव्यकरणार्थं धर्मशाला कार्यते तत्र तु प्रकट पड्कायोपमर्दो दरीदृश्यते, ततस्तद्धर्मशाला-कारापणे पुण्य पाप वा जायते ?। न च पुण्यमिति वक्तव्य, स्वपक्षक्षतेः। नाऽपि पाप, न च धर्मार्थं पापं कर्तव्यमिति भवन्मत, तदा कुत्र यास्यति ?। पुनः पाप चेत्, तदा धर्मशालानामस्थाने पापशालेति कथ्यताम्। तत उभयथाऽपि तव सङ्कटे पातो जात इतो व्याघ्र इतस्तटी। एव साधूनामपि गोचरी(र्या)भ्रमणे १ गुरुवन्दनार्थं गमने २ विहारकरणे ३ वस्त्र-पात्रादिप्रतिलेखनादिक्रियाकरणे ४ प्रतिक्रमणादौ क्षमाश्रमण दाने ५ च सर्वत्र पदे पदे आरम्भपूर्विकैव धर्मप्रवृत्तिः दृश्यते। अत्राऽऽह मनोमति शिष्यः, ननु यदि आरम्भपूर्विका प्रवृत्तिः एषा, तर्हि आरम्भस्य अशुभगतिहेतुत्वेन

दावेंति उ० २ अण्णमण्णे सद्दावेंति अ० स० २ एव वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हेहिं से विउले असणपाणखा-इमसाइमे उवक्खडाविए, संखे य ण समणोवासए नो हव्वमागच्छइ, त सेय खलु देवाणुप्पिया ! अम्ह सख समणोवा-सग सद्दावेत्तए । तए ण से पोक्खली समणोवासए ते समणोवासए एव वयासी—अच्छह ण तुज्झे देवाणुप्पिया ! सुणिव्वुया वीसत्था अहन्न सख समणोवासग सद्दावेमित्तिकट्टु तेसिं समणोवासगाणं अंतिआओ पडिनिक्खमइ प० २ सावत्थीए नगरीए मज्झमज्झेण जेणेव संखस्स समणोवासगस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सखस्स समणो वासगस्स गिह अणुपविट्ठे । तए ण सा उप्पला समणोवासिआ पोक्खलिं समणोवासग एज्जमाण पासइ पासित्ता हट्ठतुट्ठ० आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अभुट्ठित्ता सत्तट्ठ पयाइ अणुगच्छइ अणुगच्छित्ता पोक्खलिं समणोवासग वदति नमसति, वदित्ता नमसित्ता आसणेण उवनिमतेइ, आ० २ एवं वयासी—सदिसंतु ण देवाणुप्पिया ! किमागमणप्पयोअण ? तए णं से पोक्खली समणोवासए उप्पल समणोवासियं एव वयासी—कहिन्न देवाणुप्पिये ? सखे समणोवासए ? तए णं सा उप्पला समणोवासिआ पोक्खल समणोवासग एव वयासी—एव खलु देवाणुप्पिया ! सखे समणोवासए पोसहसालाए पोसहिए बभयारी जाव विहरइ । तए ण से पोक्खली समणोवासए जेणेव पोसहसाला जेणेव सखे समणोवासए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गमणागमणाए पडिक्कमइ, ग० २ संख समणोवासग वदति नमसति, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—एव खलु देवाणुप्पिया ! अम्हेहिं से विउले असण जाव साइमे उवक्खडाविए त गच्छामोण देवाणुप्पिया ! त विउल असण जाव साइम आसाए-माणा जाव पडिजागरमाणा विहरामो । तए ण से संखे समणोवासए पोक्खलिं समणोवासग एव वयासी—नो खलु कप्पति

देवाणुप्पिया ! त विउल असण पाणं खाइमं साइमं आसाएमाणस्स जाव पडिजागरमाणस्स विहरित्तए, कप्पइ मे पोसहसालाए पोसहिअस्स जाव विहरित्तए, त छंदेण देवाणुप्पिया ! तुब्भे त विउल असण पाण खाइम साइमं आसाएमाणा जाव- विहरह, तए णं से पोक्खली समणोमासए सखस्स समणोवासगस्स अतियाओ पोसहसालाओ पडिनिक्खमति, पडिनिक्खमित्ता । सावत्थिं नगरिं मज्झमज्झेणं जेणेव ते समणोवासगा तेणेव उवागच्छइ" इत्यादि। अपि च श्राद्धाना साधुवन्दनार्थं सामायिकपौषधग्रहणार्थं धर्मशालाया गमनागमने, तथा क्षुधितस्य भोजनप्रदाने, तृषितस्य पानीयपाने आरम्भो जायते न वा? तथा साधवे अन्न [दान] ददतां उष्णधान्यस्थाल्युद्घाटने उष्णबाष्पादिना वायुकायस्य सर्वत्र भ्रमत्सूक्ष्मत्रसजीवाना च घातो भवति न वा ? । तथा कदिच्छिकाझाटने बादरवायुकायादिवधो भवति न वा ? । तथा धान्यादिना सर्पादिजीवमोचने आरम्भो जायते न वा ? । सर्वत्र भवत्येव इति रहस्य, तस्य प्रत्यक्ष दृश्यमानत्वेन अपलपितु अशक्यत्वात् । पुनर्वद सामायिकपौषधादिकधर्मकर्तव्यकरणार्थं धर्मशाला कार्यते तत्र तु प्रकट षट्कायोपमर्दो दरीदृश्यते, ततस्तद्धर्मशाला- कारापणे पुण्य पाप वा जायते ? । न च पुण्यमिति वक्तव्य, स्वपक्षक्षतेः । नाऽपि पाप, न च धर्मार्थं पाप कर्तव्यमिति भवन्मत, तदा कुत्र यास्यति ? । पुनः पाप चेत्, तदा धर्मशालानामस्थाने पापशालेति कथ्यताम् । तत उभयथाऽपि तव सकटे पातो जात इतो व्याघ्र इतस्तटी । एव साधूनामपि गोचरी(र्या)भ्रमणे १ गुरुवन्दनार्थं गमने २ विहारकरणे ३ वस्त्र- पात्रादिप्रतिलेखनादिक्रियाकरणे ४ प्रतिक्रमणादौ क्षमाश्रमण दाने ५ च सर्वत्र पदे पदे आरम्भपूर्विकैव धर्मप्रवृत्ति दृश्यते । अत्राऽऽह मनोमतिः शिष्यः, ननु यदि आरम्भपूर्विका प्रवृत्तिः एषा, तर्हि आरम्भस्य अशुभगतिहेतुत्वेन

किमर्थं धर्मार्थिभि सा क्रियते ? उच्यते—तीर्थङ्करदेवस्य आज्ञात्वात्, सा च निर्वाणफलेति । ततो निर्वाणसुखफलार्थिभिः अवश्यं कर्तव्या इति । अत्रार्थे श्रीस्थानांगवृत्तिगतं गाथाद्वयं (११० पत्रे) यथा—

"भण्णइ जिणपूआए, कायवहो जइवि होइ उ कहिंचि । तहवि तई परिसुद्धा, गिहीण कूवाहरणजोगा ॥ १ ॥
असदारंभपवत्ता, ज च गिही तेण तेसिं विसेआ । तन्निवित्तिफलच्चिअ, एसा परिभावणीअमिद ॥ २ ॥"

ननु—तर्हि सर्वत्र धर्मकर्तव्ये आरम्भकरणे सत्यपि किं पाप न लगति ? उच्यते—सत्य, सत्यारम्भेऽपि पृथिव्यादित्रसजीवानामुपरि तेषां मारणाध्यवसायो नास्ति, किं तु रक्षणाध्यवसाय । पापं तु दुष्टमनसि आध्याते भवेद्, यदुक्त श्रीपिण्डनिर्युक्तौ (१७८ पत्रे)—

"जा जयमाणस्स भवे, विराहणा सुत्तविहिसमग्गस्स । सा होइ निज्जरफला, अज्झत्थविसोहिजुत्तस्स ॥ ६७१ ॥"

पुनरत्रार्थे श्रीभगवतीसूत्र प्रतिभूः, तथाहि— (२८८ पत्रे)

"समणोवासगस्स णं भंते पुव्वामेव तसपाणसमारंभे पच्चक्खाए भवति पुढविसमारंभे अपच्चक्खाहे भवति से अ पुढविं खणमाणे अण्णयरं तसं पाणं विहिंसेज्जा से णं भंते ? त वय अतिचरति गो० नो तिणट्ठे समट्ठे णो खलु से तस्स अइवायाए आवट्टति ।" पुनस्तत्रैवोक्तं—

"समणोवासगस्स णं पुव्वामेव वणस्सइसमारंभे पच्चक्खाए से अ पुढविं खणमाणे अण्णयरस्स रुक्खस्स मूलं छिंदेज्जा से ण भंते ? त वयं अतिचरति ? नो तिणट्ठे समट्ठे णो खलु से तस्स अइवायाए आवट्टति इति ।" एवमेव यद्यपि पूजाकरणे

जलाग्निपुष्पादीनां उपमर्दो जायते परं पूजाकर्तुस्तेषां जलाग्निपुष्पादीनां उपमर्दे मनो नाऽस्ति, प्रत्युत तद्रक्षणे यतना क्रियमाणा अस्ति, मनस्तु निष्केवलं भगवद्भक्तिविशिष्टं वर्तते, तदिदं आगतं-सत्यपि आरम्भे यत्तीर्थङ्करदेवेन अनुज्ञातं तत्सत्यमेव । तत आज्ञासहितो जीवदयारूपो, न तु निष्केवलं जीवदयारूपोऽपि आज्ञारहित इति ॥

॥ इति आज्ञासहितदयाधर्माधिकारः ॥ ४२ ॥

ननु-श्रीभगवतीसूत्रे देवा अधर्मिण उक्तास्तर्हि काऽऽगमे जिनप्रतिमापूजाया फलं ? उच्यते-रे मनोमतिन् ! शास्त्रमत्या विचारय, 'अधर्मिण' इति कोऽर्थः ? तथाविधया कयाचिद् भवस्थित्या विरतिरूपो धर्मो नाऽस्ति तेषां, परं अन्यो धर्मो विरतिव्यतिरिक्त सर्वोऽप्यस्ति, तथाहि-सर्वं सूर्याभदेवाधिकारे पश्य विमुक्त "धम्मिअं ववसायमि गिण्हइ" कोऽर्थ ? सूर्याभदेवेन धर्मं कर्तुं इच्छता पूर्वं जिनप्रतिमापूजा व्यधायि, एवं विजयदेवादिभिरपि विदधे, तथा देवा केऽपि सम्यक्त्वधर्ममपि पालयन्ति तत् सम्यक्त्वं संवरमध्ये प्रोक्तं, यदुक्तं श्रीस्थानाङ्गे पञ्चमस्थाने द्वितीयोद्देशके संवराधिकारे (२१६ पत्रे), तथाहि-

"पंच आसवदारा पन्नत्ता, तं जहा-मिच्छत्तं अविरती पमादे कसाया जोगा ५ । पंच संवरदारा पन्नत्ता, तं जहा सम्मत्तं विरती अपमादो अकसातित्तमजोगित्तं" इत्यत्र । इदं रहस्यं—ये देवा सम्यक्त्ववन्तस्ते संवरवन्त उक्ता , ततः कथं अधर्मिणः ? १ । पुनः श्रोतव्यं-देवाः शाश्वतरत्नादिमयपुस्तकवाचनपूर्वं परस्परं देवगुरुधर्मसम्बन्धिनं विचारं कुर्वन्ति स धर्मो न वा ? २ । तथा जिनानां पञ्चकल्याणकेषु मनुष्यक्षेत्रे समागत्य तीर्थङ्कराणां भक्तिं वितन्वते, स धर्मो न वा ? ३ ।

किमर्थं धर्मार्थिभिः सा क्रियते ? उच्यते—तीर्थङ्करदेवस्य आज्ञात्वात्, सा च निर्वाणफलेति । ततो निर्वाणसुखफलार्थिभिः अवश्य कर्तव्या इति । अत्रार्थे श्रीस्थानांगवृत्तिगतं गाथाद्वयं (११० पत्रे) यथा–

"भण्णइ जिणपूआए, कायवहो जइवि होइ उ कहिंचि । तहवि तई परिसुद्धा, गिहीण कूवाहरणजोगा ॥ १ ॥
असदारंभपवत्ता, जं च गिही तेण तेसिं विन्नेआ । तन्निवित्तिफलच्चिअ, एसा परिभावणीअमिद ॥ २ ॥"

ननु–तर्हि सर्वत्र धर्मकर्तव्ये आरम्भकरणे सत्यपि किं पापं न लगति ? उच्यते–सत्य, सत्यारम्भेऽपि पृथिव्यादित्रसजीवानामुपरि तेषां मारणाध्यवसायो नास्ति, किं तु रक्षणाध्यवसायः । पाप तु दुष्टमनसि आध्याते भवेद्, यदुक्तं श्रीपिण्डनिर्युक्तौ (१७८ पत्रे)–

"जा जयमाणस्स भवे, विराहणा सुत्तविहिसमग्गस्स । सा होइ निज्जरफला, अज्झत्थविसोहिजुत्तस्स ॥ ६७१ ॥"

पुनरत्रार्थे श्रीभगवतीसूत्र प्रतिभूः, तथाहि– (२८८ पत्रे)

"समणोवासगस्स णं भंते पुव्वामेव तसपाणसमारंभे पच्चक्खाए भवति पुढविसमारम्भे अपच्चक्खाहे भवति से अ पुढविं खणमाणे अण्णयरं तसं पाणं विहिंसेज्जा से णं भंते ! त यय अतिचरति गो० नो तिणट्ठे समट्ठे णो खलु से तस्स अइवायाए आवट्टति ।" पुनस्तत्रैवोक्तं—

"समणोवासगस्स णं पुव्वामेव वणस्सइसमारम्भे पच्चक्खाए से अ पुढविं खणमाणे अण्णयरस्स रुक्खस्स मूलं छिंदेज्जा से णं भंते ! त यय अतिचरति ? नो तिणट्ठे समट्ठे णो खलु से तस्स अइवायाए आवट्टति इति ।" एवमेव यद्यपि पूजारम्भे

ठिते धम्म चेव उवसपज्जित्ताण विहरति, असंयतजाव पावकम्मे अधम्मे ठिए अधम्म चेव उवसपज्जित्ताण विहरइ, संजयासजए धम्माधम्मे ठिते। धम्माधम्म उवसपज्जित्ताण विहरति, से तेणट्ठेण जाव ठिए॥ जीवा ण भते! किं धम्मे ठिआ अधम्मे ठिआ धम्माधम्मे ठिआ गोयमा! जीवा धम्मेवि ठिआ अधम्मेवि ठिआ धम्माधम्मेवि ठिआ, नेरइआण पुच्छा! गोयमा! नेरइआ नो धम्मे ठिआ अधम्मेठिआ नो धम्माधम्मे ठिआ, एव जाव चउरिंदियाण, पचिंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा, गोयमा! पचिंदियतिरिक्खजोणिआ नो धम्मे ठिआ अधम्मे ठिआ धम्माधम्मेवि ठिआ, मणुस्सा जहा जीवा, वाणमतरजोइसिअवेमाणिया जहा नेरइया × × × × अन्नउत्थिया ण भते! एव आइक्खति जाव परूवेंति—एव खलु समणा पंडिआ समणोवासया बालपडिआ जस्स ण एगपाणाएवि दडे अणिक्खित्ते से ण एगतबालेत्ति वत्तव सिआ, से कहमेय भते! एव गोयमा! जण्ण ते अण्णउत्थिया एव आइक्खति जाव वत्तवं सिआ, जे ते एवमाहसु मिच्छ ते एवमाहसु, अह पुण गोयमा! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि एव खलु समणा पडिआ समणोवासगा बालपडिआ जस्स णं एग पाणाएवि दडे निक्खित्ते से ण नो एगतबालेति वत्तव सिआ॥ जीवा ण भते! किं बाला पडिआ बालपडिआ? गोयमा? जीवा बालावि पडिआ वि बालपडिआ वि, नेरइयाण पुच्छा, गोयमा! नेरइया बाला नो पडिआ नो बालपडिआ, एव जाव चउरिंदियाण। पचिंदिअतिरिक्खजोणिया पुच्छा गोयमा? पचिंदियतिरिक्खजोणिया बाला नो पडिआ बालपडिआ वि, मणुस्सा जहा जीवा, वाणमतरजोइसियवेमाणिया जहा नेरइया"

अत्राऽय परमार्थः—देवाना असयतत्व १ अविरतत्व २ अप्रत्याख्यानपापकर्मकत्व ३ च प्रतिपादित, तेन चारित्रमाश्रित्य

पुनस्तीर्थङ्कराणां साधूना च वन्दनां कुर्वन्ति, तदग्रे व्याख्यान च शृण्वन्ति, स धर्मो न वा ४ । पुनर्नन्दीश्वरादौ अष्टाह्निकामहिमां देवाः कुर्वन्ति स धर्मो न वा ? ५ । अयमेवाऽर्थः सिद्धान्तालापकैः अग्रे प्रपञ्चयिष्यते । पुनर्देवाना राजप्रश्नीयोपाङ्गे (२६ पत्रे) धर्मत्व उक्तमस्ति । तथाहि–

"तए ण ते सूरिआभविमाणवासिणो बहवे वेमाणिया देवा देवीओ य पायत्ताणिआहिवइस्स देवस्स अतिए एअमट्ठ सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हियया अप्पेगइआ वंदणवत्तिया अप्पेगइया पूयणवत्तियाए अप्पेगइया सक्कारवत्तियाए एय समाणवत्तियाए अप्पेगइया कोउहल्लवत्तियाए अप्पेगइया असुआइ सुणिस्सामो, सुआइ अट्ठाइ हेऊइ पसिणाइ कारणाइ वागरणाइ पुच्छिस्सामो अप्पेगइया सूरियाभस्स देवस्स वयण–मणुअत्तमाणा अप्पेगइया अन्नमन्नमणुअत्तमाणा अप्पेगइया जिणभत्तिरागेण अप्पेगइआ धम्मोत्ति अप्पेगइया जीअमेअति कट्टु" इत्यादि । अत्रालापके अप्पेगइआ जिणभत्तीए अप्पेगइआ धम्मो इति पदद्वयेऽपि प्रोक्त । केचिद्देवा धर्मनिमित्त, केचिद्देवा जिनभक्तिनिमित्त वीतरागदेवान् वन्दन्ति, तर्हि कथ न धर्मिणः ? । पुन श्रीभगवतीसूत्रे सप्तदशशतके द्वितीयोद्देशके [७२२ पत्रे], तथाहि–

"से णूण भते ! सजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे धम्मे ठिए असजयअविरयअपडिहयअपच्चक्खायपावकम्मे अहम्मे ठिए संजयासंजए धम्माधम्मे ठित्ते ? हता गोयमा ! संजयविरयजाव धम्माधम्मे ठिए, एतेसि ण भते ! धम्मसि वा अधम्मसि वा धम्माधम्मसि वा चक्किआ केइ आसइत्तए वा जाव तुअट्टित्तए वा गोयमा ! णो तिणट्ठे समट्ठे, से केण खाइ अट्ठेणं भते ? एवं वुच्चति जाव धम्माधम्मे ठिए ? गोयमा ! सजतविरतजाव पावकम्मे धम्मे

ठिते धम्म चेव उवसपज्जित्ताण विहरति, असंयतजाव पावकम्मे अधम्मे ठिए अधम्म चेव उवसपज्जित्ताण विहरइ, सजयासजए धम्माधम्मे ठिते ! धम्माधम्म उवसपज्जित्ताण विहरति, से तेणट्ठेण जाव ठिए ॥ जीवा ण भते ! किं धम्मे ठिआ अधम्मे ठिआ धम्माधम्मे ठिआ गोयमा ! जीवा धम्मेवि ठिआ अधम्मेवि ठिआ धम्माधम्मेवि ठिआ, नेरइआण पुच्छा ! गोयमा ! नेरइआ नो धम्मे ठिआ अधम्मेठिआ नो धम्माधम्मे ठिआ, एव जाव चउरिंदियाण, पचिंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा, गोयमा ! पचिंदियतिरिक्खजोणिआ नो धम्मे ठिआ अधम्मे ठिआ धम्माधम्मेवि ठिआ, मणुस्सा जहा जीवा, वाणमतरजोइसिअवेमाणिया जहा नेरइया × × × × अन्नउत्थिया ण भते ! एव आइक्खंति जाव परूवेंति—एव खलु समणा पडिआ समणोवासया बालपडिआ जस्स ण एगपाणाएवि दडे अणिक्खित्ते से ण एगतबालेत्ति वत्तव सिआ, से कहमेय भते ! एव गोयमा ! जण्ण ते अण्णउत्थिया एव आइक्खति जाव वत्तव सिआ, जे ते एवमाहसु मिच्छ ते एवमाहसु, अह पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि एव खलु समणा पडिआ समणोवासगा बालपडिआ जस्स ण एग पाणाएवि दडे निक्खित्ते से ण नो एगतबालेति वत्तव सिआ ॥ जीवा ण भते ! किं बाला पडिआ बालपडिआ ? गोयमा ? जीवा बालावि पडिआ वि बालपडिआ वि, नेरइयाण पुच्छा, गोयमा ! नेरइया बाला नो पडिआ नो बालपडिआ, एव जाव चउरिंदियाण । पचिंदिअतिरिक्खजोणिया पुच्छा गोयमा ? पचिंदियतिरिक्खजोणिया बाला नो पडिआ बालपडिआ वि, मणुस्सा जहा जीवा, वाणमतरजोइसियवेमाणिया जहा नेरइया" अत्राऽय परमार्थ —देवाना असयतत्व १ अविरतत्व २ अप्रत्याख्यानपापकर्मकत्वं ३ च प्रतिपादित, तेन चारित्रमाश्रित्य

पुनस्तीर्थङ्कराणां साधूनां च वन्दना कुर्वन्ति, तदग्रे व्याख्यानं च शृण्वन्ति, स धर्मो न वा ४ । पुनर्नन्दीश्वरादौ अष्टाह्निकामहिमा देवाः कुर्वन्ति स धर्मो न वा ? ५ । अयमेवाऽर्थः सिद्धान्तालापकैः अग्रे प्रपञ्चयिष्यते । पुनर्देवानां राजप्रश्नीयोपाङ्गे (२१ पत्रे) धर्मत्वं उक्तमस्ति । तथाहि—

"तए णं ते सूरिआमविमाणवासिणो बहवे वेमाणिया देवा देवीओ य पायत्ताणिआहिवइस्स देवस्स अतिए एअमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हियया अप्पेगइआ वंदणवत्तिया अप्पेगइया पूयणवत्तियाए अप्पेगइया सक्कारवत्तियाए एवं समाणवत्तियाए अप्पेगइया कोउहल्लवत्तियाए अप्पेगइया असुआइं सुणिस्सामो, सुआइं अट्ठाइं हेऊइं पसिणाइं कारणाइं वागरणाइं पुच्छिस्सामो अप्पेगइया सूरियामस्स देवस्स वयण-मणुअत्तमाणा अप्पेगइया अन्नमन्नमणुअत्तमाणा अप्पेगइया जिणभत्तिरागेण अप्पेगइआ धम्मोत्ति अप्पेगइया जीअमेअति कट्टु" इत्यादि । अत्रालापके अप्पेगइआ जिणभत्तीए अप्पेगइआ धम्मो इति पदद्वयेऽपि प्रोक्तं । केचिद्देवा धर्मनिमित्तं, केचिद्देवा जिनभक्तिनिमित्तं वीतरागदेवान् वन्दन्ति, तर्हि कथं न धर्मिणः ? । पुनः श्रीभगवतीसूत्रे सप्तदशशतके द्वितीयोद्देशके [७२२ पत्रे], तथाहि—

"से णूणं भंते ! संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे धम्मे ठिए असंजयअविरयअपडिहयअपच्चक्खायपावकम्मे अहम्मे ठिए संजयासंजए धम्माधम्मे ठिते ? हंता गोयमा ! संजयविरयजाव धम्माधम्मे ठिए, एतेसि णं भंते ! धम्मंसि वा अधम्मंसि वा धम्माधम्मंसि वा चक्किआ केइ आसइत्तए वा जाव तुअट्टित्तए वा गोयमा ! णो तिणट्ठे समट्ठे, से केण खाइ अट्ठेणं भंते ? एवं वुच्चति जाव धम्माधम्मे ठिए ? गोयमा ! संजतविरतजाव पावकम्मे धम्मे

समक्षं मैथुनसेवामपि तदाशातनाभीत्या न कुर्वन्तीति [illegible] धार्मिक, [illegible] सीहासणंसि तुडिएणं [illegible]
असुरिंदे असुरकुमारराया चमरंचाए रायहाणीए सभाए चमरंसि सीहासणंसि [illegible] अमरचंचाए रायहाणीए
भुजमाणे विहरित्तए, नो तिणट्ठे समट्ठे, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ नो पभू चमरे असुरिंदे [illegible] सभाए सुहम्माए [illegible]
ए विहरित्तए, ? अज्जो चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररन्नो [illegible] चिट्ठंति, जाओ णं चमरस्स असु-
रंसमे वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु [illegible] जिणसकहाओ [illegible] पूयणिज्जाओ [illegible]
रिंदस्स असुरकुमाररन्नो अन्नेसिं च बहूणं असुरकुमाराणं देवाण य देवीण य [illegible] पज्जुवासणिज्जाओ भवंति तेसिं
णिज्जाओ नमंसणिज्जाओ सक्कारणिज्जाओ सम्माणणिज्जाओ कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं [illegible] [illegible]
पणिहाए नो पभू, से तेणट्ठेणं अज्जो ! एवं वुच्चइ–णो पभू चमरे असुरिंदे [illegible] रायहाणीए सभाए सुहम्माए [illegible]
ताए । पभू णं अज्जो ! चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया [illegible] [illegible] [illegible]
सणंसि चउसट्ठीए सामाणियसाहस्सीहिं तायत्तीसाए [illegible] [illegible]" इति । [illegible]
परिवुडे महयाहय जाव भुंजमाणे विहरित्तए [illegible] [illegible]
त्रे तृतीयस्थानके तृतीयोद्देशके (१५५ पत्रे) [illegible]
[illegible] सेषा [illegible] भणिता, [illegible]
[illegible] [illegible] परितप्येऽऽशा, [illegible]

अधर्मत्व समागतं, पर "ज्ञानदर्शनचारित्राणि मोक्षमार्गः" इत्युक्तत्वात्, न तु मोक्षमार्गमाश्रित्य । पुनः श्रीस्थानांगे तृतीय-स्थाने चतुर्थोद्देशके (१५९ पत्रे), तथाहि—

"तिविहा आराहणा पन्नत्ता, तं जहा नाणाराहणा दंसणाराहणा चरित्ताराहणा" इत्युक्तत्वात् देवेषु ज्ञानाराधना दर्शनाराधना २ चेति आराधनाद्वय विद्यते ततः कथमधर्मित्वम् ? २ ॥

पुनः श्रूयतां–श्रीस्थानांगतृतीयस्थानके चतुर्थोद्देशके (१७३ पत्रे), "तिविहे धम्मे भगवया पन्नत्ते, त जहा सुअधि-ज्झिते सुज्झातिते सुतवस्सिते, जया सुअधिज्झितं भवति तदा सुज्झातितं भवति, जया सुज्झातिअं भवति तदा सुतव-स्सिअं भवति, से सुअधिज्झिते सुज्झातिते सुतवस्सिए सुतक्खाते ण भगवया धम्मे पन्नत्ते," इत्युक्तत्वाद्देवाना वीतराग-वन्दनादिशुभध्यानवत्ता धर्मित्वमेव । पुनः श्रीजम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्या (१५८ पत्रे) प्रोक्त, केऽपि देवा जिनभक्त्या केऽपि देवा धर्म इति कृत्वा जिनदंष्ट्रा गृह्णन्ति, तेषु धर्म एवाऽऽख्ते, तत्पाठो यथा–

"तए णं से सक्के देविंदे देवराया भगवओ तित्थगरस्स उवरिल्लं दाहिणं सकहं गेण्हइ, ईसाणे देविंदे देवराया उवरिल्लं वामं सकहं गिण्हति, चमरे असुरिंदे असुरराया हिट्ठिल्लं दाहिणं सकहं गिण्हति, बली वइरोअणिंदे वइरो-अणराया हिट्ठिल्लं वामं सकहं गिण्हति, अवसेसा भवणवइ जाव वेमाणिआ देवा जहारिहं अवसेसाइं [अंगमंगाइं] अणुयगाइं, केई जिणभत्तीए केई जिअमेअतिकट्टु केई धम्मोत्ति कट्टु गिण्हंति ।" पुनः श्रीभगवतीसूत्रे दशम-शतके चतुर्थोद्देशके (५०२ पत्रे), चमरेन्द्राद्य ईशानेन्द्रान्ता देवा माणवकचैत्यस्थितसमुद्गकान्तर्वर्तिजिनदंष्ट्रा

"पचहिं ठाणेहिं जीवा दुल्लभबोधि–अत्ताए कम्म पकरेंति, त जहा–अरहताणं अवण्ण वयमाणे १ अरहतपन्नत्तस्स धम्मस्स अवण्ण वयमाणे २ आयरिअउवज्झायाण अवण्ण वयमाणे ३ चाउवन्नस्स सघस्स अवण्ण वयमाणे ४ विवक्कतव बभचेराण देवाणं अवण्णं वयमाणे ५" । पुनरपि तादृशाना धर्मवता देवाना श्लाघा कुर्वन्तस्तु निज बोधिबीज सुलभ कुर्वन्ति यदुक्त तत्रैव, तथाहि–"पंचहिं ठाणेहिं जीवा सुलभबोधियत्ताए कम्म पकरेंति, त जहा–अरिहताण वण्ण वयमाणे १ अरिहतपन्नत्तस्स धम्मस्स वण्ण वयमाणे २ आयरिअ–उवज्झायाण–वण्ण वयमाणे ३ चाउवण्णस्स सघस्स वण्ण वयमाणे ४ विवक्कतवबभचेराण देवाण वण्ण वयमाणे ५" इति। पुनः श्रीजीवाभिगमसूत्रे नन्दीश्वरद्वीपवक्तव्यताया चतुरञ्जनपर्वताधिकारे (३५७ पत्रे) प्रोक्तमस्ति भवनपत्यादयो देवाश्चातुर्मासिकसावत्सरिकदिनेषु अष्टाह्निका प्रमुदितमनस्का सन्तोऽष्टौ दिवसान् यावत्कुर्वन्ति, अहो तेषा दृढो धर्मरागो वीतरागोपरि, तस्मात् कथ न ते धर्मवन्त ?, तत्पाठो यथा–

"तत्थ ण बहवे भवणवइवाणमतरजोइसियवेमाणिया देवा चाउमासियापडिवएसु सवच्छरिएसु वा अण्णेसु बहूसु जिणजम्म[ण]–निक्खमण–नाणुप्पत्ति–परिनिव्वाणमाइएसु य देवकज्जेसु य देवसमुदएसु य देवसमिईसु य देवसमवाएसु य देवपओअणेसु य एगतओ सहिता समुवागता समाणा पमुइअपक्कीलिआ अट्ठाहितारूवाओ महामहिमाओ करेमाणा पालेमाणा सुहंसुहेण विहरति" इत्यादि । अतो विरतिरूपधर्ममन्तरेण सम्यक्त्वधारका देवाः स्वभावतोऽपि धर्मवन्तोऽपि जिनप्रतिमापूजाया विशेषतो धर्मभाजो ज्ञेयाः ॥ ४३ ॥

॥ इति देवाना विरतिधर्म विना सर्वे धर्माः ॥ ४३ ॥

म्ससि आयरिअउवज्झाएहिं विज्जमाणेहिं कल्लसरीरेण णो बहुए सुए अहीए १, अहो ण मते इहलोकपडिबद्धेण परलोगपरमुहेण विसयतिसिएणं णो दीहे सामन्नपरिआए अणुपालिए २ अहो ण मए इड्ढिरससायगरुएण भोगामिसगिद्धेण णो विसुद्धे चरित्ते फासिए ३" इति । पुनर्देवानां धर्मित्वप्रतिपादक औपपातिकसूत्रे (४३ पत्रे), तथाहि–

"धम्मज्झाणे चउविहे चउप्पडोआरे पन्नत्ते, तं जहा आणाविजए १ अवायविजए २ विवागविजए ३ सठाणविजए ४, धम्मस्स ण झाणस्स चत्तारि लक्खणा पन्नत्ता, त जहा–आणारुई १ निसग्गरुई २ उवदेसरुई ३ सुत्तरुई ४, धम्मस्स ण झाणस्स चत्तारि आलवणा पन्नत्ता, त जहा–वायणा १ पुच्छणा २ परिअट्टणा ३ धम्मकहा ४, धम्मस्स ण झाणस्स चत्तारि अणुप्पेहाओ पन्नत्ताओ तजहा–अणिच्चाणुप्पेहा १ असरणाणुप्पेहा २ एगत्ताणुप्पेहा ३ ससाराणुप्पेहा ४", इत्यत्र आलापकचतुष्टये ये आज्ञारुच्युपदेशरुचिप्रमुखा धर्मध्यानप्रकारा धर्मलक्षणानि धर्मानुप्रेक्ष्याश्चेति, तत्सर्व देवेषु वेविद्यते ततो धर्मभाजस्ते इह च आर्तरौद्रे परिहार्यतया साधुविशेषणे धर्मशुक्ले तु आसेव्यतया इति "चउप्पडोयारे"त्ति चतुर्षु भेदलक्षणालम्बनानुप्रेक्षालक्षणेषु पदार्थेषु प्रत्यवतारः–समवतारो वक्ष्यमाणस्वरूपो यस्य तच्चतुष्प्रत्यवतारमिति, 'आणाविजए'त्ति आज्ञा–जिनप्रवचन तस्या विषयो–निर्णयो यत्र तदाज्ञाविषय, प्राकृतत्वात् आणाविजय आज्ञागुणानुचिन्तन इत्यर्थ, एव शेषपदानि अपि, नवर अपायाः–रागद्वेषादिजन्या अनर्था, विपाक–कर्मफल, सस्थानानि–लोकद्वीपसमुद्राद्याकृतय । पुनरेतादृशेषु धर्मिषु देवेषु सत्सु ये देवा अधर्मिण इति पूत्कुर्वन्ति ते स्वकीय बोधिबीज दुर्लभ कुर्वन्तीति ज्ञेय, यदुक्त श्रीस्थानाङ्गसूत्रे पञ्चमस्थाने द्वितीयोद्देशके (३२१ पत्रे), तथाहि—

"पंचहिं ठाणेहिं जीवा सुलभबोधि–अत्ताए कम्म पकरेंति, त जहा–अरहंताण अवण्ण वयमाणे १ अरहंतपन्नत्तस्स धम्मस्स अवण्ण वयमाणे २ आयरिअउवज्झायाण अवण्ण वयमाणे ३ चाउवन्नस्स संघस्स अवण्ण वयमाणे ४ विवक्कतव बभचेराण देवाण अवण्ण वयमाणे ५" । पुनरपि तादृशानां धर्मवता देवाना श्लाघा कुर्वन्तस्तु निज बोधिबीज सुलभ कुर्वन्ति यदुक्त तत्रैव, तथाहि–"पंचहिं ठाणेहिं जीवा सुलभबोधियत्ताए कम्म पकरेंति, त जहा–अरिहंताणं वण्ण वयमाणे १ अरिहंतपन्नत्तस्स धम्मस्स वण्ण वयमाणे २ आयरिअ–उवज्झायाण–वण्ण वयमाणे ३ चाउवण्णस्स संघस्स वण्ण वयमाणे ४ विवक्कतवबभचेराण देवाण वण्ण वयमाणे ५" इति। पुनः श्रीजीवाभिगमसूत्रे नन्दीश्वरद्वीपवक्तव्यताया चतुरञ्जनपर्वताधिकारे (३५७ पत्रे) प्रोक्तमस्ति भवनपत्यादयो देवाश्चातुर्मासिकसांवत्सरिकदिनेषु अष्टाह्निका प्रमुदितमनस्का सन्तोऽष्टौ दिवसान् यावत्कुर्वन्ति, अहो तेषां दृढो धर्मरागो वीतरागोपरि, तस्मात् कथ न ते धर्मवन्तः ?, तत्पाठो यथा–

"तत्थ णं बहवे भवणवइवाणमतरजोइसियवेमाणिया देवा चाउमासियापडिवएसु संवच्छरिएसु वा अण्णेसु बहूसु जिणजम्म[ण]–निक्खमण–नाणुप्पत्ति–परिनिव्वाणमाइएसु य देवकज्जेसु य देवसमुदएसु य देवसमिईसु य देवसमवाएसु य देवपओअणेसु य एगतओ सहिता समुवागता समाणा पमुइअपक्कीलिआ अट्ठाहितारूवाओ महामहिमाओ करेमाणा पालेमाणा सुहसुहेण विहरति" इत्यादि । अतो विरतिरूपधर्ममन्तरेण सम्यक्त्वधारका देवा स्वभावतोऽपि धर्मवन्तोऽपि जिनप्रतिमापूजाया विशेषतो धर्मभाजो ज्ञेयाः ॥ ४३ ॥

॥ इति देवाना विरतिधर्मं विना सर्वे धर्माः ॥ ४३ ॥

ण्यसि आयरिअउवज्झाएहिं विज्जमाणेहिं फक्कसरीरेण णो बहुए सुए अहीए १, अहो ण मते इहलोकपडिबद्धेण परलोगपरम्मुहेण विसयतिसिएण णो दीहे सामन्नपरिआए अणुपालिए २ अहो णं मए इड्ढिरससायगरुएण भोगासिसगिद्धेण णो विसुद्धे चरिते फासिए ३" इति । पुनर्देवानां धर्मित्वप्रतिपादक औपपातिकसूत्रे (४२ पत्रे), तथाहि—

"धम्मज्झाणे चउविहे चउप्पडोआरे पन्नत्ते, त जहा आणाविजए १ अवायविजए २ विवागविजए ३ सठाणविजए ४, धम्मस्स ण झाणस्स चत्तारि लक्खणा पन्नत्ता, त जहा—आणारुई १ निसग्गरुई २ उवदेसरुई ३ सुत्तरुई ४, धम्मस्स ण झाणस्स चत्तारि आलवणा पन्नत्ता, तं जहा—वायणा १ पुच्छणा २ परिअट्टणा ३ धम्मकहा ४, धम्मस्स ण झाणस्स चत्तारि अणुप्पेहाओ पन्नत्ताओ तजहा—अणिच्चाणुप्पेहा १ असरणाणुप्पेहा २ एगत्ताणुप्पेहा ३ ससाराणुप्पेहा ४", इत्यत्र आलापकचतुष्टये ये आज्ञारुच्युपदेशरुचिप्रमुखा धर्मध्यानप्रकारा धर्मलक्षणानि धर्मानुप्रेक्ष्याश्चेति, तत्सर्वं देवेषु वेविद्यते ततो धर्मभाजस्ते इह च आर्तरौद्रे परिहार्यतया साधुविशेषणे धर्मशुक्ले तु आसेव्यतया इति "चउप्पडोयारे"त्ति चतुर्षु भेदलक्षणालम्बनानुप्रेक्षालक्षणेषु पदार्थेषु प्रत्यवतारः—समवतारो वक्ष्यमाणस्वरूपो यस्य तच्चतुष्प्रत्यवतारमिति, 'आणाविजए'त्ति आज्ञा—जिनप्रवचन तस्या विचयो—निर्णयो यत्र तदाज्ञाविचय, प्राकृतत्वात् आणाविजय आज्ञागुणानुचिन्तन इत्यर्थः, एव शेषपदानि अपि, नवर अपायाः—रागद्वेषादिजन्या अनर्था, विपाकः—कर्मफल, संस्थानानि—लोकद्वीपसमुद्राद्याकृतयः । पुनरेतादृशेषु धर्मिषु देवेषु सत्सु ये देवा अधर्मिण इति पूत्कुर्वन्ति ते स्वकीय बोधिबीज दुर्लभ कुर्वन्तीति ज्ञेय, यदुक्त श्रीस्थानाङ्गसूत्रे पञ्चमस्थाने द्वितीयोद्देशके (३२१ पत्रे), तथाहि—

'बारस्से'ति द्वादशवार्षिकस्य तथा कालपर्यायेण अरुणोपपातादीनि पञ्चाध्ययनानि, तद्यथा अरुणोववाए १ वरुणोववाए २ गरुलोववाए ३ वेलधरोववाए ४ वेसमणोववाए ५, । त्रयोदशवार्षिकस्य तथोत्थानश्रुतादीनि चत्वारि, तद्यथा— उट्ठाणसुअ १ समुट्ठाणसुअ २ देवेंदोववाओ ३ नागपरिआवणिआओ त्ति ४ गाथार्थं ॥ ८५ ॥ 'चउ' चतुर्दशवर्षस्य तथा पर्यायेण आशीविषभावनां जिना ब्रुवते, नारतः, पञ्चदशवर्षस्य तु पर्यायेणैव दृष्टिविषभावना तथैव ब्रुवते इति गाथार्थः ॥ ८६ ॥ 'सोलसेति' षोडशवर्षादिषु च पर्यायेषु एकोत्तरवर्धितेषु 'यथासङ्ख्य' यथाक्रम चारणभावना १ महास्वप्नभावना २ तेजोनिसर्ग ३ इत्येतानि त्रीणि भवन्तीति गाथार्थ ॥ ८७ ॥ 'एगू' एकोनविंशतिकस्य तु पर्यायेण दृष्टिवादो द्वादशमग, अत एव शेषलाभो ज्ञेय' इति, संपूर्ण विंशतिवर्षपर्यायेणाऽनुपाती योग्यः सर्वस्य सूत्रस्य विन्दुसारादेरिति गाथार्थः ॥ ८८ ॥ ववहारं पुण आय–बिलाइ जं जस्स वन्निअ सुत्ते । त तेणेव उदेअ, इहरा आणाइआ दोसा ॥ ५८९ ॥ एवं दशाश्रुतस्कन्धेऽपि, तथाहि–

"तिवासपरिआयस्स निग्गथस्स कप्पइ आयारकप्प नामज्झयण, चउवासपरिआयस्स कप्पइ सूअगड नामज्झयण, दसकप्पववहारा सवच्छरपणगदिक्खिअस्से वा कप्पति, ठाण समवायगे अ अडवासपरिआयस्स, दसवासपरिआयस्स विवाहो कप्पइ, एव जाव सपुण्णवीसवरिसपरिआओ सव्वसुत्तस्स अणुवाई हवइ" इति । तथा श्रावकाणा तु श्रीसूत्रकृताङ्गनवमाध्ययने (१८५ पत्रे) श्रुतज्ञानलाभाभाव' प्रोक्तोऽस्ति, तर्हि कुत सिद्धान्तभणन ?, तत् पाठो यथा–

"गिहे दीवमपासंता, पुरिसादणिआ नरा । ते वीरा बंधणुम्मुक्का, नावकखति जीविअ ॥ ३४ ॥" व्याख्या–'गृहे'

"कालक्कमेण पत्त, संवच्छरमाइणा उ जं जंमि । त तम्मि चेव धीरो, वाएज्ज सो अ कालोऽय ॥ ५८१ ॥ तिवरिसपरिआगस्स उ, आयारपकप्पनाममज्झयण । चउवरिसस्स उ सम्म, सूअगड नाम अगति ॥ ५८२ ॥ अत्राऽऽचारप्रकल्पो निशीथाभिधानमध्ययन–"दसकप्पववहारा, संवच्छरपणगदिक्खिअस्सेव ठाण समवाओत्ति अ अगेए अट्ठवासस्स ॥ ५८३ ॥ दसवासस्स विआहो, एक्कारसवासयस्स य इमे उ । खुड्डिअविमाणमाई, अज्झायणा पंच नायव्वा ॥ ५८४ ॥ बारसवासस्स तहा, अरुणुववायाइ पंच अज्झयणा । तेरसवासस्स तहा, उट्ठाणसुआइआ चउरो ॥ ५८५ ॥ चोद्दसवासस्स तहा, आसीविसभावण जिणा बिंति । पन्नरसवासगस्स य, दिट्ठीविसभावण तह य ॥ ५८६ ॥ सोलसवासाईसु अ, इक्कुत्तरवड्ढिएसु जहसंख । चारणभावण महसुवि–णभावणा तेअगनिसग्गा ॥ ५८७ ॥ एगूणवीसगस्स उ दिट्ठीवाओ दुवालसमअंग । संपुण्णवीसवरिसो, अणुवाई सव्वसुत्तस्स ॥ ५८८ ॥" पञ्चवस्तुकवृत्तौ (९५ पत्रे) श्रीहरिभद्रसूरिभिः एता एव गाथा व्याख्याताः सन्ति । तथाहि–'ति०' त्रिवर्षपर्यायस्यैव नारतः आचारप्रकल्पनाम निशीथाऽभिधानमध्ययनं वाच्यते इति क्रिया योजनीया, चतुर्वर्षस्य तु सम्यगस्खलितस्य 'सूत्रकृत'–नामाग द्वितीयमिति गाथार्थः ॥ ८२ ॥'दसेति' दशाश्रुतकल्पव्यवहाराः त्रयोऽपि पञ्चसंवत्सरदीक्षितस्यैव, स्थान समवाय इति च अगे एते द्वे अपि अष्टवर्षस्येति गाथार्थः ॥ ८३ ॥ 'दशे' दशवर्षस्य व्याख्येति व्याख्या–प्रज्ञप्तिर्भगवती, एकादशवार्षिकस्य चाऽमूनि इति इदयस्थो निर्देशः, क्षुल्लिकाविमानादीनि अध्ययनानि कालयोग्यतामगीकृत्य पञ्च ज्ञातव्यानि, तद्यथा खुड्डिआविमाणपविभत्ती १ महल्लिया–विमाणपविभत्ती २ अगचूलिआ ३ वग्गचूलिआ ४ विवाहचूलिय त्ति ५ इति गाथार्थः ॥ ८४ ॥

'बारस्से'ति द्वादशवार्षिकस्य तथा कालपर्यायेण अरुणोपपातादीनि पचाध्ययनानि, तद्यथा अरुणोववाए १ वरुणोववाए २ गरुळोववाए ३ वेलधरोववाए ४ वेसमणोववाए ५, । त्रयोदशवार्षिकस्य तथोत्थानश्रुतादीनि चत्वारि, तद्यथा— उट्ठाणसुअं १ समुट्ठाणसुअ २ देविंदोववाओ ३ नागपरिआवणिआओ त्ति ४ गाथार्थः ॥ ८५ ॥ 'चउ' चतुर्दशवर्षस्य तथा पर्यायेण आशीविषभावनां जिना ब्रुवते, नारतः, पञ्चदशवर्षस्य तु पर्यायेणैव दृष्टिविषभावना तथैव ब्रुवते इति गाथार्थः ॥ ८६ ॥ 'सोलसेति' षोडशवर्षादिषु च पर्यायेषु एकोत्तरवर्धितेषु 'यथासख्य' यथाक्रम चारणभावना १ महास्वप्नभावना २ तेजोनिसर्ग ३ इत्येतानि त्रीणि भवन्तीति गाथार्थः ॥ ८७ ॥ 'एगू' एकोनविंशतिकस्य तु पर्यायेण दृष्टिवादो द्वादशमग, अत एव शेषलाभो ज्ञेयः इति, सपूर्ण विंशतिवर्षपर्यायेणाऽनुपातो योग्य सर्वस्य सूत्रस्य विन्दुसारादेरिति गाथार्थः ॥ ८८ ॥ ववहारं पुण आय–मिलाइ जं जस्स वण्णिअ सुत्ते । त तेणेव उदेअ, इहरा आणाइआ दोसा ॥ ५८९ ॥ एव दशाश्रुतस्कन्धेऽपि, तथाहि–

"तिवासपरिआयस्स निग्गथस्स कप्पइ आयारकप्प नामज्झयण, चउवासपरिआयस्स कप्पइ सूअगड नामज्झयण, दसकप्पववहारा सवच्छरपणगदिक्खिअस्से वा कप्पति, ठाणं समवायगे अ अढवासपरिआयस्स, दसवासपरिआयस्स विवाहो कप्पइ, एव जाव संपुण्णवीसवरिसपरिआओ सव्वसुत्तस्स अणुवाई हवइ" इति । तथा श्रावकाणा तु श्रीसूत्रकृताङ्गनवमाध्ययने (१८५ पत्रे) श्रुतज्ञानलाभाभाव प्रोक्तोऽस्ति, तर्हि कुतः सिद्धान्तभणन ?, तत् पाठो यथा–

"गिहे दीवमपासंता, पुरिसादाणिआ नरा । ते वीरा बंधणुम्मुक्का, नावकखति जीविअ ॥ ३४ ॥" व्याख्या–'गृहे'

इत्ताण अत्थिताण वायावेइ तत्थत्थवेत्ति अप्पाणए वा गच्छे ठितया गिलाणइ ताण व गच्छे वायावेइ अह तेसिं आयरि-
याण मोत्तु अन्नो नत्थि वायणसमत्थो ते अ अघाडजोगवाही ताहे भणइ, कालं सोहेज्जह जत्तिआणि दिवसाणि दिणाणि
कालो सोहिओ तत्तिआणि दिवसाणि उद्देसणकालो एगदिवसेण उद्दिस्सिस्सामो जत्तिआणि दिवसाणि पमाओ कालग-
हणे कओ, तत्तिआणि दिवसाणि उद्देसणकाला नो उद्दिसिज्जंति, जे पुण अणागाढइ ता तेसिं निक्खिप्पइ" तथा समवा-
याङ्गसूत्रेऽपि उपासकदशाङ्गस्वरूपप्ररूपणाधिकारे साक्षादेव श्रावकाणा उपधानानि उक्तानि, तथाहि-"उवासगाण च
सीलव्वयवेरमणपच्चक्खाणपोसहोववासपडिवज्जणयाओ सुअपरिग्गहो तवोवहाणाइ पडिमाओ" इति । अत्र वृत्त्येकदेशो
यथा-श्रुत-परिग्रहः, तप-उपधानानि प्रतीतानि उपलक्षणाद् व्यवहारवृत्तौ अपि यथाश्रुतग्रहण उपधान कार्यमिति ॥

॥ इति योगोपधानवहनाधिकारः ॥ ४५ ॥

ननु-दण्डकः कुत्राप्यस्ति ?, किं वा एवमेव गृह्यते ? उच्यते-श्रीप्रश्नव्याकरणसूत्रे (१२२ पत्रे) एतस्य प्रकट प्रतिपा-
दनाद् युक्तमेव साधुना तद् ग्रहण, तथाहि-"न य अचिअत्तभत्तपाण अचियत्तपीढफलगसेज्जासयारगवत्थपत्तकवल-
दडगरयहरणनिसेज्जचोलपट्टगमुहपोत्तियपायपुञ्छणाइ भायणभंडोवहिउवगरण ॥" व्याख्या-(१२६ पत्रे) 'न च' नैव
च 'अचिअत्तस्स'त्ति अप्रीतिकारिणो गृह प्रविशति, न च-नैव च 'अचियत्तस्स'त्ति अप्रीतिकारिणः सत्क गृह्णाति भक्त-
पान, न च 'अचियत्तस्स'त्ति अप्रीतिकर्तुः सेवते-भजते, पीठफलकशय्यासस्तारकवस्त्रपात्रकम्बलदण्डकरजोहरणनि-
षद्याचोलपट्टकमुखपोतिकापादप्रोञ्छनादिभाजनभाण्डोपध्युपकरण" इति श्रीप्रश्नव्याकरणे तृतीयसवरद्वारे । पुन

श्रीप्रश्नव्याकरणप्रथमसंवरद्वारे पञ्चमभावनाद्वारे (१०१ पत्रे) साधो रजोहरणादिवत् दण्डकस्याऽपि संयमोपकरणत्वेन प्रोक्तत्वात्, तथाहि "पचम आयाणनिक्खेवण समिई, पीढ १ फलग २ सिज्जा ३ संथारग ४ वत्थ ५ पत्त ६ कंबल ७ दंडग ८ रयहरण ९ चोलपट्टग १० मुहपोत्तिग ११ पायपुंछणादी १२ दुवालसविह एयपि संजमस्स उववूहणट्ठयाए वातातवदंसमसगसीअपरिरक्खणट्ठाए उवगरण रागदोसरहिअ परिहरितव्व", व्याख्या-(११२ पत्रे)-'पचम'ति पंचम भावनावस्तु आदाननिक्षेपसमितिलक्षण, एतदेवाह-पीठादि द्वादशविध उपकरण प्रसिद्ध, 'एयपी'ति एतदपि अनन्तरोदित उपकरण, अपिशब्दादन्यदपि संयमस्य उपबृंहणार्थतया-संयमपोषणाय तथा वाताऽऽतपदंशमशकशीतपरिरक्षणार्थतया, उपकरण-उपकारक उपधिं रागद्वेषरहित क्रियाविशेषणमिद 'परिहरिअव्व'ति परिभोक्तव्य, न विभूषादिनिमित्तमिति भावना । एव श्रीदशवैकालिकसूत्रेऽपि (१५५ पत्रे) "से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से कीडं वा पयंग वा कुंथु वा पिपीलियं वा हत्थंसि वा पायंसि वा बाहुंसि वा ऊरुंसि वा उदरंसि वा सीसंसि वा वत्थंसि वा पडिग्गहंसि वा कंबलंसि वा पायपुंछणंसि वा रयहरणंसि वा गोच्छगंसि वा उंडगंसि वा दंडगंसि वा पीढगंसि वा फलगंसि वा सेज्जंसि वा संथारगंसि वा अन्नयरंसि वा तहप्पगारे उवगरणजाए तओ संजयामेव पडिलेहिअ पडिलेहिअ पमज्जिअ पमज्जिअ एगतमवणेज्जा नो ण संघायमावज्जेज्जा ॥ ७ ॥ एव श्रीभगवतीसूत्रेऽपि दण्डग्रहण साधूनामुपदिष्ट । इत्थमेव श्रीओघनिर्युक्तिसूत्रवृत्तावपि, (८७ पत्रे) "भत्तट्ठिअ आवस्सग, सोहेउ तो अइति अवरण्हे । अब्भुट्ठाणं दंडा-इआण गहणेक्क

इचाण अत्थिताण धायावेइ तत्थत्थयेत्ति अप्पाणए वा गच्छे ठितया गिलाणइ ताण च गच्छे वायावेइ अह तेसिं आयरियाणं मोत्तु अन्नो नत्थि वायणसमत्थो ते अ अघाडजोगवाही ताहे भणइ, कालं सोहेज्जह जत्तिआणि दिवसाणि दिणाणि कालो सोहिओ तत्तिआणि दिवसाणि उद्देसणकालो एगदिवसेण उद्दिस्सिस्सामो जत्तिआणि दिवसाणि पमाओ कालग्गहणे कओ, तत्तिआणि दिवसाणि उद्देसणकाला नो उद्दिसिज्जति, जे पुण अणागाढइ ता तेसिं निक्खिप्पइ" तथा समवायाङ्गसूत्रेऽपि उपासकदशाङ्गस्वरूपप्ररूपणाधिकारे साक्षादेव श्रावकाणां उपधानानि उक्तानि, तथाहि-"उवासगाण च सीलव्वयवेरमणपच्चक्खाणपोसहोववासपडिवज्जणयाओ सुअपरिग्गहा तवोवहाणाइ पडिमाओ" इति । अत्र वृत्त्येकदेशो यथा-श्रुतं-परिग्रह', तप-उपधानानि प्रतीतानि उपलक्षणाद् व्यवहारवृत्तौ अपि यथाश्रुतग्रहण उपधान कार्यमिति ॥

॥ इति योगोपधानवहनाधिकारः ॥ ४५ ॥

ननु-दण्डकः कुत्राप्यस्ति?, किं वा एवमेव गृह्यते? उच्यते-श्रीप्रश्नव्याकरणसूत्रे (१२२ पत्रे) एतस्य प्रकट प्रतिपादनाद् युक्तमेव साधुना तद् ग्रहण, तथाहि-"न य अचिअत्तभत्तपाण अचियत्तपीढफलगसेज्जासथारगवत्थपत्तकबलदडगरयहरणनिसेज्जचोलपट्टगमुहपोत्तियपायपुछणाइ भायणभडोवहिउवगरणं ॥" व्याख्या-(१२६ पत्रे) 'न च' नैव च 'अचिअत्तस्स'त्ति अप्रीतिकारिणो गृह प्रविशति, न च-नैष च 'अचियत्तस्स'त्ति अप्रीतिकारिणः सत्क गृह्णाति भक्तपान, न च 'अचियत्तस्स'त्ति अप्रीतिकर्तुः सेवते-भजते, पीठफलकशय्यासस्तारकवस्त्रपात्रकम्बलदण्डकरजोहरणनिषद्याचोलपट्टकमुखपोतिकापादप्रोञ्छनादि भाजनभाण्डोपध्युपकरण" इति श्रीप्रश्नव्याकरणे तृतीयसवरद्वारे । पुन

श्रीप्रश्नव्याकरणप्रथमसंवरद्वारे पञ्चमभावनाद्वारे (१०१ पत्रे) साधो रजोहरणादिवत् दण्डकस्याऽपि संयमोपकरणत्वेन प्रोक्तत्वात्, तथाहि "पञ्चम आयाणनिक्खेवण समिई, पीढ १ फलग २ सिज्जा ३ संथारग ४ वत्थ ५ पत्त ६ कंबल ७ दंडग ८ रयहरण ९ चोलपट्टग १० मुहपोत्तिग ११ पायपुंछणादी १२ दुवालसविहं एयंपि संजमस्स उववूहणट्ठयाए वातातवदंसमसगसीअपरिरक्खणट्ठाए उवगरणं रागदोसरहिअं परिहरितव्वं", व्याख्या—(११२ पत्रे)—'पंचम'ति पञ्चमं भावनावस्तु आदाननिक्षेपसमितिलक्षणं, एतदेवाह—पीठादि द्वादशविधं उपकरणं प्रसिद्धं, 'एयंपी'ति एतदपि अनन्तरोदितं उपकरणं, अपिशब्दादन्यदपि संयमस्य उपबृंहणार्थतया—संयमपोषणाय तथा वाताऽऽतपदंशमशकशीतपरिरक्षणार्थतया, उपकरणं—उपकारकं उपधिं रागद्वेषरहितं क्रियाविशेषणमिदं 'परिहरिअव्व'ति परिभोक्तव्यं, न विभूषादिनिमित्तमिति भावना। एवं श्रीदशवैकालिकसूत्रेऽपि (१५५ पत्रे) "से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से कीडं वा पयंगं वा कुंथुं वा पिपीलियं वा हत्थंसि वा पायंसि वा बाहुंसि वा ऊरुंसि वा उदरंसि वा सीसंसि वा वत्थंसि वा पडिग्गहंसि वा कंबलंसि वा पायपुंछणंसि वा रयहरणंसि वा गोच्छगंसि वा उंडगंसि वा दंडगंसि वा पीढगंसि वा फलगंसि वा सेज्जंसि वा संथारगंसि वा अन्नयरंसि वा तहप्पगारे उवगरणजाए तओ संजयामेव पडिलेहिअ पडिलेहिअ पमज्जिअ पमज्जिअ एगंतमवणेज्जा नो णं संघायमावज्जेज्जा ॥ ७ ॥ एवं श्रीभगवतीसूत्रेऽपि दण्डग्रहणं साधूनामुपदिष्टं। इत्थमेव श्रीओघनिर्युक्तिसूत्रवृत्तावपि, (८७ पत्रे) "भत्तट्ठिअ आवस्सग, सोहेउं तो अइंति अवरण्हे। अब्भुट्ठाणं दंडा—इआण गहणेक

इत्ताण अत्थिताणं वायावेइ तत्थत्थवेत्ति अप्पाणए वा गच्छे ठितया गिलाणइ ताण य गच्छे वायावेइ अह तेसिं आयरियाण मोत्तुं अन्नो नत्थि वायणसमत्थो ते अ अणागाढजोगवाही ताहे भणइ, काल सोहेज्जह जत्तिआणि दिवसाणि दिणाणि कालो सोहिओ तत्तिआणि दिवसाणि उद्देसणकालो एगदिवसेण उद्दिस्सिस्सामो जत्तिआणि दिवसाणि पमाओ कालग्गहणे कओ, तत्तिआणि दिवसाणि उद्देसणकाला नो उद्दिसिज्जति, जे पुण अणागाढइ ता तेसिं निक्खिप्पइ" तथा समवायाङ्गसूत्रेऽपि उपासकदशाङ्गस्वरूपप्ररूपणाधिकारे साक्षादेव श्रावकाणां उपधानानि उक्तानि, तथाहि–"उवासगाण च सीलव्वयवेरमणपच्चक्खाणपोसहोववासपडिवज्जणयाओ सुअपरिग्गहो तवोवहाणाइ पडिमाओ" इति। अत्र वृत्त्येकदेशो यथा–श्रुतं–परिग्रहः, तप–उपधानानि प्रतीतानि उपलक्षणाद् व्यवहारवृत्तौ अपि यथाश्रुतग्रहण उपधान कार्यमिति ॥

॥ इति योगोपधानवहनाधिकारः ॥ ४५ ॥

ननु–दण्डकः कुत्राप्यस्ति?, किं वा एवमेव गृह्यते? उच्यते–श्रीप्रश्नव्याकरणसूत्रे (१२२ पत्रे) एतस्य प्रकट प्रतिपादनाद् युक्तमेव साधुना तद् ग्रहण, तथाहि–"न य अचिअत्तभत्तपाण अचियत्तपीढफलगसेज्जासंथारगवत्थपत्तकवलदंडगरयहरणनिसेज्जचोलपट्टगमुहपोत्तियपायपुछणाइ भायणभंडोवहिउवगरण॥" व्याख्या–(१२६ पत्रे) 'न य' नैव च 'अचिअत्तस्स'त्ति अप्रीतिकारिणो गृह प्रविशति, न च–नैव च 'अचियत्तस्स'त्ति अप्रीतिकारिण सत्क गृह्णाति भक्तपान, न च 'अचियत्तस्स'त्ति अप्रीतिकर्तुः सेवते–भजते, पीठफलकशय्यासंस्तारकवस्त्रपात्रकम्बलदण्डकरजोहरणनिषद्याचोलपट्टकमुखपोतिकापादप्रोञ्छनादिभाजनभाण्डोपध्युपकरण" इति श्रीप्रश्नव्याकरणे तृतीयसंवरद्वारे। पुनः

श्रीप्रश्नव्याकरणप्रथमसंवरद्वारे पञ्चमभावनाद्वारे (१०१ पत्रे) साधो रजोहरणादिवत् दण्डकस्याऽपि संयमोपकरणत्वेन प्रोक्तत्वात्, तथाहि "पंचमं आयाणनिक्खेवण समिई, पीढ १ फलग २ सिज्जा ३ संथारग ४ वत्थ ५ पत्त ६ कंबल ७ दंडग ८ रयहरण ९ चोलपट्टग १० मुहपोत्तिग ११ पायपुंछणादी १२ दुवालसविहं एयंपि संजमस्स उववूहणट्ठयाए वातातवदंसमसगसीअपरिरक्खणट्ठाए उवगरणं रागदोसरहिअं परिहरितव्वं", व्याख्या-(११२ पत्रे)-'पंचम'ति पंचमं भावनावस्तु आदाननिक्षेपसमितिलक्षणं, एतदेवाह-पीठादि द्वादशविधं उपकरणं प्रसिद्धं, 'एयंपी'ति एतदपि अनन्तरोदितं उपकरणं, अपिशब्दादन्यदपि संयमस्य उपबृंहणार्थतया-संयमपोषणाय तथा वाताऽऽतपदंशमशकशीतपरिरक्षणार्थतया, उपकरणं-उपकारकं उपधिं रागद्वेषरहितं क्रियाविशेषणमिदं 'परिहरिअव्व'ति परिभोक्तव्यं, न विभूषादिनिमित्तमिति भावना। एवं श्रीदशवैकालिकसूत्रेऽपि (१५५ पत्रे) "से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से कीडं वा पयगं वा कुंथुं वा पिपीलियं वा हत्थंसि वा पायंसि वा बाहुंसि वा ऊरुंसि वा उदरंसि वा सीसंसि वा वत्थंसि वा पडिग्गहंसि वा कंबलंसि वा पायपुंछणंसि वा रयहरणंसि वा गोच्छगंसि वा उंडगंसि वा दंडगंसि वा पीढगंसि वा फलगंसि वा सेज्जंसि वा संथारगंसि वा अन्नयरंसि वा तहप्पगारे उवगरणजाए तओ संजयामेव पडिलेहिअ पडिलेहिअ पमज्जिअ पमज्जिअ एगंतमवणेज्जा नो णं संघायमावज्जेज्जा ॥ ७ ॥ एवं श्रीभगवतीसूत्रेऽपि दण्डग्रहणं साधूनामुपदिष्टं । इत्यमेव श्रीओघनिर्युक्तिसूत्रवृत्तावपि, (८७ पत्रे) "मत्तट्ठिअ आवस्सग, सोहेउं तो अइति अवरण्हे । अब्भुट्ठाणं दंडा-इआण गहणेक

वयणेणं ॥ २११ ॥ व्याख्या-इदानीं ते साधर्मिकसमीपे प्रविशन्तः, 'मत्थएण वंदामि'त्ति मुक्त्वा तथा 'आवस्सग सोहेउ'त्ति आवश्यक च-कायिकोच्चारादि 'शोधयित्वा' कृत्वेत्यर्थः, अतो अपराह्णसमये आगच्छन्ति, येन वास्तव्याना भिक्षाटनाद्याकुलत्व न भवति, वास्तव्या अपि कुर्वन्ति, किं इत्यत आह 'अब्भुट्ठाण'ति तेषा प्रविशता अभ्युत्थानादि कुर्वन्ति, 'दंडादिताण-गहण'ति दण्डकादीना ग्रहण कुर्वन्ति, कथ ? 'एगवयणेण'ति एकेनैव वचनेन उक्ताः सन्तः पात्रकादीन् समर्पयन्ति, वास्तव्येनोक्ते मुञ्चस्वेति ततश्च मुञ्चन्ति, अथ न मुञ्चति एकवचनेन ततो न गृह्यन्ते, मा भूत् प्रमादः इति। श्रीआवश्यकबृहद्वृत्तौ हारिभद्र्यामपि (५१२ पत्रे) यथा-

"जे तुज्झ माइणिज्जा ते आगया विआलोत्ति न पविट्ठा, तेण कहिअ तुट्ठो, इमेसिंपि रत्तिं सुभेण अज्झवसाणेण चउण्हवि केवलनाण समुप्पन्न। पभाए आयरिआ दिसाउ पलोएइ पच्चाहे मुहुत्तेण एहिंति, पोरिसिसुत्त मण्णे करेंति अच्छति, उग्घाडाए अत्थपोरिसित्ति, अतिचिराविते य ते देवकुलिअ गया, ते वीअराया न आढायति, दडओ अणेण ठविओ पडिक्कतो आलोइए भणति-कओ वदामि ? भणति-जओ मे पडिहायति, सो चिंतेइ-अहो दुट्ठसेहा निल्लज्जत्ति" इत्यादि। एवं श्रीआवश्यकचूर्णावपि, तथाहि-उग्घाडाए अत्थ पोरसिं व अतिचिरावि ते देवलिअ गया ते वीयरागाणा ढायति दंडग ठविओ पडिक्कतो" इत्यादि। एवमेव श्रीदशाश्रुतस्कन्धचूर्णावपि भिक्षुप्रतिमाऽधिकारे, तथाहि-

एगस्स आयरियस्स सयासे एगो सेट्ठिसुओ पव्वइओ, सेहो पचण्ह सजयसयाण जो जो साहू एति तस्स दडग गहाय ठवेइ, एव तस्स उट्ठितिगस्स अच्छतस्स अन्नो एति अन्नो जाति, तहावि सो भयव। अतुरिअ अचवलं उवरिं दिट्ठा य

पमज्जित्ता ठवेइ, एवं महुएणं वि कालेणं न परितप्पई" इति आदान–निक्षेपणासमितौ दृष्टान्तः। इत्थमेव व्यवहारचूर्णौ अष्टमोद्देशकेऽपि यथा–दडगगाहा सुत्तपयाणि गहिआणि थेरो नाम जराए जिणो अट्टावणानिमित्तं छण्हा परितावणा पत्राणायं छसयं गिण्हति दडस्स कारण पुण वत्तति वंसादीण गहणकारण निसीहे कप्पे अ भणिअ, सो पुणकारण उवगरणं ठवेइ एसा पुच्छा वच्यते सो दीहो दंडओ थूगेरो अ सो त वुग्गोसग्घाइवारणा निमित्त परिग्रहति सेसाउ गाहा उ कठा" इत्यादि। पुनर्विस्तरार्थिना श्रीनिशीथश्रीअनुयोगद्वारश्रीप्रवचनसारोद्धारादयो ग्रन्था द्रष्टव्या। ननु साधूना चतुर्दशोपकरणानि प्रतिपादितानि, तन्मध्ये दण्डकस्तु नाऽस्ति किमिति गृह्यते? सत्य, यद्यपि तु उपधिश्चतुर्दशधा एव पर औपग्रहीकोपधिः बहुधाऽस्ति, तत्र दण्डकस्य प्रतिपादनात्। यदुक्त श्रीपचवस्तुकस्वोपज्ञवृत्तौ (१२८ पत्रे) श्रीहरिभद्रसूरिभिः तथाहि–उक्त ओघोपधिः औपग्रहिकमाह–"पीढग निसज्ज दडग, पमज्जणी घट्टए डगलमाई। पिप्पलग सूई नहरणि, सोहणगदुग जहण्णो उ ॥ ८३४ ॥" व्याख्या–पीठक काष्ठछगणात्मक लोकसिद्धमान, त्रेहवत्या वसतौ वर्षाकाले वा ध्रियते इति औपग्रहिक, सयतीना तु आगताभ्यागतसाधुनिमित्तमिति, निषद्या पादपुञ्छन प्रसिद्धप्रमाण, जिनकल्पिकादीना न भवति, निषीदनाभावात्, दण्डकोऽप्येवमेव, नवर निवारणाऽभावात् एषः, प्रमार्जनी वसतेर्दण्डकपुञ्छनाभिधाना एव, 'घट्टकः' पात्रसुखादिकरणाय लोहमयः, 'सूची' शीवनादिनिमित्त वेण्वादिमया, नखरदनी प्रतीता लोहमय्येव, शोधनकद्वय कर्णशोधनकदन्तशोधनकाभिधान लोहमयादि, जघन्यस्तु अय जघन्य औपग्रहिक खलु उपधिरिति गाथार्थ इति वृत्तौ॥

॥ इति साधूना दण्डकग्रहणाधिकारः ॥ ४६ ॥

वयणेण ॥ २११ ॥ व्याख्या–इदानीं ते साधर्मिकसमीपे प्रविशन्तः, 'भत्तट्ठिअ त्ति' मुक्त्वा तथा 'आवस्सग सोहेउ'त्ति आवश्यकं च–कायिकोच्चारादि 'शोधयित्वा' कृत्वेत्यर्थः, अतो अपराह्णसमये आगच्छन्ति, येन वास्तव्याना भिक्षाटनाद्याकुलत्व न भवति, वास्तव्या अपि कुर्वन्ति, किं इत्यत आह 'अब्भुट्ठाण'त्ति तेषां प्रविशता अभ्युत्थानादि कुर्वन्ति, 'दण्डादिताण–गहण'त्ति दण्डकादीना ग्रहण कुर्वन्ति, कथ ? 'एगवयणेण'त्ति एकेनैव वचनेन उक्ताः सन्तः पात्रकादीन् समर्पयन्ति, वास्तव्येनोक्ते मुञ्चस्वेति ततश्च मुञ्चन्ति, अथ न मुञ्चति एकवचनेन ततो न गृह्यन्ते, मा भूत् प्रमाद इति। श्रीआवश्यकबृहद्वृत्तौ हारिभद्र्यामपि (५१२ पत्रे) यथा–

"जे तुज्झ भाइणिज्जा ते आगया विआलोत्ति न पविट्ठा, तेण कहिअ तुट्ठो, इमेसिंपि रत्तिं सुभेण अज्झवसाणेण चउण्हवि केवलनाण समुप्पन्नं। पभाए आयरिआ दिसाउ पलोएइ एत्ताहे मुहुत्तेण एहिंति, पोरिसिसुत्त भणणे करेंति अच्छंति, उग्घाडाए अत्थपोरिसित्ति, अतिचिराविते य ते देवकुलिअ गया, ते वीअराया न आढायंति, दंडओ अणेण ठविओ पडिक्कंतो आलोइए भणति–कओ वदामि ? भणति–जओ मे पडिहायति, सो चिंतेइ–अहो दुट्ठसेहा निल्लज्जत्ति" इत्यादि। एवं श्रीआवश्यकचूर्णावपि, तथाहि–उग्घाडाए अत्थ पोरासिं त अतिचरावि ते देउलिअ गया ते वीयरागाणा ढायति दडग ठविओ पडिक्कंतो" इत्यादि। एवमेव श्रीदशाश्रुतस्कन्धचूर्णावपि भिक्षुप्रतिमाऽधिकारे, तथाहि–

एगस्स आयरियस्स सगासे एगो सेट्ठिसुओ पव्वइओ, सेहो पच्चण्ह सजयसयाण जो जो साहू एति तस्स दडग गहाय ठवेइ, एव तस्स उट्ठितिगस्स अच्छतस्स अन्नो एति अन्नो जाति, तहावि सो भयय ! अतुरिअ अचवल उवरिं दिट्ठा य

जिनप्रतिमावन्दनपूजादीना श्रावकाणा प्रत्याख्यान कार्यते तत् कस्मिन्० ? । २४ । चैत्राश्विनमासयोः अस्वाध्यायो गण्यते सूत्रपठनादौ तत् कस्मिन्० ? । २५ । निन्धनिषिद्धकुले साधुभिः आहारो गृह्यते तत् कस्मिन्० ? ।२६। श्रावका एकादश-प्रतिमां विना भिक्षा याचन्ते तत् कस्मिन्० ? । २७ । श्रावकाः प्रतिक्रमणादि कुर्वन्त प्रथममीर्यापथिकीं प्रतिक्रमन्ति तत् कस्मिन्० ? । २८ । श्रावकैः करेमि भन्ते ! इत्यादि दण्डकोच्चारण क्रियते तत् कस्मिन्० ? ।२९। ईर्यापथिकी तस्सोत्तरी-लोकस्योद्योतकरवन्दनकप्रभृतीना पाठः कथ्यते तत् कस्मिन्० ? । ३० । प्रत्याख्याने आकारा कथ्यन्ते तत् कस्मिन्० ? । ३१ । श्रावकैः वंदित्तुसूत्रं प्रतिक्रमणे कथ्यते तत् कस्मिन्० ? ।३२। प्रतिक्रमणादिक्रिया कुर्वद्भिः श्रावकैः उपवेशनोत्था-नादिकायचेष्टा क्रियते तत् कस्मिन्० ? । ३३ । उच्छिष्टाम्र गृह्यते तत् कस्मिन्० ? । ३४ । श्रावकैश्चोलपट्टको ध्रियते तत् कस्मिन्० ? । ३५ । शेषकाले पीठफलकपट्टिकादिपरिभोगः क्रियते तत् कस्मिन्० ?। ३६। साधुश्राद्धाना आलोचनादि प्राय-श्चित्त च प्रदीयते तत् कस्मिन्० ? ।३७। पौषधादिग्रहणपारणविधिः साम्मत विधीयते तत् कस्मिन्० ? ।३८। सामायिक-दण्डके दुविह तिविहेणमित्येवाऽस्ति सिद्धान्ते, न तु मणेणमित्यादियुक्ति पर साम्मत क्रियते तत् कस्मिन्० ? ।३९। काय-मुखवस्त्रिकादीना पञ्चविंशतिः २५ प्रतिलेखनाः क्रियते तत् कस्मिन्० ? । ४० । साधर्मिकाणा हस्ते गृहे वा खण्डपुटकाः प्रदीयन्ते ब्रम्मादीना वा लम्भनिका क्रियते तत् कस्मिन्० ? । ४१ । श्रीपर्युषणापर्वणि लोकसमक्ष छेदग्रन्थरूप श्रीकल्प-सूत्र वाच्यते तत् कस्मिन्० ? । ४२ । लौकिकटिप्पनकोपरि दीक्षादिमुहूर्तं गण्यते, द्वादशमासवृद्धा पर्युषणापर्व क्रियते तत् कस्मिन्० ? ।४३। नव्योपाश्रयाः कार्यते तत् कस्मिन्० ? ।४४। अन्यगच्छाद् उद्भ्राम्य यदाऽऽत्मीयः श्रावकः क्रियते तदा

ननु–ये एकत्रिंशत् द्वात्रिंशद्वा सिद्धान्तान् मानयन्ति, न पञ्चचत्वारिंशत् ते स्वमानितसिद्धान्ताऽनुक्तान्यपि कर्तव्यानि कुर्वन्ति न वा? उच्यते–शतशः कुर्वन्ति, ततस्तेषां प्रत्यक्ष मषनोक्तौ विरोध, तत्रार्थे ते प्रष्टव्या इत्थ–भोः! श्रावका नमस्कारान् गुणयन्ति तत् कस्मिन् सिद्धान्ते प्रोक्तमस्ति?। १। श्रावकाणां साम्प्रत क्रियमाणप्रतिक्रमणादिविध्यनुक्रम क्रियते तत् कस्मिन्०?। २। श्रावकैर्मुखवस्त्रिका गृह्यते तत् कस्मिन्०?। ३ साधुभिः पुस्तकादीनि रक्ष्यन्ते तत् कस्मिन्०? । ४। ओघ १ कल्प २ चोलपट्टक ३ मुखवस्त्रिका ४ मान क्रियते तत् कस्मिन्०?। ५। पात्रकाणा लेपन क्रियते तत् कस्मिन्०?। ६। अलसेलरोगानादिकूपिका रक्ष्यते तत् कस्मिन्०?। ७। त्रिपणे दवरको दीयते तत् कस्मिन्०?। ८। झोलिकाया ग्रन्थिः प्रदीयते तत् कस्मिन्०?। ९। गोचरीगमने वामबाहौ झोलिका स्थाप्यते तत् कस्मिन्०?। १०। साध्व्यादिभिर्मुखवस्त्रिका पाशकदवरकाभ्यां कर्णयोर्धार्यते तत् कस्मिन्०?। ११। श्रावका यदा वन्दन्ते तदा साधुभिर्हुङ्कारः क्रियते तत् कस्मिन्०?। १२। पटीप्रावरणे वामस्कन्धे आव्रियते, दक्षिण उद्घाटितो रक्ष्यते तत् कस्मिन्०? । १३। ओघे ऊर्णादिदशिका बध्यन्ते तत् कस्मिन्०?। १४। त्रिपणे कण्ठको बध्यते तत् कस्मिन्०?। १५। कटौ साधुभिर्दवरको बध्यते तत् कस्मिन्०। १६। मषीभाजन रक्ष्यते तत् कस्मिन्०। १७। गोचरीं कुर्वता [पर्यटतां] साधूना पश्चात् गृहस्था भ्रमन्ति तत् कस्मिन्०?। १८। आर्याः साधून् आपृच्छ्य विहरणार्थं यान्ति तत् कस्मिन्०?। १९। आर्याणामुपकरणानि मानोपेतानि क्रियन्ते तत् कस्मिन्०?। २०। पानीयं प्रासुक कियत् काल तिष्ठति तत् कस्मिन्? । २१। पक्वान्न कियत्कालमविनष्ट सन्तिष्ठति तत् कस्मिन्०?।२२। छिम्पकादिधौतवस्त्रधावन गृह्यते तत् कस्मिन्?। २३।

जिनप्रतिमावन्दनपूजादीना श्रावकाणां प्रत्याख्यान कार्यते तत् कस्मिन्० ? । २४ । चैत्राश्विनमासयोः अस्वाध्यायो गण्यते सूत्रपठनादौ तत् कस्मिन्० ? । २५ । निन्द्यनिषिद्धकुले साधुभिः आहारो गृह्यते तत् कस्मिन्० ? ।२६। श्रावका एकादश-प्रतिमां विना भिक्षा याचन्ते तत् कस्मिन्० ? । २७ । श्रावकाः प्रतिक्रमणादि कुर्वन्तः प्रथममीर्यापथिकीं प्रतिक्रमन्ति तत् कस्मिन्० ? । २८ । श्रावकैः करेमि भन्ते ! इत्यादि दण्डकोच्चारण क्रियते तत् कस्मिन्० ? ।२९। ईर्यापथिकी तस्सोत्तरी-लोकस्योद्योतकरवन्दनकप्रभृतीनां पाठः कथ्यते तत् कस्मिन्० ?। ३० । प्रत्याख्याने आकाराः कथ्यन्ते तत् कस्मिन्० ? । ३१ । श्रावकै वंदित्तुसूत्र प्रतिक्रमणे कथ्यते तत् कस्मिन्० ? ।३२ । प्रतिक्रमणादिक्रिया कुर्वद्भिः श्रावकैः उपवेशनोत्था-नादिकायचेष्टा क्रियते तत् कस्मिन्० ? । ३३ । चण्छिटाश्च गृह्यते तत् कस्मिन्० ? । ३४ । श्रावकैश्चोलपट्टको ध्रियते तत् कस्मिन्० ? । ३५ । शेषकाले पीठफलकपट्टिकादिपरिभोगः क्रियते तत् कस्मिन्० ?। ३६। साधुश्राद्धाना आलोचनादि प्राय-श्चित्त च प्रदीयते तत् कस्मिन्० ? ।३७। पौषधादिग्रहणपारणविधि साम्प्रत विधीयते तत् कस्मिन्० ? ।३८। सामायिक-दण्डके दुविह तिविहेणमित्येवाऽस्ति सिद्धान्ते, न तु मणेणमित्यादियुक्ति पर साम्पत क्रियते तत् कस्मिन्० ? ।३९। काय-मुखवस्त्रिकादीना पञ्चविंशतिः २५ प्रतिलेखनाः क्रियते तत् कस्मिन्० ? । ४० । साधर्मिकाणा हस्ते गृहे वा खण्डपुटकाः प्रदीयन्ते ब्रम्भादीना वा लम्भनिका क्रियते तत् कस्मिन्० ? । ४१ । श्रीपर्युपणापर्वणि लोकसमक्ष छेदग्रन्थरूप श्रीकल्प-सूत्र वाच्यते तत् कस्मिन्० ? । ४२ । लौकिकटिप्पनकोपरि दीक्षादिमुहूर्तं गण्यते, द्वादशमासवृद्धा पर्युपणापर्व क्रियते तत् कस्मिन्० ? ।४३। नव्योपाश्रया कार्यते तत् कस्मिन्० ? ।४४। अन्यगच्छाद् वधूग्राह्य यदाऽऽत्मीयः श्रावकः क्रियते तदा

पूर्वं देवपूजाशत्रुंजयादियात्राकरणस्य मिथ्यादुष्कृतं दाप्यते तत् कस्मिन्० ? । ४५ । तैलचूर्णादिमध्ये वस्त्रादि मलिनानि क्रियन्ते तत् कस्मिन्० ? । ४६ । एवं शतशः कर्तव्यानि क्रियमाणानि दृश्यन्ते, अत्रेदं रहस्यम्—येषु आगमेषु एतानि सन्ति ते आगमास्तैर्न मन्यन्ते, मन्यमानागमेषु न सन्ति तानि, ततो यदि एतानि तैः क्रियन्ते, तदा एतद्गर्भिता आगमा अपि माननीयाः, नो चेदेतानि कार्याणि न करणीयानि, तथा यानि पुण्याचरणानि क्रियन्ते तानि कस्मिन् ग्रन्थे प्रोक्तानि सन्ति ? ॥

॥ इति पञ्चचत्वारिंशदागममाननाधिकारः ॥ ४७ ॥

ननु—वार्तमानिकेषु गच्छेषु [अज्ञातेषु] निर्विरोधैः आत्मगवेषकैः पापभीरुभिः पूर्वसूरिभिः प्राक्तनग्रन्थेषु जिनप्रतिमा-पूजा तत्फलादिकं च प्रतिपादितमस्ति ?, उच्यते—शतशः स्थानेषु तन्निरूपितमस्ति, तत्रार्षे—श्रीमहानिशीथसूत्रे द्रव्यपूजा-फलं यथा—"काउं पि जिणायतणेहिं मंडिअं सव्वमेइणीपीठं दाणाइ चउक्केण सुट्ठु वि गच्छिज्ज अच्चुअं न परओ ॥ १ ॥" तथा श्रीपञ्चचैत्ये गाथात्रयं चैत्यभेदपञ्चकनिरूपकं यथा—

"भत्ती १ मंगलचेइअ २ निस्सकड ३ अनिस्सचेईए वावि ४ । सासयचेइअ ५ पंचम—मुवइट्ठं जिणवरिंदेहिं ॥ १ ॥ गिह जिणपडिमाभत्ती, चेईअं १ उत्तरंगघडिआमि । जिणबिंबे मंगलचेईयति २ समयन्नुणो बिंति ॥ २ ॥ निस्स-कडगच्छस्स ३ निस्सिअ ३ तदिअर अनिस्सकडं ४ सिद्धाययणं च इमं ५ चेइअपणगं विणिद्दिट्ठं ॥ ३ ॥ इति । पुनः—श्रीनिशीथभाष्यलघ्वे १५ उद्देशे धूपकुसुमबलिपूजा यथा—"तओ विहिणा न्हाओ परमसुरभियपोत्तियजुगल—

परिहिओ । सुरासुरईसु अणुगम्ममाणेसु महयाधूवकुसुमबलिगधोवहारेसु कालागुरुपवरधूवसुस्सरादेअसगीअवाइअरवेणं अहो जिणाययणं"ति, तथा आवश्यकचूर्णौ (३९६ पत्रे) श्रीवज्रस्वामिभिरपि दशपूर्वधरैः स्वय आकाशमुत्पत्य हुताशनात् पुष्पाणि आनीय श्रावकाणां दत्त्वा जिनप्रतिमायाः पूजा पर्युषणापर्वणि कारिता, तथाहि–"एव पच्छा उप्पइओ भगवं, पत्तो पुरिय नयरिं, तत्थ सुभिक्खं तत्थ य सावगा बहुगा, एय तत्थ उछाहा, तत्थ य राया तच्च-न्निअसड्ढो, तत्थ य अम्हच्चयाणं सड्ढाण तेसिं च वरुड्डएण मल्लारुभणाणि वट्टति, सयत्थ तच्चन्नियसड्ढा पराजी-यती, ताहे तेहिं राया पुप्फाणि वाराविओ, पज्जोसवणाए सड्ढा अद्दुण्णा, जतो पज्जोसवणाए पुप्फाणि नत्थित्ति, ताहे सवालवुड्ढा वयरसामिं उवट्ठिआ, तुब्भे जाणह जइ तुब्भेहिं जाणएहिं पवयण ओहामिज्जइ, एव बहुप्पगार भणिए ताहे उप्पइओ माहेसरिं गओ, तत्थ य हुयासणगिह नाम वाणमंतर, तत्थ कुभो पुप्फाण उट्ठेइ, तत्थ भगवओ पितुमित्तो वट्ठितु, तत्थ गतो, सो समंतो भणइ–किमागमणपयोअण ?, भगवता भणित–पुप्फेहिं पयोअण, सो भणइ अणुग्गहो, वा तुब्भे गहेह जाव एमि, पच्छा चुल्लहिमवते सिरिसगास गओ, सिरीए चेइअअच्चणिया–निमित्त पउम छिण्णग, ताहे सिरीए वदित्ता निमंतिओ, त गहाय अग्गिहर एति, तत्थ कुभ पुप्फाण छोढूण अण्णाणि तु सारियाणि, एव जभगग-णप[रि]वुडो दिव्वेण गीअगधव्वनिनाएण आगतो आगासेण, तस्स य पउमस्स वेंटे वइरसामी, तत्थ तच्चण्णिया भणति–अम्ह एतं पाडिहेरं, अग्घ गहाय निग्गया, तं विहार मोलेत्ता अरिहतघर गया, तत्थ देवेहिं महिमा कया, तत्थ लोगस्स

पूर्वं देवपूजाशत्रुंजयादियात्राकरणस्य मिथ्यादुष्कृतं दाप्यते तत् कस्मिन्० ? । ४५ । तैलचूर्णादिमध्ये वस्त्रादि मलिनानि क्रियन्ते तत् कस्मिन्० ? । ४६ । एवं शतशः कर्तव्यानि क्रियमाणानि दृश्यन्ते, अत्रेद रहस्यम्—येषु आगमेषु एतानि सन्ति ते आगमास्तैर्न मन्यन्ते, मन्यमानागमेषु न सन्ति तानि, ततो यदि एतानि तैः क्रियन्ते, तदा एतद्गर्भिता आगमा अपि माननीयाः, नो चेदेतानि कार्याणि न करणीयानि, तथा यानि दुष्टाचरणानि क्रियन्ते तानि कस्मिन् ग्रन्थे प्रोक्तानि सन्ति ? ॥

॥ इति पञ्चचत्वारिंशदागममाननाधिकारः ॥ ४७ ॥

ननु—वार्तमानिकेषु गच्छेषु [अज्ञातेषु] निर्विरोधैः आत्मगवेषकैः पापभीरुभिः पूर्वसूरिभि प्राक्तनग्रन्थेषु जिनप्रतिमा-पूजा तत्फलादिक च प्रतिपादितमस्ति ?, उच्यते—शतशः स्थानेषु तन्निरूपितमस्ति, तत्रादौ—श्रीमहानिशीथसूत्रे द्रव्यपूजा-फल यथा—"काउ पि जिणायतणेहिं मंडिअं सव्वमेइणीपीठ दाणाइ चउक्केण सुट्ठु वि गच्छिज्ज अच्चुअ न परओ॥ १ ॥"
तथा श्रीपञ्चचैत्ये गाथात्रय चैत्यभेदपञ्चकनिरूपक यथा—

"भत्ती १ मंगलचेइअ २ निस्सकड ३ अनिस्सचेइयं यावि ४। सासयचेइअ ५ पचम-मुवइट्ठ जिणवरिंदेहिं ॥ १ ॥ गिह जिणपडिमाभत्ती, चेईअं १ उत्तरंगघडिअमि । जिणबिंबे मंगलचेईयति २ समयन्नुणो बिंति ॥ २ ॥ निस्स-कडगच्छस्स य निस्सिअ ३ तदिअर अनिस्सकडं ४ सिद्धायणय च इम ५ चेइअपणग विणिद्दिट्ठ ॥ ३ ॥ इति । पुनः—श्रीनिशीथमध्यसम्के १५ उद्देशे धूपकुसुमाञ्जलिपूजा यथा—"तओ विहिणा न्हाओ परमसुरभियपोत्तियजुगल—

"सिज्जंभव गणहर, जिणपडिमादसणेण पडिबुद्ध । सिरिमणगपिअ दसकालियस्स निज्जूहगं वंदे ॥ १ ॥ इति ।" श्रीऋषिमण्डलसूत्रे तथा आवश्यकचूर्णावपि (२२१ पत्रे) अष्टापदप्रासादाधिकारे यथा "भरहो य तत्थ चेइयघरं करेइ वड्ढइरयणेणं ओअणायाम तिगाउतुस्सेहं सीहनिसादि सिद्धायतणपलिभाग अणेगखंभसयसंनिविट्ठं । एवं जहा वेयड्ढसिद्धायतण जंबूद्दीवपन्नत्तीए जाव झायाइ" इत्यादि । पुनः श्रीआचाराङ्गसूत्रवृत्तौ (८२ पत्रे), तथाहि "अर्हत्सिद्धचैत्यतपःश्रुतगुरुसाधुसङ्घप्रत्यनीकतया दर्शनमोहनीयं कर्म बध्नाति, येन चाऽसौ अनन्तसंसारसमुद्रान्तःपात्या इवाऽवतिष्ठते ।" औपपातिकसूत्रे (२५) उचितप्रदान यथा "तए ण कोणीए राया तस्स पवत्तिवाइ[उ]यस्स अद्धत्तेरसयसहस्सं पिइदाणं दलइ" इति । निरयावलिकाश्रुतस्कन्धे पुष्पिकाया चतुर्थाध्ययने बहुपुत्रिकाऽग्रिमभवे साधर्मिकभोजनाधिकारो यथा "तए णं रट्ठकूडे विउलअसण-पाण-खाइमसा-इमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावित्ता तहेव जाव पुव्वभवे सुभद्दा जाव अज्जा जाया" इति । अत्रेदं रहस्यम्—पूर्वोक्तपूर्वाचार्यैः निजपूर्वप्रतिपादितशास्त्रेषु जिनप्रतिमापूजा–जिनप्रतिमाप्रतिष्ठा–जिनभवनकारापणसप्तदशभेदपूजा–दीपपूजौचित्यदानसाधर्मिकवात्सल्यादयो धर्माः प्ररूपिताः । पुनः श्रीपादलिप्ताचार्य–श्रीउमास्वातिवाचकादिभिः प्रतिष्ठाकल्पाः कृताः सन्ति, स्वय तु ते संविग्ना महानुभावाः शुद्धप्ररूपकाश्चासन्, ततस्तेषामपि ग्रन्थसम्मतिमान्याः, कदाग्रहं अपास्य धर्मार्थिभिरिति ॥ ४८ ॥

॥ इति जिनप्रतिमापूजाया जिनप्रतिमापूजाफलस्य षाऽधिकारः ॥ ४८ ॥

अतीय घहुमाणो जाओ रायावि आउट्टावितो समणोवासगो जाओ" इति । श्री आवश्यकवृत्तौ हारिभद्र्या एवमेव सम्यन्घो, नन्दीवृत्तौ अपि। इत्थमेव श्रीआवश्यकचूर्णावपि अर्हत्प्रतिमाधिकारे यथा—"चिती सज्ञाने" सज्ञान उत्पद्यते काष्ठकर्मादिषु प्रकृतिं दृष्ट्वा "जहा अरिहंतपडिमाएसु इति, अरिहंता तित्थगरा तेर्सि च तेसिं चेइआणि अरिहंत चेइआणि" अरिहंतप्रतिमा इत्यर्थः । तथा क्षेत्रविचारप्रकरणे—साधर्मिकभक्ति १ जिनबिम्बप्रतिष्ठा २ पुस्तकभक्ति ३ तीर्थयात्रादिक ४ सर्वं प्रकटतयाऽस्ति, तथाहि "अह तुज्झ देसविरओ, सम्मत्तरओ रओ अ जिणवयणे। तस्स वि अणुव्वयाइं, आरोविज्जंति सुद्धाइं ॥ २९ ॥ अनिआणोदारमणो, हरिसवसविसटकंचुयकरालो । पूएइ गुरुं संघं, साहम्मियमाइ भत्तीए ॥ ३० ॥ निअदव्वमउव्व जिणिंदभवण, जिणबिंबवरपइट्ठासु । वियरइ पसत्थपोत्थयसुतित्थतित्थयरजत्तासु ॥ ३१ ॥ अरिहंतसिद्धचेइअपवयणआयरिअसव्वसाहूसु । निच्चं करेइ भत्तिं, तिगरणसुद्धेण भावेण॥७०॥" तथा पुनः श्रीउत्तराध्ययनचूर्णौ पुष्पपूजा, तथाहि "तित्थयरो अरिहंतो तस्स चेव भत्ती कायव्वा, सा च पूआवंदणाईहिं हवइ, पूआ च पुप्फामिसथुइ—पडिवत्तिभेएण चउविहा पि जहासत्तीए कुज्जा इति, जो सो सोआ धम्मं पवयति सो आयरिएण भणइ—सदिसह किं मए कायव्वं ? आयरिआ तस्स सार नाऊण भणइ—चेइआणं विउलपूअं करेहि, समणसंघस्स य ण वयगुळणारसिं पूअ करेहि", इत्यादि । एवं कल्पचूर्णौ चैत्यपूजासाधर्मिकभक्तिः प्रतिपादिता, तथाहि "भण्णइ जिणपूआए, कायवहो जइवि होइ उ कहिंवि । तहवि भत्ती[तई] परिसुद्धा, गिहीण कूवाहरणयोगा ॥ १ ॥ असदारंभपवित्ता ज च गिही तेण तेसिं विन्नेया । तन्निवित्ति फलच्चिअ एसा परिभावणायमिअ ॥ २ ॥" इति गाथाद्वय श्रीस्थानाङ्गवृत्तौ (११० पत्रे) श्रीअभयदेवसूरिभिः प्रोचे ।

"से किं त लोगुत्तरिअं भावावस्सयं ? भावावस्सय जण्णं इमे समणे वा समणी वा सावओ वा साविआ वा तच्चित्ते तम्मणे तल्लेसे तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते तदप्पियकरणे तब्भावणाभाविए अन्नत्थ कत्थइ मण अकरेमाणे उभओकाल आवस्सय करेंति" इत्येतद् सूत्रैकदेशो यथा 'तदर्पितकरणः' करणानि-तत्साधकतमानि देहरजोहरणमुखवस्त्रिकादीनि, तस्मिन्नावश्यके यथोचितव्यापारनियोगेन अर्पितानि-नियुक्तानि तानि येन स तथा, सम्यक् यथास्थानन्यस्तोपकरण इत्यर्थः। एकार्थिकानि वा विशेषणानि एतानि प्रस्तुतोपयोगप्रकर्षप्रतिपादनपराणि, अमूनि च लिङ्गविपरिणामतः श्रमणीश्राविकयोरपि योज्यानि, तस्मात् तच्चित्तादिविशेषणविशिष्टाः श्रमणादयः 'उभयकाल' उभयसन्ध्य यदावश्यक कुर्वन्ति तल्लोकोत्तरिक, भावमाश्रित्य भावश्चासौ आवश्यकं चेति वा भावावश्यकं, अत्राऽपि अवश्यकरणादावश्यकत्व तदुपयोगपरिणामस्य च सद्भावाद् भावत्व मुखवस्त्रिकाप्रत्युपेक्षणरजोहरणव्यापारादिक्रियालक्षणदेशस्य अनागमत्वात् नोआगमत्व भावनीयं" इति। पुन श्रीअनुयोगद्वारवृत्तौ श्रीवीरनिर्वाणात् सहस्रवर्षसमयसंजाते श्रीहरिभद्रसूरिभिः कृतायां २० पत्रे। एव श्रीअनुयोगद्वारचूर्णावपि (१४ पत्रे) तथाहि "तस्साहणे जाणि सरीररजोहरमुहणंतगादि यानि दव्वाणि ताणि किरिआकरणत्तणतो अप्पिआणि" इति, तथैव मलधारि-हेमचन्द्रसूरिकृताया अनुयोगद्वारवृत्तावपि (३० पत्रे), तथाहि "तदर्पितकरणः" करणानि-तत्साधकतमानि देहरजोहरणमुखवस्त्रिकादीनि तस्मिन्नावश्यके यथोचितव्यापारनियोगेन अर्पितानि नियुक्तानि करणानि येन स तथा, अमूनि च तच्चित्तादिविशेषणानि लिङ्गविपरिणामतः श्रमणीश्रावकयोरपि योज्यानि। अत्र वृत्तिद्वये चूर्णौ च तदर्पितकरण

"घासत्ताणावरिया, निक्कारण ठंति कज्जि जयणाए । हत्थच्छं[त्थ]गुलिसमा, पुत्तावरिमा व भासंति ॥ १२१० ॥" इति । वृत्तिर्यथा—निष्कारणे–कारणाभावे वर्षात्राण कम्बलमयः कल्पः, तेन सौत्रिककल्पान्तरितेन सर्वात्मना आवृताः तिष्ठन्ति, न कामपि लेशतोऽपि चेष्टा कुर्वन्ति, कार्ये तु समापतिते यतनया हस्तसंज्ञया अक्षिसंज्ञया अङ्गुलिसंज्ञया वा व्यवहरन्ति, 'पोत्तावरिआ' वा भाषन्ते, स्थानादिप्रयोजने वर्षाकल्पावृता गच्छन्ति इति ॥ श्रीव्यवहारभाष्यवृत्तौ सप्तमोद्देशे (१९० पत्रे) "पुनरिह प्रमार्जन शय्यादेः आसेवनकाले वस्त्रोपान्तादिना आवश्यकवृत्तौ अत्र पोतशब्देन मुखवस्त्रिका प्रोच्यते नतु वस्त्र । तथैव श्रीहरिभद्रसूरिभिर्व्याख्यातत्वात् इति विचारसारग्रन्थे लिखितमस्ति । पुनर्विवाहचूलिकाया "दप्पणे पविचिं, करेइ जइ कावि वत्थतणुसुद्धी । भावखणपि कुम्मा, तह इरिआए विमलचित्ता ॥ १ ॥ दवहिं कुसुम-सेहर–मुज्झइ दवाहिगारमज्झमि । ठवणायरिय ठविउ, पोसहसालाइ सो सीसो ॥ २ ॥ उम्मुक्कभूसणो सो, इरिआ य पुरस्सर य मुहपत्तिं । पडिलेहिऊण तत्तो, चउविहं पोसहं कुणइ ॥ ३ ॥ पुनर्व्यवहारचूर्णौ यथा [वत्ते] "वत्थुअणुवत्थुवा वि, पुत्ति पेहण पुव्वय । सामाइयं करेमाणो भणिओ कम्म निज्जरी ॥ १ ॥ पापारंभ पमुत्तूणं, घित्तूण मुहणतर । वत्थकायविसुद्धीए, सीहो गिण्हइ पोसह ॥ २ ॥" इत्येवं । वन्दनकभाष्येऽपि, तथाहि—"वामकरगिहिअ पोत्ती, एगदेसेण वामकन्नाओ । आर-भिऊण निडालपमज्जिआ दाहिणो कन्नो ॥ १ ॥ तह विच्छिअ वामगजाणुं निसिऊण तत्थ । मुहपत्तिं रयहरणमज्झभागमि ठावए पुञ्जपायजुगं ॥ २ ॥ एवं सुसावओ वि हुं सुवालसावत्तवंदणं दिसो । मुहपत्ति मज्झभागमि ठावए पुञ्जपाय-जुग ॥ ३ ॥" पुनरग्रार्थे श्रीअनुयोगद्वारसूत्रे (२० पत्रे), तथाहि—

"से किं तं लोगुत्तरिअ भावावस्सयं ? भावावस्सय जण्णं इमे समणे वा समणी वा सावओ वा साविआ वा तच्चित्ते तम्मणे तल्लेसे तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते तदप्पियकरणे तब्भावणाभाविए अन्नत्थ कत्थइ मण अकरेमाणे उभओकाल आवस्सय करेंति" इत्येतद् सूत्रैकदेशो यथा 'तदर्पितकरणः' करणानि–तत्साधकतमानि देहरजोहरणमुखवस्त्रिकादीनि, तस्मिन्नावश्यके यथोचितव्यापारनियोगेन अर्पितानि–नियुक्तानि तानि येन स तथा, सम्यक् यथास्थानन्यस्तोपकरण इत्यर्थः । एकार्थिकानि वा विशेषणानि एतानि प्रस्तुतोपयोगप्रकर्षप्रतिपादनपराणि, अमूनि च लिङ्गविपरिणामत' श्रमणीश्राविकयोरपि योज्यानि, तस्मात् तच्चित्तादिविशेषणविशिष्टाः श्रमणादयः 'उभयकाल' उभयसन्ध्यं यदावश्यकं कुर्वन्ति तल्लोकोत्तरिकं, भावमाश्रित्य भावश्चासौ आवश्यक चेति वा भावावश्यक, अत्राऽपि अवश्यकरणादावश्यकत्वं तदुपयोगपरिणामस्य च सद्भावाद् भावत्व मुखवस्त्रिकाप्रत्युपेक्षणरजोहरणव्यापारादिक्रियालक्षणदेशस्य अनागमत्वात् नोआगमत्व भावनीयं" इति । पुन श्रीअनुयोगद्वारवृत्तौ श्रीवीरनिर्वाणात् सहस्रवर्षसमयसजातैः श्रीहरिभद्रसूरिभिः कृताया २० पत्रे । एव श्रीअनुयोगद्वारचूर्णावपि (१४ पत्रे) तथाहि "तस्साहणे जाणि सरीररजोहरमुहणतगादि यानि द्रव्याणि ताणि किरिआकरणत्तणतो अप्पिआणि" इति, तथैव मलधारि–हेमचन्द्रसूरिकृतायां अनुयोगद्वारवृत्तावपि (३० पत्रे), तथाहि "तदर्पितकरणः" करणानि–तत्साधकतमानि देहरजोहरणमुखवस्त्रिकादीनि तस्मिन्नावश्यके यथोचितव्यापारनियोगेन अर्पितानि नियुक्तानि करणानि येन स तथा, अमूनि च तच्चित्तादिविशेषणानि लिङ्गविपरिणामतः श्रमणीश्रावकयोरपि योज्यानि । अत्र वृत्तिद्वये चूर्णौ च तदर्पितकरण

इति विशेषणस्य श्रमणश्रावकादिसम्बन्धिनः सदृशमेव व्याख्यानं कृतं त्रिभिरपि ग्रन्थकृद्भिः । सूत्रे च करणशब्दस्य रजोहरण मुखवस्त्रिकादिरूप एवार्थः प्रदर्शितः । पुनः श्रीआवश्यके वन्दननिर्युक्तौ (५४३ पत्रे), तथाहि—

"अवणामा दुन्नऽहाजायं, आवत्ता बारसेव य । सीसा चत्तारि गुत्तीओ, तिन्नि दो अ पवेसणा ॥ १२०३ ॥

एग निक्खमणं चेव, पणवीसं विआहिआ । आवस्सगेहिं परिसुद्ध, किइकम्म जेहिं कीरइ ॥ १२०४ ॥

किइकम्मपि करिंतो, न होइ किइकम्मनिज्जराभागी । पणवीसामन्नयर, साहू ठाणं विराहिंतो ॥ १२०५ ॥"

इह आवश्यकचूर्णौ (४२ पत्रे) यथा—"दुओणतं आए वेलाइ पढमं वंदइ तहेव निप्फेडिऊण पुणो वदइ अहाजाते सामन्ने जोणिनिक्खिमणे अ सामन्ने रयहरणं मुहपोत्तिया चोलपट्टो अ जोणिनिक्खमणे अजलीं सीसे काऊण पीति ।" एवं श्रीअनुयोगद्वारेषु षड्विधा आवश्यकक्रिया मुखवस्त्रिका-रजोहरणादिव्यापारपूर्विका प्रोक्ता । वन्दननिर्युक्तौ च इह यथाजातावश्यकं रजोहरणमुखवस्त्रिकाऽविनाभूतं दर्शितं, तच्च साधूना श्रावकाणां च शेषचतुर्विंशत्यावश्यकवत् प्रायः समानमेव युज्यते । श्राद्धान् एव केवलानाश्रित्य वन्दनकविधेः क्वाऽपि सिद्धान्तेऽनुपलम्भात् । नन्वेवं श्रावकाणां चोलपट्टोऽपि प्रसज्यते, इति न वाच्यं, यतो यथाजातावश्यकं सामान्येन उक्तमपि पूर्वाचार्यसम्प्रदायात् किंचिद्विशेषणमेव ज्ञेयं । अन्यथा श्रमण्या अपि मुखवस्त्रिकावत् चोलपट्टः अपि प्रसज्येत । कश्चिदाह श्रावकाणां सर्वानुष्ठानेषु उत्तरासङ्गमुद्रा एव इति, तदयुक्तं, आगमे सम्प्रदाये च तथाऽनुपलम्भात्, तथाहि—

"तुंगियाए नयरीए मज्झं मज्झेणं निगच्छति, निगच्छित्ता जेणेव पुप्फवईए चेइए तेणेव उवागच्छति, उवाग-

च्छित्ता थेरे भगवंते पंचविहेण अभिगमेण अभिगच्छति, त जहा–सचित्ताण दवाणं विउसरणयाए १ अचित्ताण दवाणं अविउसरणयाए २ एगसाडिएणं उत्तरासंगकरणेण ३ चक्खुप्फासे अजलिप्पग्गहेण ४ मणसो एगत्तीकरणेण ५ जेणेव थेरा भगवतो तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ, करित्ता जाव तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासति" इति श्रीभगवतीसूत्रे द्वितीयशतके पंचमोद्देशके (११७ पत्रे)—

अभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ पच्चोरुहति, पच्चोरुहित्ता अवहट्टु पंच रायककुहाइ, त जहा–खग्ग १ छत्त २ उप्फेस ३ वाह- गाओ ४ वालवीअणं ५, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समण भगव महावीर पचविहेण अभिगमेण अभिगच्छति, तं जहा–सचित्ताण दवाण विउसरणयाए १ अचित्ताण दवाण अविउसरणयाए २ एगसाडिय उत्तरासगकरणेण ३ चक्खुफासे अजलिपग्गहेण ४ मणसो एगत्तभावकरणेणं ५ समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आया- हिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वदति नमंसति, वंदित्ता नमसित्ता तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासति, त जहा–काइआए वाइआए माणसिआए, इति श्रीऔपपातिके (१४१ पत्रे), इत्यादि ग्रन्थेषु श्रावकाणा साधूपाश्रयादिप्रवेशे उत्तरासग साक्षादुक्तोऽस्ति । ननु नामग्राह प्रवेशानन्तरविधेयकृत्येषु श्राविकाणा तु प्रवेशेऽपि उत्तरासगो नाऽस्ति, यदुक्त श्रीभगव- तीसूत्रे नवमशतके ३३ उद्देशे (४५७ पत्रे)—

"तए णं सा देवाणदा माहणी धम्मिआओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहति २ बहूहिं खुज्जाहिं जाव महत्तरगवदपरि क्खित्ता समणं भगवं महावीरं पंचविहेण अभिगमेण अभिगच्छति, त जहा–सचित्ताण दवाणं विउसरणयाए, अचि-

त्ताण दव्वाणं अविमोअणयाए विणयोणयाए गायलट्ठीए चक्खुफासे अञ्जलिपग्गहेणं मणस्स एगत्तीभावकरणेणं जेणेव समण भगव महावीरे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिण करेइ, करित्ता वदति नमसति" इति ॥

पुन –श्रीऔपपातिकसूत्रे (१४५ पत्रे) कोणिकभार्याः सुभद्राप्रमुखा, तथाहि "समणं भगव महावीर पंचविहेण अभिगमेण अभिगच्छति, त जहा–सचित्ताण दव्वाण विउसरणयाए, अचित्ताण दव्वाणं अविउसरणयाए, विणओणताए गायलट्ठीए चक्खुफासे अञ्जलिपग्गहेण मणसो एगत्तकरणेणं समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिण करेंति, करित्ता वदति नमसति" इत्यादि । अत्रेद रहस्यम्–श्रावकाणां साधूपाश्रयादिप्रवेशे उत्तरासगः प्रतिपादितोऽस्ति, श्राविकाणा तु तत्रापि तदभावः, ततः कथ सामायिकादिक्रियाया उत्तरासगः ?, प्रत्युत सामायिकादौ उत्तरासगोत्तारण सर्वत्र प्रतिपादितमस्ति । यदुक्त उपासकदशाया षष्ठाध्ययने (३७ पत्रे), तथाहि "तए ण से कुंडकोलिए समणोवासए अन्नया कयाइ पुव्वावरण्हकालसमयसि जेणेव असोगवणिआ जेणेव पुढविसिलापट्टए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता नाममुद्दग च उत्तरिज्जग च पुढविसिलापट्टए ठवेइ, ठवित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिय धम्मपण्णत्तिं उवसपज्जित्ता ण विहरइ" 'धम्मपण्णत्तीति' श्रुतधर्मप्ररूपणादर्शनगतसिद्धान्त इत्यर्थः, इति श्रीउपासकसूत्रे षष्ठाध्ययने । पुनरत्रैवाऽधिकारे (३७ पत्रे) देवपरीक्षाऽनन्तर "तेणं कालेण तेणं समएणं सामी समोसढे, तए ण से कुंडकोलिए समणोवासए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठ जहा कामदेवो तहा निग्गच्छइ जाव पज्जुवासइ" ॥ इति श्रीउपासकदशाया

षष्ठाध्ययने। कामदेवश्चाऽत्रैव द्वितीयाध्ययने (२७ पत्रे) एव निर्गतो यथा "तए ण से कामदेवे समणोवासए इमीसे कहाए जाव लद्धट्ठे समाणे एव खलु समणो भगव महावीरे जाव विहरति त सेअ खलु मम समण भगव महावीर वंदित्ता नमसित्ता तओ पडिनियत्तस्स पोसह पारित्तए त्तिकट्टु एव सपेहेइ" इत्यादि। इह कुण्डकोलिकेन तदैव अन्यदा वा प्रतिपन्नपोषधेन परिमुक्तोत्तरीयेण श्रुतधर्मप्ररूपणारूपानुष्ठान कृत। तथा-"एव सामाइअ काउ पडिक्कतो वदित्ता पुच्छइ, सो अ किर सामाइअ करिंतो मउड अवणेइ, कुण्डलाणि नाममुद्द पुप्फतबोल पावारणगमादी वोसिरति" इत्यावश्यकवृत्तौ षष्ठाध्ययने (८४२ पत्रे) प्रावारशब्दश्च सलोमपटोत्तरासंगवाचकत्वात् द्व्यर्थः, तथाहि—

"पण्हवि १ कोयव २ पवार ३ नवतए ४ तहय दाढिगाली ५ य। दुप्पडिलेहिअदूसे, एय वितिअ भवे पणग ॥ १ ॥" इति, निशीथभाष्ये १२ उद्देशके—

"खरडो तह पूरट्ठी, सलोमपडओ तहा इयरइ जीण। सदस वत्थ पल्हविमाईणमिमे उ पज्जाया ॥ १ ॥" इति प्रवचनसारोद्धारे, 'वैकक्ष्ये प्रावारोत्तरासगो बृहतिकाऽपि च', इति श्रीहेमनाममालाया, एव प्रावारशब्दस्य अर्थद्वये सति य एव वृत्तिगतप्रावरणे मादीयतिपाठानुकूलः, बहुश्रुतैराचीर्णः स एव आचरणीयतया प्रमाण, आदिशब्दाच्च, सलोमपटादीनां परिहारो भविष्यति, इत्याद्यनेकेषु स्थानेषु श्रावकाणा मुखवस्त्रिका भणिताऽस्ति, अञ्चलेन वन्दन न क्वाऽपि दृश्यते, यश्च कृष्णवासुदेवदृष्टान्तः कैश्चित्कथ्यते तत्राऽपि यथा मुखवस्त्रिकया वन्दन न भणित, तथा अञ्चलेनाऽपि नोक्त। 'यत्तू असइ पुत्तस्स भतेणं ति' आवश्यकचूर्ण्यक्षराणि दृष्ट्वा पुत्तशब्देन भ्रान्ताः सन्तस्ते अञ्चलेन वन्दन वन्दन्ति,

त्ताण दयाण अविमोअणयाए विणयोणयाए गायलट्ठीए चक्खुफासे अजलिपग्गहेणं मणस्स एगत्तीभावकरणेणं जेणेव समण भगव महावीरे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता समणं भगव महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ, करित्ता वदति नमसति" इति ॥

पुनः–श्रीऔपपातिकसूत्रे (१४५ पत्रे) कोणिकभार्याः सुभद्राप्रमुखाः, तथाहि "समण भगव महावीर पचविहेण अभिगमेण अभिगच्छति, त जहा–सच्चित्ताणं दवाण विउसरणयाए, अचित्ताण दवाणं अविउसरणयाए, विणओणताए गायलट्ठीए चक्खुफासे अजलिपग्गहेण मणसो एगत्तकरणेण समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेंति, करित्ता वदति नमसति" इत्यादि। अत्रेद रहस्यम्–श्रावकाणा साधूपाश्रयादिप्रवेशे उत्तरासग प्रतिपादितोऽस्ति, श्राविकाणा तु तत्रापि तदभावः, ततः कथं सामायिकादिक्रियाया उत्तरासग ?, प्रत्युत सामायिकादौ उत्तरासंगोत्तारण सर्वत्र प्रतिपादितमस्ति। यदुक्त उपासकदशाया षष्ठाध्ययने (३७ पत्रे), तथाहि "तए ण से कुडकोलिए समणोवासए अन्नया कयाइ पुवावरण्हकालसमयसि जेणेव असोगवणिआ जेणेव पुढविसिलापट्टए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता नाममुद्दग च उत्तरिज्जंग च पुढविसिलापट्टए ठवेइ, ठवित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिय धम्मपन्नत्तिं उवसपजित्ता ण विहरइ" 'धम्मपन्नत्तीति' श्रुतधर्मप्ररूपणादर्शनगतसिद्धान्त इत्यर्थ, इति श्रीउपासकवृत्तौ षष्ठाध्ययने। पुनरत्रैवाऽधिकारे (३७ पत्रे) देवपरीक्षाऽनन्तर "तेणं कालेण तेणं समएण सामी समोसढे, तए ण से कुडकोलिए समणोवासए इमीसे काहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठ जहा कामदेवो तहा निग्गच्छइ जाव पज्जुवासइ" ॥ इति श्रीउपासकदशाया

पष्ठाध्ययने। कामदेवश्चाऽत्रैव द्वितीयाध्ययने (२७ पत्रे) एव निर्गतो यथा "तए णं से कामदेवे समणोवासए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे एवं खलु समणो भगवं महावीरे जाव विहरति तं सेअं खलु मम समणं भगवं महावीरं वंदित्ता नमंसित्ता तओ पडिनियत्तस्स पोसहं पारित्तए त्तिकट्टु एवं संपेहेइ" इत्यादि। इह कुण्डकोलिकेन तदैव अन्यदा वा प्रतिपक्षपोषवेन परिमुक्तोत्तरीयेण श्रुतधर्मप्ररूपणारूपानुष्ठानं कृतं। तथा-"एवं सामाइअं काउं पडिकंतो वंदित्ता पुच्छइ, सो अ किर सामाइअं करिंतो मउडं अवणेइ, कुंडलाणि नाममुद्दं पुप्फतंबोलं पावारणगमादी वोसिरति" इत्यावश्यकवृत्तौ षष्ठाध्ययने (८३२ पत्रे) प्रावारशब्दश्च सलोमपटोत्तरासंगवाचकत्वात् व्यर्थः, तथाहि—

"पण्हवि १ कोयव २ पवार ३ नवतए ४ तहय दाढिगाली ५ य। दुप्पडिलेहिअदूसे, एय वितिअ भवे पणगं ॥ १ ॥" इति, निशीथभाष्ये १२ उद्देशके—

"खरडो तह पूरट्टी, सलोमपडओ तहा हवइ जीणं। सदस वत्थ पल्हविमाईणमिमे उ पज्जाया ॥ १ ॥" इति प्रवचनसारोद्धारे, 'वैकक्ष्ये प्रावारोत्तरासंगौ बृहतिकाऽपि च', इति श्रीहेमनाममालायां, एवं प्रावारशब्दस्य अर्थद्वये सति य एव वृत्तिगतप्रावरणे मादीयतिपाठानुकूलः, बहुश्रुतैराचीर्णः स एव आचरणीयतया प्रमाणं, आदिशब्दाच्च, सलोमपटादीनां परिहारो भविष्यति, इत्याद्यनेकेषु स्थानेषु श्रावकाणां मुखवस्त्रिका भणिताऽस्ति, अञ्चलेन वन्दनं न क्वाऽपि दृश्यते, यश्च कृष्णवासुदेवदृष्टान्तः कैश्चित्कथ्यते तत्राऽपि यथा मुखवस्त्रिकया वन्दनं न भणितं, तथा अञ्चलेनाऽपि नोक्तं। 'एसू असइ पुत्तस्स अंतेण ति' आवश्यकचूर्ण्यक्षराणि दृष्ट्वा पुत्तशब्देन भ्रान्ताः सन्तस्ते अञ्चलेन वन्दनं वन्दन्ति,

त्ताणं दवाणं अविमोअणयाए विणयोणयाए गायलट्ठीए चक्खुफासे अजलिपग्गहेणं मणस्स एगत्तीभावकरणेणं जेणेव समण भगव महावीरे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता समणं भगव महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ, करित्ता वदति नमसति" इति ॥

पुन‑श्रीऔपपातिकसूत्रे (१४५ पत्रे) कोणिकभार्याः सुभद्राप्रमुखाः, तथाहि "समण भगव महावीर पचविहेण अभिगमेण अभिगच्छति, त जहा‑सचित्ताण दवाणं विउसरणयाए, अचित्ताण दवाणं अविउसरणयाए, विणओणताए गायलट्ठीए चक्खुफासे अजलिपग्गहेण मणसो एगत्तकरणेण समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेंति, करित्ता वंदति नमसंति" इत्यादि । अत्रेद रहस्यम्‑श्रावकाणा साधूपाश्रयादिप्रवेशे उत्तरासग प्रतिपादितोऽस्ति, श्राविकाणा तु तत्रापि तदभावः, ततः कथ सामायिकादिक्रियाया उत्तरासंगः ?, प्रत्युत सामायिकादौ उत्तरासगोत्तारण सर्वत्र प्रतिपादितमस्ति । यदुक्त उपासकदशाया षष्ठाध्ययने (२७ पत्रे), तथाहि "तए ण से कुडकोलिए समणोवासए अन्नया कयाइ पुवावरण्हकालसमयसि जेणेव असोगवणिआ जेणेव पुढविसिलापट्टए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता नामसुद्दग च उत्तरिज्जगं च पुढविसिलापट्टए ठवेइ, ठवित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिय धम्मपन्नत्तिं उवसपज्जित्ता ण विहरइ" 'धम्मपन्नत्तीति' श्रुतधर्मप्ररूपणादर्शनगतसिद्धान्त इत्यर्थः, इति श्रीउपासकवृत्तौ षष्ठाध्ययने । पुनरत्रैवाऽधिकारे (२७ पत्रे) देवपरीक्षाऽनन्तर "तेण कालेण तेणं समएण सामी समोसढे, तए ण से कुंडकोलिए समणोवासए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठ जहा कामदेवो तहा निग्गच्छइ जाव पज्जुवासइ" ॥ इति श्रीउपासकदशाया

ननु—केषाञ्चिद् गच्छे "होइ मगल" इति पठंति, आत्मना गच्छे तु "हवइ मगल" इति तत्कथम्? उच्यते—सत्यं, यद्यपि 'हवइ' 'होइ' इत्येतयोः पाठयोः अत्रार्थं प्रति न कश्चिद्विशेषः, होइ मंगलमिति च पाठे प्रत्युत श्लोको नाऽधिकाक्षरो भवति, तथापि हवइ मगलमित्येव पठनीय महानिशीथाद्यनेकागमेषु अस्यैव पाठस्य प्रतिपादितत्वात्, नमस्कारपटलनमस्कारपञ्जिकादिषु ग्रन्थेषु च इत्थमेव श्रेयोहेतुत्वेन समर्थितत्वात्, बहुश्रुतैः आदृतत्वाच्च प्रयोगः। होइ मगलमिति पाठो मिथ्या विसंवादवत्त्वाद् यथा शुक्तिकाशकले च रजतज्ञान। ननु—आवश्यके नमस्कारनिर्युक्तौ 'पढम होइ मगल' इति पाठेन सवादसद्भावात्, विसंवादवत्त्वादिति असिद्धं, सत्य, किन्तु अय नमस्कारनिर्युक्तिपाठो न नमस्कारपाठनियामकोऽव्यभिचारात्, तथाहि—तत्रैव 'बीअ हवइ मगल' इत्युक्त। ननु—'पढम हवइ मगल' इति पाठो न उक्तः छन्दोभगहेतुत्वात्, छन्दो ह्यत्र श्लोकः, स चाऽष्टाक्षरप्रमाणपाद एव भवति नाऽन्यथा। अय च नवाक्षरपाद इति चेत्, सत्य, किन्तु आर्षश्लोकेषु बहुशो नवाक्षरस्याऽपि पादस्य दर्शनात्, तथाहि—दशवैकालिके 'भमरो आवियइ रस' १ तथा 'न य कोइ उवहम्मइ' २ 'छत्तस्स य धारणट्ठाए' ३ तथा 'अहं च भोगरायस्स त चसि अधगवण्हिणो' ४ तथैव श्रीउत्तराध्ययने (३४८ पत्रे) एकादशाध्ययनेऽपि, तथाहि—

"जहा से कबोयाण, आइण्णे कथए सिया। आसे जवेण पवरे, एव हवइ बहुस्सुए॥ १६ इत्यादि पूर्वश्रुतधरवचनानुयायित्वात्, 'हवइ मगल' इति अयमेव पाठः सतामुपादेय इति स्थितम्। एव विचारामृतसग्रहेऽपि (७७ पत्रे) हवइ मंगलमिति पाठः समर्थितस्तथा च तत्पाठलेशः। अपर च—आवश्यकादर्शेषु 'हवइ' 'होइ' इति पाठद्वयमपि दृश्यते,

भकुलाणि वा खत्तियकुलाणि वा इक्खागकुलाणि वा हरिवंसकुलाणि वा एसिअकुलाणि वा वेसिअकुलाणि वा गंडागकुलाणि वा कोट्टागकुलाणि वा गामरक्खकुलाणि वा बुक्कासकुलाणि वा अण्णयरेसु वा तहप्पगारेसु वा कुलेसु वा अदुगुंछिएसु अगरहिएसु असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा फासुअं जाव पडिग्गाहिज्जा" । व्याख्या—स भिक्षुर्भिक्षार्थं प्रवेष्टुकामो यानि पुनरेवंभूतानि कुलानि जानीयात् तेषु प्रविशेदिति सम्बन्धः, तद्यथा—उग्रा—आरक्षिकाः १ भोगा—राज्ञः पूज्यस्थानीयाः २ राजन्याः—सखिस्थानीयाः ३ क्षत्रिया—राष्ट्रकूटादयः ४ इक्ष्वाकवः—ऋषभस्वामिवंशिकाः ५ हरिवंशा—हरिवंशजा अरिष्टनेमिवंशस्थानीयाः ६ 'एसिअ'त्ति गोष्ठाः ७ वैश्या—वणिजः ८ गण्डको—नापितो यो हि ग्रामे उद्घोषयति ९ कोट्टागाः—काष्ठतक्षका वर्धकिन इत्यर्थः १० बोक्कशालियाः तन्तुवायाः ११ कियन्तो वा वक्ष्यन्ते इत्युपसंहरति, अन्यतरेषु वा तथाप्रकारेषु अजुगुप्सितेषु कुलेषु नानादेशविनेयसुखप्रतिपत्त्यर्थं पर्यायान्तरेण दर्शयति, अगर्ह्येषु यदि वा जुगुप्सितानि—चर्मकारकुलादीनि गर्ह्याणि—दास्यादिकुलानि, एतद्विपर्ययभूतेषु कुलेषु, लभ्यमानमाहारादिकं प्रासुकमेषणीयमिति मन्यमानो गृह्णीयादिति ।" पुनर्निशीथचूर्णौ भक्तपानग्रहणादौ एते निषिद्धाः, तथाहि—"कालावहीए जे ठप्पा कया ते निज्जूढा" भक्तपानग्रहणादौ निषिद्धाः, "जे कुला जत्थ विसए वि जुगिआ ते दुगंछिआ" अभोज्या इत्यर्थः, कम्मेण १ सिप्पेण वा २ जाइए वा ३ कम्मे ण्हाविआइणो १ सिप्पे वि वरुडछिंपयचम्मकारण्हाविआइणो हिट्ठान्हाविआ तेरिमाजाइए पाणाइणो ३ । पुनरत्रार्थे जातमृतसूतकपिण्डनिषेधाऽधिकाररूप एकविंशतितम प्रश्नोत्तरं विलोक्यम् ॥ ५१ ॥

॥ इति साधूना भक्तपानग्रहणाय योग्यायोग्याधिकारः ॥ ५१ ॥

मंगलमहासुअखंधस्स वक्खाणं त महया य पबंधेण अणतगमपज्जवेहिं सुत्तस्स पिहुब्भूयाहिं निज्जुत्तिभासचूण्णीहिं जहेव अणंतनाणदंसणधरेहिं तित्थयरेहिं वक्खाणिअं तहेव समासओ वक्खाणिज्जत आसि, अहऽन्नया कालपरिहाणि दोसेण तओ निज्जुत्तिभासचूण्णीओ वुच्छिन्नाओ, इओ अ वच्चतेण कालेण तेण समएण महड्ढीपत्ते पयाणुसारी वइरसामी नाम [दुवालसग सुअहरे] पुव्वदंसगसुअहरो समुप्पन्नो, तेणेसो पंचमंगलमहासुअखंधस्स उद्धारो मूलसुत्तस्स मज्झे लिहिओ" इति महानिशीथे । तथा नमस्कारपंजिका-सिद्धचक्रादौ "पंचपयाण पणतीस वण्ण चूलाइ वण्ण तित्तीस । एव इमो समप्पति फुडमक्खरमट्ठसट्ठीए ॥ १ ॥ तथा अष्टप्रकाश्या आग्नेयादिविदिग्व्यवस्थितेषु दलेषु पादचतुष्क "एसो पंच नमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो । मंगलाण च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगल" ॥ १ ॥ इति ध्यायेत्, तथा बृहन्नमस्कारफले "सत्त पण सत्त सत्त य, नवक्खर पमाण पयडपचपय । तित्तीसक्खरमूल, सुमरह नवकारवरमंत ॥ १ ॥" इत्याद्यनेकानि स्थानानि अष्टषष्टिवर्णात्मकनमस्कारदर्शकानि । इति नमस्कारस्याऽष्टषष्ठ्यक्षरप्रमाणत्व, एव श्रीसंघाचारबृहद्वृत्तौ (२१० पत्रे) श्रीदेवेन्द्रसूरिभिरपि हवइ मंगलमेव पाठः समर्थित । तथा च तत्पाठ —सिद्धान्तेऽपि स्फुटाक्षरै हवइ मंगलमिति भणित, तथाहि महानिशीथचतुर्थाध्ययनसूत्र-"तहेव तदत्थाणुगमिअं इक्कारसपयपरिच्छिन्नं तिआलावग तित्तीसक्खरपरिमाण एसो पंचनमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो । मंगलाण च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगल ॥ १ ॥" इअ चूलति अहिज्जतीति प्रकृत । तदेव हवइ मंगलमित्यस्य साक्षादागमे भणितत्वात् प्रभुश्रीवज्रस्वामिप्रभृति सुबहुश्रुतसुविहितसंविग्नपूर्वाचार्यसमतत्वाच्च पढमं हवइ मंगलमिति पाठेन अष्टषष्ठ्यक्षरप्रमाण एव नमस्कार पठनीयः । तथा च महानिशीथे—

तया उपांगछेद-ग्रन्थकर्म-ग्रन्थाद्यनेकागमानुयोगसूत्रधरैः श्रीमलयगिरिभिः आवश्यक विवृणद्भिः, "अरिहंतनमुक्कारो" इत्यादिका "एसो पंचे"ति पर्यन्ताः षड्गाथाः "हवइ मंगल"मिति पाठत एव लिखिताः सन्ति, एवं प्रवचनसारोद्धारवृत्तौ अपि हवइ मंगलमिति पाठः समर्थितोऽस्ति, तथाहि—यद्यप्यत्र 'हवइ' 'होइ' इत्यनयो पाठयोरर्थे न कश्चिद्विशेषः, तथापि अष्टषष्ठ्यक्षरार्थं नवकारे हवइ इति पठितव्यं, ततो नमस्कारावलिकादिग्रन्थेषु यन्त्रपद्मे उक्तमस्ति, विशेषकार्योत्पत्तौ चूलिकाध्यानं यदा क्रियते तदा द्वात्रिंशद्दलकमले द्वात्रिंशद्दलेषु द्वात्रिंशदक्षराणि स्थापयित्वा त्रयस्त्रिंशत्तम अक्षरं मध्यकर्णिकायां स्थाप्यते, ततो ध्यानं क्रियते, ततो 'होइ' पाठे द्वात्रिंशद्भिरक्षरैः द्वात्रिंशत्कमलदलान्येव पूर्यन्ते परं मध्यकर्णिका शून्यैव तिष्ठति, ततो हवइ मंगलमिति पाठो युक्तः, तथा चैतत्संवादि पूर्वाचार्यकृतप्रकरणवचनं "अडसट्ठि अक्खरपरमाणू, जिणसासननवकारपहाणू। अतिमचूला तिसि पसिद्धा, सोलसअट्ठनवकार सिद्ध ॥ १ ॥" न च वाच्यं नमस्कारसूत्रे नमस्कारस्य सप्तषष्ठ्यक्षरत्वं प्रोक्तमस्ति, यतः 'एसो पंचनमुक्कारो' इत्यादिगाथाऽपि नमस्कारसूत्रसम्बन्धिनी नाऽस्ति, किं तु निर्युक्तिरुक्ता, ततो "ग्रामो नाऽस्ति, कुतः सीमा ?" इति न्यायात् कथं सप्तषष्ठ्यक्षरत्वं नमस्कारस्य ? मूलसूत्रनिर्युक्तिभाष्यचूर्णिवृत्तिटिप्पनकादिषु क्वाऽपि निर्दिष्टं न दृश्यते न श्रूयते च। अष्टषष्ठ्यक्षरप्रमाणत्वं च महानिशीथादिषु स्पष्टमेव उद्दिष्टं, तथाहि—

"तहेव तदत्थाणुगमिअं इक्कारसपयपरिच्छिन्नं तिआलावग तित्तीसक्खरपरिमाणं एसो पंचनमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो। मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं इयचूल ति "अहिज्जति" महानिशीथे तथा–'एअं तु जं पंच-

अचिंतचिंतामणिकप्पभू-अस्स पचमगलमहासुअखधस्स णं सुत्तत्य पन्नत्त । त जहा—जे ण पचमगलमहासुअखधे से ण सयलागमतरोववत्ती तिलतिल्ल १ कमलमयरद २ सवलोगपचत्थिकायमिव ३ जहत्थ किरियाणुवायसम्भूय गुणुकित्तणे जहिच्छियफलपसाहगे चेव परमथुइवाए सा य परमथुई केसिं कायवा सवजगुत्तमाण सवजगुत्तमे अ जे केइ भूए जे केइ भयति जे केइ भविस्सति, ते सवेवि, अरिहतादओ चेव, नो णं अन्नेति, ते अ पंचहा—अरिहते १ सिद्धे २ आयरिए ३ उवज्झाए ४ साहुणो अ ५, तत्थ एएसिं चेव गब्भत्थ सब्भाओ इमो, त जहा—सनरामरासुरस्स ण सवस्स चेव जगस्स अट्ठमहापाडिहेराइपूआइउवलक्खिय अणण्णसरिसमचिंतमप्पमेअ केवलाहिट्ठिय, पवरुत्तमतत्त अरिहति त्ति अरहंता आरिहता ११। एव मतए एएसिं नमुक्कारो 'एसो पचनमुक्कारो' किं करिज्जा ? सवं पाव नाणावरणीआइकम्मं निस्सेस त पयरिसेण दिसो दिसिं नासइ 'सवपावप्पणासणो' एस चूलाए पढमो उद्देसो "एसो पचनमुक्कारो, सवपावप्पणासणो" किंविहो ऊ ? मगे निवाणसुहसाहणिक्कसमो सम्मदसणाइआराहओ, अहिंसालक्खणो धम्मो त मे लाइज्जति मगल ममं भवाओ ससाराओ गमिज्जाओ तारिज्ज वा मंगल २ बद्धपुट्ठनिकाइअट्ठपयार कम्मरासिं मे गालिज्जा विज्जविज्जत्ति मगल, १ एएसिं सवेसिं अन्नेसिं च मंगलाण किं ? पढम आइए अरिहताईण थुई चेव मगलंत्ति समासत्थुत्ति" सघाचारवृत्तौ (२१८ पत्रे) ॥

॥ इति "होइ मगल" इति पाठनिषेधाधिकारः ॥ ५२ ॥

ननु—अशन-पान-खादिम-स्वादिमाना आहाराणा विवेचन कथं ज्ञायते ? । उच्यते—शास्त्रसम्मत्या तदवबोधात्, का शास्त्रसम्मतिः ?, इत्याह—श्रीमत्खरतरगच्छाधिराज—श्रीजिनभद्रसूरिपट्टपूर्वाचलप्रभाकरश्रीजिनचन्द्रसूरिशिष्य—श्रीमेरुसु-

"एअ तु ज पंचमंगलमहासुअखंधस्स वक्खाणं त महया पबंधेण अणंतगमपज्जवेहिं सुत्तस्स य पि हु भूआहिं निज्जुत्ति-भासचूण्णीहिं जहेव अणंतनाणदंसणधरेहिं तित्थयरेहिं वक्खाणित तहेव समासओ वक्खाणिज्जत आसि, अह अन्नया कालपरिहाणिदोसेण ताओ निज्जुत्तिभासचूण्णीओ वुच्छिन्नाओ, इओ अ वच्चंतेण कालसमएणं महड्ढीपत्ते पयाणुसारी वइरसामी नाम दुवालसंगसुअहरे समुप्पन्ने, तेणसो पंचमंगलसुयखंधस्स उद्धारो मूलसुत्तस्स मज्झे लिहिओ, मूल-सुत्त पुण सुत्तत्ताए गणहरेहिं अत्थत्ताए अरिहंतेहिं भगवंतेहिं धम्मतित्थयरेहिं तिलोयमहिएहिं वीरजिणिंदेहिं पन्नवि अति २। एस वुड्ढसंपयाओ, इत्थ जत्थ जत्थ पय पएणाणुलग्ग सुत्तालावग न संपज्जइ तत्थ तत्थ सुअहरेहिं कुलिहिअदोसो न दायव्वो किं तु जो सो एअस्स अचिंतचिंतामणिकप्पभूअस्स महानिसीहसुअखंधस्स पुव्वायरिसो आसि, तहिं चेव खंडाखंडीए उद्देहिआएहिं हेऊहिं बहवे पत्तगा परिसडिआ तहावि अच्चंतसुमहत्थाइसय इम महानिसीहसुअखंध कसि-णपवयणस्स परमसारभूयं, पर तत्त महत्थतिकलिऊण पवयणवच्छल्लत्तणेण तहा भव्वसत्तोवयारअं च काउ, तहा य आयहिआए आयरिअहरिभद्देणं ज तत्थायरिसे दिट्ठ त सव्व समईए सोहिऊण लिहिअंति, अन्नेहिं पि सिद्धसेणदिवायर-वुड्ढवाईजक्खसेणदेवगुत्तजसवद्धणखमासमणसीसरविगुत्तनेमिचंदजिणदासगणिखमगसच्चसिरिपमुहेहिं जुगप्पहाणसुअहरेहिं बहुमन्निअमण ति" । अत्र सूत्रं व्याख्यायते, अस्य व्याख्यान—यदेव श्रीवज्रस्वामिना छेदग्रन्थमध्ये लिखित तदेव भक्तिबहुमानातिशयतो विशेषतश्च बहुभव्यसत्त्वोपकारकमिति कृत्वा दर्श्यते । तथाहि—

"से भयवं किमेअस्स अचिंतचिंतामणिकप्पभूअस्स पंचमंगलमहासुअखंधस्स सुत्तत्थ पन्नत्त ? गोयमा ! इय एयस्स

अचिंतचिंतामणिकप्पभू-अस्स पचमगलमहासुअखघस्स ण सुत्तत्थं पमत्त । त जहा—जे ण पचमगलमहासुअखधे से ण सयलागमतरोववत्ती तिलतिल्ल १ कमलमयरद २ सवलोगपंचत्थिकायमिव ३ जहत्थ किरियाणुवायसब्भूय गुणुकित्तणे जहिच्छियफलपसाहगे चेव परमथुइवाए सा य परमथुई केर्सि कायवा सवजगुत्तमाण सवजगुत्तमे अ जे केइ भूए जे केइ भवति जे केइ भविस्सति, ते सवेवि, अरिहतादओ चेव, नो ण अन्नेति, ते अ पचहा—अरिहते १ सिद्धे २ आयरिए ३ उवज्झाए ४ साहुणो अ ५, तत्थ एएसिं चेव गब्भत्थ सब्भाओ इमो, त जहा—सनरामरासुरस्स ण सवस्स चेव जगस्स अट्ठमहापाडिहेराइपूआइचवलक्खिय अण्णन्नसरिसमचिंतमप्पमेअ केवलाहिट्ठिअ, पवरुत्तमतत्त अरिहति त्ति अरहंता अरिहता ११। एव अतए एएसिं नमुक्कारो 'एसो पचनमुक्कारो' किं करिज्जा ? सव पाव नाणावरणीआइकम्म निस्सेस त पयरिसेण दिसो दिसिं नासइ 'सवपावप्पणासणो' एस चूलाए पढमो उद्देसो "एसो पचनमुक्कारो, सवपावप्पणासणो" किंविहो क ? मग्गे निवाणसुहसाहणिक्खमो सम्मदसणाइआराहओ, अहिंसालक्खणो धम्मो त मे लाइज्जति मगल मम भवाओ ससाराओ गमिज्जाओ तारिज्ज वा मंगल २ वद्धपुट्ठनिद्धत्तनिकाइअट्ठपयार कम्मरासिं मे गालिज्जा विज्जविज्जत्ति मगल, १ एएसिं सवेसिं अन्नेसिं च मगलाण किं। पढम आइए अरिहताईण थुई चेव मगलत्ति समासत्थुत्ति" सघाचारवृत्तौ (२१८ पत्रे) ॥

॥ इति "होइ मगल" इति पाठनिषेधाधिकारः ॥ ५२ ॥

ननु—अशन-पान-खादिम-स्वादिमाना आहाराणां विवेचन कथं ज्ञायते ?। उच्यते—शास्त्रसम्मत्या तदवबोधात्, का शास्त्रसम्मतिः ?, इत्याह—श्रीमत्खरतरगच्छाधिराज-श्रीजिनभद्रसूरिपट्टपूर्वाचलप्रभाकरश्रीजिनचन्द्रसूरिशिष्य-श्रीमेरुसु-

"एअ तु जं पंचमगलमहासुअखंधस्स वक्खाणं त महया पबंधेण अणंतगमपज्जवेहिं सुत्तस्स य पि हु भूआहिं निज्जुत्ति-भासचूण्णीहिं जहेव अणंतनाणदंसणधरेहिं तित्थयरेहिं वक्खाणित तहेव समासओ वक्खाणिज्जंत आसि, अह अन्नया कालपरिहाणिदोसेण ताओ निज्जुत्तिभासचूण्णीओ वुच्छिन्नाओ, इओ अ वच्चतेण कालसमएणं महड्ढीपत्ते पयाणुसारी वइरसामी नाम दुवालसंगसुअहरे समुप्पन्ने, तेणसो पंचमंगलसुयखंधस्स उद्धारो मूलसुत्तस्स मज्झे लिहिओ, मूलसुत्तं पुण सुत्तत्ताए गणहरेहिं अत्थत्ताए अरिहंतेहिं भगवंतेहिं धम्मतित्थयरेहिं तिलोयमहिएहिं वीरजिणिंदेहिं पन्नवि अंति २। एस वुड्ढसंपयाओ, इत्थ जत्थ जत्थ पय पएणाणुलग्गं सुत्तालावगं न संपज्जइ तत्थ तत्थ सुअहरेहिं कुलिहिअदोसो न दायव्वो किं तु जो सो एअस्स अचिंतचिंतामणिकप्पभूअस्स महानिसीहसुअखंधस्स पुव्वायरिसो आसि, तहिं चेव खंडाखंडीए उद्देहिआएहिं हेऊहिं बहवे पत्तगा परिसडिआ तहावि अच्चंतसुमहत्थाइसयं इमं महानिसीहसुअखंधं कसिणपवयणस्स परमसारभूयं, परं तत्तं महत्थतिकलिऊण पवयणवच्छल्लत्तणेण तहा भव्वसत्तोवयारअं च काउं, तहा य आयहिअट्ठाए आयरिअहरिभद्देणं जं तत्थायरिसे दिट्ठं तं सव्वं समईए सोहिऊण लिहिअंति, अन्नेहिं पि सिद्धसेणदिवायर-वुड्ढवाईजक्खसेणदेवगुत्तजसवद्धणखमासमणसीसरविगुत्तनेमिचंदजिणदासगणिखमगसच्चसिरिपमुहेहिं जुगप्पहाणसुअहरेहिं बहुमन्निअमेअं ति"। अत्र सूत्रं व्याख्यायते, अस्य व्याख्यानं–यदेव श्रीवज्रस्वामिना छेदग्रन्थमध्ये लिखितं तदेव भक्तिबहुमानातिशयतो विशेषतश्च बहुभव्यसत्त्वोपकारकमिति कृत्वा दर्श्यते। तथाहि–

"से भयवं किमेअस्स अचिंतचिंतामणिकप्पभूअस्स पंचमंगलमहासुअखंधस्स सुत्तत्थं पन्नत्तं? गोयमा! इय एयस्स

प्रमेद दूग्ध दधि सूरणा मंडकादिक जाणवो, तथा च भणित–"असण भोअण सत्तुग, मुगाजगराइखज्जग विहीय। खीरणाई सूरणाई, मंडग पमिई अ विन्नेअ ॥ १ ॥" आछण जवोदक तुषोदक तंदुलोदक उष्णोदक शुद्धविकट अप्काय समग्र पनक जाणवु, तद्यथा–"पाण सोवीरजवो–दगाइ चित्त सुराइअं चेव। आउक्काओ सवो, कक्कडगज लाइअ च तहा ॥ २ ॥ अत्र चित्त सुराइअमिति चित्र नानाप्रकार काष्ठ पिष्टजातिभेदभिन्न सुरामधु आदिशब्दतो द्राक्षा शर्करा पानकादि अप्काय सगलउ कर्कटी चिर्भटी प्रमुखनो जल तथा कालिंग जलादिक सगलु जाणवु ॥ २ ॥ नालिकेर खर्जूर द्राक्षा भृष्टधान्यादिक आम्रफल रंभाफल कर्कटी फणसादिक पलुसुपुणि सगलो खादिम जाणवु, तथा च भणित च "भत्तो संदताई, खर्जूर नालिकेरदक्खाई। कक्कडअंबगपणसाइ, बहुविह खाइम नेय ॥ १ ॥ दंतवण तंबोल, सुंठि पिप्पली मिरच हरितकी बिभीतकतुलसी प्रमुख स्वादिम जाणवु, तथा च भणित–"दंतवण तंबोल, चित्त तुलसी कहेडमाई अ। महु पिप्पली सुंठाई, अणेगहा साइम नेयं ॥ १ ॥" एव तपागच्छनायकश्रीसोमसुन्दरसूरिपट्टपूर्वाचल-भास्करश्रीमुनिसुन्दरसूरिकृतषडावश्यकबालावबोधेऽपि, तथाहि–

चिहुं प्रकारे आहारस्तु असण वा पाण वा खाइम वा साइम वा अशन कहतां–शालि ज्वारि वरटी प्रमुख सर्व ओदन मुद्गादिक सर्व कठउल सातुयादिक सर्व लोट पेयादिक सर्व तिमज मोदकादिक सर्व पकवान सूरणादिक सर्वकंद मंडकादिक सर्व केलवी वस्तु ए सर्व अशन कहिउ, वली वेसण विरहाली आमला सैंधव कचठिपत्र लींबुइ लूण हींग ए अशन माहि आवइ १। पान कहतां पाणी कांजिक जव गोधूम ज्वारि चोखा काकडी आदि-

न्द्रोपाध्यायविनिर्मितश्रीषडावश्यकबालावबोधे पश्चानामपि निर्णयप्रतिपादनात्, तथाहि—असन कहता अन्न—चोखा ज्वारि घरटी मुग प्रमुख सर्वधान, सात सत्तु गिहु [आदि]ना सर्व लोट सर्वराब सालणा लाडु प्रमुख सर्व पक्वान्न, सूरणादि सर्व कंद दूध दही मडादिक सर्वकेलवी वस्तु, हींग वेसण विरयाली लूण सैंधवादिक ए सर्व असन माहि जाणिवा ।१। हिवे पानक कहतां आछण जवोदक तुषोदक तंदुलोदक उष्णोदक शुद्धोदक कहता वर्णाढ्य प्रमुखसर्वअप्काय पानक जाणिवा, अथवा काष्ठज पिष्टज सुरादि द्राखनापाणी साकर आंबिलपाणी इक्षुरसादि काकडी चीभडा कालिंगना जल इत्यादि सर्व पानक जाणवा । २ । हिवे खादिम कहतां सुखडी नालेर खजूर द्राख बिदाम सेक्यु धान आंबा केला काकडी अखोड खारेक प्रमुख सर्व मेवो इत्यादिक खादिम ॥ ३ ॥ हिवे स्वादिम कहता तंबोल सुंठ मिरी पिपल हरडे बहेडा तुलसी कसेलो काथो बेठीमध तमालपत्र एलची लवींग बीडग काठी अजमो अजमोद कुलिंजण चीणीकबोया कपूरो कांटासेलीयो मोथ हरडे कुमठउ पान सोपारी पोकरमूल जवासामूल बावची बालवछाली धवछालि खयरसार खेजडछालि ए सर्व स्वादिम ॥ ४ ॥ हिवे निंबके—छाल मूलपान सिली गोमूत्र गिलोइ कडूकिरियातउ अतिविष कुडउ सूकडिगम रोहणी पीपलामूल वज्र धमासउ नाहिं रींगणी एलीयो चिणोठी कयर थोरनामूल कथारियउ कुंयारि इत्यादि अणाहार ॥ ५ ॥ पिणि ए अणाहार जउ इच्छा पाखइ अनिष्ट पणइ लीजे तो, अने जउ भावता लीजे तो आहारमाही पडइ इति । श्रीतरुणप्रभसूरिकृतबालावबोधे तु एवं, तथाहि—

चतुर्विध आहार अशन पान खादिम स्वादिम तत्र अशन—ओदन राध्या पोसा सत्तु मुग राब खडखाद्यादि पक्का-

प्रभेद दुग्ध दधि सूरणा मडकादिक जाणवो, तथा च भणित–"असण भोअण सत्तुग, मुगाजगराइखज्जग विहीय। खीरपाई सूरणाई, मडग पभिई अ विन्नेअ ॥ १ ॥" आछण जयोदक तुपोदक तन्दुलोदक उष्णोदक शुद्धविकट अप्काय समग्र पनक जाणवु, तद्यथा–"पाण सोवीरजवो–दगाइ चित्त सुराइअ चेव। आउक्काओ सव्वो, कक्कडगजलाइअ च तहा ॥ २ ॥ अत्र चित्त सुराइअमिति चित्र नानाप्रकार काष्ठ पिष्टजातिभेदभिन्न सुरामधु आदिशब्दतो द्राक्षा शर्करा पानकादि अप्काय सगलव कर्कटी चिर्भटी प्रमुखनो जल तथा कालिंग जलादिक सगलु जाणवु ॥ २ ॥ नालिकेर खर्जूर द्राक्षा भृष्टधान्यादिक आम्रफल रंभाफल कर्कटी फणसादिक पलुसुपुणि सगलो खादिम जाणवु, तथा च भणित च "भत्तो सदताई, खर्जूर नालिकेरदक्खाई। कक्कडअवगपणसाइ, बहुविह खाइम नेय ॥ १ ॥ दतवण तबोल, सुंठि पिप्पली मिरच हरितकी बिभीतकतुलसी प्रमुख स्वादिम जाणवु, तथा च भणित–"दतवण तबोल, चित्त तुलसी बहेडमाई अ। महु पिप्पली सुंठाई, अणेगहा साइम नेय ॥ १ ॥" एव तपागच्छनायकश्रीसोमसुन्दरसूरिपदपूर्वाचलभास्करश्रीमुनिसुन्दरसूरिकृतषडावश्यकबालावबोधेऽपि, तथाहि–

चिहुं प्रकारे आहारस्युं असण वा पाण वा खाइम वा साइम वा अशन कहता–शालि ज्वारि बरटी प्रमुख सर्व ओदन मुद्गादिक सर्व कठवल सातुयादिक सर्व लोट पेयादिक सर्व तिमज मोदकादिक सर्व पक्वान सूरणादिक सर्वकद मडकादिक सर्व केलयी वस्तु ए सर्व अशन कहिउ, वली वेसण विरहाली आमटा सैंधव फउठिपन लींबुइ लूण हींग ए अशन माहि आवइ १। पान कहता पाणी काजिक जव गोधूम ज्वारि धोरा फाकडी आदि-

फनु धोयण, अनइ सर्व जलाश्रय तणो अप्काय, ए पान कहिजइ, साकरपाणी द्राक्षपाणी आवलपाणी इक्षुर-सपाणी प्रमुख सर्व सरस पाणी पान कहतां आवइ, पिणि व्यवहारइ अशन, जिनु जिनु खाइम स्वादिम कहिजइ सुखडी सेक्यु धान सर्व खारिक टोपरा द्राक्षा बिदाम अखोड खजूर प्रमुख सर्व मेवो, काकडी आंब फलसादिक सर्व फल स्वादिम कहिजइ, स्वादिम कहतां सुंठि हरडइ पीपरी मिरी अजमउ कायफल कसेल काथो सयरसार जेठीमध वज तमालपत्र एलची लवंग विडंग काठी बिडलवण अजमोद कुलिंजन पीपलीमूल चीणीकबाला कचूर मोथ कत्थसेरीओ कपुर सचल हरडा बहेडा आमला कुमठउ पान पुगी हिंगुलाष्टक हींग त्रेवीसउ पुष्करमूल जवासा-मूल बावची बाउल छालि खेजडछालि ए स्वादिम कहिजइ, गुडस्वादिम कहिजइ, पिणि व्यवहारइ अशन, जीरु फुनीर साकर वासित सुंठनो पाणी हरडेनो पाणी ए लीजे नीतारनइ गल्यो हुवे तो, न गल्यो हुइ तो नहि, तिपिहार पच्च-क्खाणि जे सूझइ इहांइ स्वादिमसि, जीरो प्रवचनसारोद्धारमाहि स्वादिम कह्यु छइ, अनइ श्रीकल्पवृत्तो खादिम कह्यु छइ, ए चार आहारनो विचार नींमनी छालि मूलाना पावडा सीली गोमूत्र गिलो कडूकिरियातु अतिविस कडुओ सुकडरास हलद्रा रोहणि उपलोट वज त्रिफला पचमूलनिंब धमासउ नाहि आसगधि रींगणी एलीयो गूगल हरडा दाठि थरणमूल थोरीमूल कयारीमूल कयरडानुमूल पुमाडी आछी मजीठ घोल थीयुत्त कुयारी इत्यादिक बीजुइं जे अनिष्ट पणइ इच्छा पाखइ लीजइ ते पिंडुं आहारमांहि पकइ मागइ नहि, अणाहार जाणवो । विचारमये अनाहारगाथा यथा—"अभयक्ख फणसमज्ज मूर्निबाकडु अगिलोम रसाई । जोगोनिंबाइण तयाइ पत्ताणि अणाहारो ॥ २ ॥" इति, थोपि-

शेपकल्पचूर्णौं पञ्चमोद्देशकेऽपि यथा—"अणाहार गाहीमो" अकाइअ छल्ला निबाईण मूल पचमूलादिफल अद्दामलय हरी-
तगबहेडगादि से सति, अणाहार मुक्त्वा ज अणत आहारमिति । पुनर्मणित—अणाहारो मोअछल्ली मूल च फल च होइ
अणाहारो पूर्वार्ध, 'मोक' कायकी, 'छल्ली' निंबादित्वक् 'मूल' च पंचमूलादिक 'फल' च आमलकबिभीतकादिकं एतत्
सर्व अनाहारो भवतीति चूर्णिः। निशीथचूर्णौ तु या, निंबादीना छलि—त्वक्, यच्च तेपामेव निंबोलिकादिफल, यच्च तेपामेव
मूल एवमादिक सर्वमनाहार इति । अत्र श्रीमेरुसुन्दरोपाध्यायकृत-वालावबोधात् श्रीमुनिसुन्दरसूरिकृतबालावबोधे
स्वादिममध्ये एतानि नव ९ वस्तूनि अधिकानि सन्ति, तथाहि—"कायफल १ विडलवण २ पीपलीमूल ३ कपूर ४ सचल ५
वहेडा ६ आमला ७ हिंगुलाष्टक ८ हिंगुलीत्रेविसउ ९ । पुनरेतस्माद् एतस्मिन् अनाहारकमध्येऽप्यर्य ११' विशेषः
तथाहि—"हलद १ उपलोट २ त्रिफला ३ आसगंध ४ गूगल ५ हरडेछालि ६ वउणिमूलि ७ पुमाड ८ आछीमजीठ ९
बोल १० वीयउ ११ । तथा श्रीमेरुसुन्दरसूरिकृत-वालावबोधे पीपलीमूल अनाहारमध्ये प्रोक्तमस्ति । श्रीमुनिसुन्दरसूरि-
कृत-बालावबोधे पीपलीमूल स्वादिममध्ये प्रोक्तमस्ति । तथा तपागच्छीयरत्नशेखरसूरिणाऽपि श्राद्धविधिकौमुदीग्रन्थे अश-
नादीनामेव विवेचन लिखितमस्ति, तथाहि—अशनादिविभागश्चेत्य—"अन्न-पक्वान्न-मंडक-सक्तुकादि—क्षुधोपशमनसमर्थम्
अशन १ तक्रोदक-मद्यादि पान २ फलेक्षुपृथुकसुखभक्षिकादि खाद्य ३ स्वाद्य शुंठी-हरितकी-पिप्पली मरिच-जीरक-अज-
मक जातिफल-जावत्री-कसेलक-कच्छकखदिरवटिका-ज्येष्ठीमधु-तज-तमालपत्र एलची-लवंग काठी-विडंग विडलवण-अजक-

अजमोद-कुलिंजण-पिप्पलीमूल-चिणीक-चाला कचूरक-मुस्ता-कंटासेलियो-कर्पूर-सचल हरडा विभीतक-कुंभटउ-बबूलधर-खदिर-खेअवादिछल्लीपत्र-पूग-हिंगुलाष्टक-हिंगत्रेवीसो-पंचमूल-पुष्करमूल जवासकमूल-चावची-तुलसी-कपूरी-कन्दादिक जीरक स्वमाद्यं ४ । प्रवचनसारोद्धाराभिप्रायेण खाद्यं, कल्पवृत्त्यभिप्रायेण तु स्वाद्य, अजमकं खाद्यमिति, केचित् सर्वं स्वाद्य एला-कर्पूरादिजलवत् तत् द्विविधाहारप्रत्याख्याने कल्पन्ते । वेसण विरयाली-सोया-रउठयली-गामठागादि-आवागोली-कत्थीय लींबूई-पत्र-प्रमुखखाद्यत्वाद्विना द्विविधाहारे न कल्पते, त्रिविधाहारे तु जलमेव कल्पते, तत्रापि हुकानीरं साकरी-कपूर-एला-कच्छक-खदिरचूर्ण-कसेल्लक-पाडलादिजल च नीतरित गालित चा नाऽन्यथा, ग्रन्थेषु मधु-गुडशर्करा-खाद्यपि खाद्यतया, द्राक्षा-शर्करादिजल तक्रादि च पानकतया उक्त, पर द्विविधाहारादौ न कल्पते । उक्त च तपागपुरीयगच्छप्रत्याख्यानभाष्ये—

"दक्खापाणाईअ, पाणं तह साइम गुडाईअ । पढिअ सुअमि तहवि हु, तित्तीजणगति नायरिय ॥ १ ॥"

स्त्रिया संयोगे चतुर्विधाहारो न भज्यते, बालादीना ओष्ठादिचुम्बने तु भज्यते । द्विविधाहारे तु तदपि कल्पते, प्रत्याख्यान हि कावलिकाहारविषयमेव, न तु लोमाद्याहारविषयमपि । अन्यथा उपवासाचाम्लादौ चतुरभ्यङ्ग-गडुलकम-मन्थनादिनाऽपि भङ्गप्रसङ्गात्, न चैव व्यवहारो लोमाहारस्य निरन्तर संभवेन प्रत्याख्यानाभावप्रसंगात् ४ अना-हारतया व्यवह्रियमाणानि यथा—पचांग निंब १ मूल २ गडूची ३ कडु ४ किरिआतउ ५ अतिविष ६ कुडउ ७

चीड ८ सूकडी ९ रक्षा १० हरिद्रा ११ रोहिणी १२ उपलोट १३ वज १४ त्रिफला १५ वाउलछली १६ इति, अन्ये धमासउ १७ नाहि १८ आसगंधि १९ रींगणी २० एलियो २१ गूगल २२ हरडांपालि २३ वउणि २४ वदरी २५ कयेरि २६ करीरंमूल २७ पुमाड २८ घोयरी २९ आछीमजीठ ३० मोल ३१ धीयउ ३२ कूंयारी ३३ चित्रक ३४ कदुरु ३५ प्रमृति अनिष्टस्वाद रोगाद्यापदि चतुर्विधाहारेऽप्येतानि कल्पन्ते ॥ ५३ ॥

॥ इति अशनादिनिर्णयाधिकारः ॥ ५३ ॥

ननु केचित् शृंगाटकाना अभक्ष्यत्व अनन्तकायत्व च प्रतिपादयन्ति तत्सत्य असत्यं वा? उच्यते—ये तेषा अभक्ष्यत्व अनन्तकायत्व च प्रतिपादयन्ति ते सर्वे सिद्धान्तानभिज्ञा एव, यत उक्त श्रीखरतरगच्छाधिराज-श्रीजिनभद्रसूरिपट्टालङ्कार-श्रीजिनचन्द्रसूरिविजयराज्ये श्रीमुनिमेरुसुन्दरोपाध्यायैः सघाभ्यर्थनया कृतवार्तिकसार्धशतकप्रश्नोत्तरे ४९ प्रश्ने, तथाहि—

सिंघोडादिजीवा वनस्पतिसत्तरीमाहि कह्या छइ अनै अभक्ष्य अनन्तकाय कहै ते किम? तत्रार्थे सिंघोडा अभक्ष्य अनन्तकाय न हुवे, जे अभक्ष्य अनन्तकाय कहै ते सिद्धान्तना जाण नहीं, यत प्रज्ञापनासूत्रे (३४ पत्रे)—

"सिंघाडगस्स गुच्छो, अणेगजीवो उ होइ नायव्वो। पत्ता पत्तेअजीवा, दुन्नि य जीवा फले भणिआ ॥५१॥" इणि कारणि बिहुं जीवनो फल साधारण अनन्तकाय न थायइ, जेह भणी प्रज्ञापना वृत्तिमांहि कह्यो छइं, "साधारणस्तु नियमादन-

अजमोद-कुलिंजण-पिप्पलीमूल चिणीक-वाला कचूरक-मुस्ता-कंटासेलियो-कर्पूर-सचल हरडा विभीतक-कुंभटउ-बब्बूलधव-खदिर-खेजडादिछल्लीपत्र-पूग-हिंगुलाष्टक-हिंगत्रेवीसो-पंचमूल-पुष्करमूल जवासकमूल-चावची-तुलसी-कपूरी-कंदादिक जीरकं स्वमाष्यं ४ । प्रवचनसारोद्धाराभिप्रायेण खाद्यं, कल्पवृत्त्यभिप्रायेण तु स्वाद्य, अजमकं खाद्यमिति, केचित् सर्वं स्वाद्य एला-कर्पूरादिजलवत् तत् द्विविधाहारप्रत्याख्याने कल्पन्ते । वेसण विरयाली सोया-कउठवडी-आमलागांठी-आंबागोली-कउठीय लींबूई-पत्र-प्रमुखस्वाद्यत्वादिना द्विविधाहारे न कल्पते, त्रिविधाहारे तु जलमेव कल्पते, तत्रापि हुक्कानीरं साकरी-कपूर-एला-कत्थक-खदिरचूर्ण-कसेलक-पाडलादिजल च नीतरितं गालितं वा नाऽन्यथा, शास्त्रेषु मधु-गुडशर्करा-खडाद्यपि खाद्यतया, द्राक्षा-शर्करादिजल तक्रादि च पानकतया उक्त, पर द्विविधाहारादौ न कल्पते । उक्त च तपागपुरीयगच्छप्रत्याख्यानभाष्ये—

"दक्खापाणाईअ, पाणं तह साइमं गुडाईअ । पढिअ सुअमि तहवि हु, तित्तीजणगति नायरिय ॥ १ ॥"

स्त्रिया संभोगे चतुर्विधाहारो न भज्यते, बालादीना ओष्ठादिचुम्बने तु भज्यते । द्विविधाहारे तु तदपि कल्पते, प्रत्याख्यानं हि कावलिकाहारविषयमेव, न तु लोमाद्याहारविषयमपि । अन्यथा उपवासाचाम्लादे वपुरभ्यङ्ग-गडुकरम्ब-बन्धनादिनाऽपि भङ्गप्रसङ्गात, न चैव व्यवहारो लोमाहारस्य निरन्तरं सभवेन प्रत्याख्यानाभावप्रसङ्गात् ४ अनाहारतया व्यवह्रियमाणानि यथा—पचांग निंब १ मूल २ गडूची ३ कडु ४ किरिआतड ५ अतिविष ६ कुडच ७

श्रीचन्द्राचार्यैरपि स्वकृतयोगविधौ सम्यक्त्वारोपणानन्तर श्रावकवर्जनीयद्वाविंशत्यभक्ष्यप्रतिपादकं गाथाद्वय प्रत्यपादि, तथाहि "पञ्चुंबर चउविगई, अनायफल कुसुमहीमविसकरगें । मज्जं राईभोयण, घोलवडा रींगणी चेव ॥ १ ॥ पपोटय सघाडय, वायगण काईवणे य तह चेव । बावीस दव्वाणि, अभक्खणीयानि सड्ढाण ॥ २ ॥" एव श्रीजिनपतिसूरिशिष्य-श्रीपूर्णभद्रकृते श्रीकृतपुण्यकचरित्रेऽपि शृङ्गाटकानामभक्ष्यत्व, तथाहि—"मद्य १ मांसं २ नवनीत ३, मधू ४ उदुम्बरपञ्चकम् ९ । अनन्तकाय १० मज्ञात-फलं ११ रात्रौ च भोजनम् १२ ॥ १ ॥ आमगोरससपृक्त, द्विदल १३ पुष्पितोदनम् १४ । दध्यहर्द्वितयातीत १५, सन्धान १६ कुथितान्नकम् १७ ॥ २ ॥ बहुवीज यच्च फल १८, शृंगाटकान् १९ सर्वमृत्तिका २० करकान् २१ । हिम २२ विष २३ वृन्ताकीफल २४, घोलवटान् २५ वर्जयेत् शश्वत् ॥ ३ ॥" अत्राऽय परमार्थः—श्रीप्रवचनसारोद्धारादौ शृंगाटकानि द्वाविंशत्यभक्ष्यमध्ये नाऽऽनीतानि, पर श्रीचन्द्रसूरिकृत-योगविधिग्रन्थे, श्रीपूर्णभद्रकृत-श्रीकृतपुण्यकचरित्रे च प्रोक्तत्वात् १ मोहोदयकारित्वात् २ जीवद्वययुक्तत्वात् ३ विपक्वमासतुल्यत्वेन गणितत्वात् ४ धर्मार्थिना श्राद्धादीना अभक्ष्याणि अग्राह्याणि ज्ञेयानि ॥ ५४ ॥

॥ इति शृङ्गाटकानामभक्ष्यत्वाधिकार ॥ ५४ ॥

ननु-लवण १ हरिताल २ मन शिला ३ पीप्पली ४ सर्जूर ५ द्राक्षा ६ हरीतकी ७ पत्र ८ पुष्प ९ फल १० प्रमृतीना प्राप्तुकत्व भवति न वा ?, उच्यते—भवति, कथमित्याह—श्रीबृहत्कल्पसूत्रवृत्तिषु योजनशतागमनादिकारणैं तेषाम-

न्तकाय एवेति, कामदीपकद्रव्य भणी जंव टालइ तो जिम वृष न ल्यै प्रवाहै, तिमतेही न ल्यौ पणि अभक्ष्य अनन्तकाय नही

इति। ननु-तर्हि तद्भक्षणे न दोषः? न एतद्युक्तं युक्तं, धर्मार्थिनां श्रावकादीनां तेषां अभक्ष्यत्वेन अग्राह्यत्वेन प्रतिपादनात्।

यदुक्तं श्रीजिनवल्लभसूरिभिः श्रावककुलके श्रावकाणां अभक्ष्यनियमाधिकारे, तथाहि "महु १ मक्खण २ सघाडग ३

गोरसजुअविदल ४ जाणिअमणंत ५। अणायफलं ६ वयगण ७ पचुंबरि ८ मवि न भुंजतित्ति ॥ १ ॥" तथा "कह नु

कुज्जा सामन्नं, जो कामे न निवारए।" इति पदद्वयस्य व्याख्यां कुर्वद्भिः श्रीहरिभद्रसूरिभिरपि (८५ पत्रे) शृंगाटकानां

द्रव्यकामत्वं विकटमांसतुल्यत्वं च प्रतिपादितमस्ति, तथाहि "शब्दरूपरसगंधस्पर्शाः मोहोदयाभिभूतैः सत्त्वैः काम्यन्त

इति कामाः, मोहोदयकारीणि च यानि द्रव्याणि शृंगाटकविकटमांसादीनि तान्यपि मदनकामाख्यभावकामहेतुत्वाद्द्रव्य-

कामा इति"। एवं श्रीप्रज्ञापनासूत्रवृत्त्योरपि प्रथमपदे-तथाहि-शृङ्गाटकफले जीवद्वय प्रत्यपादि, तथाहि—

"सिंघाडगस्स गुच्छो, अणेगजीवो उ होइ नायव्वो। पत्ता पत्ते अजिआ, दोन्नि य जीवा फले भणिआ ॥ ५१ ॥"

व्याख्या-"सिंघाडगस्से"त्यादि शृङ्गाटकस्य यो गुच्छः सोऽनेकजीवो भवति ज्ञातव्यः, त्वक्शाखादीनां अने-

कजीवात्मकत्वात्, केवलं तत्रापि यानि पत्राणि तानि प्रत्येकजीवानि, फले पुनः प्रत्येकं एकैकस्मिन् द्वौ द्वौ जीवौ

भणितौ इति। पुनः "तुच्छिजिआ सिंघाडग-फलंमि जे केइ नालिआ बद्धा। पुप्फा ससिज्जजिआ, योहरि-

माईणणंतजिआ ॥ १ ॥" इत्यादि गाथाचतुष्टय दर्शनसप्ततिकायामस्ति। एवमेव वनस्पतिसप्ततिकायामपि। तथैव

निषीदन्ति, तेषां गवादीना च यः कोऽपि पृष्ठादिगात्रोष्मा तेन वा परिणामो भवति, तथा यो यस्य भौमादिकः पृथिव्यादिक आहारस्तद्व्यवच्छेदे तस्य परिणाम उपक्रमः शस्त्र, "उपक्रम्यते जीवादीना आयूषि अनेन" इति व्युत्पत्तेः, तच्च शस्त्र त्रेधा, स्वकायशस्त्र परकायशस्त्र तदुभयशस्त्र चेति, तत्र स्वकायशस्त्र यथा–लवणोदक मधुरोदकस्य, कृष्णभौम वा पाण्डुरा भौमस्येति, परकायशस्त्र यथा–अग्नि उदकस्य, उदक चाऽग्नेरिति २ तदुभयशस्त्रं यथा–उदकमृत्तिका शुद्धोदकस्येत्यादि। एवमादीनि सचित्तवस्तुना परिणमनकारणानि मन्तव्यानि, गतं क्षेत्रतो लक्षणम्।

अथ कालत आह—

"उप्पलपउमाई पुण, उण्हे दिन्नाइ जाम न धरती। मुग्गरगजूहिआओ, उण्हे छूढा चिर हुंति ॥ १ ॥

मगदंतीपुप्फाइं, उदए छूढाइ जाम न धरती। उप्पलपउमाइ पुण, उदए छूढा चिर हुंति ॥ २ ॥" उत्पलानि पद्मानि च उदकयोनिकत्वात्, उष्णे आतपे दत्तानि याम–प्रहरमात्र काल न घ्रियन्ते न अवतिष्ठन्ते, किंतु प्रहरादर्वागेव अचित्तीभवन्ति, मुद्गराणि मगदतिपुष्पाणि–यूथिकापुष्पाणि च उष्णयोनिकत्वात्, उष्णे क्षिप्तानि चिरमपि कालं भवन्ति सचित्तानि एव तिष्ठन्तीति भाव। मगदन्तिकापुष्पाणि उष्णे [उष्णोदके] क्षिप्तानि याम–प्रहरमात्रमपि न घ्रियन्ते, उत्पलपद्मानि पुनः उदके क्षिप्तानि चिरमपि भवन्ति, गत कालतो लक्षणम् ॥

अथ भावत आह,–"पत्ताणं पुप्फाण, सरडुफलाण तहेव हरिआण। विंटम्मि मिलाणम्मि, नायव्व जीवविप्पजढ ॥ १ ॥" पत्राणा पुष्पाणा सरडुफलानां अबद्धास्थिकफलाना तथैव हरिताना वा स्थूलादीना सामान्यत तरुणवनस्पतीना वा

चित्तत्व प्रतिपादनात्, तथाहि–अथ क्षेत्रतस्तु आह–"जोयणसय तु गंता अणहारेणं तु भंडसंकंती। वायागणिधूमेण य, विद्धत्थ होइ लोणाई ॥ १ ॥" लवणादिकं वस्तु स्वस्वस्थानाद् गच्छत् प्रतिदिन बहुबहुतरादिक्रमेण विध्वस्यमान योजनशतात् परतो गत्वा सर्वथैव विध्वस्त–अचित्त भवति। अहो! शस्त्राभावे योजनशतगमनमात्रेणैव कथं अचित्तीभवति? इत्याह–"अनहारेण" यस्य यदुत्पत्तिदेशादिक साधारण ततो व्यवच्छिन्न, स्वोपष्टम्भकाहारविच्छेदात् विध्वस्यते, तच्च लवणादिक भाण्डसंक्रान्त्या पूर्वस्मात् भाजनाद् अपरभाजनेषु यद्वा पूर्वस्या भण्डशालाया अपरस्या भण्डशालाया चक्रम्यमाण विध्वस्यते, तथा वातेन वा अग्निना वा महानसादौ धूमेन वा लवणादिक विध्वस्त भवति। "लोणाई" इत्यत्र आदिशब्दात् अमी द्रष्टव्या। स्थानाङ्गसूत्रे (५४ पत्रे)–

"हरियाल १ मणोसिल २ पिप्पली य ३ खज्जूर ४ मुद्दिआ ५ अभया ६। आइण्णमणाइण्णा तेऽवि हु एमेव नायवा ॥ १ ॥

व्याख्या–हरिताल–मनःशिला–पिप्पली–खर्जूरा–एते प्रतीताः, मुद्रिका–द्राक्षा, अभया हरीतकी, एतेऽप्येवमेव लवणवत् योजनशतगमनादिभिः कारणैः अचित्तीभवन्तो द्रष्टव्याः, परं एके अत्र आचीर्णा अपरे अनाचीर्णाः, तत्र पिप्पलीहरीतकीप्रभृतय आचीर्णा इति कृत्वा गृह्यन्ते, खर्जूरमुद्रिकादयः पुनरनाचीर्णा इति न गृह्यन्ते, अत्र सर्वेषा सामान्येन परिणमनकारणमाह–

"आरुहणे, ओरुहणे निसिअण गोणाइणं च गाउम्हा। भुमाहारच्छेए, उवक्कमेणेव परिणामो ॥ ११ ॥" शकटे गवादिपृष्ठे च लवणादीना यद्भूयोभूय आरोहणमवरोहण च तथा यत्तस्मिन् शकटादौ लवणादिभारोपरि मनुष्या

एव श्रीनिशीयचूर्णिपञ्चदशोद्देशकेऽपि, तथाहि—चोअग आह इन्धनाभावे कथमचित्त भवति ? आचार्य आह—"अणाहारेणति जस्स ज साधारण, त ततो वुच्छिन्न आहारविच्छेदु विध्वस आगच्छति । जहा पुढवी उ वुच्छिन्न लोणाइ प्प लोणाइ, जोयणसयमगयपि सठाणे, अन्तरे वा विद्धसइ, जोयणसया उ परेण अचित्त सव्वहा भवइ, भडसकतीए पुव्व-भायणाओ अन्न पि भायणं सकामिज्जइ, भडसालाओ वा अन्न भड सकामइ, वातेण आतवेण भत्तघरे वा अगणिनिरोहेण धूमेण आइसव्वाओ, इमा हरिआल गाहा—हरिताल मणोसिला जहा लोण अभयत्ति, हरियडे पिप्पलीमाइणो जोयणसताओ आगयादि, जे हरितकीमाइणो आइण्णा ता घेप्पंति, खर्जूरादयो अण्णाइण्णत्ति न घेप्पति, इम सव्वेसिं सामेण्ण परिणामकारण । आरुहणे गाहा इति ॥ लवण १ हरिताल २ मन शिला ३ पिप्पली ४ खर्जूर ५ द्राक्षा ६ हरितकी ७ प्रमुखाणा प्रासुकविचार ॥ ५५ ॥

॥ इति लवणादिसत्ताना प्रासुकाधिकारः ॥ ५५ ॥

ननु—चूर्णस्य सचित्तत्व १ अचित्तत्व २ ग्राह्यत्व ३ अग्राह्यत्व च ४ कथ ज्ञेयम् ? उच्यते—विचारसारग्रन्थोक्तगाथाभि स्पष्ट तदवबोधात्, तथाहि—"पण पहुर माह फग्गुणि, पहुरा चत्तारि चित्त वेसा हे । जिट्ठासाढे तिण्णि य तेण पर होइ सचित्तो ॥ १ ॥ पणदिणमी सो लुट्ठो, अचालिओ सावणे अ भद्दवए । चउदिण आसोए कत्तिय—मिगसर—पोसेसु तिण्णि दिणा ॥ २ ॥"

वृन्ते मूलनाले म्लाने सति ज्ञातव्य यथा जीवविप्रमुक्तमेतद् पत्रादिकं, उक्त भावलक्षणम् । तदुक्तौ च समर्थित चतुर्विध सचित्ताचित्तज्ञानद्वार इति । एवमेव श्रीस्थानाङ्गे द्वितीयस्थानके प्रथमोद्देशके (५२ पत्रे), तथाहि—

"दुविहा पुढविक्काइया पन्नत्ता, त जहा सुहुमा चेव बायरा चेव १, एव जाव दुविहा वणस्सइकाइया पन्नत्ता, त जहा सुहुमा चेव बायरा चेव ५ दुविहा पुढविक्काइया पन्नत्ता, त जहा पज्जत्तगा चेव अपज्जत्तगा चेव ९ एव जाव वणस्सइकाइआ १० दुविहा पुढविकाइया पन्नत्ता, त जहा परिणया चेव अपरिणया चेव ११ ॥ दुविहा पुढवी इत्यादिषट्सूत्री-परिणता', स्वकायपरकायशस्त्रादिना परिणामान्तर आपादिताः—अचित्तीभूता' इत्यर्थः । तत्र द्रव्यतः क्षेत्रादिना मिश्रेण द्रव्येण, कालतः पौरुष्यादिना [मिश्रेण] कालेन भावतो वर्णगन्धरसस्पर्शान्यथात्वेन' परिणता , क्षेत्रतस्तु "जोयणसय तु गता अणहारेणं तु भडसकंती । वायागणिधूमेणय, विद्धत्य होइ लोणाइ ॥ १ ॥ हरिआल मणोसिल पिप्पली अ खज्जूर मुद्दिआ अभया । आइन्नमणाइन्ना, तेऽपि हु एमेव नायव्वा ॥ २ ॥ आरुहणे ओरुहणे, निसिअण गोणाइण च गाउम्हा । भूमाहारच्छेदे, उवक्कमेणेव परिणामो ॥ ३ ॥"

'अणहारेण'ति स्वदेशजाहाराभावेन इति, 'भडसंकती'ति भाजनाद् भाजनान्तरसङ्क्रान्त्या खर्जूरादयोऽनाचरिता , अभयादयस्तु आचरिता इति, परिणामान्तरेऽपि पृथिवीकायिका एव ते, केवल अचेतना' इति, कथ अन्यथा अचेतन-पृथिवीकायपिण्डप्रयोजनाभिधानमिद स्यात् !, यथा "घट्टगडगलगलेसो पमादि पयोयण चहुहा" इति 'एव' इत्यादि प्रागिव, तदेव पञ्चैतानि सूत्राणि ॥

श्रीजिनभद्रसूरिपट्टालङ्कारश्रीजिनचन्द्रसूरिविजयराज्ये श्रीमेरुसुन्दरोपाध्यायकृतवार्तिकप्रश्नोत्तरशतके, तथाहि—वडां वासी अग्राह्य कहइ छइ ते किम ? तत्रार्थे पहिलु कोरा वडा जे घणो राखिजइ तिहा लालापातादिक दोप प्रत्यक्ष दीसे छे, ते भणी स्काली छाशि—माहि तत्काल जे मुक्या हुयइ वडा ते वासी लेता दोप नहिं, ए अक्षर श्रीआचारांगने छेहडइ छे तिहाथी जो ज्यो ९२ प्रश्ने इति । दिनद्वयानन्तर अभक्ष्य दधि । तत्रार्थे श्रीहेमचन्द्रसूरयोऽपि स्वोपज्ञयोगशास्त्रवृहद्वृत्तौ (१७१ पत्रे) प्रोचु:, तथाहि—

"आमगोरससम्पृक्त—द्विदलादिषु जन्तवः । दृष्टाः केवलिभिः सूक्ष्मा—स्तस्मात् तानि विवर्जयेत् ॥ ७१ ॥" इह हि द्वय स्थितिः—केचिद्भावा हेतुगम्याः, केचित्तु आगमगम्या , तत्र ये यथा हेत्वादिगम्यास्ते तथैव प्रवचनधरैः प्रतिपादनीयाः, आगमगम्येषु हेतून्, हेतुगम्येषु तु आगममात्र प्रतिपादयन् आज्ञाविराधक स्यात्, यदाह—

"जो हेउवायपक्खमि हेउओ आगमे अ आगमिओ । सो ससमयपन्न[व]ओ, सिद्धांतविराहओ अन्नो ॥ १ ॥" इति आगोरसर्संपृक्तद्विदलादौ न हेतुगम्यो जीवसद्भावः, किन्तु आगमगम्य एव, तथाहि—आमगोरससम्पृक्ते द्विदले आदि-शब्दात् पुष्पितौदने, अहर्द्वितीयातीते दध्नि, क्वथितान्ने च, ये जन्तवः ते केवलज्ञानिभिर्दृष्टा इति, जन्तुमिश्र गोरसमिश्र-द्विदलादिभोजन वर्जयेत्, तद्भोजनाद्धि प्राणातिपातलक्षणो दोषः, न च केवलिना निर्दोषत्वेन आप्ताना च तानि वचनानि विपरियन्ति, ननु पक्वान्नस्य ग्राह्यत्वे कियद्दिनानि ?, इत्याह—

लिङ्गसूत्रे, तथाहि—"वण्णरसगंधएण, परिणय फरसेण वा । अजीव फासुय नच्चा, पडिगाहेज्ज सजए ॥ २ ॥" इति, पुनः स्वच्चूर्णौपि (२४ पत्रे) तथाहि—'तत्तानिवुडभोइ'त्ति, तत्त पाणीय पुणो सीतलीभूत अनिवुडं भण्णइ, त च गिम्हे रत्तिं पज्जुवसिय सचित्तीभवति, हेमतवासासु पुव्वण्हे कय अवराण्हे सचित्तीभवति, एय सचित्तं जो भुञ्जइ सो तत्तानिवुड़भोइ भवति, अथवा तत्तमपि जाहे तिन्निवारागो तत्त भवति ताहे त अनिवुड सचित्त निवुत्त भवति, त जो अपरिणय भुञ्जइ सो तत्तानिवुडभोइत्ति" इति ॥ ५७ ॥

॥ इति प्रासुकमपि पानीय इयता कालेन सचित्त भवतीति विचार ॥ ५७ ॥

ननु—जगरी १ घृष्टि २ तक्र ३ करम्बको ४ दन ५ दधि ६ प्रभृतीना कति प्रहरान् यावद् ग्राह्यत्व ? कियत्प्रहरानन्तर च तेषा अभक्ष्य अग्राह्यत्व च ? उच्यते—जगरेति गाथाया प्रवर्तमानाया सकाशाद्विज्ञेय, तथाहि—

"जगरा य चार पहरा, वीस विसितक करवको गिण्हइ । पच्छा निगोअजतू, उपज्जइ सपदेसेसु ॥ १ ॥" इति ओदनस्य चतुर्विंशतिप्रहरानन्तर अग्राह्यत्व, दध्नस्तु षोडशप्रहरानन्तर अग्राह्यत्व, दध्नस्तु षोडशप्रहरानन्तर अग्राह्यत्व यदुक्त तत् तपागच्छीय श्रीमुनिसुन्दरसूरिकृत-श्रीषडावश्यकबालावबोधे । श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्रे "मज्जमि य मसमि य" इत्यादिगाथाव्याख्यानाधिकारे, तथाहि—चलितरस जे कुथ्यो अन्न १ चउवीस पहुर उपरु ओदनादिक २ सोलपहुर उपहरं दही ३ इत्यादि अभक्ष्य तेहमाहि जीव उपजे ते भणी इति । पर्युषित घोलवडा अभक्ष्यमाहि, यदुक्त—श्रीखरतरगच्छीय-

आवश्यकचूर्णिकारोऽप्याह–प्रहरदिवसोऽर्धरात्रप्रहर यावत् दिवसो घइ०, रात्रिप्रहरार्धदिवसप्रहर यावत् राइ अय०, पादोसिए जाव पोरिसी न उग्घाडेति ताव देवसिअं भण्णइ, पुव्वण्हे जाव पोरिसी न उग्घाडेइ ताव राइअति।" एवं विचारसारग्रन्थेऽपि, तथाहि "देवसिअपडिक्कमणं, सुज्झइ रयणीइ जाव पढम पहरं। राइअमह उग्घाडा–पोरिसिमुव जाव पुरिमड्ढ ॥ १ ॥" इत्यादि। एवमेव ओघनिर्युक्तिसूत्रवृत्तौ ॥

॥ इति दैवसिकरात्रिकप्रतिक्रमण कियत् काल यावच्छुध्यतीति [अधिकार] विचार ॥ ५९ ॥

ननु–पञ्चम्याः पर्वत्वं क्व प्रोक्तमस्ति ?, येन तत्र विशेषतः पुण्यकर्तव्यानि क्रियमाणानि सन्ति, उच्यते–पर्युषणाचूर्णौ तस्याः पर्वत्वेनोक्तत्वात्, तथाहि–"इत्थ उ पणग पणग, कारणिअ जा सवीसईमासो। सुद्धदसमीठिआण य आसाढी पुण्णिमोसरण॥ १ ॥ आसाढपुण्णिमाए, ठिआण जदि उगलाईणि गहियाणि पज्जोसवणाकप्पो अ कहिओ तो सावणबहुलपचमीए पज्जोसवति। असति खित्ते सावणबहुलदसमीए, असति खित्ते सावणबहुलस्स पन्नरसीए। एव पच पच ओसारिंतेण जाव असति भद्दवयसुद्धपचमीए, अओ परेण न वट्टइ। अइक्कमेउ आसाढपुण्णिमाओ आढत्त मग्गंताण जाव भद्दवयजोण्हस्स पचमीए। इत्थतरे जइ न लद्ध ताहे जइ रुक्खाहे ठितो तोऽवि पज्जोसवेअव्वं। एएसु पव्वेसु जहा लभे पज्जोसवेअव्व अप्पव्वे न वट्टइ, कारणिआ चउत्थीवि अज्जकालमायरिएहिं पवत्तिआ।" इति (३२ पत्रे) एवं श्रीनिशीथचूर्णौ दशमोद्देशके २१७ पत्रेऽपि, तथाहि—

"वासासु पनरदिवसं, सिसिरुण्हकालेसु मास-वीसदिणा । ओगाहिमं जईण, कप्पइ आरम्भ पढमदिण ॥ १ ॥"

॥ इति जर्गरी १ घृष्टि २ सक्तु ३ करम्बक ४ ओदन ५ दधि ६ पक्वान्नप्रमुखाणां भाक्ष्याभाक्ष्यत्वविचारः ॥ ५८॥

ननु-दैवसिकं रात्रिकं च प्रतिक्रमणं केनाऽपि प्रमादेन कार्यव्यग्रत्वादिना कारणेन वा कालवेलायां न चक्रे, तर्हि कालवेलातोऽग्रतः कति प्रहरान् यावत् कृतं शुध्यति ?, उच्यते-अपवादतो दैवसिकं प्रतिक्रमणं दिवसतृतीयप्रहरादारभ्य अर्धरात्रं यावत्, रात्रिकं प्रतिक्रमणं तु अर्धरात्रादारभ्य मध्याह्नं यावत् शुध्यते १ । यदुक्तं तपागच्छीय-श्रीरत्नशेखरसूरिकृत-श्राद्धविधिकौमुद्यां, तथाहि-"तत्र प्रतिक्रमणं पञ्चधैवं-दैवसिकं १ रात्रिकं २ पाक्षिकं ३ चातुर्मासिकं ४ सांवत्सरिकं ५ चेति ।" एतेषां कालस्तु उत्सर्गेण एवमुक्तः, "अद्धनिवुड्डे बिंबे, सुत्तं कड्ढंति गीअत्था । इयवयण-पमाणेण, देवसिआवस्सए कालो ॥ १ ॥ रात्तिअस्स चैवं-आवस्सयस्स समये निद्दामुद्दं चयंति आयरिया । तह त कुणंति जह दस (दिसि) पडिलेहाणंतरं सूरो॥ २ ॥" अपवादतस्तु दैवसिकं दिवसतृतीयप्रहरादर्वाक् अर्धरात्रं यावत् इति-उक्तं, योगशास्त्रवृत्तौ तु मध्याह्नादारभ्य अर्धरात्रं यावत् इति उक्तं, रात्रिकं चार्धरात्रादारभ्य मध्याह्नं यावत् इति, उक्तं च "उग्घाडपोरिसं जाव राइयमावस्सयस्स चुण्णीए चेव । ववहाराभिप्पाया, भणंति पुण जाव पुरिमड्ढं ॥१॥" पाक्षिकचातुर्मासिकसांवत्सरिकाणि तु पक्षाद्यन्तेषु च स्युः, एवं श्रीजिनप्रभसूरिकृतविधिप्रपायामपि, तथाहि-"तत्थ देवसियपडिक्कमण रयणीपढमपहर जाव सुज्झइ, राइय पुण आवस्सयचुण्णिअभिप्पाएणं उग्घाडापोरिसिं जाव, ववहाराभिप्पाएण पुण पुरिमड्ढं जाव सुज्झइ" इति (५१ पत्रे)

छट्ठमे न करिज्जा तो पायच्छित्त इति", ननु—एवं सति पञ्चमी १ अष्टमी २ पूर्णिमा ३ अमावास्या २ अन्यतरा चेति गणनाया पक्षमध्ये त्रिपर्वी स्यात्, चतुःपर्वी—पञ्चपर्व्यावपि च ग्रन्थान्तरे प्रोच्येते, एवमत्र पर्वणामनियतत्वात् त्रिपर्वी १ चतुःपर्वी २ पञ्चपर्वी ३ वाक्यात् तपःशीलाविना आराध्यते ? इति चेदुच्यते—स्वशक्त्यपेक्ष सर्वा द्वे एका वा, तामाराधयता न कश्चिद्दोषः । पुनः पञ्चम्याः पर्वत्वप्रतिपादका एकोनविंशतिपञ्चाशकवृत्त्यादि—अनेकग्रन्था सन्तीति तदर्थिना ते विलोकनीयाः ॥ ६० ॥

॥ इति पञ्चम्याः पर्वत्वम् ॥ ६० ॥

ननु—"सवीसए राइमासे वइक्कते पज्जोसवती"ति श्रीकल्पसूत्रवचनात् "जाव भद्दवयसुद्धपंचमीए अओ परेणं न वट्टइ अइक्कमिउ आसाढपुण्णिमाओ आढत्त, मग्गताण जाव भद्दवयजोण्हस्स पंचमीए" इति श्रीपर्युषणाचूर्णिवचनाच्च भाद्रपदसुदिपञ्चम्यामेव श्रीपर्युषणापर्वकरणमुचितम् । अन्यगच्छेष्वपि केषुचित् साम्प्रत भाद्रपदसुदिपञ्चम्यामेव पर्युषणापर्व क्रियमाण दृश्यते, परम्—आत्मीयगच्छे भाद्रपदसुदिचतुर्थ्यां तत् क्रियते तत्कथम् ? इति, उच्यते—सत्य भो शिष्य ! पूर्वमेवं आसीत्, पर श्रीवीरात् त्रिनवत्यधिकेषु नवशतवर्षेषु (९९३) गतेषु सत्सु श्रीशालिवाहनराजाग्रहात् श्रीकालिकाचार्यैः, "अतरावि अ से कप्पइ" इति श्रीकल्पसूत्राक्षरदर्शनबलेन पञ्चमीत चतुर्थ्यां श्रीपर्युषणापर्व प्रवर्तित, तद्वशेन च चातुर्मासमपि चतुर्दश्या जात, अन्यथा आगमोक्त पञ्चदश्यामासीत्, तत् इदानींतनसमस्तसघेनाऽपि प्रमाणीकृत,

"इत्थ उ पणग पणग, कारणिअ आ सवीसईमासो । सुद्धदसमीठिआण व आसाढी पुण्णिमोसरण ॥ १ ॥ तथाच– आसाढपुण्णिमाए ठिया डगलाइअ गिण्हंति पज्जोसवणकप्प कहिंति, पचदिणा ताहे सावणबहुलपचमीए पज्जोसवति, खित्ताऽभावे कारणेण पणगे संवुड्ढे दसमीए पज्जोसवति, एव पन्नरसीए, एव पणगवुड्ढि ताव कज्जति जाव सवीसतिमासो पुण्णो इत्यादि सवीसइराए मासे पुण्णे अवि वासखित्त न लब्भइ तो रुक्खहेठेवि पज्जोसविअव्व । त च पुण्णिमाए पचमीए दसमीए, एवमादिएसु पवेसु पज्जोसविअव्व नो अपवेसु । सीसो पुच्छइ–इआणिं कहिं च चउत्थीए अपवे पज्जोसविज्जत्ति । आयरिओ भणइ–कारणिआ चउत्थी अज्जकालगायरिएहिं पवत्तिआ" इति । अत्र पूर्वचूर्णिद्वयेऽपि "एतेसु पवेसु जहालभ पज्जोसवेअव्व अपवे न वट्टइ, इत्यनेन पुण्णिमाए १ पचमीए २ दसमीए ३ एवमाइएसु पवेसु पज्जोसवेअव्व नो अपवेसु ।" इत्यनेन वचनेन पूर्णिमावत् पञ्चम्याः पर्वत्व सिद्धम् । अत्राऽऽह कोऽपि कोपितमाय –चर्चाचक्षुर्विपश्चित्–ननु एतैरक्षरैर्द-शम्या अपि पर्वत्व पञ्चमीसन्माननीय स्यात् ? इति चेदुच्यते–सिद्धान्ताक्षरसिद्धेऽर्थे का नाम विचारणा ?। नन्वेव दशम्या तपोऽपि विधीयते ?, इति चेदुच्यते–पञ्चम्याः पर्वत्व तावत् सिद्धान्ताक्षरैः सिद्ध, अथ केवल दशमीतपोविषये विवा-दोऽवतिष्ठते, तत्र चेदुत्तरम्–दशम्याः पर्वत्वे सत्यपि पूर्वाचार्यपरम्परायां महानिशीथे च दशम्यां तपस करणस्य अद-र्शनात् । तत्र तपो न क्रियते इति महानिशीथ–भाष्यपाठो यथा–

"संते बलवीरिअपुरिसायारपरक्कमे अट्ठमि १ चउद्दसी २ नाणपचमी ३ पज्जोसवणाओ ४ चाउम्मासिएसु चउत्थ,

छट्ठमे न करिज्जा तो पायच्छित्त इति", ननु–एवं सति पञ्चमी १ अष्टमी २ पूर्णिमा ३ अमावास्या २ अन्यतरा चेति गणनाया पक्षमध्ये त्रिपर्वी स्यात्, चतुःपर्वी–पञ्चपर्व्यावपि च ग्रन्थान्तरे प्रोच्येते, एवमत्र पर्वणामनियतत्वात् त्रिपर्वी १ चतुःपर्वी २ पञ्चपर्वी ३ वाक्यात् तपःशीलादिना आराध्यते ? इति चेदुच्यते–स्वशक्त्यपेक्ष सर्वा द्वे एका वा, तामाराधयता न कश्चिद्दोषः । पुनः पञ्चम्या पर्वत्वप्रतिपादकाः एकोनविंशतिपञ्चाशकवृत्त्यादि–अनेकग्रन्था सन्तीति तदर्थिना ते विलोकनीयाः ॥ ६० ॥

॥ इति पञ्चम्याः पर्वत्वम् ॥ ६० ॥

ननु–"सवीसए राइमासे वइक्कंते पज्जोसवंती"ति श्रीकल्पसूत्रवचनात् "जाव भद्दवयसुद्धपचमीए अओ परेण न वट्टइ अइक्कमिउ आसाढपुण्णिमाओ आढत्त, मग्गताण जाव भद्दवयजोण्हस्स पचमीए" इति श्रीपर्युषणाचूर्णिवचनाच्च भाद्रपदसुदिपञ्चम्यामेव श्रीपर्युषणापर्वकरणमुचितम् । अन्यगच्छेष्वपि केषुचित् साम्प्रत भाद्रपदसुदिपञ्चम्यामेव पर्युषणापर्व क्रियमाण दृश्यते, परम्–आत्मीयगच्छे भाद्रपदसुदिचतुर्थ्यां तत् क्रियते तत्कथम् ? इति, उच्यते–सत्य भो शिष्य ! पूर्वमेवं आसीत्, परं श्रीवीरात् त्रिनवत्यधिकेषु नवशतवर्षेषु (९९३) गतेषु सत्सु श्रीशालिवाहनराजाग्रहात् श्रीकालिकाचार्यैः, "अतरावि अ से कप्पइ" इति श्रीकल्पसूत्राक्षरदर्शनबलेन पञ्चमीतः चतुर्थ्यां श्रीपर्युषणापर्व प्रवर्तित, तद्वशेन च चातुर्मासमपि चतुर्दश्यां जात, अन्यथा आगमोक्त पञ्चदश्यामासीत्, तत् इदानींतनसमस्तसघेनाऽपि प्रमाणीकृत,

यदुक्तं श्रीतीर्थोद्गारप्रकीर्णके, तथाहि—"तेणउयनवसएहिं (९९३), समइक्कतेहिं वद्धमाणाओ । पज्जोसवण चउत्थी, कालगसूरिहिं तो ठविआ ॥ १ ॥ वीसहिं दिणेहिं कप्पो, १ पंचगहाणीय कप्पठवणा य । नवसयतेणउएहिं, वुच्छिन्ना संघआणाए ॥ २ ॥ सालाहणेण रन्ना, संघाएसेण कारिओ भयवं । पज्जोसवणचउत्थी, चाउम्मासं चउद्दसिए ॥ ३ ॥ चउमासयपडिक्कमणं, पक्खियदिवसंमि चउविहो संघो । नवसयतेणउएहिं, आयरणं तं पमाणंति ॥ ४ ॥"

पुनरपि श्रीस्थानाङ्गवृत्तावपि तथैव प्रत्यपादि, तथाहि—"एवं च कारणेणं अज्जकालगायरिएहिं चउत्थीए पज्जोसवणा पवत्तिय समत्तं संघेण य अणुमन्निअं तव्वसेण य पक्खिआईणि वि चउद्दसीए आयरिआणि, अन्नहा आगमुत्ताणि पुण्णिमाए त्ति", एवं पर्युषणाचूर्णावपि, तथाहि—'कारणिया चउत्थी वि अज्जकालएहिं पवत्तिअ' त्ति। पुनरेवमेव निशीथचूर्णिदशमोद्देशकेऽपि, तथाहि—"सिसो पुच्छइ इयाणिं कह च चउत्थीए अपव्वे पज्जोसविज्जति ? आयरिओ भणइ—कारणिया चउत्थी अज्जकालगायरिएहिं पवत्तिया इति ।' न च वाच्य तस्मिन्नेव वर्षे शालिवाहनजीवनावधि वा तत्पर्युषणापर्व चतुर्थ्यां कृतं, पश्चात् पुनरपि पञ्चम्यामेव जातं भविष्यतीति, तदनन्तरमपि चतुर्थ्यामेव क्रियमाणमासीत्, यदुक्तं श्रीनिशीथचूर्णौ दशमोद्देसके, तथाहि—"इआणि कहं अपव्वे चउत्थीए पज्जोसविज्जइ ?" इति शिष्यपृच्छाया गुरुवचनावसरे—"एव च जुगप्पहाणेहिं चउत्थी कारणे पवत्तिआ, सव्वेस अणुमया सव्वसाहूण" इति । ततः श्रीकालिकाचार्यानन्तरं पश्चात् किंयत्काल-भावी निशीथचूर्णिकारः—उक्तवचनप्रामाण्यात् ज्ञायते श्रीकालिकाचार्यात् पश्चादपि श्रीपर्युषणापर्व भाद्रपदचतुर्थ्यामेव

क्रियमाणमासीत्, ततस्तत्परम्पराऽऽयातैः अस्माभिरपि चतुर्थ्यामेव श्रीपर्युषणापर्व विधीयते इति न दोषः कोऽपि ॥

ननु-यदि एवं च-"एवं च कारणेण अज्जकालगेहिं चउत्थीए पज्जोसवणं पवत्तिअं समत्तसंघेण य अणुमन्निअं", इति स्थानाङ्गवृत्तौ भणितं। तदा समस्तसंघेन चतुर्थ्यां तस्याङ्गीकरणात्। साम्प्रतं केषुचिद्गच्छेषु पञ्चम्यां तत्करणं कुतः ?॥

उच्यते-श्रीकालिकाचार्यपरम्परां न ते मन्यन्ते इति संभाव्यते। ननु तर्हि 'असढेण समाइन्नं' इत्याद्युक्तत्वेन कथं न ते दोषभाजः ?॥

उच्यते-तत्रार्थे त एव प्रष्टव्याः, वयं च न काञ्चिदपि निन्दामः। ननु-आत्मगच्छे पञ्चम्यां केवलं श्रीकल्पसूत्रं पाठमात्रतः श्रीसंघाग्रे वाच्यते न वा ? न वाच्यम्-इति उत्तरं, यतः सांवत्सरिकप्रतिक्रमणानन्तरिककल्पाष्टमाध्ययनपाठादनु-"कप्पसमप्पावणियं करेमि काउसग्गं" इति वाक्येन कल्पसमाप्तिनैमित्तिककायोत्सर्गस्य तच्चूर्ण्यादौ प्ररूपणात्, सांवत्सरिकप्रतिक्रमणस्य चतुर्थ्यामेवाचरितत्वात्, चतुर्थ्यामेव तद्वाचनं यौक्तिकं, न पञ्चम्यां, अतश्चतुर्थ्यां सांवत्सरिककृत्यसमाप्तिकारकाणां पञ्चमी षष्ठीवद्दोषकृत् ज्ञेया। पुनर्यथा श्रीकल्पसूत्रे-"नो से कप्पइ तं रयणिं उवाइणावित्तए" इति पञ्चमीमाश्रित्य प्रोक्तं, तथा चतुर्थीमानकानां चतुर्थीमाश्रित्यापि ज्ञेयं, ततश्चतुर्थीमानकानां पञ्चम्यां श्रीकल्पसूत्रस्य संघसमक्षं पाठवाचनेऽपि महान् दोषः। इति चतुर्थ्यां श्रीपर्युषणापर्वकरणम् ॥ ६१ ॥

॥ इति चतुर्थ्यां श्रीपर्युषणापर्वकरणम् ॥ ६१ ॥

खरतरगच्छाधीशा, जिनचन्द्रयुगप्रधानगुरुराजाः । श्रीपातिशाहिमान्या , समभूवन् भूमिविख्याताः ॥ १ ॥
श्रीपूज्यमुख्यशिष्या , दक्षाः श्रीसकलचन्द्रनामानः । मद्गुरवो गुणगुरव–स्तेषामेव प्रसादो मे ॥ २ ॥
त्रयोदशभिरित्येव, पूर्णं प्रश्नोत्तरैर्व्यधात् । तृतीयक प्रकाश श्री-समयादिमसुन्दरः ॥ ३ ॥
इति श्रीसमयसुन्दरोपाध्यायविरचिते श्रीसामाचारीशतके पञ्चमप्रकाशे तृतीयः प्रकाशः सम्पूर्ण. ॥ ३ ॥

इति श्रीसमयसुन्दरोपाध्यायविरचिते सामाचारीशतके
पञ्चमप्रकाशे तृतीयः प्रकाश' समाप्त' ॥ ३ ॥

॥ अथ चतुर्थः प्रकाशः ॥

॥ श्रीमत्स्थमणपार्श्वनाथाय नम' ॥

ननु–श्रीजिनवल्लभसूरीणा परमसंविग्नाना कठोरसत्क्रियापात्राणा का सामाचारी प्रवर्तते ?, यदुपरि सर्वोऽपि श्रीखरतरगच्छसंघः प्रतिक्रमणादिक्रिया कुर्वाणोऽस्ति ? उच्यते–श्रूयताम्, एषा चत्वारिंशद्गाथारूपा तेषा सामाचारी, तथाहि—

"सम्म नमिउ देवं, देविंदवदिअपय महावीर । पडिक्कमणसमाचारीं, भणामि जह समरामि अहं ॥ १ ॥ पचविहायारविसु–द्धिहेउमिह साहु सावगो वावि । पडिक्कमण सह गुरुणा, गुरुविरहे कुणइ इक्को वि ॥ २ ॥ वंदित्त चेइआइ, दाउ चउराइए खमासमणे । भूनिहियसिरो सयला–ऽइआरमिच्छुक्कड देइ ॥ ३ ॥ सामाइअपुव्वमिच्छा–मि ठाइउ काउसग्गमिच्चाइ । सुत्त भणिअ पलंबिअभूयकुप्परधरिअपहिरणओ ॥ ४ ॥ सजइ १ कविट्ठ २ घण ३ लय ४ लवुत्तर ५ खलिण ६ सबरि ७ वहु ८ पेहा ९ । वारुणि १० भमुह ११ गुलि १२ सीस १३ मूअ १४ हय १५ काय १६ निहलु १७ द्धी १८ ॥ ५ ॥ थभाइ १९ [घोडगमाई] दोसरहिय, तो कुणइ दुद्धसिओ तणुस्सग्ग । नाभिअहो जाणुद्ध, चतुरंगुलठविअकडिपट्टो ॥ ६ ॥ तत्थ य धरेइ हिअए, अहक्कम दिणकए अईआरे । पारेत्तु नमुक्कारेण पढइ चउवीसयपदड ॥ ७ ॥ सडासगे पमज्जिय, उवविसिय अलग्गविअयबाहुजुओ । मुहणतग च कायं, पेहए पचवीसइहा ॥ ८ ॥ उट्ठियट्ठिओ सविणयं,

विहिणा गुरुणो करेइ किइकम्मं । बत्तीसदोसरहियं, पणवीसावस्सगविसुद्ध ॥ ९ ॥ थद्ध १ पविद्ध २ मणाढिअ ३ परि-पिंडिअ ४ मंकुसं ५ ससुवत्त ६ । कच्छवरिंगिअ ७ टोलगइ–८ दद्दुर ९ वेइ–आवद्ध १० ॥ १० ॥ मणदुट्ठ ११ रुट्ठ १२ तज्जिय १३ सढ १४ हीलिअ१५ तिणिअ १६ भढणीअ च १७ । विट्ठमविट्ठ १८ संग १९ कर २० मोअण २१ मूण २२ मूअं च २३ ॥ ११ ॥ मय २४ मित्ती २५ गारव २६ कारणेहिं २७ पलिओथि । [चि]अ २८ भयत च २९ । आलिद्ध ३० मणालिद्धं ३१ चूलिअ ३२ चुडुलित्ति बत्तीसा ॥ १२ ॥ उपवेसमहाजाय, दुहोणय पयडबारसावत्त । एगनिरामणतिगुत्त, चउसिर न भणंति पणवीसा ॥ १३ ॥ अह सम्ममवणअगो, करजुअविहिधरिअपोत्तिरयहरणो । परिचिंतिय अइआरे, जहक्कम गुरुपुरो विअडे ॥ १४ ॥ अह उवविसित्तु सुत्त, सामाइअमाइअ पढीअ पयओ । अब्भुट्ठियओ म्मि इच्चा–इ पढइ दुह उट्ठिओ विहिणा ॥ १५ ॥ दाऊण वंदणं तो, पणगाइसु जइसु खामए तिन्नि । किइकम्म किरियाठिओ, नहो गाहा-तिगं भणई ॥ १६ ॥ अह [इय] सामाइअवस्सगसुत्तमुच्चारिअ काउसग्गठिओ । चिंतइ उज्जोयदुग, चरित्तअइआरसुद्धि-कए ॥ १७ ॥ विहिणा पारिअ सम्म–त्तसुद्धिहेउं च पढिअ उज्जोअ । तह सयलोयअरिह–तचेइआराहणुस्सग्गं ॥ १८ ॥ काउ उज्जोयगर, चिंतिय पारेइ सुद्धसम्मत्तो । पुक्खरवरदीवड्ढं, कड्ढइ सुयसोहणनिमित्त ॥ १९ ॥ पुण पणवीसोस्सासं उस्सग्गं कुणइ पारए विहिणा । तो सयलकुसलकिरिआ, फलाण सिद्धाण पढइ थय ॥ २० ॥ अह सुअसमिद्धिहेउं, सुय देवीए करेइ उस्सग्गं । चिंतेइ नमुक्कारं, सुणइ वदेइ व तीइ थुइ ॥ २१ ॥ एव खेत्तसुरीए, उस्सग्ग कुणइ सुणइ देइ थुइं । पढिअं च पंचमगल उवविसइ पमज्ज सडासे ॥ २२ ॥ पुव्वविहिणेव पेहिअ- पत्तिं दाऊण वदणं गुरुणो । [illegible]

सड्डिं,-ति भणिअ जाणूढिंतो ठाइ ॥ २३ ॥ गुरुथुइगहणे थुइ तिन्नि, वद्धमाणक्खरस्सरो पढइ। सक्कत्थय थय पढिअ कुणइ पच्छित्तउस्सग्ग ॥ २४ ॥ एव ता देवसिअं, राइअमवि एवमेव नवरि तहिं। पढम दाउं मिच्छा-मि दुक्कड पढइ सक्कत्थय ॥ २५ ॥ उट्ठिय करेइ विहिणा, उस्सग्ग चिंतए अ उज्जोय। बीअ दसणसुद्धीए चिंतए तत्थ इममेव ॥ २६ ॥ तइए निसाअइयारे, जहक्कम्म चिंतिऊण पारेइ। सिद्धत्थय पढित्ता, पमज्ज सडासमुवविसइ ॥ २७ ॥ पुव्वं च पोत्तिपेहण-वदण-आलोयसुत्तपढण च। वंदणखामणवंदण-गाहातिगपढणमुस्सग्गो ॥ २८ ॥ तत्थ वि चिंतए संयम-योगाण न जेण होइ मे हाणी। त पडिवज्जामि तव, छम्मासं ता न काउमल ॥ २९ ॥ एगाइगुणतीसूणय अ पि न सहो न पचमासमवि। एव चउ ति दुमास, न समत्थो एगमासं पि ॥ ३० ॥ जा त पि तेरसूणं, चउतीसइमाइअ दुहाणीए। जाव चउत्थ तो आय-बिलाइ आ पोरसि नमो वा ॥ ३१ ॥ जो सक्क त हिअए, धरित्त पारेत्तु पेहए पोत्तिं। दाऊ वदणमसढो, त चिअ पच्चक्खए विहिणा ॥ ३२ ॥ इच्छामो अणुसड्डिं, ति भणइ उववसिअ पढइ तिन्नि। थुई मिउसद्देण सक्कत्थयाइ तो चेइए वंदे ॥ ३३ ॥ अह पक्खिय चउद्दसि-दिणमि पुव्व व तत्थ देवसिअ। सुत्तत पडिक्कमिउ, तो सम्ममिम कम कुणइ ॥ ३४ ॥ मुहपोत्तिय वंदणय, सबुद्धखामणं तहालोए। वदण पत्तेयखामणाणि च वदणयमह सुत्त च ॥ ३५ ॥ सुत्त अब्भु ट्ठाण, उस्सग्गो पोत्ति वदण तह य। पज्जंतिअखामण, तह चउरो थोभवदणया ॥ ३६ ॥ पुव्वविहिणेव सव्व, देवसियं वंदणाइ तो कुणइ। सिज्जसुरी उस्सग्गे, भेओ सतित्थयपढणे अ ॥ ३७ ॥ एव चि अ चउमासे, वरिसे अ जहक्कम्म विहि णेयो। पक्खचउमास-वरिसेसु नवरि नाममि नाणत्त ॥ ३८ ॥ तह उस्सग्गोज्जोया, बारस वीसा समम गलिगचत्ता।

सवुद्धाखामण ति–पण सत्त साहूण जहसंख ॥ ३९ ॥ इअ जिणवल्लहगणिणा, लिहिअं ज सुमरिअं च मइणावि । उस्सु-समणाइस, ज मिच्छामि दुक्कड तस्स ॥ ४० ॥”

॥ इति श्रीजिनवल्लभसूरिसामाचार्यधिकारः ॥ ६२ ॥

ननु–श्रीजिनदत्तसूरीणां युगप्रधानगुरूणामपि अनायतनचैत्य–स्त्रीकृतमूलप्रतिमापूजा–प्रमुखनिषेधकवाक्यानि सामाचारीरूपाणि क्वाऽपि सकलितानि सन्ति ? सन्तीति ब्रूमः, स्वकृतोत्सूत्रपदोद्घाटनकुलके तै सविस्तर प्ररूपितत्वात् तथाहि, तत्कुलक—

“लिंगी जत्थ गिहिव्व देवनिलए निच्चं निवासी तय, सुत्तेऽणायतण न तत्थ उ जओ नाणाइवुड्ढी भवे । निस्सानिस्स-जिणिंदमंदिरदुग तन्नाम हेउ तय, सिद्धतमि पसिद्धमेव तहवी खिंसंति ही बालिसा ॥ १ ॥ चेइअमढेसु जइवेसधारया निच्चमेव निवसंति । तमणाययणं जइसावगेहिं सद्धं वज्जणिज्जति ॥ २ ॥ उस्सुत्तदेसणाकारएहिं केहिं तु वसइवासीहिं । पडिबोहिअसावयचेइय पुणो होइऽणाययण ॥ ३ ॥ एयमि हुस्सुत्त पुण, जुवइपवेसो निसाइ चेइहरे । रयणीइ जिणपइट्ठा, न्हाण नेवेज्जदाण च ॥ ४ ॥ पूएइ मूलपडिमपि साविआ चिइनिवसिसम्मत्त । गब्भापहारकल्लाण पि न हु होइ वीरस्स ॥ ५ ॥ कीरइ मासविहारोऽहुणाऽवि साहूहिं नत्थि किर दोसो । पुरिससिरथीओ पडिमा, वहति तत्था–इमा चउरो ॥ ६ ॥ कडुअसगरिआओ, न हुति पिदलति विरुद्धगाऽणत । न य सिंधियवेराइ, सचित्त सिंधवो दक्खा ॥ ७ ॥ इरियावहिय पडिक्कमिअ जो जीणाईण पूअणाइ पुणो । कुज्जा इरिय पडिक्कमिअ कुणइ किइ[य]कम्मदाणाइं ॥ ८ ॥ विहि-

चेइअ नाम पि हु न जुत्तमेअ असमग्गमेगुत्तं । निस्साकडाइ जिणचेइआइ, लिंगीहिं विजुआइ ॥ ९ ॥ तित्तियमित्तं कुज्जा, जित्तियमित्तं जलाइ मुजिज्जा । अजियजलाहारगिही, पाणागारे समुच्चरइ ॥ १० ॥ उग्गय[ए]सूरे सूरुग्गमे अ भणिअंमि नत्थि किर दोसो । एगजुगे जुगपवरा, दस पंच हवंति न हु एगो ॥ ११ ॥ बत्तीस देविंदा, चउसट्ठी नेअ हुंति जिणपयडा । पूआ अट्ठविअप्पा, पासमुपासा न नव ति फणा ॥ १२ ॥ खीरघएहिं ण्हाणं, जिणपडिमाण न काउ जुत्तमिणं । दवत्थओत्ति काउ, गिहीणमुचिआ जिणपइट्ठा ॥ १३ ॥ कत्तियऽमावासाए, पच्छिमरयणीइ वीरपडिमाए । कीरइ न्हाणं पूआ, वाइअ महनट्टगीअं च ॥ १४ ॥ लउडारसो वि दिज्जइ, विहि–जिणभवणंमि सावएहिं पि । सासणसुराणमदो–ऽण च तत्थेव जलकील ॥ १५ ॥ माहे मालारोवण–मिह कीरंत च साहए सिद्धिं । मालग्गहणे न्हाणे, जिणाण रयणीइ [ए] को दोसो ? ॥ १६ ॥ न्हवणयरसिहाबंधो, मुद्दाकलसेसु वासखेवाइ । सूरी विणा पइट्ठ, कुणइ अ उस्सुत्तमाईअ ॥ १७ ॥ गिहिणोऽवि दिसाबंधो, कीरंतो धम्मसाहगो होइ । चेइअवसहिनिवासीवि साहुवेसट्ठिया पुज्जा ॥ १८ ॥ जिणबिंबमणाययणं, न होइ निवसंति ते जहिं स मढो । सो सुविहियसाहूहिं, परिहरणिज्जो न य गिहीहिं ॥ १९ ॥ मेरुगिरिंमि तिअसा हि–वेहिं जिणजम्मन्हाणमवि किरियं । आरत्तिअमुत्तारिय, मंगलदीव कयं नट्ठं ॥ २० ॥ आरत्तिअमेगजिणिं–दपडिमपुरओ कयं न निम्मल्लं । परिहाविज्जइ जेण, वत्थेण तमवि निम्मल्लं ॥ २१ ॥ आरत्तियमुवरिजल, भामिज्जइ तह पयत्तओ पूअ । तमि अ जमुत्तरते, तदुवरि कुसुमंजलिक्खेवो ॥ २२ ॥ आरत्तिय धरिज्जइ, अयंतराले वि चत्तरत तु । कीरइ नट्ट गीअ, वाइअमुअगीअ नट्टं च ॥ २३ ॥ जिणपुरओऽवि फलक्खय–पमुहं जं ढोइअ तु पूअट्ठा । तमवि न कप्पइ

पडिक्कमणाइ मोणेण कुणंति ॥३०॥ गोयमपडिग्गह १ मुक्खदवग २ मरुडसत्तमी माणिक्कपत्थारिआइ तव अकरण ॥ ३१ ॥ संपइकाले सावयपडिमाओ न वहिज्जंति ॥३२॥ देवस्स गाम १ गोउल २ आराम ३ कूवाइ ४ न कीरइ ॥३३॥ चेइअहराइसु अट्ठुहवय पडिसेहो ॥३४॥ राईमई विरहणीआई परिहारो ॥३५॥ जहण्णओ वि पारुत्थय विणा न न्हवण ॥ ३६ ॥ रयणीए नंदि १ बलि २ पइट्ठा ३ रहजत्ता ४ न्हवणाई ५ समणा १ समणी २ सावय ३ साविआण ४ चेइअ पवेसो न मंगलदीवस्स न भामण ॥ ३७ ॥ न य आरत्तिए विसेस पूआ ॥ ३८ ॥ लवणस्स जलस्स य उत्तारिअ जलणे खिवण ॥ ३९ ॥ न य थाल विणा आरत्ति अ मंगलदीवा ॥ ४० ॥ न पोईए धेत्ता न्हवण ॥ ४१ ॥ न य लउडारसदाण ॥ ४२ ॥ लोण १ जल २ आरत्तिआइ ३ जिणस्स सड्ढेण न कय किंतु गीयत्थेहिं आइण्णं सहारेण य सजुत्त ॥ ४३ ॥ अट्ठाहिआओ तहा आरभिअव्वाओ जहा सत्तमी अट्ठमी नवमीओ अट्ठाहिआ मज्झे इति ॥ ४४ ॥ परिग्गहप्पमाणटिप्पणए मूलगुरुपासे इम गहिअंति लिहिज्जइ न उण अन्नेहिं वि आयरिय उवज्झाय वायणायरिएहिं दिन्ने परिग्गहप्पमाणे स नाम लिहिअव्व ॥ ४५ ॥ मूलगुरुपत्थाणं काउ जाव विवक्खिय ठाणं न संपत्तो ताव घोसणीया सव्वठाणेसु साहूहिं न कायव्वा ॥ ४६ ॥ कंधकंबलियाए असमप्पिआए दंडगो न अप्पेअव्वो आयरियउवज्झायाण गिण्हतेहिं पढम दंडओ घेतव्वो पच्छा कंधकंबलिआ ॥ ४७ ॥ आयरिय–उवज्झायाण कंधकंबली विहारभूमिए वेयावच्चगरेण घेतव्वा न पुण वायणायरिअस्स ॥ ४८ ॥ भंडरो तिप्पाओ घेतव्वा न पुण तिन्नि ॥ ४९ ॥ अपडिक्कमंत मंदणवायारो सावया जहा पभाए तहा संझाए वि दोहिं

छदणेहिं कमेण आलोयण खामणं पच्चक्खाणं करेंति, न पुण समाए पढम छदणदुगेण पच्चक्खाण ततो दो दो छदणेहिं आलोयण खामणया ॥ ५० ॥ सावय-पडिक्कमणसुत्तते तस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्सत्ति न भणंति ॥ ५१ ॥ पडिक्कमणे साहुणो सावया य काउस्सग्गे आइआर मुक्कलं चिंतति न पुण गाहारूवं ॥ ५२ ॥ पक्खाणवायणेवि रागझुणी न कायवो ॥ ५३ ॥ सामाइअदंडग मुहपोत्तिआ पडिलेहणपुन भणिअ तओ इरिआवहिआ पडिक्कमिज्जइ न पुण इरिअ पडिक मित्ता तओ सामाइअगहण ॥ ५४ ॥ पक्खियपडिक्कमणे पुढोकय आलोयण मुत्तु परोप्पर एगमडलीए न छदणा दोसो अओ मुहपोत्ति पडिलेहिज्जइ ॥ ५५ ॥ अट्ठमीचउद्दसीसु उववासकरणं सइ सामत्थे बीआपचमीएगारसीसु निविगयं अहवा एगभत्तमविजण जाय खुड्डिय गिलाणाइ मोत्तु ॥ ५६ ॥ पइदिण सपुण्णचियवंदणा देवालए ॥ ५७ ॥ रत्तिए गुरुणो सोमत्थं दुप्परिआए जलोछिय चीयरखडठावण अइसाराइसु लूहणयाइ धोवण भडए धारेअव ॥ ५८ ॥ चउमासिया धोवणी ॥ ५९ ॥ वासा चउमासए सूरिण पुकवला निसिज्जा उवज्झायस्स एग कवला वायणायरिअस्स य ॥ ६० ॥ जेट्ठउवज्झाया मह-उवज्झाया इति भणति न पुण अन्ने ॥ ६१ ॥ आयरिय नाम लेहाइसु अमुग आयरिय इय लिहिअव न पुण सूरित्ति ॥ ६२ ॥ संघाडयबाहिरे मए तस्स अतिय वत्थ पत्त पुत्थआइ पडआसण कवलसहिअ मूलगुरुणो दिज्जइ ॥ ६३ ॥ साहुसु कणिट्ठो भोयणमडलिं समुद्धरइ ॥ ६४ ॥ ओमरायणीआ जत्थ विहरति सो सा भसाइअ ॥ ६५ ॥ बीसओसिरिमाल-ओसवाल-पोरवाड-कुलसभूओ चेव आयरिओ ठाविज्जइ उवज्झाओवि तहेव न पुण दसाजातिओ महत्तीयाणो ठाविज्जइ, वायणागुरू जो वा सो वा ठाविज्जइ महत्तरी सिरिमाला चेव ठाविज्जइ ॥ ६६ ॥

पडिक्कमणाइ मोणेण कुणति ॥३०॥ गोयमपडिग्गह १ सुक्खदक्खग २ मवरसत्तमी माणिक्कपत्थारिआइ तव अकरण ॥ ३१ ॥ सपइकाले सावयपडिमाओ न वहिज्जति ॥३२॥ देवस्स गाम १ गोउल २ आराम ३ कूवाइ ४ न कीरइ ॥३३॥ चेइअहराइसु अणुद्धय पडिसेहो ॥३४॥ राईमई चिरक्खीआई परिहारो ॥३५॥ जहक्खओ वि पारुत्थय विणा न न्हवण ॥ ३६ ॥ रयणीए नदि १ बलि २ पइट्ठा ३ रहजत्ता ४ न्हवणाई ५ समणा १ समणी २ सावय ३ साविआण ४ चेइअ पवेसो न मंगलदीवस्स न भामण ॥ ३७ ॥ न य आरत्तिए विसेस पूआ ॥ ३८ ॥ लवणस्स जलस्स य उत्तारिअ जलणे खिवण ॥ ३९ ॥ न य थाल विणा आरत्ति अ मगलदीवा ॥ ४० ॥ न चेईए वेसा नच्चण ॥ ४१ ॥ न य लउडारसदाण ॥ ४२ ॥ लोण १ जल २ आरत्तिआइ ३ जिणस्स सवेण्ण न कय किंतु गीयत्थेहिं आइण्णं छहारेण य सजुत्त ॥ ४३ ॥ अट्ठाहिआओ तहा आरभिअव्वाओ जहा सत्तमी अट्ठमी नवमीओ अट्ठाहिआ मज्झे इति ॥ ४४ ॥ परिग्गहप्पमाणटिप्पणए मूलगुरुपासे इम गाहिज्जति लिहिअइ न उय अन्नेहिं वि आयरिय उवज्झाय वायणायरिएहिं दिने परिग्गहप्पमाणे स नाम लिहिअय ॥ ४५ ॥ मूलगुरुपत्थाण कय जाव सिवक्खिय ठाणं न संपत्तो ताव घोयणीया सव्वठाणेसु साहुहिं न कायव्वा ॥ ४६ ॥ कंबलकमलियाए असमप्पिआए दंडगो न अप्पेअव्वो आयरियउवज्झायाण गिण्हतेहिं पढम दडओ घेतव्वो पच्छा कंबलकमलिआ ॥ ४७ ॥ आयरिय-उवज्झायाणं कंबलकमली विहारभूमिए वेयावच्चगरेण घेतव्वा न पुण वायणायरिअस्स ॥ ४८ ॥ पत्तरो तिप्पाओ घेतव्वा न पुण तिन्नि ॥ ४९ ॥ अपडिक्कमत वंदणदायारो सावया जहा पभाए तहा समाए वि दोहिं

छदणेहिं कमेण आलोयण खामणं पच्चक्खाण करेंति, न पुण सत्ताए पढम छदणदुगेण पच्चक्खाण ततो दो दो छदणेहिं आलोयण खामणया ॥ ५० ॥ सावय–पडिक्कमणसुत्ते तस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्सत्ति न भणंति ॥ ५१ ॥ पडिक्कमणे साहूणो सावया य काउस्सग्गे आइआर मुकल चिंतति न पुण गाहारूवं ॥ ५२ ॥ वक्खाणवायणेवि रागझुणी न कायव्वो ॥ ५३ ॥ सामाइअदंडगं मुहपोत्तिआ पडिलेहणपुव्व भणिअ तओ इरिआवहिआ पडिक्कमिज्जइ न पुण इरिअ पडिक्कमित्ता तओ सामाइअग्गहण ॥ ५४ ॥ पक्खियपडिक्कमणे पुढोकय आलोयण मुत्तु परोप्पर एगमडलीए न छदणा दोसो अओ मुहपोत्ति पडिलेहिज्जइ ॥ ५५ ॥ अट्ठमीचउद्दसीसु उववासकरण सइ सामत्थे बीआपचमीएगारसीसु निविगय अहवा एगभत्तमविजण आय खुड्डिय गिलाणाइ मोत्तु ॥ ५६ ॥ पइदिण सपुण्णचियवंदणा देवालए ॥ ५७ ॥ रत्तिए गुरुणो सोअत्थं दुप्परिआए जलोछिय चीवरखडठावण अइसाराइसु लूहणयाइ धोवण भडए धारेअव्व ॥ ५८ ॥ चउमासिया धोवणी ॥ ५९ ॥ वासा चउमासए सूरिण सुकंवला निसिज्जा उवज्झायस्स एग कवला वायणायरिअस्स य ॥ ६० ॥ जेट्ठउवज्झाया मह–उवज्झाया इति भणंति न पुण अन्ने ॥ ६१ ॥ आयरिय नाम लेहाइसु अमुग आयरिय इय लिहिअव्व न पुण सूरित्ति ॥ ६२ ॥ संघाडयबाहिरे मए तस्स अतिय वत्थ पत्त पुत्थआइ पडआसण कवलसहिअ मूलगुरुणो दिज्जइ ॥ ६३ ॥ साहूसु कणिट्ठो भोयणमडलिं समुद्धरइ ॥ ६४ ॥ ओमरायणीआ जलं विहरति सो सामसाइअ ॥ ६५ ॥ वीसओसिरिमाल–ओसवाल–पोरवाड–कुलसमूओ चेव आयरिओ ठाविज्जइ उवज्झाओवि तहेव न पुण दसाआतिओ महत्तीयाणो ठाविज्जइ, वायणागुरू जो वा सो वा ठाविज्जइ महत्तरी सिरिमाला चेव ठविज्जइ ॥ ६६ ॥

पडिक्कमणाइ मोणेण कुणंति ॥३०॥ गोयमपडिग्गह १ मुक्खदहग २ मढ्ढसत्तमी माणिक्कपत्थारिआइ तव अकरण ॥ ३१ ॥ सपइकाले सावयपडिमाओ न घहिज्जति ॥३२॥ देवस्स गाम १ गोउल २ आराम ३ कूवाइ ४ न कीरइ ॥३३॥ चेइअहराइसु अब्बुदचय पडिसेहो ॥३४॥ राईमई विरहगीआई परिहारो ॥३५॥ जहसओ वि पोरुत्थय विणा न न्हवणं ॥ ३६ ॥ रयणीए नदि १ बलि २ पइट्ठा ३ रहजत्ता ४ न्हवणाई ५ समणा १ समणी २ सावय ३ साविआण ४ चेइअ पवेसो न मगलदीवस्स न भामण ॥ ३७ ॥ न य आरत्तिए विसेस पूआ ॥ ३८ ॥ लवणस्स जलस्स य उत्तारिअ जलणे खिवण ॥ ३९ ॥ न य थाल विणा आरत्ति अ मगलदीवा ॥ ४० ॥ न चेईए वेसा नचण ॥ ४१ ॥ न य लउडारसदाण ॥ ४२ ॥ लोण १ जल २ आरत्तिआइ ३ जिणस्स सयेण न कय किंतु गीयत्थेहिं आइण्णं सहारेण य सजुत्त ॥ ४३ ॥ अट्ठाहिआओ तहा आरभिअबाओ जहा सत्तमी अट्ठमी नवमीओ अट्ठाहिआ मन्ने इति ॥ ४४ ॥ परिग्गहप्पमाणटिप्पणए मूलगुरुपासे इम गहिअंति लिहिज्जइ न उण अन्नेहिं वि आयरिय उवज्झाय वायणायरिएहिं दिन्ने परिग्गहप्पमाणे स नाम लिहिअय ॥ ४५ ॥ मूलगुरुपत्थाण जाव जाव विवक्खियं ठाणं न संपत्तो ताव घोसणीया सव्वठाणेसु साहूहिं न कायया ॥ ४६ ॥ कंथकमलियाए असमप्पिआए दंडगो न अप्पेअवो आयरियउवज्झायाण गिण्हतेहिं पढम दंडओ घेतवो पच्छा कथकमलिआ ॥ ४७ ॥ आयरिय-उवज्झायाण कथकमली विहारभूमिए वेयावच्चगरेण घेतवा न पुण वायणायरिअस्स ॥ ४८ ॥ चउरो तिप्पाओ घेतवा न पुण तिन्नि ॥ ४९ ॥ अपडिक्कमत वदणदायारो सावया जहा पभाए तहा सझाए वि दोहिं

किमपि न आनाय्य किं तु सघाटक प्रति पृष्ट्वा । ८ । विंशति वर्षपर्याय विना योगपट्टाद न ग्राह्य । ९ । सामाचारिष्व
वर्जने । १० । संस्तारके सामान्यतपोधनस्य कम्बलिका निषिद्धा ग्लानवर्ज । ११ । क्रीतादिना वस्त्रादि अपूर्व न आनाय्य
। १२ । सागारिकसमक्ष गाढकलहे आचाम्लं अज्ञाते निर्विकृतिक । १३ । सागारिकेभ्यो याचकेभ्यश्च निजान्नपानादि
न देय । १४ । उपाध्यायवाचनाचार्ययो मण्यक्षपूजानिषेधः । १५ । गुरोराज्ञया विहारो गमनागमनादिक । १६ ।
उपाध्यायवाचनाचार्याणां प्राघूर्णकानामेव उपयोगकरण आचार्यवत् । १७ । उपाध्यायवाचनाचार्याणां आरात्रिकावतारणं
न । १८ । प्रथमदिने आचार्योपाध्यायवाचनाचार्यैः यथाज्येष्ठ रात्रिक पादशौर्च कार्य । १९ । उपाध्यायवाचनाचार्याणां
पृष्ठपट्टे कम्बल वस्त्र च नाऽस्ति । २० । भोजनकाले आचार्योपाध्यायाग्रे पट्टक धार्य, न वाचनाचार्याग्रे । २१ । व्याख्या-
नारम्भे गच्छाधिपतेः नमस्कारकथन प्रतिक्रमणे तन्नाम कथन च । २२ । दीक्षादान मूलगुरोस्तदाज्ञया आचार्याणा च
। २३ । सागारिकदृष्टौ उच्छोञ्छनाभ्यगनिषेधोऽन्यत्र हस्तपादमुखशौचात् । २४ । वर्षाचतुर्मास्या एका विकृतिः थीरक-
स्वागके च बालग्लानवर्ज । २५ । राक्षकाचरनिषेध । २६ । देवस्व ज्ञानस्व च न काऽपि व्यापार्य देवकार्यादन्यत्र । २७ ।
पूर्णिमाऽमावास्योः नन्दीश्वरदेववन्दन । २८ । कार्तिकचातुर्मासिक पारण षष्ठिर्विधेयं यतनया । २९ । गुरुरूपद्रव्यमपि
देवस्व-ज्ञानस्ववत् । ३० । अकाले संज्ञायां यथा उपवासः प्रवेश्यः । ३१ । अष्टमीचतुर्दश्योः पादशौचवर्ज उच्छोलना-
निषेधः करणे उपवास । ३२ । उत्सर्गेण मुखनिषेधः य कश्चित् लघयिष्यति तस्याज्ञाभंगः इति ॥ ३३ ॥

॥ इति व्यवस्थापत्राधिकार ॥ ६५ ॥

पये सज्झाय दुप्पडिलेहण गोअरचरिअभंगेसि अहा–जेट्ठ साहूणो विस्सामिअ विस्सामिअ सुह विहारो पुच्छिअव्वो ॥१७॥
साहूणं पढमो-वहाणे वुड्ढे वच्चरूमपणाइ जोगा मोक्खा ॥ १८ ॥ वीरस्स छ कल्लाणा य ॥ १९ ॥"

॥ इति श्रीजिनपतिसूरिसामाचार्यधिकारः ॥ १४ ॥

ननु–श्रीखरतरगच्छे एतत्सामाचारीत्रयातिरिक्तं व्यवस्थापत्रमपि किमपि वर्तते न वा ? उच्यते–वर्तते एव साधूनां शिक्षारूपं, तथाहि—

सर्वं वस्त्रपात्रादि विहृत्य मूलगुरुभ्यो निवेदनीय । १ । प्राभृतकादिपरिष्ठापने आचाम्ल, अन्यत्र चातुर्मासिक–सांवत्स-रिकपारणात् । २ । पात्रप्रक्षालने कल्पपरिष्ठाने निर्विकृतिकं । ३ । गुरुणासह संस्तारक–मुखवस्त्रिकाऽप्रतिलेखने निर्विकृ-तिक मार्गश्रमग्लानत्वादिकारणं विना । ४ । गुरोरनापृच्छया साधुभ्यो वस्त्रादिदानं न कार्यम् । अन्यत्र पृथक् सघाटकात् । ५ । पात्र ग्रैपमक घटभंगे आचाम्ल । ६ । चेतणी ढांकणी प्रभृतिभगे निर्विकृतिक । ७ । आत्मरुच्या गृहस्थपार्श्वात्

---

१ गच्छपतिः [illegible] । सूरिमन्त्र [illegible] । [illegible] करोति । [illegible] [गुरूणं] [illegible] मासमध्ये आचाम्लद्वयं कार्यं । सति सामर्थ्ये खरतरश्राद्धैः [illegible] । एते सप्त [illegible] श्रीजिनदत्तसूरीणां पार्श्वे [illegible] । [illegible] प्रतिमाम [illegible] । [illegible] खरतरश्राद्धो निर्धनो न । [illegible] न भवति । [illegible] शाकिनी न छलति । जिनदत्तसूरिनाम्ना विद्युद्भयं न । खरतरश्राद्धः सिन्धुदेशे गत्वा [illegible] भविष्यति । एवं जिनदत्तसूरीणां सप्त वराः योगिनीदत्ताः इति [illegible] ॥

ननु–श्राविका श्रावको वा यदा मुखवस्त्रिकोपरि वन्दनकं ददते तदा एकपट्टाया मुखवस्त्रिकाया उपरि तद् दानं घटामाटीकते ?, किंवा द्विपट्टाया उपरि ? उच्यते—एकपट्टायाः, न द्विपट्टायाः, यतो वन्दनकावसरे पूज्यपादयुग्मकल्पना मुखवस्त्रिकाया मध्यभागे कथिताऽस्ति । द्विपट्टायास्तस्या उपरि वन्दनकदाने मुखवस्त्रिकाया मध्यभागो न भवति किन्तु चतुर्थभागः, स तु विरुद्धो ग्रन्थेऽप्रतिपादनात्, तस्या मध्यभागे वन्दनकदानं तु श्रीअभयदेवसूरिकृतवन्दनकभाष्ये प्रोक्तमस्ति, तथाहि—

"तह वि छिन वामयजाणु नमिऊण तत्थ मुहपुत्तिं । रयहरणमज्झभागंमि ठावए पुज्जपायजुगं ॥ १ ॥

एव सुसावओ वि हु दुवालसावत्तवंदणं दिंतो । मुहपुत्तिमज्झभागंमि ठावए पुज्जपायजुगं ॥ २ ॥

॥ इत्येकपट्टमुखवस्त्रिकोपरि वन्दनकदानाधिकारः ॥ ९८ ॥

ननु–श्रीखरतरगच्छे पदस्थानां व्यवस्थाविधिः कोऽपि प्राक्तनोऽस्ति न वा ? उच्यते—अस्तीति । तथाहि–

श्रीयुगप्रधानाचार्यस्य गच्छाधिपतेः पाञ्चजन्यशङ्खवादनाविना प्रवेशः क्रियते, निउछन च क्रियते, मङ्गलकलशः सम्मुखमागच्छति [आनीयते], व्याख्याने कृते सति श्राविका गीत गायन्ति, इति सक्षेपेण श्रीयुगप्रधानाचार्यस्य प्रतिपत्तिः ॥ १ ॥

द्वितीयस्थानीय–सामान्याचार्यस्य नगरप्रवेशे चतुर्विधसघः सम्मुख आगच्छति, शङ्खो वाद्यते, श्राविकाश्च गीत

ननु–देववन्दनाऽनन्तरं श्रीआचार्यमिश्र–इत्यादि क्षमाश्रमणचतुष्टयादारभ्य क्षेत्रदेवतास्तुतिपूर्वकवन्दनद्वयदानेन नमोऽर्हत्सिद्धा इत्यादिपर्यन्त आन्तरणीनामकः छन्दनादोषः प्रतिपादितोऽस्ति, अतः पाक्षिकप्रतिक्रमणे क्षामणाकाले परस्पर आन्तरणीदोषो न गण्यमानोऽस्ति, तत् क्वाऽपि प्रतिपादितमस्ति न वा ? उच्यते–श्रीजिनपतिसूरिसामाचार्यां स्पष्ट तदक्षराणि सन्ति, तथाहि–"पक्खियपडिक्कमणे पुढोकय आलोयण मोत्तु परोप्पर एग मडलीए न छंदणा दोसो अओ मुहपत्ति पडिलेहिज्जइ" १ एव श्रीजिनप्रभसूरिकृतविधिप्रपायामपि, तथाहि–"पक्खियपडिक्कमणे पत्तेअखामणकुणताण पुढो कय आलोयण मोत्तुं नत्थि छंदणादोसो अओ चेव अम्ह सामाचारीए मुहपत्तिआ पत्तेअ खामणानन्तर पडिलेहिज्ज इत्ति २ एवं तरुणप्रभसूरिकृत–बालावबोधेऽपि ज्ञेयम् ३ ॥

॥ इति पाक्षिकप्रतिक्रमणे क्षामणाया न आन्तरीणानामकः छन्दना–दोषाधिकारः ॥ ६६ ॥

ननु–देवसिय वइक्कंत कियन्त काल कथ्यते ?, कियन्त काल च राइय वइक्कंत पठ्यते ? उच्यते—प्रादोषिके प्रतिक्रमणे रात्रिप्रथम प्रहर यावत् देवसिय कथ्यते, पूर्वाह्णे तु दिवसप्रथमप्रहर यावत् राइय कथ्यते, यदुक्त श्रीआवश्यकचूर्णौ (५१ पत्रे) तृतीयाध्ययने, तथाहि–"एवं देवसिओ वंदणग विहाणो भणिय । रत्तिमाइसुवि जेसु ठाणेसु दिवसग्गहण तत्थ राईगादी वि भाणियव्वा । पादोसिए जाव पोरसी न उग्घाडेइ ताव देवसिअ भण्णइ, पुव्वण्हे जाव पोरिसी न उग्घाडेइ ताव राइयअ" इत्यादि ॥ ६७ ॥

॥ इति देवसिअं राइयं पाठकालाधिकारः ॥ ६७ ॥

ननु–श्राविका श्रावको वा यदा मुखवस्त्रिकोपरि वन्दनकं ददते तदा एकपट्टाया मुखवस्त्रिकाया उपरि तत् दान घटामाटीकते ?, किंवा द्विपट्टाया उपरि ? उच्यते—एकपट्टायाः, न द्विपट्टायाः, यतो वन्दनकावसरे पूज्यपादयुग्मकल्पना मुखवस्त्रिकाया मध्यभागे कथिताऽस्ति । द्विपट्टायास्तस्या उपरि वन्दनकदाने मुखवस्त्रिकाया मध्यभागो न भवति किन्तु चतुर्थभागः, स तु विरुद्धो ग्रन्थेऽप्रतिपादनात्, तस्या मध्यभागे वन्दनकदान तु श्रीअभयदेवसूरिकृतवन्दनकभाष्ये प्रोक्तमस्ति, तथाहि—

"तह वि छिन्न वामयजाणु नमिऊण तत्थ मुहपुत्तिं । रयहरणमज्झभागंमि ठावए पुज्जपायजुगं ॥ १ ॥

एव सुसावओ वि हु दुवालसावत्तवंदण दिंतो । मुहपुत्तिमज्झभागंमि ठावए पुज्जपायजुग ॥ २ ॥

॥ इत्येकपट्टमुखवस्त्रिकोपरि वन्दनकदानाधिकार ॥ ९८ ॥

ननु–श्रीखरतरगच्छे पदस्थाना व्यवस्थाविधिः कोऽपि प्राक्तनोऽस्ति न वा ? उच्यते—अस्तीति । तथाहि–

श्रीयुगप्रधानाचार्यस्य गच्छाधिपतेः पाञ्चजन्यशङ्खवादनादिना प्रवेश क्रियते, निउछन च क्रियते, मङ्गलकलशः सम्मुखमागच्छति [आनीयते], व्याख्याने कृते सति श्राविका गीत गायन्ति, इति सक्षेपेण श्रीयुगप्रधानाचार्यस्य प्रतिपत्तिः ॥ १ ॥

द्वितीयस्थानीय–सामान्याचार्यस्य नगरप्रवेशे चतुर्विधसघः सम्मुख आगच्छति, शङ्खो वाद्यते, श्राविकाश्च गीत

अनुयोगपडिग्गहणत्थं करेमि काउस्सग्ग" इत्यादि भणित्वा कायोत्सर्गं क्रियते, लोगस्स उज्जोअगरे एको चिन्त्यते पार्यंते च लोगस्स १ कथ्यते, यदा उद्देशका अध्ययनानि च परिपूर्णानि भवन्ति, तदा वन्दनकद्वय दीयते, समाप्तौ प्रारम्भे च वन्दनकद्वय दीयते। इत्यनुयोगविधिः, उद्देशो वाचनासूत्रप्रदानमित्यर्थः १, समुद्देशो व्याख्याया अर्थप्रदानमिति २, अनुज्ञा सूत्रार्थयोः अन्यप्रदानं प्रति अनुमनन ३, मुखवस्त्रिका प्रतिलेख्य वन्दनकद्वय दीयते, पश्चात् क्षमाश्रमणदान-पूर्वमनुयोगं विसर्जः । अनुयोगविसर्जनार्थं काउस्सग्ग करेह। अनुयोगविसर्जनार्थं करेमि काउस्सग्गमित्यादि भणित्वा कयोत्सर्गे नमस्कार एकश्चिन्त्यते पार्यंतेऽपि एकः कथ्यते पश्चाद् विश्रामण्य कृत्वा मिथ्या दुष्कृत दीयते ॥ ७१ ॥

॥ इत्यनुयोगदानविसर्जनविधिरधिकारः ॥ ७० ॥

ननु–पाक्षिक–चातुर्मासिकप्रतिक्रमणे यथा भवनदेवतायाः कायोत्सर्गः स्तुतिश्च कथ्यते—तथा सांवत्सरिकप्रतिक्रमणेऽपि कथ्यते न वा? उच्यते पाक्षिक–चातुर्मासिक–सांवत्सरिकप्रतिक्रमणे भवनदेवता थुई अधिकी कहिजइ इति श्रीतरुणप्रभ-सूरिकृतबालावबोधवचनप्रामाण्यात् कथ्यते एव, यत्तु श्रीविधिप्रपाया श्रीजिनप्रभसूरिभि प्रोक्त "सावच्छरिए भवन-देवया काउस्सग्गो न कीरइ, न य थुई असज्झायकाउस्सग्गोवि न कीरइ" इति तत्परमार्थं तु त एव जाणन्ति। ननु श्रीतरुणप्रभसूरिवचनोक्तिसम्मति कुत्राऽप्यस्ति जीर्णग्रन्थे? उच्यते–हेतुगर्भे तथैव प्रतिपादनात्, तथाहि–श्रुतदेवतायाः प्रत्यहं स्मृत्या तु आराध्यत्वेन तद्दिने तत्कायोत्सर्गस्थाने भवनदेवताकायोत्सर्गः, क्षेत्रदेवतायाः प्रत्यह स्मृतौ भवनस्य

क्षेत्रान्तर्गतत्वात् भवनदेव्या अपि स्मृतिः कृतैव, तथापि पर्वदिने तस्या अपि बहुमानार्हत्वात् कायोत्सर्गः साक्षात् क्रियते, स्तवस्थाने अजितशान्तिस्तवं पाठ्यं। उक्तं च—

"एवं विहिणेव सव्वं, देवसिअं वंदणाइओ कुणइ। सिज्जसुरी उस्सग्गो, भेओ संतिथयपढणे य ॥ १ ॥"

इत्यादि पाक्षिकप्रतिक्रमणविधिः। चातुर्मासिक-सांवत्सरिकप्रतिक्रमणयोरपि क्रम एष एव, नवरं नाम्नि विशेषः, कायोत्सर्गे च चातुर्मासिकप्रतिक्रमणे चतुर्विंशतिस्तवविंशतिः चिन्तनं। सांवत्सरिकप्रतिक्रमणे च चत्वारिंशच्चतुर्विंशतिस्तवं, तदन्ते एको नमस्कारश्च चिन्त्यते। क्षामणकं च पाक्षिकचातुर्मासिकयोः पञ्चाना, सांवत्सरिके च सप्ताना, श्रीगुर्वादीना यदि द्वौ शेषौ तिष्ठतः॥ उक्तं च—

"एवं चिअ चउम्मासे, वरिसे अ जहक्कम विही नेओ। पक्खियचउमासवरिसे-सु नवरि नाममि नाणत्तं ॥ १ ॥

तह उस्सग्गो ज्जोया, बारस वीसा समं गलिगचत्ता। संबुद्धखामण ति-पण-सत्त साहूण जह सखं ॥ २ ॥"

इत्थमेव श्रीप्रवचनसारोद्धारवृत्तौ, तथाहि—

"पाक्षिकादिषु त्रिषु श्रुतदेवताकायोत्सर्गस्थाने भवनदेवताकायोत्सर्गः क्रियते" इत्यादि। एवं श्रीदेवेन्द्रसूरिविरचित षडावश्यकवन्दारुवृत्तावपि (८५ पत्रे) पाक्षिक-चातुर्मासिक-सांवत्सरिक-प्रतिक्रमणत्रयेऽपि भवनदेवताकायोत्सर्गः प्रतिपादितोऽस्ति, तथाहि-यथा पाक्षिकादीनि—

अनुयोगपडिग्गहणत्थं करेमि काउस्सग्गं" इत्यादि भणित्वा कायोत्सर्गं क्रियते, लोगस्स उज्जोअगरे एको [illegible] च लोगस्स १ कथ्यते, यदा उद्देशका अध्ययनानि च परिपूर्णानि भवन्ति, तदा वन्दनकद्वयं दीयते, [illegible] वन्दनकद्वयं दीयते। इत्यनुयोगविधिः, उद्देशो वाचनासूत्रप्रदानमित्यर्थं १, समुद्देशो [illegible] २, अनुज्ञा सूत्रार्थयोः अन्यप्रदानं प्रति अनुमनन ३, मुखवस्त्रिका प्रतिलेख्य वन्दनकद्वयं दीयते, पश्चात् [illegible] पूर्वमनुयोगं विसर्जः। अनुयोगविसर्जनार्थं काउस्सग्ग करेह। अनुयोगविसर्जनार्थं करेमि काउस्सग्गमित्यादि भणित्वा कयोत्सर्गे नमस्कार एकश्चिन्त्यते पार्यतेऽपि एकः कथ्यते पश्चाद् विश्रामणं कृत्वा शिष्या [illegible] दीयते ॥ ७० ॥

॥ इत्यनुयोगदानविसर्जनविधिरधिकारः ॥ ७० ॥

ननु–पाक्षिक–चातुर्मासिकप्रतिक्रमणे यथा भवनदेवतायाः कायोत्सर्गं स्तुतिश्च कथ्यते—तथा [illegible] कथ्यते न वा? उच्यते पाक्षिक–चातुर्मासिक–सांवत्सरिकप्रतिक्रमणे भवनदेवता सुइं अधिकी कहिजइ इति श्री[illegible]भ-सूरिकृतबालावबोधवचनमासाद्यात् कथ्यते एव, यत्तु श्रीविधिप्रपायां श्रीजिनप्रभसूरिभिः प्रोक्तं "पाक्खिएवि भवन-देवता काउस्सग्गो न कीरइ, न य थुई असज्झायकाउस्सग्गोवि न कीरइ" इति तत्परमार्थं तु त एव जानन्ति। ननु श्रीतरुणप्रभसूरिवचनोक्तिसम्मतिः कुत्राऽप्यस्ति जीर्णग्रन्थे? उच्यते–हेतुगर्भे तथैव प्रतिपादनात्, तथाहि–श्रुतदेवतायाः प्रत्यहं स्मृत्या तु आराध्यत्वेन तद्दिने तत्कायोत्सर्गस्थाने भवनदेवताकायोत्सर्गः, क्षेत्रदेवतायाः प्रत्यह स्मृतौ भवनस्य

क्षेत्रान्तर्गतत्वात् भवनदेव्या अपि स्मृतिः कृतैव, तथापि पर्वदिने तस्या अपि बहुमानार्हत्वात् कायोत्सर्गः साक्षात् क्रियते, स्तवस्थाने अजितशान्तिस्तव पाठश्च । उक्त च—

"एव विहिणेव सव्व, देवसिअ पडणाइतो कुणइ । सिज्झसुरी उस्सग्गो, भेओ संतिथयपढणे य ॥ १ ॥"

इत्यादि पाक्षिकप्रतिक्रमणविधिः । चातुर्मासिक–सावत्सरिकप्रतिक्रमणयोरपि क्रम एष एव, नवर नाम्नि विशेषः, कायोत्सर्गे च चातुर्मासिकप्रतिक्रमणे चतुर्विंशतिस्तवविंशतिः चिन्तन । सावत्सरिकप्रतिक्रमणे च चत्वारिंशच्चतुर्विंशतिस्तव , तदन्ते एको नमस्कारश्च चिन्त्यते । क्षामणक च पाक्षिकचातुर्मासिकयोः पञ्चानां, सावत्सरिके च सप्ताना, श्रीगुर्वादीना यदि द्वौ शेषौ तिष्ठतः ॥ उक्त च—

"एवं चिअ चउम्मासे, वरिसे अ जहक्कम विही नेओ । पक्खियचउमासवरिसे–सु नवरि नाममि नाणत्त ॥ १ ॥
तह उस्सग्गो ज्जोया, बारस वीसा समं गलिगचत्ता । संबुद्धखामण ति–पण–सत्त साहूण जह सख ॥ २ ॥"

इत्थमेव श्रीप्रवचनसारोद्धारवृत्तौ, तथाहि—

"पाक्षिकादिषु त्रिषु श्रुतदेवताकायोत्सर्गस्थाने भवनदेवताकायोत्सर्गः क्रियते" इत्यादि । एव श्रीदेवेन्द्रसूरिविरचित षडावश्यकवन्दारकवृत्तावपि (८५ पत्रे) पाक्षिक–चातुर्मासिक–सावत्सरिक–प्रतिक्रमणत्रयेऽपि भवनदेवताकायोत्सर्गः प्रतिपादितोऽस्ति, तथाहि–यथा पाक्षिकादीनि—

अनुयोगपडिग्गहणत्थ करेमि काउस्सग्गं" इत्यादि भणित्वा कायोत्सर्गं क्रियते, लोगस्स उज्जोअगरे एको चिन्त्यते पार्यते च लोगस्स १ कथ्यते, यदा उद्देशका अध्ययनानि च परिपूर्णानि भवन्ति, तदा वन्दनकद्वय दीयते, समासौ प्रारम्भे च वन्दनकद्वयं दीयते। इत्यनुयोगविधिः, उद्देशो वाचनासूत्रप्रदानमित्यर्थः १, समुद्देशो व्याख्याया अर्थप्रदानमिति २, अनुज्ञा सूत्रार्थयोः अन्यप्रदानं प्रति अनुमनन ३, मुखवस्त्रिका प्रतिलेख्य वन्दनकद्वय दीयते, पश्चात् क्षमाश्रमणदान-पूर्वमनुयोगं विसर्जः । अनुयोगविसर्जनार्थं काउस्सग्गं करेह। अनुयोगविसर्जनार्थं करेमि काउस्सग्गमित्यादि भणित्वा कयोत्सर्गो नमस्कार एकश्चिन्त्यते पार्यतेऽपि एकः कथ्यते पश्चाद् विश्रामण्यं कृत्वा मिथ्या दुष्कृत दीयते ॥ ७० ॥

॥ इत्यनुयोगदानविसर्जनविधिरधिकारः ॥ ७० ॥

ननु–पाक्षिक–चातुर्मासिकप्रतिक्रमणे यथा भवनदेवतायाः कायोत्सर्गः स्तुतिश्च कथ्यते—तथा सांवत्सरिकप्रतिक्रमणेऽपि कथ्यते न वा? उच्यते पाक्षिक–चातुर्मासिक–सांवत्सरिकप्रतिक्रमणे भवनदेवता थुई अधिकी कहिज्जइ इति श्रीतरुणप्रभ-सूरिकृतबालावबोधवचनप्रामाण्यात् कथ्यते एव, यत्तु श्रीविधिप्रपाया श्रीजिनप्रभसूरिभिः प्रोक्त "सांवच्छरिए भवन-देवता काउस्सग्गो न कीरइ, न य थुई असज्झायकाउस्सग्गोवि न कीरइ" इति तत्परमार्थं तु त एव जाणन्ति। ननु श्रीतरुणप्रभसूरिवचनोक्तिसम्मतिः कुत्राऽप्यस्ति जीर्णग्रन्थे? उच्यते–हेतुगर्भे तथैव प्रतिपादनात्, तथाहि–श्रुतदेवतायाः प्रत्यहं स्मृत्या तु आराध्यत्वेन तद्दिने-तत्कायोत्सर्गस्थाने भवनदेवताकायोत्सर्गः, क्षेत्रदेवतायाः प्रत्यह स्मृतौ भवनस्य

क्षेत्रान्तर्गतत्वात् भवनदेव्या अपि स्मृतिः कृतैव, तथापि पर्वदिने तस्या अपि बहुमानार्हत्वात् कायोत्सर्गः साक्षात् क्रियते, स्तवस्थाने अजितशान्तिस्तव पाठ्य । उक्त च—

"एष विहिणेय सर्व, देवसिअ वदणाइतो कुणइ । सिज्झसुरी उस्सग्गो, भेओ संतिथयपढणे य ॥ १ ॥"

इत्यादि पाक्षिकप्रतिक्रमणविधिः । चातुर्मासिक–सांवत्सरिकप्रतिक्रमणयोरपि क्रम एष एव, नवर नाम्नि विशेषः, कायोत्सर्गे च चातुर्मासिकप्रतिक्रमणे चतुर्विंशतिस्तवविंशतिः चिन्तन । सावत्सरिकप्रतिक्रमणे च चत्वारिंशच्चतुर्विंशतिस्तव, तदन्ते एको नमस्कारश्च चिन्त्यते । क्षामणक च पाक्षिकचातुर्मासिकयो पञ्चाना, सावत्सरिके च सप्ताना, श्रीगुर्वादीना यदि द्वौ शेषौ तिष्ठतः ॥ उक्त च—

"एव चिअ चउम्मासे, वरिसे अ जहक्कम विही नेओ । पक्खियचउमासवरिसे–सु नवरि नाममि नाणत्त ॥ १ ॥
तह उस्सग्गो ज्जोया, बारस वीसा समं गलिगचत्ता । संबुद्धखामण ति–पण–सत्त साहूण जह सख ॥ २ ॥"

इत्यमेव श्रीप्रवचनसारोद्धारवृत्तौ, तथाहि—

"पाक्षिकादिषु त्रिषु श्रुतदेवताकायोत्सर्गस्थाने भवनदेवताकायोत्सर्गः क्रियते" इत्यादि । एव श्रीदेवेन्द्रसूरिविरचित पडावश्यकवन्दारुवृत्तावपि (८५ पत्रे) पाक्षिक–चातुर्मासिक–सांवत्सरिक–प्रतिक्रमणत्रयेऽपि भवनदेवताकायोत्सर्गः प्रतिपादितोऽस्ति, तथाहि–तया पाक्षिकादीनि—

२५

अनुयोगपडिग्गहणत्थ करेमि काउस्सग्गं" इत्यादि भणित्वा कायोत्सर्गः क्रियते, लोगस्स उज्जोअगरे एको चिन्त्यते पार्यते च लोगस्स १ कथ्यते, यदा उद्देशका अध्ययनानि च परिपूर्णानि भवन्ति, तदा वन्दनकद्वय दीयते, समाप्तौ प्रारम्भे च वन्दनकद्वयं दीयते। इत्यनुयोगविधिः, उद्देशो वाचनासूत्रप्रदानमित्यर्थः १, समुद्देशो व्याख्याया अर्थप्रदानमिति २, अनुज्ञा सूत्रार्थयो' अन्यप्रदानं प्रति अनुमनन ३, मुखवस्त्रिका प्रतिलेख्य वन्दनकद्वय दीयते, पश्चात् क्षमाश्रमणदान-पूर्वमनुयोग विसर्जः । अनुयोगविसर्जनार्थं काउस्सग्गं करेह । अनुयोगविसर्जनार्थं करेमि काउस्सग्गमित्यादि भणित्वा कयोत्सर्गे नमस्कार एकश्चिन्त्यते पार्यतेऽपि एकः कथ्यते पश्चात् विश्रामण्य कृत्वा मिथ्या दुष्कृत दीयते ॥ ७० ॥

॥ इत्यनुयोगदानविसर्जनविधिरधिकारः ॥ ७० ॥

ननु-पाक्षिक-चातुर्मासिकप्रतिक्रमणे यथा भवनदेवतायाः कायोत्सर्गः स्तुतिश्च कथ्यते—तथा सांवत्सरिकप्रतिक्रमणेऽपि कथ्यते न वा ? उच्यते पाक्षिक-चातुर्मासिक-सांवत्सरिकप्रतिक्रमणे भवनदेवता थुई अधिकी कहिजइ इति श्रीतरुणप्रभ-सूरिकृतबालावबोधवचनप्रामाण्यात् कथ्यते एव, यत्तु श्रीविधिप्रपाया श्रीजिनप्रभसूरिभिः प्रोक्त "सावच्छरिए भवन-देवता काउस्सग्गो न कीरइ, न य थुई असज्झायकाउस्सग्गोवि न कीरइ" इति तत्परमार्थं तु त एव जाणन्ति । ननु श्रीतरुणप्रभसूरिवचनोक्तिसम्मतिः कुत्राऽप्यस्ति जीर्णग्रन्थे ? उच्यते-हेतुगर्भे तथैव प्रतिपादनात्, तथाहि-श्रुतदेवतायाः प्रत्यहं स्मृत्या तु आराध्यत्वेन तद्दिने तत्कायोत्सर्गस्थाने भवनदेवताकायोत्सर्गः, क्षेत्रदेवतायाः प्रत्यह स्मृतौ भवनस्य

पच्छिम छट्ठि चउद्दसि, सत्तमि पडिपुन्न वायवे कूणे। दसमी विइज्जा उत्तर, अट्ठमि अमावसाइ ईसाणे ॥ २ ॥ इइ गाह-क्कमेण जोगिणि च वामे पिट्ठिंद वा काउ, बुहसोमवारेसु चउमलाइ भावे सुक्कगुरुसु वि, पुस्स १ पुण्णवसु २ रेवइ ३ चित्ता ४ सवण ५ धनिट्ठा ६ मिअसिर ७ अस्सिणि ८ हत्थेसु ९ कित्तिआ १ विसाहा २ महा ३ भरणी ४ वज्जेसु। अन्नेसु वा रिक्खेसु ववसिअ सम्ममहिआ संतो लोअ कारिअ लोअगारवाहु विस्सामिअ। इरिअ पडिक्कमिअ सक्कथय भणिअ गुरु समीवमागस्स खमासमण दुगेण मुहपोत्तिं पडिलेहिअ, दुवालसावत्तवंदण दाउ, पढमखमासमणे भणइ इच्छाकारेण संदिसह लोअ पवेएमि, गुरू भणइ पवेह, बीए खमासमणे संदिसह किं भणामो, गुरू भणइ वंदित्ता पवेअह, तइएख० केसा मे पज्जुवासिआ तओ दुक्कर कय, अगिणी साहियसि गुरुणा वुत्ते, इच्छामो अणुसट्ठिंति भणइ, चउत्थे तुम्हाण पवेइअ संदिसह साहूण, पवेएमि पचमे नमुक्कार भणइ, छट्ठे तुम्हाण पवेइअं साहूण पवेइअ संदिसह काउस्सग्ग करेमि, सत्तमे केसेसु पज्जुवासिज्जमाणेसु सम्म ज न अहिआसिअ कुइअ कक्कराइअ छीअ जमाइअ तस्स उहडावणिअ करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थूससिएणमिच्चाइणा, सत्तावीसूस्सासं काउस्सग्ग करेइ, चउवीसत्थय भणित्ता जहारायणिय साहू वंदइ पाइअ विस्सामेइ। जो पुण सय चिय लोअ करेइ सो संदिसावण पवेयणाइ न करेइ ॥ ७३ ॥

॥ इति लोचकारापणविधिरधिकारः ॥ ७३ ॥

ननु–श्रावका अतिचारकायोत्सर्गे कथं काश्च अतिचारान् आलोचयन्ति ? उच्यते–श्रीतरुणप्रभसूरिकृतषडावश्यकबाला-

भारो कओ" इत्यादि कही करी तस्सुत्तरी कही, शक्तिसंभवइ सवह काउस्सग्ग कीजइ । एक श्रावक श्रीआचार्यमिश्र आगे आवी एक खमासमण देइ करी भणइ, इच्छाकारेण संदिसह भगवन् सुत्तं सदिसाहु ? गुरु संदिसावेह इसु भणियइ हुतइ, बीजुं खमासमण देई करी भगवन् सुत्त कड्डु ? इसुं भणइ, गुरु भणइ कढ इस्यु कहे, छतइ इच्छं इसु भणी करी उभयकड-हाथ जोडिकरि मुहे मुहपत्ती देइ तिण्ह नमुक्कार कही मधुरस्वर व्यक्ताक्षर सावधानचित्त सूत्रार्थ मनश्चिंतव तउ हुतउ पडिक्कमणासुत्त गुणइ, बीजा काउस्सग्गे वर्तमान सावधान थका सांभलइ । साधुसरसा पडिक्कमता हुता तिण्हइंसयसाठि पक्खियसूत्र सांभलइ शक्ति अभावे घइठा सांभलइ सूत्रं मति सवे काउस्सग्ग करेइ सपूर्णसूत्र भणियइ नमुक्कारेण पारिचा उभा थका तिण्ह नवकार कही बेसी करी इत्यादि ॥ ७२ ॥

॥ इति पाक्षिकसूत्रभणने श्रुतौ च पूर्वपाठक्रमाधिकारः ॥ ७२ ॥

ननु-लोचकारापणविधिः कस्मिन् ग्रन्थे निवेदितोऽस्ति ? उच्यते-श्रीविधिप्रपाया श्रीजिनप्रभसूरिभि समीचीनतया भणितोऽस्ति, तथाहि—

पज्जइएण लोओ कायव्वो अओ तव्विही भण्णइ, गुरुसमीवे खमासमण मुहपोत्तिं पडिलेहिअ, दुवालसावत्तवंदण दाउ पढमखमासमणेण इच्छाकारेण संदिसह भगवन् लोअ संदिसावेमि, बीए लोअ करेमि, तईए उच्चासण संदिसावेमि चउत्थए उच्चासणं ठामि, तओ लोअगारं खमासमणपुव्वं भणइ इच्छकार लोअ करेह, मत्थया रक्खधारिणो य इच्छाकार देइ तओ "पुव्वं परिवय नवमी, दसमी इक्कारसीइ अग्गीए । दाहिण पञ्चमी तेरसि, बारसि चउत्थीए नेरईए ॥ १ ॥

दसमी विइज्जा उत्तर, अट्ठमि अमावसाइ ईसाणे ॥ २ ॥ इइ गाह-
पच्छिम छट्ठि चउद्दसि, सत्तमि पडिपुन्न वायवे कूणे। क्रमेण जोगिणि व वामे पिट्ठि वा कात्त, बुहसोमवारेसु चउचलाइ भावे सुक्कगुरुसु वि, पुस्स १ पुणव्वसु २ रेवइ ३ चित्ता ४ सवण ५ धनिट्ठा ६ मिअसिर ७ अस्सिणि ८ हत्थेसु ९ किसिआ १ विसाहा २ महा ३ भरणी ४ वज्जेसु। अन्नेसु वा रिक्खेसु ठववसिअ सम्ममहिआ संतो लोअ कारिअ लोअगारवाहु विस्सामिअ। इरिअ पडिक्कमिअ सक्कथय भणिअ गुरु समीवमागस्स खमासमण दुगेण मुहपोत्तिं पडिलेहिअ, दुवालसावत्तवंदण दाउं, पढमखमासमणे भणइ इच्छाकारेण संदिसह लोअ पवेएमि, गुरु भणइ पवेह, वीए खमासमणे संदिसह किं भणामो, गुरु भणइ वंदित्ता पावेसह, तइएखं० केसा मे पज्जुवासिआ तओ दुक्कर कय, अगिणी साहियत्ति गुरुणा वुत्ते, इच्छामो अणुसट्ठुति भणइ, चतुत्थे तुम्हाण पवेइअ संदिसह साहूण, पवेएमि पचमे नमुक्कार भणइ, छट्ठे तुम्हाण पवेइअ साहूण पवेइअ संदिसह काउस्सग्ग करेमि, सत्तमे केसेसु पज्जुवासिज्जमाणेसु सम्म ज न अहिजासिअ कुइअ कक्कराइअ छीअ जभाइअ तस्स उहडावणिअ करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थूससिएणमिच्चाइणा, सत्तावीसूस्सासं काउस्सग्ग करेइ, चउवीसत्थय भणित्ता जहारायणिय साहू वदइ पाइअ विस्सामेइ। जो पुण सय चिय लोअ करेइ सो संदिसावण पवेयणाइ न करेइ ॥ ७१ ॥

॥ इति लोचकारापणविधिरधिकारः ॥ ७१ ॥

ननु–श्रावका अतिचारकायोत्सर्गे कथ काश्च अतिचारान् आलोचयन्ति ? उच्यते–श्रीतरुणप्रभसूरिकृतषडावश्यकबाला-

आरो कओ" इत्यादि कही करी तस्सुत्तरी कही, शक्तिसंभवइ सवह काउस्सग्ग कीजइ । एक श्रावक श्रीआचार्यमिश्र आगे आवी एक खमासमण देइ करी भणइ, इच्छाकारेण संदिसह भगवन् सुत्त संदिसाहु ? गुरु संदिसावेह इसु भणियइ हुवइ, बीजुं खमासमण देई करी भगवन् सुत्त कहु ? इसुं भणइ, गुरु भणइ कढ इस्यु कह्यो, छतइ इच्छं इसु भणी करी उभउयभक्त-हाथ जोडिकरि मुहे मुहपत्ती देइ तिण्ह नमुक्कार कही मधुरस्वर व्यक्ताक्षर सावधानचित्त सूत्रार्थं मनश्चिंतय तउ हुवउ पडिकमणासुत्त गुणइ, बीजा काउस्सग्गे वर्धमान सावधान थका सांभलइ । साधुसरसा पडिकमता हुता तिण्हसंयसाठि पक्खियसूत्र सांभलइ शक्ति अभावे बइठा सांभलइ सूत्रं प्रति सवे काउस्सग्ग करेइ संपूर्णसूत्र भणियइ नमुक्कारेण पारिया उभा थका तिण्ह नवकार कही बेसी करी इत्यादि ॥ ७२ ॥

॥ इति पाक्षिकसूत्रभणने श्रुतौ च पूर्वपाठक्रमाधिकारः ॥ ७२ ॥

ननु-लोचकरापणविधिः कस्मिन् ग्रन्थे निवेदितोऽस्ति ? उच्यते-श्रीविधिप्रपाया श्रीजिनप्रभसूरिभिः समीचीनतया भणितोऽस्ति, तथाहि—

पज्जुसणे लोओ कायव्वो अओ तविही भण्णइ, गुरुसमीवे खमासमण मुहपोत्तिं पडिलेहिअ, दुवालसावत्तवंदण दाउ पढमखमासमणेण इच्छाकारेण संदिसह भगवन् लोअ संदिसावेमि, बीए लोअ करेमि, तईए उच्चासण संदिसावेमि चउत्थए उच्चासणं ठामि, तओ लोअगारं खमासमणपुव्वं भणइ इच्छकार लोअं करेह, मत्थया रक्खधारिणो य इच्छाकार देइ तओ "पुव्वं पक्खिय नवमी, दसमी इक्कारसीइ अग्गीए । दाहिण पंचमी तेरसि, बारसि चउत्थीए नेरईए ॥ १ ॥

पच्छिम छट्ठि चउद्दसि, सत्तमि पडिपुंन वायवे कूणे। दसमी विइज्जा उत्तर, अट्ठमि अमावसाइ ईसाणे ॥ २ ॥ इइ गाहक्कमेण जोगिणि च वामे पिट्ठिए वा काय, बुहसोमवारेसु चंदबलाइ भावे सुक्कगुरुसु वि, पुस्स १ पुण्णवसु २ रेयइ ३ चित्ता ४ सवण ५ धनिट्ठा ६ मिअसिर ७ अस्सिणि ८ हत्थेसु ९ कित्तिआ १ विसाहा २ महा ३ भरणी ४ वज्जेसु। अन्नेसु वा रिक्खेसु उववसिअ सम्ममहिआ संतो लोअ कारिअ लोअगारयाहु विस्सामिअ। इरिअ पडिक्कमिअ सक्कथय भणिअ गुरु समीवमागस्स खमासमण दुगेण मुहपोत्तिं पडिलेहिअ, दुवालसावत्तवंदण दाउ, पढमखमासमणे भणइ इच्छाकारेण संदिसह लोअ पवेएमि, गुरु भणइ पवेह, वीए खमासमणे संदिसह किं भणामो, गुरू भणइ वंदित्ता पावेअह, तइएख० केसा मे पज्जुवासिआ तओ वुक्कर कय, अगिणी साहियत्ति गुरुणा वुत्ते, इच्छामो अणुसट्ठिंति भणइ, चतुत्थे तुम्हाण पवेइअ संदिसह साहूण, पवेएमि पंचमे नमुक्कार भणइ, छट्ठे तुम्हाण पवेइअ साहूण पवेइअ संदिसह काउस्सग करेमि, सत्तमे केसेसु पज्जुवासिज्जमाणेसु सम्म ज न अहिआसिअ कुइअ कक्कराइअ छीअ जभाइअ तस्स उहडावणिअ करेमि काउस्सग अन्नत्थूससिएणमिच्चाइणा, सत्तावीसूस्सासं काउस्सग करेइ, चउवीसत्थय भणित्ता जहारायणिय साहू वंदइ पाइअ विस्सामेइ। जो पुण सय चिय लोअ करेइ सो संदिसावण पवेयणाइ न करेइ ॥ ७९ ॥

॥ इति लोचकारापणविधिरधिकारः ॥ ७९ ॥

ननु—श्रावका अतिचारकायोत्सर्गे कथं कांश्च अतिचारान् आलोचयन्ति ? उच्यते—श्रीतरुणप्रभसूरिकृतषडावश्यकमाला-

स्तोकामपि मंडलीं छपते तदा किं तद्दोषनिवारणकर्तव्यं ? अत्रोच्यते—अत्रार्थे विधिप्रपाया श्रीजिनप्रभसूरिवाक्य प्रमाण, तथाहि तत्पाठः—"जया य मज्जारिआ छिंदइ तया जा–सा कालीकम्बली । अक्खलहिकक्कडियारि मडलमाहि सचरी हय पडिहय मज्जारित्ति ॥ १ ॥ चउत्थपय वारतिग भणिआ खुद्दोपद्दवउड्डावणत्थ काउस्सग्गो कायव्वो, सिरिसतिनाह नमोक्कारो घोसेअव्वो इति प्रतिक्रमणविधिः ।" छुटकपत्रे तु वार्तिकरूपेऽयमनुक्रमः । देवसिकादिप्रतिक्रमणपञ्चकेऽपि यदि मार्जारीमण्डलीं स्तोकामपि छपते तदा अपशकुनादि कायोत्सर्गत्रय पूर्ववत्प्रतिक्रमणकरणानन्तर क्रियते, ततो "जा सा कालीति" गाथा वारत्रयं पठ्यते, वामपादेन वारत्रयं भूमिराहन्यते च ॥ ७७ ॥

॥ इति मार्जारीमण्डलीप्रवेसनदोपनिवारणविधिरधिकारः ॥ ७७ ॥

ननु–सामायिकग्रहणक्रियाया श्राद्धाना कति क्षमाश्रमणानि ? उच्यते—तत्रार्थे श्रीविधिप्रपापाठः प्रमाण, तथाहि—अगीकय सामाइयपण य उभयसंझ सामाइय गहेअव, तस्स एसो विहि–पोसहसालाए साहू समीवे गिहे वा एगदेसे वा, खमासमणदुगपुव्व सामाइय मुहपोत्तिं पडिलेहिअ २ पढमखमासमणेण सामाइय सदिस्सावेसि ३ बीअखमासमणेण सामाइय ठाएमित्ति ४ भणिऊण पुणो वदिअ ५ अद्धोनयगात्र हुतो नमुक्कारतिगपुव्व करेमि भते सामाइअ इच्चाइ दडग वोसिरामि पज्जत वारतिग कड्ढिअ, खमासमणेण इरियावहियं पडिक्कमिअ ६ खमासमणदुगेण वासासु कट्ठासण उवयरे पाउछण ८, खमासमणदुगेणं सज्झाय च संदिस्साविअ सज्झायं करेमि १० पुणो वदिअ नवकारदुगं मणइ ११ तओ सीअकाले पगुरण संदिसावेइ पगुरणं पडिग्गहेमि १२ सज्झायाणतर कट्ठासण संदिसावेइ त्ति । एवं तरुणप्रभसूरिकृतषडावश्यकबालाव

घोषेऽपि, तथाहि–इच्छामीत्यादि भणी एक खमासमणु देइ १ सामायिक मुहपत्तिं पडिलेहमि इसु कही ऊभा थइ इच्छामि खमासमणो भणी खमासमणु देइ करी २ उतकूथको वेदिकामा हि बाहुकरी मुहुपत्ति पडिलेही एकखमा समणे सामाइय सदिसावेमि ३ इसु भणी बीअखमासमणे सामाइअ ठापमि ४ इसो भणी तइअ खमासमण देइ करी ५ अर्धावनतगात्र हुवो तिण्ह नमस्कार कही तिणवार करेमि भते इसु सामायिकसूत्र तिण वार कहइ गुरुवचनतणी अनुभापणा करतउ हुंतो सामाइकारोपण विधि नदी सिद्धान्तमाहे तिण्ह नमस्कारभणनपूर्वक सामायिक दंडकरहइ भणनइ तो पाछइ इरियावही पडिक्कमीयइ। आवश्यकचूर्णीवृत्तिमांही इम भणियइ छइ यथा–"करेमि भते सामाइअ सा० जाव साहू पज्जुवासेमि त्ति काऊण पच्छा इरियावहिय पडिक्कमइ" तओ पाछइ विस्तरतो द्वादशावर्तवंदनक देइ करी प्रत्याख्यान कीजइ, सखेपइ, तओ खमासमण वदणापूर्वक प्रत्याख्यान कीजइ तो पाछइ एक खमासमण सज्झा० ७ बीअ खमासमण सज्झायकरुं कही ८ सज्झाय, तइअ खमासमण दानपूर्वक ९ आठ नमस्कार कही पाछइ एक खमासमणे कट्ठासण सदिसावेमि १० कही बीअ खमासमणे कट्ठासण पडिगाहेमि कही ११ तइअ खमासमणे पांगुरण सदिसावेमि १२ कही, चउत्थ खमासमणे पांगुरण पडिगाहेमि १३ कही करी बइसइ, अत्राऽय विशेषः—प्रभाते सामायिकग्रहणे त्रयोदशक्षमाश्रमणानि, ,अथ च सायन्तनसामायिकग्रहणे यदि मुखवस्त्रिका प्रतिलेख्य वन्दनकानि दत्त्वा प्रत्याख्यान करोति तदा चतुर्दश, अन्यथा तु त्रयोदशैव ॥ ७८ ॥

॥ इति सामायिकग्रहणे त्रयोदश-क्षमाश्रमणाधिकारः ॥ ७८ ॥

ननु—कदा कियत्काल अस्वाध्यायो भवति ? उच्यते—सूक्ष्म रज आकाशात् यावत्पतति तावद् अस्वाध्याय ।१। तथा धूमरी यावत्काल पतति तावद् अस्वाध्यायः । यस्माद्धूमरीपाते सकलक्षेत्र अप्कायमय स्यात्, तदा साधु कम्बलप्रावृतसर्वाङ्गोपाङ्गोऽपवरकमध्ये स्थितो भवति, मुखमपि नोद्घाटयति, किमप्यङ्गोपाङ्गं न इतस्ततो विक्षिपति, एवं जीवदयापालनाय धूमर्यां निपतितायां समस्तक्रिया कार्या ।२। तथा आकाशे गन्धर्वनगर देवताकृत दृश्यते, तथा उल्कापातो भवति, तथा कणकाः पतन्ति, तत्रोल्कापाते रेखा भवति उद्द्योतश्च, यत्र च रेखा उद्द्योतश्च न भवति, स कणक । तथा दिग्दाहो दशदिशा उज्ज्वलन्त्यो दृश्यते, चतुर्दिशा रक्तत्व वह्निसदृश स्याद्, एतेषु सत्सु विद्युत्पाते च अस्वाध्यायनिवर्ति तेषु प्रहरमेकमस्वाध्यायः । तत्र वर्षतौ सप्त कणकाः, शीतकाले पञ्च ५ उष्णकाले त्रय ३ कणका-पतति तदाऽस्वाध्यायः प्रहरमेकं यावत्, तदा अस्वाध्यायो निर्वृते—तेषु प्रहरद्वय यावत् अस्वाध्याय ।४। अकाल गर्जिते प्रहरद्वयं यावदस्वाध्यायः ।५। अकालविद्युज्झात्कारे प्रहरमेक यावदस्वाध्याय ।६। आषाढकार्तिकचातुर्मासिकप्रतिक्रमणानन्तर अध्ययन प्रतिपदं यावत्, द्वितीयाया शुध्यते, श्रीस्थानाङ्गे चतुर्थस्थाने द्वितीयोद्देशकेऽप्युक्तं (२१३ पत्रे)—"नो कप्पइ निग्गथाण वा निग्गंथीण वा चउहिं महापडिवएहिं सज्झाय करित्तए त जहा—आसाढपाडिवए १ इंदमहपाडिवए २ कत्तियपाडिवए ३ सुगिम्हपाडिवए" ४ इति ।६। आश्विनशुक्लपञ्चमीमध्याह्नादारभ्य कार्तिककृष्णप्रतिपदं यावत् अस्वाध्यायकाल उपरि शुध्यते। ७। चैत्रशुक्लपञ्चमीमध्याह्नादारभ्य वैशाखकृष्णप्रतिपद यावदस्वाध्यायः, परं अत्राऽयं विशेषः—चैत्रशुक्लैकादशीत आरभ्य मध्ये पूर्णिमाया यद् दिनत्रय 'अचित्तरज

उड्डावणियं करेमि काउस्सग्ग' लोगस्स ४ चिंत्यते, यदि एकादशीदिने न स्मर्यते तदा द्वादशीत्रयोदशीदिनेषु कायोत्सर्गः क्रियते, यदि द्वादशीदिने न स्मर्यते, तदा त्रयोदशी चतुर्दशी पूर्णिमाया यावत् कायोत्सर्गः क्रियते, यदि त्रयोदशीदिनेऽपि नो स्मर्यते, तदाऽऽगामिनं चैत्र यावद्धूलिर्नोड्डीयते तावदस्वाध्यायः । अयमर्थश्च एव—शुक्लैकादशीदिनात् "सचित्तरज उड्डावणत्थं करेमि काउस्सग्ग" इत्यादिना दिनत्रयं यावत् कायोत्सर्गं क्रियते । विस्मृते तु पूर्णिमा यावदन्यथा वर्षमप्यस्वाध्यायः । ८ । द्वयो राज्ञोः कलहे म्लेच्छादिभये उपाश्रयासन्नवासिस्त्रीपुरुषयुद्धे होलक्या भस्मोड्डयने चैतानि यावन्त काल वर्तन्ते तावदस्वाध्याय । ९ । राज्ञो मृत्युकाले जाते यावत् नवीनो राजा पट्टे नोपविशति तावदस्वाध्याय , स्थापितेऽपि राज्ञि यावदसमञ्जस न निवर्तते तावदस्वाध्याय' । १० । नगरप्रधानपुरुषे मृते प्रहराष्टक यावदस्वाध्यायः । ११ । उपाश्रयात् सप्तगृहमध्ये कोऽपि प्रसिद्धपुरुषो म्रियते तदाऽहोरात्र यावदस्वाध्याय' । १२ । तथाऽनाथसामान्यपुरुषमरणे कलेवरोत्थानानन्तर शुध्यते, एव तिर्यङ्मरणेऽपि । १३ । अथाऽऽचार्य १ महर्द्धिक २ कृतानशनमहातपस्वि ३ बहुस्वजनवल्लभ ४ मरणे दिनत्रयमस्वाध्याय एकदिनमुपवास , अन्येषा मरणे द्वयमपि न । १४ । तिर्यग् रुधिरे पतिते अण्डके स्फुटिते, गवि च प्रसूतायां, जरायुपतने शतहस्तमध्ये प्रहरत्रय यावदस्वाध्याय । अण्डके पतिते तिलकाचार्यकृतावश्यकवृत्तौ अयं विशेष —वसतेरन्तर्बहिर्वा अण्डक भिन्नमुज्झित वा यतिकल्पोपरि तदा हस्तपटे परतः त्यक्त्वा कल्पं क्षालयन्ति, तत' शुद्ध, भूमौ तु भिन्नेन भूमिं खनन्ति यतस्ता खनित्वाऽपि छर्दितेन शुध्यति, केवल पौरुषीत्रय परिह्रियते । १५ । मनुष्यरुधिरे पतिते उद्धृतानन्तरमपि अहोरात्रमस्वाध्यायः, तथा बहुवृष्टिपतनेन भूमिः सिक्ता जायते

तर्हि स्वल्पवेलयाऽपि शुध्यति, घटिमात्ररात्रिशेषे मनुष्यसम्बन्धि रुधिर पतितमुत्सृत च ततः सूर्योद्गमे शुद्धि- । १६ । तथा मनुष्यास्थि निपतिते द्वादशवर्षाणि अस्वाध्यायः । १७ । तथा दन्तो वा दंष्ट्रा वा पतिता बह्वायासेन विलोकिताऽपि चेन्न लब्धा, "तदा तत उड्डावणिअं करेमि काउस्सग्ग" इत्युक्त्वा कायोत्सर्गः क्रियते, तत्र नमस्कार एकश्चिन्त्यते पारायित्वा कथ्यते च, तदनन्तर अस्वाध्यायो न भवति । १८ । तथा यदि मार्जारी जीवित मूषक गृहीत्वा याति तदा नाऽस्वाध्यायः, अथ विनाश्य नयति तदाऽहोरात्रमस्वाध्यायः । १९ । तिर्यगवयवाः तद्रुधिर च षष्टिहस्तमध्येनाऽस्वाध्याय कुर्वन्ति । २० । मनुष्यावयवरुधिरपाते हस्तशतमध्येऽस्वाध्यायो, यद्यन्तरे उभयदिग्गामी शकटस्य मार्गो न भवति । २१ । तथा स्त्रिया मासि मासि ऋतुधर्मः समायाति, तदनन्तर दिवसत्रयं यावदस्वाध्यायः । तथा कस्याश्चित्प्रदररोगोदयाद्दिवसत्रिकस्योपर्यपि रुधिरं पतति तदा 'असज्झाय उड्डावणिय' कायोत्सर्ग कृते पश्चात् शुध्यति । २२ । तथा आर्द्रानक्षत्रादारभ्य स्वातिनक्षत्रपर्यन्तगर्जित विद्युत्पातश्च न स्वाध्याय उपघ्नन्ति । तारकादर्शनमपि यावत् स्वातिनक्षत्रे आदित्यस्य गमन भवति, शेषकाले पुनरवश्य तारकादिकदर्शने शुध्यते, अथ केषांचित् साधूनां तथाविधनक्षत्रपरिज्ञान न भवति, तत आषाढचातुर्मासिकादारभ्य कार्तिकचातुर्मासिकं यावद् विद्युद्गर्जितेष्वपि नाऽस्वाध्यायः, उल्का तु सदाऽपि स्वाध्यायमुपहन्ति प्रहर यावत् । २३ । तथा सशब्दो महाशब्दरहितो भूकम्पः तयोर्जातयोः प्रहराष्टक यावदस्वाध्यायः । २४ । तथा प्रदीपने लग्ने यावन्नोपशमः तावदस्वाध्यायः । २५ । तथा वर्षाकाल बुद्बुदवृष्टिः अहोरात्रोपरि यावद्वर्षति तावदस्वाध्याय । २६ । विधिप्रपायां २५ पत्रे एवं पाठः—

"संपयसुट्ठी असज्झाओ बारससु वि मासेसु बुब्बुअवरिसे अहोरत्ताओ जइ वि जइ वरिसइ तो असज्झाओ, बुब्बुअवज्जवरिसे दोण्हमहोरत्ताणमुवरि जाव पडइ ताव असज्झाओ"त्ति बुद्बुदवर्जं वर्षं वर्षति द्वाभ्यामहोरात्राभ्याम् उपरिष्टाद् यावद्वर्षति तावदस्वाध्यायः । २७ । फुसारमात्रवर्षणे सप्ताहोरात्रोपरि यावद्वर्षति तावदस्वाध्याय । २८ । सूर्येऽनुद्गते, मध्याह्ने २ सन्ध्यायां ३ अर्धरात्रे च ४ सन्ध्याचतुष्टयेऽप्यस्वाध्याय । २९ । पुत्रे जाते शतहस्तमध्ये दिनसप्तक यावदस्वाध्यायः, पुत्र्यां जाताया तु दिनाष्टकमस्वाध्यायः, स्त्रियारक्तोत्कटत्वात् । ३० । शुक्लपक्षे प्रतिपदाया द्वितीयाया तृतीयाया वा आरभ्य दिनत्रय यावत् यूपकनामाऽस्वाध्यायो भवति, रात्रिप्रथमप्रहरं यावत् तत्र प्रादोषिककालो न शुध्यति, एवं पाक्षिकदिनेऽपि, श्रीतिलकाचार्यकृत–आवश्यकवृत्तौ यूपकनिरूपणमेव, तथाहि–"जूअओ सुक्कदिण तिन्नि" सन्ध्याप्रभा चन्द्रप्रभा च युगपद् भवतः स युगपद्भावः, शुक्लपक्षे हि दिनत्रय सन्ध्याप्रभाया चन्द्रप्रभावृतत्वात् सन्ध्याछेदो न ज्ञायते, तत्र शुक्लप्रतिपदा–द्वितीया–तृतीयासु कालवेलानवबोधात्, प्रादोपिककालाऽग्रहणे सूत्रपौरुपि अकरण, तथा "केसिं च होइ मोहाओ जूवओ ताव होइ आइन्नो । जेसिं तु अणाइन्ना, तेसिं किर पोरिसी तिन्नि ॥ २ ॥" व्याख्या–केपाञ्चिद्भवति अमोहात्–अमूढत्वात् यूपक–चुर्दिन पुष्योपरागमुदये अस्ति एष, आदित्य–आताम्रः कृष्ण श्यासः शकटोद्धिसस्थितो वा जगतामुत्पातरूपः तावत् तत्र पौरुषीं अनध्यायत्वेन आचीर्णं । उत्तरार्धं स्पष्ट नवरं "पोरिसि तिन्नि" पौरुपीत्रय अनध्यायः । ३१ ।

अथ चन्द्रग्रहणास्वाध्यायो लिख्यते–चन्द्रग्रहणस्योत्कृष्टतो द्वादश प्रहरान् अस्वाध्यायः, कथमित्याह–कदापि काले उत्पा-

तर्हि स्वल्पवेलयाऽपि शुध्यति, घटिमात्ररात्रिशेषे मनुष्यसम्बन्धि रुधिर पतितमुद्धृत च ततः सूर्योद्गमे शुद्धि । १६ । तथा मनुष्यास्थि निपतिते द्वादशवर्षाणि अस्वाध्यायः । १७ । तथा दन्तो वा दंष्ट्रा वा पतिता नष्टायासेन विलोकिताऽपि चेन्न लब्धा, "तदा दंत उहडावणिअं करेमि काउस्सग्ग" इत्युक्त्वा कायोत्सर्गः क्रियते, तत्र नमस्कार एकश्चिन्त्यते पारयित्वा कथ्यते च, तदनन्तर अस्वाध्यायो न भवति । १८ । तथा यदि मार्जारी जीवितं मूषक गृहीत्वा याति तदा नाऽस्वाध्यायः, अथ विनाश्य नयति तदाऽहोरात्रमस्वाध्यायः । १९ । तिर्यगवयवाः तद्रुधिर च षष्टिहस्तमध्येनाऽस्वाध्याय कुर्वन्ति । २० । मनुष्यावयवरुधिरपाते हस्तशतमध्येऽस्वाध्यायो, यदन्तरे उभयदिग्गामी शकटस्य मार्गो न भवति । २१ । तथा स्त्रिया मासि मासि ऋतुधर्मः समायाति, तदनन्तर दिवसत्रय यावदस्वाध्यायः । तथा कस्याश्चित्प्रदररोगोदयाद्दिवसत्रिकस्योपर्यपि रुधिरं पतति तदा 'असज्झाय उहडावणिय' कायोत्सर्गे कृते पश्चात् शुध्यति । २२ । तथा आर्द्रानक्षत्रादारभ्य स्वातिनक्षत्रपर्यन्तगर्जित विद्युत्पातश्च न स्वाध्याय उपघ्नन्ति । तारकादर्शनमपि यावत् स्वातिनक्षत्रे आदित्यस्य गमन भवति, शेषकाले पुनरवश्य तारकादिकदर्शने शुध्यते, अथ केषाचित् साधूनां तथाविधनक्षत्रपरिज्ञान न भवति, तत आषाढचातुर्मासिकादारभ्य कार्तिकचातुर्मासिकं यावद् विद्युद्गर्जितेष्वपि नाऽस्वाध्यायः, उल्का तु सदाऽपि स्वाध्यायमुपहन्ति प्रहर यावत् । २३ । तथा सशब्दो घड़हड़शब्दरहितो भूकम्पः तयोर्जातयो प्रहराष्टक यावदस्वाध्यायः । २४ । तथा प्रदीपने उभे यावन्नोपशमः तावदस्वाध्यायः । २५ । तथा वर्षाकाल बुद्बुदवृष्टि अहोरात्रोपरि यावद्वर्षति तावदस्वाध्याय । २६ । विधिप्रपायां २५ पत्रे एष पाठः—

"संपयवुट्ठी असज्झाओ बारससु वि मासेसु बुब्बुअवरिसे अहोरत्ताओ उड्ढंपि जइ वरिसइ तो असज्झाओ, बुब्बुअ वज्जवरिसे दोण्हमहोरत्ताणमुवरि जाव पडइ ताव असज्झाओ"त्ति बुद्बुदवर्जं वर्षं वर्षति द्वाभ्यामहोरात्राभ्याम् उपरिष्टाद् यावद्वर्षति तावदस्वाध्यायः । २७ । फुसारमात्रवर्षणे सप्ताहोरात्रोपरि यावद्वर्षति तावदस्वाध्याय २८ । सूर्येऽनुद्गते, मध्याह्ने २ सन्ध्यायां ३ अर्धरात्रे च ४ सन्ध्याचतुष्टयेऽप्यस्वाध्यायः । २९ । पुत्रे जाते शतहस्तमध्ये दिनसप्तक यावद-स्वाध्याय, पुत्र्या जाताया तु दिनाष्टकमस्वाध्यायः, स्त्रियारक्तोत्कटत्वात् । ३० । शुक्लपक्षे प्रतिपदाया द्वितीयाया तृतीयाया वा आरभ्य दिनत्रय यावत् यूपकनामाऽस्वाध्यायो भवति, रात्रिप्रथमप्रहर यावत् तत्र प्रादोषिककालो न शुध्यति, एव पाक्षिकदिनेऽपि, श्रीतिलकाचार्यकृत–आवश्यकवृत्तौ यूपकनिरूपणमेव, तथाहि–"जूअओ सुक्कदिण तिन्नि" सन्ध्याप्रभा चन्द्रप्रभा च युगपद् भवतः स युगपद्भावः, शुक्लपक्षे हि दिनत्रय सन्ध्याप्रभाया चन्द्रप्रभावृतत्वात् सन्ध्या-छेदो न ज्ञायते, तत्र शुक्लप्रतिपदा–द्वितीया–तृतीयासु कालवेलानवबोधात्, प्रादोषिककालाऽग्रहणे सूत्रपौरुषि अकरण, तथा "केसिं च होइ मोहाओ जूअओ ताव होइ आइन्नो । जेसिं तु अणाइन्ना, तेसिं किर पोरिसी तिन्नि ॥ २ ॥" व्याख्या–केषाञ्चिद्भवति अमोहात्–अमूढत्वात् यूपक–दुर्दिन पुष्योपरागमुदये अस्ति एव, आदित्य–आताम्र कृष्णः श्यामः शक-टोद्धिसस्थितो वा जगतामुत्पातरूपः तावत् तत्र पौरुषीं अनध्यायत्वेन आचीर्णः । उत्तरार्धं स्पष्ट नवर "पोरिसि तिन्नि" पौरुषीत्रय अनध्यायः । ३१ ।

अथ चन्द्रग्रहणास्वाध्यायो लिख्यते–चन्द्रग्रहणस्योत्कृष्टतो द्वादश प्रहरान् अस्वाध्यायः, कथमित्याह–कदापि काले उत्पा-

स्तवभणन, ततो दशनमस्कार–कथनानन्तर श्रीशत्रुञ्जयपुण्डरीकाराधनार्थं "करेमि काउस्सग्ग"मित्यादि विधिपूर्वं कायोत्सर्गस्तत्र दशलोगस्स चिन्त्यते पारिते लो० १ दशगाथाप्रमाण स्तोत्र च, एवमेका पूजा जाता १ इत्थमेव द्वितीया २ तृतीया ३ चतुर्थी ४ पञ्चमी च ५ पूजा कार्या, विशेषतस्तु तत्र अयम्–द्वितीया पूजा जाता २ तस्या द्वितीयपूजाया विंशतिनमस्कारा विंशतिपुष्पमाला विंशतिवस्तुढौकन च कार्य, पूर्वविधिना कायोत्सर्गकरण लोगस्स २० चिन्तन पारिते च एक १ लोग० विंशति २० गाथास्तोत्र चेति द्वितीया पूजा जाता २। तृतीयपूजाया त्रिंशत् नमस्कारा ३० त्रिंशत् ३० पुष्पाणि ३० त्रिंशद्वस्तु ढौकन त्रिंशल्लोगस्स ३० कायोत्सर्गः पूर्ववत्त्रिंशद्गाथास्तोत्र ३० चेति तृतीयपूजा जाता ३। चतुर्थपूजाया चत्वारिंशत् नमस्काराः, चत्वारिंशत् पुष्पाणि, चत्वारिंशद् वस्तुढौकन कायोत्सर्गे चत्वारिंशत् लोगस्स चिन्तन पारिते एकलोगस्स चत्वारिंशद्गाथास्तोत्र इति चतुर्थीपूजा जाता ४। पञ्चमपूजाया पञ्चाशन्नमस्काराः ५० पञ्चाशत्पुष्पाणि ५० पञ्चाशद्वस्तु ५० ढौकन पञ्चाशल्लोगस्स ५० कायोत्सर्गं पारिते एक १ लोगस्स पञ्चाशद्गाथास्तोत्र ५० चेति पञ्चमीपूजा जाता ५। पूजायां पूजाया प्रान्ते काऽपि देशैः कैरपि दशाविंशतिकलयोऽपि कार्यन्ते तथा पूजा पञ्चकानन्तर एकैकपूजानन्तरं वा यथाशक्ति यथासम्भवं महाध्वजारोपः संघाधिपेन कार्यः, तत्राऽऽरात्रिक १ मङ्गलप्रदीप २ गुरुभक्ति ३ संघभक्ति ४ साधर्मिकवात्सल्य ५ संघपतितिलक ६ कर्तव्यानि कार्याणि, प्रान्ते धर्मोपदेशो शत्रुञ्जयमाहात्म्यवर्णन ॥

॥ इति चैत्रपूर्णिमादेववन्दनविधिरधिकारः ॥ ८० ॥

ननु–गुरूणा स्तूपस्य प्रतिमायाश्च प्रतिष्ठा क्रियते, तत्र को विधिः प्रतिपादितोऽस्ति ? उच्यते—अत्र गुरुपरम्परागत-

पत्रलिखितविधि प्रमाण, स चाऽय शुमदिने शुभनक्षत्रे शुभवेलाया च गुरुणा स्तूप–प्रतिमाप्रतिष्ठा क्रियते, तत्र रात्रिजागरणमहोत्सवपूर्वक प्रातः संघसमक्ष सपुत्रकलत्रा पवित्रा कृतस्नानाः परिहितधौतवस्त्राः चत्वार श्रावकाः समागच्छन्ति, तत्करेषु चतुरङ्गुलाः श्राविकाः सधवाः कङ्कणं बध्नन्ति, तन्भाले च कुङ्कुमतिलक कुर्वन्ति, अथ ते चत्वारोऽपि पुरुषाः उत्कृष्टतोऽष्टोत्तरशततीर्थजलौषधीभृतान् तदभावे एकविंशतितिलकतीर्थजलौषधीभृतान् कलशान् लात्वा ऊर्ध्वीभूय तिष्ठन्ति, ततो दशदिक्पालस्थापना क्रियते, सा चैवं कार्या, ओं ह्रीँ इन्द्राय सायुधाय सवाहनाय सपरिजनाय अस्मिन् जम्बुद्वीपे दक्षिणभरतार्द्धक्षेत्रे अमुकनगरे, अमुकजिनचैत्ये इह प्रतिष्ठाया आगच्छ आगच्छ बलिं गृहाण बलिं गृहाण उदय अभ्युदय च कुरु कुरु स्वाहा १ एव अग्नये २ यमाय ३ नैर्ऋताय ४ वरुणाय ५ वायवे ६ कुवेराय ७ ईशानाय ८ ब्रह्मणे ९ नागाय १० इति । एव ९ नव ग्रहस्थापनाऽपि कार्या, सर्वत्रोपरि बलिबाकुललपनश्रीमोचन वासक्षेपश्च कार्यः, ततो दशदिक्षु बलिबाकुलोच्छालन कार्य, ततस्तेषु पुरुषा पादुके पञ्चामृतेन स्नपयन्ति, तत स्तूपपूजा कार्या, ततः सधवा स्त्री कुङ्कुमहस्तौ ददाति, ततः कर्पूरकस्तूरीमिश्रितकेसरचन्दनाभ्यां पादुकापूजा कार्या, ततो "वर्धमानविद्यया" वासक्षेपः कार्यः, ततस्तदग्रे अक्षतपुञ्जत्रयं कार्य, तदुपरि पूगीफलत्रय मोच्य, चतुर्दिक्षु नालिकेरचतुष्टय भङ्क्त्वा सर्वेषा देय, ततो धूपः कार्यः, तत सधवाः स्त्रियो गायन्ति, वादित्राणि वाद्यन्ते, दान च दीयते, गुरुभक्तिश्च क्रियते साधर्मिकवात्सल्य च विस्तरेण कार्य, ततो गीतगानवाद्यवादनपुरस्सर श्रीसघेन सम धर्मशालाया आगत्य श्रीगुरुपार्श्वे प्रति-

स्तवभणन, ततो दशनमस्कार–कथनानन्तर श्रीशत्रुञ्जयपुण्डरीकाराधनार्थे "करेमि काउस्सग्ग"मित्यादि विधिपूर्वं कायोत्सर्गस्तत्र दशलोगस्स चिन्त्यते पारिते लो० १ दशगाथाप्रमाण स्तोत्र च, एवमेका पूजा जाता १ इत्थमेव द्वितीया २ तृतीया ३ चतुर्थी ४ पञ्चमी च ५ पूजा कार्या, विशेषतस्तु तत्र अयम्–द्वितीया पूजा जाता २ तस्या द्वितीयपूजाया विंशतिनमस्कारा विंशतिपुष्पमाला विंशतिवस्तुढौकन च कार्यं, पूर्वविधिना कायोत्सर्गकरण लोगस्स २० चिन्तन पारिते च एक १ लोग० विंशति २० गाथास्तोत्र चेति द्वितीया पूजा जाता २। तृतीयपूजाया त्रिंशत् नमस्कारा ३० त्रिंशत् ३० पुष्पाणि ३० त्रिंशद्वस्तु ढौकन त्रिंशल्लोगस्स ३० कायोत्सर्गः पूर्ववत्रिंशद्गाथास्तोत्र ३० चेति तृतीयपूजा जाता ३। चतुर्थपूजाया चत्वारिंशत् नमस्कारा, चत्वारिंशत् पुष्पाणि, चत्वारिंशद् वस्तुढौकन कायोत्सर्गे चत्वारिंशत् लोगस्स चिन्तन पारिते एकलोगस्स चत्वारिंशद्गाथास्तोत्र इति चतुर्थीपूजा जाता ४। पञ्चमपूजाया पञ्चाशन्नमस्काराः ५० पञ्चाशत्पुष्पाणि ५० पञ्चाशद्वस्तु ५० ढौकन पञ्चाशल्लोगस्स ५० कायोत्सर्गः पारिते एक १ लोगस्स पञ्चाशद्गाथास्तोत्र ५० चेति पञ्चमीपूजा जाता ५। पूजायां पूजाया प्रान्ते काऽपि देशैः कैरपि दशादिजुतकृतयोऽपि कार्यन्ते तथा पूजा पञ्चकानन्तर एकैकपूजानन्तरं वा यथाशक्ति यथासंभव महाध्वजारोपः संघाधिपेन कार्यः, तत्राऽऽरात्रिक १ मङ्गलप्रदीप २ गुरुभक्ति ३ संघभक्ति ४ साधर्मिकवात्सल्य ५ संघपतितिलक ६ कर्तव्यानि कार्याणि, प्रान्ते धर्मोपदेशे शत्रुञ्जयमाहात्म्यवर्णन ॥

॥ इति चैत्रपूर्णिमादेववन्दनविधिरधिकारः ॥ ८० ॥

ननु–गुरूणां स्तूपस्य प्रतिमायाश्च प्रतिष्ठा क्रियते, तत्र को विधिः प्रतिपादितोऽस्ति ? उच्यते—अत्र गुरुपरम्परागत-

भक्तैर्जिनप्रीतये
कुव्यसनैर्नामेरधो यद्धृतम् । स्पृष्टं दुष्टजनैर्घनैरभिहत यत् दूषित कीटकै-स्त्याज्य तत् कुसुम दल फलमथो
॥ १२ ॥ नैक पुष्पं द्विधा कुर्या-न्न छिन्द्यात् कलिकामपि । चम्पको दलभेदेन, यतिहत्यासम भवेत् ॥ १३ ॥ गन्ध-
धूपाक्षतैः स्रग्भिः, प्रदीपैर्बलिवारिभिः । प्रधानैश्च फलै पूजा, विधेया श्रीजिनेशितुः ॥ १४ ॥ शान्तौ श्वेतं जये श्यामं, भद्रे
रक्तं भये हरित् । पीत धान्यादिके लाभे, पञ्चवर्ण तु सिद्धये ॥ १५ ॥ खण्डिते सन्धिते छिन्ने, रक्ते रौद्रे च वाससि ।
दान पूजा तथा होमः, स्वाध्यायो निष्फलं भवेत् ॥ १६ ॥ वर्जयेदर्हतः पृष्ठ-मग्रत शिवसूर्ययोः । पार्श्वतो ब्रह्म-
विष्णोश्च, चण्डी सर्वत्र वर्जयेत् ॥ १७ ॥ गणं नाडीं तथा राशिं, तारां राशिं शमेय च । योनिवर्गं रिपुलभ्ये, प्रति-
माया विलोकयेत् ॥ १८ ॥

॥ इति प्रतिमाऽधिकारः ॥

अतीताब्दशत यच्च, यच्च स्थापितमुत्तमैः । तद्व्यगमपि पूज्य स्याद्, बिम्ब तन्निष्फल नहि ॥ १ ॥ आरभ्यैकाङ्गुलाद्-
द्वय, यावदेकादशाङ्गुलम् । गृहेषु बिम्ब तत्पूज्य, प्रासादार्हं तदूर्ध्वकम् ॥ २ ॥ एक गुणे भवेत् श्रेष्ठ, द्व्यङ्गुल धननाश-
नम् । त्र्यङ्गुलेन भवेत् सिद्धि-र्वर्जयेच्चतुरङ्गुलम् ॥ ३ ॥ पञ्चाङ्गुल भवेद्वित्त-मुद्वेग तु षडङ्गुलम् । सप्ताङ्गुलेन गोवृद्धि-स्त्य-
जेदष्टाङ्गुल सदा ॥ ४ ॥ नवाङ्गुल तु पुत्राय, द्रव्यहानिर्दशाङ्गुलम् । एकादशाङ्गुल बिम्ब, सर्वकामार्थसिद्धिदम् ॥ ५ ॥
ऊर्ध्वदृग् द्रव्यनाशाय, तिर्यग्दृग् भोगदा जये । श्रेयस्करी समदृष्टिः, कुलनाशे त्वधोमुखी ॥ ६ ॥ पद्मासनसमासीनो,
नासाग्रन्यस्तलोचनः । मौनी वस्त्रावृतास्योऽय, पूजा कुर्याजिनेशितु ॥ ७ ॥ स्नान १ विलेपन २ विभूषण ३ पुष्प ४

लाभोपदेशं च श्रुत्वा सर्वेऽपि स्वस्थानं व्रजन्ति, ततो दिनदशक यावत् स्तूपपूजा कार्या नैवेद्यो मुच्यते, भोगश्चोत्क्षिप्यते, प्रतिष्ठाकारकश्च दशदिनानि एकाशनं करोति, शीलव्रत च पालयति ॥ ८१ ॥

॥ इति गुरुस्तूपप्रतिष्ठाविधिरधिकारः ॥ ८१ ॥

ननु–श्रावकाणां गृहे देवतासरः कुत्र स्थाप्यते?, केन विधिना श्रावकाः पूजा कुर्वन्ति? उच्यते–तत्राऽर्थे श्रीउमास्वातिवाचककृत पूजाप्रकरणमेव प्रमाण, तद्यदे—"स्नानं पूर्वोन्मुखीभूय, प्रतीच्या दन्तशोधनम्। उदीच्या श्वेतवस्त्राणि, पूजा पूर्वोत्तरामुखी ॥ १ ॥ गृहे प्रविशतां वाम–भागे स्वल्पविवर्जिते। देवतावसर कुर्यात्, सार्धहस्तोर्ध्वभूमिके ॥ २ ॥ नीचैर्भूमिस्थितिं कुर्याद्, देवतावसर यदि। नीचैर्नीचैस्ततोऽवश्य, सन्तत्याऽपि सम भवेत् ॥ ३ ॥ तयाऽर्चकः स्यात्पूर्वस्या, उत्तरस्या च संमुखम्। दक्षिणस्या दिशो वर्जी, विदिग्वर्जक एव च ॥ ४ ॥ पश्चिमाभिमुखः कुर्यात्, पूजा च जिनमूर्तये। तदा स्यात् सन्ततिच्छेदो, दक्षिणस्यामसन्ततिः ॥ ५ ॥ आग्नेय्या तु यदा पूजा, धनहानिर्दिने दिने। वायव्यां सन्ततिर्नैव नैर्ऋत्या च कुलक्षयः ॥ ६ ॥ ऐशान्या संमुखः किंचित्, सन्ततिर्नैव जायते। अङ्घ्रिजानुकरांसेषु, मूर्ध्नि पूजा यथाक्रमम् ॥ ७ ॥ भाले कण्ठे हृदम्भोजे, उदरे तिलक तथा। [तथा] नवभिस्तिलकैः पूजा, करणीया निरन्तरम् ॥ ८ ॥ श्रीचन्दन विना नैव, पूजा कुर्यात् कदाचन। प्रभाते प्रथम वास–पूजा कार्या विचक्षणैः ॥ ९ ॥ मध्याह्ने कुसुमैः पूजा, सन्ध्यायां दीपधूपयुक्। वामाङ्गे धूपदाहः स्या–दग्रपूजाऽत्र संमुखी ॥ १० ॥ अर्हतो दक्षिणे भागे, दीपस्य च निवेशनम्। ध्यान तु दक्षिणे भागे, चैत्यानां वन्दन तथा ॥ ११ ॥ हस्तात्प्रस्खलितं क्षितौ निपतितं लग्न क्वचित् पादयो–र्यन्मूर्ध्वोर्ध्वगत धृतं

कुव्यसनैर्नामैरघो यच्चतम् । स्पृष्टं दुष्टजनैर्घनैरभिहत यत् दूषित कीटकै–स्त्याज्य तत् कुसुम दल फलमथो भक्तैर्जिनप्रीतये ॥ १२ ॥ नैक पुष्प द्विधा कुर्या–न्न छिन्द्यात् कलिकामपि । चम्पको दलभेदेन, यतिहत्यासम भवेत् ॥ १३ ॥ गन्ध-धूपाक्षतैः स्रग्भिः, प्रदीपैर्बलवारिभिः । प्रधानैश्च फलै पूजा, विधेया श्रीजिनेशितुः ॥ १४ ॥ शान्तौ श्वेत जये श्यामं, भद्रे रक्त भये हरित् । पीत धान्यादिके लाभे, पञ्चवर्णं तु सिद्धये ॥ १५ ॥ खण्डिते सन्धिते छिन्ने, रक्ते रौद्रे च वाससि । दान पूजा तथा होमः, स्वाध्यायो निष्फलं भवेत् ॥ १६ ॥ वर्जयेदर्हतः पृष्ठ–मग्रत शिवसूर्ययोः । पार्श्वतो ब्रह्म-विष्णोश्च, स्रण्डी सर्वत्र वर्जयेत् ॥ १७ ॥ गण नाडीं तथा राशिं, तारा राशिं शमेव च । योनिवर्गं रिपुलभ्ये, प्रति-माया विलोकयेत् ॥ १८ ॥

॥ इति प्रतिमाऽधिकारः ॥

अतीताब्दशत यच्च, यच्च स्थापितमुत्तमैः । तद्व्यङ्गमपि पूज्य स्याद्, बिम्ब तन्निष्फल नहि ॥ १ ॥ आरभ्यैकाङ्गुलाद्-व्यङ्, यावदेकादशाङ्गुलम् । गृहेषु बिम्ब तत्पूज्य, प्रासादार्हं तदूर्ध्वकम् ॥ २ ॥ एक गुणे भवेत् श्रेष्ठ, द्व्यङ्गुल धननाश-नम् । त्र्यङ्गुलेन भवेत् सिद्धि–र्वर्जयेच्चतुरङ्गुलम् ॥ ३ ॥ पञ्चाङ्गुल भवेद्वित्त–मुद्वेग तु षडङ्गुलम् । सप्ताङ्गुलेन गोवृद्धि–स्त्य-जेदष्टाङ्गुल सदा ॥ ४ ॥ नवाङ्गुल तु पुत्राय, द्रव्यहानिर्दशाङ्गुलम् । एकादशाङ्गुल बिम्ब, सर्वकामार्थसिद्धिदम् ॥ ५ ॥ ऊर्ध्वदृग् द्रव्यनाशाय, तिर्यग्दृग् भोगदा जये । श्रेयस्करी समदृष्टिः, कुलनाशे त्वधोमुखी ॥ ६ ॥ पद्मासनसमासीनो, नासाग्रन्यस्तलोचनः । मौनी वस्त्रावृतास्योऽय, पूजा कुर्याज्जिनेशितुः ॥ ७ ॥ स्नान १ विलेपन २ विभूषण ३ पुष्प ४

घास ५, धूप ६ प्रदीप ७ फल ८ तन्दुल ९ पत्र १० पूगैः ११ । नैवेद्य १२ वारि १३ वसनै १४ चमरा १५ तपत्र, १६ वादित्र १७ गीत १८ नटन १९ स्तुति २० कोशवृद्धया २१ ॥ ८ ॥ इत्येकविंशतिविधा जिनराजपूजा, ख्याता सुरासुरगणैश्च कृता सदैव । खण्डीकृता कुमतिभि कलिकालयोगात्, यद्यत् प्रिय तदिह भाववशेन योज्यम् ॥ ९ ॥"

॥ इति श्रावकाणा देवतावसरस्थापनापूजाविधिरधिकार ॥ ८२ ॥

ननु—कल्पत्रेपोच्चारणं किमर्थं प्रतिपादितमस्ति ?, कुत्र च तद्विधिः ? उच्यते—कल्पत्रेपस्य आसेवनाशिक्षारूपत्वात् उक्त तद्विधान यदुक्त—

"सा पुण दुविहा सिक्खा, गहणे आसेवणे य नायव्वा । गहणे सुत्ताहिज्जण, आसेवण कप्पतिप्पाई ॥ १ ॥ इति" पुनरपि 'कयकप्पतिप्पकरिय'त्ति वचन च ततः सति शास्त्रोक्ते कल्पत्रेपविधौ श्रीजिनप्रभसूरिविनिर्मितविधिप्रपोक्तानुक्रमेण कर्तव्यतापाठो लिख्यते, तथाहि—"जोगा य कप्पतिप्प विणा न वहिज्जंति, कयकप्पतिप्पकरिय त्ति वयणाओ अओ संपय कप्पतिप्पविहि भण्णइ, तत्थ—चउसाढ—कत्तियचाउलपाडिवयाणतर पसत्थदिणे चउवाइअरिक्खे गुरुसोमवारे सुनिमित्तोवलद्धेहिं सव्वसवत्थवेढिअगिहत्थभायणेणं कप्पवाणिय माणित्ता जोइणीओ पिट्ठव वामओ वा काउ मुहहत्थपाय उल्ले काऊण अहारायणियाए छम्मासिअ कप्पो उत्तारिज्जइ, पविस्समाणस्स आसदसिआइय कय आउत्तजलेण पढम चउरो तिप्पाउ मुहे घिप्पति तओ पाएसु इत्थ इत्थ विण्णासो सपदाया नेवओ छम्मासिअकप्पे परदिआउ चेव तिप्पाउ घेप्पति इयरकप्पे दसिआ पुण चलकोप्परेहिं परदिआउ वा, तहा छम्मासिअ कप्पुत्तारणे उद्धट्ठिअस्स उद्धट्ठिओ तिप्पाउ दिज्जा,

उवविट्ठस्स उवविट्ठो सामन्न कप्पे नत्थि नियमो तओ वसहीभत्तुवगरणं च नाणोवगरणवज्ज सव्वपि ते पिज्जइ नयर मडलिट्ठाण गोमयलेवेकए ति पिज्जइ, कप्पमज्झे वा वरिअ पत्तभव मल्लग उद्धरणी पच्छाइ पमज्जणिआ तलिया लोहरत्थाइ अलेण कप्पिओ तिप्पिजइ, एव कप्पे उत्तारिए वसहिं सोहितु छडकेसाइ परिठ्ठविअ इरिअं पडिक्कमिय पढमं गुरुणा सज्झाए उक्खिविए मुहपोत्तिं पडिलेहिअ दुवालसावत्तवंदणं दाउं खमासमणेण भणंति, सज्झायं उक्खिवामो बीअ खमासमणेण सज्झाय उक्खिवणत्थं काउस्सग्गं करेमि तओ अन्नत्थूससीएणमिच्चाइ पढिअ नवकारं चउवीसत्थयं वा चिंचिंतिअ मुहेण तं भणिअ काउस्सग्गातिगं कुणंति, पढमं असज्झाइअ अणाउत्तउहडावणिअ, बीअं खुद्दोवद्दवउहडावणिअ, तइयं सक्काइवेयावच्चगरआराहणत्थं तिसु वि चउरुज्जोअ चिंतणं उज्जोअ भणणं च तओ खमासमणदुगेण सज्झायं संदिसावेमि सज्झायं करेमि इति भणिअ जाणुठिएहिं पंचमंगलपुव्वं धम्मो मंगलाइअमज्झयणतिअं सज्झाओ कीरइत्ति सज्झाय उक्खिवणविही ॥ ८१ ॥

॥ इति कल्पत्रेपोत्तारणविधिरधिकारः ॥ ८२ ॥

ननु–श्रीबृहत्खरतरगच्छे कोऽनुक्रमः प्रतिक्रमणविधे ?, कुत्र च सविधिः प्रतिपादितोऽस्ति ? उच्यते–अत्रानुक्रमः कोऽपि श्रीविधिप्रपा १ श्रीतरुणप्रभसूरिकृत–षडावश्यकबालावबोध २ श्रीजिनवल्लभसूरिकृत–सामाचारी ३ श्रीयोगशास्त्रवृत्तीयप्रकाशवृत्ति ४ श्रीप्रतिक्रमणहेतुगर्भ ५ प्रमुखग्रन्थानुसारेणाऽपि च स्वगच्छीयपरम्परातो ज्ञेयः, तत्र प्रथमं साधुर्गोचरीं प्रतिक्रम्य श्रावको वा सामायिकं लात्वा, गुर्वादेशेन 'जयति हुयणनमस्कार' कथयित्वा सर्वे समं "जयमहायसेत्यादि"

१० पूगीः ११ । नैवेद्य १२ धारि १३ वसनै १४ श्रमरा १५ तपत्र, १६
वास ५, धूप ६ प्रदीप ७ फल ८ तन्दुल ९ वस्त्र १० पूगीः ११ । नैवेद्य १२ धारि १३ वसनै १४ श्रमरा १५ तपत्र, १६
यावित्र १७ गीत १८ नटन १९ स्तुति २० कोषवृद्ध्या २१ ॥ ८ ॥ इत्येकविंशतिविधा जिनराजपूजा, ख्याता सुरासुर-
गणेश्च कृता सदैव । खण्डीकृता कुमतिभिः कलिकालयोगात्, यद्यत् प्रिय तदिह भाववशेन योज्यम् ॥ ९ ॥"

॥ इति श्रावकाणां देवतावसरस्थापनापूजाविधिरधिकारः ॥ ८२ ॥

ननु—कल्पत्रेपोत्तारण किमर्थं प्रतिपादितमस्ति ?, कुत्र च तद्विधिः ? उच्यते—कल्पत्रेपस्य आसेवनाशिक्षारूपत्वात् उक्त तद्विधान यदुक्त—

"सा पुण दुविहा सिक्खा, गहणे आसेवणे य नायव्वा । गहणे सुत्ताहिज्जण, आसेवण कप्पतिप्पाई ॥ १ ॥ इति"
पुनरपि 'कयकप्पतिप्पकरिय'त्ति वचन च ततः सति शास्त्रोक्ते कल्पत्रेपविधौ श्रीजिनप्रभसूरिविनिर्मितविधिप्रपोक्तानु-
क्रमेण कर्तव्यतापाठो लिख्यते, तथाहि—"जोगा य कप्पतिप्प विणा न वहिज्जति, कयकप्पतिप्पकरिय त्ति वयणाओ
अओ सपय कप्पतिप्पविहि भण्णइ, तत्थ—वरिसाह—कत्तियचउलपाडिवयाणंतर पसत्थदिणे चउवाइअरिक्खे गुरुसोमवारे
सुनिमित्तोवलचेहिं सदसवत्थवेढिअगिहत्थभायणेणं कप्पवाणिय माणित्ता जोइणीओ पिट्ठउ वामउ वा काउ मुहहत्थपाय
त्तले काऊण अहारायणियाए छम्मासिअ कप्पो उत्तारिज्जइ, पविस्समाणस्स आसंदसिआइय कय आवत्तजलेण पढम चउरो
तिप्पाउ मुहे खिप्पंति तओ पाएसु इत्थ हत्थ विण्णासो सपदाया नेतव्वो छम्मासिअकप्पे परदिसाउ चेव तिप्पाउ घेप्पति
इयरकप्पे दसिआ पुत्त चलकोप्परेहिं परदिसाउ वा, तहा छम्मासिअ कप्पुत्तारणे उवट्ठिअस्स चउट्ठिओ तिप्पाउ दिज्जा,

क्षमणेन श्रीआचार्यमिश्र १ द्वि० श्रीउपाध्यायमिश्र २ तृती० भट्टारकवर्तमान अमुकसूरि ३ चतुर्थ० सर्वसाधुवन्दना ४ पश्चात् भून्यस्तमस्तको मुखवस्त्रिकां मुखे दत्त्वा करद्वयं योजयित्वा "सव्वस्सवि देवसिअ" इत्यादि पठति, परं इच्छाकारेण संदिसहेति पदं न पठति, इदं च सकलातिचारबीजकभूतं अन्यत्राऽपि च ग्रन्थादौ बीजकस्य दर्शनात् 'जय जंतु कप्पपायवे' इत्यादाविव, अत्राऽवसरे श्राद्धस्तु साधुरिव पूर्ववत् क्षमाश्रमणचतुष्टयेन श्रीआचार्यादीन् वन्दित्वा इच्छकारि समस्तश्रावका वांदु इति भणति, श्रीहेतुगर्भे इत्थमेव भणनात्। अत्राऽऽह शिष्यः, ननु–प्रतिक्रमणप्रारम्भे प्रथमं कथं श्रीआचार्यादि वन्दनं विहितं ? उच्यते–प्रधानादि स्थानीयानां श्रीआचार्यादीनां बहुमाननेन स्वसमीहितसिद्धिर्भवतीति हेतोः यदुक्तं श्रीहेतुगर्भे लोकेऽपि हि–राज्ञः प्रधानादीनां च बहुमाननादिना स्वसमीहितकार्यसिद्धिर्भवति । अत्र राज स्थानीयः तीर्थङ्कराः प्रधानादिस्थानीयाः श्रीआचार्यादय इति, तत उत्थाय द्रव्यतो वपुषा भावतश्च शुद्धपरिणामेन चारित्राचारविशुद्ध्यर्थं "करेमि भंते सामाइयं" इत्यादि सूत्रं पठित्वा प्रलम्बितभुज कूर्परधृतनाभ्यधोवर्ति जानूर्ध्वचतुरङ्गुलस्थापितकटिपट्टः "संजय खलिणे य वायस कविट्ठेत्यादि" १९ दोषरहितं कायोत्सर्गं कुर्यात्। यदुक्तं हेतुगर्भे—सामाइअपुव्वमिच्छामि काउस्सग्गमिच्चाइ सुत्तं भणिअ पलंबिअभुअ कुप्परधरिअ परिहणओ ॥ १ ॥ इत्यस्मिन् कायोत्सर्गे च प्रातस्तनप्रतिलेखनायाः प्रभृति दिवसातिचारान् चिन्तयति, मनसा प्रधारयेच्च "सयणासणण्णपाणे" त्यादिगाथा अचिन्तयत। श्राद्धस्तु आजुका चउपहर दिवसमांहि जिके जीव विराध्या हुवइ" इत्यादि अतिचारान् श्रीतरुणप्रभसूरिलिखितान् चिन्तयति। तदनागमने गच्छप्रवृत्त्या अष्टौ नमस्काराश्चिन्तयति, एतदतिचारचिन्तनं मनसा संकथनं च श्रीगुरुसमक्षमालोचनार्थं

गाथा पठति, ततः शक्रस्तव जावंति चेइआइंति गाथाद्विकवर्जं कथयित्वा देवान् वन्दते, अन्यगच्छे तु जयति सुयणस्थाने नमस्कारा एव कथ्यन्ते, श्रीखरतरगच्छे तु नवाङ्गीवृत्तिकारकस्तम्भनकपार्श्वनाथप्रकटक–श्रीअभयदेवसूरिस्वगच्छीयत्वेन तत्कृतेस्तु तेषां सातिशयत्वाच्च सुतरां प्रतिक्रमणप्रारम्भे आदेयता, अत्र च आवश्यकप्रारम्भे साधुः श्रावकश्चादौ देव-गुरुवन्दनं विदधे, यतः सर्वमप्यनुष्ठानं श्रीदेवगुरुवन्दनविनयबहुमानादिभक्तिपूर्वकं सफलं भवतीत्याह च—

"विणया हीणा विज्जा, दींति फलं इह परे अ लोगंमि । न फलंति विणयहीणा, सस्साणिव तो अहीणाणि ॥ १ ॥ भत्तीइ जिनवराणं, खिज्जंति पुव्वसंचिअं कम्मं । आयरिय नमुक्कारेण विज्जमंता य सिज्झंति ॥ २ ॥" अत एवं देववन्दने द्वादशाधिकारा ज्ञेयाः । यदुक्तं श्रीचैत्यवन्दनकभाष्ये (४ पत्रे)—"पढमहिगारे वंदे भावजिणे १ बीअए य दव्वजिणे २ इगचेइअ ठवणजिणे तइय ३ चउत्थंमि नामजिणे ४ ॥ १ ॥ तिहुअणठवणजिणे पुण, पंचमए ५ विहरमाणजिण छट्ठे ६ सत्तमए सुअनाणं ७ अट्ठमए सव्वसिद्धथुई ८ ॥ २ ॥ तित्थाहिववीरथुई नवमे ९ दसमेअ उज्जयंतथुई १० । अट्ठावय इगदिसि ११, सुदिट्ठि–सुरसमरणा चरमे ॥ १२ ॥ ३ ॥ अथाऽधिकारप्रथमपदानि द्वादश यथा—

"नमु १ जे अइ २ अरिह ३ लोगे ४ सव्व ५ पुक्ख ६ तम ७ सिद्ध ८ जो देवा ९ उज्जिं १० चत्ता ११ वेआवच्चग १२ अहिगार पढमपया ॥ १ इति ततो वंदित्तु चेइआइं, दाउ चउराइए खमासमणो । भूनिहिअसिरो सयला–इ आरभिच्चुक्कडं देइ ॥ १ ॥" इति श्रीजिनवल्लभसूरिवचनात् चतुरादिक्षमाश्रमणैः श्रीगुरु वन्दते, इति हेतुगर्भसम्मत्या च क्षमाश्रमणचतु-ष्टयेन प्रतिक्रमणं स्थापयन्ति, क्षमाश्रमणचतुष्टयदानानुक्रमश्च श्रीतरुणप्रभसूरिकृतबालावबोधे एव तथाहि–प्रथमक्षमा-

इम मुहणंतगपडिलेहणाइ कमसो विचिंतिज्जा ॥ २ ॥ हासो १ रई अ २ अरई ३, भय ४ सोग ५ दुगंछाय ६ वज्जिज्जा । भुअजुअल पेहंतो, सीसो सुपसत्थलेसतिग ९ ॥ ३ ॥ गारवतिग च वयणे १२, उरिसल्लतिग १५ कसायचउपिट्ठे (सवे) १९ । पयजुगिछजीववहं २५, तणुपेहाए विजाणमिण ॥ ४ ॥ जइ वि पडिलेहणाए, हेऊ जिअरक्खण जिणाणाय । तहवि इम मणमक्कडनिज तणत्थ मुणी चिंति ॥ ५ ॥" इत्यत्र सामायिके "साविआ पुण पिट्ठि ४ सिर ७ हियय १० वज्ज पनरस कुणइ" इति विधिप्रपाया श्रीजिनप्रभसूरिवचनात् श्राविका देहस्य पञ्चदशैव प्रतिलेखना करोति, तदनु वन्दनके दद्यात् वन्दनक च द्वात्रिंशद्दोषरहितं पञ्चविंशत्यावश्यकविशुद्ध च विधेय, एतद् वन्दनक च कायोत्सर्गातिचारालोचनार्थं एव विधिना वन्दन प्रदाय, सम्यगवनताङ्ग पूर्वं कायोत्सर्गे स्वमनोवधारितान् दैवसिकातिचारान् इच्छाकारेण "सदिसह भगवन् देवसिअ आलोएमि" इत्यादि सूत्र चारित्रविशुद्धिहेतुक उच्चारयन् श्रीगुरुसमक्षमालोचयेत्, आह च—श्रीजिनवल्लभसूरिभिः तथैव उक्तत्वात् ॥

"अह सम्ममवणयंगो करजुअविहिधरिअपोत्तिरयहरणो । परिचिंतिय अइआरे, जहक्कम गुरुपुरो विअडे ॥ १४ ॥"

ततः तरुणप्रभसूरिवचनात् 'ठाणेकमणे' त्यादि कथयति साधुः, पौषधमध्ये श्रावकोऽप्येव दैवसिकातिचारालोचनानन्तर मनोवचनकायसकलातिचारसंग्राहक "सव्वस्सवि देवसिए" त्यादि पठेत् इच्छाकारेण सदिसह इत्यनेन अन्तरालोचितातिचार प्रायश्चित्तं च मार्गयेत् गुरुवचश्च "पडिक्कमह" इति प्रतिक्रमणरूप प्रायश्चित्तमुपदिशन्ति, इद च—

"आलोयण १ पडिक्कमणे २, मिस ३ विवेगे ४ तहा वि उस्सग्गे ५ । तव ६ छेअ ७ मूल ८ अणवट्ठाया अ ९ पार

अन्यथा तत् सम्यक् न स्यात्, लोकेऽपि हि राजादीनां किमपि विज्ञाप्य मनसा सम्प्रधार्य कागदादौ लिखित्वा विज्ञप्यते, ततश्च नमस्कारपूर्वं कायोत्सर्गं पारयित्वा चतुर्विंशतिस्तवं पठेत् आह च—

"काउस्सग्गंमि ठिओ, नीरेयकाओ निरुद्धवयपसरो। जाणइ सुहमेगमणो, [मुणि] पुण देवसिआइ अइयारं ॥ १ ॥ परिजाणिऊण य तओ, सम्मं गुरुजणपगासणेण तु। सो होइ अप्पगसो, जम्हा य जिणेहिं सो भणिउ ॥ २ ॥ काउस्सग्गं मुक्खपहं देसिअं जाणिऊण तो धीरो। दिवसाइआरं जाणण, ठाए ठायंति उस्सग्गो ॥ ३ ॥ सयणासणन्नपाणे, चेइअ जइसज्झकायउच्चारे। समिई भावणगुत्ती, वि तहायरणे अ अइयारो ॥ ४ ॥ गोसमुहणंतगाई, आलोए देसिएअ अइयारे। सधे समाणइत्ताहि अणदोसे ठविआहि ॥ ५ ॥ काउ हि अप्पदोसे, जहक्कम जानता व पारिंति। ताए सुहुमाण पाणू, धम्मं सुक्कं च झाइज्जा ॥ ६ ॥ इति हेतुगर्भे। ननु-ज्ञानादिषु सत्सु प्रथमं चारित्राचारकायोत्सर्गः कथं क्रियते ? उच्यते-ज्ञानादेश्चारित्रस्य गरिष्ठत्वज्ञापनार्थं आह च-"जम्हा दंसणनाणा, संपुन्नफलं न दिंति पत्तेअं। चारित्तजुआ दिंति, अविस्सिस्सए तेण चारित्तं ॥ १ ॥ इति ततश्च जानुपाश्चात्यभागपिण्डिकादि प्रमृज्य उपविश्य च श्रीगुरूणा वन्दनकदानार्थं मुखवस्त्रिकां कायं च द्वावपि प्रत्येकं पञ्चविंशतिधा प्रतिलिखेत्। यदाह-"संडासगे पमज्जिय, उववसिअ अलग्गविअमबाहु जुओ। मुहणंतयं च कायं, च पेहए पंचवीसं इह ॥ १ ॥" इति मुखवस्त्रिकाकायप्रतिलेखनाया मनसः स्थिरीकरणार्थमेव चिन्तयेत्, यदुक्तं हेतुगर्भे—"सुत्तत्थतत्तदिट्ठी १, दंसणमोहतिअगं च ४ रागतिगं ७। देवाइ तत्तति अगं १०, तहा अदेवाइ तत्ततिगं १३ ॥ १ ॥ नाणाइ तिगं १६ तह तविराहणा १९ त्रिग्निगुत्ति २२ दंडतिअं २५।

चारविशुद्धिहेतु कायोत्सर्गं च पारयित्वा दर्शनाचारविशुद्ध्यर्थं चतुर्विंशतिस्तव पठेत्, ततः "सव्वलोए अरिहंतचेइआण" इत्यादि सूत्र च पठित्वा तदर्थमेव कायोत्सर्गमेकचतुर्विंशतिस्तवचिन्तनरूप कुर्यात्, त च तथैव पारयित्वा श्रुतज्ञानाचारविशुद्ध्यर्थं 'पुक्खरवरदीवड्ढे' इत्यादि सूत्र "सुअस्स भगवओ करेमि काउस्सग्ग" इत्यादि च पठित्वा एकचतुर्विंशतिस्तवचिन्तनरूप कायोत्सर्गं कुर्यात्, पारयित्वा च ज्ञान–दर्शन–चारित्राचारनिरतिचरणसमाचरणफलभूताना सिद्धाना, "सिद्धाण बुद्धाणं" इति सिद्धस्तव पठति। आह च—

"विहिणा पारिअ सम्मत्तसुद्धिहेउ च पढिअउज्जोअ। तह सव्वलोअअरिहं–तचेइआरोहणुस्सग्ग ॥ १८ ॥ काउ उज्जोयगर, चिंतिय पारेइ सुद्धसम्मत्तो। पुक्खरवरदीवड्ढ, कड्ढइ सुयसोहणनिमित्त ॥ १९ ॥ पुण पणवीसोस्सास, उस्सग्गं कुणइ पारए विहिणा। तो सयलकुसलकिरिआ, फलाणसिद्धाण पढइ थय ॥ २० ॥" इह चतुर्विंशतिस्तवद्वयचिन्तनरूपो द्वितीयश्चारित्रविशुद्धिहेतुकः कायोत्सर्गं अस्मिश्च पूर्वोक्तयुक्त्या चारित्राचारस्य ज्ञानाद्याचारेभ्यो वैशिष्ट्यादिना चतुर्विंशतिस्तवद्वयचिन्तन समाप्यते, नाऽनेतनयोः तृतीयो दर्शनाचारविशुद्धिहेतुकः चतुर्थो ज्ञानाचारविशुद्धिहेतुः। आह च—

"नमुक्कार चउवीसग, किइकम्मालोयण पडिक्कमणं। किइकम्मपुरा लोइअ, दुण्पडिकते अ उस्सग्गो ॥ १ ॥ एस चरित्तुस्सग्गो, दसणसुद्धीइ तइअओ होई। सुअनाणस्स चउत्थो, सिद्धाणथुई अ किइकम्म ॥ २ ॥" दिवसातिचार चिन्तनार्थः प्रथमश्चारित्राचारहेतुः कायोत्सर्गो द्वितीयोऽपि चतुर्विंशतिस्तवद्वयचिन्तनरूप तद्धेतुरेव कायोत्सर्गः।

यात् प्रतिक्रमणमनुकुर्वंश्चिय पश्चात्पदैः अवग्रहात् बहिर्निःसृत्य 'आयरिय उवज्झाए' सूत्र पठति, अन्यगच्छेषु केषुचिद् 'आयरिय उवज्झाए' इत्यादि गाथात्रिक साधवोऽपि पठन्ति, न चैतत् संगतिमङ्गति, श्रीयोगशास्त्रवृत्तौ–हेतुगर्भे–श्रीजिनवल्लभसूरि–श्रीजिनपतिसूरिप्रमुखनिर्मितग्रन्थेषु सर्वत्र 'सड्ढो गाहातिग पढइ' इत्येव नामग्राह श्राद्धस्यैव एतत् पठनमुक्तत्वात् न साधोः, न च साध्य–श्राद्ध इति कोऽर्थः ?, श्रद्धावानिति व्युत्पत्त्या द्वयोरपि ग्रहण काऽपि ग्रन्थे, अत्राधिकारे एतदर्थकरणाऽदर्शनात्, नाऽपि च सर्वोऽपि प्रतिक्रमणसूत्रपाठो द्वयोरपि समान इति । सामायिकसूत्र–प्रतिक्रमणसूत्रादिषु द्वयोरपि भिन्नभिन्नपाठात् । विस्तरवार्तार्थिना अस्मिन्नेव ग्रन्थे पञ्चम प्रश्नोत्तर द्रष्टव्य, कायोत्सर्गे च चारित्राचारविशुद्ध्यर्थं चतुर्विंशतिस्तवद्वय चिन्तयति, आह च—

"इय सामाइयउस्सग्गसुत्तमुच्चरिअ काउस्सगठिओ । चिंतइ उज्जोअदुग, चरित्तअइयार शुद्धीए कए ॥ १७ ॥

इह चाऽऽह ननु–करेमि भंते सामाइयमिति सूत्रमादौ प्रतिक्रमणसूत्रकथनक्षणे द्वितीय तृतीय पुनरिह तदुच्चारण किमर्थं ? उच्यते–सर्वमपि धर्मानुष्ठान समतापरिणामे स्थितस्य सफल भवतीति, प्रतिक्रमणस्यादौ मध्येऽवसाने च पुन पुनस्तस्य स्मृत्यर्थं तदुच्चारण, आह च—

"आइमकाउस्सग्गे, पडिक्कमतो य काउ सामइय । तो किं करेइ बीअ, तइअ च पुणोवि उस्सग्गो ॥ १ ॥ समभावम्मि ठिअप्पा, उस्सग्ग करिअ तो पडिक्कमइ । एमेव य समभावे, ठिअस्स तइअ पि उस्सग्गो ॥ २ ॥ सज्झाय १ झाण २ तव ३ ओसहेसु ४ उवएस ५ थुइपयाणेसु ६ । सतगुणकित्तणेसु य ७, न हुति पुणरुत्तदोसा उ ॥ ३ ॥" इति चारित्रा-

मग्रे दास्यते, इत्यनेन दैवसिकप्रतिक्रमणं सपूर्णं जातं । अत्र प्रतिक्रमणे 'जयतिहुयण' कथने गच्छाचारेण आन्तरणीदोषो गण्यते, चैत्यवन्दन विना कायोत्सर्गं तद्दोषो न भवति, ततः 'सव्वस्सवि देवसिअ' कथनादारभ्य 'इच्छामो अणुसट्ठिं' यावदान्तरणीदोषो भवेत् ततः परं न स्यात्, सर्वमपि धर्मानुष्ठानं श्रीदेवगुरुभक्तिबहुमाननादिपुरःसरं सफलं भवतीति, प्रतिक्रमणस्य प्रारम्भे संपूर्णीभवने च श्रीदेवगुरुवन्दनं इति । आद्यन्तग्रहणेन मध्यस्याऽपि ग्रहणमिति न्यायेन तद्भक्तिः सार्वत्रिकी ज्ञेया, यथा शक्रस्तवे नमुत्थुणमित्यादौ, नमो जिणाणमिति अन्ते च नमो इत्यस्य स्थापनेन शक्रस्तवे प्रतिपदं तत्पाठज्ञापनं, ततः 'कुणइ पच्छित्तउस्सग्गमिति' श्रीजिनवल्लभसूरिविरचितप्रतिक्रमणसामाचारीवचनप्रामाण्यात् चतुर्थक्षमाश्रमणदानपूर्वं इच्छाकारेण संदिसह भगवन् 'देवसिअपायच्छित्तविसोहणत्थं' करेमि काउस्सग्गमिति, श्रीतरुणप्रभसूरिवचसा अन्नत्थूससिएणमि त्यादि भणित्वा कायोत्सर्गं कुर्यात्, तन्मध्ये चतुश्चतुर्विंशतिस्तवचिन्तनं कुर्यात्, पारिते चैकं चतुर्विंशतिस्तवं मङ्गलार्थं पठेत्, हेतुगर्भेऽप्युक्तं, पूर्वं प्रतिक्रमणे चारित्रदर्शनज्ञानाचारशुद्ध्यर्थं कायोत्सर्गेषु कृतेष्वपि पुनरिह 'द्विर्बद्धं सुबद्धं' भवतीति न्यायेन प्राणातिपातादिविरमणातिचारविशुद्ध्यर्थं चतुर्थं चतुश्चतुर्विंशतिस्तवचिन्तनरूपं दैवसिकप्रायश्चित्तविशुद्ध्यर्थं कायोत्सर्गं कुरुते, उक्तं च—

"गुरुथुइगहणे थुइ तिन्नि वद्धमाणक्खरस्सरो पढइ । सक्कत्थय थयं पढिअ कुणइ पच्छित्तउस्सग्गं ॥ २४ ॥

पाणवह मुसावाए, अदत्तमेहुणपरिग्गहे चेव । सयमेगं तु अणूणं, उस्सासाणं हविज्जाहिं ॥ २ ॥"

अथ च कायोत्सर्गः कैश्चित् सामाचारीवशेन प्रतिक्रमणस्य अन्ते क्रियते । कैश्चित्तु आदौ एव क्रियते, श्रीखरतरगच्छी-

"बालस्त्रीमन्दमूर्खाणां, नृणां चारित्रकाङ्क्षिणाम् । अनुग्रहार्थं तत्त्वज्ञैः, सिद्धान्तः प्राकृतः कृतः ॥ १ ॥"

इत्याद्युक्तिभिः स्त्रीणां संस्कृतेऽनधिकारित्वसूचनात्, नाटकादिष्वपि प्रायः स्त्र्यालापानां प्राकृतादिभाषयैव दर्शनात् साध्व्यः श्राविकाश्च नमोऽर्हत्सिद्धेत्यादि सूत्रं न पठन्ति, नमोऽस्तु वर्धमानेत्यादिस्थाने 'संसारदावानले' त्यादिरूपं स्तुतित्रयं च पठन्ति, यच्च श्रीगुरुकथनावसरे प्रतिस्तुतिप्रान्ते नमो खमासमणाणमिति गुरुनमस्कारः साधुसाध्व्यादिभिर्भण्यते । तत् नृपाद्या छास्येषु प्रतिवार्ता प्रान्ते जीवेत्यादि भणनवत् श्रीगुरुवचःप्रतीच्छादिरूपं संभाव्यते, इदं नमो खमासमणाणमिति पदं विधिप्रपा–तरुणप्रभबालावबोधादौ नाऽस्ति, परं हेतुगर्भेऽस्ति, तथेदं श्रीवर्धमानस्वामिनस्तीर्थं तस्याऽऽज्ञया चेदं प्रतिक्रमणाधिकरणं निर्विघ्नं च तत्संपूर्णीभवने हर्षेण मङ्गलार्थं च श्रीवर्धमानस्तुतिपाठोऽयं कृतज्ञानां व्यवहारो यत्स्वसमीहितशुभकार्यनिर्विघ्नभवने श्रीगुरुदेवबहुमाननादिवर्धमानस्वरेण स्तुतित्रयपाठश्च हर्षातिरेकादयं च न्यायो लोकेऽपि दृश्यते, यथा राज्ञः शत्रुजयादौ विवाहादौ वा हर्षेण विचित्रवादित्रवादनोच्चैःस्वरगीतगाननृपपूजनादि', स्तुतित्रयपाठानन्तरं शक्रस्तवपाठः, ततो गुर्वाज्ञया एकः श्राद्धो यतिर्वा इच्छाकारेण संदिसह भगवन् स्तोत्रभणु ? इति क्षमाश्रमणदानपूर्वकमधुरस्वरेण सद्भूतगुणगर्भितश्लोकाद्येकादशकादारभ्य अष्टोत्तरशतं यावत् श्रीवीतरागस्य बृहत्स्तवनं पठति, अन्ये तु जानुस्था स्थित्वा सावधानमनसः कृताञ्जलिपुटाः शृण्वन्ति । ततः संपूर्णस्तोत्रकथनानन्तरं चतुर्भिः क्षमाश्रमणैः श्रीगुर्वादीन् वन्दते इति श्रीहेतुगर्भवचनप्रामाण्यात्, क्षमाश्रमणचतुष्टयं दत्ते श्रीतरुणप्रभसूरिबालावबोधानुक्रमेण स चाऽयं प्रथम० क्ष० श्रीआचार्यमिश्र १ द्वितीयक्षमाश्रमण० श्रीउपाध्यायमिश्र २ तृतीयक्षमाश्रमण० सर्वसाधु ३ चतुर्थक्षमाश्रमण-

भवनवशात् देवा न वन्दिताः तदाऽपवादमार्गेण बृहत्स्तोत्रकथनसमये स वन्द्यते इति स्वगच्छप्रवृत्तिर्दृश्यते, परं विचार्यमाणा न तादृक् ।

ननु-प्रतिक्रमणं पञ्चविधाचारशुद्धिनिमित्तं क्रियते, यदुक्तं—

"पञ्चविहायारविसुद्धिहेउमिह साहु सावगो वा वि । पडिक्कमणं सह गुरुणा, गुरुविरहे कुणइ इक्कोवि ॥ १ ॥"

तत्र पञ्चविधाचारे कस्याऽऽचारस्य प्रतिक्रमणे केन सूत्रेण शुद्धिः स्यात्? इति, उच्यते-प्रतिक्रमणशब्द [illegible] पवाच्यपि अत्र सामान्ये आवश्यके रूढत्वाऽऽवश्यकं षडध्ययनात्मकं तानि चाऽमूनि "सामाइयं चउवीसत्थउ वंदणयं पडिक्कमणं काउस्सग्गो पच्चक्खाणंति" एतेषां च षण्णां अधिकारा अमी [illegible]—

सावज्जजोगविरइ, १ उक्कित्तण २ गुणवओ-अपडिवत्ती ३ । खलिअस्स निंदणा ४ वण तिगिच्छा ५ गुणधारणा ६ चेव ॥ १ ॥

तत्र सामायिकेन चारित्राचारस्य शुद्धिः क्रियते १ चतुर्विंशतिस्तवेन दर्शनाचारस्य २ वन्दनकेन ज्ञानाद्याचाराणां ३ प्रतिक्रमणेन तेषामतिचाराऽपनयनरूपा ४ प्रतिक्रमणेनाऽशुद्धानां तदतिचाराणां कायोत्सर्गेण ५ [illegible] प्रत्याख्यानेन ६ वीर्याचारस्य पुनः सर्वैरपि । उक्तं च—

"चारित्तस्स विसोही, कीरइ सामाइएण किल इह यं । सावज्जे अरजोगाण वज्जणा [illegible] ॥ १ ॥" [illegible] सोही, चउवीसाइत्थ एण किज्जइ य । अच्चुब्भयगुणकित्तण, रूवेणं जिणवरिंदाणं ॥ २ ॥ नाणाईआ उ गुणा, [illegible] पडिवत्तिकरणाओ । वंदणएणं विहिणा, कीरइ सोही अ तेसिं तु ॥ ३ ॥ खलिअस्स य तेसिं पुणो, विहिणा जं [illegible]

येस्तु प्रतिक्रमणप्रान्ते क्रियते, तथा श्रीजिनवल्लभसूरिणा प्रतिक्रमणसामाचार्यां श्रीजिनप्रभसूरिणा च विधिप्रपायां देवसिकप्रतिक्रमणं देवसिकप्रायश्चित्तकायोत्सर्गपर्यन्तमेव लिखितं, तदानीं तत्प्रमाणस्य एव करणात्। अथ श्रीतरुणप्रभसूरिकृतषडावश्यकबालावबोधे प्रान्ततोऽग्रेतनः प्रतिक्रमणानुक्रमेण अनुक्रमो लिख्यते, तथाहि–ततो गीतार्थाऽऽचारणावशेन "इच्छाकारेण संदिसह भगवन् खुद्दोवद्दवओहडावणत्थं करेमि काउस्सग्गं अन्नत्थूससिएणं" इत्यादि भणित्वा कायोत्सर्गं करोति, तत्र चतुर्विंशतिस्तवचतुष्टयचिन्तनं पारिते चैकं चतुर्विंशतिस्तवं पठेत्, ततो जानुभ्यां स्थित्वा साधुः पौषधकः श्रावकश्च "सज्झाय संदिस्सावेमि सज्झायं करेमि" इति भणित्वा नमस्काराणां त्रयं पञ्चकं वा कथयेत्। ततः श्रीपार्श्वनाथसंबन्धि स्तोत्रं कथयेत्, ततः शक्रस्तवः "जावंति चेइआइं" इत्यादि भणित्वा क्षमाश्रमणदानपूर्वं 'जावंत केवि साहू नमोऽर्हत् सिद्धे'त्यादिकथनपूर्वकं श्रीपार्श्वनाथलघुस्तवनं भणित्वा जयवीरायेति पठति, ततो भूतलन्यस्तमस्तको मुखे मुखवस्त्रिकां दत्त्वा "सिरि–थंभणयट्ठियपाससामिणो" इत्यादि गाथायुगलं 'वंदणवत्तिआए' इत्याद्युक्तिपूर्वं कायोत्सर्गं कुर्यात्, तन्मध्ये चतुर्विंशतिस्तवचतुष्टयचिन्तनं पारिते चैकश्चतुर्विंशतिस्तवः। ततः क्षमाश्रमणदानेन "भट्टारकश्रीजिनदत्तसूरि–आराधनानिमित्तं करेमि काउस्सग्गं" इत्याद्युक्तिपूर्वं चतुर्विंशतिस्तवचतुष्टयकायोत्सर्गं करोति, पारिते चैकं, अस्मिन् देवसिकप्रतिक्रमणे विना पदस्थसाधुं सर्वैरेकीभूय प्रतिक्रमणं स्थापनीयं। अथ कदापि कोऽपि श्राद्धादिः पश्चादापतति, तदा न शुद्ध्यति तस्य तैः समं प्रतिक्रमणकरणं किंतु स तेभ्यः पृथग् भूत्वा करोति, प्रतिक्रमणं च मुख्यसाधुर्यदि वाचनाचार्यादिपदस्थो भवति, तदा आगमिकसाधुसमं ...

भवनवशात् देवा न वन्दिताः तदाऽपवादमार्गेण बृहत्स्तोत्रकथनसमये स वन्दते इति स्वगच्छप्रवृत्तिर्दृश्यते, परं विचार्यमाणा न तादृक्।

ननु-प्रतिक्रमण पञ्चविधाचारशुद्धिनिमित्त क्रियते, यदुक्त—

"पञ्चविहायारविसुद्धिहेउमिह साहु सावगो वा वि। पडिक्कमणं सह गुरुणा, गुरुविरहे कुणइ इक्कोवि ॥ १ ॥"

तत्र पञ्चविधाचारे कस्याऽऽचारस्य प्रतिक्रमणे केन सूत्रेण शुद्धिः स्यात्? इति, उच्यते–प्रतिक्रमणशब्द आवश्यकविशेषवाच्यपि अत्र सामान्ये आवश्यके रूढत्वावाऽऽवश्यक षडध्ययनात्मकं तानि चाऽमूनि "सामाइय चउवीसंत्थउ वदणय पडिक्कमण काउस्सग्गो पच्चक्खाणंति" एतेषा च षण्णां अधिकारा अमी यथाक्रमम्—

सावज्जजोगविरइ, १ उक्कित्तण २ गुणवओ–अपडिवत्ति ३। खलिअस्स निंदणा ४ य विगिच्छा ५ गुणधारणा ६ चेव ॥ १ ॥

तत्र सामायिकेन चारित्राचारस्य शुद्धिः क्रियते १ चतुर्विंशतिस्तवेन दर्शनाचारस्य २ वन्दनकेन ज्ञानाद्याचाराणा ३ प्रतिक्रमणेन तेषामतिचाराऽपनयनरूपा ४ प्रतिक्रमणेनाऽशुद्धाना तदतिचाराणा कायोत्सर्गेण ५ तप आचारस्य प्रत्याख्यानेन ६ वीर्याचारस्य एभिः सर्वैरपि। उक्त च—

"चरित्तस्स विसोही, कीरइ सामाइयेण किल इह य। सावज्जे आरजोगाण वज्जणा सेवणत्तणउ ॥ १ ॥" दसणयारविसोही, चउवीसाइत्थ एण किज्जइ अ। अच्चुब्भयगुणकित्तण, रूवेणं जिणवरिंदाणं ॥ २ ॥ नाणाईआ उ गुणा, तस्स प्पसपडिवत्तिकरणाओ। वंदणएण विहिणा, कीरइ सोही अ तेसिं तु ॥ ३ ॥ खलिअस्स य तेसिं पुणो, विहिणा ज निंद-

येस्तु प्रतिक्रमणप्रान्ते क्रियते, तथा श्रीजिनवल्लभसूरिणा प्रतिक्रमणसामाचार्यां श्रीजिनप्रभसूरिणा च विधिप्रपाया देवसिकप्रतिक्रमणं दैवसिकप्रायश्चित्तकायोत्सर्गपर्यन्तमेव लिखित, तदानीं तत्प्रमाणस्य एव करणात्। अथ श्रीतरुणप्रभसूरिकृतषडावश्यकबालावबोधे प्रान्ततोऽमेतनः प्रतिक्रमणानुक्रमेण अनुक्रमो लिख्यते, तथाहि—ततो गीतार्थाऽऽचारणावशेन "इच्छाकारेण संदिसह भगवन् खुद्दोवद्दवओहडावणत्थं करेमि काउस्सग्गं अन्नत्थूससिएणं" इत्यादि भणित्वा कायोत्सर्गं करोति, तत्र चतुर्विंशतिस्तवचतुष्टयचिन्तनं पारिते चैकं चतुर्विंशतिस्तवं पठेत्, ततो जानुभ्यां स्थित्वा साधु पौषधकः श्रावकश्च "सज्झायं संदिसावेमि सज्झायं करेमि" इति भणित्वा नमस्काराणां त्रयं पञ्चकं वा कथयेत्। ततः श्रीपार्श्वनाथसंबन्धि स्तोत्रं कथयेत्, ततः शक्रस्तवं "जावंति चेइआइं" इत्यादि भणित्वा क्षमाश्रमणदानपूर्वं 'जावंत केवि साहू नमोऽर्हत् सिद्धे'त्यादिकथनपूर्वकं श्रीपार्श्वनाथलघुस्तवनं भणित्वा जयवीरायेति पठति, ततो भूतलन्यस्तमस्तको मुखे मुखवस्त्रिकां दत्त्वा "सिरि-थंभणयट्ठियपाससामिणो" इत्यादि गाथायुगलं 'वंदणवत्तिआए' इत्याद्युक्तिपूर्वं कायोत्सर्गं कुर्यात्, तन्मध्ये चतुर्विंशतिस्तवचतुष्टयचिन्तनं पारिते चैकश्चतुर्विंशतिस्तवः। ततः क्षमाश्रमणदानेन "भट्टारकश्रीजिनदत्तसूरि-आराधनानिमित्तं करेमि काउस्सग्गं" इत्याद्युक्तिपूर्वं चतुर्विंशतिस्तवचतुष्टयकायोत्सर्गं करोति, पारिते चैकं, अस्मिन् देवसिकप्रतिक्रमणं विना पदस्थसाधु सर्वैरेकीभूय प्रतिक्रमणं स्थापनीयं। अथ कदापि कोऽपि श्राद्धादिः पश्चादापतति, तदा न शुध्यति तस्य तैः समं प्रतिक्रमणकरणं किंतु स तेभ्यः पृथग् भूत्वा करोति, प्रतिक्रमणं अथ मुख्यसाधुर्यदि वाचनाचार्यादिपदस्थो भवति, तदा आप्रतिक्रमणसूत्रं यावत् पश्चादप्यापतति। अथ केनाऽपि चस्सूरत्वा

दर्शनज्ञानातिचारविशुद्ध्यर्थं कायोत्सर्गत्रयं करोति, प्रथमकायोत्सर्गे एकं चतुर्विंशतिस्तवं चिन्तयति, द्वितीयेऽप्येकं 'साय सयं गोसद्धं ति' वचनात् चिन्तयति, 'साये'ति अत्र अनुस्वारलोपः प्राकृतत्वात् कृतः। ततः साय—सन्ध्याया, प्रतिक्रमणे शतं पादाना, तत्र श्लोकस्य चतुष्पादरूपत्वात् पञ्चविंशतिश्लोकानां चतुर्भिर्गुणने शतं पादाना भवति। 'गोसे' ति प्राभातिकोद्द्योतकरद्वये अर्धं शतस्य भवति, पादानां पञ्चाशदित्यर्थः। इति श्रीप्रवचनसारोद्धारे (४१ पत्रे) १८५ गाथावृत्तौ। तृतीये तु निशातिचारान् चिन्तयति, इह पूर्वोक्तयुक्त्या चारित्रातिचारस्य ज्ञानाद्याचारेभ्यो वैशिष्ट्येऽपि यदेकस्यैव चतुर्विंशतिस्तवनचिन्तनं तद्रात्रौ प्रायोऽल्पव्यापारत्वेन चारित्रातिचाराणां स्वल्पत्वादिना सभाव्यते। ततः कायोत्सर्गं पारयित्वा सिद्धस्तवं पठित्वा संडासकप्रमार्जनपूर्वं उपविशति, उक्तं च—

"उद्धिय करेइ विहिणा, उस्सग्गं चिंतए अ उज्जोअं। बीअं दंसणसुद्धीए चिंतए तत्थवि तमेव ॥ २६ ॥
तइए वि निसाइआरे, जहक्कम चिंतिऊण पारेइ। सिद्धत्थयं पढित्ता, पमज्ज संडासमुवविसइ ॥ २७ ॥"

ननु—प्रथमे चारित्राचारविशुद्धिकायोत्सर्गे निशातिचारचिन्तनं कस्मान्न क्रियते? उच्यते—'निद्दामत्तो न सरइ' इत्यादि हेतुभिः, उक्तं च—

"एत्थ पढमो चरित्ते, दंसणसुद्धीए बीअओ होइ। सुअनाणस्स अ तइओ, नवरं चिंतंति अ तत्थ इमं ॥१५२९॥" तइए निसाइयार" इत्यादि ततः पूर्वं च मुखवस्त्रिकादिप्रतिलेखनापूर्वं वन्दनकदानादिविधिं विधत्ते तावत् यावत् प्रतिक्रमणसूत्रानन्तरः कायोत्सर्गः। उक्तं च—"पुत्तिं च पोत्तिपेहण, वंदणमालो अ सुत्तपढणं च। वंदणखामणवंदण, गाहातिगपढणमु-

णाइ परिकमणं । तेण पडिक्कमणेणं, तेसिं पि कीरई सोही ॥ ४ ॥ चरणाइआयाण, जहक्कम वणविगच्छरूवेण । पडि-
क्कमणा सुद्धाण, सोही तह काउसग्गेण ॥ ५ ॥ गुणधारणरूवेण, पच्चक्खाणेण तवइआरस्स । विरियायारस्स पुणो,
सव्वे हि वि कीरए सोही ॥ ६ ॥" इति देवसिक प्रतिक्रमण सहेतुक स्वसामाचारीक संपूर्ण ॥ १ ॥

इदानीं रात्रिप्रतिक्रमणानुक्रमः कोऽप्युच्यते, तथाहि–पाश्चात्यनिशायामे निद्रां परित्यज्य ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य क्षमाश्रमणदानपूर्वं "कुसुमिण दुसुमिण राइपायच्छित्तविसोहणत्थं करेमि काउस्सग्गमि"त्यादि भणित्वा चतुर्विंशतिस्तवचतुष्कचिन्तनरूपं कायोत्सर्गं कुर्यात्, श्रावकस्तु सामायिकोच्चारपूर्वकं कायोत्सर्गं करोति, एष च कायोत्सर्गो देवसिकप्रायश्चित्तविशोधनार्थं च संभाव्यते । इह च सर्वं श्रीदेवगुरुवन्दनपूर्वं सफलमिति चैत्यवन्दनां विधाय स्वाध्यायकायोत्सर्गादिधर्मव्यापारं विधत्ते, यावत्प्राभातिकप्रतिक्रमणवेला, तदनु चतुरादिक्षमाश्रमणैः प्रतिक्रमणं स्थापयति, क्षमाश्रमणचतुष्टय श्रीतरुणप्रभसूरिवचनप्रामाण्यात्, एव प्रथमक्षमाश्रमणेन श्रीआचार्यमिश्र १ द्वितीय क्ष० श्रीउपाध्यायमिश्र २ तृतीय क्ष० वर्तमानगुरु श्रीअमुकसूरि ३ चतुर्थ क्ष० सर्वसाधु, ततो भूतलन्यस्तमस्तको मुखे मुखवस्त्रिका दत्त्वा 'सव्वस्सवि राइये'त्यादिसूत्र सकलरात्रिकाऽतिचारबीजकभूतं भणति, अत्राऽधिकारे 'इच्छाकारेण संदिसहे'ति पद न वाच्य, ततः शक्रस्तव पठति, उक्तं च–

"एव ता देवसिअ, राइअमवि एवमेव नवरि तहिं । पढम दाउं मिच्छामि दुक्कड पढइ सक्कथय ॥ १ ॥"

इह च शक्रस्तवपाठेन संक्षेपदेववन्दन पूर्व कृतवन्दनत्वेऽपि श्रीदेवभक्तिः सर्वत्र कार्या इति स्मरणार्थं इत्यादि कारणानि यथाऽऽगम स्वय भाव्यानि, ततो द्रव्यतो भावतश्च उत्थाय 'करेमि भंते सामाइयमि' त्यादि सूत्रपाठपूर्वं चारित्र-

॥ ४८ ॥ पडिक्कमित्तु निस्सल्लो, वदित्ताण तओ गुरु । काउस्सग्ग तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमुक्खणं ॥ ४९ ॥ किं तव पडिवज्जामि ?, एव तत्थ विचिंतए । काउस्सग्ग तु पारित्ता, करिज्जा जिणसथव ॥ ५० ॥ पारियकाउस्सग्गो, वदित्ताण तओ गुरु । तव सपडिवज्जित्ता, करिज्ज सिद्धाण संथव ॥ ५१ ॥ पारिअकाउस्सग्गो वदिताण । तओ गुरु सपडिवज्जित्ता करिज्ज सिद्धाण सथव ॥ ५१ ॥" इति ॥

अथ पाक्षिक–चातुर्मासिक–सावत्सरिक–प्रतिक्रमणानुक्रमः कथ्यते, तत्र पाक्षिकप्रतिक्रमणमाचरणा चतुर्दश्या—तत्र साधवः सूक्ष्मबादरातिचारजातस्य विशोधनार्थं सदा दिवसनिशावसानेषु प्रतिक्रमण विदधाना अपि पक्षचतुर्माससवत्सरेषु विशेषेण प्रतिक्रमण कुर्वन्ति, उत्तरकरणविधानार्थं, तथाहि–यथा कश्चित् तैलादिभिः कृतवपु सस्कारोऽपि धूपविलेपनभूषणादिभि उत्तरकरण विधत्ते, तथा साधवोऽपि शुद्धिविशेष कुर्वन्तीति । किं वा "जह गेह पइदिवस, पि सोहिओ तह वि पक्खसधीसु । सोहिज्जइ सविसेस, एव इहय पि नायव्व ॥ १ ॥" तथा नित्यप्रतिक्रमणे कश्चिदतिचारो विस्मृतः स्यात् स्मृतो वा भयादिना गुरुसमक्ष न प्रतिक्रान्त स्यात् परिणाममान्द्याद् असम्यक् प्रतिक्रान्तोच्चारणाद् अतः पाक्षिकादिषु त प्रतिक्रामन्ति । तत्र पाक्षिके पूर्ववत् दैवसिक प्रतिक्रमणसूत्रान्त श्रीतरुणप्रभसूरिवचनेन "वदामि जिणे चउवीसमि" ति पर्यन्त भणित्वा प्रथमक्षमाश्रमणेन इच्छाकारेण "सदिसह भगवन् पक्खियमुहपत्तिं पडिलेहेमि, चतुर्मासिके चउमासी मु०, सवच्छरिए संवच्छरिय मु०" इत्युक्त्वा द्वितीयक्षमाश्रमण दत्त्वा मुखवस्त्रिका प्रतिलेख्य वन्दनक दत्ते । अत्रान्तरे वृद्धसाधुः वक्ति—"पुण्यवन्तो देवसिने" स्थानके पाक्षिक–चातुर्मासिक–सांवत्सरिक भणिज्यो छींक राखज्यो

तमेऽध्ययने कोऽपि स्वस्पः प्रतिक्रमणानुक्रमः (५४० पत्रे) प्रतिपादितो नाऽन्यत्र क्वाऽपि, तत्राऽपि साधुमुद्दिश्य न श्राद्ध। सांप्रत क्रियमाणप्रतिक्रमणानुक्रम इयान् विस्तर—कोऽपि पूर्वधरादिप्राक्तनसूरिविनिर्मितग्रन्थानुसारी कोऽपि च स्वगच्छसम्प्रदायगम्य। श्रीउत्तराध्ययने प्रतिक्रमणानुसारेण क्रम एव, तथाहि—

"पोरसिए चउब्भागे, वंदित्ता ण तओ गुरु। पडिक्कमित्ता कालस्स, सिज्ज तु पडिलेहए ॥ ३७॥ पासवणुच्चारभूमिं च, पडिलेहिज्ज जय जई। काउस्सग्ग तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमुक्खण ॥ ३८॥ देसिय च अईयार, चिंतिज्ज अणुपुव्वसो। नाणंमि दसणे चेव, चरित्तमि तहेव य ॥ ३९॥ पारियकाउस्सग्गो, वंदित्ता य तओ गुरु। देसिअ तु अइयारं, आलोइज्ज जहक्कम ॥ ४०॥ पडिक्कमित्ताण निस्सल्लो, वंदित्ताण तओ गुरु। काउस्सग्ग तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमुक्खण ॥ ४१॥ सिद्धाण संथवं किच्चा, वंदित्ताण तओ गुरु। थुईमंगल च काऊण, काल सपडिलेहए ॥ ४२॥"

इति दैवसिकप्रतिक्रमणानुक्रमः।

"पढमं पोरिसिं सज्झाय, बीअ झाणं झियायई। तईयाए निद्दमुक्ख तु, चउत्थी भुज्जोवि सज्झाय ॥ ४३ ॥ पोरिसीए चउत्थीए, काल तु पडिलेहए। सज्झाय तु तओ कुज्जा, अवोहतो असजए ॥ ४४॥ पोरिसीए चउब्भाए, वंदित्ता ण तओ गुरु। पडिक्कमित्तु कालस्स, काल तु पडिलेहए ॥ ४५॥ आगए कायवुस्सग्गे, सव्वदुक्खविमुक्खणे। काउस्सग्ग तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमुक्खणं ॥ ४६॥ राईय च अईयार, चिंतिज्ज अणुपुव्वसो। नाणमि दसणमि अ, चरित्तंमि तवमि अ ॥ ४७॥ पारिअकाउस्सग्गो, वंदित्ताण तओ गुरु। राईय तु अईयारं, आलोइज्ज जहक्कमं

मणेण अब्भुट्ठिओमि अब्भिंतर पक्खिय—चउम्मासिअं—संवच्छरिअं वा खामेमि" इत्यादि, ततो वन्दनकद्वय ददाति, ततो
"देवसिअं आलोइअ पडिकंतं पक्खिअं—चाउम्मासिअ—संवच्छरिअं वा पडिक्कमावेह" गुरुर्ब्रूते "सम्म पडिक्कमह त्ति ।" तत
इच्छमिति भणित्वा यः पाक्षिकसूत्र भणति स सामायिकसूत्र "इच्छामि पडिक्कमिउ जो मे पक्खिओ चउम्मासिओ
संवच्छरिओ अइयारो कओ" इत्यादि सूत्र भणित्वा एकक्षमाश्रमणेन "पक्खियसुत्त संदिसावेमि द्वि० क्षमा० पक्खियसुत्त
कड्ढेमि त्ति" भणित्वा नमस्कारत्रय पठित्वा पाक्षिकसूत्र पठति । ये च साधुश्रावका शृण्वन्ति ते तदा किं कुर्युरित्याह—
सामायिकसूत्र उत्सर्गसूत्र तस्सुत्तरीसूत्र च पठित्वा कायोत्सर्गं कुर्वन्ति, कायोत्सर्गकरणशक्त्यभावे उपविष्टा अपि
शृण्वन्ति, पर प्रान्ते सर्वेऽप्युत्थाय कायोत्सर्गं कुर्वन्ति । यदुक्त श्रीविधिप्रपाया, तथाहि—"वदण दाऊ भणइ देयसिअ आलो-
इअ पडिक्कत पक्खिय पडिक्कमावेह, तओ गुरुणा सम्म पडिक्कमहेति भणिय सामाइयसुत्त उस्सग्गसुत्त च भणिय समासम
णेण पक्खियसुत्त सदिसावेमि पुणो खमासमणेण पक्खियसुत्त कड्ढेमि त्ति भणित्वा नमुक्कारतिग कड्ढिय पक्खियसुत्त भणइ
जे य सुत्त सुणति ते उस्सग्गसुत्ताणतरं तस्सुत्तरीकरणेणं ति दडग कड्ढिय काउस्सग्गे ठति" इति । तरुणप्रभसूरिकृत-
बालावबोधे तु ये कायोत्सर्गं कृत्वा शृण्वन्ति तेषामयमेवाऽनुक्रम प्रोक्तोऽस्ति, अथ च यः सूत्र भणति तस्य कर्तव्य-
ताऽनुक्रमो न उक्तोऽस्ति । अथ ये श्राद्धाः श्रीगुरु विना प्रतिक्रामन्ति ते तु एव कुर्वन्ति, तथाहि—एकः श्रावकः श्रीस्था-
पनाचार्याग्रे समागत्य एकक्षमाश्रमणदानेन वक्ति इच्छाकारेण "सदिसह भगवन् सूत्र सदिसाहु" गुरुर्वक्ति "सदिसावेह"
पुनर्द्वि० क्ष० भगवन् सूत्रं कढु, गुरुर्वक्ति भणहे ति, तत इच्छमिति भणित्वा ऊर्ध्वीभूय हस्तद्वय सयोज्य मुखे मुखवस्त्रिका

मधुरस्वरे पडिक्कमज्जो, अन्ये भणन्ति तहत्ति, इदं वार्तिकवाक्यं गच्छप्रवृत्त्या कथ्यमानमस्ति, परं विधिप्रपातरुणप्रभसूरि-बालावबोधादौ लिखितं नाऽस्ति । ततः सबुद्धान् श्रीगुर्वादीन् क्षमयितुं क्षमाप्रधानं च सर्वमनुष्ठानं सफलमिति ज्ञापयितुं "संबुद्धा खामणेणं अब्भुट्ठिओहं अब्भिंतरपक्खियं खामेमि" चातुर्मासिकप्रतिक्रमणे "चाउम्मासिअं खामेमि" सांवत्सरिकप्रतिक्रमणे "संवच्छरिअं खामेमि" इति पाठमूर्ध्वस्थित एव मस्तके हस्तद्वयं निवेशयन् कथयित्वा ततो जानुभ्यां स्थित्वा भूतलन्यस्तमस्तको मुखे मुखवस्त्रिकां दत्त्वा पाक्षिकप्रतिक्रमणे "पन्नरसण्हं राइंण"मित्यादि, चातुर्मासिकप्रतिक्रमणे "चउण्हं मासाणं"मित्यादि, सांवत्सरिकप्रतिक्रमणे "दुवालसण्हं मासाणं"मित्यादिपाठेन श्रीगुर्वादीन् क्षमयति। तत्र पाक्षिके त्रीन्, चातुर्मासिके पञ्च, सांवत्सरिके सप्त क्षामणकानि कार्याणि, परं त्रिषु अपि स्थानेषु साधुद्वयं शेषं रक्षणीयं । अत्र श्रीआवश्यकबृहद्वृत्तिः (७९४ पत्रे)—

"एवं सेसाणवि साहूण खामणावंदणं करेंति, अह विआलो वाघाओ वा ताहे सत्तण्हं पंचण्हं तिण्हं वा, पच्छा देवसिअं पडिक्कमंति" इति, ततः उत्थाय इच्छाकारेण "संदिसह भगवन् पक्खियं चउम्मासिअं संवच्छरिअं वा आलोएमि इच्छं आलोएमि जो मे पक्खिओ जो मे चउमासिओ जो मे संवच्छरिओ वा" इत्यादि सूत्रं भणित्वा संक्षेपेण विस्तरेण वा पाक्षिकान् चातुर्मासिकान् सांवत्सरिकान् वाऽतिचारानालोचयति "सव्वस्स वि पक्खिय चउम्मासिअ संवच्छरिअ" इत्यादि भणित्वा उपवासादिकं प्रायश्चित्तं प्रतिपद्यते, अत्र गच्छप्रवृत्त्या गुरुर्वक्ति—"चउत्थेण छट्ठेणं अट्ठमेण वा पडिक्कमह" इति ततो वन्दनकदानपूर्वकं प्रत्येकं क्षामणकानि कुरुते, तत्पाठस्तरुणप्रभसूरिणोक्तो यथा—"देवसिअआलोइअ पडिक्कंत प्रत्येकखा-

मणेण अब्भुट्ठिओमि अब्भिंतर पक्खिय—चउम्मासिअ—संवच्छरिअ वा खामेमि" इत्यादि, ततो वन्दनकद्वय ददाति, ततो "देवसिअं आलोइअ पडिक्कंत पक्खिअ—चाउम्मासिअ—संवच्छरिअ वा पडिक्कमावेह" गुरुर्ब्रूते "सम्मं पडिक्कमह त्ति।" तत इच्छमिति भणित्वा यः पाक्षिकसूत्र भणति स सामायिकसूत्र "इच्छामि पडिक्कमिउं जो मे पक्खिओ चउम्मासिओ संवच्छरिओ अइयारो कओ" इत्यादि सूत्र भणित्वा एकक्षमाश्रमणेन "पक्खियसुत्त संदिसावेमि द्वि० क्षमा० पक्खियसुत्त कड्ढेमि त्ति" भणित्वा नमस्कारत्रय पठित्वा पाक्षिकसूत्र पठति। ये च साधुश्रावका शृण्वन्ति ते तदा किं कुर्युरित्याह— सामायिकसूत्र उत्सर्गसूत्र तस्सुत्तरीसूत्र च पठित्वा कायोत्सर्गं कुर्वन्ति, कायोत्सर्गकरणशक्त्यभावे उपविष्टा अपि शृण्वन्ति, पर प्रान्ते सर्वेऽप्युत्थाय कायोत्सर्गं कुर्वन्ति। यदुक्त श्रीविधिप्रपाया, तथाहि—"वंदण दाउं भणइ देवसिअ आलोइअ पडिक्कंत पक्खिय पडिक्कमावेह, तओ गुरुणा सम्मं पडिक्कमहेति भणिय सामाइयसुत्त उस्सग्गसुत्त च भणिय खमासमणेण पक्खियसुत्त संदिसावेमि पुणो खमासमणेण पक्खियसुत्त कड्ढेमि त्ति भणित्वा नमुक्कारतिगं कड्ढिय पक्खियसुत्त भणइ जे य सुत्त सुणंति ते उस्सग्गसुत्ताणंतरं तस्सुत्तरीकरणेण ति दंडगं कड्ढिय काउस्सग्गे ठंति" इति। तरुणप्रभसूरिकृत-बालावबोधे तु ये कायोत्सर्गं कृत्वा शृण्वन्ति तेषामयमेवाऽनुक्रमः प्रोक्तोऽस्ति, अथ च यः सूत्र भणति तस्य कर्तव्यताऽनुक्रमो न उक्तोऽस्ति। अथ ये श्राद्धा श्रीगुरुं विना प्रतिक्रामन्ति ते तु एवं कुर्वन्ति, तथाहि—एक श्रावकः श्रीस्थापनाचार्याग्रे समागत्य एकक्षमाश्रमणदानेन वक्ति इच्छाकारेण "संदिसह भगवन् सूत्र संदिसाहुं" गुरुर्वक्ति "संदिसावेह" पुनर्द्वि० क्ष० भगवन् सूत्रं कड्ढु, गुरुर्वक्ति भणहे ति, तत इच्छमिति भणित्वा ऊर्ध्वीभूय हस्तद्वय संयोज्य मुखे मुखवस्त्रिका

दत्त्वा नमस्कारत्रय कथयित्वा मधुरस्वरेण व्यक्ताक्षर सावधानचित्त सूत्रार्थं मनसि चिन्तयन् यदित्तुसूत्र गुणयति श्रोतारश्च पूर्वोक्तविधिना कायोत्सर्गं कृत्वा शृण्वन्ति । ततः सूत्रसमाप्तौ नमस्कारेण पारयित्वा सर्वेऽप्यूर्ध्वे स्थित्वैव नमस्कारत्रय पठित्वा उपविश्य नमस्कारत्रय-सामायिकसूत्रत्रयपूर्वं, "इच्छामि पडिक्कमिउ जो मे पक्खिओ अइयारो कओ" इत्यादिदण्डक पठित्वा, साधुः साधुप्रतिक्रमणसूत्र, श्राद्धः श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र भणति । श्रावकस्तु एको गुर्वादेशेन कथयति अन्ये शृण्वन्तीति गच्छप्रवृत्ति, तत उत्थाय "अब्भुट्ठिओमि आराहणाए" दण्डक पठित्वा क्षमाश्रमणदानेन कथयति "इच्छाकारेण संदिसह भगवन् मूलगुण-उत्तरगुणातिचारविशुद्धिनिमित्त करेमि काउस्सग्ग", गुरुर्ब्रूते "करेह तत इच्छ करेमि भते इच्छामि ठामि काउस्सग्ग अन्नत्यूससिएण" मित्यादि भणित्वा प्रतिक्रमणेन न शुद्धाना अतिचाराणा विशुद्ध्यर्थं द्वादशचतुर्विंशतिस्तवचिन्तनरूप कायोत्सर्गं कुर्यात् । चातुर्मासिके कायोत्सर्गे विंशतिचतुर्विंशतिस्तवचिन्तन कुर्यात्, तथा सांवत्सरिके कायोत्सर्गे च चत्वारिंशच्चतुर्विंशतिस्तवान् नमस्कारमेकमधिक च चिन्तयेत्, तत पारयित्वा चतुर्विंशतिस्तवमेक कथयित्वा उपविश्य मुखवस्त्रिका प्रतिलेख्य वन्दनकद्वय दत्त्वा, इच्छाकारेण संदिसह भगवन् समत्तखामणेणं अब्भुट्ठिओमि अब्भिंतर पक्खिय चउमासियं संवच्छरिय खामेउ इत्यादिना समाप्तक्षामणक विधत्ते, अत्र गच्छप्रवृत्त्या गुरुर्वक्ति पुण्यवन्त त्रीणि त्रीणि नमस्कार कही च्यार खमासमण देइ पक्खिय चउमासिय सवच्छरिय खामणा खामह, तत साधवः क्षामणासूत्रालापकैः वारचतुष्टय क्षामयन्ति । श्राद्धस्तु चतुर्भिश्छोभवन्दनैः भूतलन्यस्तमस्तको वारचतुष्टयं त्रीन् त्रीन् नमस्करान् भणति, उक्तं च हेतुगर्भे—

“सुत्त अब्भुट्ठाणं, उस्सग्गो पुत्तिवंदण तह य । पज्जते अ खामणय, तह चउरो छोभवंदणया ॥ १ ॥”

तदन्ते गुरवो भणन्ति 'नित्थारगपारगाहोह'त्ति ततः सर्वे भणन्ति 'इच्छं इच्छामो अणुसट्ठिं' इति हेतुगर्भे । तरुणप्रभसूरिबालावबोधे तु पूर्वं सर्वेऽपि 'इच्छामो अणुसट्ठिं'मिति भणन्ति, ततो गुरुर्ब्रूते 'नित्थारगपारगाहोह'त्ति । अत्रान्तरे इदं 'पाखीनइ लेखइ' इत्यादिकं वाक्यं श्रीतरुणप्रभसूरिबालावबोधविधिप्रपादौ लिखितं नाऽस्ति, तथापि आचारदिनकरे लिखितमस्ति, तथाहि–“पाखिनइ एक उपवासु अथवा बी आंबिल अथवा तिण्ह नीवी च्यार एकासणां अथवा बीसहस्ससज्झाय एतलइ तपश्चर्याणि करी यथा शक्ति पक्षदिवसमाहे प्रवेश करिज्यो, ततो गुरुर्ब्रूते पुण्यवन्तो पाखिने लेखइ एक उपवास बी–आंबिल तिण्हि नीवी च्यार एकासणा अथवा बीसहस्ससज्झाय करी एक उपवासनउ पूरपूरिज्यो, पाखिनइ थानके देवसिक भणिज्यो, ततः सर्वेऽपि भणन्ति तहत्ति । चातुर्मासिकप्रतिक्रमणे एतत्सर्वं द्विगुणं वाच्यं, सांवत्सरिकप्रतिक्रमणे त्रिगुणं वाच्यं, परमेतद्वार्त्तिकविधिः तरुणप्रभसूरिकृतबालावबोधादौ लिखितो नाऽस्ति, ततो वन्दनकं दत्त्वा दैवसिकप्रतिक्रमणं पूर्ववत्कार्यं, नवरं भवनदेवतास्तुतिरधिका कथ्यते, तत्र हेतुगर्भे हेतुर्यथा–क्षेत्रदेवतायाः प्रत्यहं स्मृतौ भवनस्य क्षेत्रान्तरगतत्वेन भवनदेव्या अपि स्मृतिः कृतैव, तथापि पर्वदिने तस्या अपि बहुमानार्हत्वात् कायोत्सर्गः साक्षात् क्रियते, पाक्षिकादिपर्वत्रयेऽपि । विधिप्रपायां तु प्रोक्तं “संवच्छरिए भवणदेवया काउस्सग्गो न कीरइ न य थुई, असज्झाइ काउस्सग्गो वि न कीरइ” इति । पर्वत्रयेऽपि गुरुणा वर्धमानस्तुतित्रये कथिते चाऽन्ये वर्धमानस्तुतिं भणन्ति । श्रीखरतरगच्छे सति तद्गोत्रीयादिश्रावके जयतिहुयणनमस्कारं बोहित्थरागोत्रीयः

दत्त्वा नमस्कारत्रय कथयित्वा मधुरस्वरेण व्यक्ताक्षर सावधानचित्तः सूत्रार्थं मनसि चिन्तयन् वंदित्तुसूत्र गुणयति श्रोतारश्च पूर्वोक्तविधिना कायोत्सर्गं कृत्वा शृण्वन्ति । ततः सूत्रसमाप्तौ नमस्कारेण पारयित्वा सर्वेऽप्यूर्ध्वं स्थित्वैव नमस्कारत्रय पठित्वा उपविश्य नमस्कारत्रय–सामायिकसूत्रत्रयपूर्वं, "इच्छामि पडिक्कमिउ जो मे पक्खिओ अइयारो कओ" इत्यादिदण्डक पठित्वा, साधुः साधुप्रतिक्रमणसूत्र, श्राद्धः श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र भणति । श्रावकस्तु एको गुर्वादेशेन कथयति अन्ये शृण्वन्तीति गच्छप्रवृत्तिः, तत उत्थाय "अब्भुट्ठिओमि आराहणाएत्ति" दण्डक पठित्वा क्षमाश्रमणदानेन कथयति "इच्छाकारेण संदिसह भगवन् मूलगुण–उत्तरगुणातिचारविशुद्धिनिमित्त करेमि काउस्सग्ग", गुरुर्ब्रूते "करेह तत इच्छ करेमि भंते इच्छामि ठामि काउस्सग्गं अन्नत्थूससिएण" मित्यादि भणित्वा प्रतिक्रमणेन न शुद्धाना अतिचाराणा विशुद्ध्यर्थं द्वादशचतुर्विंशतिस्तवचिन्तनरूप कायोत्सर्गं कुर्यात् । चातुर्मासिके कायोत्सर्गे विंशतिचतुर्विंशतिस्तवचिन्तन कुर्यात्, तथा सांवत्सरिके कायोत्सर्गे च चत्वारिंशच्चतुर्विंशतिस्तवान् नमस्कारमेकमधिक च चिन्तयेत्, तत पारयित्वा चतुर्विंशतिस्तवमेक कथयित्वा उपविश्य मुखवस्त्रिकां प्रतिलेख्य वन्दनकद्वय दत्त्वा, इच्छाकारेण संदिसह भगवन् समाप्तखामणेण अब्भुट्ठिओमि अब्भिंतर पक्खिय चउमासिय संवच्छरिय खामेउ इत्यादिना समाप्तक्षामणक विधत्ते, अत्र गच्छप्रवृत्त्या गुरुर्वक्ति पुण्यवन्त त्रीणि त्रीणि नमस्कार कही च्यार खमासमण देइ पक्खिय चउमासिय संवच्छरिय खामणा खामह, ततः साधव क्षामणासूत्रालापकैः वारचतुष्टयं क्षामयन्ति । श्राद्धस्तु चतुर्भिश्छोभवन्दनैः भूतलन्यस्तमस्तको वारचतुष्टय त्रीन् त्रीन् नमस्कारान् भणति, उक्त च हेतुगर्भे—

दुगइ आवस्सिय करिअ साहुव ववत्तो निज्जीवथंडिले गतुं अणुजाणह–जस्सावग्गहोत्ति भणिऊण दिसिपवणगामसूरियाए समयविहिणा उच्चारपासवणे वोसिरिअ फासुअजलेण आयमिय पोसहसालाए आगतूण निसिहीआइ पुव पविसिअ इरि यावहियं पडिक्कमिअ खमासमणपुव भणति, इच्छाकारेण संदिसह भगवन् गमणागमण आलोयह इच्छ आवस्सिअ करिअ अवरदक्खिणप्पमुहदिसाए गच्छिअ दिसालोअ करिअ संडासए थंडिल च पडिलेहिअ उच्चारपासवण वोसिरिअ निसीहिअ करिअ पोसहसाल पविट्ठा आवतजतेहिं ज खंडिअ ज विराहिअ तस्स मिच्छामि दुक्कड", तओ सज्झाय ताव करेइ जाव पच्छिमपहरो जाए अ, तम्मि खमासमणपुव पडिलेहण करेमि, पुणो पोसहसाल पमज्जेमि त्ति पुव च अग पडिलेहण काऊ पोसहसाल दंडपुच्छणेण पमज्जिअ कज्जेअ उद्धरिअ परिट्ठविअ इरिय पडिक्कमिअ ठवणायरिअ पडिलेहिअ ठवेइ । तओ गुरुसमीवे ठवणायरीय समीवे वा खमासमणदुगेण मुहपोत्तिं पडिलेहिअ पढमखमासमणे इच्छाकारेण संदि-सह भगवन् सज्झाय संदिसावेमि बीअ, खमासमणे सज्झाय करेमि त्ति भणिअ सज्झाय वदणय दाऊण गुरुसक्खिय पच्च-क्खाइ, तओ खमासमणदुगेण उवहि थंडिलपडिलेहण संदिसावीय उवहि पडिलेहण करेमि खमासमणदुगेण वइसण संदि-सावेमि वइसण ठाएमि त्ति भणिय वत्थकमलाइ पडिलेहेइ । इत्थ जो अभत्तट्ठी स सव्वोवहि पडिलेहाणतर कडिपट्टय पडिलेहेइ, जो पुण भत्तट्ठी सो कडिपट्टय पडिलेहिअ, उवहिं पडिलेहि इति विसेसो । तओ सज्झाय ताव करेइ जाव कालवेला, जायाए अतीए उच्चारपासवण थंडिले चउवीस पडिलेहिअ, जइ तम्मि दिणे चउद्दसीए पक्खियं चाउम्मासं

तउ भवसिन्धुकुलगुरुपादमूले द्वादशावर्तवन्दना दियइ, शक्तिसंभवइ चउविहार उपवास प्रत्याख्यान करइ, शक्ति असंभवइ सुगुरुपदिष्टतिविहारोपवास प्रत्याख्यान करइ, पछे एक खमासमणे इच्छाकारेण सदिसह भगवन् बहुवेल सदिसावेमि भणी । बीय खमासमणे भगवन् बहुवेल करेमि पाछइ एक खमासमणे इच्छाकारेण सदिसह भगवन् सज्झाय संदिसावेमि ३ चउत्थ खमासमणे इच्छाकारेण संदिसह भगवन् सज्झाय करेमि इसु भणि ४ पाचमइ खमासमणे इच्छा० स० भ० बइसण सदिसावेमि ५ छट्ठइ खमासमणे इच्छा० स०, भ० बइसण ठाएमि इसु भणइ ६ पछइ उपधान तप तणउ द्वादशावर्त्त वादणा देइ करी मुहपत्ति मुखे देइ करी मधुरस्वरइ सज्झाय करइ इति । तओ जायाए पऊण पोरिसिए खमासमणदुगेण पडिलेहण संदिसाविअ मुहपत्ति य पडिलेहिय भोयणपाणभायणाइ पडिलेहइ, तओ पुणो सज्झाय करेइ जाव कालवेला ताहे आवस्सिआइ पुव्वं चेइहरे गतु देवे वदेइ, उवहाणवाही पुण पचहिं सक्कत्थएहिं देवे वदेइ तओ जइ पारणाइ तओ पच्चक्खाणे पुन्ने खमासमणदुगपुव्व मुहपत्तिं पडिलेहिअ भणइ भातपाणी पारावेइ उवहाणी नवकारसहिओ चउविहारो इयरो भणइ पोरिसी पुरिमड्ढो वा तिविहाहारं चउविहाहार वा एकासण नीवी आंबिल वा जाव काइवेलातीए भत्तपाणं परावेमित्ति, तओ सक्कत्थय भणिय खण सज्झाय च काऊ जहा संभव अतिहिसविभाग काऊ मुह हत्थे पडिलेहिअ नमुक्कारपुव्व अरत्त दुट्ठो असुरसुर अचबचब अदुअम विलविअ अपरिसाडिअ जेमेइ, ■ पुण निअघरे अहाप्पवच फासुअति पोसहसालाए वा पुव्वसंदिट्ठसयणोवणीयं न य भिक्ख हिंडइ, तओ आसणाओ अचलिओ चेव दिवसचरिमं पच्चक्खइ तओ इरियावहिय पडिक्कमिअ सक्कत्थय भणइ, जइ पुण सरीरचिंताए अट्ठो तो नियमा

दुगइ आवस्सिय करिअ साहुष उवच्चो निज्जीवथंडिले गंतु अणुजाणह—जस्सावग्गहोत्ति भणिऊण दिसिपवणगामसूरियाए समयविहिणा उच्चारपासवणे वोसिरिअ फासुअजलेण आयमिय पोसहसालाए आगतूण निसिहीआइ पुव्व पविसिअ इरि यावहिय पडिक्कमिअ खमासमणपुव्व भणति, इच्छाकारेण संदिसह भगवन् गमणागमण आलोयह इच्छं आवस्सिअ करिअ अवरदक्खिणप्पमुहदिसाए गच्छिअ दिसालोअ करिअ सन्नासए थंडिल च पडिलेहिअ उच्चारपासवण वोसिरिअ निसीहिअ करिअ पोसहसाल पविट्ठा आवतजंतेहिं ज खंडिअ ज विराहिअ तस्स मिच्छामि दुक्कड", तओ सज्झाय ताव करेइ जाव पच्छिमपहरो जाए अ, तम्मि खमासमणपुव्व पडिलेहण करेमि, पुणो पोसहसाल पमज्जेमि त्ति पुव्व च अग पडिलेहण काऊ पोसहसाल दंडपुच्छणेण पमज्जिअ कज्जेअ उद्धरिअ परिठ्ठविअ इरिय पडिक्कमिअ ठवणायरिअ पडिलेहिअ ठवेइ । तओ गुरुसमीवे ठवणायरीय समीवे वा खमासमणदुगेण मुहपोत्तिं पडिलेहिअ पढमखमासमणे इच्छाकारेण संदि-सह भगवन् सज्झाय संदिसावेमि बीअ, खमासमणे सज्झायं करेमि त्ति भणिअ सज्झाय वदणयं दाऊण गुरुसक्खिय पच्च-क्खाइ, तओ खमासमणदुगेण उवहि थंडिलपडिलेहण संदिसावीय उवहि पडिलेहण करेमि खमासमणदुगेण बइसण संदि-सावेमि बइसण ठाएमि त्ति भणिय वत्थकबलाइ पडिलेहेइ । इत्थ जो अभत्तट्ठी स सव्वोवहि पडिलेहाणतर कडिपट्टय पडिलेहेइ, जो पुण भत्तट्ठी सो कडिपट्टय पडिलेहिअ, उवहिं पडिलेहि इति विसेसो । तओ सज्झाय ताव करेइ जाव कालवेला, जायाए अतीए उच्चारपासवण थंडिले चउवीसं पडिलेहिअ, जइ तम्मि दिणे चउद्दसीए पक्खियं चाउम्मासं

तउ भयसिन्धुकुलगुरुपादमूले द्वादशावर्तवन्दना दियइ, शक्तिसंभवइ चउविहार उपवास प्रत्याख्यान करइ, शक्ति असंभवइ सुगुरूपदिष्टतिविहारोपवास प्रत्याख्यान करइ, पछे एक खमासमणे इच्छाकारेण संदिसह भगवन् बहुवेल संदिसावेमि भणी। बीय खमासमणे भगवन् बहुवेल करेमि पाछइ एक खमासमणे इच्छाकारेण संदिसह भगवन् सज्झाय संदिसावेमि २ चउत्थ खमासमणे इच्छाकारेण संदिसह भगवन् सज्झाय करेमि इसु भणि ४ पाचमइ खमासमणे इच्छा० सं० भ० बइसण संदिसावेमि ५ छट्ठइ खमासमणे इच्छा० सं०, भ० बइसण ठाएमि इसु भणइ ६ पछइ उपधान तप वणउ द्वादशावर्त वांदणा देइ करी मुहपत्ति मुखे देइ करी मधुरस्वरइ सज्झाय करइ इति। तओ जायाए पऊण पोरिसिए खमासमणदुगेण पडिलेहण संदिसाविअ मुहपत्तिं य पडिलेहिय भोयणपाणभायणाइ पडिलेहइ, तओ पुणो सज्झायं करेइ जाव कालवेला ताहे आवस्सिआइ पुव्वं चेइहरे गतु देवे वंदेइ, उवहाणवाही पुण पचहिं सक्कत्थएहिं देवे वंदेइ तओ जइ पारणाइ तओ पच्चक्खाणे पुन्ने खमासमणदुगपुव्व मुहपत्तिं पडिलेहिअ भणइ भातपाणी पारावेह उवहाणी नवकारसहिओ चउविहारो इयरो भणइ पोरिसो पुरिमड्ढो वा तिविहाहार चउविहाहार वा एकासण नीवी आंबिल वा जाव काइवेलातीए भत्तपाण पारावेमित्ति, तओ सक्कत्थय भणिय खण सज्झाय च काऊ जहा संभव अतिहिसंविभाग काऊ मुह हत्थे पडिलेहिअ नमुक्कारपुव्व अरत्त दुट्ठो असुरसुर अचवचव अदुअम विलंबिअ अपरिसाडिअ जेमेइ, त पुण निअघरे अहाप्पवत्त फासुमति पोसहसालाए वा पुव्वसंदिट्ठसयणोवणीय न य भिक्ख हिंडइ, तओ आसणाओ अचलिओ चेव दिवसचरिमं पच्चक्खइ तओ इरियावहिय पडिक्कमिअ सक्कत्थय भणइ, जइ पुण सरीरचिंताए अट्ठो तो नियमा

वुग्गइ आयस्सिय करिअ साहुव ववत्तो निर्जीवथडिले गंतु अणुजाणह—जस्सावग्गहोत्ति भणिऊण दिसिपवणगामसूरियाए समयविहिणा उच्चारपासवणे वोसिरिअ फासुअजलेण आयमिय पोसहसालाए आगतूण निसिहीआइ पुव पविसिअ इरियावहियं पडिक्कमिअ खमासमणपुव भणाति, इच्छाकारेण संदिसह भगवन् गमणागमण आलोयह इच्छ आवस्सिअ करिअ अवरदक्खिणप्पमुहदिसाए गच्छिअ दिसालोअ करिअ संडासए थंडिल च पडिलेहिअ उच्चारपासवण वोसिरिअ निसीहिअ करिअ पोसहसाल पविट्ठा आवतजतेहिं ज खडिअ जं विराहिअ तस्स मिच्छामि दुक्कड", तओ सज्झाय ताव करेइ जाव पच्छिमपहरो जाए अ, तम्मि खमासमणपुव पडिलेहण करेमि, पुणो पोसहसाल पमज्जेमि त्ति पुव च अग पडिलेहण काऊ पोसहसाल दंडपुच्छणेण पमज्जिअ कज्जेअ उद्धरिअ परिट्ठविअ इरिय पडिक्कमिअ ठवणायरिअ पडिलेहिअ ठवेइ। तओ गुरुसमीवे ठवणायरीय समीवे वा खमासमणदुगेण मुहपोत्तिं पडिलेहिअ पढमखमासमणे इच्छाकारेण संदिसह भगवन् सज्झाय संदिसावेमि बीअ, खमासमणे सज्झाय करेमि त्ति भणिअ सज्झाय वदणय दाऊण गुरुसक्खिय पच्चक्खाइ, तओ खमासमणदुगेण उवहि थंडिलपडिलेहण संदिसावीय उवहि पडिलेहण करेमि खमासमणदुगेण वइसण संदिसावेमि वइसण ठाएमि त्ति भणिय वत्थकम्बलाइ पडिलेहेइ। इत्थ जो अभत्तट्ठी स सव्वोवहि पडिलेहणांतरं कडिपट्टय पडिलेहेइ, जो पुण भत्तट्ठी सो कडिपट्टय पडिलेहिअ, उवहिं पडिलेहि इति विसेसो। तओ सज्झायं ताव करेइ जाव कालवेला, जायाए अतीए उच्चारपासवण थंडिले चउवीस पडिलेहिअ, जइ तम्मि दिणे चउद्दसीए पक्खियं चाउम्मासं

प्रपचः श्रीजिनवल्लभसूरिविरचितपौषधविधिप्रकरणादवसेयः । तथा अत्र श्रीतरुणप्रभसूरिबालावबोधे पूर्वं परिधान प्रतिलेख्य पश्चात् स्थापनाचार्यं प्रतिलेखयतीत्युक्त, अत्र च विधिप्रपाया स्थापनाचार्यं प्रतिलेख्य पश्चात् परिधान प्रतिलेखयतीत्युक्त १ तथा 'इयरो भणइ' इत्यत्र उपधानपौषध विना पौषधमध्ये भक्तपानीयपारणविधिरुक्त २ तथा तृतीयप्रहरप्रतिलेखनायां स्थापनाचार्यप्रतिलेखनानन्तर श्रावकैस्तु साधुवत् स्वाध्यायकरण उपदिष्ट ३ पुन तत्रैव स्वाध्यायानन्तर प्रत्याख्याननिमित्त वन्दनकदान पौषधिकस्य प्रतिपादित ४ तथा तरुणप्रभसूरिबालावबोधे प्रोक्तमिद, यदुत श्रावको गोदोहनवेलायां साधुसमीपे समागत्य १ अगप्रतिलेखना १ वस्त्रप्रतिलेखना २ उच्चारभूमिप्रतिलेखना ३ च कृत्वा ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य पश्चात् पौषध करोति इति, तत्र रात्रौ कथ तेषा त्रयाणा प्रतिलेखना शुद्ध्यति ? तथा प्रवृत्तिरपि नो दृश्यते ५ तथा सायमप्रतिलेखितोऽपकरणैः पाश्चात्यरात्रौ पौषधकरण निगदितम् ६ इति । शब्दपद्ध मिसवादिप्राय दृश्यते, गच्छप्रवृत्त्या सम, पुन तदभिप्राय ग्रन्थकर्तारोऽन्येऽपि च बहुश्रुता विदन्तीति नाऽस्माकमभिनिवेशो, यथाऽस्ति तथा प्रमाणम् ॥ ८५ ॥

॥ इति पौषधकरणानुक्रमाधिकार ॥ ८५ ॥

ननु–दीक्षा–दानविधि कुत्र प्रतिपादितोऽस्ति ? उच्यते—श्रीविधिप्रपाया, अत्र शिष्याणा सुखावबोधार्थं स एव पाठ संस्कृतीकृत्य लिख्यते, श्रावकः कदाचित् चारित्रमोहनीयकर्मक्षयोपशमेन प्रव्रज्यापरिणामे जाते दीक्षा प्रतिपद्यते, अत

तस्या विधिर्भण्यते, प्रव्रज्यादिनात् पूर्वदिने सन्ध्यासमये प्रतग्राहिसत्त्वो यथा विभूत्या मङ्गलतुर्यसहितो रजोहरणादिवेपसगत–च्छन्यकेन सधवाशुचिनारीशिरसि न्यस्तेन सम समागत्य गुरुवसत्यां समवसरणादि पूजासत्कारा–क्षतावर्तनालिकेरसहितो कृत्वा गुरूणा पादौ वन्दते, ततो गुरुर्वासचन्दनाक्षतानभिमन्त्र्य शिष्यशिरसि वासक्षेपं कुर्याद्, वर्धमानविद्यादिभिः । अट्टा [आट्टी] अधिवास्य कुसुम्भरक्तदशिकाया वद्धाक्षयति चन्दनमक्षताश्च शिरसि ददाति, ततो रजोहरणादिवेपमधिवास्य तस्य मध्ये पूगीफलानि पञ्च सप्त नव पञ्चविंशतिर्वा प्रक्षेपयति, भूतिपोट्टिका च, ततो वेपछ्च्यकेन सधवानारीशिरोन्यस्तेन सम उभयपार्श्वस्थितयोः हस्तगृहीतनिष्कोशखड्गयो द्वयोः पुरुषयोः सतोर्गृहं गत्वा जिनविम्बानि पूजयित्वा तेषा पुरस्तात् शासनदेवताया वा पुरस्तात् छब्बक स्थापयित्वा रात्रिजागरण कुर्वन्ति श्रावकाः, श्राविकाश्च देवगुरूणां चतुर्विधसघस्य च गीतानि गायन्त्यस्तिष्ठन्ति यावत् प्रभातवेला । तत प्रभाते गुरूणां चतुर्विधसघसहिताना गृहमागताना पूजा कृत्वा अमारिघोषणपूर्वं दान ददाति यथोचित स्वजनादिवर्गं सन्मानयति, तत तस्य मातृपितृबन्धुवर्गो गुरूणा पादौ वन्दयित्वा भणति–"इच्छाकारेण सचित्त भिक्ख पडिग्गहेह" गुरुर्भणति–"इच्छामो वट्टमाणजोगेण" ततो सघसहितेन यानादिषु समारूढो मङ्गलतुर्यरवेण स्वयमेव दान ददन् जिनभवन समागच्छति, लग्नादिकारणे पश्चाच्चलितो जिनाना पूजा करोति, ततोऽक्षतैर्नालिकेरसहितैः अञ्जलिं भृत्वा नमस्कारपूर्वं प्रदक्षिणात्रयं ददाति, तत पूर्वोक्तविधिना पुष्पाणि अक्षताश्च क्षिपति दीक्षानिमित्त, तत पश्चात् ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य क्षमाश्रमणपूर्वं पूर्वप्रतिपन्नसम्यक्त्वादिगुण शिष्यो

प्रपञ्च श्रीजिनवल्लभसूरिविरचितपौषधविधिप्रकरणादवसेय । तथा अत्र श्रीतरुणप्रभसूरिबालावबोधे पूर्वं परिधानं प्रतिलेख्यः पश्चात् स्थापनाचार्यं प्रतिलेखयतीत्युक्तं, अत्र च विधिप्रपाया स्थापनाचार्यं प्रतिलेख्य पश्चात् परिधान प्रतिलेखयतीत्युक्त १ तथा 'इयरो भणइ' इत्यत्र उपधानपौषध विना पौषधमध्ये भक्तपानीयपारणविधिरुक्त २ तथा तृतीयप्रहरप्रतिलेखनायां स्थापनाचार्यप्रतिलेखनानन्तर श्रावकैस्तु साधुवत् स्वाध्यायकरण उपदिष्ट ३ पुन तत्रैव स्वाध्यायानन्तर प्रत्याख्याननिमित्तं वन्दनकदानं पौषधिकस्य प्रतिपादित ४ तथा तरुणप्रभसूरिबालावबोधे प्रोक्तमिद, यदुत श्रावको गोदोहनवेलायां साधुसमीपे समागत्य १ अगप्रतिलेखना १ वस्त्रप्रतिलेखना २ उच्चारभूमिप्रतिलेखना ३ च कृत्वा ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य पश्चात् पौषध करोति इति, तत्र रात्रौ कथ तेषा त्रयाणा प्रतिलेखना शुद्ध्यति ? तथा प्रवृत्तिरपि नो दृश्यते ५ तथा सायमप्रतिलेखितोऽपकरणैः पाश्चात्यरात्रौ पौषधकरण निगदितम् ६ इति । शब्दसद्भ विसवादिप्राय दृश्यते, गच्छप्रवृत्त्या समं, पुन तदभिप्राय ग्रन्थकर्तारोऽन्येऽपि च बहुश्रुता विदन्तीति नाऽस्माकमभिनिवेशो, यथाऽस्ति तथा प्रमाणम् ॥ ८५ ॥

॥ इति पौषधकरणानुक्रमाधिकार ॥ ८५ ॥

ननु–दीक्षा–दानविधिः कुत्र प्रतिपादितोऽस्ति ? उच्यते—श्रीविधिप्रपाया, अत्र शिष्याणा सुखावबोधार्थं स एव पाठ

तस्या विधिमप्यत, प्रव्रज्यादिनात् पूर्वदिने सन्ध्यासमये प्रतग्राहिसत्त्वो यथा विभूत्या मङ्गलतुर्यसहितो रजोहरणादिवेपसंगत–च्छन्नकेन सधवाशुचिनारीशिरसि न्यस्तेन सम समागत्य गुरुवसत्या समवसरणादि पूजासत्कारा–क्षतावर्तनालिकेरसहितो कृत्वा गुरूणा पादौ वन्दते, ततो गुरुर्वासचन्दनाक्षतानभिमन्त्र्य शिष्याशिरसि वासक्षेपं कुर्याद्, वर्धमानविद्यादिभिः। अष्ट [आष्टी] अधिवास्य कुसुम्भरक्तदशिकाया उद्ग्राहयति चन्दनमक्षताश्च शिरसि ददाति, ततो रजोहरणादिवेपमधिवास्य तस्य मध्ये पूगीफलानि पञ्च सप्त नव पञ्चविंशतिर्वा प्रक्षेपयति, भूतिपोट्टिका च, ततो वेपछन्नकेन सधवानारीशिरोन्यस्तेन सम उभयपार्श्वस्थितयोः हस्तगृहीतनिष्कोशखड्गयो द्वयोः पुरुषयो सतोर्गृहं गत्वा जिनबिम्बानि पूजयित्वा तेषा पुरस्तात् शासनदेवताया वा पुरस्तात् छन्नक स्थापयित्वा रात्रिजागरण कुर्वन्ति श्रावकाः, श्राविकाश्च देवगुरूणां चतुर्विधसघस्य च गीतानि गायन्त्यस्तिष्ठन्ति यावत् प्रभातवेला। तत प्रभाते गुरूणा चतुर्विधसघसहिताना गृहमागताना पूजा कृत्वा अमारिघोषणपूर्वं दान ददाति यथोचित स्वजनादिवर्ग सन्मानयति, ततः तस्य मातृपितृबन्धुवर्गो गुरूणा पादौ वन्दयित्वा भणति–"इच्छाकारेण सचित्त भिक्ख पडिग्गहेह" गुरुर्भणति–"इच्छामो वट्टमाणजोगेण" ततो सघसहितेन यानादिषु समारूढो मङ्गलतुर्यरवेण स्वयमेव दान ददन् जिनभवन समागच्छति, लग्नादिकारणे पश्चाद्वलितो जिनाना पूजा करोति, ततोऽक्षतैर्नालिकेरसहितैः अञ्जलिं भृत्वा नमस्कारपूर्वं प्रदक्षिणात्रय ददाति, तत पूर्वोक्तविधिना पुष्पाणि अक्षताश्च क्षिपति दीक्षानिमित्त, तत पश्चात् ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य क्षमाश्रमणपूर्वं पूर्वप्रतिपन्नसम्यक्त्वादिगुण शिष्यो

भणति "इच्छाकारेण तुब्भे अम्ह सव्वविरइसामाइय आरोवणत्थं चेइआइ वदावेह", य पुन पूर्वाऽप्रतिपन्नसम्यक्त्वादि-गुण स "सम्मत्तसामाइय १ सुअसामाइय २ सव्वविरइसामाइय ३ आरोवणत्थ ति" भणति, गुरुराह "वदावेमो" पुनरपि क्षमाश्रमण दत्त्वा गुरुपुरतो जानुभ्या तिष्ठति गुरुरपि तस्य शीर्षे वास क्षिपति, ततो गुरुणा सह चैत्यानि वन्दते, गुरुरपि स्वयमेव शान्तिनाथ–शान्तिदेवतादिस्तुतीर्ददाति शासनदेवताकायोत्सर्गे उद्द्योतकरचतुष्क चदेसुनिम्मलयरा पर्यन्त चिन्तयति, गुरुरपि पारयित्वा स्तुतिर्ददाति, शेषाः कायोत्सर्गस्थिता शृण्वन्ति, पश्चात् सर्वेऽपि उद्द्योतकर पठन्ति, ततो नमस्कारत्रिक कथयन्ति, ततो जानुभ्यां स्थित्वा शक्रस्तव पञ्चपरमेष्ठिस्तवं च भणन्ति, ततो गुरुर्वेष अभिमन्त्रयति पश्चात् क्षमाश्रमण दत्त्वा शिष्यो भणति "इच्छाकारेण सदिसह [भगवन्] तुब्भे अम्ह रयहरणाइ वेस समप्पेह", ततो नमस्कारपूर्वं सुगृहीत करेहत्ति भणन् शिष्यो दक्षिणबाहुसमुख रजोहरणदसिका कुर्वन् पूर्वाभिमुख उत्तराभिमुखो वा वेष समर्पयति, पुनः क्षमाश्रमण दत्त्वा रजोहरणादिवेषं गृहीत्वा ईशानदिशि गत्वा आभरणाद्यलङ्कार उन्मुञ्चति वेष च परिदधाति, प्रदक्षिणावर्तं चतुरङ्गुलोपरि कर्तितकेशो गुरुपार्श्वमागत्य क्षमाश्रमण दत्त्वा भणति "इच्छाकारेण तुम्हे अम्ह अट्ठ गिण्हह" पुनः क्षमाश्रमण दत्त्वा ऊर्ध्वस्थितस्य ईषद् अवनतकायस्य नमस्कारत्रिक उच्चारयित्वा ऊर्ध्वस्थितो गुरुः प्राप्ताया लग्न-वेलाया समकालनाडीद्विकप्रवाहवर्जं अभ्यन्तर प्रविश्य श्वास अस्खलित अट्टात्रिक गृण्हाति, तत् समीपस्थितसाधुः सदशा-चलेन अट्टाः प्रतीच्छति, ततः क्षमाश्रमणं दत्त्वा शिष्यो भणति "इच्छाकारेण तुब्भे अम्ह सव्वविरइसामाइयआरोवणत्थ

काउस्सग्ग करावेह, खमासमणपुव सव्वविरइसामाइय आरोवणत्थ करेमि काउस्सग्गं अन्नत्थूससिएण"मित्यादि पठित्वा उद्द्योतकर सागरवरगम्भीरा पर्यन्त शिष्यो गुरुश्च द्वावपि चिन्तयत पारयित्वा उद्द्योतकर भणतः, तत क्षमाश्रमण दत्त्वा शिष्यो भणति, इच्छाकारेण तुम्मे अम्ह सव्वविरइसामाइयसुत्त उच्चरावेह, गुरुराह, उच्चरावेमो। पुनः क्षमाश्रमण दत्त्वा ईषदवनतकायो गुरुवचन अनुवदन् नमस्कारत्रिकपूर्व सव्वविरइसामाइयसूत्र वारत्रिक उच्चरति, ततो गुरुर्मन्त्रोच्चारपूर्व प्रणाम कृत्वा लोकोत्तमाना पादेषु वास क्षिपति, अक्षतानभिमन्त्र्य सघाय ददाति। ततः क्षमाश्रमण दत्त्वा शिष्यो भणति "सदिसह किं भणामो" गुरुर्भणति "वदित्ता पवेयह", पुनः क्षमाश्रमण दत्त्वा भणति "इच्छाकारेण तुम्हे अम्ह सव्वविरइसामाइय आरोवेह गुरुर्वासक्षेपपूर्व भणति" आरोवियं २ खमासमणेण हत्थेणं सुत्तेण तदुभएण सम्म धारणीय चिर पालनीय नित्थारगपारगाहोहि, गुरुगुणेहिं वुड्ढाहिं, सीसो, इच्छामो अणुसट्ठिंत्ति भणित्वा क्षमाश्रमण दत्त्वा भणति तुम्हाण पवेइय सदिसह साहूणं पवेएमि, ततः क्षमाश्रमण दत्त्वा नमस्कारमुच्चरन् प्रदक्षिणां ददाति, वारत्रय सघश्च तच्छिरसि अक्षत-निक्षेप करोति, ततः क्षमाश्रमण दत्त्वा भणति "तुम्हाण पवेइय साहूण पवेइय संदिसह काउस्सग्ग करेमि", गुरुर्भणति करेह। पुन क्षमाश्रमण दत्त्वा "सव्वविरइ आरोवणत्थ करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थूससिएण"मित्यादि पठित्वा सागरवरगम्भीरा पर्यन्त उद्द्योतकर चिन्तयित्वा पारयित्वा उद्द्योतकर पठति, ततः क्षमाश्रमणपूर्व भणति "इच्छाकारेण तुब्भे अम्ह सव्वविरइ सामाइयथिरीकरणकाउस्सग्ग करावेह, सव्वविरइसामाइयथिरीकरणत्थ करेमि काउस्सग्ग" तत्र सागरवरगमी-

रापर्यन्त उद्‌द्योतकर चिन्तयित्वा पारयित्वा उद्‌द्योतकरं पठति । तत' क्षमाश्रमण दत्त्वा "इच्छाकारेण तुम्भे अम्ह नाम-ठवणं करेह गुरुर्भणति "करेमो ।" ततो वासं क्षिप्यन् रविशशिगुरुसोमगोचरशुद्ध्या यथोचित नाम करोति, तत कृत-नामा शिष्यः सर्वसाधून् वन्दते, आर्यिकाः श्रावका' श्राविका अपि त वन्दन्ते । ततः क्षमाश्रमणपूर्व शिष्यो गुरु भणति "तुम्भे अम्ह धम्मोवएस देह" "पुन: क्षमाश्रमण दत्त्वा जानुभ्या स्थितः शिष्यः शृणोति गुरुर्भणति" "चत्तारि परमगाणि इत्याद्युत्तराध्ययनाना तृतीयमध्ययनं "पवज्जा विहाण वा जयं चरे जय चिट्ठे" इत्यादि वा सोऽपि च सवेगातिशयतस्तथा शृणोति यथाऽन्योऽपि कोऽपि पवज्जति, अत्र संग्रहगाथा—

"चिइवदणवेसप्पण—समचत्तरगुलग अट्ठ[ट्ठी]गहो । सामाइअ तिअकड्ढण—तिपयाहिण वास उस्सग्गो ॥ १ ॥"

॥ इति दीक्षादानविधिरधिकारः ॥ ८६ ॥

ननु—सप्तसु उपधानेषु श्राद्धाना कस्मिन् उपधाने कति उपवासा ?, १ कति पौषधा ?, २ किं नाम ?, ३ क उपधानप्रवेश-विधिः ?, ४ का प्रभाते क्रिया ?, ५ का तृतीयप्रहरे क्रिया ?, ६ को वाचनाकरणविधिः ?, ७ क उत्क्षेपविधिः ?, ८ को निक्षेपविधिः ?, ९ का कर्तव्यता नित्य ? १० का च पडिपुण्णाविगइपारणा कर्तव्यता ?, ११ ? अत्रोच्यते—एतेषा एकादशप्रश्नाना उत्तरस्वरूप किंचिद्विधिप्रपा—तरुणप्रभसूरिबालावबोधानुसारेण किंचित् संप्रदायानुसारेण, किंचिच्च सांप्रत श्रावकक्रियमाण-क्रियानुसारेण शिष्यसुखावबोधार्थ प्राकृत—संस्कृत—वार्तिकरूपतया लिख्यते । तत्र प्रथम प्रत्युपधान उपवाससख्या १ पौष

धसंख्या २ नामानि ३ चाऽऽह—पचमगलमहासुअखधे पढम दुवालसं तओ पंचण्ह अज्झयणाण नमोअरिहताण इत्यत आरम्य नमो लोए सव्वसाहूण यावत् पगा वायणा दिज्जइ १। इत्थ पुण अज्झयणा अट्ठ तओ आयविल अट्ठग अट्ठमं च ३ तओ तिण्हं अज्झयणाण एसो पच नमुक्कारो इत्यत आरम्य हवइ मगल यावत् बीया वायणा दिज्जइ २ अत्रोपवासा सार्धद्वादश, पौषधार्विशतिः, विधिना वहनेतु उपवासा द्वादश पौषधाश्च षोडश, इद पचमगलमहासुअखंध नमुक्कारतपः विसढेति नाम इद प्रथमोपधान।१। इरियावहिआ—सुअखधे वि अट्ठ अज्झयणा तिणि चरमाणि चूला भिण्णइ, तत्थ दुवालसमे तवे पुण्णे "इच्छाकारेण सदिसह" इत्यत आरम्य जे मे जीवा विराहिया "यावत्" पढमा वायणा दिज्जइ १ तओ आयविल अट्ठमे अट्ठमे च कए एगिंदिया इत्यत आरम्य ठामि काउस्सग्ग यावत् बीआ वायणा दिज्जइ २ अत्राऽपि उपवासाः सार्धद्वादश पौषधार्विंशतिर्विधिना वहने तु उपवासा द्वादश पौषधाः षोडश, इद इरियावहियातप विसढेति नाम इद द्वितीयमुपधान । २ । "भावारिहतत्थए पढम अट्ठम तओ नमुत्थुण" इत्यत आरम्य "गधहत्थीणं" यावत् पढमा वायणा दिज्जइ १ "तओ सोलसएहिं अबिलेहिं गएहिं लोगुत्तमाण" इत्यत आरम्य धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीण यावत् बीया वायणा दिज्जइ २ "पुणो तओ सोलसहिं अबिलेहिं गएहिं अप्पडिहयवरनाणदसणधराण इत्यत आरम्य सव्वे तिविहेण वदामि यावत् तइया वायणा दिज्जइ ३ अत्रोपवासा द्वाविंशति पौषधाः पञ्चत्रिंशत्, विधिना वहने तु उपवासा एकोनविंशति पौषधाः पञ्चत्रिंशदेव ३५ इद नमुत्थुण तपः पात्रीसढेति नाम तृतीयमुपधानं । ३ । "ठवणारिहतत्थए पुव्विं चउत्थ तओ

रापर्यन्त चतुर्घोतकर चिन्तयित्वा पारयित्वा चतुर्थ्योतकरं पठति । ततः क्षमाश्रमण दत्त्वा "इच्छाकारेण तुम्भे अम्ह नाम-ठयण करेह गुरुर्भणति "करेमो ।" ततो वास क्षिप्यन् रविशशिगुरुसोमगोचरशुद्ध्या यथोचित नाम करोति, ततः कृत-नामा शिष्यः सर्वसाधून् वन्दते, आर्यिका श्रावका श्राविका अपि त वन्दन्ते । तत क्षमाश्रमणपूर्व शिष्यो गुरु भणति "तुम्भे अम्ह धम्मोवएसं देह" "पुनः क्षमाश्रमण दत्त्वा जानुभ्यां स्थितः शिष्यः शृणोति गुरुर्भणति" "चत्तारि परमगाणि इत्याद्युत्तराध्ययनाना तृतीयमध्ययन "पवज्जा विहाणं वा जय चरे जय चिट्ठे" इत्यादि वा सोऽपि च सवेगातिशयतस्तथा शृणोति यथाऽन्योऽपि कोऽपि पव्वजति, अत्र संग्रहगाथा—

"चिइवदणवेसप्पण–संमत्तरंगुलग्ग अट्ठ[ट्टी]गहो । सामाइअ तिअकड्ढण–तिपयाहिण वास उस्सग्गो ॥ १ ॥"

॥ इति दीक्षादानविधिरधिकार ॥ ८६ ॥

ननु–सत्सु उपधानेषु श्राद्धाना कस्मिन् उपधाने कति उपवासाः?, १ कति पौषधाः?, २ किं नाम?, ३ क उपधानप्रवेश-विधिः?, ४ का प्रभाते क्रिया?, ५ का तृतीयप्रहरे क्रिया?, ६ को वाचनाकरणविधिः?, ७ क उत्क्षेपविधिः?, ८ को निक्षेपविधिः?, ९ का कर्तव्यता नित्य? १० का च पडिपुन्नाविगइपारणा कर्तव्यता?, ११ ? अत्रोच्यते—एतेषा एकादशप्रश्नाना उत्तरस्वरूप किंचिद्विधिप्रपा–तरुणप्रभसूरिबालावबोधानुसारेण किंचित् संप्रदायानुसारेण, किंचिच्च सांप्रत श्रावकक्रियमाण-क्रियानुसारेण शिष्यसुखावबोधार्थं प्राकृत–संस्कृत–वार्तिकरूपतया लिख्यते । तत्र प्रथम प्रत्युपधान उपवाससंख्या १ पौष

अमुग उवहाणतवे पवेसह गुरुर्भणति पवेसेमो नवकारसी करिज्यो, अगपडिलेहण संदिसावजो, उवहाणवाही भणति तहत्ति, तृतीयाद्युपधानप्रवेशे कालवेला पौषधग्रहणे तु नवकारसी करिज्यो, अगपडिलेहण संदिसावज्यो उपधानवाही तहत्ति, तृतीयाद्युपधानप्रवेशे कालवेला पौषधग्रहणे तु नवकारसी करिज्यो, अगपडिलेहण संदिसावज्यो उपधानवाही भणति तहत्ति, अत्र क्षमाश्रमणदानानन्तर चतुर्विधाहार करोतु पानीय वा पिबतु भोजन वा करोतु विचारो व्यवस्था वा नास्ति, अथ केनाऽपि कारणेन सन्ध्याया क्षमाश्रमण न दत्त, तदा पाश्चात्यरात्रौ अपि प्रतिक्रमणवेलात प्राक् पूर्व-रीत्या क्षमाश्रमणदान कार्य, कालवेलाया प्रतिक्रमण कार्य नवकारसीप्रत्याख्यान च मालिकपार्श्वे कार्य। ततो वाच-कादिपदस्थसमीपे समागन्तव्य १ तत्र यदि प्रथमोपधानद्वयं भवेत् तदाऽवश्यं नन्दी कर्तव्या, नन्दीमध्ये एव च तदुपधानस्य उत्क्षेपो विधेयो अथ यदि शेषोपधानानि तदा नन्दीनियमो नाऽस्ति। ततः प्रात' प्रथम तदुत्क्षेपः कार्यः, ततः पौषधसामायिकयोर्ग्रहण ततो वन्दनकपट्टदानपूर्व सुखतपोवन्दनक, ततः सुखतपःपृच्छा च इति उपधानप्रवेशनविधिः।४। अथोपधानवाहिनः प्राभातिकक्रियामाह, उपधानवाही प्रातः पदस्थसमीपे समागत्य, गुर्वादेशेन ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्या आगमनं आलोच्य पौषध सामायिक च गृहीत्वा क्षमाश्रमणद्वयदानपूर्व प्रतिलेखना करोति, ततः क्षमाश्र-मणद्वयदानपूर्व अङ्गप्रतिलेखना करोति, ततो मुखवस्त्रिकां प्रतिलेख्य प्रथमक्षमाश्रमणेन ओहि पडिलेहण संदिसावेमि द्वितीयक्षमाश्रमणेन ओहि पडिलेहण करेमि इति भणति, ततो मुखवस्त्रिका प्रतिलेख्य पदस्थपदे वन्दनपट्ट ददाति, ततो गुरुर्वदति "पवेयणं पवेयह" उपधानवाही च क्षमाश्रमण दत्त्वा अर्धावनतकायः शृणोति, गुरुर्भणति 'अमुगउवहाण-

तिन्नि अविलाणी तओ तिण्ह अज्झयणाण अरिहंतचेइयाणं" इत्यत आरम्य वोसिरामि यावत् एगा वायणा दिज्जइ १ अत्रोपवासाः सार्धौ द्वौ पौषधः चत्वारः इदं अरिहंतचेइयाणं तपः चउक्कडेति नाम चतुर्थमुपधान। ४। "नामारिहंत चउवीसत्थए पढम अट्ठम तओ लोगस्स उज्जोअगरे" इत्यत आरम्य चउवीसपि केवली इति यावत् पढमा वायणा दिज्जइ १ "पुणो बारसहिं आयविलेहिं गयहिं उसममजिअं च वंदे" इत्यत आरम्य वद्धमाण चेति यावत् बीआ वायणा दिज्जइ २ "पुणो तेरसहिं आयविलेहिं एगहिं "एवं मए" इत्यत आरम्य प्रान्त यावत् तइया वायणा दिज्जइ ३ अत्रोपवासाः सार्धसप्तदश, पौषधा अष्टाविंशतिः, विधिना वहने तु उपवासाः सार्धपञ्चदश पौषधास्तु अष्टाविंशतिरेव, इद चउवीसत्थयतपः अट्ठावीसडेति नाम पञ्चममुपधानं। ५। "दव्वारिहंतत्थए पढम चउत्थ तओ पच आयविलाणि अंते पुक्खरवरदीवड्ढे" इत्यत आरम्य सुअस्स भगवओ इति यावत् एगा वायणा दिज्जइ, अत्र उपवासाः सार्धत्रयः पौषधा षट्, इद पुक्खरवरदीवड्ढे तपः छक्कडेति नाम षष्ठं उपधान ॥६॥ सिद्धत्थय–सुयखंधे "सिद्धाण बुद्धाण" इत्यत आरम्य तारेइ नर वा नारिं वा इति यावत् एगा वायणा दिज्जइ, अत्र उपवासः एकः स च चतुर्विधाहार एव पौषधोऽपि एक, इद सिद्धाण बुद्धाण तपोमालेति नाम सप्तम उपधान ॥ ७ ॥ १ अथोपधानप्रवेशनविधिः प्राह–यदि बहवः श्रावकाः श्राविकाश्च उपधाने प्रविशन्ति तदा संघनाम्ना चन्द्रबलं ग्राह्यं, संघस्य कुम्भराशिः ज्ञेयः, तदभावे यो या वा प्रविशति तन्नाम्ना चन्द्रबलं ग्राह्य २ तया उपधानवाही सम्यायाः वाचकादिपदस्थसमीपे समागत्य ईर्यापथिकीं प्रतिक्रमति, ततः क्षमाश्रमणं दत्त्वा भणति

पडिलेहण करेमि २ सज्झाय स० ३ सज्झाय क० ४ बइसण स०५ वइसण क० ६ पांगुरण स० ७ पागुरण पडिग्गहेमि ८ पडिलेहण करेमि २ सज्झाय स० ३ सज्झाय क० ४ बइसण स०५ वइसण क० ६ पांगुरण स० ७ पागुरण पडिग्गहेमि ८ कट्ठासण सदि० ९ कट्ठासण पडिग्गहेमि १० पुनर्मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य वन्दनकद्वय दत्त्वा सुखतपेति पृच्छा, उपधानवाहि भणति तुम्हारइ प्रसादइ । ततः सर्वोपकरणानि प्रतिलिखति मात्रकादिकमपि सर्व प्रतिलिख्यते । तथा यस्मिन् दिने भुक्त तस्मिन् दिने पउणपहरप्रतिलेखनाया स्थालीकच्चोलादिक सर्वमपि भुज्यमान प्रतिलिखति, उपवासदिने तु न, इति उपधाने तृतीयप्रहरसंबन्धी विधिः । ६ ।

अथ वाचनाविधिर्लिख्यते—सन्ध्याया प्रथम चतुर्विधाहार कृत्वा ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य वन्दनकद्वय दत्त्वा पहिलइ उपधानि पचमगलमहासुअखधस्स पढमवायणापडिगहणत्थ काउस्सग्ग करावेमो, पहिलइ उपधानि पचमगलमहासुयखधपढमवायणानिमित्त करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थू० इत्यादि भणनपूर्व कायोत्सर्गे सागरवरगभीरा यावत् लोगस्स १ चिन्त्यते, पारिते च सपूर्ण लो० भणित्वा, ततः क्षमाश्रमणपूर्व इच्छाकारेण पचमंगलमहासुयखंधस्स पढमवायणा पडिगहणत्थ चेइआइ वदावेह गुरुर्भणति वदावेमो, वासक्षेप करावेह गुरुर्भणति करावेमो ततो वासक्षेपः कार्य, ततश्चैत्यवन्दनं ततः क्षमाश्रमणपूर्व इच्छाकारेण सदिसह भगवन् वायण सदिसावेमि बीये खमासमणे वायण पडिगहेमि, ततः क्षमाश्रमण दत्त्वा उपधानवाहिन करद्वयगृहीतमुखवस्त्रिकाच्छादितमुखस्य अर्धावनतगात्रस्य नमस्कारत्रयपूर्व गुरुर्वारत्रय तत्तत्सूत्रालापकस्य वाचनां ददाति, ततो वायणामाहि मिच्छामि दुक्कडमिति वाक्य प्रान्ते, एव इरियावहियसुअखधादिनामोद्देशेन सर्वेषा उपधानाना वाचनाविधिः कार्य इति वाचनाविधि । ७ ।

निरुद्धनिमित्तं वा तव करइ इत्युक्त्वा उपवासं, आयंबिल, एगासण वा, प्रत्याख्यान कारयति, उपवासे आयबिले निरुद्धत्ति वक्तव्यं, एकाशने निर्विकृतिके च निमित्तेति वक्तव्य । तत प्रथमक्षमाश्रमणेन बहुवेल सदिसावेमि द्वितीयक्षमाश्रमणेन बहुवेल करेमि तृ० क्ष० बइसण संदिसावेमि च० क्ष० बइसण ठापमि प० क्ष० सज्झाय संदिसावेमि प० क्ष० सज्झाय करेमि सप्त० क्ष० पागुरण सदिसावेमि अष्टम० क्ष० पागुरण पडिगाहेमि नवम० क्ष० कट्ठासण सदिसावेमि दशम० क्ष० कट्ठासण पडिग्गहेमि । ततो मुखवस्त्रिकां प्रतिलेख्य वन्दनकद्वय ददाति, गुरुर्वदति सुसतप उपधानवाही वदति तुम्हा-रइ पसावइ इति प्रभातसंबन्धी उपधानविधिः । ५ ।

अथ उपधाने तृतीय-प्रहर-संबधिविधिर्लिख्यते, तथाहि—तृतीयप्रहरस्य प्रतिलेखनायां जातायां स्थापनाग्रे मालि-कादेशेन ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य प्रथमक्षमाश्रमणेन पडिलेहणं करेमि द्वितीय क्ष० पोसहसाल पमज्जेमि, इत्युक्त्वा मुख-वस्त्रिकां प्रतिलिखति, एव क्षमाश्रमणद्वयदानपूर्वं अङ्गप्रतिलेखना मुखवस्त्रिका प्रतिलिखति, ततो वसति प्रमार्जयति तत्र यदि तस्मिन् दिने भोजन कृत भवति, तदा पदस्थसमीपे क्रियाकरणादर्वाक् परिधानवेष एक प्रतिलिखति न शेष-मपि, अथ यदि तस्मिन् दिने उपवासो भवति, तदैक वेषमपि न प्रतिलिखति, ततः पदस्थसमीपे समागत्य ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य प्रतिलेखनां अङ्गप्रतिलेखनां च पुनर्गुरुसमक्ष करोति, ततो मुखवस्त्रिकां प्रतिलिख्य वन्दनकद्वं ददाति च-चतुर्विधाहार त्रिविधाहारं वा प्रत्याख्यानं कृत्वा, क्षमाश्रमणद्वयं ददाति [illegible]

पडिलेहण करेमि २ सज्झाय सं० ३ सज्झाय क० ४ नइसण स०५ वइसण क० ६ पांगुरण सं० ७ पागुरण पडिग्गहेमि ८ कट्ठासण संदि० ९ कट्ठासण पडिग्गहेमि १० पुनर्मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य वन्दनकद्वय दत्त्वा सुखतपेति पृच्छा, उपधानवाहि भणति तुम्हारइ प्रसादइ। ततः सर्वोपकरणानि प्रतिलिखति मात्रकादिकमपि सर्वं प्रतिलिख्यते। तथा यस्मिन् दिने भुक्त तस्मिन् दिने पउणपहरप्रतिलेखनाया स्थालीकच्चोलादिकं सर्वमपि भुज्यमान प्रतिलिखति, उपवासदिने तु न, इति उपधाने तृतीयप्रहरसंबन्धी विधिः। ६।

अथ वाचनाविधिर्लिख्यते—सन्ध्याया प्रथम चतुर्विधाहार कृत्वा ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य वन्दनकद्वय दत्त्वा पहिलइ उपधानि पचमगलमहासुअखधस्स पढमवायणापडिगहणत्थ काउस्सग करावेमो, पहिलइ उपधानि पचमगलमहासुयखधपढमवायणानिमित्त करेमि काउस्सग्गं अन्नत्थू० इत्यादि भणनपूर्वं कायोत्सर्गे सागरवरगभीरा यावत् लोगस्स १ चिन्त्यते, पारिते च सपूर्ण लो० भणित्वा, ततः क्षमाश्रमणपूर्वं इच्छाकारेण पचमगलमहासुयखधस्स पढमवायणा पडिगहणत्थ चेइआइ वदावेह गुरुर्भणति वदावेमो, वासक्षेप करावेह गुरुर्भणति करावेमो ततो वासक्षेपः कार्यः, ततश्चैत्यवन्दनं ततः क्षमाश्रमणपूर्वं इच्छाकारेण सदिसह भगवन् वायण सदिसावेमि वीये खमासमणे वायण पडिगहेमि, ततः क्षमाश्रमण दत्त्वा उपधानवाहिनः करद्वयगृहीतमुखवस्त्रिकाच्छादितमुखस्य अर्धावनतगात्रस्य नमस्कारत्रयपूर्वं गुरुर्वारत्रय तत्तत्सूत्रालापकस्य वाचनां ददाति, ततो वायणामांहि मिच्छामि दुक्कडमिति वाक्य प्रान्ते, एवं इरियावहियसुअखधादिनामोद्देशेन सर्वेषा उपधानाना वाचनाविधिः कार्य इति वाचनाविधि। ७।

निरुद्धनिमित्त वा तव करइ इत्युक्त्वा उपवासं, आयंबिलं, एगासण वा, प्रत्याख्यान कारयति, उपवासे आयंबिले निरुद्धत्ति वक्तव्य, एकाशने निर्विकृतिके च निमित्तेति वक्तव्य । ततः प्रथमक्षमाश्रमणेन बहुवेल संदिसावेमि द्वितीयक्षमाश्रमणेन बहुवेल करेमि तृ० क्ष० बइसण संदिसावेमि च० क्ष० बइसण ठापमि प० क्ष० सज्झाय संदिसावेमि प० क्ष० सज्झाय करेमि सप्त० क्ष० पांगुरणं संदिसावेमि अष्टम० क्ष० पागुरण पडिगाहेमि नवम० क्ष० कट्ठासण संदिसावेमि दसम० क्ष० कट्ठासण पडिगहेमि । ततो मुखवस्त्रिका प्रतिलेख्य वन्दनकद्वय ददाति, गुरुर्वदति सुखतप उपधानवाही वदति तुम्हारइ प्रसादइ इति प्रभातसंबन्धी उपधानविधिः । ५ ।

अथ उपधाने तृतीय-प्रहर-सबविधिर्लिख्यते, तथाहि—तृतीयप्रहरस्य प्रतिलेखनाया जाताया स्थापनाग्रे मालिकादेशेन ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य प्रथमक्षमाश्रमणेन पडिलेहणं करेमि द्वितीय क्ष० पोसहसाल पमज्जेमि, इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिकां प्रतिलिखति, एव क्षमाश्रमणद्वयदानपूर्व अङ्गप्रतिलेखना मुखवस्त्रिकां प्रतिलिखति, ततो वसति प्रमार्जयति तत्र यदि तस्मिन् दिने भोजन कृत भवति, तदा पदस्थसमीपे क्रियाकरणादर्वाक् परिधानवेषं एक प्रतिलिखति न शेषवस्त्राणि, अथ यदि तस्मिन् दिने उपवासो भवति, तदैक वेषमपि न प्रतिलिखति, ततः पदस्थसमीपे समागत्य ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य प्रतिलेखना अङ्गप्रतिलेखना च पुनर्गुरुसमक्ष करोति, ततो मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य वन्दनकपट्ट ददाति ततश्चतुर्विधाहार त्रिविधाहार वा प्रत्याख्यान कृत्वा, क्षमाश्रमणद्वयकं ददाति, तथा—ओहि पडिलेहण संदिसावेमि १ ओहि

पडिलेहण करेमि २ सज्झाय स० ३ सज्झाय क० ४ वइसण स० ५ वइसण क० ६ पागुरण स० ७ पागुरण पडिग्गहेमि ८ कट्ठासण संदि० ९ कट्ठासण पडिग्गहेमि १० पुनर्मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य वन्दनकद्वय दत्त्वा सुखतपेति पृच्छा, उपधानवाहि भणति तुम्हारइ प्रसादइ । ततः सर्वोपकरणानि प्रतिलिखति मात्रकादिकमपि सर्वं प्रतिलिख्यते । तथा यस्मिन् दिने भुक्तं तस्मिन् दिने पडणपहरप्रतिलेखनाया स्थालीकच्चोलादिक सर्वमपि भुज्यमान प्रतिलिखति, उपवासदिने तु न, इति उपधाने तृतीयप्रहरसंबन्धी विधिः । ६ ।

अथ वाचनाविधिर्लिख्यते—सन्ध्याया प्रथम चतुर्विधाहार कृत्वा ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य वन्दनकद्वय दत्त्वा पहिलइ उपधानि पचमगलमहासुअखधस्स पढमवायणापडिगहणत्थ काउस्सग्ग करावेमो, पहिलइ उपधानि पचमगलमहासुयखधपढमवायणानिमित्त करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थू० इत्यादि भणनपूर्वं कायोत्सर्गे सागरवरगंभीरा यावत् लोगस्स १ चिन्त्यते, पारिते च सपूर्ण लो० भणित्वा, ततः क्षमाश्रमणपूर्वं इच्छाकारेण पचमगलमहासुयखधस्स पढमवायणा पडिगहणत्थ चेइआइ वदावेह गुरुर्भणति वदावेमो, वासक्षेप करावेह गुरुर्भणति करावेमो ततो वासक्षेपः कार्यः, ततश्चैत्यवन्दनं तत क्षमाश्रमणपूर्वं इच्छाकारेण सदिसह भगवन् वायण सदिसावेमि बीये खमासमणे वायण पडिगहेमि, ततः क्षमाश्रमण दत्त्वा उपधानवाहिन करद्वयगृहीतमुखवस्त्रिकाच्छादितमुखस्य अर्धावनतगात्रस्य नमस्कारत्रयपूर्वं गुरुर्वारत्रय तत्तत्सूत्रालापकस्य वाचना ददाति, ततो वायणामाहि मिच्छामि दुक्कडमिति वाक्य प्रान्ते, एव इरियावहियसुअखधादिनामोद्देशेन सर्वेषा उपधानाना वाचनाविधिः कार्य इति वाचनाविधि । ७ ।

अथ उत्क्षेपविधिमाह—प्रथम ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य वन्दनकद्वय दत्त्वा क्षमाश्रमणपूर्वं उपधानवाही भणति—"पहिलइ उपधानि पचमगलमहासुअखंधतव उक्खिवह" गुरुर्भणति—उक्खिवामो, पहिलइ उपधानि पचमगल महासुअखध उक्खेवावणि अ नदिपवेसावणीय करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थूससिएण"मित्यादि पूर्वं कायोत्सर्गे चदेसु निम्मलयरापर्यन्त चतुर्विंशतिस्तवमेक चिन्तयित्वा पारिते च सपूर्ण कथयित्वा, क्षमाश्रमणदानपूर्वं भणति, पहिलइ उपधानि पचमगलमहासुअखध–उक्खिवावणीय चेइआइ वदावेह, गुरुर्भणति वदावेमो वासक्षेप करावेह गुरुर्भणति करावेमो, ततो वासक्षेपपूर्वं संपूर्णं चैत्यवन्दनं क्रियते। एव सर्वत्रोपधानेषु उत्क्षेपो ज्ञेयो, नवर प्रथमोपधानद्वये नदिमध्ये कार्यते उत्क्षेप। शेषोपधानेषु तु न नन्दिमध्ये कार्यते। अथ यद्दिने न नन्दि तदा प्रातः प्रवेशदिने उत्क्षेप कार्यते, पर निजनिजोपधाननामादिभिः आलापेन कार्यः इति उत्क्षेपविधिः। ८। अथ निक्षेपविधिमाह—

तपोऽवसानदिने सन्ध्याया कृतचतुर्विधाहारः प्रातर्वा ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य वन्दनकद्वयं दत्त्वा उपधानतपोवाही भणति "इच्छाकारेण संदिसह भगवन् अमुगतव निक्खिवेह" गुरुर्भणति "निक्खिवामो", तत इच्छ ति भणित्वा क्षमाश्रमणं दत्त्वा भणति "इच्छाकारेण सदिसह भगवन् अमुगतवनिक्खिवणत्थ काउस्सग्ग करावेह" गुरुर्भणाति "करावेमो, इच्छामि खमासमणो० अमुगतवनिक्खिवणत्थं करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थ्" इत्यादि भणित्वा कायोत्सर्गे नमस्कारमेक चिन्तयित्वा पारितेऽपि नमस्कारमेक कथयित्वा क्षमाश्रमण दत्त्वा "अमुगतवनिक्खिवणत्थ चेइआइ वदावेह" गुरुर्भणति "वदावेमो" ततः संपूर्णा चैत्यवन्दना करोतीति निक्षेपविधिः। ९।

अथ नित्यकर्तव्यतामाह—सा नित्यकर्तव्यता काऽपि शास्त्रोक्ता काऽपि सांप्रत दृश्यमानपरम्परागम्या, तथाहि—उपधाने श्रावकैर्विकृतिमध्ये एक घृतमेव ग्राह्य नाऽन्या काऽपि विकृतिः १। उपधाने त्रिंशत्रिंशद्विकृतिकाना मध्ये एकमपि निर्विकृतिक न ग्राह्य, तथाविधकारणे तु सति खण्डादिग्रहण यतनया कार्य २। उत्कटद्रव्याणि अपि न ग्राह्याणि ३। आर्द्रहरितशाकोऽपि न ग्राह्यः ४। घृततैलादि व्याघारितशाकोऽपि न ग्राह्यो, धूमितस्तु ग्राह्य ५। तलितपर्पटसीरावटिकादिकमपि न ग्राह्य ६। अन्नादिपरिवेषिका स्त्री कृतरात्रिप्रायश्चित्ता शुद्ध्यति नाऽन्यथा ७। अन्नादिपरिवेषिकाया वस्त्राणि दण्डितखण्डितादिकानि न शुद्ध्यन्ति ८। जेमनादिभूमिस्थानमपि कृतरात्रिप्रायश्चित्तया दण्डितखण्डितादिवस्त्ररहितया प्रमार्जित शुद्ध्यति ९। यावन्ति च वस्त्राद्युपकरणानि तपःप्रवेशप्रथमदिने गृहीतानि भवन्ति तानि सर्वाण्यपि भोग्याभोग्यानि उभयकाल प्रतिलेख्यानि १०। जेमनस्थालीकच्चोलकादीनि तु जेमनदिने पादोनप्रहरप्रतिलेखनासमये प्रतिलेखनीयानि नाऽन्यदा भोजनाभावाच्च ११। कदाचित् हारकुण्डलादिक गृहीत स्वदेहादुत्तार्य स्वगृहादौ मोच्य भवेत् तदा विना उपधान यया स्त्रिया अहोरात्रपौषधो गृहीतोऽभवेत् तस्या हस्ते रात्रौ, न तु दिने उपधानवाहिन्या देय, सा च प्रातः तदुक्तस्थाने मुञ्चति १२। उपधाने सर्वाणि वस्त्राणि स्वय वा मालिकया वा प्रतिलेखितानि शुद्ध्यन्ति १३। सर्व क्रियानुष्ठान आदेशनिर्देशादिक मालिकादेशेन शुद्ध्यति १४। क्रियानुष्ठानकारिका मालिकाऽप्युभयकाल प्रतिक्रमण करोति, रात्रिप्रायश्चित्त करोति, सप्तवाराश्च देवान् वन्दते तदा शुद्ध्यते नाऽन्यथा १५। रजस्वला दिनत्रय तपसि न पतति १६। महाअ-

स्वाध्यायसत्क ७।८।९ सप्तम्यादिदिनत्रय तपसि न पतति १७। प्रतिक्रमणमध्ये प्रभाते नमस्कारप्रत्याख्यानमेव कार्यं, ततो गुरुसमीपे क्रियावसरे उपवास आचाम्ल निर्विकृतिकं एकाशनं वा कार्यं १८ । प्रत्याख्यानपारणसमये पूर्वं नमस्कारप्रत्याख्यान पारयति, ततः उपवासादिक १९। प्रथमोपधानद्वयप्रवेशदिने मालादिने च यदि नन्द्याडम्बरेण उत्सूरता भवति पौषधादि कर्तुं न शक्यते, तदा तृतीयप्रहरप्रतिलेखनानंतर सर्वोपकरणानि प्रतिलिख्य रात्रिपौषधोऽवश्य ग्राह्यः २०। प्रातरुपधानवाही गुरुसमीपे समागत्य ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य पौषध सामायिक च लात्वा प्रतिलेखना अङ्गप्रतिलेखनां च करोति, ततो मुखवस्त्रिकां प्रतिलिख्य उवहि पडिलेहण संदिसावेमि उवहि पडिलेहण करेमीति क्षमाश्रमणद्वय ददाति, ततो वन्दनकपट्टदानानन्तर क्षमाश्रमणदशक ददाति, तत्क्रमश्चायं—बहुवेल संदि० १ बहुवेल करेमि० २ बइसण स० ३ बइसण ठाएमि ४ सज्झाय संदि० ५ सज्झाय क० ६ पांगुरण संदि० ७ पांगुरण पडिग्गहेमि ८ कट्ठासण संदि०९ कट्ठासण पडिग्गहेमि १०। ततो वन्दनकद्वयदानपूर्वं सुखतपःपृच्छा २१। सन्ध्यायामपि एवमेव क्रियाकरण, नवर पूर्वं प्रतिलेखना अङ्गप्रतिलेखना च करोति, न उवहि प्रतिलेखना। ततो गुरोर्वन्दनकपट्टदानानन्तर क्षमाश्रमणदशकदानमिथ उवहि पडिलेहण संदि० उवहि पडिलेहण करेमि २ सज्झायं संदि० ३ सज्झाय क० ४ बइसणं सं० ५ बइसण ठा० ६ शेष पूर्ववत् १०। २२। पृथक् प्रतिक्रमणसम्भाषत पाक्षिकवन्दनकानि सुखतपःपृच्छापर्यन्तां क्रिया सर्वामपि कृत्वा देयानि २३। मालापरिधाने सन्ध्यायां माला अभिमन्त्रयित्वा स्वगृहे रात्रिजागरण कृत्वा

प्रातर्गच्छाधिपतिपार्श्वे माला परिधातव्या, तदनु तत् दिनात् दिनदशकं दशाह्निका कार्या, तत्र पौषधग्रहणाभावेऽपि त्रिविधाहारमेकाशनं कुर्वन् उपधानवाही च निरारम्भस्तिष्ठति २४। सर्वाण्यपि उपधानानि उत्कृष्टविधिना वहनीयानि तदभावे श्रावकैः एकान्तरोपवासैः, साधुभिस्तु उपवासाचाम्लनिर्विकृतिकैकाशनै कृत्वा तावन्त उपवासाः पूरणीया न दिनसंख्या नियमोऽस्ति २५। इति नित्यकर्तव्यता ॥ १० ॥

अथ पडिपुन्ना विगइ पारणाविधिमाह—प्रातर्गुरो समीपे समागत्य पृथक् प्रतिक्रमणे कृते च मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य वन्दनकषट्कं ददाति, गुरुभिः समं प्रतिक्रमणे कृते वन्दनकद्वयमेव ददाति, ततो गुरुर्भणति "पवेयण पवेयह" इति भणित्वा भणति पडिपुन्नाविगइपारणं करेहत्ति, ततः किंचित् स्वेप्सितं प्रत्याख्यानं करोति, ततो भणति—गुरुसमक्षं समग्र उपधानमांहे अभक्ति आशातना कीधी हुवे ते मिच्छामि दुक्कड । इति पडिपुन्नाविगइपारणाविधि । ११ । ॥ ८७ ॥

॥ इति सप्तोपधानक्रिया-विधिरधिकारः ॥ ८७ ॥

ननु श्रावक-श्राविकाणां निर्विकृतिकप्रत्याख्यानेन उत्कटद्रव्याणि यानि त्याज्यानि सन्ति तानि कानि ? उच्यन्ते—

"खीरी खड खज्जूर सक्करादक्खदाडिमाई य । तिलवट्टी वडिवाइ, करवओ चूरिम च तहा ॥ ९६ ॥
नालिअर मोईअ, मडिअ सतलिय भज्जियाचणए । आमुरिअविलिआ, पणगाइ फिल्लाडियाइ तहा ॥ ९७ ॥
तंदुलकड्डिअ दुद्ध, घोल एयाइ भूरिमेयाइ । उक्कोसगदव्वाइ, वज्जिज्जा निव्विगइअंमि ॥ ९८ ॥"

इति श्रीसन्देहदोलावली (पत्रे ११०) सूत्रगाथात्रयवृत्त्यनुसारेण क्रियते—

तन्नामानि शृणु क्षैरेयी १ दुग्धराद्धसेविका २ खण्डः ३ खज्जूरः ४ शर्करा ५ द्राक्षा ६ दाडिमकुलिका ७ सहकार ८ राजादन ९ कदलीफल १० नागरङ्गजातिफलानि ११ द्राक्षादीनि नागरङ्गादिफलपर्यन्तानि सचित्तान्यपि उपायेन प्रासुकीकृतानि अत्र ज्ञेयानि, अन्यथा तद्भक्षणासम्भवः, गुडपर्पटिका १२ गुडधाना १३ कर्करीयकः १४ फाणित १५ इक्षुरस १६ कसार १७ वर्पोपलाः १८ शर्करातिलकाखण्डकतलीपर्यायाः १९ अमृतिका २० तिलकुट्टी २१ साऽपि सच्चित्ततिलाना चेत्तदा पर्युषिता अग्नितापतप्ता तदा सद्यस्काऽपि अचित्ताना तदापि सद्यस्काऽपि कल्पते, वटकानि काञ्जिकमिश्रानि अमिश्रानां पक्वान्नविकृतित्वेन घोलमिश्राना जीवससक्तिमत्त्वेन निर्विकृतिके अभक्ष्यत्वात् २२ करम्बो–दधिकृतो दुग्धकृतो वा ज्ञेयः, नतु तक्रकृतः तस्य बदरचूर्णवत् नीरसत्वेनाऽनुत्कृष्टत्वात् २३ चूरिम घृतखण्डादि[गुड]मिश्रित मोदकादिचूर्णं २४ स्नेहमार्चिः २५ तथाकुग २६ कुल्लरि २७ सिक्थपडिका २८ घृततैलाद्येकतरस्रक्षितमण्डका २९ रोट्टिका ३० आस्तानक ३१ आम्लिका ३२ व्याघारिते कुरिका ३३ पूरणादि तेमनानि ३४ व्याघारित राजमहेलिका ३५ नालिकेरगरिका ३६ मोदकामण्डितस्नेहमिश्रिता कणिक्कानिष्पन्ना ३७ अग्नितापगलितपुटद्वयान्तर्न्यस्तगुडमिश्रा रोट्टिका घृताद्यतिमृक्षितरोट्टिका वा ३८ भर्जिका वत्थुलादिशाकः, सापि उत्कालिते घृते तैले वा पक्वा ज्ञेया ३९ अपक्वचणकाः तेऽपि घृते तैले वा पक्वा ग्राह्याः ४० अन्यान्यपि छमकितशालनकानि ४१ आसुरिका–राजिका सस्कृतघोलद्व्याद्यन्तर्निक्षिप्तखण्डीकृतसर्षपशाकादिः इय च सिन्धादिदेशे आसुरिति नाम्ना, जालन्धरे आसुरमिति नाम्ना, अन्यत्र राजिका तिक्तमिति नाम्ना च प्रसिद्धा एवा

च दधिकृता कृता ज्ञेया। यदुक्तं योगविधौ—'तद्दिवसकया दद्धीकया आसुरी न कप्पइ जोगवाहीणमिति' अतः काञ्जिकवट-कपानीयभक्षणेऽपि न दोषः ४२ आम्लिकापानक चिंचापानकं तद् आदिः यस्य तद् तथा, आदिशब्दात् ४३ द्राक्षापानक ४४ नालिकेरपानक ४५ खर्जूरपानक ४६ गुडपानक ४७ किलाटिका फेदहडिनामिका ४८ दुग्धसिद्धद्राक्षा ४९ खुडुहुडी ५० सारिक ५१ मल ५२ वटकादिव्यञ्जनानि ५३ तन्दुलक्वथित दुग्ध पेया इत्यर्थः । अल्पै षष्टिकादितन्दुलैः सम पक्कमित्यर्थः। इद तु तलस्थितसद्दपक्क तन्दुलादीनामुपरि चत्वारि अङ्गुलानि यावत् मृद्ध ज्ञेय, तदूर्ध्वं वर्धमानं विकृतिरेव, क्षैरेयी तु सान्द्रा भवतीति न तथा पौनरुक्त्य ५४ हस्तविलोडितो निर्जलो दधिघोल', स तु विकृतिरेव, पर यो हस्तविलोडित सजलो दधिघोल स उत्कृष्टद्रव्य ५५ गुडमाधुरा ५६ शिखरणी ५७ निर्भञ्जनानि ५८ इत्यादीनि ज्ञेयानि । अत्र पूर्वं नामग्राह अनेकानि उत्कृष्टद्रव्याणि उक्तानि । अथ एषामेव विकृतिनिष्पन्नाना नानादेशजत्वेन दुर्लक्षाणा सुखावबोधार्थं व्यापकलक्षणमाह—

"विगई दवेण हया, जात उक्कोसिअ भवे दव।" 'विकृति' क्षीरादिका द्रव्येण तन्दुलादिना हता भग्ना, मोरिता निर्वीर्यीकृतेति यावत्, या काचन पायसादि उत्कर्षित उत्कर्षितसञ्ज्ञ भवेत् ॥ 'द्रव्यम्' उत्पन्नरसवीर्यविपाकान्तरत्वात् यथा मथित खण्डादिरसेन हतं शिखरणी १ घृत कणिकादिना मिश्रित कूलरिः, चूरिम वा २ वटकादि पक्वान्न काञ्जिकादिनोपहत काञ्जिकवटिकादीनि, पर्पटसुकुमारिकादिरसेणोपहत तैल घृत वा निर्भञ्जन ४ शुण्ठीचूर्णरसेन हतो गुडपाको गुडपर्पटिका ५ इत्यर्थः ॥ पुनरुक्तद्रव्यविस्तराधिकारमिच्छता सन्देहदोलावली–सूत्रवृत्तिप्रमुखा ग्रन्था द्रष्टव्या ॥ ८८ ॥

॥ इति उत्कटद्रव्याधिकार ॥ ८८ ॥

खरतरगच्छाधीशा, जिनचन्द्रयुगप्रधानगुरुराजाः । श्रीपातिसाहिमान्याः, समभूवन् भूमिविख्याता ॥ १ ॥
श्रीपूज्यमुख्यशिष्याः, दक्षाः श्रीसकलचन्द्रनामानः । मद्गुरवो गुणगुरव–स्तेषामेष प्रसादो मे ॥ २ ॥
इत्येव सप्तदशभि–स्तुर्यं प्रश्नोत्तरैः स्फुटम् । प्रकाश कृतवान् पूर्णं, गणि समयसुन्दर ॥ ३ ॥

इति श्रीसमयसुन्दरोपाध्यायविरचिते सामाचारीशतके
पञ्चमप्रकाशे चतुर्थः प्रकाशः समाप्तः ॥ ४ ॥

॥ अथ पञ्चमः प्रकाशः ॥

॥ श्रीमत्स्थमणपार्श्वनाथाय नमः ॥

ननु–साध्वीभिर्दशाश्रुतस्कन्धादिच्छेदग्रन्था वाच्यन्ते न वा ? उच्यते–स्वत एव पर न सभाबन्धेन, निषिद्धत्वात् , स्वतो वाचनं तु संगतिमङ्गति । यतः तत्तपोवहन तासां निर्दिष्टमस्ति, अन्यथा तत् तपोवहन अपार्थक स्यात् अपि च 'अन्नेसिं च पवेयणीअमि ति' ता न भणन्ति, अत एव स्वतो वाच्यते, न वाचना अनुज्ञाता तासाम् ॥ ८९ ॥

॥ इति साध्वीना स्वत कल्पसूत्रादिवाचनाधिकारः ॥ ८९ ॥

ननु–प्रतिक्रमणद्वय करणे षडावश्यकाना कुत्र कुत्र आद्यन्तौ व्यवस्थापितौ ? उच्यते–अत्र वृद्धसम्प्रदाय एव, तत्र सायन्तनप्रतिक्रमणे 'करेमि भते' इत्यत आरभ्य अतिचारकायोत्सर्गपारण यावत् सामायिकावश्यक प्रथम १ । ततश्चतुर्विंशतिस्तवप्रान्ते चतुर्विंशतिस्तवआवश्यकं द्वितीय २ । ततो मुखवस्त्रिकाप्रतिलेखनपूर्वं वन्दनक आदितः कृत्वाऽऽलोचना-सूत्रं यावत् तृतीय वन्दनावश्यक ३ । ततः प्रतिक्रमणसूत्रत आरभ्य क्षामणावन्दनपूर्वं आयरियउवज्झाए गाथात्रयप्रान्त यावत् चतुर्थ प्रतिक्रमणावश्यक ४ । ततः चारित्रदर्शनज्ञानाना कायोत्सर्गत्रयकरणेन पञ्चम कायोत्सर्गावश्यक ५ । षष्ठ तु प्रत्याख्यानरूप आवश्यक ६ पूर्वं कृतमिति । प्राभातिकप्रतिक्रमणे तु षडावश्यकानि अनुक्रमेण भवन्ति, तथाहि—करेमि भते

इत्यत आरभ्य चारित्रदर्शनज्ञानकायोत्सर्गपर्यन्त प्रथम सामायिक आवश्यक १। ततो लोकोद्द्योतकरसपूर्णभणनरूप द्वितीय चतुर्विंशतिस्तवावश्यक २। ततो वन्दनालोचनपर्यन्त तृतीय वन्दनावश्यक ३। तत प्रतिक्रमणसूत्रमारभ्य आयरिय उवज्झाए गाथात्रयपर्यन्त यावत् चतुर्थ प्रतिक्रमणावश्यक ४। ततः कायोत्सर्गकरणपूर्व लोकोद्द्योतकरभणनपर्यंत पञ्चम कायोत्सर्गावश्यक ५। ततो वन्दनकदानपूर्व प्रत्याख्यान क्रियते तत् प्रत्याख्यानावश्यक षष्ठ ६ ॥ ९० ॥

॥ इति षडावश्यकाना आद्यन्तव्यवस्थाधिकारः ॥ ९० ॥

ननु-विंशतिस्थानकतपस का गाथा ?, तत् तपसि च किं गुणन ? तत्रोच्यते—

"अरिहत-सिद्ध [चेइय] पवयण-गुरु-थेर-बहुस्सुए तवस्सीसु। वच्छल्लया य तेसिं, अभिक्ख नाणोवओगे य ॥ १ ॥

दसण-विणए आवस्सए अ सीलव्वए निरइयार। खणलव-तव-च्चियाए, वेयावच्चे समाही अ ॥ २ ॥

अपुव्वनाणग्गहणे, सुअभत्ती पवयणे पभावणया। एएहिं कारणेहिं, तित्थयरत्त लहइ जीवो ॥ ३ ॥"

गुणन इद प्रथमस्थानके तपसि नमो अरिहताण २००० गुणन अर्हता अष्टप्रकारपूजा क्रियते १। द्वितीयस्थानके नमो सिद्धाणं २००० गुणन पुण्डरीकादिसिद्धभक्तिः क्रियते २। तृतीये नमो पवयणस्स २००० गुणन सघस्स पुस्तकस्य वा भक्तिः क्रियते ३। चतुर्थे नमो आयरियाण २००० गुणन वन्दनादिगुरूणा भक्ति क्रियते ४। पञ्चमे नमो थेराण २००० गुणनं वृद्धस्थविराणां विश्रामणादि भक्ति क्रियते ५। षष्ठे नमो उवज्झायाण २००० गुणनं बहुश्रुतानां भक्तिः क्रियते ६। सप्तमे नमो लोए सव्वसाहूण २००० गुणनं तपस्विनां भक्तिः क्रियते ७। अष्टमे नमो नाणस्स २०००

सुत्त २००० गुणन निरतिचार शुद्धं सम्यक्त्व पाल्यते ९। दशमे नमो
गुणन पूर्वपठितपाठो गुण्यते ८। नवमे नमो दसणस्स २००० गुणन निरतिचार शुद्धं सम्यक्त्व पाल्यते ९। दशमे नमो
विणयसंपन्नाण २००० गुणन देवगुरुवृद्धाना विनयभक्ति क्रियते १०। एकादशे नमो चारित्तस्स २००० गुणन कालवे-
लाया प्रतिक्रमणद्वयं क्रियते ११। द्वादशे नमो बंभवयधारिणं २००० गुणन द्वादशव्रतपालन विशेषतः क्रियते १२। त्रयो-
दशे नमो किरिआण २००० गुणन सामायिकादिक्रियाया प्रमादो न क्रियते १३। चतुर्दशे नमो तवस्सीण २००० गुणन
विशेषतस्तपः क्रियते १४। पञ्चदशे नमो गोयमस्स २००० गुणन सुपात्राय दान दीयते १५। षोडशे नमो जिणाण २०००
गुणन देवाना वृद्धाना च वैयावृत्य क्रियते १६। सप्तदशे नमो चारित्तधारिण २००० गुणन पौषधपूर्वं मन समाधिना स्थात-
व्य १७। अष्टादशे नमो नाणस्स २००० गुणन नवीन श्रुताभ्यास क्रियते १८। एकोनविंशे नमो सुअस्स २००० गुणन
वेष्टनकदवरकादिना पुस्तकपूजा क्रियते १९ विंशे नमो पवयणस्स २००० गुणन जिनशासनोन्नति प्रभावना क्रियते २०
सर्वत्र स्थानकेषु उत्कृष्टतः त्रिकालदेववन्दन १ भूमिसस्तारके शयन २ त्रिकाल देवपूजन ३ उभयकाल प्रतिक्रमण
कर्तव्य ४, एतत्सर्वं सयोगाभावेऽपि च पञ्चशक्रस्तवै देववन्दन कर्तव्यमेव, तप पूर्तौ च विंशतिमोदकादिसर्वपक्वान्नढौक-
नपूर्वं देवगृहे स्नात्र विधाय सघभक्तिः क्रियते ॥ ९१ ॥

॥ इति विंशतिस्थानकतपोविधिरधिकारः ॥ ९१ ॥

ननु–भोजनानन्तर संवरणे वन्दनकानि दीयन्ते–क्रियते तानि किं भुक्तै अभुक्तैर्वा दीयन्ते? उच्यते—भुक्तैरेव नाऽभुक्तै
यतो वन्दनकचूर्णौ अभुक्ताना नियतानि चतुर्दशवन्दनानि अहोरात्रमध्ये प्रोक्तानि, भुक्ताना तु पञ्चदशेति तथा च—

तत्पाठः—एआणि पुवण्हे सत्त एवं अवरण्हे वि सत्त भवन्ति, अणुण्णा वदणगानि सज्झायवंदणगेसु पविसति त्ति काऊ सज्झायवंदणगाणि तिन्नि पडिक्कमणवंदणगाणि चत्तारि पसिद्धाणि चेवत्ति सत्त एव चउद्दस हवति अब्भत्तट्ठिअस्स, भत्तट्ठिअस्स पुण पच्चक्खाणवंदणगेण सहिआणि पणरस भवति त्ति १ एवं श्रीप्रवचनसारोद्धारे पञ्चसप्ततिद्वारेऽपि (१८४ पत्रे) तथाहि—

"चत्तारि पडिक्कमणे, किइकम्मा तिण्णि हुंति सज्झाए। पुव्वण्हे अवरण्हे, किइकम्मा चउदस हवंति ॥ ६५८ ॥"

व्याख्या—चत्वारि प्रतिक्रमणे कृतिकर्माणि—वन्दनकानि भवन्ति, तत्र आलोचनवन्दनकं प्रथमं १ क्षामणकवन्दनकं द्वितीयं २ आचार्यप्रभृति—सर्वसंघस्य क्षमणपूर्वमाश्रयणाय वन्दनकं तृतीयं ३ प्रत्याख्यानवन्दनकं चतुर्थं ४ तथा स्वाध्याये त्रीणि वन्दनकानि, तत्र स्वाध्यायप्रस्थापने एकं वन्दनकं १ स्वाध्यायप्रवेदने द्वितीयं २ स्वाध्यायकरणानन्तरं च तृतीयं ३ एवं पूर्वाह्णे—प्रत्युषसि सप्तवन्दनकानि, अपराह्णे अपि एतानि एव सप्त, कालग्रहणोद्देश १ समुद्देशा २ अनुज्ञादि ३ वन्दनकाना स्वाध्यायवन्दनेषु एव अन्तर्भावात्, सदैव एतानि ध्रुवाणि कृतिकर्माणि प्रतिदिवसं चतुर्दश भवन्ति १, अभक्तार्थिकस्य। भक्तार्थिकस्य तु अपराह्णे प्रत्याख्यानवन्दनकेनाऽभ्यधिकानि इति पञ्चदश भवन्तीति २ ॥ एवं श्रीआवश्यकचूर्णावपि (४० पत्रे)

पभाए पुण संझाए चत्तारि—पडिक्कमणे वंदित्ता आलोएत्ति एक्कं, बितिअं जं अब्भुट्ठियतावसाणे मज्झे वंदति, मक्क-वंदणए कति वंदितव्वा ?, जहण्णेणं तिण्णि मज्झिमेण पंच वा सत्त वा उक्कोसेणं सव्वेवि, जदि बारका वक्खेवो वा तो

एगेण ऊणगो दोहिं तिहिं जाव तिण्णि अवस्स वदितवा, एवं देवसिए वि । पक्खिए पच अवस्स, चातुम्मासिए सवत्सरिए य सत्त अवस्स, ते वदितूण ज आयरिअस्स अलिथिज्जति तं ततिअ किइकम्म, पच्चक्खाणे चउत्थ किइ-कम्मं । तिण्णि सज्झाए–वदित्ता पट्ठवेति पढम, पट्ठविते पवेयतस्स वितिय, पच्छा पढति, ततो जाहे चउब्भागावसेसा, पोरिसी ताहे पादे पडिलेहिति, जदि न पढति तो वदति, अह पढति तो अवदित्ता पात पडिलेहेतूण पच्छा पढति, काल-वेलाए वदितु पडिक्कमति, अह उग्घाडकालिअ न पढति ताहे वदितु पादे पडिलेहिति, एत ततिय, एव पुव्वण्हे सत्त अवरण्हे वि एते चेव सत्त, एताणि अब्भत्तट्ठिअस्स नियमा, भत्तट्ठिअस्स पच्चक्खाणं अब्भहिअ एताणि अवस्स चोद्दस, इत्यादि २ इत्यमेव श्रीबृहत्कल्पभाष्ये तद्वृत्तौ (तृतीये उद्देशे) च तथाहि—

"दुगसत्तगकिइकम्मस्स अकरणे होइ मासिय लहुग । आवासगविवरीए, ऊणऽहिए चेव लहुओ उ[त्ति] ॥ ४४६९ ॥

वृत्तिः–'दुगसत्तग'त्ति द्वे सप्तके चतुर्दश भवन्तीति कृत्वा पूर्वाह्णाऽपराह्णयोः चतुर्दश वन्दनकानि भवन्ति, कथमिति चेदुच्यते–इह रात्रि–प्रतिक्रमणे चत्वारि वन्दनकानि, तत्रैक आलोचनाया १, द्वितीय क्षामणके २, तृतीयं षाण्मासिक-तपश्चिन्तनकायोत्सर्गार्थं ३, चतुर्थं प्रत्याख्यानग्रहणार्थं इति ४ तथा स्वाध्याये त्रीणि वन्दनकानि, तत्र वृद्धसम्प्रदाय, सज्झाए वदित्ता पट्ठवेइ, एय पढम १, पवेयं तस्स बीइयं २, पच्छा उद्दिट्ठ समुद्दिट्ठ पढइ, उद्देस–समुद्देस–वदणाण–मिहेव तब्भावो तओ जाहे चउभागावसेसा पोरिसी ताहे पाए पडिलेहेइ जइ न पढिउकामो तो वदइ अह पढिउकामो ताहे अवदित्ता पाए पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता पच्छा पढइ, कालवेलाए वंदिउ पाए [पडिलेहण पडिक्कमइ] एयं तइय ३ । एत्र पूर्वाह्णे

सप्तवन्दनकानि, अपराह्णेऽपि एवमेव सप्त भवन्ति । तत्र चत्वारि दैवसिकप्रतिक्रमणे, त्रीणि स्वाध्याये अनुज्ञावन्दनाना स्वाध्यायवन्दनेषु अन्तर्भावादिति सर्वसंख्यया चतुर्दश वन्दनकानि भवन्ति, एतच्चाऽभक्तार्थिकं अङ्गीकृत्योक्तं, यस्तु भक्तार्थिकस्तस्य भोजनानन्तरभाविप्रत्याख्यानवन्दनकसहितानि पञ्चदश भवन्ति इति, एतेषां मध्यात् एकतरस्याऽपि कृतिकर्मणोऽकरणे मासकं लघुकं प्रायश्चित्तं भवति ॥ ४४९९ ॥ एवं आचारदिनकरेऽपि नवाङ्गीवृत्तिकारक–श्रीअभयदेवसूरिसन्तानीयैः श्रीरुद्रपल्लीगच्छीयैः श्रीवर्धमानसूरिभिः प्रोक्तं, तथाहि—तत्र यः किलाऽऽहारग्राही भवति तदा स वन्दनकद्वयं ददाति, यो नाऽऽहारग्राही तस्य नेति, इत्यादिग्रन्थानुसारेणाऽभक्तार्थिकस्य चतुर्दश वन्दनकानि भवन्ति, भक्तार्थिकस्य च पञ्चदश वन्दनकानि ज्ञेयानि, पश्चात् गच्छरीतिरपि प्रमाणमिति संवरणे भुक्तैरेव वन्दनकानि देयानि नाऽभुक्तैरिति ॥ ९२ ॥

॥ भोजनानन्तरं संवरणे वन्दनकानां अधिकारः ॥ ९२ ॥

ननु–चैत्राश्विनमासयोः अस्वाध्यायमेलनस्वाध्यायोच्चारणविधिः कः? उच्यते—चैत्राश्विनमासयोः द्वितीयपक्षे प्रतिपदि द्वितीयां वा मुख्यविहारिसाधोः चन्द्रादिबले मुहूर्ते च शुभे सति कल्पत्रेपमेलनं क्रियते, तत्राऽयं विधिः—स्थापनाचार्याग्रे समागत्य ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य मुखवस्त्रिकां प्रतिलेख्य वन्दनकद्वयं दत्त्वा "इच्छामि क्षमाश्रमण" इत्यादि क्षमाश्रमणपूर्वं "सज्झाय निक्खिवेउं" द्वितीयक्षमाश्रमणेन "सज्झायनिक्खिवणत्थं काउस्सग्गं करुं", तृतीयक्षमाश्रमणेन "सज्झाय निक्खिवणत्थं करेमि काउस्सग्गं अन्नत्थूससिएणं"मित्यादिपाठपूर्वं कायोत्सर्गं, तत्र नमस्कारं एकं चिन्तयित्वा पुनर्नमस्कारं एकं कथयित्वा अणुजाणिज्जो इति कथनं । अथोच्चारणविधिः—चत्वारि, चैत्राश्विन—कार्तिकमासयोः प्रथमपक्षे द्वितीयायाः [illegible]

चन्द्रादिबले सिद्धियोगे सति कल्पत्रेपोच्चारणा-

वारे बृहस्पतिवारे वा भरण्यादिवर्जिते चतुष्पादके नक्षत्रे मुख्यविहारिसाधो मुखवस्त्रिका प्रतिलेख्य वन्दनकद्वय च दत्त्वा

नन्तर मध्याह्नात् परतः सायतनप्रतिक्रमणानन्तर वा ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य काउस्सग्गं करु इच्छ सज्झाय उक्खिव-

प्रथमक्षमाश्रमणेन "सज्झाय उक्खिवऊ" द्वितीयक्षमाश्रमणेन "सज्झाय उक्खिवणत्थं सागरवरगभीरापर्यन्तं लोकोद्द्योतकर चिन्त-

गत्थं करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थ०" इत्यादि कथनपूर्व कायोत्सर्ग कृत्वा तत्र "असज्झाय–उहडावणत्थ" कायोत्सर्गः क्रियते, तत्र लोको-

यित्वा पारिते च सपूर्णः कथ्यते १। पुनः क्षमाश्रमणदानपूर्व "खुद्दोवद्दवउहडावणत्थ" कायोत्सर्ग कृत्वा लोको

द्द्योतकरचतुष्टय चिन्त्यते, पारिते च सपूर्णः २। पुनः क्षमाश्रमणपूर्व शक्रादिसमस्तवेयावच्चगरदेवतानिमित्त कायोत्सर्गः

द्द्योतकरचतुष्टय चिन्तयित्वा पारिते सपूर्णः ३। पुनः क्षमाश्रमणदानपूर्व सपूर्णमेक कथयित्वा, क्षमाश्रमणदानपूर्व "सज्झाय सदिसा-

क्रियते तत्राऽपि लोकोद्द्योतकरचतुष्टय चिन्तयित्वा पारिते स्वाध्याय क्रियते, तत्र नमस्कारत्रयपूर्व "धम्मो-

वेमि सज्झायं करेमि निसीहिआए मत्थएण वदामि" इत्युक्ते पूर्वमुपविश्य स्वाध्याय कर्तव्य । ततोऽनुज्येष्ठ साधुभि प्रत्येक वन्दना

मगलमुक्किट्ठमि"त्यादि षड्जीवनिकायाध्ययन यावत् मधुरस्वरेण "सिद्धाव भणओ भणावओ तप वहओ वहडावओ" इत्यादि ॥ ९२ ॥

कर्तव्या, मुख्यविहारिणा वाच्य च ॥ इति अस्वाध्यायमेलनाऽस्वाध्यायोच्चारणविधिरधिकार ॥ ९२ ॥

ननु–द्वितीया–पञ्चम्यष्टम्येकादशी–चतुर्दशीरूपाः पञ्चतिथयो या विद्यन्ते तासु धर्मार्थिनो विशेषेणैकाशन–विकृतिमत्या-

सप्तवन्दनकानि, अपराह्णेऽपि एवमेव सप्त भवन्ति । तत्र चत्वारि दैवसिकप्रतिक्रमणे, त्रीणि स्वाध्याये अनुज्ञावन्दनानां स्वाध्यायवन्दनेषु अन्तर्भावादिति सर्वसङ्ख्यया चतुर्दश वन्दनकानि भवन्ति, एतच्चाऽभक्तार्थिकं अङ्गीकृत्योक्तं, यस्तु भक्तार्थिकस्तस्य भोजनानन्तरमाविप्रत्याख्यानवन्दनकसहितानि पञ्चदश भवन्ति इति, एतेषां मध्यात् एकतरस्याऽपि कृतिकर्मणोऽकरणे मासकं लघुकं प्रायश्चित्तं भवति ॥ ४४६९ ॥ एवं आचारदिनकरेऽपि नवाङ्गीवृत्तिकारक-श्रीअभयदेवसूरिसन्तानीये श्रीरुद्रपल्लीगच्छीये श्रीवर्धमानसूरिभिः प्रोक्तं, तथाहि—तत्र यः किलाऽऽहारग्राही भवति तदा स वन्दनकद्वयं ददाति, यो नाऽऽहारग्राही तस्य नेति, इत्यादिग्रन्थानुसारेणाऽभक्तार्थिकस्य चतुर्दश वन्दनकानि भवन्ति, भक्तार्थिकस्य च पञ्चदश वन्दनकानि ज्ञेयानि, पश्चात् गच्छरीतिरपि प्रमाणमिति संवरणे भुक्तैरेव वन्दनकानि देयानि नाऽभुक्तैरिति ॥ ९२ ॥

॥ भोजनानन्तरं संवरणे वन्दनकानां अधिकारः ॥ ९२ ॥

ननु-चैत्राश्विनमासयोः अस्वाध्यायमेलनऽस्वाध्यायोत्तारणविधिः कः? उच्यते—चैत्राश्विनमासयोः द्वितीयपक्षे प्रतिपदि द्वितीयां वा मुख्यविहारिसाधोः चन्द्रादिबले मुहूर्ते च शुभे सति कल्पत्रेपमेलनं क्रियते, तत्राऽयं विधिः—स्थापनाचार्याग्रे समागत्य ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य मुखवस्त्रिकां प्रतिलेख्य वन्दनकद्वयं दत्त्वा "इच्छामि खमासमणं" इत्यादि क्षमाश्रमणपूर्वं "सज्झाय निक्खिवउं" द्वितीयक्षमाश्रमणेन "सज्झायनिक्खिवणत्थं काउस्सग्ग करुं", तृतीयक्षमाश्रमणेन "सज्झाय निक्खिवणत्थं करेमि काउस्सग्गं अन्नत्थूससिएणं"मित्यादिपाठपूर्वं कायोत्सर्गं, तत्र नमस्कारं एकं चिन्तयित्वा पुनर्नमस्कारं एकं कथयित्वा अणुजाणिज्जो इति कथनं । अथोत्तारणविधिः—यथाहि, वैशाख-कार्तिकमासयोः प्रथमपक्षे द्वितीयातः पश्चात् सोम-

वारे बृहस्पतिवारे वा भरण्यादिवर्जिते चतुष्पादके नक्षत्रे मुख्यविहारिसाधोः चन्द्रादिबले सिद्धियोगे सति कल्पत्रेपोच्चारणानन्तर मध्याह्नात् परतः सायतनप्रतिक्रमणानन्तर वा ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य मुखवस्त्रिका प्रतिलेख्य वन्दनकद्वय च दत्त्वा प्रथमक्षमाश्रमणेन "सज्झायं उक्खिवऊ" द्वितीयक्षमाश्रमणेन "सज्झाय उक्खिवणत्थ काउस्सग्गं करु इच्छं सज्झाय उक्खिवणत्थं करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थ०" इत्यादि कथनपूर्वं कायोत्सर्गं कृत्वा तत्र सागरवरगंभीरापर्यन्तं लोकोद्द्योतकर चिन्तयित्वा पारिते च सपूर्णः कथ्यते १। पुनः क्षमाश्रमणदानपूर्वं "असज्झाय–उहडावणत्थ" कायोत्सर्गः क्रियते, तत्र लोकोद्द्योतकरचतुष्टय चिन्त्यते, पारिते च संपूर्णः २। पुनः क्षमाश्रमणपूर्वं "खुद्दोवद्दवउहडावणत्थ" कायोत्सर्गं कृत्वा लोकोद्द्योतकरचतुष्टय चिन्तयित्वा पारिते संपूर्णः ३। पुनः क्षमाश्रमणदानपूर्वं शक्रादिसमस्तवैयावच्चगरदेवतानिमित्त कायोत्सर्गं क्रियते तत्राऽपि लोकोद्द्योतकरचतुष्टय चिन्तयित्वा पारिते सपूर्णमेक कथयित्वा, क्षमाश्रमणदानपूर्वं "सज्झाय सदिसावेमि सज्झाय करेमि निसीहिआए मत्थएण वदामि" इत्युक्ते पूर्वमुपविश्य स्वाध्यायः क्रियते, तत्र नमस्कारत्रयपूर्वं "धम्मो मगलमुक्किट्ठमि"त्यादि षड्जीवनिकायाध्ययन यावत् मधुरस्वरेण स्वाध्याय कर्तव्यः। ततोऽनुज्येष्ठ साधुभि प्रत्येक वन्दना कर्तव्या, मुख्यविहारिणा वाच्य च "सिद्धांत भणओ भणावओ तप वहओ वहडावओ" इत्यादि ॥ ९३ ॥

॥ इति अस्वाध्यायमेलनाऽस्वाध्यायोच्चारणविधिरधिकार ॥ ९३ ॥

ननु–द्वितीया–पञ्चम्यष्टम्येकादशी–चतुर्दशीरूपाः पञ्चतिथयो या विधन्ते तासु धर्मार्थिनो विशेषेणैकाशन–विकृतिमत्या-

ख्यानादिकं प्रत्याख्यानं कुर्वन्तो दृश्यन्ते । तत्राऽष्टमी–चतुर्दश्योः तपोनियमः क्रियमाणः सगच्छते, तयोः पुण्यतिथित्वेन लोके प्रसिद्धत्वात्, पर्वत्वेन आगमेषु उक्तत्वाच्च, पर्वणि च तपो बहुगुणमेव भवति, यदुक्तं—

"उत्तरकरणं एगग्गया य आलोय–चेइयवंदणया । मंगलधम्मकहा वि अ, पव्वेसु तवो गुणा हुंति ॥ १ ॥"

न पुनर्द्वितीयादिषु तद्विपरीतत्वात् अथवा सत्कृत्यत्वात् असौ अविशेषेण पञ्चदशस्वपि तिथिषु युज्यते, न पुनः प्रतिनियतासु तासां अनागमिकत्वेन मिथ्यात्वहेतुत्वात्, इति चेत् सत्यं, यद्यपि एताः पुण्यदिनत्वेन लोके न प्रसिद्धा, नाऽपि पर्वत्वेनाऽऽगमेऽपि उक्ता दृश्यन्ते, तथापि केनाऽपि कारणेन बहुश्रुतैः आदृताः, तथाहि–श्रावकविधौ पण्डितराजपरमार्हतधनपालेनोक्तम्—

"पञ्चविहविसयसुक्खं, उवभुंजइ परमिएसु दिवसेसु । तीव्वाभिलासविरओ, परिहरओ पंचसु तिहिसु ॥ १ ॥"

इत्येता एव पञ्च तिथयः पञ्चदशीसहिताः षट् भवन्ति ता अपि श्रुतधरैः आदृताः, तथाहि दिनकृत्ये (७ पत्रे)—

"छण्हं तिहीण मज्झंमि का तिही अज्ज वासरे । किं वा कल्लाणगं अज्ज–लोगनाहाण [मतिय] सति य ॥२१॥" इति ।

ननु–सामान्योक्तौ कथं ज्ञायते यैः एता एव विवक्षिता नाऽन्या ? इति चेदुच्यते–वृद्धव्यवहारात् तेषामेव ग्रन्थान्तरे उक्तत्वाच्च, तथाहि तद्ग्रन्थः—"बहिड्ड १ बुमि २ चउद्दसीसुं ३ च पुन्निम ४ बी एगारसि ५ पंचमी ६ दोगासणादि तवं १ इति आगमिकवद्बहुमाननीयाः श्रुतधरवचनस्य प्रायः श्रुतमूलत्वादिति श्रीसन्देहदोलावलीवृत्तौ चतुश्चत्वारिं

शङ्गाथा ४४ व्याख्याने । पुनर्महानिशीथे सप्तमाध्ययने, "अट्ठमी १ चउद्दसी २ नाणपचमी ३ पज्जोसवण ४ चाउमासिए ५ चउत्थाट्ठमछट्ठे न करिज्जा खवण"मिति ॥ ९४ ॥

॥ इति पञ्चतिथीना नामाधिकारः ॥ ९४ ॥

ननु-प्राभातिक प्रतिक्रमणं कुत्र स्थाने पूर्णीभूत कस्मात् स्थानात् छन्दनादोपो न भवति ? उच्यते-देववन्दनानन्तर श्रीआचार्यादिवन्दनाक्षमाश्रमणत्रये दत्ते सति रात्रिकप्रतिक्रमण सपूर्णं, ततः पर आन्तरणीदोपो न भवति, तथैव प्रतिक्रमण प्रान्तता, श्रीजिनप्रभसूरिभिः श्रीविधिप्रपायां लिखिता, तथाहि—"अरिहतचेइआइ इच्चाइ पढिय थुइचउक्केण चेइए वदेइ, जावति चेइआइ इच्चाइ गाहादुगथुत्त पणिहाणगाहाओ न भणेइ, तओ आयरियाइं वदेइ तओ वेलाए पडिलेहणाइ करेइ"त्ति । एवमेव तरुणप्रभसूरिकृतषडावश्यकबालावबोधेऽपि, तथाहि—"एगखमासमणि आचार्यमिश्र वांदीयइ, बीजै खमासमणि उपाध्यायमिश्र वादीयइ, त्रीजै खमासमणि सर्वसाधु वादीयइ एतलै रात्रिप्रतिक्रमण सपूर्णं थयु, तउ पछै कम्मभूमि पढमसंघयणि इत्यादि नमस्कार श्रीऋषभवर्धमानक इत्यादि स्तवनमतिलेखनाकुलकादिक 'अट्ठावयमि उसभो' इत्यादि प्रभातमागलिक्य भावनाकुलकसज्झाय करइ ॥ ९५ ॥

॥ इति प्राभातिकप्रतिक्रमणप्रान्तताधिकारः ॥ ९५ ॥

ननु-सामायिकस्थ श्रावक उत्तरीय प्रावरण प्रावृणोति किं वा केवलपरिधानशाटक एव तिष्ठति ? उच्यते—नोत्तरीयप्रावरण प्रावृणोति, तस्य सतोऽपि सामायिकग्रहणसमये व्युत्सर्जनत्वोक्तत्वात्, यदुक्त श्रीआवश्यकचूर्णौ, तथाहि—"सो अ

फिर सामाइअ करिंतो मउडं अपणेइ १ कुंडलाणि २ नाममुद्द ३ तबोल ४ पावारगमाइ वोसरइ" इति । तत सामायिकस्य उत्सर्गतः अप्रावरण एव तिष्ठति, तदानीं तस्य यतिभूतत्वात्, यदुक्त 'हेमंतेसु अवाउडे ति, समणो इव सावओ हवइ जम्हा' इति वचनाच्च, अपवादतस्तु काष्ठदाहशीतादिकारणमाश्रित्य त्रीणि उत्तरीयाणि प्रावरितु कल्पन्ते नाऽधिकानि, तान्यपि कालप्रतिलेखितानि तस्य यतिवृत्तित्वात् यतीनां च शीताद्यपवादे कल्पत्रयस्य क्रमेण प्रावरणाना ग्रहणमुक्त, तथैव च ओघनिर्युक्तिभाष्ये भणितं, तथाहि-"जाहे तह वि न तरे ताहे निविट्ठेग पाउणे खोम । तेण वि असंथरतो दो खोमि पाउणे ताहे ॥१॥" तहवि असंथरतो तईअ ओण्णि पाउणे" इत्येवमेव श्रीसन्देहदोलावलीसूत्रे (६८ पत्रे) प्रोक्त, तथाहि—

"उस्सग्गनयेणं सावगस्स परिहाण साडगावसर । कप्पइ पाउरणाइ, न सेसमववायओ तिन्नि ॥ ४६ ॥"

यत एव प्रावरणपरिभोगः अपवादिकोऽत एव असौ परिधानाद् अन्यवस्त्र शीतदंशमशकादिकारणत प्रतिसेवितुकाम एव सामायिकग्रहणक्षणे प्रावरणं संदेशयति नाऽन्यथा यथा उष्णकालादौ इति भाव । ननु–कृतसामायिकाया श्राविकाया उत्सर्गतः कति वस्त्राणि प्रतिपादितानि सन्ति ? उच्यते—परिधानशाटिका १ कञ्चुक २ उपरितनांशुक चेति ३ वस्त्रत्रय स्वदेहे यथास्थानोपयुक्त सत् कल्पते । अयमभिप्रायो यद्यपि सामायिकग्रहणवेलायां परिधानादन्यः सर्वोऽपि परिग्रह सावद्यव्यापारहेतुत्वात् व्युत्सृज्यतया उक्तः, इति अप्रतिलेख्यत्वात् अजुनवत् कञ्चुलिकागुणितशाटिके न सामायिके परिमोक्तुं अर्हतः, तथाऽपि स्वस्याऽन्येषा च अशुभभावहेतुः स्तनस्तननेत्रजघनाद्यङ्गावयवाच्छादकतया बहुगुणा, कञ्चुलिका शाटिका प्रच्छदपटा इत्येतान् सामायिकेऽपि न व्युत्सृजन्ति, जिनवचनबहुमानात् महासत्त्वः श्राविकाः ततः

कय अन्यदा व्युत्सृजन्ति, तथा च या गृहिण्यो नीरोगा अपि सम्यक्त्वप्रतिपत्त्यनन्तरं स्वदेशानुरोधाद्वा १ धर्मोदि-
कारणाद्वा २ वस्त्रमालिन्यादि भयाद्वा ३ यूकापाताविशङ्कया वा ४ वैधव्यस्थित्या वा ५ अपरिहितकञ्चुका अस्थानविदी-
र्णपरिधाना अस्थगितशिरसः परिधानाऽञ्चलस्थगितशिरसो वा स्त्रीवृन्दमध्येऽपि चिरं तिष्ठन्ति । किं पुनः पुरुषा—लोके ता
विराधका एव बोद्धव्याः प्रवचनलाघवहेतुत्वादिति, एवमेव कृतसामायिकाया श्राविकाया उत्सर्गतो वस्त्रत्रयस्यैव ग्रहणं
श्रीसन्देहदोलावलीसूत्रे (६९ पत्रे) युगप्रधानश्रीजिनदत्तसूरिभिर्लिखितमस्ति, तथाहि—

"एवं कयसामइया, वि साविगा पवमनयमप्पणेह । कडिसाडगकञ्चुयमु—त्तरीज्ज—वत्थाणि धारेइ ॥ ४७ ॥" गाथा ।

ननु—कृतसामायिकश्राविकाया यद् वस्त्रत्रयं उत्सर्गतः प्रतिपादितं तत् ज्ञातं, परं अपवादतः सा कियन्ति वस्त्राणि
बिभृयात् ? उच्यते—शीतादिकारणे सति प्रागुक्तपरिधानशाटक—कञ्चुकोत्तरीयरूपाणां औत्सर्गिकवस्त्राणामुपरि पुनः प्राव-
रणवस्त्रत्रयेण अङ्गानि आच्छादयति, अत एव शरीरलग्नवस्त्रत्रयादधिकं एकं द्वे वा त्रीणि वा च वस्त्राणि प्रावरीतुका-
माऽपि असौ प्रावरणं संदिशति एवं प्रावृणोति नाऽन्यथा । प्रतिक्रमणे तु षोढाऽऽवश्यककरणवेलायां पुनस्त्रिपदं शीता-
द्यवाद्यपवादपरिगृहीतं प्रावरणरूपं वस्त्रस्थानत्रयं परिहरति, स्वस्थानोपयुक्तैकशाटिकाकञ्चुकोत्तरीयेभ्योऽन्यत् प्रतिक्र-
मणकाले श्राविकाया न कल्पते इत्यर्थः । इत्थमेव कृतसामायिकायाः श्राविकायाः अपवादपदेन श्रीजिनदत्तसूरियुगप्रधा-
नैरपि सन्देहदोलावलीसूत्रे (६९ पत्रे) प्रतिपादितमस्ति । तथाहि—

“चीअपएण तिण्हुवरि तिहिँ तु वत्थेहिँ पाउअगी उ । सामाइअवय पालइ, तिपय परिहरइ पडिक्कमणे ॥ ४८ ॥”

ननु–अपवादे निर्ग्रन्थानां कल्पसप्तकं अनुज्ञातमस्ति, तथाहि कल्पभाष्ये तृतीयोद्देशे—

“अप्पा असथरतो, निवारिओ होइ तिही वत्थेहिँ । गिण्हति गुरुविदिण्णे, पगासपडिलेहणे सत्त ॥ ३९८५ ॥

तिन्नि कसिणे जहन्ने, पंच य पडिवुण्णकाइँ गेण्हेज्जा । सत्त य पडिजुण्णाइ, एय उक्कोसग गहणं ॥ ३९८६ ॥” इति,

‘निवारितो होइ’त्ति अप्यादिविराधनातो निवारितो भवतीत्यर्थः । तत्कथं सामायिकस्थत्वेन निर्ग्रन्थतुल्यस्याऽपि श्राद्धस्य अपवादतः त्रीणि एव उक्तानि, कथं वा सामायिकस्थत्वेन निर्ग्रन्थीसमानायाः श्राविकाया अपि त्रीण्येव उक्तानि ? इति चेत् उच्यते–यतीनां यावत् जीविकव्रतत्वेन विकृष्टतपःकारितत्वेन शीतलाहारभोजित्वेन अनभ्यक्तशरीरत्वेन प्रायो मलिन-जीर्णवस्त्रत्वेन अनियतोपाश्रयत्वेन रूक्षवृत्तित्वेन च शीतं प्रचुरं लगति, तेन च सोढेन अल्पसंहननत्वेन ते घन आबा-ध्यन्ते इति तेषां सप्त उपदिष्टानि, श्राद्धास्तु मुहूर्तमात्रपाल्यसामायिकव्रतत्वादिना तद्विपरीता इति तेषां कियतापि शीतेन सोढेनाऽपि न कदाचिद् आबाधा भवतीति त्रीणि एव उक्तानि, एवं श्राविकाणामपि भाव्यं, अत्यन्तापवादे तु एवं “जहा समाहिँ बहूणि वि कप्पाइं पाउणइ” इति वचनात् साधूनामिव द्वयानामपि एषां बहूनि अपि प्रावरीतुं कल्पन्ते । यदि वा विकृष्टतपःप्रतिपत्तिवशात् यदा एष सामायिके चिरकालं तिष्ठति, यथोपधानतपोवाही, तदा अस्य गृहस्थस्याऽपि तावन्ति प्रावरणानि कल्प्यन्ते, यावद्भिः प्रावृतैः शीतधर्मादिना न आक्रम्यते, यद्यपि उपधानतपोवाही पौषधस्थ एवोच्यते न सामायिकस्थः, तथापि पौषधे सति अवश्यमेव सामायिकं भवतीति, तदीया एव सर्वाऽपि उपसर्गोपबाधादिव्यवस्था

तत्र भवति, केवलं शयासंस्तारकादिविधिः एवाऽत्राऽधिकः । तन्मूलस्य शयनविधेः पौषधे एव उक्तत्वादिति । 'पुर्व जाहे तह वि' इत्याद्योघनिर्युक्तिभाष्येण कल्पत्रयस्य प्रावरणमेव अपवादिकं साधोः उक्तं । ननु ग्रहणं, यतः औघिको पकरणान्तर्गतत्वेन उत्सर्गेण साधु कल्पत्रयं गृह्णाति यदुक्तं चतुर्दशउपकरणसंख्यायां, 'तिन्नेव य पच्छादगा' इति केवलमिदं संवर्त्तितमेव सत् उत्सर्गेण वामस्कन्धेन वहति शीतवातादिकारणेन पुनः प्रावृणोति, अत्र तु 'गिण्हई गुरुव दिन्ने' इत्यादिना कल्पभाष्येण कल्पसप्तकस्य ग्रहणमेव अपवादिकं उक्तं, ततो यतिः उत्सर्गेण तिस्रः प्रच्छादकाः संगृह्णाति अपवादतस्तु सप्त प्रावृणोति च, तिस्रोऽपि सप्ताऽपि अपवादतः एवेति न पूर्वापरविरोध इत्यर्थः, पुनरत्राऽर्थे विस्तरार्थिना युगप्रधानश्रीजिनदत्तसूरिविरचितं सन्देहदोलावलीसूत्रं तद्वृत्तिश्च द्रष्टव्ये ॥

इति साधूनां उत्सर्गे वस्त्राणामेकं, अपवादे त्रयं, अत्यन्तापवादे सप्तकं ।

कृतसामायिकश्राद्धानां उत्सर्गे एकं, अपवादे त्रयं, श्राविकाणां उत्सर्गे त्रयं अपवादे षट् इत्यधिकारः ॥ ९६ ॥

ननु–"गुरुविरहंमि अ ठवणा" इति वचनप्रामाण्यात् काष्ठादिस्थापना स्थाप्यते तत् युक्तं, परं सा स्थापना गुरो वा अर्हतो वा यदि गुरोः तदा प्रतिक्रमणादौ क्रियमाणे शक्रस्तवपाठः तदग्रे न युक्तः, अथ यदि अर्हतः स्थापना तदा 'गुरुविरहमि अ ठवणा' इति वाक्यं हृदि निधाय तत् स्थापनं असंगतं इव स्यात्, ततः किं तत्त्वं ? तत्रोच्यते—एका काष्ठादिस्थापना पञ्चानामपि परमेष्ठिनां अस्ति, अत्र पञ्चाऽपि परमेष्ठिनः स्थापिताः सन्ति । अथ कश्चित् प्रेरयिष्यति श्राविकाभिः गुरूणां संघट्टो रक्षणीयः, तर्हि कथं आर्यिकाः स्थापनाचार्यं स्थापयन्ति ? अथ निजमहत्तरा कल्प्यते इति चेत् तत्र स्थापनाचार्यं

पञ्चपरमेष्ठिनः स्थाप्यन्ते न साध्व्यः तथा च स्थापनायां संघट्टो भवतीति अचेतनत्वात् तीर्थंकरस्थापनावत् यथा श्राविकाणा तीर्थंकरप्रतिमासंघट्टो न भवति एवं स्थापनाचार्यस्याऽपि । यदुक्त श्रीव्यवहारभाष्ये दशमोद्देशके, तथाहि—

"दसविहवेयावच्च, इमं समासेण होइ नायव्वं [विन्नेय] । आयरिय–उवज्झाए, थेरे अ तवस्सि सेहे य ॥ १२३ ॥

अंतरवकुलगणे य संघे साहम्मि वेयावच्चे अ । एएसिं तु दसण्ह, कायव्व तेरसपएहिं ॥ १२४ ॥" इति ।

परः प्राह–नन्वत्र आचार्यस्य वैयावृत्य उक्त न तु अर्हतः ? उच्यते–अत्र 'आयरिये' ति पदेन तीर्थङ्करो व्याख्यातोऽस्ति, यदुक्तम्—

"तित्थयरवेयावच्च न भणियमित्थं तु किं न कायव्वं । किं वा न होइ निज्जर, तहिअ अह चेइआयरिओ ॥ १ ॥

"आयरियगहणेणं, तित्थगरो तस्थ होइ गहिओ उ । किं वा न होआयरिओ, आयर उवदिसते अ ॥ १३२ ॥"

तत एकस्यामेव स्थापनायां आवश्यकादिकरणकाले स्थापनाचार्य इति व्यपदिश्यते, चैत्यवन्दनवेलाया तु स्थापनाऽर्हमिति, "जिणविरहंमि अ जिणबिंब ठावणे" ति वचनात् । न वाच्यं एकत्रैव अर्हद्व्यपदेश आचार्यव्यपदेशश्च विरुध्येव, तयोरन्वयोः अर्हत्त्व–गुरुत्वयो एकत्वसञ्ज्ञायस्य आगमे सत्यापितत्वात्, तत्र प्राग्व्यवहारभाष्यगाथाया आयरियपदेन द्वयमपि दर्शित, तीर्थङ्करस्य च आचार्यत्वं सर्वत्र सिद्धान्तादिषु प्रतिपादितमस्ति । तत्र श्रीभगवत्यां (११५ पत्रे) श्रीगौतमस्वामिना श्रीमहावीरदेवस्य धर्माचार्यस्व उक्तमस्ति, तथाहि—

"तए ण से भगवं गोयमे खदयं कच्चायणस्सगोत्तं एव वयासी एव खलु खंदया ! मम धम्मायरिए मम

समणे भगवं महावीरे उप्पन्ननाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली तियपडुप्पन्नमणागयवियाणए" इत्यादि । पुनः श्रीभगवत्यां
कोणिकसंग्रामे गाढप्रहारजर्जरिताङ्गो नागपौत्रो वरुणनामा पर्यन्ताराधनाऽभिमुख प्राह "नमुत्थुण समणस्स भगवओ महा-
वीरस्स आइगरस्स जाव संपाविउकामस्स मम धम्मायरियस्स त्ति", पुनः श्रीविशेषावश्यकगाथायामपि धर्माचार्यत्वे—
"ठवणा वि य निअगुरुणो, सुत्ते भते त्ति जेण गणहारी । आमतइ तित्थयरं, सेसा य अप्पणो य गुरु ॥ १ ॥" इति ।
पुनः श्रीउपदेशमालासूत्रे श्रीधर्मदासगणिनाऽपि प्रोक्त—
"आयरिय[भत्ति]धम्मरागो, कस्स सुनक्खत्तमहरिसीसरिसो । अवि जीविअ ववसिअ, न चेव गुरुपरिभवो सहिओ ॥१००॥"
पुनः श्रीपञ्चमाङ्गे सिंहानगारेण रेवत्यग्रेऽपि श्रीमहावीरदेवस्य अर्हतो धर्माचार्यत्व प्रोक्तमस्ति, एवमनेकेषु स्थानेषु अर्हतो
धर्माचार्यत्व निगदितमस्ति, अतो न कश्चिद्विरोधः । ननु–भवतु नाम एकस्यामेव अवस्थाया स्थापनाचार्यो वा स्थापनार्हन्
वा, परमसौ स्थाप्यप्रमाणमेव कर्तुमुचितो न लघुतरो महत्तरो वा, तावत्प्रमाणे हि तस्मिन् दृष्टे सोऽय इति अध्यवसन्ति
तद्भक्ताः, किं नाऽध्यवसितः कृतपुण्यप्रतिनिधिः कृतपुण्य इति तत्पुत्रै इति वाच्य । स्थापनाकल्पस्य आगमे अनियत-
मानस्यैव प्रतिपादितत्वात् तथाहि आवश्यके–
"अक्खे वराडए वा, कट्ठे पोत्थे य चित्तकम्मे अ । सब्भावमसब्भाव, ठवणाकप्प विआणाहि ॥ १ ॥" इति ।
अथ वराटकाना स्वभावतो एव लघुत्वात् काष्ठाना च याहच्छिकत्वेन अनियतत्वात्, किं च स्थाप्यप्रमाणा एव स्थापना
यदि अभविष्यत् तदाऽर्हत्स्थापनाऽपि तादृशेवाऽकारयिष्यत् अर्हश्च उत्कृष्टत॰ पञ्चशतधनुःप्रमाणं एव, जघन्यतस्तु

सद्य हस्तमान एव भवति, तथा च सति तन्मानतो लघुतरार्हत्प्रतिमाः सर्वा अपि अप्रमाणता प्राप्स्यन्ति, साम्प्रत तु अर्हत् प्रतिमाः लघुतराः प्रतिग्रामं प्रतिनगरं प्रतिदेवगृह दृश्यन्ते, ततः तासा समाराधन अफलमेव स्यात् न च तदफल भवति संविग्नश्रुतधरैः आदृतत्वात् । तस्मात् यथा स्थाप्यमानात लघ्व्यो लघुतरा–लघुतमाऽपि तीर्थकृत्प्रतिमा आराध्यन्ते तथा स्थापनाचार्योऽपि, तथा शीतलाचार्येणाऽपि श्रीआवश्यके गुरुस्थापना स्थाने दण्डकः स्थापितोऽस्ति । पुनर्विस्तरार्थिना श्रीसन्देहदोलावलीबृहद्वृत्तिः द्रष्टव्या ॥ ९७ ॥

॥ इति स्थापनाया पश्चाऽपि परमेष्ठिन इत्यधिकारः ॥ ९७ ॥

ननु–श्रुतदेवतादीनां कायोत्सर्गः प्रतिक्रमणे क्रियते, स सिद्धान्तोक्त्या आचरणया वा क्रियते ? उच्यते–आचरणया, यदुक्त श्रीहरिभद्रसूरिभिः श्रीपञ्चवस्तुकवृत्तौ (८० पत्रे), तथाहि—

"पम्हट्ठमेरसारण, विणओ उ ण फेडिओ हवइ एव । आयरणा सुयदेवय–माईण होइ उस्सग्गो ॥ ४९१ ॥"

वृत्तिः–आचरणया श्रुतदेवतादीनां भवति कायोत्सर्गः, आदिशब्दात् क्षेत्रभवनदेवतापरिग्रह इति । ननु इय आचरणा कदा जाता ? उच्यते–पूर्वधरकाले समाव्यते—यतः श्रीवीरनिर्वाणाद्वर्षसहस्रे गते पूर्वश्रुत व्यवच्छिन्न, अय च श्रीह-रिभद्रसूरिस्तु वीरनिर्वाणात् पञ्चपञ्चाशदधिकवर्षसहस्रे व्यतीते दिव गताः, यदुक्त—""पचसयतिपन्नवरिसे ४५३, काल-गगुरुणा सरिस्सई गहिआ । चउसयसत्तरिवरिसे ४७०, वीराओ विक्कमो जाओ ॥ ११ ॥ तत·—"पचसए पणतीए, विक्कमकालाओ झत्ति अत्थमिओ । हरिभद्दसूरिसूरो, [illegible]" —ति । श्रीहरिभद्रसूरिण

तु पञ्चवस्तुके आचरणया श्रुतदेवतादिकायोत्सर्गकरण लिखित, ततः सा आचरणा श्रीहरिभद्रसूरितः प्राक् पूर्वधरकाले एव जातेति ॥

ननु-भवतु नाम श्रुतदेवतादिकायोत्सर्गकरण पूर्वधरकालेऽपि तस्य दृश्यमानत्वात्, पर श्रुतदेवतादिकायोत्सर्गकरण सम्यग्दृशां न युज्यते इति यत् कस्यचिद्वचनं, तदयुक्तं, आगमे तस्य उपदिष्टत्वात्, तथाहि—(८० पत्रे) चाउम्मासिय वरिसे, उस्सग्गो खित्तदेवयाए उ। पक्खिय सिज्जसुराए, करिंति चउमासिए वेगे ॥ ४९२ ॥ इति श्रीआवश्यककायोत्सर्गनिर्युक्तौ (पत्रे ७९४) पुन चाउम्मासिअ संवच्छरिएसु सव्वेऽवि मूलउत्तरगुणाणं आलोयणं दाऊण पडिक्कमंति, खेत्तदेवयाए उस्सग्गं करेंति, केई पुण चाउम्मासिगे सिज्जदेवयाएवि काउस्सग्गं करिंति, इति श्रीआवश्यकचूर्णौ। पुनरपि चाउम्मासिए एगो उवस्सयदेवयाए काउस्सग्गो कीरइ, संवच्छरिए खित्तदेवयाएवि कीरइ अब्भहिओ इति श्रीआवश्यकचूर्णौ। तथा श्रुतदेवतायाश्च आगमे महती प्रतिष्ठा दृश्यते, तथाहि— सुयदेवयाए असायणाए सुतदेवता जाए सुयमहिट्ठिअं तीए आसायणा, नत्थि सा, अकिंचित्करी वा एवमादि श्रीआवश्यकचूर्णौ—

"जा दिट्ठिदाणमित्तेण देइ पणयाण नरसुरसमिद्धिं। सिवपुररज्ज आणारयणा देवीइ तीइ नमो ॥ १ ॥"

श्रीआराधनापताकायाम्—

"यत्प्रभावादवाप्यन्ते, पदार्थाः कल्पना विना। सा देवी संविदे नस्तादस्तकल्पलतोपमा ॥ १ ॥"

इति। श्रीउत्तराध्ययनबृहद्वृत्तौ—

सप्त हस्तमान एव भवति, तथा च सति तन्मानतो लघुतरार्हत्प्रतिमाः सर्वा अपि अप्रमाणता प्राप्स्यन्ति, साम्प्रतं तु अर्हत् प्रतिमाः लघुतराः प्रतिग्रामं प्रतिनगरं प्रतिदेवगृहं दृश्यन्ते, ततः तासां समाराधनं अफलमेव स्यात् न च तदफलं भवति संविग्नश्रुतधरैः आदृतत्वात्। तस्मात् यथा स्थाप्यमानात् लघ्व्यो' लघुतरा-लघुतमाऽपि तीर्थकृत्प्रतिमा आराध्यन्ते तथा स्थापनाचार्योऽपि, तथा शीतलाचार्येणाऽपि श्रीआवश्यके गुरुस्थापना स्थाने दण्डकः स्थापितोऽस्ति। पुनर्विस्तरार्थिना श्रीसन्देहदोलावलीबृहद्वृत्तिः द्रष्टव्या ॥ ९७ ॥

॥ इति स्थापनाया पञ्चाऽपि परमेष्ठिन इत्यधिकारः ॥ ९७ ॥

ननु-श्रुतदेवतादीनां कायोत्सर्गः प्रतिक्रमणे क्रियते, स सिद्धान्तोक्त्या आचरणया वा क्रियते ? उच्यते-आचरणया, यदुक्तं श्रीहरिभद्रसूरिभि' श्रीपञ्चवस्तुकवृत्तौ (८० पत्रे), तथाहि—

"पम्हट्ठमेरसारण, विणओ उ ण फेडिओ हवइ एवं। आयरणा सुयदेवय-माईणं होइ उस्सग्गो ॥ ४९१ ॥"

वृत्तिः-आचरणया श्रुतदेवतादीनां भवति कायोत्सर्गः, आदिशब्दात् क्षेत्रभवनदेवतापरिग्रह इति। ननु इयं आचरणा कदा जाता ? उच्यते-पूर्वधरकाले समाप्यते—यतः श्रीवीरनिर्वाणाद्वर्षसहस्रे गते पूर्वश्रुतं व्यच्छिन्नं, अथ च श्रीहरिभद्रसूरिस्तु वीरनिर्वाणात् पञ्चपञ्चाशदधिकवर्षसहस्रे व्यतीते दिवं गतः, यदुक्तं—"पणसयतिपन्नवरिसे ४५३, कालगगुरुणा सरिस्सई गहिआ। चउसयसत्तरिवरिसे ४७०, वीराओ विक्कमो आओ ॥ ११ ॥ तथा—"पञ्चसए पणतीए, विक्कमकालाओ झत्ति अत्थमिओ। हरिभद्दसूरिसूरो, निवुओ दिसओ सिवसुक्खं ॥ २०० ॥" इति। श्रीहरिभद्रसूरिणा

लिखित, ततः सा आचरणा श्रीहरिभद्रसूरित प्राक् पूर्व-
तु पञ्चवस्तुके आचरणया श्रुतदेवतादिकायोत्सर्गकरण
धरकाले एव जातेति ॥
ननु–भवतु नाम श्रुतदेवतादिकायोत्सर्गकरण पूर्वधरकालेऽपि तस्य दृश्यमानत्वात्, परं श्रुतदेवतादिकायोत्सर्गकरण
सम्यग्दृशां न युज्यते इति यत् कस्यचिद्वचन, तदु अयुक्त, आगमे तस्य उपदिष्टत्वात्, तथाहि—(८० पत्रे)
चाउमासिय वरिसे, उस्सग्गो खित्तदेवयाए उ । पक्खिय सिज्जसुराए, करिंति चउमासिए वेगे ॥ ४९२ ॥ इति श्रीआ-
वश्यककायोत्सर्गनिर्युक्तौ (पत्रे ७९४) पुनः चाउम्मासिअ संवच्छरिएसु सव्वेऽवि मूलउत्तरगुणाणं आलोयणं दाऊण पडि-
क्कमंति, खेत्तदेवयाए उस्सग्ग करेंति, केई पुण चाउम्मासिगे सिज्जदेवयाएवि काउस्सग्ग करिंति, इति श्रीआवश्यकवृत्तौ ।
पुनरपि चाउम्मासिए एगो उवस्सयदेवयाए काउस्सग्गो कीरइ, संवच्छरिए खित्तदेवयाएवि कीरइ अब्भहिओ इति श्रीआ-
वश्यकचूर्णौ । तथा श्रुतदेवतायाश्च आगमे महती प्रतिष्ठा दृश्यते, तथाहि–
सुयदेवयाए असायणाए सुतदेवता जाए सुयमहिट्ठिअं तीए आसायणा, नत्थि सा, अकिंचित्करी वा एवमादि श्रीआवश्यकचूर्णौ–
"जा दिट्ठिदाणमित्तेण देइ पणयाण नरसुरसमिद्धिं । सिवपुररज्ज आणारयणा देवीइ तीइ नमो ॥ १ ॥"
श्रीआराधनापताकायाम्—
"यत्प्रभावादवाप्यन्ते, पदार्थाः कल्पना विना । सा देवी संविदे नस्तादस्तकल्पलतोपमा ॥ २ ॥"
इति । श्रीउत्तराध्ययनबृहद्वृत्तौ—

सप्त हस्तमान एव भवति, तथा च सति तन्मानतो लघुतरार्हत्प्रतिमाः सर्वा अपि अप्रमाणतां प्राप्स्यन्ति, साम्प्रतं तु अर्हत् प्रतिमाः लघुतराः प्रतिग्रामं प्रतिनगरं प्रतिदेवगृहं दृश्यन्ते, ततः तासां समाराधनं अफलमेव स्यात् न च तदफलं भवति सविप्रश्रुतधरैः आदृतत्वात्। तस्मात् यथा स्थाप्यमानात् लघ्व्यो लघुतरा-लघुतमाऽपि तीर्थकृत्प्रतिमा आराध्यन्ते तथा स्थापनाचार्योऽपि, तथा शीतलाचार्येणाऽपि श्रीआवश्यके गुरुस्थापना स्थाने दण्डकः स्थापितोऽस्ति। पुनर्विस्तरार्थिना श्रीसन्देहदोलावलीबृहद्वृत्तिः द्रष्टव्या ॥ ९७ ॥

॥ इति स्थापनाया पश्चाऽपि परमेष्ठिन इत्यधिकारः ॥ ९७ ॥

ननु-श्रुतदेवतादीनां कायोत्सर्गः प्रतिक्रमणे क्रियते, स सिद्धान्तोक्त्या आचरणया वा क्रियते ? उच्यते-आचरणया, यदुक्तं श्रीहरिभद्रसूरिभिः श्रीपञ्चवस्तुकवृत्तौ (८० पत्रे), तथाहि—

"पम्हट्ठमेरसारण, विणओ उ ण फेडिओ हवइ एवं। आयरणा सुयदेवय-माईण होइ उस्सग्गो ॥ ४९१ ॥"

वृत्ति-आचरणया श्रुतदेवतादीनां भवति कायोत्सर्गः, आदिशब्दात् क्षेत्रभवनदेवतापरिग्रह इति। ननु इयं आचरणा कदा जाता ? उच्यते-पूर्वधरकाले संभाव्यते—यतः श्रीवीरनिर्वाणाद्वर्षसहस्रे गते पूर्वश्रुतं व्यवच्छिन्नं, अथ च श्रीहरिभद्रसूरिस्तु वीरनिर्वाणात् पञ्चपञ्चाशदधिकवर्षसहस्रे व्यतीते दिवं गतः, यदुक्तं—"चउसयतिपन्नवरिसे ४५३, कालगगुरुणा सरस्सई गहिआ। चउसयसत्तरिवरिसे ४७०, वीराओ विक्कमो जाओ ॥ ११ ॥ ततः—"पंचसए पणतीए, विक्कमकालाओ झत्ति अत्थमिओ। हरिभद्दसूरिसूरो, भविआण दिसउ कल्लाणं ॥ २०० ॥" इति। श्रीहरिभद्रसूरिणा

सिज्झसुरी उस्सग्गे, नेओ संतिथयस्स पढणे य ॥ ३१ ॥ एव चिअ चउम्मासे, वरिसे अ जहक्कमं विही णेओ । पक्खिय- चउमासवरिसेसु, नवरि नामस्स णाणत्त ॥ ३२ ॥ इति योगशास्त्रतृतीयप्रकाशवृत्तौ (२४८ पत्रे), एवं पाक्षिकवृत्तावपि श्रुतदेवतास्तुतिः, तथाहि–"सुअदेवया–भगवई०" श्रुताधिष्ठात्री देवता भवति च श्रुताधिष्ठात्री देवता, यदुक्त कल्पभाष्ये—

"सव च लक्खणोवेय, समाहिं दिंति देवया । सुत्त व लक्खणोवेय, जिणसव्वभासिय ॥ १ ॥" भगवतीपूजा ज्ञानाव० इत्यादि, ननु–कथ श्रुताधिष्ठातृदेव्या व्यन्तरादिप्रकारायाः कर्मक्षपणे सामर्थ्य ? उच्यते–तद्गोचरशुभध्यानस्याऽपि स्वतुः कर्मक्षयहेतुत्वेन अभिहितत्वादिति । एवं निशीथभाष्यचूर्णौ षोडशोद्देशकेऽपि [भव] वनदेवतादीना कायोत्सर्गकरण लिखितमस्ति, तथाहि—

"ताहे दिसाभाग अमुणता सबालवुड्ढगच्छस्स रक्खणट्ठा वणदेवयाए उस्सग्ग करिंति सा आकपिआ दिसभाग पथ वा कहेज्ज, सम्मदिट्ठिदेवया अण्णखवपसओ यह आएतावि उवति ते साधू तं, वइय पासित्ता आसासिया ते साहू ता ते देवयाए गोउलपरपरएण ता वाणीया जाव जणवद पत्ता ताहे सा देवता अतिमवइयाए उवगरणं विंटिय विस्सरावेइ, तीए अट्ठा साहुणो नियत्ता गोउल न पेच्छति, वेंटिय घेत्तु पडिगया गुरुणो कहति नत्थि सा वइयत्ति, नाय जहा देवयाए कयमिति । एत्थ सुद्धोचेव नत्थि पच्छित्त" इत्यादि । एवमेव श्रीदेवेन्द्रसूरिभिरपि श्रीसघाचारवृहद्वृत्तौ (३७० पत्रे) सम्यग्दृष्टिदेवदेवीनां स्मरणीयत्वादिना व्यवस्थापन व्यधायि, तथाहि–"इह सुरा य सरणिज्जत्ति" इहशब्द पूर्वद्वारे सयोजितोऽपि डमरुकमणिन्यायेन अत्राऽपि सबध्यते । ततश्च इहेति सपूर्णचैत्यवन्दनाया क्रियमाणाया सुराश्च

"यस्याः प्रसादमतुलं, संप्राप्य भवन्ति भव्यजननिवहाः । अनुयोगवेदिनस्ता, प्रयतः श्रुतदेवता वन्दे ॥ १ ॥" इति ।

श्रीअनुयोगद्वारवृत्तौ तथा—

"पंचविहायारविसुद्धिहेउमिह साहु सावगो वावि । पडिकमणं सह गुरुणा, गुरुविरहे कुणइ इक्कोऽवि ॥ १ ॥ वंदित्तु चेइयाइं, दाउं चउराइए खमासमणे । भूनिहियसिरो सयलाइयारमिच्छुक्कडं देइ ॥ २ ॥ सामाइअपुव्वमिच्छामि ठाइउं काउस्सग्गमिच्चाइ इत्यादि १३ पुण पणवीसुस्सासं, उस्सग्गं कुणइ पारए विहिणा । तो सयलकुसलकिरिआ—फलाण सिद्धाण पढइ थयं ॥ १४ ॥ अह सुअसमिद्धिहेउ, सुअदेवीए करेइ उस्सग्गं । चिंतेइ नमुक्कारं, सुणइ य देइ य तीइ थुइं ॥ १५ ॥ एवं खित्तसुरीए, उस्सग्गं कुणइ सुणइ देइ थुइं । पढिऊण पंचमंगल—मुवविसइ पमज्ज संडासे ॥ १६ ॥ पुव्वविहिणेव पेहिअ, पुत्तिं दाऊणवंदणं गुरुणो । इच्छामो अणुसट्ठिं, ति भणिय जाणूहिं तो ठाइ ॥ १७ ॥ गुरुथुइगहणे थुइ तिण्णि वद्धमाणक्खरस्सरो पढइ । सक्कत्थयं थवं पढिअ कुणइ पच्छित्तउस्सग्गं ॥ १८ ॥ एवं ता देवसिअं, राइअमवि एवमेव नवरि तहिं । पढमं दाउं मिच्छामि दुक्कडं पढइ सक्कथयं ॥ १९ ॥ उट्ठिय करेइ विहिणा, उस्सग्गं इत्यादि गाथा ॥ २६ ॥ इच्छामो अणुसट्ठिं, ति भणिय उवविसिअ पढइ तिण्णि थुई । मिउसद्देण सक्क—त्थयाइ तो चेइए वंदे ॥ २७ ॥ अह पक्खियं चउद्दसि—दिणमि पुव्वं व तत्थ देवसिअं । सुत्तंत पडिक्कमिउं, तो सम्ममिमं कमं कुणइ ॥ २८ ॥ मुहपोत्ती वंदणयं, संबुद्धाखामणं तहाऽऽलोए । वंदण पत्तेअं खामणं च वंदणयमह सुत्तं ॥ २९ ॥ सुत्तं अब्भुट्ठाणं, उस्सग्गो पुत्ति वंदणयं तहय । पज्जंतियखामणयं, तह चउरो थोभवंदणया ॥ ३० ॥ पुव्वविहिणेव सव्वं, देवसिअं वंदणाइ तो कुणइ ।

कायोत्सर्गादिक पारयिष्यामि इत्यादिना सुदर्शनप्रियामनोरमाया इव तत्र तत्र सघकृत्ये प्रवर्तयितव्याः। अत्र चायं निशीथचूर्ण्युक्तो विधिः "पुव्वं अणुसिट्ठी किज्जइ थुइत्ति भणिय होइ, अणुसिट्ठी थुइति एगट्ठेत्ति" भाष्यवचनात् "साहु कय ते एव, वुच्चइ, जह्वा चपाए सुमद्दा। नागरजणेण अणुसिट्ठा घन्ना सपुन्ना सत्ति ॥ १ ॥ तेओ उवालभो, दिज्जइ साणुण। ओवएसपयाण, कीरइ त्ति वुत्त भवति ॥ २ ॥ पच्छा सो उवगहो किज्जइ १ भणिय स–दाणे दवावणे करणे अ, करणे य कयमणुण्णाए। ववहिअमणुवहिअ वा, आणहि उवगह एअ ॥ ३ ॥ एवमेव तत्रैव ग्रन्थे (३९४) पत्रेऽपि तथा च तत्पाठः–चतुर्थी स्तुतिः पुनर्वैयावृत्त्यकराणा–यक्षाम्राम्प्रभृतीनां सम्यग्दृष्टिदेवतानां, किमर्थमित्याह–उपयोगार्थं स्वकृत्येषु तेषा सावधानतानिमित्त भवति च गुणोपबृंहणतः तत्तन्नावबृद्धिः। ततश्च स्वकार्यकारित्वोपयुक्तत्वाज्जगत् प्रसिद्ध एतद् यत्प्रशसातः सोत्साह सर्वकार्यकरणादर इति। 'तु' शब्दो विशेषक तेन याः श्रुताङ्गीशासनदेवतादिविषया स्तुतयः ताः सर्वा अपि चतुर्थस्तुतौ निपतन्ति, गुणोपबृंहणद्वारेण तासामपि उपयुक्तादिफलत्वादिति। स्तुति[युगलेषु]युगन्तेषु तथा निबन्धनात्, गुणोत्कीर्तनस्य द्वितीयस्तुतिरूपत्वात्, तथाहि–जिनज्ञानस्तुतिर्वन्दनाद्यात्मकत्वाद् एका गण्यते, वैयावृत्यकरादिस्तुतयस्तु द्वितीया गुणोत्कीर्तनादिरूपत्वात्, एवमेव युगलत्वसिद्धेः, भावित चैतत् पञ्चमे वन्दनाद्वारे अत एव क्वचिद्युगले चतुर्थास्तुति· सर्वे यक्षाम्बिकेत्यादि वैयावृत्यकराणां, क्वाऽपि च भूयासु·। सर्वदा देवा देवीभिरित्यादि सामान्यत सर्वदेवताना कुत्राऽपि "गौरी सैरिमेति" विद्यादेवताना अन्यत्र 'निष्पङ्कव्योमनीले' ति देवविशेषविषया एकत्र विकटदर्शने ति देव्या एव, कुत्रचिद् च "आमूलालोलधूली"त्यादि श्रुतदेवतायाः इत्यादि परिभावनीय। इद सूक्ष्मधिया कुग्रहादिपरिहारेण। कायोत्सर्ग-

सूर्यश्चेति 'पुरुषस्त्रियो'ऽपि एकशेषे सुराः ते चात्र यक्षाम्बाप्रभृतयः सम्यग्दृष्टिदेवता ज्ञातव्या , न तु अर्हन्त , तेषा प्राग् वन्दनीयत्वेन अभिहितत्वात् अनुशासकत्वात् स्मारकत्वाच्च, एते च किं इत्याह–'सरणिज्जत्ति' स्मरणीयास्तु तद्गुणानुचिन्त नोत्कीर्तनादिनोपबृंहणीयाः, श्लाघनीया इत्यर्थः । अल्पश्च जिनप्रवचनस्यः स्वल्पगुणोऽपि, सम्यग्दृष्टिप्रशंसायाः कर्मक्षय-कारणत्वात् । उक्त च–"गुणपगरिसबहुमाणो, कम्मक्खयकारण जेण त्ति" । नैव चेत्तदा उत्तरोत्तरसंयमस्थानवर्तिभि साधुभिः जघन्यजघन्यतरादिसंयमस्थानवर्तिनः साधवोऽप्यनुपबृंहणीयाः स्युः, तेश्च नियमादिषु दृढाः श्रावका । न च एतदागमे दृष्ट इष्ट वा, यत् गुणिना गुणा न प्रशस्याः, दर्शनमालिन्याद्यवासेः । आह च "नो खलु अप्परिवडिए निच्छ यओऽभइलिए व सम्मत्ते । होइ तओ परिणामो जत्तो अणुवबूहणाईय त्ति" ॥ १ ॥ देशविरताना वा अविरताना वाऽविरतसम्यग्दृष्टयः श्राद्धाः सत्काराद्यर्हा न स्युः, तथा च सति–

तम्हा सव्वपयत्तेण, जो नमुक्कारधारओ । सावओ सोऽवि दिट्ठव्वो, जहा परमबंधवो ॥ १ ॥

इत्यादि अपार्थक स्यात् एष च सकलागमव्यवहारलोपात् विमर्शनीय इद सूक्ष्मधिया इति । यद्वा स्मरणीया–स्मारणादिषु प्रेरणार्हाः, तत्र "पमुहे गाहा" अयमर्थः–वैयावृत्त्यादिकारका गीयन्ते, तत्र चाऽनादरवता भवतां तत् किं स्वकृत्यमपि विस्मृतं ? न युक्तमत्र प्रमादयितु, दुर्लभा हि पुनरिय सामग्री २, दुःखदः प्रमादारिः ३ दुरितो भवोदधिविनिपातः ४ स्वनामैव सत्यापयति इत्यादि व्यङ्ग्यार्थगर्भितविशेषणद्वारेण स्मारणादि क्रियते, अथवा स्मरणीयाः संघादिकृत्ये वैयावृत्त्यप्रभावनादौ उपयोगप्रस्तावे प्रेरणार्हाः तत्तत्करणसक्तियुक्तत्वात्तेषा । इद उक्त भवति–यदाऽमुकसंघे प्रभावनादि करिष्यथ तदाऽहं अमुकं

शुभदिने शुभवेलायां शुभमुहूर्ते सघस्य कारकस्य वा चन्द्रबले सति गुरूपदेशेन सघस्य समुदाय सर्वं मेलयित्वा देवगृहे समेत्य स्नात्रकरणानन्तरं देवाग्रत धौत पवित्र निश्चलं पट्टक स्थापयित्वा तदुपरि केशरादितिलकपूर्वं ज्ञान–दर्शन–चारित्राणा अनुक्रमेण तन्दुलपुञ्जिकारूपा स्थापना क्रियते, ततो मूलनायकस्य दक्षिणाङ्गे इन्द्र १ अग्नि २ यम ३ नैर्ऋत ४ वरुण ५ वायु ६ कुबेर ७ ईशान ८ ब्रह्म ९ नागाना १० दशदिक्पालाना पूर्ववत् स्थापना क्रियते, ततो मूलनायकवामाङ्गे आदित्य १ सोम २ मगल ३ बुध ४ बृहस्पति ५ शुक्र ६ शनैश्चर ७ राहु ८ केतु ९ नवग्रहस्थापना क्रियते, ततः तद्दिश्येव चैत्यदेवता १ क्षेत्रदेवता २ देशदेवता ३ स्थापनात्रय क्रियते, एव २५ पुञ्जिकाना स्थापना कार्या । तदनु सर्वासा पुञ्जिकानामुपरि वलिपुष्पधूपनैवेद्यवासादिप्रक्षेपः कार्य । तत —

पुञ्जिकासु च ये देवा, देव्योऽपि गुरुणोदिताः । वलिपूजां प्रतीच्छन्तु, सन्तु सघस्य शान्तये ॥ १ ॥

अनेन श्लोकेन सर्वासामुपरि अखण्डजलधारादान कार्य, तत सर्व गृहागते पर्पटादिमिश्रभाजन बृहत्तर भृत्वा एकस्य हस्ते दत्त्वा पूर्वदिक्संमुख भूत्वा जलधारादानपूर्वं पूर्वदिशि वलिः प्रक्षिप्यते, तत्र–श्लोकश्चाऽयम्—

ऐरावतसमारूढः, शक्रः पूर्वदिशि स्थितः । सघस्य शान्तये सोऽस्तु, वलिपूजा प्रतीच्छतु ॥ १ ॥

एवमाग्नेय्या दिशि–आग्नेय्याविदिश स्वामी, श्रीवह्निश्छागवाहन । सघस्य शान्तये सोऽस्तु, वलिपूजा प्रतीच्छतु ॥ २ ॥

एव दक्षिणस्या दिशि–दक्षिणस्या दिश स्वामी, यमो महिषवाहन । सघस्य शान्तये सोऽस्तु, वलिपूजा प्रतीच्छतु ॥ ३ ॥

एव नैर्ऋतदिशि–याम्यऽपातरालेऽसौ, नैर्ऋतिः शववाहन । सघस्य शान्तये सोऽस्तु, वलिपूजां प्रतीच्छतु ॥ ४ ॥

विषयेऽपि बहु विमर्शनीयं, यतो दैवसिकावश्यकमध्ये सामान्यतो वैयावृत्यकरान् विमुच्य केवलश्रुतदेवतादेः कायोत्सर्गकरणं, पाक्षिकादौ तु भवनदेव्याः, दीक्षादौ तु शासनदेव्यादीनामपि, अलं प्रसङ्गेन, तत्त्वं तु परमर्षयो विदन्ति ॥ ९८ ॥

॥ इति श्रुतदेवतादिकायोत्सर्गस्थापनाधिकारः ॥ ९८ ॥

ननु-श्रीखरतरगच्छीयसाधुसाध्व्यः सुविहितनामबिभ्राणा अपि मृत्तिकाघटकेन पानीयं विहरन्ति तत्र रक्षन्ति तत् किं तत्र जीवसंसक्तिसद्भावात्? उच्यते, श्रीस्थानाङ्गे (११८ पत्रे) तृतीयस्थाने तृतीयोद्देशके पानीयघटस्य साधुसाध्वीनां उक्तत्वात् तथाहि-"कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा तओ पायाइं धारित्तए वा परिहरित्तए वा तं० लाउयपादे वा दारुपादे वा मट्टियापादे वा" (सूत्रं १७०) व्याख्या-अलाबुपात्रकं-तुम्बकं दारुपात्रं-काष्ठमयं मृत्तिकापात्रं-मृण्मयं शराववार्घटिकादि, शेषं सुगमं, अत्र वार्घटिकाशब्देन पानीयलघुघटिका प्रोक्ताः। जीवोत्पत्तिपर्यन्तं तु यतनावन्तः साधवो रक्षन्त्येव न कथंचित् रक्षणे तु तत्रोत्पन्नपूतरकजीवपानीयं ग्रन्थोक्तविधिना गृहस्थादिभ्यः प्रयच्छन्ति, प्रत्युत काष्ठलोष्टिकादिधारणे तु जीवदोषस्य साक्षात् दृश्यमानत्वात् बहुमूल्यत्वाच्च। न तद्धारणनियमो विचार्यमाणं संयमसुखावहो मृत्तिकापानीयलघुघटिकाः तु अल्पमूल्यत्वात् सुखेन शुद्धत्वेन मिलनत्वात् संयमोपष्टम्भकारिणो भवतीति युक्तमेव तद्धारणम् ॥ ९९ ॥

॥ इति मृत्तिकापानीयघटिकारक्षणाधिकारः ॥ ९९ ॥

ननु-संघादीनां विघ्नोपद्रवशान्त्यै शान्तिविधिः क्रियते स शान्तिविधिः कः?, कुत्र प्रतिपादितश्च? उच्यते-स विधिः कोऽपि प्राक्तनलिखितानुसारेण, कोऽपि च महेभ्यादौ [उत्सवे] विधिज्ञश्रावककियमाणानुक्रमस्य स्वयं दर्शनेन च लिख्यते, तथाहि-

शुभदिने शुभवेलाया शुभमुहूर्ते सघस्य कारकस्य वा चन्द्रबले सति गुरूपदेशेन सघस्य समुदाय सर्व मेलयित्वा देवगृहे समेत्य स्नात्रकरणानन्तर देवाग्रतः धौत पवित्र निश्चलं पट्टक स्थापयित्वा तदुपरि केशरादितिलकपूर्वं ज्ञान–दर्शन–चारित्राणा अनुक्रमेण तन्दुलपुञ्जिकारूपा स्थापना क्रियते, ततो मूलनायकस्य दक्षिणाङ्गे इन्द्र १ अग्नि २ यम ३ नैर्ऋत ४ वरुण ५ वायु ६ कुबेर ७ ईशान ८ ब्रह्म ९ नागाना १० दशदिक्पालानां पूर्ववत् स्थापना क्रियते, ततो मूलनायकवामाङ्गे आदित्य १ सोम २ मगल ३ बुध ४ बृहस्पति ५ शुक्र ६ शनैश्चर ७ राहु ८ केतु ९ नवग्रहस्थापना क्रियते, ततः तद्दिस्येष चैत्यदेवता १ क्षेत्रदेवता २ देशदेवता ३ स्थापनात्रय क्रियते, एव २५ पुञ्जिकाना स्थापना कार्या । तदनु सर्वासा पुञ्जिकानामुपरि बलिपुष्पधूपनैवेद्यवासादिप्रक्षेप' कार्यः । तत —

पुञ्जिकासु च ये देवा, देव्योऽपि गुरुणोदिता । बलिपूजां प्रतीच्छन्तु, सन्तु सघस्य शान्तये ॥ १ ॥

अनेन श्लोकेन सर्वासामुपरि अखण्डजलधारादान कार्य, तत सर्व गृहागते पर्पटादिमिश्रभाजन बृहत्तर भृत्वा एकस्य हस्ते दत्त्वा पूर्वदिक्सम्मुख भूत्वा जलधारादानपूर्वं पूर्वदिशि बलि प्रक्षिप्यते, तत्र–श्लोकश्चाऽयम्—

ऐरावतसमारूढः, शक्रः पूर्वदिशि स्थितः । सघस्य शान्तये सोऽस्तु, बलिपूजा प्रतीच्छतु ॥ १ ॥

एवमाग्नेय्यां दिशि–आग्नेय्याविदिश' स्वामी, श्रीवह्निश्छागवाहन । सघस्य शान्तये सोऽस्तु, बलिपूजा प्रतीच्छतु ॥ २ ॥

एव दक्षिणस्या दिशि–दक्षिणस्या दिशः स्वामी, यमो महिषवाहन । सघस्य शान्तये सोऽस्तु, बलिपूजा प्रतीच्छतु ॥ ३ ॥

एवं नैर्ऋतदिशि–याम्यऽपातरालेऽसौ, नैर्ऋति शववाहन । सघस्य शान्तये सोऽस्तु, बलिपूजां प्रतीच्छतु ॥ ४ ॥

विषयेऽपि बहु विमर्शनीयं, यतो दैवसिकावश्यकमध्ये सामान्यतो वैयावृत्यकरान् विमुच्य केवलश्रुतदेवतादे कायोत्सर्गकरण, पाक्षिकादौ तु भवनदेव्याः, दीक्षादौ तु शासनदेव्यादीनामपि, अलं प्रसंगेन, तत्त्वं तु परमर्षयो विदन्ति ॥ ९८ ॥

॥ इति श्रुतदेवतादिकायोत्सर्गस्थापनाधिकारः ॥ ९८ ॥

ननु–श्रीखरतरगच्छीयसाधुसाध्व्यः सुविहितनामविख्याणा अपि मृत्तिकाघटकेन पानीय विहरन्ति तत्र रक्षन्ति तत् किं तत्र जीवसंसक्तिसद्भावात्? उच्यते, श्रीस्थानाङ्गे (१६८ पत्रे) तृतीयस्थाने तृतीयोद्देशके पानीयघटस्य साधुसाध्वीनां उक्तत्वात् तथाहि–"कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा तओ पायाइ धारित्तते वा परिहरित्तते वा त० लाउयपादे वा दारुपादे वा मट्टियापादे वा" (सूत्र १७०) व्याख्या–अलाबुपात्रक–तुम्बक दारुपात्र–काष्ठमय मृत्तिकापात्र–मृण्मय शरावघटिकादि, शेष सुगम, अत्र वार्घटिकाशब्देन पानीयलघुघटिका प्रोक्ताः। जीवोत्पत्तिपर्यन्त तु यतनावन्त साधवो रक्षन्त्येव न कथंचित् रक्षणे तु तत्रोत्पन्नपूतरकजीवपानीयं ग्रन्थोक्तविधिना गृहस्थादिभ्यः प्रयच्छन्ति, प्रत्युत काष्ठलोष्टिकादिधारणे तु क्रीतदोषस्य साक्षात् दृश्यमानत्वात् बहुमूल्यत्वाच्च। न तद्धारणनियमो विचार्यमाणः संयमसुखावहो मृत्तिकापानीयलघुघटिका तु अल्पमूल्यत्वात् सुखेन शुद्धत्वेन मिलनत्वात् संयमोपष्टम्भकारिणो भवतीति युक्तमेव तद्धारणम् ॥ ९९ ॥

॥ इति मृत्तिकापानीयघटिकारक्षणाधिकारः ॥ ९९ ॥

ननु–सघादीनां विघ्नोपद्रवशान्त्यै शान्तिविधिः क्रियते स शान्तिविधिः कः?, कुत्र प्रतिपादितश्च? उच्यते–स विधिः कोऽपि प्राक्तनलिखितानुसारेण, कोऽपि च महेवादौ [उत्सवे] विधिश्रावककियमाणानुक्रमस्य स्वयं दर्शनेन च लिख्यते, तथाहि–

क्रियन्ते, मङ्गलप्रदीपश्च घृतमयः कुसुम्भलवृत्तिकश्च तादृग्विधेयो यथा एकयैव वृत्त्या प्रज्वलन् सपूर्णशान्तिघोषणादिकृत्यं यावत् न विध्याति [संपूर्ण]। पश्चात् चतुर्विधसंघसहितो गुरुः ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य शक्रस्तव आदितः कृत्वा अष्टादशभिः स्तुतिभिर्देवादीन् वन्दते, आन्तरणीदोषो न कर्तुं देयः, देवतायाश्च स्तुतय इमाः—यदग्निनमनादेव, देहिनः सन्ति सुस्थिता । तस्मै नमोऽस्तु वीराय, सर्वविघ्नविघातिने ॥ १ ॥ सुरपतिनतचरणयुगा—न्नाभेयजिनादिजिनपतीन् नौमि । यद्वचनपालन-परा, जलाञ्जलिं ददतु दुःखेभ्यः ॥ २ ॥ वन्दन्ति वन्दारुगणाग्रतो जिना', सदर्थतो यद्रचयन्ति सूत्रतः । गणाधिपास्तीर्थ-समर्थनक्षणे, तदङ्गिनामऽस्तु मत नु मुक्तये ॥ ३ ॥ शक्र' सुरासुरवरैः सहदेवताभिः, सर्वज्ञशासनसुखाय समुद्यताभिः । श्रीवर्धमानजिनदत्तमतप्रवृत्तान्, भव्यान् जनानवतु नित्यममङ्गलेभ्यः ॥ ४ ॥ ततः श्रीशान्तिनाथदेवाधिदेवाराधनार्थं करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थू इत्यादि । रोगशोकादिभिर्दोषै—रजिताय जितारये । नमः श्रीशान्तये तस्मै, विहितानत-शान्तये ॥ ५ ॥ तत' श्रीशान्तिदेवतानिमित्त करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थू इत्यादि । श्रीशान्तिजिनभक्ताय, भव्याय सुख-सम्पदम् । श्रीशान्तिदेवता देया—दशान्तिमपनीय [ते] मे ॥ ६ ॥ तत । श्रीश्रुतदेवतानिमित्त करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थू इत्यादि । सुवर्णशालिनी देयाद्, द्वादशाङ्गी जिनोद्भवा । श्रुतदेवी सदा मह्य—मशेषश्रुतसम्पदम् ॥ ७ ॥ ततः श्रीभवन-देवतानिमित्त करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थू इत्यादि । चतुर्वर्णाय सघाय, देवीभवनवासिनी । निहत्य दुरितान्येपा, करोतु सुखमक्षतम् ॥ ८ ॥ तत क्षेत्रदेवतानिमित्तक करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थू इत्यादि । यासा क्षेत्रगता सन्ति, साधयः श्रावकादयः । जिनाज्ञां साधयन्तस्ता, रक्षन्तु क्षेत्रदेवताः ॥ ९ ॥ तत' श्रीअम्बिकादेवतानिमित्त करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थू

एवं पश्चिमदिशि—यः प्रतीच्या दिशो नाथो, वरुणो मकरस्थितः। संघस्य शान्तये सोऽस्तु, बलिपूजां प्रतीच्छतु ॥ ५ ॥ एवं वायव्यदिशि—हरिणो वाहनं यस्य, वायव्याधिपतिः स्मरः। संघस्य शान्तये सोऽस्तु, बलिपूजां प्रतीच्छतु ॥ ६ ॥ एवमुत्तरदिशि—निधाननवकारूढ, उत्तरस्या दिशः प्रभुः। संघस्य शान्तये सोऽस्तु, बलिपूजां प्रतीच्छतु ॥ ७ ॥ एवमीशानदिशि—सिते वृषेऽधिरूढः स—श्रीशानो विदितः प्रभुः। संघस्य शान्तये सोऽस्तु, बलिपूजां प्रतीच्छतु ॥ ८ ॥ एवमधोदिशि—पातालाधिपतिर्योऽस्ति, सर्वदा पद्मवाहनः। संघस्य शान्तये सोऽस्तु, बलिपूजां प्रतीच्छतु ॥ ९ ॥ एवमूर्ध्वदिशि—ब्रह्मलोकविभुर्योऽस्तु, राजहंससमाश्रितः। संघस्य शान्तये सोऽस्तु, बलिपूजां प्रतीच्छतु ॥ १० ॥ एवं दशस्वपि दिक्षु जलधारादानेन स्वस्वदिक्स्वामि श्लोकप्रतिपादेन च बलिः प्रक्षिप्यते, प्रथम प्रान्ते च श्लोकादौ नमोऽर्हत्सिद्धेति कथ्यते। एतस्मिन् विधौ कृतेऽत्र प्रस्तावे यदि संघसामुदायिका शान्तिः तदा देवगृहसत्कः कलशो गृह्यते, यदि एकः कोऽपि कारयति तदा शान्तिकारकगृहात् चतुरस्त्रलसधवसुन्दरीशिरसि आरोप्य मङ्गलगीतगानतानमानदानपात्रजन्यभव्यादिवादित्रे वाद्यमाने अन्तर्धवलितः पञ्चरत्नोपेतः मुखवेष्टितमुद्गलीसूत्र उपरि समाच्छादितकसुम्भलवकः कलशः समानीय पूर्वकृतस्वस्तिकोपरि स्थाप्यते कलशमध्ये श्रीशान्तिनाथप्रतिमा निश्चला सुसज्जिता कृत्वा मोच्या, कलशोपरिष्टात् ऊर्ध्वं तणीचतुष्कमध्ये उपर्युपरि प्रोतलाजिलीपङ्क्तिश्च बध्यते, तणीमध्यस्थो मङ्गुलीदवरको लम्बमानस्तथा बध्यते यथा कलशोपरि मुखमध्यभागे तिष्ठति, तत्र च संघसमुदायको मङ्गलीकञ्चुको बध्यते, कलशस्य पुष्पचन्दनपूजा कार्या। गुरुरपि वासक्षेपं करोति। ततः कलशाग्रे कुसुमाञ्जलि १ लवणपानीय २ परिधापनिका ३ आरात्रिक ४ मङ्गलप्रदीपा ५

अस्मिन् कायोत्सर्गे लोगस्स ४ पारिते लोगस्स १ तत उपविश्य नमस्कारशक्रस्तवादिकथनपूर्वं जयवीयरायपर्यन्त वाच्य । ततः सपूर्णाङ्गोपाङ्गाः सभार्याः सुशीला सपुत्रा समृद्धा बद्धहस्तमङ्गुलीदवरका गुणनभणनविचक्षणा अष्टौ इन्द्र-स्थानीयाः परिहितधौतिका आकार्यन्ते, तत्र द्वौ हस्तयोः कलशं गृहीत्वा तिष्ठत, एको धूप ददाति, एकः कुसुमचन्दन-वासक्षेप करोति, अन्ये चत्वारो मधुरस्वरेण शान्तिपूर्वक समस्मरणादि गुणयन्ति । तथा द्वौ कलशधारकौ कुण्डिकात कलशान् भृत्वा सस्तनमस्कारपूर्वं सप्तजलधारा दत्तः पश्चात् नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायेति पूर्वं अजितशान्तिस्तवः पठ्यते, पदे पदे जलधारादानं एवमग्रेतनस्मरणे अपि, भक्तामरशान्तिद्वयादीन्यपि । एवमन्योऽपि सर्वसंघ समस्मरणादि गुण-यति पश्चाद् भृते मूलकलशे पूर्वं रक्षित श्रीपार्श्वनाथप्रक्षालनपानीयमपि कलशमध्ये क्षिप्यते, ततो मङ्गलप्रदीप भ्रामयित्वा—

चेलोत्क्षेपैः पुष्पधूपादिदानैः, सम्मान्यश्रीदिक्पतीना विसर्गम् ।

कृत्वा शेषान् शेषदिव्यावतारान्, प्रासानारात् प्रेषयेत् स्वाधिवासान् ॥ १ ॥

अर्हदभिषेकदर्शित—सान्निध्यनिरस्तकल्मषोल्लाघाः । गच्छन्ति यथास्थाने, ये केचिदुपागता देवाः ॥ २ ॥

शक्राद्या लोकपाला दिशि विदिशि गताः शुद्धसद्धर्मसक्ता, आयाताः स्नात्रकाले कलशहृतिकृते तीर्थनाथस्य भक्त्या ।
न्यस्ता शेषाऽऽपदाद्या विहितशिवसुखाः स्वास्पद साम्प्रत ते, स्नात्रे पूजामवाप्य स्वमपि कृतमुदो यान्तु कल्याणभाज ॥ ३ ॥

अनेन पद्यत्रयेण दिक्पालविसर्जनं क्रियते, पश्चात् सर्वोऽपि सघो देवगृहे निकरादानपूर्वं शान्तिजल केन्दुकसत्क-मङ्गुलीसूत्रं च लाति, मङ्गुलीसूत्रं हस्तादौ बध्यते, कलशमध्याच्छान्तिजलं गृहीत्वा सर्वत्र गृहादौ प्रक्षिप्यते, तत सघ-

इत्यादि । अम्बा निहितडिम्भा मे, सिद्धबुद्धसुतान्विता । सिते सिंहे स्थिता गौरी, वितनोतु समीहितम् ॥ १० ॥ ततः श्रीपद्मावतीदेवतानिमित्त करेमि काउस्सग्गं अन्नत्थू इत्यादि । धराधिपतिपत्नीया, देवी पद्मावती सदा । क्षुद्रोपद्रवतः सा मां, पातु फुल्लत्फणावलीः ॥ ११ ॥ ततः श्रीचक्रेश्वरीदेवतानिमित्त करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थू इत्यादि । चञ्चच्चक्रकरा चारु-प्रवालदलसन्निभा । चिरं चक्रेश्वरी देवी, नन्दतादवताच्च माम् ॥ १२ ॥ ततः श्रीअच्छुप्तादेवतानिमित्त करेमि काउस्सग्गं अन्नत्थू इत्यादि । खड्गखेटककोदण्ड-बाणपाणितडिद्द्युति । तुरङ्गगमनाऽच्छुप्ता, कल्याणानि करोतु मे ॥ १३ ॥ ततः श्रीकुबेरादेवतानिमित्त करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थू इत्यादि । मथुरापुरि सुपार्श्व-श्रीपार्श्वस्तूपरक्षिका । श्रीकुबेरा नरारूढा, सुताङ्काऽवतु वो भयात् ॥ १४ ॥ ततः श्रीब्रह्मशान्तिदेवतानिमित्त करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थू इत्यादि । ब्रह्मशान्तिः स मां पाया-दपायाद्वीरसेवकः । श्रीमत्सत्यपुरे सत्या, येन कीर्तिं कृता निजा ॥ १५ ॥ ततः श्रीगोत्रदेवतानिमित्त करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थू इत्यादि । या गोत्र पालयत्येव, सकलाऽपायतः सदा । श्रीगोत्रदेवता रक्षा, सा करोतु नताऽङ्गिनाम् ॥ १६ ॥ ततः श्रीशक्रादिसमस्तदेवतानिमित्त करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थू इत्यादि । श्रीशक्र-प्रमुखा यक्षाः, जिनशासनसंस्थिताः । देवदेव्यस्तदन्येऽपि, संघ रक्षन्त्वपायतः ॥ १७ ॥ ततः सिद्धायिका-श्रीशासनदेवतानिमित्तं करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थू इत्यादि । श्रीमद्विमानमारूढा, यक्षमातङ्गसेविता । सा मां सिद्धायिका पातु, चक्र-चापेषु धारिणी ॥ १८ ॥

अस्मिन् कायोत्सर्गे लोगस्स ४ पारिते लोगस्स १ तत उपविश्य नमस्कारशक्रस्तवादिकथनपूर्वं जयवीयरायपर्यन्तं घाप्यं । ततः सपूर्णाङ्गोपाङ्गाः समार्याः सुशीलाः सपुत्रा समृद्धा मध्वस्तमङ्गुलीदवरका गुणनभणनविचक्षणा अष्टौ इन्द्र-स्थानीयाः परिहितधौतिका आकार्यन्ते, तत्र द्वौ हस्तयोः कलशं गृहीत्वा तिष्ठत, एको धूपं ददाति, एकः कुसुमचन्दन-वासक्षेपं करोति, अन्ये चत्वारो मधुरस्वरेण शान्तिपूर्वकं सप्तस्मरणादि गुणयन्ति । तथा द्वौ कलशधारकौ कुण्डिकातः कलशान् भृत्वा सघनमस्कारपूर्वं ससजलधारा दत्तः पश्चात् नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायेति पूर्वं अजितशान्तिस्तवः पठ्यते, पदे पदे जलधारादानं एवमग्रेतनस्मरणे अपि, भक्तामरशान्तिद्वयादीन्यपि । एवमन्योऽपि सर्वसंघः सप्तस्मरणादि गुण-यति पश्चात् भृते मूलकलशे पूर्वं रक्षितं श्रीपार्श्वनाथप्रक्षालनपानीयमपि कलशमध्ये क्षिप्यते, ततो मङ्गलप्रदीपं भ्रामयित्वा—

चेलोत्क्षेपैः पुष्पधूपादिदानैः, सम्मान्यश्रीदिक्पतीनां विसर्गम् ।

कृत्वा शेषान् शेषदिव्यावतारान्, प्रासानारात् प्रेषयेत् स्वाधिवासान् ॥ १ ॥

अर्हदभिषेकदर्शित—सान्निध्यनिरस्तकल्मषोल्लापाः । गच्छन्ति यथास्थाने, ये केचिदुपागता देवा ॥ २ ॥

शक्राद्या लोकपाला दिशि विदिशि गताः शुद्धसद्धर्मसक्ताः, आयाताः स्नात्रकाले कलशहृतिकृते तीर्थनाथस्य भक्त्या ।
न्यस्ता शेषाऽपदाद्या विहितशिवसुखाः स्वास्पदं साम्रतं ते, स्नात्रे पूजामवाप्य स्वमपि कृतमुदो यान्तु कल्याणभाज ॥ ३ ॥

अनेन पद्यत्रयेण दिक्पालविसर्जनं क्रियते, पश्चात् सर्वोऽपि संघो देवगृहे निकरादानपूर्वं शान्तिजलं केन्दुकसत्क-मङ्गुलीसूत्रं च लाति, मङ्गुलीसूत्रं हस्तादौ बध्यते, कलशमध्याच्छान्तिजलं गृहीत्वा सर्वत्र गृहादौ प्रक्षिप्यते, ततः संघ-

मध्ये नगरमध्ये देशमध्ये सर्वत्र शान्तिर्भवति, ऋद्धिसमृद्धिवृद्धिसिद्धिसंपदो भवन्ति, आधिव्याधिरोगशोकक्षुद्रोपद्रवाश्च द्रुतं दूरतो यान्ति ॥ १०० ॥

॥ इति श्रीशान्तिकविधिरधिकारः संपूर्णः ॥ १०० ॥

खरतरगच्छाधीशा, जिनचन्द्रयुगप्रधानगुरुराजाः । श्रीपातिसाहिमान्या, समभूवन् भूमिविख्याताः ॥ १ ॥
श्रीपूज्यमुख्यशिष्याः, दक्षाः श्रीसकलचन्द्रनामानः । मद्गुरवो गुणगुरव–स्तेषामेष प्रसादो मे ॥ २ ॥
एवं द्वादशभिः सम्यक्–पूर्णं प्रश्नोत्तरैः स्फुटम् । प्रकाशं पञ्चमं चक्रे, गणिः समयसुन्दरः ॥ ३ ॥

॥ इति श्रीसमयसुन्दरोपाध्यायविरचिते पञ्चमप्रकाशे श्रीसामाचारीशतके पञ्चमः प्रकाशः संपूर्णः ॥ ५ ॥

॥ ग्रन्थकृत्प्रशस्तिः ॥

सामाचारीशतकमिदमासूत्रित सूत्रगत्या, किंचित् वृत्तिप्रकरणवशात् सम्प्रदायाच्च किंचित् ।
चेद् ग्रन्थेऽस्मिन् भवति किमपि श्रीजिनाज्ञाविरुद्ध, सघाध्यक्ष मम जडधियो दुष्कृत स्याच्च [तस्य] मिथ्या ॥ १ ॥
जैना गच्छा जगति बहवो भिन्नभिन्नाभिधाना, भिन्नाचारा निजनिजमत स्थापयन्ति प्रमाणम् ।
गच्छाधीशा' श्रुतनिगदिता संमतिं दर्शयन्ति, [तद्व्यामोहो] तस्या मोहो न भवति कथ ? यज्जिनाज्ञैव सत्या ॥ २ ॥
प्रारब्ध किल सिन्धुदेशविषये श्रीसिद्धपुर्यामिद, मूलत्राणपुरे कियद्धिरचित वर्षत्रयात् प्रागूमया ।
सपूर्णं विदधे पुरे सुखकरे श्रीमेडतानामके, श्रीमद्विक्रमसवति द्वि-मुँनि-षँट्-प्रालेयरोचिर्मिते १६७२ ॥ ३ ॥
प्रवर्तमाने जिनवीरशासने, परम्पराया गणभृत्सुधर्मणः। श्रीवज्रशाखा सुकुले च चान्द्रे, गणे स्फुटे कौटिकनामधेये ४
श्रीपातिसाहिमान्ये, युगप्रधाने प्रधानसौभाग्ये । खरतरगच्छाधीशे, विजयि जिनसिंहसूरिगुरौ ॥ ५ ॥
अकब्बरसाहिस्तुमान्य , श्रीमज्जिनचन्द्रसूरिगुरुराजा । जाता युगप्रधाना-स्तच्छिष्य सकलचन्द्रगणि ॥ ६ ॥
तच्छिष्यसमयसुन्दर-सदुपाध्याया अकार्षुरिदमेवम् । सामाचारीशतक, सतत स्वपरोपकाराय ॥ ७ ॥
सुशिष्यो वाचनाचार्य,-स्तर्कव्याकरणादिवित् । हर्षनन्दनवादीन्द्रो, मम साहाय्यदायकः ॥ ८ ॥

इति श्रीसमयसुन्दरोपाध्यायविरचिते पञ्चमप्रकाशे श्रीसामाचारीशतक सपूर्णम् ॥

॥ लेखक–प्रशस्तिः ॥

श्रीमद्विक्रमतो धराङ्गगगनप्रालेयरोचिर्मिते, वर्षे लोद्रपुरे वरे यदुकुले भाटीसुगोत्रेऽभवत् ।
राजा श्रीसगरः प्रजासुखकरस्तत्सुन्दरी श्रीमती, सौख्यं भुक्तवतोस्तयो समभवन्नेकादशेहाऽऽत्मजाः ॥ १ ॥
अष्टौ तेषु मृताश्च मारिवशतो दुर्दैवतोऽनुक्रमे, दुःखात्तौ पितरौ वियोगविधुरौ जातौ च तस्मिन् क्षणे ।
कुर्वाणा विहृतिक्रमात् क्षितितले श्रीवर्धमानप्रभोः, शिष्याः सूरिजिनेश्वराः खरतरा श्रीलोद्रपुर्यां गता ॥ २ ॥
राजाद्याः सपरिग्रहाः प्रमुदिता नन्तुं गताः सद्गुरून्, श्रुत्वा श्रीजिनधर्ममर्म सकलं सन्तोषमापुस्तराम् ।
विज्ञप्तिं विदधे नृपः करयुगं संयोज्य राज्ञाऽन्वितः, स्वामिन्नष्ट ममाङ्गजा मृतिमगुर्जीवत्ययो ते त्रय ॥ ३ ॥
तत्कार्यं च यथा परोपकृतिभिर्जीवेत् सुताना त्रयं, लाभो वो भविता स को नृपतिना प्रोक्त तदा मत्पदे ।
राजाऽय भविता सुतः कुलधरः श्रीजैनधर्मी पुनः, पुत्रौ श्रीधरनामराजधरकौ शुद्धात्मिकौ भाविनौ ॥ ४ ॥
ज्ञात्वा लाभममु तथैव गुरुभी रक्षाकृताम्नायतो, वासक्षेपवशेन तौ नृपसुतौ श्राद्धौ कृतौ भ्रातरौ ।
ताभ्यां लोद्रपुरे जिनेन्द्रभवनं प्रोच्चैस्तरं कारितं, तद्गोत्रं भणशालिनाम समभूत्प्राणादिशालावशात् ॥ ५ ॥
श्रीधरश्रावकस्याऽऽसन्, पञ्च पुत्रा अनुक्रमात् । सीमसी १ भीमसीनामा २, जगसी ३ रूपसी ४ तथा ।
देवसी ५ च यथा ख्याताः, पाण्डवाः पाण्डुभूपतेः ॥ ६ ॥

सीमसीश्रावकस्याऽऽसीत्, कुलचन्द्रस्तनूरुहः तत्पुत्रो रामदेनामा, धनपालस्तदग्रज ॥ ७ ॥
साधारणाख्यस्तत्पुत्रः पुण्यपालस्तदग्रज । तत्सूः सज्जूस्ततोदेपू—स्तत्पुत्रस्तस्य गज्जकः ॥ ८ ॥
ज्येताख्यो नन्दनस्तस्य, खेतानामा तदग्रभू । आसकर्णश्च तत्पुत्र—स्तत्पुत्रो धस्तुपालक ॥ ९ ॥
पुञ्जानामा च तत्पुत्रः, श्रीयशोधवलस्तत । तत्पुत्रः पुञ्जसीनामा, श्रीमल्लस्तस्य नन्दनः ॥ १० ॥
श्रीमल्लाङ्गजथाहरू सुरतरुर्दानप्रदानेऽधिको, यो भाण्डारमचीभरञ्चनवै शास्त्रै स्वय लिखितैः ।
अर्हच्छासनमेकविंशतिसहस्राणीह वर्तिष्यते, तत्तु प्रोज्वलपुस्तकेष्वधिगत बुद्ध्या विचार्येति च ॥ ११ ॥
आषाढाश्विनचैत्रभाद्रपदमासाष्टाह्निकापर्वणि, श्रीमज्जेसलमेरुदुर्गनगरे चैत्येषु सप्तस्वपि ।
काश्मीराभिधकेशरेण भगवद्बिम्बानि यः पूजयेत्, सद्भक्त्या शतश सृजन् स्वपरयो सम्यक्त्वमत्युज्ज्वलम् ॥ १२ ॥
गुप्त दानमपि प्रयच्छति मुदा सद्धर्मिणा सीदता, दीनाना च ददाति सुन्दरतरा सो वर्डका नामत ।
चातुर्मासिकपाक्षिकाब्दिकमहाष्टम्यादिके पर्वणि, प्रातः पारणक ददाति सतत य पौषधाख्य कृताम् ॥ १३ ॥
यः श्रीलोद्रपुरे पुराणनगरे भूयिष्ठद्रव्यव्ययात्, चैत्योद्धारमुदारचित्तपरिणामोऽकारयत् सादरम् ।
श्रीचिन्तामणिपार्श्वमूर्तियुगल तत्रैव चाऽस्थापयत्, सोल्लास जिनराजसूरिगुरुभिर्हस्तप्रतिष्ठापितम् ॥ १४ ॥
यः कुण्डलाकृतिभृतां जयलब्धिकाना, कृत्वा च पुञ्जमतुल मनुजावपुषि ।

॥ लेखक–प्रशस्तिः ॥

श्रीमद्विक्रमतो धराङ्गगगनप्रालेयरोचिर्मिते, वर्षे लोद्रपुरे वरे यदुकुले भाटीसुगोत्रेऽभवत् ।
राजा श्रीसगर प्रजासुखकरस्तत्सुन्दरी श्रीमती, सौख्य भुक्तवतोस्तयो समभवन्नेकादशोद्दाऽऽत्मजाः ॥ १ ॥
अष्टौ तेषु मृताश्च मारिवशतो दुर्दैवतोऽनुक्रमे, दुःखार्त्तौ पितरौ वियोगविधुरौ जातौ च तस्मिन् क्षणे ।
कुर्वाणा विहृतिक्रमात् क्षितितले श्रीवर्धमानप्रभोः, शिष्या सूरिजिनेश्वरा खरतरा श्रीलोद्रपुर्यां गता ॥ २ ॥
राजाद्याः सपरिग्रहाः प्रमुदिता नन्तुं गताः सद्गुरून्, श्रुत्वा श्रीजिनधर्ममर्म सकल सन्तोषमापुस्तराम् ।
विज्ञप्तिं विदधे नृपः करयुग संयोज्य राज्ञाऽन्वित, स्वामिन्नष्ट ममाऽङ्गजा मृतिमगुर्जीवत्ययो ते त्रय ॥ ३ ॥
तत्कार्यं च यथा परोपकृतिभिर्जीवेत् सुताना त्रयं, लाभो वो भविता स को नृपतिना प्रोक्त तदा मत्पदे ।
राजाऽयं भविता सुतः कुलधरः श्रीजैनधर्मी पुनः, पुत्रो श्रीधरनामराजधरकौ शुद्धास्तिकौ भाविनौ ॥ ४ ॥
ज्ञात्वा लाभममु तथैव गुरुभी रक्षाकृताम्नायतो, वासक्षेपवशेन तौ नृपसुतौ श्राद्धौ कृतौ भ्रातरौ ।
ताभ्या लोद्रपुरे जिनेन्द्रभवन प्रोत्तुङ्गस्तर कारित, तत्रोत्र मणशालिनाम समभूत्प्राज्ञादिधालावशात् ॥ ५ ॥
श्रीधरश्रावकस्याऽऽसन्, पञ्च पुत्रा अनुक्रमात् । श्रीमसी १ भीमसीनामा २, जगसी ३ रूपसी ४ तथा ।
देवसी ५ च यथा ख्याताः, पाण्डवाः पण्डुभूपतेः ॥ ६ ॥

स्रीमसीश्रावकस्याऽऽसीत्, कुलचन्द्रसनूरुहः तत्पुत्रो रामदेनामा, धनपालस्तदङ्गजः ॥ ७ ॥
साधारणाख्यस्तत्पुत्रः पुण्यपालस्तदङ्गजः । तत्सू सज्जूस्तथोदेदु-स्तत्पुत्रस्तस्य गजकः ॥ ८ ॥
ज्येताख्यो नन्दनस्तस्य, खेतानामा तदङ्गभूः । आसकर्णश्च तत्पुत्र-स्तत्पुत्रो वस्तुपालकः ॥ ९ ॥
पुञ्जानामा च तत्पुत्रः, श्रीयशोधवलस्ततः । तत्पुत्रः पुञ्जसीनामा, श्रीमल्लस्तस्य नन्दनः ॥ १० ॥
श्रीमल्लाङ्गजथाहरू- सुरतरुर्दानप्रदानेऽधिको, यो भाण्डारमधीभरच्चवनवै शास्त्रैः स्वयं लिखितै ।
अर्हच्छासनमेकविंशतिसहस्राणीह वर्तिष्यते, तत्तु प्रोज्वलपुस्तकेष्वधिगतं बुद्ध्वा विचार्येति च ॥ ११ ॥
आषाढाश्विनचैत्रभाद्रपदमासाष्टाह्निकापर्वणि, श्रीमज्जेसलमेरुदुर्गनगरे चैत्येषु सप्तस्वपि ।
काश्मीराभिधकेशरेण भगवद्बिम्बानि य पूजयेत्, सद्भक्त्या शतशः सृजन् स्वपरयोः सम्यक्त्वमत्युज्ज्वलम् ॥ १२ ॥
गुप्त दानमपि प्रयच्छति मुदा सद्धर्मिणा सीदता, दीनाना च ददाति सुन्दरतरा सो वर्डका नामत ।
चातुर्मासिकपाक्षिकाब्दिकमहाष्टम्यादिके पर्वणि, प्रात पारणक ददाति सतत यः पौपधाख्य कृताम् ॥ १३ ॥
यः श्रीलोद्रपुरे पुराणनगरे भूयिष्ठद्रव्यव्ययात्, चैत्योद्धारमुदारचित्तपरिणामोऽकारयत् सादरम् ।
श्रीचिन्तामणिपार्श्वसूर्तियुगल तत्रैव चाऽस्थापयत्, सोल्लास जिनराजसूरिगुरुभिर्हस्तप्रतिष्ठापितम् ॥ १४ ॥
यः कुम्भलाकृतिभृतां जयलब्धिकाना, कृत्वा च पुञ्जमतुल मनुजावपुपि ।

॥ लेखक—प्रशस्तिः ॥

श्रीमद्विक्रमतो धराङ्गगगनप्रालेयरोचिर्मिते, वर्षे लोद्रपुरे वरे यदुकुले भाटीसुगोत्रेऽभवत् ।
राजा श्रीसगरः प्रजासुखकरस्तत्सुन्दरी श्रीमती, सौख्य भुक्तवतोस्तयो समभवन्नेकादशोद्वाऽऽत्मजा ॥ १ ॥
अष्टौ तेषु मृताश्च मारिवशतो दुर्दैवतोऽनुक्रमे, दुःखार्त्तौ पितरौ वियोगविधुरौ जातौ च तस्मिन् क्षणे ।
कुर्वाणा विहृतिक्रमात् क्षितितले श्रीवर्धमानप्रभोः, शिष्या सूरिजिनेश्वरा खरतरा श्रीलोद्रपुर्यां गता ॥ २ ॥
राजाद्याः सपरिग्रहाः प्रमुदिता नन्तु गताः सद्गुरून्, श्रुत्वा श्रीजिनधर्ममर्म सकल सन्तोषमापुस्तराम् ।
विज्ञप्तिं विदधे नृपः करयुग संयोज्य राज्ञाऽन्वितः, स्वामिन्नष्ट ममाऽङ्गजा मृतिमगुर्जीवत्ययो ते त्रय ॥ ३ ॥
तत्कार्यं च यथा परोपकृतिभिर्जीवेत् सुताना त्रय, लाभो यो भविता स को नृपतिना प्रोक्त तदा सत्पदे ।
राजाऽय भविता सुतः कुलधरः श्रीजैनधर्मी पुनः, पुत्रो श्रीधरनामराजधरको शुद्धास्तिको भाविनो ॥ ४ ॥
ज्ञात्वा लाभममु तथैव गुरुभी रक्षाकृताम्नायतो, वासक्षेपवशेन तो नृपसुतौ श्राद्धौ कृतौ भ्रातरो ।
ताभ्या लोद्रपुरे जिनेन्द्रभवन प्रोत्तुङ्ग कारित, तद्गोत्र भणशालिनाम समभूत्राण्डादिग्रामवशात् ॥ ५ ॥
श्रीधरश्रावकस्याऽऽसन्, पञ्च पुत्रा अनुक्रमात् । खीमसी १ भीमसीनामा २, जगसी ३ रूपसी ४ तथा ।
देवसी ५ च यथा ख्याताः, पाण्डवाः पण्डुभूपतेः ॥ ६ ॥

पुण्यकर्तव्यता काऽपि, प्रत्यक्षं ददृशे मया । काऽपि श्रुता सतां पक्षात्, प्रशस्तिर्लिखिताऽस्ति तत् ॥ २३ ॥
सामाचारीशतकममुना थाहरूशाहनाम्ना, पश्चाद्दर्शोष्वमलमतिना लेखितं पूर्वमेव ।
यावच्छ्रीमत्खरतरगणप्रोल्लसन्नाम तावत्, नन्दत्वेतच्चिरमनुपमं सर्वकल्याणकारि ॥ २४ ॥

॥ इति श्रीसामाचारीशतकं संपूर्णं ॥

सूरीश्वरो विजयते सुकृपादिचन्द्रः, शिष्योऽस्ति यस्य सुखसागरपाठकस्तु ।
तस्याऽऽज्ञया लिखितवान् पुरि मोहमय्यां, सुभावको विजयचन्द्र इमां प्रतिं तु ॥ १ ॥

Printed by Ramchandra Yesu Shedge, at the Nirnaya Sagar Press,
26–28, Kolbhat Street, Bombay

Published by Jaweri Mulchand Hirachand Bhagat, Jinadattasuri Jain
Bhandar, Mahavir Swami's Temple, Pydhuni, Bombay

तामिर्मृश प्रघरभक्तिभृतस्तथा यत्, सा विसरिष्यति कदापि न किंवदन्ती ॥ १५ ॥
प्रासादेषु त्रिभुवनगुरोरष्टसख्येषु सम्यक्, दादास्तूपे मुखमलकथीपादिचञ्चत्पताकाः ।
कीर्त्युल्लासाद्दिशि दिशि समारोपयामास भक्त्या, यः श्रीदेवावसरजयिन शम्भव पूजयित्वा ॥ १६ ॥
य' सौवर्णं वरमभ्वरफीनाणक भक्तितोऽदात्, पूर्वं केनाऽपि न वितरित सर्वसाधर्मिकाणाम् ।
नित्य दत्ते सकलयतिनां वस्त्रपात्रान्नपान, कुर्वन् सामायिकजिनवच श्रुत्यमावश्यकादीन् ॥ १७ ॥
श्रीभाले तिलक पुनः श्रवणयोः सौवर्णसत्कुण्डले, ग्रीवाया मणिमौक्तिकादिजटित ग्रैवेयक भूषणम् ।
हस्ते श्रीफलमद्भुत शिववधूवि[वे]वाहनैमित्तिक, मन्ये सर्वमिद चकार सुकृती श्रीपार्श्वनाथस्य यः ॥ १८ ॥
वन्नार्या निजभर्तृभक्तिकरणे दक्षा सुपक्षद्वया, शुद्धाचारवती सती गुणवती युक्ता विवेकश्रिया ।
बाह्याभ्यन्तरभूषणाऽस्ति कनकादेवी प्रसिद्धाऽभिधा, यत्पुत्रौ हरिराज उत्तमगुण श्रीमेघराजस्तथा ॥ १९ ॥
यः पूर्वं भरतादिवञ्च तिलक कारापयित्वा गृहे, भूत्वा संघपतिर्धभूव पुरतः कृत्वा रय सत्वरम् ।
रुक्माणा निकर वर प्रतिपुर वर्षन् यशोऽप्यर्जयन्, श्रीशत्रुञ्जयतीर्थराजविलसद्यात्रा पवित्रा व्यधात् ॥ २० ॥
यत्सघे जिनराजसूरिगुरवो गच्छाधिराजेश्वरा, आचार्या जिनसागरा मुनिवरव्रातेन संशोभिता ।
मुख्यः संघपतिः शिवाख्य इतरे श्राद्धाः पुनर्गोत्वराः, अन्येऽपि व्यवहारिणो मरुधराः सत्कां सुयात्रां व्यधुः ॥ २१ ॥
विधुं-वर्सु-रसं-क्षोणि-वर्षे १६८१, राउलकल्याणदासनूपराज्ये । श्रीशत्रुञ्जयपर्वणो, विनिर्ममे वाहकेन ॥ २२ ॥

पुण्यकर्तव्यता काऽपि, प्रत्यक्ष ददृशे मया । काऽपि श्रुता सता वक्त्रात्, प्रशस्तिर्लिखिताऽस्ति तत् ॥ २३ ॥
सामाचारीशतकममुना थाहरूशाहनाम्ना, पश्चात्सर्वोष्वमलमतिना लेखितं पूर्वमेव ।
यावच्छ्रीमत्खरतरगणप्रोल्लसन्नाम तावन्, नन्दत्वेतच्चिरमनुपमं सर्वकल्याणकारि ॥ २४ ॥

॥ इति श्रीसामाचारीशतकं संपूर्ण ॥

सूरीश्वरो विजयते सुकृपादिचन्द्र', शिष्योऽस्ति तस्य सुखसागरपाठकस्तु ।
तस्याऽऽज्ञया लिखितवान् पुरि मोहमय्यां, सुश्रावको विजयचन्द्र क्षमा प्रति तु ॥ १ ॥

Printed by Ramchandra Yesu Shedge, at the Nirnaya Sagar Press,
26–28, Kolbhat Street, Bombay

Published by Javeri Mulchand Hirachand Bhagat, Jinadattasuri Jain
Bhandar, Mahavir Swami's Temple, Pydhuni, Bombay

ताभिर्मृस्न प्रवरभक्तिभृतस्तथा यत्, सा विसरिष्यति कदापि न किंवदन्ती ॥ १५ ॥
प्रासादेषु त्रिभुवनगुरोरष्टसंख्येषु सम्यक्, यावास्तूपे मुखमलकथीपादिचञ्चत्पताकाः ।
कीर्त्युल्लासाद्दिशि दिशि समारोपयामास भक्त्या, यः श्रीदेवायसरजयिन शभव पूजयित्वा ॥ १६ ॥
यः सौवर्णं वरमञ्जरफीनाणक भक्तितोऽदात्, पूर्वं केनाऽपि न वितरित सर्वसाधर्मिकाणाम् ।
नित्य दत्ते सकलयतिना वस्त्रपात्रान्नपान, कुर्वन् सामायिकजिनयच श्रुत्यमावश्यकादीन् ॥ १७ ॥
श्रीभाले तिलक पुनः श्रवणयोः सौवर्णसत्कुण्डले, ग्रीवाया मणिमौक्तिकादिजटित ग्रैवेयक भूषणम् ।
हस्ते श्रीफलमद्भुत शिववधूवि[वे]वाहनैमित्तिक, मन्ये सर्वमिद चकार सुकृती श्रीपार्श्वनाथस्य यः ॥ १८ ॥
तद्भार्या निजभर्तृभक्तिकरणे दक्षा सुपक्षद्वया, शुद्धाचारवती सती गुणवती युक्ता विवेकश्रिया ।
बाह्याभ्यन्तरभूषणाऽस्ति कनकादेवी प्रसिद्धाऽभिधा, यत्पुत्रौ हरिराज उत्तमगुण श्रीमेघराजस्तथा ॥ १९ ॥
य' पूर्वं भरतादिवत्स तिलक कारापयित्वा गृहे, भूत्वा संघपतिर्धभूव पुरतः कृत्वा रथ सत्वरम् ।
रुक्माणा निकर वर प्रतिपुर वपन् यशोऽप्यर्जयन्, श्रीशत्रुञ्जयतीर्थराजविलसद्यात्रा पवित्रा व्यधात् ॥ २० ॥
यत्सघे जिनराजसूरिगुरवो गच्छाधिराजेश्वरा, आचार्या जिनसागरा मुनिवरव्रातेन संशोभिताः ।
मुख्यः सघपति शिवाख्य इतरे श्राद्धाः पुनर्गोचराः, अन्येऽपि व्यवहारिणो मरुधराः सस्का सुपात्रां व्यधु ॥ २१ ॥
विधु-वसु-रस-शशि-वर्षे १६८१, राउलकल्याणदासनृपराज्ये । श्रीशत्रुञ्जयसंघो, विनिर्ममे थाहरूकेण ॥ २२ ॥

पुण्यकर्तव्यता काऽपि, प्रत्यक्ष ददृशे मया । काऽपि श्रुता सता वक्रात्, प्रशस्तिर्लिखिताऽस्ति तद् ॥ २३ ॥
सामाचारीशतकममुना थाहरूशाहनाम्ना, पश्चादर्शोप्यमलमतिना लेखित पूर्वमेव ।
यावच्छ्रीमत्खरतरगणप्रोल्लसन्नाम तावत्, नन्दत्वेतच्चिरमनुपम सर्वकल्याणकारि ॥ २४ ॥

॥ इति श्रीसामाचारीशतकं संपूर्ण ॥

सूरीश्वरो विजयते सुकृपादिचन्द्र', शिष्योऽस्ति यस्य सुखसागरपाठकस्तु ।
तस्याऽऽज्ञया लिखितवान् पुरि मोहमय्यां, सुभावको विजयचन्द्र इमा प्रतिं तु ॥ १ ॥

Printed by Ramchandra Yesu Shedge, at the Nirnaya Sagar Press,
26–28, Kolbhat Street, Bombay

Published by Javeri Mulchand Hirachand Bhagat, Jinadattasuri Jain
Bhandar, Mahavir Swami's Temple, Pydhuni, Bombay

श्री केसरीमलजी घीसीलालजी कोठारी,
की तरफ से सादर भेंट—

६५

॥ समासमिदं सामाचारीशतकम् ॥

आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, जयपुर

तया बालतया मूढत्वेन शिशुत्वेन वा मोहतया मिथ्यात्वादिमोहेन भण्डतया रागपरादिपारवश्येन क्लिष्टतया क्लेशकर्मत्वेन त्रिगौरवगुरुतया ऋद्धिरससातगौरवेण एतैः प्रकारैः अस्य धर्मस्य अतीचारैरिति योजना। कथंभूतेन मयेत्याह—चतुःकषायोपगतेन पञ्चेन्द्रियवशार्तेन परिपूर्णतया सातासौख्यमनुपालयता तथा मया अस्य धर्मस्य अज्ञानतया अस्मिन्वा भवे वर्तमानजन्मनि अन्येषु वा भवग्रहणेषु अतीतानागतेषु प्राणातिपातः कृतो वा कारितो वा क्रियमाणो वा परैः समनुज्ञातः तं निन्दामि गर्हे त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन अतीतं निन्दामि प्रत्युत्पन्नं वर्तमानं संवृणोमि अनागतं प्रत्याख्यामि सर्वं प्राणातिपातं यावज्जीवमनिःश्रितोऽहं निश्रारहितो विप्रमुक्त इत्यर्थः। नैव स्वयं प्राणान् अतिपातयेत् नैव अन्यैः प्राणान् अतिपातयेत् प्राणानतिपातयतोऽन्यांश्च समनुजानीयात्। तद्यथा। अर्हत्साक्षिकं सिद्धसाक्षिकं साधुसाक्षिकं देवसाक्षिकं गुरुसाक्षिकं। केचिदाहुः आत्मसाक्षिकं। अत्र अर्हत्सिद्धसाधुदेवात्मसाक्षित्वे यन्निषिद्धं तदकरणीयमेवेत्यर्थः। केवलावधिज्ञानेन्द्रियादीनां सर्वप्रत्यक्षत्वात् एव भवति। अहमितिकथने कः पालक इत्याह। भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा साधुर्वा साध्वी वा संयतविरतप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मासंयत नियमित विरत निवृत्त प्रतिहत शुभकर्मभिर्घातित प्रत्याख्यात निराकृत। कदा कर्मेत्याह। दिवा वा रात्रौ वा। कीदृशो भिक्षुर्भिक्षुकी च। एकको वा पर्षदि गतो वा सुप्तो वा जाग्रद्वा एतत्खलु प्राणातिपातस्य विरमणं हितं श्रुतं क्षमं तारणसमर्थं निःशोषितं संपूर्णं पालितं आत्मानुगामि आत्मसेवनीयं परानुगामि परप्रतिपादनीयं। पुनः क-

थंमूतम् । एताभिर्युक्तिभिर्मेहार्थम् । कामिरित्याह । सर्वेषां प्राणानां सर्वेषां भूतानां पूर्वोक्तानां सर्वेषां जीवानां पूर्वोक्तानां सर्वेषां सत्वानां पूर्वोक्तानां अदुःखकरणतया अशोचनया अजीर्णनया अखण्डनेन अतीव्रतया सन्तोपकरणेन अपीडनया अपरितापनया अनुपद्रवनया महार्थं महागुण महानुभाव महापुरुषानुचीर्णं परमर्षिदेशित प्रशस्तं तत्प्राणातिपातात् विरमण । दुःखक्षयाय कर्मक्षयाय बोधिलाभाय संसारोत्तारणाय त्रिःकृत्वा त्रिःकरणशुद्ध्या त्रिवेल वा उपसंयुज्य उपसंपद्य वा व्रतेन संघटित्वा । णं इति वाक्यालंकारे । विचरामि तिष्ठामि प्रथमे भदन्त महाव्रते उपस्थितोस्मि सर्वस्मात्प्राणातिपाताद्विरमण ॥ १ ॥ अहावरे दुचे भंते महव्वए मुसावायाओ वेरमणं सव्वं भंते मुसावायं पच्चक्खामि । से कोहा वा लोहा वा भया वा हासा वा नेव सयं मुसं वइज्जा । नेवन्नेहिं मुसं वयाविज्जा मुसं वयंतेवि अन्ने न समणुजाणामि जाव० शेष पूर्ववत् । से मुसावाए चउव्विहे पन्नत्ते । तं जहा । दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ दव्वओणं मुसावाए सव्वदव्वेसु खित्तओणं मुसावाए लोए वा अलोए वा कालओणं मुसावाए दिया वा राओ वा भावओणं मुसावाए रागेण वा दोसेण वा जं पि० शेष० मुसावाओ भासिओ वा भासाविओ वा भासिज्जंतो वा परेहिं समणुन्नाओ तं निं० गरिहामि शेष पूर्ववत् । सव्वं मुसावायं जाव० शेष० । नेव सयं मुसं वाइज्जा नेवन्नेहिं मुसं वायाविज्जा मुसं वयंतेवि अन्ने न समणुजाणिज्जा । तंजहा । शेष० । एस खलु मुसावायस्स वेरमणे शेष० । दुच्चे भंते महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं ॥२॥ अथ अपरस्मिन् द्वितीये भदन्त महा-

तया बालतया मूढत्वेन शिशुत्वेन वा मोहतया मिथ्यात्वादिमोहेन मण्डतया रागपरादिपारवश्येन क्लिष्टतया क्लेशकर्मत्वेन त्रिगौरवगुरुतया ऋद्धिरससातगौरवेण एतैः प्रकारैः अस्य धर्मस्य अतीचारैरिति योजना । कथंभूतेन मयेत्याह—चतुष्कषायोपगतेन पञ्चेन्द्रियवशार्तेन परिपूर्णतया सातासौख्यमनुपालयता तथा मया अस्य धर्मस्य अज्ञानतया अस्मिन्वा भवे वर्तमानजन्मनि अन्येषु वा भवग्रहणेषु अतीतानागतेषु प्राणातिपातः कृतो वा कारितो वा क्रियमाणो वा परैः समनुज्ञातः तं निन्दामि गर्हे त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन अतीतं निन्दामि प्रत्युत्पन्नं वर्तमानं संवृणोमि अनागतं प्रत्याख्यामि सर्वं प्राणातिपातं यावज्जीवमनिश्रितोऽहं निश्रारहितो विप्रमुक्त इत्यर्थः । नैव स्वयं प्राणान् अतिपातयेत् नैव अन्यैः प्राणान् अतिपातयेत् प्राणानतिपातयतोऽन्यान्न समनुजानीयात् । तद्यथा । अर्हत्साक्षिकं सिद्धसाक्षिकं साधुसाक्षिकं देवसाक्षिकं गुरुसाक्षिकं । केचिदाहुः आत्मसाक्ष्यकं । अत्र अर्हत्सिद्धसाधुदेवात्मसाक्ष्यत्वे यन्निषिद्धं तदकरणीयमेवेत्यर्थः । केवलावधिज्ञानेन्द्रियादीनां सर्वप्रत्यक्षत्वात् एव भवति । अहमितिकथने कः पालक इत्याह । भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा साधुर्वा साध्वी वा संयतविरतप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मासंयत नियमितं विरतं निवृत्तं प्रतिहतं शुभकर्मभिर्घातितं प्रत्याख्यातं निराकृतं । कदा कर्मेत्याह । दिवा वा रात्रौ वा । कीदृशो भिक्षुर्भिक्षुकी च । एकको वा पर्षदि गतो वा सुप्तो वा जाग्रद्वा एतत्खलु प्राणातिपातस्य विरमणं हितं श्रुतं क्षमं तारणसमर्थं निःशोषितं संपूर्णं पालितं आत्मानुगामि आत्मसेवनीयं परानुगामि परप्रतिपादनीयं । पुनः क-

धमूतम् । एताभिर्युक्तिभिर्मेद्दार्थम् । कामिरित्याह । सर्वेषा प्राणानां सर्वेषां भूताना पूर्वोक्ताना सर्वेषा जीवाना पूर्वोक्ताना सर्वेषा सत्त्वानां पूर्वोक्ताना अदुःखकरणतया अशापनया अजीर्णनया अखण्डनेन अतीव्रतया सतोपकरणेन अपीडनया अपरितापनया अनुपद्रवनया मद्दार्थ महागुण महानुभाव महापुरुषानुचीर्ण परमर्षिदेशित प्रशस्त तत्प्राणातिपातात् विरमण । दुःखक्षयाय कर्मक्षयाय बोधिलाभाय ससारोत्तारणाय त्रिःकृत्वा त्रिःकरणशुद्ध्या त्रिवेल वा उपसयुज्य उपसपद्य वा व्रतेन सघटित्वा । ण इति वाक्यालकारे । विचरामि तिष्ठामि प्रथमे भवन्त महाव्रते उपस्थितोस्मि सर्वस्मात्प्राणातिपाताद्विरमण ॥ १ ॥ अहावरे दुचे भते महव्वए मुसावायाओ वेरमण सव भते मुसावाय पच्चक्खामि । से कोहा वा लोहा वा भया वा हासा वा नेव सय मुस वइज्जा । नेवन्नेहिं मुस वयाविज्जा मुसवयतेवि अन्ने न समणुजाणामि जाव० शेष पूर्ववत् । से मुसावाए चउविहे पन्नत्ते । त जहा । दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ दव्वओण मुसावाए सव्वदव्वेसु खित्तओण मुसावाए लोए वा अलोए वा कालओण मुसावाए दिया वा राओ वा भावओण मुसावाए रागेण वा दोसेण वा ज पि० शेष० मुसावाओ भासिओ वा भासाविओ वा भासिज्जतो वा परेहिं समणुन्नाओ त नि० गरिहामि शेष पूर्ववत् । सव मुसावाय जाव० शेष० । नेव सय मुस वाइज्जा नेवन्नेहिं मुस वायाविज्जा मुस वयतेवि अन्ने न समणुजाणिज्जा । तजहा । शेष० । एस खलु मुसावायस्स वेरमणे शेप० । दुचे भते महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मुसावायाओ वेरमण ॥२॥ अथ अपरस्मिन् द्वितीये भदन्त महा-

शेष० । तन्मैथुन चतुर्विधं प्रज्ञप्त शेष० । द्रव्यतो रूपेषु वा आकृतिमयेषु रूपसुभगेषु वा रूपलावण्यादियुक्तेषु क्षेत्रत' ऊर्ध्वलोके वा अधोलोके वा तिर्यग्लोके वा शेष० । मैथुन सेवित वा सेवयित वा सेव्यमान वा परैः न समनुजानीयात् शेष० । एतत् खलु मैथुनस्य विरमण शेष० चतुर्थे शेष० । मैथुनाद्विरमण ॥ ४ ॥ अहावरे पचमे भते महव्वए परिग्गहाओ वेरमण सव्व भते परिग्गह पच्चक्खामि से अप्प वा बहु वा अणु वा थूल वा चित्तमत वा अचित्तमत वा णेव सय परिग्गह परिगिण्हेज्जा णेवण्णेहिं परिग्गह परिगिण्हाविज्जा परिग्गह परिगिण्हतेवि अन्ने न समणुजाणामि० शेष० । से परिग्गहे च० शेष० । दव्वओण परिग्गहे सचित्ताचित्तमिस्सेसु दव्वेसु खित्तओण परिग्गहे गामे वा नयरे वा अरण्णे वा० शेष० । परिग्गहो गहिओ वा गाहाविओ वा घिप्पतो वा परेहिं समणुन्नाओ० शेष० । सव्व परिग्गह शेष० । नेव सय परिग्गह परिगिण्हिज्जा नेवण्णेहिं परिग्गह परिगिण्हाविज्जा परिग्गहं परिगिण्हतेवि अन्ने न समणुजाणिज्जा० शेष० । एस खलु परिग्गहस्स विरमण शेष० पचमे भते० शेष० परिग्गहाओ वेरमण ॥ ५ ॥ अथापरे पचमे भदन्त महाव्रते प्रथमान्तपदानि वा । परिग्रहाद्विरमण सर्वं भदन्त परिग्रह प्रत्याख्यामि तत् अल्प वा बहु वा अणु वा स्थूलं वा चित्तमद्वा अचित्तमद्वा नैव स्वय परिग्रह परिगृह्णीयात् नैवान्यैः परिग्रह परिग्राहयेत् परिग्रह परिगृह्णन्तमन्य न समनुजानामि शेष० स परिग्रहः शेष० । द्रव्यतः सचित्ताचित्तमिश्रितेषु द्रव्येषु क्षेत्रतो ग्रामे वा नगरे वा अरण्ये वा शेष० परिग्रहो गृहीतो वा ग्राहितो वा गृह्यमाणो वा परैः समनुज्ञातः शेष० सर्वं

परिग्रह शेष० । नैव स्वय परिग्रह परिगृह्णीयात् नैवान्यैः परिग्रह परिग्राहयेत् परिग्रह परिगृह्णतमन्य न सम-
नुजानीयात् शेष० एतत् खलु परिग्रहाद्विरमण शेष० पञ्चमे भदन्त० शेष० परिग्रहाद्विरमण ॥ ५ ॥ अहा-
वरे छट्ठे भंते वए राइभोयणाओ वेरमण सव्व भंते राइभोयण पच्चक्खामि से असण वा पाण वा खाइम
वा साइम वा णेव सय राइं भुंजिज्जा णेवण्णेहिं राइं भुंजाविज्जा राइं य भुंजतेवि अन्ने न समणुजाणामि
शेष० । से राइभोयणे चउव्वि० शेष० दव्वओण राइभोयणे असणे वा पाणे वा खाइमे वा साइमे वा खित्त-
ओण राइभोयणे समयखित्तेसु कालओण दिवा वा राइभोयणे रत्तिं । भावओण राइभोयणे तित्ते वा क-
डुए वा कसाइले वा अंबिले वा महुरे वा लवणे वा जवि० शेष० । राइभोयण भुंजिय वा भुंजाविय वा
भुंजिज्जत वा परेहिं समणुन्नाय शेष० सव्व राइभोयण० शेष० । नेव सय राइयं भुंजिज्जा नेवन्नेहिं राइं भुंजा-
विज्जा । राइं भुंजतेवि अन्ने न समणुजाणिज्जा० शेष० । एस खलु राइभोयणस्स वेरमणे शेष० छट्ठे भंते०
शेष० राइभोयणाओ वेरमण ॥६॥ अथापरे षष्ठे भदन्त व्रते प्रथमान्तपदानि वा । रात्रिभोजनाद्विरमणं सर्वं
भदन्त रात्रिभोजन प्रत्याख्यामि तत् अशन वा पानं वा खादिम वा स्वादिम वा नैव स्वय रात्रौ भुञ्जीत
नैवान्यै रात्रौ भोजयेत् रात्रौ भुञ्जानमन्यं न समनुजानामि शेष० । तद्रात्रिभोजनं चतुर्विध प्रज्ञप्त० शेष० ।
द्रव्यतः अशन वा पान वा खादिम वा स्वादिम वा क्षेत्रतः समयक्षेत्रेषु कालोचितभूमिषु कालतः रात्रौ भा-
वतः तिक्त वा कटु वा कषाय वा अम्ल वा लवण वा मधुर वा० शेष पू० । रात्रिभोजन भुक्त वा भोजित वा

शेष० । तन्मैथुन चतुर्विध प्रज्ञप्त शेष० । द्रव्यतो रूपेषु वा आकृतिमयेषु रूपसुभगेषु वा रूपलावण्यादियुक्तेषु क्षेत्रत ऊर्ध्वलोके वा अधोलोके वा तिर्यग्लोके वा शेष० । मैथुन सेवित वा सेवयित वा सेव्यमान वा परै न समनुजानीयात् शेष० । एतत् खलु मैथुनस्य विरमणं शेष० चतुर्थे शेष० । मैथुनाद्विरमण ॥ ४ ॥ अहावरे पचमे भते महव्वए परिग्गहाओ वेरमण सव्व भते परिग्गह पच्चक्खामि से अप्प वा बहु वा अणु वा थूल वा चित्तमत वा अचित्तमत वा णेव सय परिग्गह परिगिण्हेज्जा णेवण्णेहिं परिग्गह परिगिण्हाविज्जा परिग्गह परिगिण्हतेवि अन्ने न समणुजाणामि० शेष० । से परिग्गहे च० शेष० । दव्वओण परिग्गहे सचित्ताचित्तमिस्सेसु दव्वेसु खित्तओण परिग्गहे गामे वा नयरे वा अरण्णे वा० शेष० । परिग्गहो गहिओ वा गाहाविओ वा घिप्पतो वा परेहिं समणुन्नाओ० शेष० । सव्व परिग्गह शेष० । नेव सय परिग्गह परिगिण्हिज्जा नेवण्णेहिं परिग्गह परिगिण्हाविज्जा परिग्गह परिगिण्हतेवि अन्ने न समणुजाणिज्जा० शेष० । एस खलु परिग्गहस्स विरमण शेष० पचमे भते० शेष० परिग्गहाओ वेरमण ॥ ५ ॥ अथापरे पचमे भदन्त महाव्रते प्रथमान्तपदानि वा । परिग्रहाद्विरमण सर्व भदन्त परिग्रह प्रत्याख्यामि तत् अल्प वा बहु वा अणु वा स्थूल वा चित्तवद्वा अचित्तवद्वा नैव स्वय परिग्रह परिगृह्णीयात् नैवान्यैः परिग्रह परिग्राहयेत् परिग्रह परिगृह्णन्तमन्य न समनुजानामि शेष० स परिग्रहः शेष० । द्रव्यतः सचित्ताचित्तमिश्रितेषु द्रव्येषु क्षेत्रतो ग्रामे वा नगरे वा अरण्ये वा शेष० परिग्रहो गृहीतो वा ग्राहितो वा गृह्यमाणो वा परैः समनुज्ञातः शेष० सर्व

रसगन्धस्पर्शानां प्रविचारणं शुभाशुभाविचिन्तनं मैथुनस्य चि० ॥ ४ ॥ इच्छा काँक्षा मूर्छा नितरां लोभः
प्राहिता सर्वसंग्रहबुद्धिः काङ्क्षा परधनग्रहणबुद्धिः यद्योपम दारुणं इदं ग्रहीष्यामीति हठं परिग्रहस्य चि०
॥ ५ ॥ अतिमात्र आहारः निशि क्षुधयेन विशेष मधुभोजन सूर्यास्तसमीपे पाक्षिर्त सूर्योऽस्ति मन्येति चिन्ता
रात्रिभोजनस्य चि० ॥ ६ ॥ ॥ अथालापप्रावचनेन महाप्रलोचारण ब्रिराह—'दंसणनाणचरित्ते अविरा
हित्ता ठिओ समणधम्मे । पढम वयमणुरक्खे विरियामो पाणाइवायाओ ॥ १ ॥ दंसणनाणचरित्ता० । बीयं
वयमणुरक्खे विरियामो मुसावायाओ ॥ २ ॥ दसण० तइयं० विरियामो अदिन्नादाणाओ ॥ ३ ॥ दसणा० च०
उत्थं वयमणुरक्खे विरियामो मेहुणाओ ॥ ४ ॥ दंसण० पंचमवयमणुरक्खे विरियामो परिग्गहाओ ॥ ५ ॥
दंसणा० छट्ठं० राइभोयणाओ ॥ ६ ॥' दर्शनज्ञानचारित्राण्यविराध्योपस्थित [illegible]
मनुरक्षामि विरतोऽस्मि विरमामि वा प्राणातिपातात् ॥ १ ॥ दर्शनज्ञानचारित्राण्यविराध्य [illegible]
मं द्वितीयं व्रतमनुरक्षामि विरमामि मृषावादात् दर्श० प्र० ॥ २ ॥ तृतीयं व्रतमनुरक्षामि [illegible]
दर्श० ॥ ३ ॥ चतुर्थव्रतमनुरक्षामि विरमामि मैथुनात् दर्श० ॥ ४ ॥ पञ्चमं व्रतमनुरक्षामि [illegible]
ग्रहात् दर्श० ॥ ५ ॥ षष्ठं व्रतमनुरक्षामि विरमामि रात्रिभोजनात् दर्श० ॥ ६ ॥ [illegible]
इमिओ गुत्तो ठिओ [illegible] । पढम [illegible] ॥ १ ॥ [illegible]
प० मुसावायाओ ॥ २ ॥ [illegible] ॥ ३ ॥ [illegible]

भुज्यमानं वा परैः समनुज्ञात शेषं० सर्वं रात्रिभोजन शेष० नैव स्वय रात्रौ भुञ्जीत नैवान्यै रात्रौ भोजयेत् रात्रौ भुञ्जानानन्यान्न समनुजानीयात् शेष० एतत्खलु रात्रिभोजनाद्विरमण शेष० षष्ठं भदन्त व्रतं उपस्थितोऽस्मि शेष० रात्रिभोजनाद्विरमण ॥ ६ ॥ अथ सर्वेषा व्रताना समकालोच्चारमाह । इच्चेयाइं पञ्चमहव्वयाइं राइभोयणवेरमणछट्ठाइं अत्तहियट्ठयाए उवसंपज्जित्ताणं विहरामि । इत्येतानि पञ्च महाव्रतानि रात्रिभोजनविरमणषष्ठानि आत्महितार्थं उपसंपद्य सम्यक् प्रतिपद्य विहरामि ॥

अथ प्रकारान्तरेण महाव्रतव्युत्पत्तिमाह—'अप्पसत्था य जे जोगा परिणामा य दारुणा । पाणाइवायस्स वेरमणे एस वुत्ते अइक्कमे ॥ १ ॥ तिव्वरागा य जा भासा तिव्वदोसा तहेव य । मुसावायस्स वेरमणं एस वुत्ते अइक्कमे ॥ २ ॥ उग्गहं च अजाइत्ता अवदिन्ने य उग्गहे । अदिण्णादाणस्स वे० ॥ ३ ॥ सद्दा रूवा रसा गंधा फासाण पवियारणे । मेहुणस्स० ॥ ४ ॥ इच्छा मुच्छा य गेहि य कखओय दारुणे । परिग्गहस्स वे० ॥ ५ ॥ अइमित्ते अ आहारे सूरे खित्ते य संकिए । राइभत्तस्स वे० ॥ ६ ॥' अप्रशस्ता क्रोधपैशुन्यादिकरा परिणामाश्च दारुणाः हिंसाव्यवच्छेदादिकरा ये योगा मनोवाक्कायाः कर्मविशेषा वा प्राणातिपातस्य विरमणे एषोऽतिक्रमोऽतिचार उक्त ॥ १ ॥ तीव्ररागाय मधुरानुरागजनना या भाषा तथैव च तीव्रद्वेषा या भाषा मृषावादस्य विरमणे एषोऽतिक्रमोऽतिचार उक्त ॥ २ ॥ अवग्रहे गुर्वाद्याज्ञाविशेषे दत्तेऽपि पूर्वं व्रतयोजन याचितोऽपि कार्यकाले तस्य गुरोरवग्रह अयाचित्वा कार्यकरणमिति शेष । अदत्तादानस्य वि० ॥ ३ ॥ शब्दरूप-

रय घम्मपि य छव्विह तवोकम्म उव० १३ ॥ ६ ॥ सत्त भयट्ठाणाइ सत्तविह चेव नाणविब्भग । परि० १४ ॥ पिण्डेसण पाणेसण उग्गहसत्तक्किया महज्झयणा । उव० १५ ॥७॥ अट्ठ मयट्ठाणाइ अट्ठय कम्माइ तेसिं बध च । परि० १६ । अट्ठय पवयणमाया दिट्ठा अट्ठविहणिट्ठिअट्ठेहिं । उव० १७ ॥ ८ ॥ नवविहदसणवरण नवइ नियाणाइ अप्पसत्थाइ । परि० १८ । नवबभचेरगुत्तो दुनवविह बभचेरपरिसुद्ध । उव० १९ ॥ ९ ॥ उवघाय च दसविह असंवर तहय सकिलेस च । परि० २० ॥ दस चित्तसमाहिठाणा दस चेव दसाउ समणधम्मं च । उव० २१ ॥ १० ॥ आसायण च सव्व तिगुणएगारसविह विवज्जतो । परि० २२ । एव तिदडविरओ तिगुत्तिगुत्तो तिसल्लनिसल्लो । तिविहेण पडिक्कतो रक्खामि० २३ ॥ ११ ॥' व्याख्या—त्रिविधेन मनोवाक्कायप्रयोगेन अप्रमत्त, प्रमादरहितः पञ्चमहाव्रतानि रक्षामि परिपालयामि । एक सावद्ययोग एक मिथ्यात्व एक अज्ञान परिवर्जयन् गुप्तः त्रिगुप्तिगुप्तः पञ्चमहाव्रतानि रक्षामि । एक अनवद्ययोग एक सम्यक्त्व एक ज्ञान उपसपन्नः समाप्तः युक्तः सयमयोगयुक्तः पञ्चमहाव्रतानि रक्षामि १ । द्वौ चैव रागद्वेषौ द्वे ध्याने आर्तरौद्रे च परिवर्जयन्० शेष० । द्विविध चारित्रधर्मं यतित्वगार्हस्थ्यरूप द्वे धर्मशुक्ले ध्याने उपसपन्नः० शेष० २ । कृष्णा नीला कापोता तिस्रो लेश्या अप्रशस्ताः परि० शेष० । तेजःपद्मशुक्लास्तिस्रो लेश्याः सुप्रशस्ताः उप० शेष० ३ । मनसा मनःसत्येन सत्यापितः वाचा वचःसत्येन कायेन करणसत्येन त्रिविधेनापि सत्यापितः पंचमहाव्रतानि रक्षामि ३ । चतस्रो दुःखशय्याः चतुरः कषायान् क्रोधमानमायालोभरूपान् चतस्रः सज्ञा आहारभयमैथुनपरिग्र ह-

णाओ ॥ ४ ॥ आल० पचम वय० परिग्गहाओ ॥ ५ ॥ आल० छट्ठ वयमणुरक्खे विरमामो राइभोयणाओ ॥ ६ ॥' प्रथम व्रतमनुरक्षामि विरमामि प्राणातिपातात् आलयविहारसमितः आलयः स्थिति' विहारो गमन तत्र समितः पञ्चसमितियुक्तः युक्तः सयमयोगभृत् गुप्तस्त्रिगुप्तिगुप्त' उपस्थितः श्रमणधर्मे ॥ १ ॥ द्वितीय व्रतम० मृषावादात् शेष० ॥ २ ॥ तृतीय व्रतम० अदत्तादानात् शेष० ॥ ३ ॥ चतुर्थं व्रतम० मैथुनात् शेष० ॥ ४ ॥ पचम व्रतम० परिग्रहात् शेष० ॥ ५ ॥ षष्ठ व्रतमनुरक्षामि विरमामि रात्रिभोजनात् शेष० ॥ ६ ॥ ॥ अथैकाद्येकान्तहेयोपादेयत्यागग्रहणद्वारेण पौनःपुन्येन महाव्रतरक्षणमाह—'तिविहेण अप्पमत्तो रक्खामि महव्वए पच । सावज्जजोगमेग मिच्छत्त एगमेव अन्नाण । परिवज्जतो गुत्तो रक्खामि महव्वए पच ॥ १ ॥ अणवज्जजोगमेगं समत्तं एगमेव नाणओ । उवसपन्नो जुत्तो रक्खामि महव्वए पच ॥ २ ॥ दो चेव रागदोसे दोण्णिय झाणाइ अट्टरुद्दाइ । परि० ॥ ३ ॥ दुविह चरित्तधम्म दोण्णिय झाणाइ धम्मसुक्काइ । उव० ॥ ४ ॥ किण्हा नीला काऊ तिण्णियलेसाउ अप्पसत्थाओ । परि० ५ ॥ तेओ पम्हासुक्का तिण्णिय लेसाउ सुप्पसत्थाओ । उव० ६ ॥ ३ ॥ मणसा मणसच्चविओ वायासच्चेण करणसच्चेण । तिविहेणवि सच्चविर । उव० ७ ॥३॥ चत्तारि य दुहसिज्जा चउरो सन्ना तहा कसायाउ । परि० ८ । चत्तारि य सुहसिज्जा चउविह सवर समाहिं च । उव० ९ ॥ ४ ॥ पंचेव य कामगुणे पचेव य निण्हवे महादोसे १० । पचिंदिय सवरण तत्तो पचविहमेव सज्झाय । उव० ११ ॥ ५ ॥ छज्जीवनिकायवहं छव्विहमासाउ अप्पसत्थाओ । परि० १२ । छविह मब्भितर-

एव भगवन्त नमस्कृत्य तदग्रत एव कथितव-
रवर्धमानस्वामिने नमोस्तु तुभ्यमर्हते । नमोस्तु तुभ्य भगवते । महव्वयउच्चारणा पचविहा पन्नत्ता इत्या-
ध्यमाणस्थापनमाह । त्रिःकृत्वस्त्रिवेल खलु महाव्रतोच्चारणा कृता । अप्पसत्थाय जे जोगा इत्यारभ्य आलयविहारसमिओ
रम्य इच्चेइयाइं पचमहव्वयाइ इतिपर्यन्त एकवेल तिविहेण अप्पमत्तो इत्यारभ्य एव तिदण्डविरओ
गुत्तो गुत्तो ठवट्ठिओ समणधम्मे इतिपर्यन्त त्रिवेलं । श्रुतनामकीर्तनमाह ॥
इतिपर्यन्त त्रिवेल ॥ अथ इच्छामः सूत्रकीर्तन कर्तुं श्रुताधाराणां मुनीना नमस्कारद्वारेण सामाइय चउवीसच्छओ
नमो तेर्सि खमासमणाण जेर्हि इम वाइय छव्विहमावस्सय भगवन्त । तजहा । छव्विहे आवस्सए भगवते ससुत्ते सअत्थे सग्गथे
वदण पडिक्कमण काउसग्गो पच्चक्खाण सवेर्सिपि एयमि । छव्विहे आवस्सए भगवते ससुत्ते सअत्थे सग्गथे
सणिज्जुत्तिए ससगहणिए जे गुणा वा भावा वा अरहतेर्हि भगवतेर्हि पन्नत्ता वा परूविया वा ते भावे सद्द-
हामो पत्तियामो रोएमो फासेमो पालेमो अनुपालेमो ते भावे सद्दहतेणं पत्तियतेण रोयतेण फासि० तेण पा-
लितेण अणुपालितेण अतोपक्खस्स ज वाइय पढिय परियट्टिय पुच्छिय अणुपेहिय अणुपालिय त दुक्खक्ख
याए कम्मक्खयाए बोहिलाभाए ससारुत्तारणाए तिकट्टु उवसपज्जित्ताण विहरामि अतोपक्खस्स ज न वा-
इय न पढिय न पुच्छिय न परियट्टिय नाणुपालिय नाणुपेहिय सते बले सते वीरिए सते पुरिसक्कारपडिक्कमे ।
तस्स आलोएमो पडिक्कमामो निंदामो गरिहामो विउट्टेमो विसोहेमो अकरणयाए अब्भुट्ठेमो । अहारिह
तवोकम्म पायच्छित्त पडिवज्जामो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ नमो तेर्सि खमासमणाण जिर्हि इम वाचाइं (वा-

महव्वयउच्चारणा कया। कायथिरत्त सल्लुद्धरणं धिइबलं ववसाओ। पडागाहरण णिज्जूहणाराहणा गुणाण संवरजोगो पसत्थज्झाणोवगतता जुत्तताणणाणे परमट्ठे उत्तमट्ठे अ। एस खलु तित्थंकरेहिं रयरागदोसमहणेहिं देसिओ पवयणस्स सारो छज्जीवनिकायसंजमो उवएसिओ तिलुक्कस्स कय ठाण। अब्भुवगया नमुत्थु ते सिद्धबुद्धमुत्तनीरयनिस्संगनिस्सल्लमाणमूरण गुणरयणसायरमण तमहप्पमेय नमुत्थुते समणस्स भगवओ महइ महावीरवद्धमाणसामिस्स नमुत्थुते अरहओ नमुत्थुते भगवओ सिकट्टु एसा खलु महव्वयउच्चारणा कया इच्छामो सुत्तकित्तण काउ ॥ व्याख्या—इत्येषा खलु महाव्रतोच्चारणा कृता क प्रभावो महाव्रतानामित्याह। कायस्थिरत्व धर्मशरीरस्य स्थैर्यं, शल्योद्धरण मायामिथ्यात्वनिदानशल्यापगमः, धृतिबल वीयल वा, व्यवसायो विगतविषादान्तःसयमोपक्रमो वा, पताकाहरण सयमयशसोऽद्भावनास्थापनाराधनागुणाना सवरयोगः प्रसिद्ध प्रशस्तध्यानोपगतताशुभध्यानस्थितिरूपसपव प्रसिद्धा, युक्तताज्ञाने परमार्थ उत्तमार्थश्च प्रसिद्धपर्यायाः। एतत् खलु तीर्थकरैः रजोरागद्वेषमथनैः देशित प्रवचनस्य सार षड्जीवनिकायसयम उपदिष्टः। पञ्चमहाव्रतपालनेपि परमार्थतः षड्जीवनिकायरक्षैवेत्यर्थः। त्रैलोक्यस्य कृत स्थान सुख स्थितिहितहेतुत्वात्। अतएव तान् जिनान् नमस्करोति। तत्रापि वर्तमानतीर्थत्वात् भगवत श्रीवर्धमानस्वामिन नमस्करोति। यथा नमोस्तु तुभ्य अरहन्त भगवन्त ससारतीर्णं सिद्धबुद्धमुक्तनीरजोनिस्सङ्गनिःशल्यमानहरण गुणरत्नसागर अनन्ताप्रमेय। एतेषा पर्यायाः प्रसिद्धाः। नमोस्तु तुभ्य श्रमणाय भगवते महते महावी-

रवर्धमानस्वामिने नमोस्तु तुभ्यमर्हते । नमोस्तु तुभ्य भगवते । एव भगवन्त नमस्कृत्य तदग्रत एव कथितव- क्ष्यमाणस्थापनमाह । त्रिःकृत्वस्त्रिवेल खलु महाव्रतोच्चारणा कृता । महव्वयउच्चारणा पचविहा पन्नत्ता इत्या- रभ्य इच्चेइयाइ पचमहव्वयाइ इतिपर्यन्त एकवेलं अप्पसत्थाय जे जोगा इत्यारभ्य आलयविहारसमिओ जुत्तो गुत्तो ठवट्टिओ समणधम्मे इतिपर्यन्त द्विवेल । तिविहेण अप्पमत्तो इत्यारभ्य एव तिदण्डविरओ इतिपर्यन्त त्रिवेल ॥ अथ इच्छामः सूत्रकीर्तन कर्तुं श्रुताधाराणा मुनीना नमस्कारद्वारेण श्रुतनामकीर्तनमाह ॥ नमो तेर्सि खमासमणाण जेहिं इम वाइय छव्विहमावस्सय भगवन्त । तजहा । सामाइय चउवीसत्थओ वदण पडिक्कमण काउसग्गो पच्चक्खाण सव्वेसिंपि एवमि । छव्विहे आवस्सए भगवते ससुत्ते सअत्थे सगथे सणिज्जुत्तिए ससगहणिए जे गुणा वा भावा वा अरहतेहिं भगवतेहिं पन्नत्ता वा परूविया वा ते भावे सद्द- हामो पत्तियामो रोएमो फासेमो पालेमो अनुपालेमो ते भावे सद्दहतेणं पत्तियतेण रोयतेण फासि० तेण पा- लितेण अणुपालितेण अतोपक्खस्स ज वाइय पढिय परियट्टिय पुच्छिय अणुपेहिय अणुपालिय त दुक्खक्ख- याए कम्मक्खयाए बोहिलाभाए ससारुत्तारणाए तिकट्टु उवसपजित्ताण विहरामि अतोपक्खस्स ज न वा- इय न पढिय न पुच्छिय न परियट्टिय नाणुपालिय नाणुपेहिय सते बले संते वीरिए सते पुरिसक्कारपडिक्कमे । तस्स आलोएमो पडिक्कमामो निंदामो गरिहामो विउट्टेमो विसोहेमो अकरणयाए अब्भुट्ठेमो । अहारिह तवोकम्म पायच्छित्त पडिवज्जामो तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥ नमो तेर्सि खमासमणाण जिर्हिं इम वायाइ (वा-

अनुप्रेक्षित उक्तानुक्तदुरुक्तचिन्तनैः शोधित उक्तसिद्धान्तमध्यादित्यर्थ । तत् दु'खक्षयाय कर्मक्षयाय बोधिलाभाय ससारोत्तारणाय त्रि'कृत्वः उपसयुज्य सधार्य उपसपद्य वा । ण इति वाक्यालकारे । विचरामि अतपक्षस्य चातुर्मासिकस्य सावत्सरिकस्य यत्र वाचित न पठित न परिनिष्ठित न पृष्ट न प्रेक्षित नानुपालित नानुप्रेक्षित सति बले सति वीर्ये सति पुरुषाकारपराक्रमे बल देहसभव वीर्यमुत्साहसभव पुरुषाकारपराक्रमो धैर्यगाम्भीर्यरूपः तस्य अवाचनादिरूपस्य पापस्य आलोचयामः प्रतिक्रमामः आलोचनाप्रतिक्रमाईप्रायश्चित्तात् निन्दामो गर्हामहे पूर्ववत् वर्तयामः पुण्येन पाप हन्म' विशोधयाम' तच्छुद्धिं कुर्मः अकरणतया अकारित्वेन अभ्युत्तिष्ठामः तदुपक्रम कुर्मः यथार्हतपःकर्मप्रायश्चित्त तद्योग्यमपोहृत्तिशोधनार्हं प्रायश्चित्त प्रतिपद्यामहे । तस्य मिथ्या मे दुष्कृत पूर्ववत् । पुनर्नमस्तेभ्यः क्षमाश्रमणेभ्यो यैरिद वाचित अङ्गबाह्य । उत्कालिक भगवता अङ्गबाह्य द्वादशाङ्ग्या अतिरिक्त उत्कालिक योगेषु कालग्रहणसघट्टादिवर्जित भगवत इति पूर्ववत् । तद्यथा । दशवैकालिक १ कल्पाकल्पिक २ क्षुल्लककल्पश्रुत ३ महाकल्पश्रुत ४ उपपातिक ५ राजप्रश्नेणिक ६ जीवाभिगमः ७ प्रज्ञापना ८ महाप्रज्ञापना ९ नन्दी १० अनुयोगद्वाराणि ११ देवेन्द्रस्तवः १२ तन्दुलवैकल्पिक १३ चन्द्रविर्ध्वजः १४ प्रमादप्रमाद: १५ पौरुषीमण्डलं १६ मण्डलीप्रवेशः १७ गणिविद्या १८ विद्याचरणविनिश्चयः १९ आत्मविशुद्धिः २० मरणविशुद्धिः ध्यानविभूद्धि' २१ मरणविभूद्धिः २२ सलेखनाश्रुत २३ वीतरागश्रुत २४ विहारकल्पः २५ चरणविधिः २६ आतुरप्रत्याख्यान २७ महाप्रत्या-

स्याम २८ सर्वस्मिन् अङ्गबाह्ये उत्कालिके शेष० ॥ पुनर्नमस्तेभ्यः क्षमाश्रमणेभ्यो यैरिद वाचित अङ्गबाह्य कालिक कालग्रहणसंघट्टयोगसहित भगवन् ज्ञानमाहात्म्यमय । तद्यथा । उत्तराध्ययनानि दशाः कल्पः व्यवहारः ऋषिभाषितानि निशीथो महानिशीथः जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिः चन्द्रप्रज्ञप्तिः सूर्यप्रज्ञप्तिः द्वीपसागरप्रज्ञप्तिः क्षुल्लकीविमानप्रज्ञप्तिः महतीविमानप्रज्ञप्तिः अङ्गचूलिकाः व्यङ्गचूलिकाः व्यवहारचूलिकाः अरुणोपपातः गरुडोपपातः वरुणोपपातः धरणोपपातः वेलधरोपपातः देवेन्द्रोपपातः वैश्रमणोपपातः उत्थानश्रुत समुत्थानश्रुत नागपर्यायलिकाः निरयावलिकाः कल्पिकाः कल्पावतंसिकाः पुष्पिकाः पुष्पचूलिकाः वह्निदशाः आशीविषभावनाः दृष्टिविषभावनाः चारणभावनाः महाश्रमणभावना तेजोग्निनिसर्गाः सर्वस्मिन्नप्येतस्मिन्नङ्गबाह्ये कालिके भगवति । शेष० ॥ पुनर्नमस्तेभ्यः क्षमाश्रमणेभ्यो यैरिद वाचितं । कालिकमित्यनुवर्तते । द्वादशाङ्ग गणिपिटक भगवन् । तद्यथा । आचारः सूत्रकृत स्थान समवायः विवाहप्रज्ञप्तिः ज्ञाताधर्मकथाः उपासकदशाः अन्तकृद्दशाः अनुत्तरोपपातिकदशाः प्रश्नव्याकरण विपाकश्रुतं दृष्टिवादः सर्वस्मिन्नप्येतस्मिन्द्वादशाङ्गे गणिपिटके भगवति । शेष० । एतेषा सर्वेषां सिद्धान्ताना अन्तः कथित नामग्रहणमेव कथित । एतेषा भेदाः शास्त्राध्ययनोद्देशप्रमाणानि ग्रन्थविस्तरभयान्नोदितानि महाशास्त्रेभ्योऽवसेयानि ॥ पुनरपि सिद्धान्तप्रधानत्वात् प्रान्ते द्वादशाङ्गीनमस्कारमाह । नमस्तेभ्यः क्षमाश्रमणेभ्यो यैरिद वाचित द्वादशाङ्ग गणिपिटक भगवन् ।

१ भगवतीसूत्र ।

अनुप्रेक्षित उक्तानुक्तगुरुकचिन्तने शोधित उक्तसिद्धान्तमध्यादित्यर्थः । तत् दुःखक्षयाय कर्मक्षयाय बोधिलाभाय संसारोत्तारणाय त्रिःकृत्वः उपसंयुज्य संधार्य उपसंपद्य वा । ण इति वाक्यालंकारे । विचरामि अतपक्षस्य चातुर्मासिकस्य सांवत्सरिकस्य यत्र वाचित न पठित न परिनिष्ठित न पृष्ट न प्रेक्षित नानुपालित नानुप्रेक्षित सति बले सति वीर्ये सति पुरुषाकारपराक्रमे बल देहसंभव वीर्यमुत्साहसंभव पुरुषाकारपराक्रमो धैर्यगाम्भीर्यरूपः तस्य अवाचनादिरूपस्य पापस्य आलोचयामः प्रतिक्रमामः आलोचनाप्रतिक्रमार्हप्रायश्चित्तात् निन्दामो गर्हामहे पूर्ववत् वर्तयामः पुण्येन पाप हन्मः विशोधयामः तच्छुद्धिं कुर्मः अकरणतया अकारित्वेन अभ्युत्तिष्ठामः तदुपक्रम कुर्मः यथार्हतपःकर्मप्रायश्चित्त तद्योग्यतपोवृत्तिशोधनार्हं प्रायश्चित्त प्रतिपद्यामहे । तस्य मिथ्या मे दुष्कृत पूर्ववत् । पुनर्नमस्तेभ्यः क्षमाश्रमणेभ्यो यैरिद वाचित अङ्गबाह्य । उत्कालिक भगवता अङ्गबाह्य द्वादशाङ्ग्या अतिरिक्त उत्कालिक योगेषु कालग्रहणसंघट्टादिवर्जित भगवत इति पूर्ववत् । तद्यथा । दशवैकालिक १ कल्पाकल्पिक २ क्षुल्लककल्पश्रुत ३ महाकल्पश्रुत ४ उपपातिक ५ राजप्रश्नेणिक ६ जीवाभिगमः ७ प्रज्ञापना ८ महाप्रज्ञापना ९ नन्दी १० अनुयोगद्वाराणि ११ देवेन्द्रस्तवः १२ तन्दुलवैकल्पिक १३ चन्द्रविध्यजः १४ प्रमादप्रमादः १५ पौरुषीमण्डल १६ मण्डलीप्रवेशः १७ गणिविद्या १८ विद्याचरणविनिश्चयः १९ आत्मविशुद्धिः २० मरणविशुद्धि ध्यानविशुद्धिः २१ मरणविशुद्धि २२ संलेखनाश्रुत २३ वीतरागश्रुत २४ विहारकल्पः २५ चरणविधिः २६ आतुरप्रत्याख्यान २७ महाप्रत्या-

स्याम २८ सर्वस्मिन् अङ्गबाह्ये उत्कालिके शेष० ॥ पुनर्नमस्तेभ्यः क्षमाश्रमणेभ्यो यैरिद वाचित अङ्गबाह्य कालिक कालग्रहणसघट्टयोगसहित भगवन् ज्ञानमाहात्म्यमय । तद्यथा । उत्तराध्ययनानि दशाः कल्पः व्यवहारः ऋषिभाषितानि निशीथो महानिशीथः जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिः चन्द्रप्रज्ञप्तिः सूर्यप्रज्ञप्तिः द्वीपसागरप्रज्ञप्तिः क्षुल्लकीविमानप्रज्ञप्तिः महतीविमानप्रज्ञप्तिः अङ्गचूलिकाः व्यङ्गचूलिकाः व्यवहारचूलिकाः अरुणोपपातः गरुडोपपातः वरुणोपपातः धरणोपपातः वेलधरोपपातः देवेन्द्रोपपातः वैश्रमणोपपातः उत्थानश्रुत समुत्थानश्रुत नागपर्यावलिकाः निरयावलिकाः काल्पिकाः कल्पावतंसिकाः पुष्पिकाः पुष्पचूलिकाः वह्निदशाः आशीविषभावनाः दृष्टिविषभावनाः चारणभावनाः महाश्रमणभावनाः तेजोग्निविसर्गाः सर्वस्मिन्नप्येतस्मिन्नङ्गबाह्ये कालिके भगवति । शेष० ॥ पुनर्नमस्तेभ्यः क्षमाश्रमणेभ्यो यैरिद वाचित । कालिकमित्यनुवर्तते । द्वादशाङ्ग गणिपिटक भगवन् । तद्यथा । आचारः सूत्रकृत स्थान समवायः विवाहप्रज्ञप्तिः ज्ञाताधर्मकथाः उपासकदशाः अन्तकृद्दशाः अनुत्तरोपपातिकदशाः प्रश्नव्याकरण विपाकश्रुतं दृष्टिवादः सर्वस्मिन्नप्येतस्मिन्द्वादशाङ्गे गणिपिटके भगवति । शेष० । एतेषां सर्वेषा सिद्धान्ताना अन्तः कथित नामग्रहणमेव कथितं । एतेषा भेदाः शास्त्राध्ययनोद्देशप्रमाणानि ग्रन्थविस्तरमयाञोदितानि महाशास्त्रेभ्योऽवसेयानि ॥ पुनरपि सिद्धान्तप्रधानत्वात् प्रान्ते द्वादशाङ्गीनमस्कारमाह । नमस्तेभ्यः क्षमाश्रमणेभ्यो यैरिद वाचित द्वादशाङ्ग गणिपिटक भगवन् ।

१ भगवतीसूत्र ।

अनुप्रेक्षित उक्तानुक्तयुक्तचिन्तनैः शोधित उक्तसिद्धान्तमध्यादिस्यर्थं । तत् दुःखक्षयाय कर्मक्षयाय बोधिलाभाय संसारोत्तारणाय त्रिःकृत्व उपसंयुज्य संधार्य उपसंपद्य वा । ण इति वाक्यालंकारे । विचरामि अतपक्षस्य चातुर्मासिकस्य सांवत्सरिकस्य यत्र वाचितं न पठितं न परिनिष्ठितं न पृष्टं न प्रेक्षितं नानुपालितं नानुप्रेक्षितं सति बले सति वीर्ये सति पुरुषाकारपराक्रमे बलं देहसंभवं वीर्यमुत्साहसंभवं पुरुषाकारपराक्रमो धैर्यगाम्भीर्यरूपं तस्य अवाचनादिरूपस्य पापस्य आलोचयामः प्रतिक्रमामः आलोचनाप्रतिक्रमार्हप्रायश्चित्तात् निन्दामो गर्हामहे पूर्ववत् वर्तयामः पुण्येन पापं हन्मः विशोधयामः तच्छुद्धिं कुर्मः अकरणतया अकारित्वेन अभ्युत्तिष्ठामः तदुपक्रमं कुर्मः यथार्हत्तपःकर्मप्रायश्चित्तं तद्योग्यतपोवृत्तिशोधनार्हं प्रायश्चित्तं प्रतिपद्यामहे । तस्य मिथ्या मे दुष्कृतं पूर्ववत् । पुनर्नमस्तेभ्यः क्षमाश्रमणेभ्यो यैरिदं वाचितं अङ्गबाह्यं । उत्कालिकं भगवता अङ्गबाह्यं द्वादशाङ्ग्या अतिरिक्तं उत्कालिकं योगेषु कालग्रहणसंघट्टादिवर्जितं भगवत इति पूर्ववत् । तद्यथा । दशवैकालिकं १ कल्पाकल्पिकं २ क्षुल्लककल्पश्रुतं ३ महाकल्पश्रुतं ४ उपपातिकं ५ राजप्रश्नेणिकं ६ जीवाभिगमः ७ प्रज्ञापना ८ महाप्रज्ञापना ९ नन्दी १० अनुयोगद्वाराणि ११ देवेन्द्रस्तवः १२ तन्दुलवैकल्पिकं १३ चन्द्रविर्ध्वजं. १४ प्रमादप्रमादः १५ पौरुषीमण्डलं १६ मण्डलीप्रवेशः १७ गणिविद्या १८ विद्याचरणविनिश्चयः १९ आत्मविशुद्धिः २० मरणविशुद्धिः ध्यानविशुद्धिः २१ मरणविशुद्धि २२ संलेखनाश्रुतं २३ वीतरागश्रुतं २४ विहारकल्पः २५ चरणविधिः २६ आतुरप्रत्याख्यानं २७ महाप्रत्या-

ख्याम २८ सर्वस्मिन् अङ्गबाह्ये उत्कालिके शेष० ॥ पुनर्नमस्तेभ्यः क्षमाश्रमणेभ्यो यैरिदं वाचित अङ्गबाह्य कालिक कालग्रहणसघट्टयोगसहित भगवन् ज्ञानमाहात्म्यमय । तद्यथा । उत्तराध्ययनानि दशाः कल्पः व्यवहार' ऋषिभाषितानि निशीथो महानिशीथ' जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिः चन्द्रप्रज्ञप्तिः सूर्यप्रज्ञप्तिः द्वीपसागरप्रज्ञप्तिः क्षुल्लकीविमानप्रज्ञप्तिः महतीविमानप्रज्ञप्तिः अङ्गचूलिकाः व्यङ्गचूलिकाः व्यवहारचूलिकाः अरुणोपपातः गरुडोपपातः वरुणोपपात. धरणोपपातः वेलधरोपपातः देवेन्द्रोपपात' वैश्रमणोपपातः उत्थानश्रुत समुत्थानश्रुत नागपर्यावलिकाः निरयावलिकाः काल्पिकाः कल्पावतंसिकाः पुष्पिकाः पुष्पचूलिकाः वह्निदशाः आशीविषभावनाः दृष्टिविषभावनाः चारणभावनाः महाश्रमणभावना' तेजोग्निविसर्गाः सर्वस्मिन्नप्येतस्मिन्नङ्गबाह्ये कालिके भगवति । शेष० ॥ पुनर्नमस्तेभ्यः क्षमाश्रमणेभ्यो यैरिदं वाचित । कालिकमित्यनुवर्तते । द्वादशाङ्ग गणिपिटक भगवन् । तद्यथा । आचारः सूत्रकृत स्थान समवायः विवाहप्रज्ञप्तिः ज्ञाताधर्मकथाः उपासकदशा' अन्तकृद्दशाः अनुत्तरोपपातिकदशाः प्रश्नव्याकरण विपाकश्रुतं दृष्टिवादः सर्वस्मिन्नप्येतस्मिन्द्वादशाङ्गे गणिपिटके भगवति । शेष० । एतेषा सर्वेषां सिद्धान्तानां अन्तः कथित नामग्रहणमेव कथित । एतेषा भेदाः शाखाध्ययनोद्देशप्रमाणानि ग्रन्थविस्तरभयान्नोदितानि महाशास्त्रेभ्योऽवसेयानि ॥ पुनरपि सिद्धान्तप्रधानत्वात् प्रान्ते द्वादशाङ्गीनमस्कारमाह । नमस्तेभ्यः क्षमाश्रमणेभ्यो यैरिदं वाचित द्वादशाङ्ग गणिपिटक भगवन् ।

१ भगवतीसूत्र ।

अनुप्रेक्षित उक्तानुक्तगुरुकथितनैः शोधित उक्तसिद्धान्तमध्याविल्यर्थ. । तत् दु:खक्षयाय कर्मक्षयाय बोधिलाभाय ससारोत्तारणाय त्रि:कृत्व. उपसयुज्य सर्वार्थं उपसपद्य वा । ण इति वाक्यालकारे । विचरामि अतपक्षस्य चातुर्मासिकस्य सावत्सरिकस्य यन्न वाचित न पठित न परिनिष्ठितं न पृष्ट न प्रेक्षित नानुपालित नानुप्रेक्षित सति बले सति वीर्ये सति पुरुषाकारपराक्रमे बल देहसभव वीर्यमुत्साहसमव पुरुषाकारपराक्रमो धैर्यगाम्भीर्यरूप तस्य अवाचनादिरूपस्य पापस्य आलोचयामः प्रतिक्रमामः आलोचनाप्रतिक्रमार्हप्रायश्चित्तात् निन्दामो गर्हामहे पूर्ववत् वर्तयाम पुण्येन पाप हन्मः विशोधयाम तच्छुद्धिं कुर्मः अकरणतया अकारित्वेन अभ्युत्तिष्ठामः तदुपक्रम कुर्मः यथार्हतपःकर्मप्रायश्चित्त तद्योग्यतपोभूमिशोधनार्हं प्रायश्चित्त प्रतिपद्यामहे । तस्य मिथ्या मे दुष्कृत पूर्ववत् । पुनर्नमस्तेभ्यः क्षमाश्रमणेभ्यो यैरिद वाचित अङ्गबाह्य । उत्कालिक भगवता अङ्गबाह्य द्वादशाङ्ग्या अतिरिक्त उत्कालिक योगेषु कालग्रहणसंघट्टादिवर्जित भगवत इति पूर्ववत् । तद्यथा । दशवैकालिक १ कल्पाकल्पिक २ क्षुल्लककल्पश्रुत ३ महाकल्पश्रुत ४ उपपातिक ५ राजप्रश्नेणिक ६ जीवाभिगमः ७ प्रज्ञापना ८ महाप्रज्ञापना ९ नन्दी १० अनुयोगद्वाराणि ११ देवेन्द्रस्तवः १२ तन्दुलवैकल्पिक १३ चन्द्रविर्ध्वजः १४ प्रमादप्रमाथः १५ पौरुषीमण्डल १६ मण्डलीप्रवेशः १७ गणिविद्या १८ विद्याचरणविनिश्चयः १९ आत्मविशुद्धिः २० मरणविशुद्धिः ध्यानविभूद्धिः २१ मरणविभूद्धि २२ सलेखनाश्रुत २३ वीतरागश्रुत २४ विहारकल्पः २५ चरणविधिः २६ आतुरप्रत्याख्यान २७ महाप्रत्या-

लीकवचनविरतेः कन्यागोभूम्यलीककन्यासापह्नारकूटसाक्ष्यविरतिरूपायाः अतिचरित शेष० । सहसाभ्याख्यान अश्रुतादृष्टपरविरूपकथन । रहस्स इति परगुह्यभाषण । दारेति परस्य विश्वासेन निवेदितस्य प्रकाशन । मृषोपदेशः ज्ञात्वाऽज्ञात्वा वा भेषजमन्त्रादीना कूटकथन । कूटलेखोऽसत्यवार्तालिखन द्वितीयव्रतस्यातिचारे शेष० ॥ १२ ॥ 'तइए अणुव्वयमी थूलगपरदव्वहरणविरईओ । आयरियमप्पसत्थे इत्थपमायप्पसगेण ॥ १३ ॥ तेनाहडप्पओगे तप्पडिरूवे य विरुद्धगमणे य । कूडतुलकूडमाणे पडि० ॥ १४ ॥' तृतीये अणुव्रते स्थूलपरद्रव्यहरणविरतेः राजनिग्रहकरचौरनामकरादत्तादानवर्जनात् अतिचरित शेष० । तेनाहृतवस्तुग्रहण मूल्येनापि । प्रयोगः चौर्यार्थं परप्रेरण तत्प्रतिरूप वस्तुसदृशवस्तुमीलन विरुद्धगमन नृपतिनिषिद्धदेशगमन । कूटतुलकूटमान प्रसिद्ध प्रतिक्रमामि शेष० ॥ १४ ॥ 'चउत्थे अणुव्वयमी णिच्च परदारगमणविरईओ । आयरियमप्प० ॥ १५ ॥ अपरिग्गहिया इत्तर अणगवीवाह तिव्वअणुरागे । चउत्थवयस्स अइयारे पडि० ॥ १६ ॥' गाथाद्वयेन सबन्धः । चतुर्थे अणुव्रते नित्य परदारगमनविरतेः अतिचरित शेष पू० । अत्र परदारगमनविरतौ वेश्याविधवोपेक्षितागमने निर्दोषता तथाप्यतिचारमाह । अपरिगृहीतागमन वेश्याविधवादेरस्वीकृताया अभिगमः । इत्वरा केनापि या स्तोककाल द्रव्यादिना वेश्याविधवा स्वीकृता तस्याभिगमः । अनङ्गक्रीडा पुरुषस्य पुरुषादिसगो हस्तकर्मादि वा । विवाहोऽन्यकन्यापुत्रविवाहकारिता । तीव्रानुरागः कामक्रीडादिकामशास्त्रोचित कर्म चतुर्थस्य व्रतस्यातिचारान् शेष० ॥ १६ ॥ 'इत्तो अणुवये पंचममि आयरिय-

कायसमारम्भे षड्विधजीवनिकायघातिन्यारम्भे तेषां षट्कायाना पचने पाचने वा पतने पातने वा आत्मार्थं वा उभयार्थं वा ये दोषाः तान्निन्दामि ॥ ७ ॥ 'पञ्चण्हमणुव्वयाणं गुणव्वयाणं च तिण्हं मइयारे । सिक्खाणं च चउण्हं पडिक्कमे देवसिय सव्व ॥ ८ ॥' पञ्चाना अणुव्रतानां त्रयाणां गुणव्रतानां चतुर्णां शिक्षाव्रतानां च अतिचारान्प्रतिक्रमामि ॥ ८ ॥ तानेवाह । 'पढमे अणुव्वयंमी थूलगपाणाइवायविरईओ । आयरिउमप्पसत्थे इत्थ पमायप्पसंगेणं ॥ ९ ॥' वहबंधछविच्छेए अइयारे भत्तपाणवुच्छेए । पढमवयस्स अइयारे पडिक्कमे देवसिय सव्व ॥ १० ॥' गाथाद्वयेन सम्बन्धः । प्रथमे अणुव्रते स्थूलप्राणातिपातविरतौ आचीर्णं अप्रशस्ते । अत्र प्रमादप्रसंगेन अणुव्रतमिति वस्तुचितमहाव्रतापेक्षया स्थूलप्राणातिपातविरतिरिति । स्थूलप्राणाना द्वीन्द्रियादीना हिंसननिवृत्तिः । अथवा वधबन्धविच्छेदादिरूपाणां स्थूलप्राणातिपाताना विरतिः अतिचरितमिति अतिचारो नियमातिक्रमकृतः । अप्रशस्ते क्रोधादिकषायवैषम्ये पञ्चेन्द्रियार्तौ वा । अत्र व्रते प्रमादप्रसङ्गेन मध्याविप्रमादोपनयेन अतिचारानाह । वधो द्विपदचतुःपदादीनां निर्दयताडन, बन्धो द्विपदादीनां रज्ज्वादिभि, छविच्छेद चर्मनाशादि कर्णादिकर्तन, अतिभारः प्राणिना शक्त्यनपेक्षया बहुभारदान भक्तपानव्यवच्छेदः प्राणिनामाहारजलादिनिषेधः । प्रथमव्रतस्यातिचारे प्रतिक्रमामि दोष० ॥ १० ॥ 'बीए अणुव्वयंमी परिथूलगअलियवयणविरईओ । आयरियमप्पसत्थे इत्थ पमायप्पसंगेणं ॥ ११ ॥ सहसा रहस्स दारे मोसुवएसे अ कूडलेहे अ । बीयवयस्स इयारे पडि० ॥ १२ ॥' गाथाद्वयेन सम्बन्धः । द्वितीये अणुव्रते परिस्थूला-

लीकवचनविरतेः कन्यागोभूम्यलीकन्यासापहारकूटसाक्ष्यविरतिरूपायाः अतिचरित शेष० । सहसाभ्याख्यान अश्रुतादृष्टपरविरूपकथन। रहस्य इति परगुह्यभाषण । दारेति परस्य विश्वासेन निवेदितस्य प्रकाशन। मृषोपदेशः ज्ञात्वाऽज्ञात्वा वा भेषजमन्त्रादीना कूटकथन । कूटलेखोऽसत्यवार्तालिखन द्वितीयव्रतस्यातिचारे शेषं० ॥ १२ ॥ 'तइए अणुव्वयमी थूलगपरदव्वहरणविरईओ । आयरियमप्पसत्थे इत्थपमायप्पसगेण ॥ १३ ॥ तेनाहडप्पओगे तप्पडिरूवे य विरुद्धगमणे य। कूडतुलकूडमाणे पडि० ॥ १४ ॥' तृतीये अणुव्रते स्थूलपरद्रव्यहरणविरतेः राजनिग्रहकरचौरनामकरादत्तादानवर्जनात् अतिचरित शेष० । तेनाहृतवस्तुग्रहण मूल्येनापि। प्रयोग, चौर्यार्थं परप्रेरण तत्प्रतिरूप वस्तुसदृशवस्तुमीलन विरुद्धगमन नृपतिनिषिद्धदेशगमन। कूटतुलकूटमान प्रसिद्ध प्रतिक्रमामि शेष० ॥ १४ ॥ 'चउत्थे अणुव्वयमी णिच्च परदारगमणविरईओ। आयरियमप्प० ॥ १५ ॥ अपरिग्गहिया इत्तर अणगवीवाह तिव्वअणुरागे । चउत्थवयस्स अइयारे पडि० ॥ १६ ॥' गाथाद्वयेन सम्बन्धः। चतुर्थे अणुव्रते नित्य परदारगमनविरतेः अतिचरित शेष पू०। अत्र परदारगमनविरतौ वेश्याविधवोपेक्षितागमने निर्दोषता तथाप्यतिचारमाह । अपरिगृहीतागमन वेश्याविधवादेरस्वीकृताया अभिगमः। इत्वरा केनापि या स्तोककाल द्रव्यादिना वेश्याविधवा स्वीकृता तस्याभिगमः। अनङ्गक्रीडा पुरुषस्य पुरुषादिसगो हस्तकर्मादि वा। विवाहोऽन्यकन्यापुत्रविवाहकारिता । तीव्रानुरागः कामक्रीडादिकामशास्त्रोचित कर्म चतुर्थस्य व्रतस्यातिचारान् शेष० ॥ १६ ॥ 'इत्तो अणुव्वये पचममि आयरिय-

गकेदारप्रदाविशोषण १४, असतीपोषः वित्तनिमित्तं दास्यादिपोषण सारिकाशुकमार्जारकुक्कुटमयूरश्वानपालनरूपं १५, एतत्कर्मादानपञ्चदशक द्वितीयान्त कृत्वा वर्जयेदिति शेषः ॥ २३ ॥ ॥ अथानर्थदण्ड गाथात्रयेणाह । "सत्थग्गि मुसल जतग तणकठे मतमूलभेसज्जे । दिन्ने दवाविये वा पडिक्कमे देवसिय सव्व ॥ २४ ॥ न्हाणुवट्टण वन्नग विलेवणे सद्दरूवरसगन्धे । वत्थासण आभरणे पडि० ॥ २५ ॥ कदप्पे कुक्कुइए मोहरिअहिगरिणभोग अइरित्ते । दडमि अणट्ठाए तइयमि गुणवए निंदे ॥ २६ ॥' शस्त्रे अग्नौ मुसले यन्त्रे तृणे काष्ठे मन्त्रे मूले भेषजे दत्ते दापिते वा प्रतिक्रमामि शेष० । इति हिंसोपकारिदानाहिंसोपदेशदानविरमणेनानर्थदण्डविरमणमुक्त्वा प्रमादविरमणेन तद्विरमणमाह । स्नानोद्वर्तनवर्णकविलेपनादौ अतिमात्रे कृते अन्यस्मात्कारिते वा अनर्थदण्डः । शब्दे रूपे रसे गन्धे अतिमात्रे अविधिकृते व्यसनरूपे वस्त्रे आसने आभरणे अतिमात्रे प्रतिक्रमामि शेष० ॥ अतिचारानाह । कदर्पः परोपहासः, कौत्कुच्य कुटिलालापसव्याहतार्थवचन, मौखर्यमतिवावदूकतया परस्तुतिनिन्दे, अधिकरणातिरेकः उलूखलमुसलादिपापोपकरणाधिक्य सयुक्तता वा, भोगातिरेकः कामशास्त्रश्रवणदोलान्दोलनमहामैथुनरूपः, अनर्थदण्डे तृतीयगुणव्रते अतिचारान्निन्दामि ॥ २६ ॥ ॥ अथ सामायिकातिचारानाह । 'तिविहे दुप्पणिहाणे अणवट्ठाणे तहासयविहीणे । सामाइए वितहकडे पढमे सिक्खावए निन्दे ॥ २७ ॥' त्रिविधे दुःप्रणिधाने मनोवाक्कायानां दुष्टस्थितिरूपे अनवस्थाने स्मृतिभ्रंशे तथा आशयविहीने अनादरकृते सामायिके वितथकृते सातिचारनिर्मितो प्रथमशिक्षा-

व्रते अतिचारान्निन्दामि ॥ २७ ॥ 'आणवणे पेसवणे सद्दे रूवे य पुग्गलक्खेवे । देसावगासियम्मी बीए सिक्खावए निंदे ॥ २८ ॥' देशावकाशिकनियमे गृहीते अवग्रहाद्बहिर्भागात् वस्तुनो जीवादेर्वा आनयन प्रेषण तत्रैव मनुष्पार्श्वे प्रेषण शब्दस्तद्बहिर्गतस्याकारणरूप तद्बहिर्गतस्य स्वरूप दर्शयित्वा संज्ञादिकरण पुद्गलक्षेपः तद्बहिर्लोष्टखण्डादिक्षेप देशावकाशिके नियमे द्वितीये शिक्षाव्रते अतिचारान्निन्दामि ॥ २८ ॥ ॥ पोषधातिचारमाह 'संथारुच्चारविही पमाय तह चेव भोयणाभोए। पोसहविहिविवरीए तइए सिक्खावए निंदे ॥ २९ ॥' संस्तारकविधिः उच्चारविधिद्वये अप्रत्यवेक्षितविधिना कृते प्रमादः प्रसिद्धः । तथा चैव भवत्यनाभोगो विस्मरण पौषधविधिविपरीतान्पौषधभङ्गकारिणः तृतीये शिक्षाव्रते अतिचारान्निन्दामि ॥ २९ ॥ ॥ अतिथिसंविभागव्रतातिचारानाह । 'सच्चित्ते निक्खिवणे पिहणे ववएस मच्छरे चेव । कालाइक्कमदाणे चउत्थे सिक्खावए निंदे ॥ ३० ॥' सचित्ते निक्षेपः सचित्तेन पिधान व्यपदेशोऽपरकीयवस्तुस्थापनं । मत्सरोऽन्यदानासूयया दान कालातिक्रमदान चतुर्थशिक्षाव्रते अतिचारान्निन्दामि ॥ ३० ॥ ॥ अथ मिथ्यात्वप्रतिक्रमण प्रकारान्तरेणाह । 'सुहिएसु य दुहिएसु य जा मे असंजएसु अणुकंपा । रागेण व दोसेण व त निंदे त च गरिहामि ॥ ३१ ॥' सुखितेषु वा दुःखितेषु वा गृहिलिङ्गि–कुलिङ्गि–अन्यलिङ्गिषु रागेण वा दोषेण वा या मे अनुकम्पा ता च निन्दामि ता च गर्हे ॥ ३१ ॥ ॥ सम्यक्त्वभङ्गप्रतिक्रमण प्रकारान्तरेणाह । 'साहूसु संविभागो न कओ तवचरणकरणजुत्तेसु । सते फासुयदाणे त निंदे त च गरिहामि ॥ ३२ ॥' यन्मया सत्यपि

गकेदारग्रहादिशोषण १४, असतीपोष' चिसनिमित्त दास्यादिपोषण सारिकाशुकमार्जारकुक्कुटमयूरश्वान-पालनरूप १५, एतत्कर्मादानपञ्चदशक द्वितीयान्त कृत्वा वर्जयेदिति शेषः ॥ २३ ॥ ॥ अथानर्थदण्ड गाथा-त्रयेणाह । "सत्थग्गि मुसल जतग तणकठे मतमूलभेसज्जे । दिन्ने दवाविये वा पडिक्कमे देवसिय सव्व ॥ २४ ॥ न्हाणुवट्टण वन्नग विलेवणे सद्दरूवरसगन्धे । वत्थासण आभरणे पडि० ॥ २५ ॥ कदप्पे कुक्कुइए मोहरिअ-हिगरिणभोग अइरित्ते । दडमि अणट्ठाए तइयमि गुणवए निंदे ॥ २६ ॥' शस्त्रे अग्नौ मुसले यन्त्रे तृणे काष्ठे मन्त्रे मूले भेषजे दत्ते दापिते वा प्रतिक्रमामि शेष० । इति हिंसोपकारिदानहिंसोपदेशदानविरमणेनान-र्थदण्डविरमणमुक्त्वा प्रमादविरमणेन तद्विरमणमाह । स्नानोद्वर्तनवर्णकविलेपनादौ अतिमात्रे कृते अन्य-सात्कारिते वा अनर्थदण्डः । शब्दे रूपे रसे गन्धे अतिमात्रे अविधिकृते व्यसनरूपे वस्त्रे आसने आभरणे अतिमात्रे प्रतिक्रमामि शेष० ॥ अतिचारानाह । कदर्पः परोपहासः, कौत्कुच्य कुटिलालापसव्याहतार्थव चन, मौखर्यमतिवाचदूकतया परस्तुतिनिन्दे, अधिकरणातिरेकः उलूखलमुसलादिपापोपकरणाधिक्य सयु-क्तता वा, भोगातिरेकः कामशास्त्रश्रवणदोलान्दोलनमहामैथुनरूपः, अनर्थदण्डे तृतीयगुणव्रते अतिचारानि-न्दामि ॥ २६ ॥ ॥ अथ सामायिकातिचारानाह । 'तिविहे दुप्पणिहाणे अणवट्ठाणे तहासइविहीणे । सा-माइए वितहकए पढमे सिक्खावए निन्दे ॥ २७ ॥' त्रिविधे दुःप्रणिधाने मनोवाक्कायानां दुष्टस्थितिरूपे अन-वस्थाने स्मृतिभ्रंशे तथा आशयविहीने अनादरकृते सामायिके वितथकृते सातिचारनिर्मितो प्रथमशिक्षा-

व्रते अतिचारान्निन्दामि ॥ २७ ॥ 'आणवणे पेसवणे सद्दे रूवे य पुग्गलक्खेवे । देसावगासियम्मी बीए सिक्खावए निंदे ॥ २८ ॥' देशावकाशिकनियमे गृहीते अवग्रहबहिर्भागात् वस्तुनो जीवादेर्वा आनयन प्रेषण तत्रैव मनुष्यादेः प्रेषण शब्दस्तद्बहिर्गतस्याकारणरूप तद्बहिर्गतस्य स्वरूप दर्शयित्वा संज्ञादिकरण पुद्गलक्षेपः तद्बहिर्भूतत्खण्डादिक्षेपः देशावकाशिके नियमे द्वितीये शिक्षाव्रते अतिचारान्निन्दामि ॥ २८ ॥ ॥ पोषधातिचारमाह 'संथारुच्चारविही पमाय तह चेव भोयणाभोए। पोसहविहिविवरीए तइए सिक्खावए निंदे ॥ २९ ॥' सस्तारकविधिः उच्चारविधिद्वये अप्रत्युपेक्षितविधिना कृते प्रमादः प्रसिद्धः । तथा चैव भवत्यनाभोगो विस्मरण पोषधविधिविपरीतान्पोषधमङ्गकारिणः तृतीये शिक्षाव्रते अतिचारान्निन्दामि ॥ २९ ॥ ॥ अतिथिसविभागव्रतातिचारानाह । 'सचित्ते निक्खिवणे पिहणे ववएस मच्छरे चेव । कालाइक्कमदाणे चउत्थे सिक्खावए निंदे ॥ ३० ॥' सचित्ते निक्षेपः सचित्तेन पिधान व्यपदेशोऽपरकीयवस्तुस्थापन । मत्सरोऽन्यदानासूययादान कालातिक्रमदान चतुर्थशिक्षाव्रते अतिचारान्निन्दामि ॥ ३० ॥ ॥ अथ मिथ्यात्वप्रतिक्रमण प्रकारान्तरेणाह । 'सुहिएसु य दुहिएसु य जा मे असजएसु अणुकंपा । रागेण व दोसेण व त निंदे त च गरिहामि ॥ ३१ ॥' सुखितेषु वा दुःखितेषु वा गृहिलिङ्गि–कुलिङ्गि–अन्यलिङ्गिषु रागेण वा दोषेण वा या मे अनुकम्पा ता च निन्दामि ता च गर्हे ॥ ३१ ॥ ॥ सम्यक्त्वभङ्गप्रतिक्रमण प्रकारान्तरेणाह । 'साहूसु सविभागो न कओ तवचरणकरणजुत्तेसु । सते फासुयदाणे त निंदे त च गरिहामि ॥ ३२ ॥' यन्मया सत्यपि

यथा भारवाहः अपहृतभर' सन् अतिरेकलघुर्भवति इति शेष० ॥ ४० ॥ ॥ अथावश्यकफलमाह । 'आय-
स्सएण एएण सावओ जइवि बहुरओ होइ । दुक्खाणमंतकिरियं काही अचिरेण कालेण ॥ ४१ ॥' श्रावको
यद्यपि बहुरजा बहुपापमलो भवति तथापि एतेनावश्यकेन षड्विधेन अचिरेण कालेन दुःखानामन्तक्रिया
कर्ता ॥ ४१ ॥ ॥ विस्मृतातिचारप्रतिक्रमणमाह । 'आलोयणा बहुविहा नय संभरिया पडिक्कमणकाले ।
मूलगुणउत्तरगुणे तं निंदे तं च गरिहामि ॥ ४२ ॥' मूलगुणे पञ्चाणुव्रतरूपे उत्तरगुणे गुणव्रतशिक्षाव्रतरूपे
बहुविधा आलोचना प्रतिक्रमणकाले न संस्मृता तां निन्दामि तां च गर्हे ॥ ४२ ॥ ॥ अथोर्ध्वीभूय धर्मनि-
श्चयकथन ॥ 'तस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्स अब्भुट्ठिओमि आराहणाए विरओमि विराहणाए य । तिवि-
हेण पडिक्कंतो वंदामि जिणे चउवीसं ॥ ४३ ॥' तस्य धर्मस्य केवलिप्रज्ञप्तस्य अभ्युद्यतोऽस्मि आराधनायां विर-
तोऽस्मि विराधनायां त्रिविधेन प्रतिक्रान्तश्चतुर्विंशतिजिनान्वन्दे ॥ ४३ ॥ ॥ अथ चैत्यवन्दन साधुवन्दन ।
'जावंति चेइआइं० जावंति के०' इति गाथाद्वयव्याख्यान पूर्ववत् ॥४४॥४५॥ ॥ अथ कर्मक्षयहेतु मनोरथमाह ।
'चिरसंचियपावपणासणीए भवसयसहस्समहणीए । चउवीसजिणविणिग्गय कहाए वोलंतु मे दियहा ॥४६॥'
चिरसंचितपापप्रणाशिन्या भवशतसहस्रमाथिन्या संसारतारिण्येत्यर्थः । चतुर्विंशतिजिनविनिर्गतकथया
मम दिवसा व्यपलीयन्तां अतिक्रमन्तु ॥ ४६ ॥ ॥ अथ प्रतिक्रमणानन्तरं सम्येहामुष्य च मङ्गलयाचनमाह ।
'मम मंगलमरिहंता सिद्धा साहू सुयं च धम्मो य । सम्मद्दिट्ठी देवा दिंतु समाहिं च बोहिं च ॥ ४७ ॥' अ-

रिहन्तः सिद्धाः साधवः श्रुत च धर्मश्च सम्यग्दृष्टयो देवाः मम मङ्गल समाधिं बोधिं च ददतु ॥ ४७ ॥ ॥ प्रतिक्रमणकारणमाह । 'पडिसिद्धाण करणे किचाण अकरणे पडिक्कमण । अस्सद्दहणे य तहा विवरीयपरूवणाए य ॥ ४८ ॥ प्रतिषिद्धाना हिंसादीना करणे कृत्याना यतनावश्यकाना अकरणे प्रतिक्रमण । अत्र किल प्रायश्चित्तविधौ यत्प्रतिक्रमणशोधनीय पापं तत्र प्रतिक्रमणमित्यर्थः ॥ ४८ ॥ ॥ अथ क्षामणमाह । 'खामेमि सव० एवमहमालो०' इत्यादिगाथाद्वय यतिप्रतिक्रमणसूत्रवद्व्याख्येयम् ॥ इति श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्रछायार्थः ॥ अत्र सर्वत्र यतिश्राद्धप्रतिक्रमणछायार्थ उक्तः । चालनादिव्याख्या न कृता ग्रन्थविस्तरभयात् । इत्यावश्यके प्रतिक्रमणम् ॥

अथ कायोत्सर्गः । कायस्य निश्चेष्टत्वाविना उत्सर्जन कायोत्सर्गः । तस्येय व्याख्या । तत्र पूर्वं पापकर्मनिर्घातनार्थं पापविशुद्ध्यर्थं वा विघ्नोपशमार्थं वा कस्यचिदपि देवादेराराधनार्थं वा कायोत्सर्गकरण । तत्र करेमि काउस्सग्ग अथवा ठामि काउस्सग्ग अन्नत्थ उससिएण नीससिएण खासिएणं छीएण जभाइएण उड्डुएण वायनिसग्गेण भमलिए पित्तमुच्छाए सुहुमेहिं अगसंचालेहिं सुहुमेहिं खेलसचालेहिं सुहुमेहिं दिट्ठिसचालेहिं एवमाइएहिं आगारेहिं अभग्गो अविराहिओ हुज्ज मे काउसग्गो जाव अरिहंताण भगवंताणं नमुक्कारेण न पारेमि तावकाय ठाणेण मोणेण झाणेण अप्पाण वोसिरामि । व्याख्या । करोमि कायोत्सर्गं तिष्ठामि वा अन्यत्र अनन्तरोक्तचेष्टासमागमे अभग्नत्वे सतीत्यर्थः । अन्यत्रशब्दः सर्वत्र योज्यः । उच्छ्वसि-

यथा भारवाहः अपहृतभरः सन् अतिरेकलघुर्भवति इति शेष० ॥ ४० ॥ ॥ अथावश्यकफलमाह । 'आव-
स्सएण एएण सावओ जइवि बहुरओ होइ । दुक्खाणमंतकिरियं काही अचिरेण कालेण ॥ ४१ ॥' श्रावको
यद्यपि बहुरजा बहुपापमलो भवति तथापि एतेनावश्यकेन षड्विधेन अचिरेण कालेन दुःखानामन्तक्रिया
कर्ता ॥ ४१ ॥ ॥ विस्मृतातिचारप्रतिक्रमणमाह । 'आलोयणा बहुविहा नय संभरिया पडिक्कमणकाले ।
मूलगुणउत्तरगुणे तं निंदे तं च गरिहामि ॥ ४२ ॥' मूलगुणे पञ्चाणुव्रतरूपे उत्तरगुणे गुणव्रतशिक्षाव्रतरूपे
बहुविधा आलोचना प्रतिक्रमणकाले न संस्मृता तां निन्दामि तां च गर्हे ॥ ४२ ॥ ॥ अथोर्ध्वीभूय धर्मनि-
श्रयकथन ॥ 'तस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्स अब्भुट्ठिओमि आराहणाए विरओमि विराहणाए य । तिवि-
हेण पडिक्कतो वंदामि जिणे चउवीसं ॥ ४३ ॥' तस्य धर्मस्य केवलिप्रज्ञप्तस्य अभ्युद्यतोस्मि आराधनायां विर-
तोस्मि विराधनायां त्रिविधेन प्रतिक्रान्तश्चतुर्विंशतिजिनान्वन्दे ॥ ४३ ॥ ॥ अथ चैत्यवन्दन साधुवन्दन ।
'जावंति चेइआइं० जावंति के०' इति गाथाद्वयव्याख्यान पूर्ववत् ॥४४॥४५॥ ॥ अथ कर्मक्षयहेतु मनोरथमाह ।
'चिरसंचियपावपणासणीए भवसयसहस्समहणीए । चउवीसजिणविणिग्गय कहाए वोलंतु मे दियहा ॥४६॥'
चिरसंचितपापप्रणाशिन्या भवशतसहस्रमाथिन्या संसारतारिण्येत्यर्थः । चतुर्विंशतिजिनविनिर्गतकथया
मम दिवसा व्यपलीयन्तां अतिक्रमन्तु ॥ ४६ ॥ ॥ अथ प्रतिक्रमणानन्तरं अत्रेहामुत्र च मङ्गलयाचनमाह ।
'मम मंगलमरिहंता सिद्धा साहू सुयं च धम्मो य । सम्मद्दिट्ठी देवा दिंतु समाहिं च बोहिं च ॥ ४७ ॥' अ-

रिहन्तः सिद्धाः साधवः श्रुतं च धर्मश्च सम्यग्दृष्टयो देवाः मम मङ्गलं समाधिं बोधिं च ददतु ॥ ४७ ॥ ॥ प्रतिक्रमणकारणमाह । 'पडिसिद्धाणं करणे किचाणं अकरणे पडिक्कमणं । अस्सद्दहणे य तहा विवरीयपरूवणाए य ॥ ४८ ॥ प्रतिषिद्धानां हिंसादीनां करणे कृत्यानां यतनावश्यकानां अकरणे प्रतिक्रमणं । अत्र किल प्रायश्चित्तविधौ यत्प्रतिक्रमणशोधनीयं पापं तत्र प्रतिक्रमणमित्यर्थः ॥ ४८ ॥ ॥ अथ क्षामणमाह । 'खामेमि सव्व० एवमहमालो०' इत्यादिगाथाद्वयं यतिप्रतिक्रमणसूत्रवद्व्याख्येयम् ॥ इति श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्रछायार्थः ॥ अत्र सर्वत्र यतिश्राद्धप्रतिक्रमणछायार्थं उक्तः । चालनादिव्याख्या न कृता ग्रन्थविस्तरभयात् । इत्यावश्यके प्रतिक्रमणम् ॥

अथ कायोत्सर्गः । कायस्य निश्चेष्टत्वादिना उत्सर्जनं कायोत्सर्गः । तस्येयं व्याख्या । तत्र पूर्वं पापकर्मनिर्घातनार्थं पापविशुद्ध्यर्थं वा विघ्नोपशमार्थं वा कस्यचिदपि देवादेराराधनार्थं वा कायोत्सर्गकरणं । तत्र करेमि काउस्सग्गं अथवा ठामि काउस्सग्गं अन्नत्थ ऊससिएणं नीससिएणं खासिएणं छीएणं जंभाइएणं उड्डुएणं वायनिसग्गेणं भमलिए पित्तमुच्छाए सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं एवमाइएहिं आगारेहिं अभग्गो अविराहिओ हुज्ज मे काउस्सग्गो जाव अरिहंताणं भगवंताणं नमुक्कारेणं न पारेमि ताव कायं ठाणेणं मोणेणं झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि । व्याख्या । करोमि कायोत्सर्गं तिष्ठामि वा अन्यत्र अनन्तरोक्तचेष्टासमागमे अभग्नत्वे सतीत्यर्थः । अन्यत्रशब्दः सर्वत्र योज्यः । उच्छ्वसि-

यथा भारवाहः अपहृतभरः सन् अतिरेकलघुर्भवति इति शेष० ॥ ४० ॥ ॥ अथावश्यकफलमाह । 'आवस्सएण एएण सावओ जइवि बहुरओ होइ । दुक्खाणमंतकिरियं काही अचिरेण कालेण ॥ ४१ ॥' श्रावको यद्यपि बहुरजा बहुपापमलो भवति तथापि एतेनावश्यकेन षड्विधेन अचिरेण कालेन दुःखानामन्तक्रिया कर्ता ॥ ४१ ॥ ॥ विस्मृतातिचारप्रतिक्रमणमाह । 'आलोयणा बहुविहा नय संभरिया पडिक्कमणकाले । मूलगुणउत्तरगुणे तं निंदे तं च गरिहामि ॥ ४२ ॥' मूलगुणे पञ्चाणुव्रतरूपे उत्तरगुणे गुणव्रतशिक्षाव्रतरूपे बहुविधा आलोचना प्रतिक्रमणकाले न संस्मृता तां निन्दामि तां च गर्हे ॥ ४२ ॥ ॥ अथोर्ध्वीभूय धर्मनिश्चयकथन ॥ 'तस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्स अब्भुट्ठिओमि आराहणाए विरओमि विराहणाए य । तिविहेण पडिक्कंतो वंदामि जिणे चउवीसं ॥ ४३ ॥' तस्य धर्मस्य केवलिप्रज्ञप्तस्य अभ्युद्यतोस्मि आराधनायां विरतोस्मि विराधनायां त्रिविधेन प्रतिक्रान्तश्चतुर्विंशतिजिनान्वन्दे ॥ ४३ ॥ ॥ अथ चैत्यवन्दन साधुवन्दन । 'जावंति चेइआइं० जावंति के०' इति गाथाद्वयव्याख्यान पूर्ववत् ॥४४॥४५॥ ॥ अथ कर्मक्षयहेतु मनोरथमाह । 'चिरसंचियपावपणासणीए भवसयसहस्समहणीए । चउवीसजिणविणिग्गय कहाए वोलंतु मे दियहा ॥४६॥' चिरसंचितपापप्रणाशिन्या भवशतसहस्रमथिन्या संसारतारिण्येत्यर्थः । चतुर्विंशतिजिनविनिर्गतकथया मम दिवसा व्यपलीयन्तां अतिक्रमन्तु ॥ ४६ ॥ ॥ अथ प्रतिक्रमणानन्तरं स्वस्येहामुत्र च मङ्गलयाचनमाह । 'मम मंगलमरिहंता सिद्धा साहू सुयं च धम्मो य । सम्मद्दिट्ठी देवा दिंतु समाहिं च बोहिं च ॥ ४७ ॥' अ-

अतिक्रान्ते पर्वणि यत्तालोचनादितपः क्रियते तदतिक्रान्त २, एकस्य तपसः समाप्तौ द्वितीयतपस आरम्भे तद्दिन एव प्रत्याख्यानेन कोटिद्वयमीलन कोटिसहित ३, मासे मासे इयन्ति दिनानि अष्टमादिर्विधेयमेव ग्लानत्वेपि सति तन्नियन्त्रित ४, एतच्च प्रथमसंघननेन सह व्यवच्छिन्न सहसाकारैर्महत्तरादेर्वचस इति साकार ५, आकारैर्वर्जितमनाकार ६, यत्र दत्तिकवलसंख्यादि तत्परिमाणकृत ७, सर्वचतुर्विधाहारकृतपरित्यागान्निरवशेष ८, अङ्गुष्ठमुष्टिग्रन्थ्यादिचिह्नोपलक्षित सकेतन ९, अद्धा कालस्तदुपलक्षितं अद्धाप्रत्याख्यान १०,॥ एतद्गाथा यथा । 'नवकार १ पोरिसीए २ पुरिमड्ढ ३ इक्कासणे ४ गट्ठाणेअ ५ । आयंबिल ६ अभत्तट्ठे ७ चरमेय ८ अभिग्गहे ९ विगइ १० ॥ १ ॥ नमस्कारसहित दिनोदये घटीद्वयपर्यन्त १, पौरुषी पुरुषप्रमाणच्छायया प्रहरमात्रादिनोदये २, पूर्वार्धमध्याह्नपर्यन्त ३ एकासन एकेनासनेन एकवेलं भोजन ४, एकस्थानं आकुञ्चितप्रसारितादिवर्जितमेकासन ५, आचाम्ल एकवेलमेकान्नजलभोजन ६, अभक्तार्थं उपवासः त्रिविधाहाररहितो वा ७, चरम दिवसचरम भवचरमपर्यन्त प्रत्याख्यान ८, अभिग्रहो ग्रन्थिमुष्टिपर्यन्त प्रत्याख्यान ९, विकृतिः विकृतीना सर्वथा त्यागः सख्या वा १० ॥ अथैषामागारसंख्या । 'दो चेव नमुक्कारे आगारा छच्च पोरसीए उ । सत्तेव य पुरिमड्ढे एगासणम्मि अट्ठेव ॥ १ ॥ सत्तेगट्ठाणस्स उ अट्ठेव य अंबिलम्मि आगारा । पञ्चेव य अभत्तट्ठे छप्पाणे चरमचत्तारि ॥२॥ पञ्च चउरो अभिग्गहे निव्वीए अट्ठनवय आगारा । अप्पावरणे पञ्च उ हवंति सेसेसु चत्तारि ॥ ३ ॥' नमस्कारसहिते द्वावेवाकारो यथा । 'उग्गए सूरे नवकार-

करयलत्ति दक्षिणोत्तरपाणिभ्यां मुखवस्त्रिकारजोहरणं । कुप्परत्ति कूर्पराभ्यां चोलपट्टश्च धारणीयः । उस्सारिय पारियम्मि थुइत्ति उत्सारिते पूरिते कायोत्सर्गे नमस्कारेण पारिते जिनस्तुतिर्भणनीया पाठान्तरं च । गाथोत्तरार्धे एगूणवीसदोसा काउस्सग्गे विवज्जिज्जा सर्वत्र कायोत्सर्गे चतुर्विंशतिस्तवचिन्तने चन्देसु निम्मलयरापर्यन्तं चिन्तनं । नमस्कारचिन्तने नवपदपरिपूर्णचिन्तनं सर्वत्र कायोत्सर्गपारणे नमो अरिहंताणं इति पदं ततः स्तुतिपाठादि यथायोग्यं । इत्यावश्यके कायोत्सर्गः ॥

अथ प्रत्याख्यानम् । तच्च द्विधा । मूलगुणप्रत्याख्यानं उत्तरगुणप्रत्याख्यानं च । मूलगुणप्रत्याख्यानं द्विधा । देशसर्वभेदात्सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानं साधूनां पञ्चमहाव्रतानि देशमूलगुणप्रत्याख्यानं श्राद्धानां पञ्चाणुव्रतानि । उत्तरगुणप्रत्याख्यानमपि द्विधा । देशसर्वभेदात् । साधूनां सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यानमनेकधा । यथा । 'पिंडस्स जा विसोही समिईओ भावणा तवो दुविहा । पडिमा अभिग्गहावि य उत्तरगुणमो वियाणाहि ॥ १ ॥' श्राद्धानां देशोत्तरगुणप्रत्याख्यानं त्रीणि गुणव्रतानि चत्वारि शिक्षाव्रतानि । उभयोरपि सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यानमनागतादिभेदाद्दशविधं । यथा । 'अणागयं १ मइक्कंतं २ कोडीसहियं ३ नियंटियं चेव ४ । सागारं ५ मणागारं ६ परिमाणकडं ७ निरवसेसं ८ ॥ १ ॥ सकियं ९ यद्धाए १० पच्चक्खाणं तु दसविहं होइ । सयमेव अणुपालणीयं दाणुवएसे जइ समाही ॥ २ ॥' व्याख्या । तत्र पर्युषणादौ ग्लानवैयावृत्त्यकरणव्यग्रत्वेन पूर्वमपि यदष्टमाद्यालोचनतपः क्रियते तदनागतं १, पर्युषणचतुर्मासकादिषु अशक्तौ वैयावृत्त्ये

अतिक्रान्ते पर्वणि यद्वालोचनादितपः क्रियते तदतिक्रान्त २, एकस्य तपसः समाप्तौ द्वितीयतपस आरम्भे तद्दिन एष प्रत्याख्यानेन कोटिद्वयमीलन कोटिसहित ३, मासे मासे इयन्ति दिनानि अष्टमादिविधेयमेव ग्लानत्वेपि सति तन्नियन्त्रित ४, एतच्च प्रथमसंघननेन सह व्यवच्छिन्न सहसाकारैर्महत्तरादेर्वचस इति साकार ५, आकारैर्वर्जितमनाकार ६, यत्र दत्तिकवलसंख्यादि तत्परिमाणकृत ७, सर्वचतुर्विधाहारकृतपरित्यागान्निरवशेष ८, अङ्गुष्ठमुष्टिग्रन्थ्यादिचिह्नोपलक्षित सकेतम ९, अद्धा कालस्तदुपलक्षित अद्धाप्रत्याख्यान १०,॥ एतद्गाथा यथा । 'नवकार १ पोरिसीए २ पुरिमड्ढ ३ इक्कासणे ४ गट्ठाणेअ ५ । आयंबिल ६ अभत्तट्ठे ७ चरमेय ८ अभिग्गहे ९ विगइ १० ॥ १ ॥ नमस्कारसहित दिनोदये घटीद्वयपर्यन्त १, पौरुषी पुरुषप्रमाणच्छायया प्रहरमात्रादिनोदये २, पूर्वार्धमध्याह्नपर्यन्त ३ एकासन एकेनासनेन एकवेल भोजन ४, एकस्थानं आकुञ्चितप्रसारितादिवर्जितमेकासन ५, आचाम्ल एकवेलमेकान्नजलभोजन ६, अभक्तार्थ उपवासः त्रिविधाहाररहितो वा ७, चरम दिवसचरमभवचरमपर्यन्त प्रत्याख्यान ८, अभिग्रहो ग्रन्थिमुष्टिपर्यन्त प्रत्याख्यान ९, विकृतिः विकृतीनां सर्वथा त्यागः संख्या वा १० ॥ अथैषामागारसंख्या । 'दो चेव नमुक्कारे आगारा छच्च पोरसीए उ । सत्तेव य पुरिमड्ढे एगासणम्मि अट्ठेव ॥ १ ॥ सत्तेगट्ठाणस्स उ अट्ठेव य अंबिलम्मि आगारा । पंचेव य अभत्तट्ठे छप्पाणे चरमचत्तारि ॥२॥ पंच चउरो अभिग्गहो निव्वीए अट्ठनवय आगारा । अप्पावरणे पंचउ हवति सेसेसु चत्तारि ॥ ३ ॥' नमस्कारसहिते द्वावेवाकारौ यथा । 'उग्गए सूरे नवकार-

करयलम्मि दक्षिणोत्तरपाणिभ्यां मुखवस्त्रिकारजोहरण' । कुप्परसि कूर्पराभ्यां चोलपट्टश्च धारणीयः । उस्सारिय पारियम्मि थुइत्ति उत्सारिते पूरिते कायोत्सर्गे नमस्कारेण पारिते जिनस्तुतिर्भणनीया पाठान्तर च । गायोसरार्धे एगूणवीसदोसा काउस्सग्गे विवज्जिज्जा सर्वत्र कायोत्सर्गे चतुर्विंशतिस्तवचिन्तने चन्दे सुनिम्मलयरापर्यन्त चिन्तन । नमस्कारचिन्तने नवपदपरिपूर्णचिन्तन सर्वत्र कायोत्सर्गपारणे नमो अरिहंताण इति पद ततः स्तुतिपाठादि यथायोग्य । इत्यावश्यके कायोत्सर्गः ॥

अथ प्रत्याख्यानम् । तच्च द्विधा । मूलगुणप्रत्याख्यान उत्तरगुणप्रत्याख्यानं च । मूलगुणप्रत्याख्यान द्विधा । देशसर्वभेदात्सर्वमूलगुणप्रत्याख्यान साधूनां पञ्चमहाव्रतानि देशमूलगुणप्रत्याख्यान श्राद्धाना पञ्चाणुव्रतानि । उत्तरगुणप्रत्याख्यानमपि द्विधा । देशसर्वभेदात् । साधूना सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यानमनेकधा । यथा । 'पिंडस्स जा विसोही समिईओ भावणा तवो दुविहो । पडिमा अभिग्गहाविय उत्तरगुणमो वियाणाहि ॥ १ ॥' श्राद्धानां देशोत्तरगुणप्रत्याख्यान त्रीणि गुणव्रतानि चत्वारि शिक्षाव्रतानि । उभयोरपि सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यानमनागतादिभेदाद्दशविध । यथा । 'अणागय १ मइक्कंत २ कोडीसहियं ३ नियंटियं चेव ४ । सागार ५ मणागारं ६ परिमाणकड ७ निरवसेस ८ ॥ १ ॥ सकेय ९ मविअद्धाए १० पच्चक्खाण तु दसविध होइ । सयमेव अणुपालणीय दाणुवएसे जहसमाही ॥ २ ॥' व्याख्या । तत्र पर्युषणादौ ग्लानस्य वैयावृत्त्यकरणव्यग्रत्वेन पूर्वमपि यदष्टमाद्यालोचनतपः क्रियते तदनागत १, पर्युषणचतुर्मासकादिषु अशक्तो वैयावृत्त्ये

अतिक्रान्ते पर्वणि यदालोचनादितपः क्रियते तदतिक्रान्त २, एकस्य तपसः समाप्तौ द्वितीयतपस आरम्भ
तद्दिन एव प्रत्याख्यानेन कोटिद्वयमीलन कोटिसहित ३, मासे मासे इयन्ति दिनानि अष्टमादिविधेयमेव
ग्लानत्वेपि सति तन्नियमितं ४, एतच्च प्रथमसंहननेन सह व्यवच्छिन्न सहसाकारैर्महत्तरादेर्यत्र इति सा
कार ५, आकारैर्वर्जितमनाकार ६, यत्र दत्तिकवलसंख्यादि तत्परिमाणकृतं ७, सर्वचतुर्विधाहारकृतपरित्या
गान्निरवशेष ८, अङ्गुष्ठमुष्टिग्रन्थ्यादिचिह्नोपलक्षित सकेत न ९, अद्धा कालस्तदुपलक्षितं अद्धाप्रत्याख्यान १०,।
एतद्दशधा यथा । 'नवकार १ पोरिसीए २ पुरिमड्ढ ३ इक्कासणे ४ गट्ठाणेअ ५ । आयंबिल ६ अभत्तट्ठे ७
चरमेय ८ अभिग्गहे ९ विगइ १० ॥ १ ॥ नमस्कारसहित दिनोदये घटीद्वयपर्यन्त १, पौरुषी पुरुषप्रमाण
च्छायया प्रहरमात्रादिनोदये २, पूर्वार्धमध्याह्नपर्यन्तं ३ एकासनं एकेनासनेन एकवेल भोजन ४, एकस्थान
आकुञ्चितप्रसारितादिवर्जितमेकासन ५, आचाम्ल एकवेलमेकान्नजलभोजन ६, अभक्तार्थं उपवासः त्रिवि
धाहाररहितो वा ७, चरम दिवसचरम भवचरमपर्यन्त प्रत्याख्यान ८, अभिग्रहो ग्रन्थिमुष्टिपर्यन्त प्रत्या
ख्यान ९, विकृतिः विकृतीनां सर्वथा त्यागः संख्या वा १० ॥ अथैषामागारसंख्या । 'दो चेव नमुक्कारे आ
गारा छच्च पोरसीए उ । सत्तेव य पुरिमड्ढे एगासणम्मि अट्ठेव ॥ १ ॥ सत्तेगट्ठाणस्स उ अट्ठेव य अबिलम्मि
आगारा । पचेव य अभत्तट्ठे छप्पाणे चरमचत्तारि ॥२॥ पच चउरो अभिग्गहो निव्वीए अट्ठनवय आगारा
अप्पावरणे पचउ हवति सेसेसु चत्तारि ॥ ३ ॥' नमस्कारसहिते द्वावेवाकारो यथा । 'उग्गए सूरे नवकार

करयलसि दक्षिणोत्तरपाणिभ्यां मुखवस्त्रिकारजोहरणं । कुप्परसि कूर्पराभ्यां चोलपट्टश्च धारणीयः । उस्सारिय पारियमि थुइत्ति उत्सारिते पूरिते कायोत्सर्गे नमस्कारेण पारिते जिनस्तुतिर्भणनीया पाठान्तरं च । गाथोत्तरार्धे एगूणवीसदोसा काउस्सग्गे विवज्जिज्जा सर्वत्र कायोत्सर्गे चतुर्विंशतिस्तवचिन्तने चन्देसु निम्मलयरापर्यन्तं चिन्तनं । नमस्कारचिन्तने नवपदपरिपूर्णचिन्तनं सर्वत्र कायोत्सर्गपारणे नमो अरिहंताणं इति पदं ततः स्तुतिपाठादि यथायोग्यं । इत्यावश्यके कायोत्सर्गः ॥

अथ प्रत्याख्यानम् । तच्च द्विधा । मूलगुणप्रत्याख्यानं उत्तरगुणप्रत्याख्यानं च । मूलगुणप्रत्याख्यानं द्विधा । देशसर्वभेदात्सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानं साधूनां पञ्चमहाव्रतानि देशमूलगुणप्रत्याख्यानं श्राद्धानां पञ्चाणुव्रतानि । उत्तरगुणप्रत्याख्यानमपि द्विधा । देशसर्वभेदात् । साधूनां सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यानमनेकधा । यथा । 'पिंडस्स जा विसोही समिईओ भावणा तवो दुविहो । पडिमा अभिग्गहावि य उत्तरगुणमो वियाणाहि ॥ १ ॥' श्राद्धानां देशोत्तरगुणप्रत्याख्यानं त्रीणि गुणव्रतानि चत्वारि शिक्षाव्रतानि । उभयोरपि सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यानमनागतादिभेदाद्दशविधं । यथा । 'अणागय १ मइक्कंत २ कोडीसहियं ३ नियंटियं चेव ४ । सागार ५ मणागारं ६ परिमाणकडं ७ निरवसेसं ८ ॥ १ ॥ संकेयं ९ चेव अद्धाए १० पच्चक्खाणं तु दसविहं होइ । सयमेव अणुपालणीयं दाणुवएसे जह समाही ॥ २ ॥' व्याख्या । तत्र पर्युषणादौ ग्लानस्य वैयावृत्त्यकरणव्यग्रत्वेन पूर्वमपि यदष्टमाद्यालोचनतपः क्रियते तदनागतं १, पर्युषणचतुर्मासकादिषु अशक्तो वैयावृत्त्ये

दोर्ह ॥ १ ॥ दन्तवणं दन्तधावन प्रसिद्ध । तयोल ता-
कुडेडगाईयं । महुत्तपिप्पलि सुठाई अणेगहा साइम होई ॥ १ ॥ दन्तवणं दन्तधावन प्रसिद्ध । तयोल ता-
म्बूल पञ्चसौगन्धिक । चित्त चित्र नानाप्रकार । तुलसीकुडेडकादि तुलसीग्रहणेन सर्वाण्यपि सुरभिकषाय-
द्रुमपत्राणि । कुहेटकग्रहणे मर्मर्योर्यकादि । मधु मधुयष्टी । पिप्पली पिंपली । सुठाई शुण्ठ्यादि प्रसिद्ध ।
आदिशब्दात् त्रिफलात्रिकटुपूगलवङ्गैलाजातीफलप्रभृति सर्वमपि अपुष्टिकर शुष्क पुष्पपत्रफलादि । अणे-
गहा साइम होइ अनेकधा स्वादिम भवति स्वाद्यते वक्त्रसौरभ्यमोदार्थिभिरिति स्वादिम । अन्नत्यणाभोगेण
सहसागारेणं । अत्र आकारग्रहण नियमभङ्गेपि अदोषार्थं । अनाभोगात् अन्यत्र सहसाकारात् अन्यत्र प्र-
त्याख्यामीति शेषः । आभोगः स्वचित्तावधानेन कर्तव्यकरण । अनाभोगो वैपरीत्येन विस्मृत्यान्यकार्यव्याक्षे-
पेण कार्यकरण तस्मात् । सहसाकार इति सहसौत्सुक्येन कार्यकरण, अथवा स्वयमेव कार्योत्पत्तिः यथा
पवनाघाहत किंचिन्मुखे निपतति इति सहकारस्तस्मात् । पोरसिय पच्चक्खाहि पौरुषीं यावत्प्रत्याख्याहि
प्रहर यावदित्यर्थः । प्रत्याख्यामि उग्गतेसूर्ये सूर्योदयादारभ्येत्यर्थः । चतुर्विधमप्याहार अशन ४ पूर्ववत् अन्न०
सह० पूर्ववत् । प्रच्छन्नकालेण प्रच्छन्नकालात् अभ्ररजश्छन्नसूर्यसयोगे प्रच्छन्नकालः तत्र दिनप्रमाण न ज्ञायते
तस्मात् । दिसामोहेणं दिङ्मोहात् पूर्वदक्षिणपश्चिमादिदिशामज्ञाने रविस्थितावज्ञातायां न कालपरिमाण
ज्ञान । साहुवयणेणं साधुवचनात् यथा साधवः पादोनेपि प्रहरे अतिक्रान्ते ‘भयव बहुपडिपुन्ना पोरिसी सा-
हयो उवत्ता होइ’ इति वचनात् । सव्वसमाहिवत्तियागारेणं सर्वसमाधिवर्तिताकारेण सर्वेषां साधुसाध्वीश्रा-

साध्यकथिधिर्नानापकान्नानि । खीराइ क्षीरादि क्षीरवधितकघृतादि । सूरणाई सूरणादिसर्वोप्यार्द्रो कन्द-
जातिः । मण्डगपभिइइ मण्डकप्रभृतिग्रहणात् पूपपोलिकाकृसराप्रभृति विज्ञेय विज्ञेय । पाण यथा । 'पाण
सोवीर जवोदगाइ चित्तं सुराइय चेव । आउक्काओ सव्वो ककडिगजलाइय च तहा ॥ १ ॥' पीयते तृष्णार्तै-
र्वाहारार्तैर्वा इति पान । तत्किमित्याह । सोवीर सौवीरं काञ्जिकं जवोदगाइ यवोदकादि यवोदकतिलोदकतु-
षोदकप्रभृति । चित्तं चित्रं नानाप्रकार । सुराइय चेव सुरादिक चैव । सुराग्रहणेन काष्ठपिष्टपुष्पफलरसक्षो-
द्रनिष्पन्न मद्य यत्पुष्टिकरमतृप्तिकर । ततः सर्वपान आउक्काओ सव्वो । सर्वोप्यप्कायः हिमकरकशुद्धोदकप्र-
भृतिः ककडिगजलाइय च तहा कर्कटिकाजलादिक तथा । कर्कटिकाजलग्रहणेन इक्षुरसवर्जितः पुष्टिकरणर-
हितः सर्वोपि पुष्पफलरसः । खाइम खादिम यथा । 'भत्तोस दंताई खज्जूर नालिकेर दक्खाई । ककडिअ-
बगफणसाइ बहुविह खाइम होइ ॥ १ ॥' भत्तोस भक्तोष येन शुष्केन भक्तभोजनवत् तृप्तिर्भवति तद्भक्तोष
गुडक्षौद्रविकारादि । दंताई दन्त्यादि दन्तसरिप्रभृतिवृक्षनिर्यासाः सर्वेपि आराद्धाः शाकाश्च । खज्जूर नालि-
केरदक्खाइ खर्जूरनारिकेलद्राक्षाः प्रसिद्धाः आदिशब्दात् वाताम्रप्रभृतयः । ककडिअंबफणसाइ कर्कट्यादि
कर्कटीग्रहणेन चिर्भटीफलादिसुखादमबलकरं फल । आम्रग्रहणेन नारिङ्गजम्बीरबीजपूरादिषड्रसफल । पन-
सग्रहणेन कदलीफलचोविकादिप्रभृति बृंहण मधुररसफलं । बहुविहं खाइम होइ इत्यादि । चतुर्विध खादिम
भवति खाद्यते पुष्टिसुखस्वादार्थिभिरिति खादिमं । साइमं स्वादिम यथा । 'दंतवण तंबोल चित्तं तुलसी

गहा साइम होई ॥ १ ॥ दन्तवणं दन्तधावन प्रसिद्ध । तयोल ता-
कुहेडगाईय । मधुत्तपिप्पलि सुठाई अणेगहा साइम होई ॥ १ ॥ दन्तवणं दन्तधावन प्रसिद्ध । तुलसीकुहेडकादि तुलसीभ्रक्षणेन सर्वाण्यपि सुरभिकषाय-
म्बूल पञ्चसौगन्धिक । चित्त चित्र नानाप्रकार । तुलसीकुहेडकादि तुलसीभ्रक्षणेन सर्वाण्यपि सुरभिकषाय-
द्रुमपत्राणि । कुहेटकग्रहणे मर्मयार्यकादि । मधु मधुयष्टी । पिप्पली पिंपली । सुंठाई शुण्ठ्यादि प्रसिद्ध ।
आदिशब्दात् त्रिफलात्रिकटुपूगलवङ्गैलाजातीफलप्रभृति सर्वमपि अपुष्टिकर शुष्क पुष्पपत्रफलादि । अणे-
गहा साइम होइ अनेकधा स्वादिम भवति स्वाद्यते वक्त्रसौरभप्रमोदार्थिभिरिति स्वादिम । अन्नत्थणाभोगेण
सहसागारेण । अत्र आकारग्रहण नियमभङ्गेपि अदोषार्थं । अनाभोगात् अन्यत्र सहसाकारात् अन्यत्र प्र-
त्याख्यामीति शेषः । आभोगः स्वचित्तावधानेन कर्तव्यकरण । अनाभोगो वैपरीत्येन विस्मृत्यान्यकार्यव्याक्षे-
पेण कार्यकरण तस्मात् । सहसाकार इति सहसौत्सुक्येन कार्यकरण, अथवा स्वयमेव कार्योत्पत्तिः यथा
पवनाघ्याहत किंचिन्मुखे निपतति इति सहकारस्तस्मात् । पोरसिय पञ्चक्खाहि पौरुषीं यावत्प्रत्याख्याहि
प्रहर यावदित्यर्थः । प्रत्याख्यामि उद्गतेसूर्ये सूर्योद्यादारभ्येत्यर्थः । चतुर्विधमप्याहारं अशन ४ पूर्ववत् अन्न०
सह० पूर्ववत् । प्रच्छन्नकालेण प्रच्छन्नकालात् अभ्ररजश्छन्नसूर्यसयोगे प्रच्छन्नकालः तत्र दिनप्रमाण न ज्ञायते
तस्मात् । दिसामोहेण दिङ्मोहात् पूर्वदक्षिणपश्चिमादिदिशामज्ञाने रविस्थितावज्ञातायां न कालपरिमाण
ज्ञान । साहुवयणेण साधुवचनात् यथा साधवः पादोनेपि प्रहरे अतिक्रान्ते ‘भयव बहुपडिपुन्ना पोरिसी सा-
हयो उवस्सा होइ’ इति वचनात् । सव्वसमाहिवत्तियागारेणं सर्वसमाधिवर्तिताकारेण सर्वेषा साधुसाध्वीश्रा-

पर्यन्तमित्यर्थः । भवचरिम आयुःपूर्णतापर्यन्त प्रत्याख्याति । त्रिविध चतुर्विध वा आहार अशनं खादिम स्वादिम ३ अशन ४ अन्न० सह० मह० सव० पूर्ववत् । गठिसहित मुष्टिसहित अङ्गुष्ठसहित इत्यादि प्रत्याख्याति चतुर्वि० अशन पान ४ अन्न० सह० पारि० मह० सव० पूर्ववत् ॥ निविगइय विगईयो सेसिआओ वा पच० निर्विकृतिक गृहीतशेषा वा विकृतीः प्रत्याख्याति अन्न० सह० लेवा० गिह० उक्खि० पूर्ववत् । पडुचमक्खिएण प्रत्युतपुरस्कारेण म्रक्षितात् घृततैलादिनाभ्यक्तात् परि० मह० सव० पूर्ववत् । यत्रोक्त अष्ट नव च आकारा अत्र च नवणीओगाहिमए इति वचनात् अद्रवविकृतिस्पर्शात् उक्खित्तविवेगेण कथन द्रवविकृतिस्पर्शात् न इत्यष्ट नव चाकाराः । अत्र विकृतय इति मनोवाक्कायाना कामाद्याश्लेपकारकत्वात् विकारिसद्भावात् विकृतय उच्यन्ते । ताश्च सूत्रोक्ताश्च दशधा । यथा । 'दुद्ध १ दहि २ घय ३ तिल्ल ४ गुड ५ तहोगाहिम ६ छ भक्खाओ । मधु ७ मज्ज ८ मस ९ मक्खण १० चत्तारि अभक्खविगईओ ॥ १ ॥' दुग्ध गोमहिषीछागीमेष्युष्ट्रिकाभव दधि नवनीत घृत तासामेव । उष्ट्रीणा दध्याद्यभावात् । तैल तिलात सीलट्टासर्पपोद्भव चतुर्धा । गुडः पिण्डद्रवभेदो द्विधा । उत्कथित अवगाहित वा घृततैलाभ्या केवलाभ्या पक्व । पक्वान्न षट् भक्ष्या विकृतयः । चतस्रोऽभक्ष्याः मधुमद्यमासनवनीतरूपाः । अथ कटाहिकाया घृततैलादिपूर्णाया चलाचल खाद्यकादि पच्यते तेनैव स्नेहेन द्वितीय तृतीय च तद्विकृतिः । ततः पर पक्व योगवाहिना निर्विकृतिकप्रत्याख्यानेपि आगाढकारणे कल्पते । एव शेषाण्यपि विकृतिगतानि निर्विकृतिकप्रत्या-

पच य
स्थाने कल्पन्ते । तानि कथ्यन्ते यथा । 'अह पेआ १ दुद्धट्टी २ दुद्धवलेही य ३ दुद्धसाडी य ४ । पच य
विगयगयाइ दुद्धम्मि य खीरसहियाइ ५ ॥ १ ॥' क्षीरेयीपेये प्रसिद्धे । अय च व्याख्यायते । 'अविलल्लेयम्मि
दुद्धे दुद्धट्टी दक्खमीसदुद्धमि । पइसाडी तह तदुल चुण्णय सिद्धम्मि अवलेही ॥ १ ॥ इति दुग्धविकृतिग-
तानि ॥ अथ दधिविकृतिगतानि यथा । 'दहिए विगयगयाइ घोलवडा १ घोल २ सिहिरिणि ३ करवो ४ ।
लवणकणदहियमहिय ५ सगरिगायम्मि अप्पडिए ॥ १ ॥' घृतविकृतिगतानि यथा । 'पक्कघिअ १ घयकिट्टी
२ पक्कोसहिउवरितरियसप्पिं च ३ । निज्झजण ४ वीसदण ५ गाईघिअ विगइ विगइगया ॥ १ ॥' तैलवि-
कृतिगतानि यथा । 'तिल्लमली १ तिलकुट्टी २ दड्ढतिल्ल ३ तहो सहुसरिय ४ । लक्खाइदव्वपक्क तिल्लतिल्लमि
पंचेव ॥ १ ॥ गुडविकृतिगतानि यथा । अद्धकढिइक्खुरसो १ गुलपाणीय य २ सक्करा ३ खड ४ । पायगुल
५ गुलविगई ६ विगयगया हुंति पचेव ॥ १ ॥' अथ अवगाहितविकृतिगतानि यथा । 'एग एग सुवारिं १
तिह्वेवरि बीयग च ज पक्क । तुप्पेण तेण चिय २ तइय गुलहाणिआ पभिई ३ ॥ १ ॥ पउत्थ जलेण सिद्धा
लप्पसिआ ४ पंचम तु पूयलिया । चुपडियतावियाए परिपक्का ५ तीसमिलिएसु ॥ २ ॥' एव षट्सु भक्ष्य-
विकृतिषु त्रिंशत् विकृतिगतानि निर्विकृतिकेषु भक्ष्याणि । अभक्ष्यविकृतयस्तु मधु पौतिकमाक्षिकभ्रामरभे-
दात्त्रिविध । मद्य काष्ठपिष्टभेदात् द्विधा । मांस जलचरस्थलचरखचरभेदात्त्रिधा । नवनीत चतुर्धा पूर्वभे-

१ तिल्लमि पचेव विगइगया ।

द्यान्तमित्यर्थः। भवचरिम आयुःपूर्णतापर्यन्तं प्रत्याख्याति । त्रिविध चतुर्विध वा आहार अशन खादिमं स्वादिम ३ अशन ४ अन्न० सह० मह० सव० पूर्ववत्। गठिसहित मुष्टिसहित अङ्गुष्ठसहित इत्यादि प्रत्या-ख्याति चतुर्वि० अशन पान ४ अन्न० सह० पारि० मह० सव० पूर्ववत्॥ निविगइय विगईयो सेसिआओ वा पच्च० निर्विकृतिकं गृहीतशेषा वा विकृतीः प्रत्याख्याति अन्न० सह० लेवा० गिह० उक्खि० पूर्ववत्। पडुचमक्खिएण प्रत्युतपुरस्कारेण म्रक्षितात् घृततैलादिनाभ्यक्तात् परि० मह० सव० पूर्ववत् । यत्रोक्त अष्ट नव च आकारा अत्र च नवणीओगाहिमए इति वचनात् अद्रवविकृतिस्पर्शात् उक्खित्तविवेगेण कथन द्रवविकृतिस्पर्शात् न इत्यष्ट नव चाकारा' । अत्र विकृतय इति मनोवाक्कायानां कामाद्याश्लेषकारकत्वात् विकारिसद्भावात् विकृतय उच्यन्ते। ताश्च सूत्रोक्ताश्च दशधा। यथा । 'दुद्द १ दहि २ घय ३ तिल्ल ४ गुड ५ तहोगाहिम ६ छ भक्खाओ। महु ७ मज्ज ८ मंस ९ मक्खण १० चत्तारि अभक्खविगईओ ॥ १ ॥' दुग्ध गोमहिषीछागीमेष्युष्ट्रिकामय दधि नवनीत घृत तासामेव। उष्ट्रीणां दध्याद्यभावात् । तैल तिलात-सीलट्टासर्षपोद्भव चतुर्धा। गुडः पिण्डद्रवभेदो द्विधा । उत्कथित अवगाहित वा घृततैलाभ्यां केवलाभ्यां पक्व। पक्वाश्च षट् भक्ष्या विकृतयः। चतस्रोऽभक्ष्याः मधुमद्यमांसनवनीतरूपाः । अथ कटाहिकायां घृततै-लादिपूर्णायां चलाचल खाद्यकादि पच्यते तेनैव स्नेहेन द्वितीय तृतीय च तद्विकृतिः। ततः पर पक्व योगवा-हिना निर्विकृतिकप्रत्याख्यानेपि आगारकारणे कल्पते । एव शेषाण्यपि विकृतिगतानि निर्विकृतिकप्रत्या-

स्थाने कल्पन्ते । तानि कथ्यन्ते यथा । 'अह पेआ १ दुद्धट्टी २ दुद्धवलेही य ३ दुद्धसाडी य ४ । पंच य विगयगयाइं दुद्धम्मि य खोरिसहियाइ ५ ॥ १ ॥' क्षीरेयीपेये प्रसिद्धे । अय च व्याख्यायते । 'अंबिललेयम्मि दुद्धे दुद्धट्टी दक्खमीसदुद्धमि । पइसाडी तह तंदुल चुण्णय सिद्धम्मि अवलेही ॥ १ ॥ इति दुग्धविकृतिगतानि ॥ अथ दधिविकृतिगतानि यथा । 'दहिए विगयगयाइ घोलवडा १ घोल २ सिहिरिणि ३ करंबो ४ । लवणकणदहियमहिय ५ संगरिगायम्मि अप्पडिए ॥ १ ॥' घृतविकृतिगतानि यथा । 'पक्कघिअ १ घयकिट्टी २ पक्कोसहितवरितरियसर्पिं च ३ । निज्झंजण ४ वीसंदण ५ गाईघिअ विगइ विगइगया ॥ १ ॥' तैलविकृतिगतानि यथा । 'तिल्लमली १ तिलकुट्टी २ दड्ढतिल्ल ३ तहो सहुधरिय ४ । लक्खाइदव्वपक्क तिल्लतिल्लमि पचेव ॥ १ ॥ गुडविकृतिगतानि यथा । अद्धकढिइक्खुरसो १ गुलपाणीय व २ सक्करा ३ खडं ४ । पायगुलं ५ गुलविगई ६ विगयगया इति पचेव ॥ १ ॥' अथ अवगाहितविकृतिगतानि यथा । 'एग एग छुवरिं १ तिल्लेवरि बीयग च ज पक्कं । तुप्पेण तेण च्चिय २ तइय गुलहाणिआ पमिई ३ ॥ १ ॥ चउत्थ जलेण सिद्धा लप्पसिआ ४ पचम तु पूयलिया । चुपडियतावियाए परिपक्का ५ तीसमिलिएसु ॥ २ ॥' एव षट्सु भक्ष्यविकृतिषु त्रिंशत् विकृतिगतानि निर्विकृतिकेषु भक्ष्याणि । अभक्ष्यविकृतयस्तु मधु पौतिकमाक्षिकभ्रामरभेदात्त्रिविध । मद्य काष्ठपिष्टभेदात् द्विधा । मास जलचरस्थलचरखचरभेदात्त्रिधा । नवनीत चतुर्धा पूर्वमे-

१ तिल्लमि पचेव विगइगया ।

द्वया तमित्यर्थः । भवचरिम आयुःपूर्णतापर्यन्त प्रत्याख्याति । त्रिविध चतुर्विध वा आहार अशनं खादिम स्वादिम ३ अशन ४ अन्न० सह० मह० सव० पूर्ववत् । गठिसहित मुष्टिसहित अङ्गुष्ठसहित इत्यादि प्रत्याख्याति चतुर्वि० अशन पान ४ अन्न० सह० पारि० मह० सव० पूर्ववत् ॥ निविगइय विगईयो सेसिआओ वा पच० निर्विकृतिक गृहीतशेषा वा विकृतीः प्रत्याख्याति अन्न० सह० लेवा० गिह० उक्खि० पूर्ववत् । पडुच्चमक्खिएणं प्रत्युतपुरस्कारेण म्रक्षितात् घृततैलादिनाभ्यक्तात् परि० मह० सव० पूर्ववत् । यत्रोक्त अष्ट नव च आकारा अत्र च नवणीओगाहिमए इति वचनात् अद्रवविकृतिस्पर्शात् उक्खित्तविवेगेण कथन द्रवविकृतिस्पर्शात् न इत्यष्ट नव चाकाराः । अत्र विकृतय इति मनोवाक्कायानां कामाद्युपकारकत्वात् विकारिसद्भावात् विकृतय उच्यन्ते । ताश्च सूत्रोक्ताश्च दशधा । यथा । 'दुद्ध १ दहि २ घय ३ तिल्ल ४ गुड ५ तहोगाहिम ६ छ भक्खाओ । महु ७ मज्ज ८ मस ९ मक्खण १० चत्तारि अभक्खविगईओ ॥ १ ॥' दुग्ध गोमहिषीछागीमेष्युष्ट्रिकाभव दधि नवनीत घृत तासामेव । उष्ट्रीणा दध्याद्यभावात् । तैल तिलातसीलट्टासर्षपोद्भव चतुर्धा । गुडः पिण्डद्रवभेदो द्विधा । उत्कथित अवगाहित वा घृततैलाभ्या केवलाभ्या पक्व । पक्वाश्च षट् भक्ष्या विकृतयः । चतस्रोऽभक्ष्याः मधुमद्यमांसनवनीतरूपाः । अथ कटाहिकायां घृततैलादिपूर्णायां चलाचल खाद्यकादि पच्यते तेनैव स्नेहेन द्वितीय तृतीय च तद्विकृतिः । ततः पर पक्व योगवाहिना निर्विकृतिकप्रत्याख्यानेपि आगाढकारणे कल्पते । एव शेषाण्यपि विकृतिगतानि निर्विकृतिकप्रत्या-

पच य
ध्याने कल्पन्ते । तानि कथ्यन्ते यथा । 'अह पेआ १ दुद्धट्टी २ दुद्धवलेही य ३ दुद्धसाडी य ४ । पच य
विगयगयाइ दुद्धम्मि य खोरिसहियाइ ५ ॥ १ ॥' क्षीरेयीपेये प्रसिद्धे । अय च व्याख्यायते । 'अधिललेयम्मि
दुद्धे दुद्धट्टी द्क्खमीसदुद्धमि । पइसाडी तह तदुल चुन्नय सिद्धम्मि अवलेही ॥ १ ॥ इति दुग्धविकृतिग-
तानि ॥ अथ दधिविकृतिगतानि यथा । 'दहिए विगयगयाइ घोलवडा १ घोल २ सिहिरिणि ३ करयो ४ ।
लवणकणदहियमहिय ५ सगरिगायम्मि अप्पडिए ॥ १ ॥' घृतविकृतिगतानि यथा । 'पक्कघिअ १ घयकिट्टी
२ पक्कोसहिउयरितरियसर्पिं च ३ । निज्जजण ४ वीसदण ५ गाइघिअ विगइ विगइगया ॥ १ ॥'[1] तैलवि-
कृतिगतानि यथा । 'तिल्लमली १ तिलकुट्टी २ दड्ढतिल्ल ३ तहो सडुघरिय ४ । लक्खाइदव्वपक्क तिल्लतिल्लमि
पंचेव ॥ १ ॥ गुडविकृतिगतानि यथा । अद्धकढिइक्खुरसो १ गुलवाणीय व २ सक्करा ३ खड ४ । पायगुल
५ गुलविगई ६ विगयगया हुंति पचेय ॥ १ ॥' अथ अवगाहितविकृतिगतानि यथा । 'एग एग सुवरिं १
तिहुवरि चीयग च ज पक्क । तुप्पेण तेण चिय २ तइय गुलहाणिआ पभिई ३ ॥ १ ॥ चउत्थ जलेण सिद्धा
लप्पसिआ ४ पंचम तु पूयलिया । सुपडियताविायाए परिपक्का ५ तीसमिलिएस्तु ॥ २ ॥' एव पट्स्तु भक्ष्य-
विकृतिषु त्रिंशत् विकृतिगतानि निर्विकृतिकेषु भक्ष्याणि । अभक्ष्यविकृतयस्तु मधु पौतिकमाक्षिकभ्रामरभे-
दात्रिविध । मद्य काष्ठपिष्टभेदात् द्विधा । मांस जलचरस्थलचरखचरभेदात्रिधा । नवनीत चतुर्धा पूर्वभे-

1 तिल्लमि पचेव विगइगया ।

वृपान्तमित्यर्थः। भवचरिम आयुःपूर्णतापर्यन्तं प्रत्याख्याति । त्रिविध चतुर्विध वा आहार अशनं खादिम स्वादिम ३ अशन ४ अन्न० सह० मह० सव० पूर्ववत्। गठिसहित मुष्टिसहित अङ्गुष्ठसहित इत्यादि प्रत्याख्याति चतुर्वि० अशन पान ४ अन्न० सह० पारि० मह० सव० पूर्ववत्॥ निर्विगइय विगईयो सेसिआओ वा पच्च० निर्विकृतिक गृहीतशेषा वा विकृतीः प्रत्याख्याति अन्न० सह० लेवा० गिह० उक्खि० पूर्ववत्। पडुच्चमक्खिएण प्रत्युतपुरस्कारेण म्रक्षितात् घृततैलादिनाभ्यक्तात् परि० मह० सव० पूर्ववत् । यथोक्त अष्ट नव च आकारा अष्ट च नवणीओगाहिमए इति वचनात् अद्रवविकृतिस्पर्शात् उक्खित्तविवेगेण कथन द्रवविकृतिस्पर्शात् न इत्यष्ट नव चाकाराः । अथ विकृतय इति मनोवाक्कायाना कामाद्युपकारकत्वात् विकारिसद्भावात् विकृतय उच्यन्ते। ताश्च सूत्रोक्ताश्च दशधा। यथा । 'दुद्ध १ दहि २ घय ३ तिल्ल ४ गुड ५ तहोगाहिम ६ छ भक्खाओ। महु ७ मज्ज ८ मंस ९ मक्खण १० चत्तारि अभक्खविगईओ ॥ १ ॥' दुग्ध गोमहिषीछागीमेष्युष्ट्रिकाभव दधि नवनीत घृत तासामेव। उष्ट्रीणा दध्याद्यभावात् । तैल तिलातसीलट्टासर्षपोद्भव चतुर्धा। गुडः पिण्डद्रवभेदो द्विधा । उत्कथित अवगाहित वा घृततैलाभ्या केवलाभ्या पक्व। पक्वान्न षट् भक्ष्या विकृतयः। चतस्रोऽभक्ष्याः मधुमद्यमांसनवनीतरूपाः । अथ कटाहिकायां घृततैलादिपूर्णाया चलाचल खाद्यकादि पच्यते तेनैव स्नेहेन द्वितीय तृतीय च तद्विकृतिः। ततः पर पक्व योगवाहिनां निर्विकृतिकप्रत्याख्यानेपि आगाढकारणे कल्पते । एव शेषाण्यपि विकृतिगतानि निर्विकृतिकप्रत्या-

का० कार० अनु० ९ एवं ४० ॥ नवमकोष्टकत्रयस्य भङ्गा नव यथा । म० क० १ । म० कार० २ । म० अनु० ३ । व० करो० ४ । व० कार० ५ । व० अनु० ६ । का० करो० ७ । का० कार० ८ । क० अनु० ९ एव सर्वमीलने भङ्गका० ४९ । एव सर्वमीलने एकत्रित्रित्रिनवनवत्रिनवनवभङ्गोत्पादने एकोनपञ्चाशद्भङ्गाः । एते च नाकार्पं न करोमि न कारयिष्यामीति कालत्रयमाने त्रिगुणीकृते सप्तचत्वारिंशदधिक शत भङ्गाना भवति । इत्यावश्यके प्रत्याख्यानं सपूर्णं ॥ इत्युक्त षड्विधमावश्यक क्रमेण सामायिक १ चतुर्विंशतिस्तव २ वन्दन ३ प्रतिक्रमण ४ कायोत्सर्ग ५ प्रत्याख्यान ६ रूप संक्षेपतः । अवश्य क्रियते इत्यावश्यकं । तन्नित्यमेव करणीय साधूना श्रावकाणा च । तच न योजना विना करणीयानुष्ठानमुपयाति तदर्थं योजना कथ्यते । प्रथम सामायिकस्य योजना यथा । सर्वविरतिसामायिक प्रव्रज्याग्रहणविधेरवसित । श्रुतसम्यक्त्वदेशविरतिसामायिकानि श्राद्धव्रतारोपाधिकारादवसितानि ॥

३	३	३	२	२	२	१	१	१
३	२	१	३	२	१	३	२	१
१	३	३	३	९	९	३	९	९

अधुना च आवश्यकसामायिक यदवश्य श्राद्धैरनुष्ठीयते । सर्वकर्मारम्भे पूर्वं परमेष्ठिमन्त्रपाठः किं पुनरावश्यके । अतः पूर्वं नमस्कार पठेत् । 'मुहपत्ति नमुक्कार वंदण मिरियासणस्स पडिलेहा । सज्झायपच्चक्खाणे गुरुमुणिसड्ढाइय पणामो ॥ १ ॥' पूर्वं श्राद्धः पुरोभूतासनो गुरुं नत्वा इच्छाकारेण सदिसह भगवन् सामाइयमुहपुत्तिय पडिलेहेमि इत्युक्त्वोपविश्य मुखवस्त्रिका प्रतिलेखयति । तत ऊर्ध्वीभूय नमस्कार त्रिरेकवेल

सलसि ॥ ३ ॥' प्रथमकोष्ठकत्रये मनसा वचसा कायेन न करोमि न कारयामि नानुजानामि १ इति एको भङ्गः । द्वितीयकोष्टकत्रये भङ्गत्रय यथा । मनसा वचसा कायेन न करोमि न कारयामि १, मनसा वचसा कायेन न करोमि नानुजानामि २, मनसा वचसा कायेन न कारयामि नानुजानामि ३, एव ४ ॥ अथ तृतीयकोष्ठके भङ्गत्रय मनसा वचसा कायेन न करोमि १, मनसा वचसा कायेन न कारयामि २, मनसा वचसा कायेन नानुजानामि ३, एव ७ ॥ अथ चतुर्थकोष्टकत्रये भङ्गत्रय यथा । म० व० नक० नका० नानु० १, मन० व० का० नक० नानु० २, व० का० नक० नका० नानु० ३ एव १० । अथ पञ्चमकोष्टत्रये भङ्गनवक यथा । म० व० करोमि० कारयामि १ । म० व० करोमि अनुजानामि २ । म० व० कारयामि अनु० ३ । म० काये० करो० कार० ४ म० का० करो० अनु० ५ । म० का० कार० अनु० ६ । व० का० करो० कार० ७ । व० का० करो० अनु० ८ । व० का० कार० अनु० ९ एव १९ ॥ अथ पष्ठकोष्टकत्रयस्य भङ्गा यथा । म० नक० १ । म० का० नक० २ । व० का० नक० ३ । म० व० नका ४ । म० का० नका० ५ । व० का० नका० ६ । म० व० नानु० ७ । म० का० नानु० ८ व० का० नानु० ९ एव २८ ॥ अथ सप्तमकोष्टकत्रयस्य भङ्गत्रय यथा । म० नक० नका० नानु० १ । व० नक० नका० नानु० २ । का० नक० नका० नअ० ३ एव ॥ ३१ ॥ अष्टमकोष्टत्रयस्य भङ्गनवक यथा । म० करो० कार० १ । म० करो० अनु० २ । म० कार० अनु० ३ । वच० करो० कार० ४ । व० करो० अनु० ५ । व० कार० अनु० ६ । का० करो० कार० ७ । का० करो० अनु० ८ ।

का० कार० अनु० ९ एव ४० ॥ नवमकोष्टकत्रयस्य भङ्गा नव यथा । म० क० १ । म० कार० २ । म० अनु० ३ । व० करो० ४ । व० कार० ५ । व० अनु० ६ । का० करो० ७ । का० कार० ८ । क० अनु० ९ एव सर्वमीलने भङ्गका० ४९ । एव सर्वमीलने एकत्रित्रित्रिनवनवत्रिनवनवभङ्गोत्पादने एकोनपञ्चाशद्भङ्गाः । एते च नाकार्षं न करोमि न कारयिष्यामीति कालत्रयमाने त्रिगुणीकृते सप्तचत्वारिंशदधिक शत भङ्गाना भवति । इत्यावश्यके प्रत्याख्यानं सपूर्णं ॥ इत्युक्त षड्विधमावश्यक क्रमेण सामायिक १ चतुर्विंशतिस्तव २ वन्दन ३ प्रतिक्रमण ४ कायोत्सर्ग ५ प्रत्याख्यान ६ रूप संक्षेपतः । अवश्य क्रियते इत्यावश्यकं । तन्नित्यमेव करणीय साधूनां श्रावकाणा च । तच्च न योजना विना करणीयानुष्ठानमुपयाति तदर्थं योजना कथ्यते । प्रथम सामायिकस्य योजना यथा । सर्वविरतिसामायिकं प्रव्रज्याग्रहणविधेरवसित । श्रुतसम्यक्त्वदेशविरतिसामायिकानि श्राद्धव्रतारोपाधिकारावसितानि ॥

३	३	३	२	२	२	१	१	१
३	२	१	३	२	१	३	२	१
१	१	३	३	९	९	३	९	९

अधुना च आवश्यकसामायिक यदवश्य श्राद्धैरनुष्ठीयते । सर्वकर्मारम्भे पूर्वं परमेष्ठिमन्त्रपाठः किं पुनरावश्यके । अतः पूर्वं नमस्कार पठेत् । 'मुहपत्ति नमुक्कार दंडग मिरियासणस्स पडिलेहा । सज्झायपच्चक्खाणे गुरुमुणिसद्दाइय पणामो ॥ १ ॥' पूर्वं श्राद्धः पुरोभूतासनो गुरुं नत्वा इच्छाकारेण संदिसह भगवन् सामाइयमुहपुत्तियं पडिलेहेमि इत्युक्त्वोपविश्य मुखवस्त्रिकां प्रतिलेखयति । तत ऊर्ध्वीभूय नमस्कार त्रिरेकवेल

सलस्ति ॥ ३ ॥' प्रथमकोष्टकत्रये मनसा वचसा कायेन न करोमि न कारयामि नानु जानामि १ इति एको भङ्गः । द्वितीयकोष्टकत्रये भङ्गत्रयं यथा । मनसा वचसा कायेन न करोमि न कारयामि १, मनसा वचसा कायेन न करोमि नानुजानामि २, मनसा वचसा कायेन न कारयामि नानुजानामि ३, एवं ४ ॥ अथ तृतीयकोष्टके भङ्गत्रय मनसा वचसा कायेन न करोमि १, मनसा वचसा कायेन न कारयामि २, मनसा वचसा कायेन नानुजानामि ३, एवं ७ ॥ अथ चतुर्थकोष्टकत्रये भङ्गत्रयं यथा । म० व० नक० नका० नानु० १, मन० व० का० नक० नानु० २, व० का० नक० नका० नानु० ३ एवं १० । अथ पञ्चमकोष्टत्रये भङ्गनवक यथा । म० व० करोमि० कारयामि १ । म० व० करोमि अनुजानामि २ । म० व० कारयामि अनु० ३ । म० काये० करो० कार० ४ म० का० करो० अनु० ५ । म० का० कार० अनु० ६ । व० का० करो० कार० ७ । व० का० करो० अनु० ८ । व० का० कार० अनु० ९ एव १९ ॥ अथ षष्ठकोष्टकत्रयस्य भङ्गा यथा । म० नक० १ । म० का० नक० २ । व० का० नक० ३ । म० व० नका ४ । म० का० नका० ५ । व० का० नका० ६ । म० व० नानु० ७ । म० का० नानु० ८ व० का० नानु० ९ एव २८ ॥ अथ सप्तमकोष्टकत्रयस्य भङ्गत्रय यथा । म० नक० नका० नानु० १ । व० नक० नका० नानु० २ । का० नक० नका० नअ० ३ एव ॥ ३१ ॥ अष्टमकोष्टत्रयस्य भङ्गनवकं यथा । म० करो० कार० १ । म० करो० अनु० २ । म० कार० अनु० ३ । वच० करो० कार० ४ । व० करो० अनु० ५ । व० कार० अनु० ६ । का० करो० कार० ७ । का० करो० अनु० ८ ।

भगवन्, उपधिसदिसावउ उपधिपडिलेहउ इत्युक्त्वा यदि पूर्वं प्रतिलेखनाकाले वस्त्र पौषधागाराद्यप्रतिलेखित स्यात् तदा प्रतिलेखयेत्। यदि प्रतिलेखित स्यात् तदा क्षमाश्रमणेनैव पूरयेत् । ततः क्षमाश्रमणद्वयपूर्वं भणति भगवन्, वसतिसदिसावउं वसतिपडिलेहउ इत्युक्त्वा यदि वसतिमात्रकादि पूर्वं प्रतिलेखनाकाले अप्रतिलेखित स्यात् तदा प्रतिलेखयेत्। प्रतिलेखितेपि क्षमाश्रमणेनैव पूरयेत्। वसतिप्रमार्जन दण्डप्रोछनेन। ततः पुनः गुरुसमीपमागत्य क्षमाश्रमणपूर्वमिति वदेत् भगवन्, पसाउकरी पच्चक्खाण करावउ। ततो गुरुर्यदि श्राद्ध आहारार्थी भवति तदा दिवसपौषधे प्रातर्गृहीते नमस्कारसहित प्रत्याख्यानमुच्चारयेत् यथा। उग्गए सूरे नवकारसहिय पच्च० चउ० ४ अन्न० सह० वोसिरइ । स्वाध्यायकाले पुनराचाम्लैकभक्तनिर्विकृतिकादित्रिविधाहार उपवास वा दद्यात्। सन्ध्याकृते रात्रिपौषधे तु दिवसचरिम पच्च० चउ० ४ अन्न० सह० मह० सव्व० वोसिरइ। तत्र यः किल आहारग्राही भवति तदा स वन्दनकद्वय ददाति। यो न आहारग्राही तस्य न आचार्योपाध्यायगुरुसाधुवन्दन। अय च सामान्यपौषधग्रहणविधिः। यत्किल अहोरात्रिक पौषध गृह्णाति तस्येय चर्या। ब्राह्मे मुहूर्ते पूर्वोक्तविधिना पौषध गृह्णाति । अतीतसन्ध्याप्रतिलेखितोपधिवसति.। ततो जाताया प्रतिक्रमणवेलाया प्राभातिकप्रतिक्रमण करोति। तदन्ते क्षमा० द्वयपूर्वं बहुवेलं सदिसावेमि बहुवेल करेमि इत्युक्त्वा आचार्योपाध्यायसर्वसाधून् वन्दते । ततो जाते प्रतिलेखनाकाले क्षमा० द्वयेन भणति भग० पडिलेहणं सदिसावेमि पडिलेहण करेमि इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिकां प्रतिलेखयति। ततः

ततः श्राद्ध ऊर्ध्वीभूय नमस्कार त्रिरेकवेल वा पठति । ततो गुर्वग्रे कथयति । भगवन्, पोसहदण्डक उचराव । ततो गुरुस्त्रिरेकवेलं वा पौषधदण्डक वदति श्राद्धोपि तमनु वदति । दण्डको यथा । 'करेमि भंते पोसह आहारपोसह सव्वओ सरीरसकारपोसह सव्वओ अव्वावारपोसह सव्वओ बंभचेरपोसह सव्वओ चउव्विहे पोसहे ठामि जाव दिवस वा रत्तिं वा अहोरत्त वा पज्जुवासामि दुविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि तस्स भंते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि १ अत्र च यः किल दिवसपौषधे अहोरात्र्यौषधे वा आहारार्थी तस्य आहारपोसह देसओ इत्युच्चारः शेष तथैव । तत उपविश्य इच्छाकारेण संदिसह भगवन्, सामाइकमुहपत्तिं पडिलेहेमि इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिका प्रतिलेखयति । ततः श्राद्ध ऊर्ध्वीभूय परमेष्ठिमन्त्र त्रिरेकवेल वा पठित्वा पुनः कथयति भगवन्, सामाइकदण्डक उचरावउ । ततो गुरुस्त्रिरेकवेल वा सामायिकदण्डकमुच्चारयति यथा करेमि भंते सामाइय सावज्ज जोग पच्चक्खामि जाव पोसह पज्जुवासामि दुविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि तस्सभ ॥ १ ॥ १ । ततः क्षमाश्रमण दत्त्वा भणति । वर्षाकाले भगवन्, कट्ठासण संदिसावामि । कट्ठासण पडिलेहेमि । शेपाष्टमासेषु पाउछणउ संदिसावेमि । पाउछणउ पडिलेहेमि । इत्युक्त्वा पट्टक पादप्रोंछन वा प्रतिलेखयेत् । ततः क्षमाश्रमण दत्त्वा भणति भगवन्, सज्झायं संदिसावेमि सज्झायं करेमि । तत ऊर्ध्वीभूय नमस्कारत्रय पठित्वा । जयइ जगजीवजोणी इत्यादिगाथापञ्चक पञ्चविंशतिं वा पठेत् । ततः पुनः क्षमाश्रमणपूर्वं भणति

भगवन्, उपधिसंदिसावउं उपधिपडिलेहउ इत्युक्त्वा यदि पूर्वं प्रतिलेखनाकाले वस्त्र पौषधागाराद्यप्रतिलेखित स्यात् तदा प्रतिलेखयेत्। यदि प्रतिलेखित स्यात् तदा क्षमाश्रमणेनैव पूरयेत् । ततः क्षमाश्रमणद्वयपूर्वं भणति भगवन्, वसतिसंदिसावउं वसतिपडिलेहउ इत्युक्त्वा यदि वसतिमात्रकादि पूर्वं प्रतिलेखनाकाले अप्रतिलेखित स्यात् तदा प्रतिलेखयेत्। प्रतिलेखितेपि क्षमाश्रमणेनैव पूरयेत्। वसतिप्रमार्जन दण्डप्रोञ्छनेन। ततः पुनः गुरुसमीपमागत्य क्षमाश्रमणपूर्वमिति वदेत् भगवन्, पसाउकरी पच्चक्खाण करावउ। ततो गुरुर्यदि श्राद्ध आहारार्थी भवति तदा दिवसपौषधे प्रातर्गृहीते नमस्कारसहित प्रत्याख्यानमुच्चारयेत् यथा। उग्गए सूरे नवकारसहिय पच्च० चउ० ४ अन्न० सह० वोसिरइ । स्वाध्यायकाले पुनराचाम्लैकभक्तनिर्विकृतिकाद्विविधाहार उपवास वा दद्यात्। सन्ध्याकृते रात्रिपौषधे तु दिवसचरिम पच्च० चउ० ४ अन्न० सह० मह० सव० वोसिरइ। तत्र यः किल आहारग्राही भवति तदा स वन्दनकद्वय ददाति। यो न आहारग्राही तस्य न आचार्योपाध्यायगुरुसाधुवन्दन। अथ च सामान्यपौषधग्रहणविधिः। यत्किल अहोरात्रिक पौषध गृह्णाति तस्येय चर्या। ब्राह्मे मुहूर्ते पूर्वोक्तविधिना पौषध गृह्णाति । अतीतसन्ध्याप्रतिलेखितोपधिवसतिः। ततो जातायां प्रतिक्रमणवेलायां प्राभातिकप्रतिक्रमण करोति। तदन्ते क्षमा० द्वयपूर्वं बहुवेल संदिसावेमि बहुवेल करेमि इत्युक्त्वा आचार्योपाध्यायसर्वसाधून् वन्दते । ततो जाते प्रतिलेखनाकाले क्षमा० द्वयेन भणति भग० पडिलेहण संदिसावेमि पडिलेहण करेमि इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिका प्रतिलेखयति। ततः

ततः श्राद्ध ऊर्ध्वीभूय नमस्कार त्रिरेकवेल वा पठति । ततो गुर्वग्रे कथयति । भगवन्, पोसहदण्डक उच्चरावेह । ततो गुरुस्त्रिरेकवेल वा पौषधदण्डक वदति श्राद्धोपि तमनु वदति । दण्डको यथा । 'करेमि भंते पोसह आहारपोसह सव्वओ सरीरसक्कारपोसह सव्वओ अव्वावारपोसह सव्वओ बम्भचेरपोसह सव्वओ चउव्विहे पोसहे ठामि जाव दिवस वा रत्तिं वा अहोरत्त वा पज्जुवासामि दुविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि तस्स भंते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि १ अत्र च यः किल दिवसपौषधे अहोरात्र्यौषधे वा आहारार्थी तस्य आहारपोसह देसओ इत्युच्चारः शेष तथैव । तत उपविश्य इच्छाकारेण संदिसह भगवन्, सामाइयमुहपत्तिं पडिलेहेमि इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिका प्रतिलेखयति । ततः श्राद्ध ऊर्ध्वीभूय परमेष्ठिमन्त्र त्रिरेकवेल वा पठित्वा पुनः कथयति भगवन्, सामाइयदण्डक उच्चरावेह । ततो गुरुस्त्रिरेकवेल वा सामायिकदण्डकमुच्चारयति यथा करेमि भंते सामाइय सावज्ज जोग पच्चक्खामि जाव पोसह पज्जुवासामि दुविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि तस्स भ ॥ १ ॥ १ । ततः क्षमाश्रमण दत्त्वा भणति । वर्षाकाले भगवन्, कट्ठासणं संदिसावेमि । कट्ठासण पडिलेहेमि । शेषाष्टमासेषु पाउछणउ संदिसावेमि । पाउछणउ पडिलेहेमि । इत्युक्त्वा पट्टक पादप्रोंछन वा प्रतिलेखयेत् । ततः क्षमाश्रमण दत्त्वा भणति भगवन्, सज्झायं संदिसावेमि सज्झाय करेमि । तत ऊर्ध्वीभूय नमस्कारत्रय पठित्वा । जयइ जगजीवजोणी इत्यादिगाथापञ्चक पञ्चविंशतिं वा पठेत् । ततः पुनः क्षमाश्रमणपूर्वं भणति

भगवन्, उपधिसंदिसावउ उपधिपडिलेहउ इत्युक्त्वा यदि पूर्वं प्रतिलेखनाकाले वस्त्र पौषधागाराद्यप्रतिलेखित स्यात् तदा प्रतिलेखयेत्। यदि प्रतिलेखित स्यात् तदा क्षमाश्रमणेनैव पूरयेत् । ततः क्षमाश्रमणद्वयपूर्वं भणति भगवन्, वसतिसंदिसावउ वसतिपडिलेहउ इत्युक्त्वा यदि वसतिमात्रकादि पूर्वं प्रतिलेखनाकाले अप्रतिलेखित स्यात् तदा प्रतिलेखयेत्। प्रतिलेखितेपि क्षमाश्रमणेनैव पूरयेत्। वसतिप्रमार्जन दण्डप्रोंछनेन। ततः पुनः गुरुसमीपमागत्य क्षमाश्रमणपूर्वमिति वदेत् भगवन्, पसाउकरी पच्चक्खाण करावउ। ततो गुरुर्यदि श्राद्ध आहारार्थी भवति तदा दिवसपोषधे प्रातर्गृहीते नमस्कारसहित प्रत्याख्यानमुच्चारयेत् यथा। उग्गए सूरे नवकारसहिय पच्च० चउ० ४ अन्न० सह० वोसिरइ । स्वाध्यायकाले पुनराचाम्लैकभक्तनिर्विकृतिकादित्रिविधाहार उपवास वा दद्यात्। सध्याकृते रात्रिपौषधे तु दिवसचरिम पच्च० चउ० ४ अन्न० सह० मह० सव्व० वोसिरइ। तत्र यः किल आहारग्राही भवति तदा स वन्दनकद्वय ददाति। यो न आहारग्राही तस्य न आचार्योपाध्यायगुरुसाधुवन्दन। अथ च सामान्यपौषधग्रहणविधिः। यत्किल अहोरात्रिकं पौषध गृह्णाति तस्येय चर्या। ब्राह्मे मुहूर्ते पूर्वोक्तविधिना पौषध गृह्णाति । अतीतसख्याप्रतिलेखितोपधिवसति०। ततो जाताया प्रतिक्रमणवेलायां प्राभातिकप्रतिक्रमण करोति। तदन्ते क्षमा० द्वयपूर्वं बहुवेल संदिसावेमि बहुवेल करेमि इत्युक्त्वा आचार्योपाध्यायसर्वसाधून् वन्दते । ततो जाते प्रतिलेखनाकाले क्षमा० द्वयेन भणति भग० पडिलेहण संदिसावेमि पडिलेहण करेमि इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिका प्रतिलेखयति। ततः

ततः श्राद्ध ऊर्ध्वीभूय नमस्कार त्रिरेकवेलं वा पठति । ततो गुर्वग्रे कथयति । भगवन्, पोसहदण्डक उच्चरावउ । ततो गुरुस्त्रिरेकवेल वा पौषधदण्डक वदति श्राद्धोपि तमनु वदति । दण्डको यथा । 'करेमि भंते पोसह आहारपोसह सव्वओ सरीरसक्कारपोसह सव्वओ अव्वावारपोसह सव्वओ बंभचेरपोसह सव्वओ चउव्विहे पोसहे ठामि जाव दिवस वा रत्तिं वा अहोरत्त वा पज्जुवासामि दुविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि तस्स भंते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि १ अत्र च यः किल दिवसपौषधे अहोरात्रपौषधे वा आहारार्थी तस्य आहारपोसह देसओ इत्युच्चारः शेष तथैव । तत उपविश्य इच्छाकारेण संदिसह भगवन्, सामाइकमुहपत्तिं पडिलेहेमि इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिका प्रतिलेखयति । तत. श्राद्ध ऊर्ध्वीभूय परमेष्ठिमन्त्र त्रिरेकवेल वा पठित्वा पुनः कथयति भगवन्, सामाइकदण्डक उच्चरावउ । ततो गुरुस्त्रिरेकवेल वा सामायिकदण्डकमुच्चारयति यथा करेमि भंते सामाइय सावज्ज जोग पच्चक्खामि जाव पोसह पज्जुवासामि दुविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि तस्सभ ॥ १ ॥ १ । ततः क्षमाश्रमण दत्वा भणति । वर्षाकाले भगवन्, कट्ठासणं संदिसावेमि । कट्ठासण पडिलेहेमि । शेषाष्टमासेषु पाउछणउ संदिसावेमि । पाउछणउ पडिलेहेमि । इत्युक्त्वा पट्टक पादप्रोंछन वा प्रतिलेखयेत् । ततः क्षमाश्रमण दत्वा भणति भगवन्, सज्झायं संदिसावेमि सज्झाय करेमि । तत ऊर्ध्वीभूय नमस्कारत्रय पठित्वा । जयइ जगजीवजोणी इत्यादिगाथापञ्चक पञ्चविंशतिं वा पठेत् । ततः पुनः क्षमाश्रमणपूर्वं भणति

भगवन्, उपधिसंदिसावउं उपधिपडिलेहउं इत्युक्त्वा यदि पूर्वं प्रतिलेखनाकाले वस्त्र पौषधागाराद्यप्रतिलेखित स्यात् तदा प्रतिलेखयेत्। यदि प्रतिलेखित स्यात् तदा क्षमाश्रमणेनैव पूरयेत् । ततः क्षमाश्रमणद्वयपूर्वं भणति भगवन्, वसतिसंदिसावउं वसतिपडिलेहउं इत्युक्त्वा यदि वसतिमात्रकादि पूर्वं प्रतिलेखनाकाले अप्रतिलेखित स्यात् तदा प्रतिलेखयेत्। प्रतिलेखितेपि क्षमाश्रमणेनैव पूरयेत्। वसतिप्रमार्जन दण्डप्रोंछनेन। ततः पुनः गुरुसमीपमागत्य क्षमाश्रमणपूर्वमिति वदेत् भगवन्, पसाउकरी पच्चक्खाण करावउ। ततो गुरुर्यदि श्राद्ध आहारार्थी भवति तदा दिवसपौषधे प्रातर्गृहीते नमस्कारसहित प्रत्याख्यानमुच्चारयेत् यथा। उग्गए सूरे नवकारसहिय पच्च० चउ० ४ अन्न० सह० वोसिरइ । स्वाध्यायकाले पुनराचाम्लैकभक्तनिर्विकृतिकादित्रिविधाहार उपवास वा दद्यात्। सन्ध्याकृते रात्रिपौषधे तु दिवसचरिम पच्च० चउ० ४ अन्न० सह० मह० सव० वोसिरइ। तत्र यः किल आहारग्राही भवति तदा स वन्दनकद्वय ददाति। यो न आहारग्राही तस्य न आचार्योपाध्यायगुरुसाधुवन्दन। अय च सामान्यपौषधग्रहणविधिः। यत्किल अहोरात्रिकं पौषध गृह्णाति तस्यैव चर्या। ब्राह्मे मुहूर्ते पूर्वोक्तविधिना पौषध गृह्णाति । अतीतसन्ध्याप्रतिलेखितोपधिवसतिः। ततो जातायां प्रतिक्रमणवेलाया प्राभातिकप्रतिक्रमण करोति। तदन्ते क्षमा० द्वयपूर्वं बहुवेल संदिसावेमि बहुवेल करेमि इत्युक्त्वा आचार्योपाध्यायसर्वसाधून् वन्दते । ततो जाते प्रतिलेखनाकाले क्षमा० द्वयेन भणति भग० पडिलेहण संदिसावेमि पडिलेहण करेमि इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिका प्रतिलेखयति। ततः

ततः श्राद्ध ऊर्ध्वीभूय नमस्कार त्रिरेकवेल वा पठति । ततो गुर्वग्रे कथयति । भगवन्, पोसहदण्डक उच्चरावउ । ततो गुरुस्त्रिरेकवेल वा पौषधदण्डक वदति श्राद्धोपि तमनु वदति । दण्डको यथा । 'करेमि भंते पोसह आहारपोसह सव्वओ सरीरसक्कारपोसह सव्वओ अव्वावारपोसह सव्वओ बंभचेरपोसह सव्वओ चउव्विहे पोसहे ठामि जाव दिवस वा रत्तिं वा अहोरत्त वा पज्जुवासामि दुविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि तस्स भंते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि १ अत्र च यः किल दिवसपौषधे अहोरात्रपौषधे वा आहारार्थी तस्य आहारपोसह देसओ इत्युच्चारः शेष तथैव । तत उपविश्य इच्छाकारेण संदिसह भगवन्, सामाइकमुहपत्तिं पडिलेहेमि इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिका प्रतिलेखयति । ततः श्राद्ध ऊर्ध्वीभूय परमेष्ठिमन्त्र त्रिरेकवेल वा पठित्वा पुनः कथयति भगवन्, सामाइकदण्डक उच्चरावउ । ततो गुरुस्त्रिरेकवेल वा सामायिकदण्डकमुच्चारयति यथा करेमि भंते सामाइय सावज्ज जोग पच्चक्खामि जाव पोसह पज्जुवासामि दुविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि तस्सभ ॥ १ ॥ १ । ततः क्षमाश्रमण दत्वा भणति । वर्षाकाले भगवन्, कट्ठासण संदिसावामि । कट्ठासण पडिलेहेमि । शेषाष्टमासेषु पाउछणउ संदिसावेमि । पाउछणउ पडिलेहेमि । इत्युक्त्वा पट्टक पादप्रोञ्छन वा प्रतिलेखयेत् । ततः क्षमाश्रमण दत्वा भणति भगवन्, सज्झायं संदिसावेमि सज्झाय करेमि । तत ऊर्ध्वीभूय नमस्कारत्रय पठित्वा । जयइ जगजीवजोणी इत्यादिगाथापञ्चक पञ्चविंशतिं वा पठेत् । ततः पुनः क्षमाश्रमणपूर्वं भणति

भगवन्, उपधिसंदिसावउं उपधिपडिलेहउ इत्युक्त्वा यदि पूर्वं प्रतिलेखनाकाले वस्त्र पौषधागाराद्यप्रतिलेखित स्यात् तदा प्रतिलेखयेत् । यदि प्रतिलेखित स्यात् तदा क्षमाश्रमणेनैव पूरयेत् । ततः क्षमाश्रमणद्वयपूर्वं भणति भगवन्, वसतिसंदिसावउं वसतिपडिलेहउ इत्युक्त्वा यदि वसतिमात्रकादि पूर्वं प्रतिलेखनाकाले अप्रतिलेखित स्यात् तदा प्रतिलेखयेत् । प्रतिलेखितेपि क्षमाश्रमणेनैव पूरयेत् । वसतिप्रमार्जन दण्डप्रोंछनेन । तत पुनः गुरुसमीपमागत्य क्षमाश्रमणपूर्वमिति वदेत् भगवन्, पसाउकरी पच्चक्खाण करावउ । ततो गुरुर्यदि श्राद्ध आहारार्थी भवति तदा दिवसपौषधे प्रातर्गृहीते नमस्कारसहित प्रत्याख्यानमुच्चारयेत् यथा । उग्गए सूरे नवकारसहिय पच० चउ० ४ अन्न० सह० वोसिरइ । स्वाध्यायकाले पुनराचाम्लैकभक्तनिर्विकृतिकादित्रिविधाहार उपवास वा दद्यात् । सध्याकृते रात्रिपौषधे तु दिवसचरिम पच० चउ० ४ अन्न० सह० मह० सव० वोसिरइ । तत्र य किल आहारग्राही भवति तदा स वन्दनकद्वय ददाति । यो न आहारग्राही तस्य न आचार्योपाध्यायगुरुसाधुवन्दन । अय च सामान्यपौषधग्रहणविधिः । यत्किल अहोरात्रिकं पौषध गृह्णाति तस्येय चर्या । ब्राह्मे मुहूर्ते पूर्वोक्तविधिना पौषध गृह्णाति । अतीतसख्याप्रतिलेखितोपधिवसति. । ततो जातायां प्रतिक्रमणवेलायां प्राभातिकप्रतिक्रमण करोति । तदन्ते क्षमा० द्वयपूर्वं बहुवेल संदिसावेमि बहुवेल करेमि इत्युक्त्वा आचार्योपाध्यायसर्वसाधून् वन्दते । ततो जाते प्रतिलेखनाकाले क्षमा० द्वयेन भणति भग० पडिलेहणं संदिसावेमि पडिलेहण करेमि इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिका प्रतिलेखयति । ततः

ततः श्राद्ध ऊर्ध्वीभूय नमस्कार त्रिरेकवेल वा पठति । ततो गुर्वग्रे कथयति । भगवन्, पोसहदण्डक उच्चरा-
मउ । ततो गुरुस्त्रिरेकवेल वा पौषधदण्डक वदति श्राद्धोपि तमनु वदति । दण्डको यथा । 'करेमि भंते पो-
सह आहारपोसह सव्वओ सरीरसक्कारपोसह सव्वओ अव्वावारपोसह सव्वओ बम्भचेरपोसह सव्वओ चउव्विहे
पोसहे ठामि जाव दिवस वा रत्तिं वा अहोरत्त वा पज्जुवासामि दुविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न
करेमि न कारवेमि तस्स भंते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि १ अत्र च यः किल दिव-
सपौषधे अहोरात्र्यौषधे वा आहारार्थी तस्य आहारपोसह देसओ इत्युच्चारः शेष तथैव । तत उपविश्य
इच्छाकारेण संदिसह भगवन्, सामाइकमुहपत्तिं पडिलेहेमि इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिकां प्रतिलेखयति । ततः
श्राद्ध ऊर्ध्वीभूय परमेष्ठिमन्त्र त्रिरेकवेल वा पठित्वा पुनः कथयति भगवन्, सामाइकदण्डक उच्चरावउ । ततो
गुरुस्त्रिरेकवेल वा सामायिकदण्डकमुच्चारयति यथा करेमि भंते सामाइय सावज्ज जोग पच्चक्खामि जाव पो-
सह पज्जुवासामि दुविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि तस्सभ ॥ १ ॥ १ । ततः
क्षमाश्रमण दत्वा भणति । वर्षाकाले भगवन्, कट्ठासण संदिसावामि । कट्ठासण पडिलेहेमि । शेषाष्टमा-
सेषु पाउञ्छणउ संदिसावेमि । पाउञ्छणउं पडिलेहेमि । इत्युक्त्वा पट्टक पादप्रोञ्छनं वा प्रतिलेखयेत् । ततः
क्षमाश्रमण दत्वा भणति भगवन्, सज्झायं संदिसावेमि सज्झाय करेमि । तत ऊर्ध्वीभूय नमस्कारत्रय
पठित्वा । जयइ जगजीवजोणी इत्यादिगाथापञ्चक पञ्चविंशतिं वा पठेत् । ततः पुनः क्षमाश्रमणपूर्वं भणति

भगवन्, उपधिसदिसावउ उपधिपडिलेहउ इत्युक्त्वा यदि पूर्वं प्रतिलेखनाकाले वस्त्र पौषधागाराद्यप्रतिलेखित स्यात् तदा प्रतिलेखयेत्। यदि प्रतिलेखित स्यात् तदा क्षमाश्रमणेनैव पूरयेत् । ततः क्षमाश्रमणद्वयपूर्वं भणति भगवन्, वसतिसदिसावउ वसतिपडिलेहउ इत्युक्त्वा यदि वसतिमात्रकादि पूर्वं प्रतिलेखनाकाले अप्रतिलेखित स्यात् तदा प्रतिलेखयेत्। प्रतिलेखितेपि क्षमाश्रमणेनैव पूरयेत्। वसतिप्रमार्जन दण्डप्रोंछनेन। ततः पुनः गुरुसमीपमागत्य क्षमाश्रमणपूर्वमिति वदेत् भगवन्, पसाउकरी पच्चक्खाण करावउ। ततो गुरुर्यदि श्राद्ध आहारार्थी भवति तदा दिवसपौषधे प्रातर्गृहीते नमस्कारसहित प्रत्याख्यानमुच्चारयेत् यथा। उग्गए सूरे नवकारसहिय पच्च० चउ० ४ अस० सह० वोसिरइ । स्वाध्यायकाले पुनराचाम्लैकभक्तनिर्विकृतिकादित्रिविधाहार उपवास वा दद्यात्। संध्याकृते रात्रिपौषधे तु दिवसचरिम पच्च० चउ० ४ अस० सह० मह० सव्व० वोसिरइ। तत्र यः किल आहारग्राही भवति तदा स वन्दनकद्वय ददाति। यो न आहारग्राही तस्य न आचार्योपाध्यायगुरुसाधुवन्दन। अय च सामान्यपौषधग्रहणविधिः। यत्किल अहोरात्रिक पौषध गृह्णाति तस्येय चर्या। ब्राह्मे मुहूर्ते पूर्वोक्तविधिना पौषध गृह्णाति । अतीतसन्ध्याप्रतिलेखितोपधिवसतिः। ततो जातायां प्रतिक्रमणवेलायां प्राभातिकप्रतिक्रमण करोति। तदन्ते क्षमा० द्वयपूर्वं बहुवेल सदिसावेमि बहुवेल करेमि इत्युक्त्वा आचार्योपाध्यायसर्वसाधून् वन्दते । ततो जाते प्रतिलेखनाकाले क्षमा० द्वयेन भणति भग० पडिलेहणं सदिसावेमि पडिलेहण करेमि इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिका प्रतिलेखयति। ततः

ततः श्राद्ध ऊर्ध्वीभूय नमस्कार त्रिरेकवेल वा पठति । ततो गुर्वग्रे कथयति । भगवन्, पोसहदण्डक उच्चरा-
वउ । ततो गुरुस्त्रिरेकवेल वा पोषधदण्डक वदति श्राद्धोपि तमनु वदति । दण्डको यथा । 'करेमि भंते पो-
सह आहारपोसह सवओ सरीरसक्कारपोसह सवओ अबाबारपोसह सवओ बम्भचेरपोसह सवओ चउविहे
पोसहे ठामि जाव दिवस वा रत्ति वा अहोरत्त वा पज्जवासामि दुविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न
करेमि न कारवेमि तस्स भंते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि १ अत्र च यः किल दिव-
सपौषधे अहोरात्र्यौषधे वा आहारार्थी तस्य आहारपोसह देसओ इत्युच्चारः शेष तथैव । तत उपविश्य
इच्छाकारेण संदिसह भगवन्, सामाइकमुहपत्तिं पडिलेहेमि इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिका प्रतिलेखयति । ततः
श्राद्ध ऊर्ध्वीभूय परमेष्ठिमन्त्र त्रिरेकवेल वा पठित्वा पुनः कथयति भगवन्, सामाइकदण्डक उच्चरावउ । ततो
गुरुस्त्रिरेकवेल वा सामायिकदण्डकमुच्चारयति यथा करेमि भंते सामाइय सावज्ज जोग पच्चक्खामि जाव पो-
सह पज्जुवासामि दुविहं तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि तस्सभ ॥ १ ॥ १ । ततः
क्षमाश्रमण दत्त्वा भणति । वर्षाकाले भगवन्, कट्ठासणं संदिसावामि । कट्ठासण पडिलेहेमि । शेषाष्टमा-
सेषु पाउञ्छणउ संदिसावेमि । पाउञ्छणउ पडिलेहेमि । इत्युक्त्वा पट्टक पादप्रोञ्छनं वा प्रतिलेखयेत् । ततः
क्षमाश्रमण दत्त्वा भणति भगवन्, सज्झायं संदिसावेमि सज्झाय करेमि । तत ऊर्ध्वीभूय नमस्कारत्रय
पठित्वा । जयइ जगजीवजोणी इत्यादिगाथापञ्चक पञ्चविंशतिं वा पठेत् । ततः पुनः क्षमाश्रमणपूर्वं भणति

णवुस्तुमिणराईपायच्छित्त चित्तविशोधनार्थं कायोत्सर्गं करोति शक्रस्तवं च पठति । ततो मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य सामायिकवद्दण्डकमुच्चार्य स्वाध्यायपर्यन्त करोति । पुनः शुभध्यानेन रात्रिशेषमतिवाहयति । ततः प्रतिक्रमणवेलाया प्राभातिक प्रतिक्रमण करोति । ततः पूर्ववत्सर्वं प्राभातिक कर्म विदध्यात् । जाते पौषध-पारणावसरे इच्छा० भगवन् पोसहपारणमुहपत्तिं पडिलेहेमि । मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य क्षमा० द्वयपूर्वक भणति भगवन् पोसह पारउ भग० पोसह पारियउ । मुखवस्त्रिकापिहितवदनो भून्यस्तशीर्षः पौषधपारण-गाथाः पठति यथा–'सागरचदो कामो चदवर्डिसो सुदंसणो धन्नो । जेहिं पोसहपडिमा न खंडिया जीवि-यतेवि ॥ १ ॥ जो गब्भवासभीओ तामुल्ललिओ महामुणी अभओ । उम्मुक्कमणिसुवन्नो पडिपुन्न पोसह कुणइ ॥ २ ॥ पोसहसुहे भावे असुहाइ खवेइ नत्थि सदेहो । छिंदइ नरतिरियगइं इह भणिय पोसह कुणइ ॥ ३ ॥ पोसहसामाइयसठियस्स जीवस्स जाइ जो कालो । सो सफलो बोधव्वो सेसो ससारफलहेऊ ॥४॥ चक्कवट्टित्तमिदत्त मुक्खो कालओ थिक्खओ । इवेअ पोसहस्सेव फल र्यिति महेसिणो ॥ ५ ॥' ततो नम-स्कार भणित्वा सामायिकपारणमुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य पूर्ववत्सामायिक पारयति । ततः पोषधपारणके साधुषु सत्सु नियतमतिथिसविभागो विधेय एव । इत्याहोरात्रिकपौषधविधिः ॥ सामायिक च द्विघट्यन्त नमस्कारजापप्रतिक्रमणादिभिः पूरयेत् । केचित्स्थूलमतयः परमेष्ठिमन्त्रपञ्चशतीजपान्त ब्रुवते । तदनन्तर तत्पारयित्वा पुनः सामायिक गृह्णीयादिति रूढिः । इत्यावश्यके सामायिकयोजना संपूर्णा ॥

ओहीधडिल्ले पडिलेहेमि । ततो वस्त्रकम्बलादि प्रतिलिख्य पुनः शुभध्यानेन तिष्ठति । समागतायां कालवेलाया चतुर्विंशतिस्थण्डिलानि प्रतिलेखयति उच्चारप्रस्रवणार्थं । ततस्तद्दिवसानुसारेण सांवत्सरिक चातुर्मासिक पाक्षिक वा दैवसिक वा प्रतिक्रमण करोति । तदनन्तर साधुविश्रामणां करोति । ततः स्वाध्यायेन निशाप्रथमप्रहरमतिवाहयति । ततः शरीरचिन्तां कृत्वा ऐर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य क्षमा० द्वयपूर्वं भणति भग० राईसथारए सदिसावेमि राईसथारए ठाएमि इत्युक्त्वा शक्रस्तव पठति । ततः सस्तारक शरीर च प्रमृज्य जानूपरि सस्तारकोत्तरपट्टं मीलयित्वा भूमौ सस्थाप्य । अणुजाणह निस्सीही नमो खमासमणाण इत्युक्त्वा सस्तारकोपरि उपविशति । तत्र नमस्कारत्रय भणित्वा त्रिवेल चतुःशरण च पठित्वा गाथात्रय त्रिः पठति यथा । 'अणुजाणह परमगुरू गुरुगुणरयणेहि भूसियशरीरा । बहुपडिपुन्ना पोरसि राईसथारए ठाएमि ॥ १ ॥ अणुजाणह सथार बाहुवहाणेण वामपासेण । कुक्कुडपायपसारण अतरतु पमज्जए भूमिं ॥ २ ॥ सकोडियसडासा उवट्टते य कायपडिलेहा । दव्वाईउवओग ऊसासनिरुभणा लोए ॥ ३ ॥' इति त्रि पठित्वा सकोचितपाणिर्वामबाहूपधानो वामपार्श्वेन शेते । यद्युद्वर्तना करोति तदा सस्तारक शरीर च प्रतिलेखयेत् ॥ अथ शरीरचिन्तार्थमुत्तिष्ठति तदा शरीरचिन्ता कृत्वा ऐर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य एकवेल अणुजाणह प० इत्यादिगाथात्रय पठति । पुनः शेते । सुप्तस्य चेन्निद्रा नायाति तदा शुभध्यानेन धर्मजागर्यां करोति । ततो रजन्याः पश्चिमप्रहरे उत्थाय देहचिन्तादिविधाय ऐर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य कुसुमि-

णदुस्सुमिणराईपायच्छित्त चित्तविशोधनार्थं कायोत्सर्गं करोति शक्रस्तवं च पठति । ततो मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य सामायिकदण्डकमुच्चार्य स्वाध्यायपर्यन्तं करोति । पुनः शुभध्यानेन रात्रिशेषमतिवाहयति । ततः प्रतिक्रमणवेलाया प्राभातिक प्रतिक्रमण करोति । ततः पूर्ववत्सर्वं प्राभातिक कर्म विदध्यात् । जाते पौषधपारणावसरे इच्छा० भगवन् पोसहपारणमुहपत्तिं पडिलेहेमि । मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य क्षमा० द्वयपूर्वकं भणति भगवन् पोसह पारउ भग० पोसह पारियउ । मुखवस्त्रिकापिहितवदनो भून्यस्तशीर्षः पौषधपारणगाथा' पठति यथा–'सागरचंदो कामो चंदवडिंसो सुदंसणो धन्नो । जेसिं पोसहपडिमा न खंडिया जीवियंतेवि ॥ १ ॥ जो गब्भवासभीओ तावुल्ललिओ महामुणी अभओ । उम्मुक्कमणिसुवन्नो पडिपुन्न पोसह कुणइ ॥ २ ॥ पोसहसुहे भावे असुहाइं खवेइ नत्थि संदेहो । छिंदइ नरनिरियगइं इह भणिय पोसह कुणइ ॥ ३ ॥ पोसहसामाइयसंठियस्स जीवस्स जाइ जो कालो । सो सफलो बोधव्वो सेसो संसारफलहेऊ ॥४॥ चक्कवट्टित्तमिव्व सुक्खो कालओ घिक्खिओ । एवेअ पोसहस्सेव फल धिंति महेसिणो ॥ ५ ॥' ततो नमस्कार भणित्वा सामायिकपारणमुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य पूर्ववत्सामायिकं पारयति । ततः पोषधपारणके साधुषु सत्सु नियतमतिथिसंविभागो विधेय एव । इत्याहोरात्रिकपौषधविधिः ॥ सामायिकं च द्विघट्यन्तं नमस्कारजापप्रतिक्रमणादिभिः पूरयेत् । केचित्स्थूलमतयः परमेष्ठिमन्त्रपञ्चशतीजपान्तं ब्रुवते । तदनन्तरं तत्पारयित्वा पुनः सामायिकं गृह्णीयादिति रूढिः । इत्यावश्यके सामायिकयोजना संपूर्णा ॥

ओहीथण्डिल्ले पडिलेहेमि । ततो वस्त्रकम्बलादि प्रतिलिख्य पुनः शुभध्यानेन तिष्ठति । समासायां कालवे-
लायां चतुर्विंशतिस्थण्डिलानि प्रतिलेखयति उच्चारप्रस्रवणार्थं । ततस्तद्दिवसानुसारेण सांवत्सरिक चातुर्मा-
सिक पाक्षिक वा दैवसिक वा प्रतिक्रमण करोति । तदनन्तर साधुविश्रामणां करोति । ततः स्वाध्यायेन
निशाप्रथमप्रहरमतिवाहयति । ततः शरीरचिन्तां कृत्वा ऐर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य क्ष-
मा० द्वयपूर्वं भणति भग० राईसथारए सदिसावेमि राईसथारए ठाएमि इत्युक्त्वा शक्रस्तव पठति । तत.
सस्तारक शरीर च प्रमृज्य जानूपरि सस्तारकोत्तरपट्टं मीलयित्वा भूमौ सस्थाप्य । अणुजाणह निस्सीही
नमो खमासमणाण इत्युक्त्वा सस्तारकोपरि उपविशति । तत्र नमस्कारत्रय भणित्वा त्रिवेल चतुःशरण च
पठित्वा गाथात्रय त्रिः पठति यथा । 'अणुजाणह परमगुरू गुरुगुणरयणेहि भूसियशरीरा । बहुपडिपुन्ना पो-
रसि राईसथारए ठाएमि ॥ १ ॥ अणुजाणह सथारं बाहुवहाणेण वामपासेण । कुक्कुडपायपसारण अतरतु
पमज्जए भूमिं ॥ २ ॥ सकोडियसडासा उवट्टते य कायपडिलेहा । दव्वाईअणुओग ऊसासनिरुभणा लोए
॥ ३ ॥' इति त्रि' पठित्वा सकोचितपाणिर्वामबाहूपधानो वामपार्श्वेन शेते । यद्युद्वर्तना करोति तदा सस्ता-
रक शरीर च प्रतिलेखयेत् ॥ अथ शरीरचिन्तार्थमुत्तिष्ठति तदा शरीरचिन्ता कृत्वा ऐर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य
एकवेल अणुजाणह प० इत्यादिगाथात्रय पठति । पुनः शेते । सुप्तस्य चेन्निद्रा नायाति तदा शुभध्यानेन
धर्मजागर्यां करोति । ततो रजन्याः पश्चिमप्रहरे उत्थाय देहचिन्तादिविधाय ऐर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य कुसुमि-

ततः प्रतिक्रमणमध्ये यथायुक्त्या वन्दनकानि । स्वाध्यायकरणेपि वन्दनक कायोत्सर्गे च क्षामणे आलोचने गुरूपासनायां सर्वेष्वपि उत्तमार्थेषु वन्दनकदान । एकमुखवस्त्रिकाप्रतिलेखनेन त्रिर्द्वादशावर्तवन्दनक भवति । एकवेल द्वादशावर्तवन्दनकदाने आलोचन क्षामण प्रत्याख्यान क्रमेण विदध्यात् । वन्दनकादौ सर्वत्र ऐर्यापथिकीं प्रतिक्रमेत् । इत्यावश्यके वन्दनकयोजना संपूर्णा ॥

अथ प्रतिक्रमणम् ॥ यथा । गुर्वग्रे स्थापनाचार्याग्रे वा क्षमाश्रमणपूर्वं कथयति इच्छा० भग० इरियावहियं पडिक्कमामि यावत् अप्पाणं वोसिरामि । चतुर्विंशतिस्तवचिन्तन पारयित्वा मुखेन चतुर्विंशतिस्तवन । 'चिइवंदणमि तह वंदणमि पडिक्कमणयमि सज्झाए । पडिलेहणाइ आहारसगहे तहय आलोए ॥ १ ॥ आगमपढणारंभे लोए मलमुत्तमाइ उस्सग्गे । गमणागमणे भिक्खारियाइ आलोअणाकाले ॥ २ ॥ वसई उवहिज्झाणे आरंभे लेवमाइए विहिए । कालग्गहणे सज्झायमाइपट्ठाणकालेय ॥ ३ ॥ अप्पडिलेहियमग्ग निसिसंचरणे य वीसघणुगमणे । इरियावहिया साहूहिं कासियव्वेवमाईहिं ॥ ४ ॥' इति इर्यापथिकी ॥ ॥ अथ चैत्यवन्दनवन्दनक्षामण आलोचनकायोत्सर्गप्रत्याख्यानादिभिर्मिलितैः प्रतिक्रमणयुक्तिर्भण्यते । यथा । पूर्वं प्राभातिकप्रतिक्रमण यथा । 'इरियावहिया कुसमिण काउस्सग्गो गुरूणनमण च । पडिक्कमणगयण चिय सक्कच्छय करण मह उवरिं ॥ १ ॥ सामाइयवंदयकाउस्सग्गा चउवीसथयमि उस्सग्गो । सुयथयउस्सग्गो चिय सिद्धत्थय करण मुहपत्ती ॥ २ ॥ वंदणय आलोयण सयारुच्चरण सुत्तकहणाइ । वंदणय खामण चिय

घत्वा घरकनकआर्यां पठेत् । तत' शक्रस्तव पठित्वा । अरहत चेइयाण करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थ० यावत् अप्पाण घोसिरामि । ततो नमस्कार विचिन्त्य नमो अरिहताण इति पारयित्वा नमोर्हत्सिद्धा० इति कथयित्वा प्रस्तुतजिनस्तुतिमेका पठेत् । पुनश्चतुर्विंशति भणित्वा सघलोए अरिहत० वदणवत्तियाए जाव अप्पाण० पूर्ववत् । नमस्कार विचिन्त्य नमस्कारेण पारयित्वा सर्वजिनस्तुतिभणन । तत' श्रुतस्तव पठित्वा सुअस्स भगवओ करेमि काउ० वदणव० जाव अप्पाण वो० पूर्ववच्चिन्तन श्रुतस्तुतिभणन। तत' सिद्धस्तवपठन ततो वेयावच्चगराण सतिगराण समविट्ठिसमाहिगराण करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थ ऊ० यावदप्पाण वो० पूर्ववच्चिन्तन नमस्कारेण पारयित्वा नमोर्हत्सिद्ध० पूर्वक वैयावृत्यकरस्तुतिपाठः । पुनरुपविश्य शक्रस्तवपाठः । ततश्चैत्यगाथासाधुगाथापाठ' ततो नमोर्हत्सिद्धा० कथनपूर्व प्रस्तुतजिनस्तोत्रपाठः ततः जयवीयरायगाथापठन तत आचार्योपाध्यायगुरुसाधुवन्दन । इत्युत्कृष्टचैत्यवन्दना । इत्यावश्यके शक्रस्तवचतुर्विंशतिस्तवयोजना ॥

अथ वन्दनकयोजना ॥ यथा । तत्र वन्दनक द्वादशावर्त । तदुक्त पूर्वं । 'पडिक्कमणे सज्झाए काउस्सग्गा वराहपाहुणए । आलोअणपडिसुणणे उत्तम अट्ठेय वदणय ॥ १ ॥' तत्र सामान्यवन्दनकं उत्कृष्टचैत्यवन्दना विधाय मुखवस्त्रिकां प्रतिलिख्य द्वादशावर्तवदन दद्यात् । ततः इच्छा० भगव० देवसिय आलोएमि० पुनः द्वादशावर्तवन्दनक दत्वा इच्छा० भग० देवसिय खामेमि० इति क्षामणं पुनः द्वादशावर्तवन्दन दत्वा प्रत्याख्यानोच्चार कुर्यात् । तत आचार्योपाध्यायगुरुसाधुवन्दन चैत्यवन्दनाभावेपि गुरुभक्त्यर्थं वन्दनक दत्वा ।

१

ततः प्रतिक्रमणमध्ये यथायुक्त्या वन्दनकानि। स्वाध्यायकरणेपि वन्दनक कायोत्सर्गे च क्षामणे आलोचने गुरूपासनायां सर्वेष्वपि उत्तमार्थेषु वन्दनकदान। एकमुखवस्त्रिकाप्रतिलेखनेन त्रिद्वादशावर्तवन्दनक भवति। एकवेल द्वादशावर्तवन्दनकदाने आलोचन क्षामण प्रत्याख्यान क्रमेण विदध्यात्। वन्दनकादौ सर्वत्र ऐर्यापथिकीं प्रतिक्रमेत्। इत्यावश्यके वन्दनकयोजना संपूर्णा॥

अथ प्रतिक्रमणम्॥ यथा। गुर्वग्रे स्थापनाचार्याग्रे वा क्षमाश्रमणपूर्वं कथयति इच्छा० भग० इरियावहिय पडिक्कमामि यावत् अप्पाण वोसिरामि। चतुर्विंशतिस्तवचिन्तन पारयित्वा मुखेन चतुर्विंशतिस्तवन। 'चिइवंदणमि तह वंदणमि पडिक्कमणयमि सज्झाए। पडिलेहणाइ आहारसगहे तहय आलोए॥ १॥ आगमपढणारंभे लोए मलमुत्तमाइ उस्सग्गे। गमणागमणे भिक्खारियाइ आलोअणाकाले॥ २॥ वसई उवहिज्झाणे आरंभे लेवमाइए विहिए। कालग्गहणे सज्झायमाइपट्ठाणकालेय॥ ३॥ अप्पडिलेहियमग्ग निसिसचरणे य वीसवणुगमणे। इरियावहिया साहूहिं फासियव्वमाईहिं॥ ४॥' इति ईर्यापथिकी॥ ॥ अथ चैत्यवन्दनवन्दनक्षामण आलोचनकायोत्सर्गप्रत्याख्यानादिभिर्मिलितैः प्रतिक्रमणयुक्तिर्भण्यते। यथा। पूर्वं प्राभातिकप्रतिक्रमण यथा। 'इरियावहिया कुसमिण काउस्सग्गो गुरूणनमण च। पडिक्कमणगयण चिय सक्कच्छय कहण मह उवरिं॥ १॥ सामाइयतडयकाउस्सग्गा चउवीसथयमि उस्सग्गो। सुयथयउस्सग्गो विय सिद्धत्थय कहण मुहपत्ती॥ २॥ वंदणय आलोयण सधारुवरण सुत्तकहणाइ। वंदणय खामण चिय

कत्वा वरकनकआर्यां पठेत् । ततः शक्रस्तव पठित्वा । अरहत चेइयाण करेमि काउस्सग्गं अन्नत्थ० यावत् अप्पाण वोसिरामि । ततो नमस्कार विचिन्त्य नमो अरिहताण इति पारयित्वा नमोर्हत्सिद्धा० इति कथयित्वा प्रस्तुतजिनस्तुतिमेकां पठेत् । पुनश्चतुर्विंशति भणित्वा सवलोए अरिहत० वदणवत्तियाए जाव अप्पाण० पूर्ववत् । नमस्कार विचिन्त्य नमस्कारेण पारयित्वा सर्वजिनस्तुतिभणन । ततः श्रुतस्तव पठित्वा सुअस्स भगवओ करेमि काउ० वदणव० जाव अप्पाण वो० पूर्ववचिन्तन श्रुतस्तुतिभणन। तत सिद्धस्तवपठन ततो वेयावच्चगराण सतिगराण समदिट्ठिसमाहिगराण करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थ ऊ० यावदप्पाण वो० पूर्ववचिन्तन नमस्कारेण पारयित्वा नमोर्हत्सिद्ध० पूर्वक वैयावृत्यकरस्तुतिपाठः । पुनरुपविश्य शक्रस्तवपाठः । ततश्चैत्यगाथासाधुगाथापाठः ततो नमोर्हत्सिद्धा० कथनपूर्वं प्रस्तुतजिनस्तोत्रपाठः ततः जयवीयरायगाथापठन तत आचार्योपाध्यायगुरुसाधुवन्दन । इत्युत्कृष्टचैत्यवन्दना । इत्यावश्यके शक्रस्तवचतुर्विंशतिस्तवयोजना ॥

अथ वन्दनकयोजना ॥ यथा । तत्र वन्दनक द्वादशावर्तं । तदुक्त पूर्वं । 'पडिक्कमणे सज्झाए काउस्सग्गावराहपाहुणए । आलोअणपडिसुणणे उत्तम अट्ठेय वदणय ॥ १ ॥' तत्र सामान्यवन्दनक उत्कृष्टचैत्यवन्दनां विधाय मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य द्वादशावर्तवदनं दद्यात् । ततः इच्छा० भगव० देवसिय आलोएमि० पुन' द्वादशावर्तवन्दनक दत्वा इच्छा० भग० देवसिय खामेमि० इति क्षामण पुनः द्वादशावर्तवन्दनं दत्वा प्रत्याख्यानोच्चार कुर्यात् । तत आचार्योपाध्यायगुरुसाधुवन्दन चैत्यवन्दनाभावेपि गुरुभक्त्यर्थ वन्दनकं दत्वा ।

तत. प्रतिक्रमणमध्ये यथायुक्त्या वन्दनकानि । स्वाध्यायकरणेपि वन्दनक कायोत्सर्गे च क्षामणे आलोचने गुरूपासनाया सर्वदयपि उत्तमार्थेपु वन्दनकदान । एकमुखवस्त्रिकाप्रतिलेखनेन त्रिद्वादशावर्तवन्दनक भ-घति । एकवेल द्वादशावर्तवन्दनकदाने आलोचन क्षामण प्रत्याख्यान क्रमेण विदध्यात् । वन्दनकादौ सर्वत्र ऐर्यापथिकीं प्रतिक्रमेत् । इत्यावश्यके वन्दनकयोजना संपूर्णा ॥

अथ प्रतिक्रमणम् ॥ यथा । गुर्वग्रे स्थापनाचार्याग्रे वा क्षमाश्रमणपूर्वं कथयति इच्छा० भग० इरियावहिय पडिक्कमामि यावत् अप्पाण वोसिरामि । चतुर्विंशतिस्तवचिन्तन पारयित्वा मुखेन चतुर्विंशतिस्तवन । 'चि-इयवंदणमि तह वदणमि पडिक्कमणयमि सज्झाए । पडिलेहणाइं आहारसगहे तहय आलोए ॥ १ ॥ आगम-पढणारंभे लोए मलमुत्तमाइ उस्सग्गे । गमणागमणे भिक्खारियाइ आलोअणाकाले ॥ २ ॥ वसई उवहि-ठाणे आरभे लेवमाइए विहिए । कालग्गहणे सज्झायमाइपट्ठाणकालेय ॥ ३ ॥ अप्पडिलेहियमग्ग निसि-तचरणे य वीसवणुगमणे । इरियावहिया साहूर्हि फासियवेवमाईर्हि ॥ ४ ॥' इति इर्यापथिकी ॥ ॥ अथ चैत्यवन्दनवन्दनक्षामण आलोचनकायोत्सर्गप्रत्याख्यानादिभिर्मिलितैः प्रतिक्रमणयुक्तिर्भण्यते । यथा । पूर्वे प्राभातिकप्रतिक्रमणं यथा । 'इरियावहिया कुसमिण काउस्सग्गो गुरूणनमण च । पडिक्कमणगयण चिय झयाच्छय फएण मए उवरिं ॥ १ ॥ सामाइयदडयकाउस्सग्गा चउवीसथयमि उस्सग्गो । सुयथयउस्सग्गो चेय सिद्धत्थय फएण मुहपत्ती ॥ २ ॥ वदणय आलोयण सथारुघरण सुत्तकहणाइ । वंदणय खामण चिय

पडिलेहण संदिसावेमि पडि० करेमि इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिकां प्रतिलेखयेत्। अत्र—'मुहपत्ति चोलपट्टो कप्प-तिग तइय चेव रयहरण। संथारुत्तरपट्टो दसपोत्ती उग्गए सूरे ॥ १ ॥ चउवेल पडिलेहण अंगोवहिवसहि इरियसज्झाय। उपओगकाउसग्गो मुनिगुरुवयणं च गुरुनमण ॥ २ ॥' ततो मुखवस्त्रिकाप्रतिलेखनानन्तर क्षमा० द्वयपूर्वकं वदेत् भग० अगपडिलेहण संदि० अगप० करेमि। ततः स्थापनाचार्यं चोलपट्ट कल्पत्रय रजोहरण प्रतिलेखयेत्। एतेषां प्रतिलेखन साधुप्रतिलेखनाचेष्टितादवसेय। ततः क्षमाश्रमण दत्त्वा इच्छा० भगव० उपधिमुहपत्तिं पडिलेहेमि। ततः क्षमा० द्वयपूर्वक कथयेत् इच्छा० भग० उपधि संदिसावउ उपधि पडिलेहउ इत्युक्त्वा संस्तारकोत्तरच्छदादिप्रतिलेखयेत्। क्षमा० द्वयपूर्वं भणति भग० वसति संदिसावउँ वसति पडिलेखउ इत्युक्त्वा वसतिमात्रकप्रभृति दण्डप्रोञ्छनेन मार्जयेत्। तत ऐर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य गुर्वग्रे क्षमा० द्वयपूर्वं वदेत् इच्छा० भग० सज्झाय संदिसावेमि। नमस्कार पठित्वा दशवैकालिकादिमाध्ययनद्वय एकमध्ययनं वा। अथवा जयइ जगजी० गाथापञ्चविंशतिं गाथापञ्चकं वा उपविष्ट पठेत्। ततः क्षमा० पूर्वं भणति भग० उपयोग करेमि उपयोगस्स करावणत्थ करेमि काउस्सग्ग० अन्नत्थ० यावत् अप्पाण वोसि० कायोत्सर्गः नमस्कारचिन्तनं पारयित्वा नमस्कारभणन ततः इच्छाकारेण संदिसह साधुभिरित्युक्ते गुरुः कथयति लाभु। पुनः साधवः कथयन्ति भग० कहलेसह गुरु० जह गहिय पुव्वसाहूहिं। पुनः साधु कथयति इच्छ आवस्सियाए जस्स विजुग्गंति। ततः क्रमेण साधुवन्दन ततो धर्मव्याख्यान पठनपाठनकर्म साधवः

कुर्वन्ति । सम्प्राप्ते पादोनप्रहरे पुनः प्रतिलेखना तस्याः कालसूचनं यथा सर्वत्र प्राग्वत् विशेषस्तूच्यते । पुरुष. प्रमाणमस्याः सा पौरुषी छाया । कथं कर्कसङ्क्रान्तेः पूर्वाह्णे अपराह्णे वा यदा शरीरप्रमाणा छाया भवति तदा सर्वदिनेषु पौरुषी यथा । पुरुषस्योर्ध्वस्य दक्षिणकर्णनिवेशितार्कबिम्बस्य दक्षिणायनाद्यदिने । यदा तु छाया द्विपदी भवति तदा पौरुषी यथा । 'आसाढे मासे दुपया पोसे मासे चउप्पया चित्ता । सोएसु मासेसु तिपया हवइ पोरसी ॥ १ ॥' हानिवृद्धित्वे एव । अंगुलं सत्तरत्तेण पक्खेण तु दुरंगुलं । वड्ढए हायए वावि मासेण चतुरंगुलं ॥ २ ॥ साद्धपयणेणमित्यत्र पादोनप्रहरेणाप्यविकारोऽतस्तत्र पौरुषीछायोपरि प्रक्षेप । 'जिट्ठामूले आसाढसावणे छहिं अंगुलेहिं पडिलेहा । अट्ठाहिं बीयतयमी तइए दस अट्ठहिं चउत्थे ॥ १ ॥' सार्धपौरुषत्वे एव । 'पोसे तणुछायाए नवहिं एयाहिं तु पोरसी सड्ढा । ताविक्किक्काहाणी जावा साढे पया तिन्नि ॥ १ ॥' पूर्वार्धे अग्रे वक्ष्यमाणोपि प्रमाणविशेषप्रस्तावादेव विज्ञेय । 'पोसेचि हत्थछाया बारस अंगुलपमाण पुरिमड्ढे । मासि दुअंगुलहाणी आसाढे निट्ठिआ सव्वा ॥ १ ॥' सुखावबोधार्थं स्थापना चैषा । द्वादशार्धयन्त्रकन्यासः ॥ तदनन्तर क्षमा० पूर्वं साधवः कथयन्ति । भयव बहुपडिपुन्नापोरसी साहुचो उय जहा होइ । इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिका प्रतिलेख्य सर्वं मृण्मारिफेलकाष्ठालाबुमय पात्रनिचय प्रतिलेखयेत् । ततश्चैत्य परिपाटीप्रभृतिकर्म विधाय ऐर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य पारणा मुखवस्त्रिका प्रतिलेखयेत् । तत इति कथयेत् ।

१ अस्याकृतिरस्मिन्ग्रन्थेऽन्यत्र पोचितास्ति ।

पडिलेहण संदिसावेमि पडि० करेमि इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिकां प्रतिलेखयेत्। अत्र—'मुहपत्ति चोलपट्टो कप्प-तिग तइय चेव रयहरण। संथारुत्तरपट्टो दसपोहा उग्गए सूरे ॥ १ ॥ बहुवेल पडिलेहण अंगोवहिवसहि इरियसज्झाय। उपओगकाउस्सग्गो मुनिगुरुवयण च गुरुनमण ॥ २ ॥' ततो मुखवस्त्रिकाप्रतिलेखनानन्तर क्षमा० द्वयपूर्वक वदेत् भग० अगपडिलेहण संदि० अंगप० करेमि। ततः स्थापनाचार्यं चोलपट्ट कल्पत्रय रजोहरण प्रतिलेखयेत्। एतेषां प्रतिलेखन साधुप्रतिलेखनाचेष्टितावद्धसेय। ततः क्षमाश्रमण दत्वा इच्छा० भगव० उपधिमुहपत्ति पडिलेहेमि। ततः क्षमा० द्वयपूर्वक कथयेत् इच्छा० भग० उपधि संदिसावउ उपधि पडिलेहउ इत्युक्त्वा संस्तारकोत्तरच्छदादिप्रतिलेखयेत्। क्षमा० द्वयपूर्व भणति भग० वसति संदिसावउँ वसति पडिलेखउ इत्युक्त्वा वसतिमात्रकप्रभृति दण्डप्रोञ्छनेन मार्जयेत्। तत ऐर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य गुर्वग्रे क्षमा० द्वयपूर्वं वदेत् इच्छा० भग० सज्झाय संदिसावेमि। नमस्कार पठित्वा दशवैकालिकादिमाध्ययनद्वय एकमध्ययनं वा। अथवा जयइ जगजी० गाथापचविंशति गाथापञ्चक वा उपविष्टः पठेत्। तत. क्षमा० पूर्वं भणति भग० उपयोग करेमि उपयोगस्स करावणत्थ करेमि काउस्सग्गं० अन्नत्थ० यावत् अप्पाण वोसि० कायोत्सर्गः नमस्कारचिन्तन पारयित्वा नमस्कारभणन ततः इच्छाकारेण संदिसह साधुभिरित्युक्ते गुरु कथयति लाभ। पुनः साधवः कथयन्ति भग० कहलेसह गुरु० जह गहिय पुव्वसाहूहिं। पुन' साधु' कथयति इच्छ आवस्सियाए जस्स विजुग्गत्ति। ततः क्रमेण साधुवन्दन ततो धर्मव्याख्यान पठनपाठनकर्म साधव.

कुर्वन्ति । समासे पादोनप्रहरे पुनः प्रतिलेखना तस्याः कालसूचन यथा सर्वत्र प्राग्वत् विशेषस्तूच्यते । पुरुष प्रमाणमस्याः सा पौरुषी छाया । कथं कर्कसङ्क्रान्तेः पूर्वाह्णे अपराह्णे वा यदा शरीरप्रमाणा छाया भवति तदा सर्वदिनेषु पौरुषी यथा । पुरुषस्योर्ध्वस्य दक्षिणकर्णनिवेशितार्कबिम्बस्य दक्षिणायनाद्यदिने । यदा तु छाया द्विपदी भवति तदा पौरुषी यथा । 'आसाढे मासे दुपया पोसे मासे चउप्पया चित्ता । सोएसु मासेसु तिपया हवइ पोरसी ॥ १ ॥' हानिवृद्धिस्त्वे एव । अंगुलं सत्तरत्तेण पक्खेण तु दुरंगुलं । वड्डए हावए वावि मासेण चतुरंगुलं ॥ २ ॥ साहुवयणेणमित्यत्र पादोनप्रहरेणाप्यधिकारोऽतस्तत्र पौरुषीछायोपरि प्रक्षेप्य । 'जिट्ठामूले आसाढसावणे छहिं अंगुलेहिं पडिलेहा । अट्ठाहिं बीयतयमी तइए दस अट्ठहिं चउत्थे ॥ १ ॥' सार्धपौरुषत्वे एव । 'पोसे तणुछायाए नवहिं एएहिं तु पोरसी सड्ढा । तावितिकिआहाणी जावा साढे पया तित्ति ॥ १ ॥' पूर्वार्धे अग्रे वक्ष्यमाणोपि प्रमाणविशेषप्रस्तावादेव विज्ञेय । 'पोसेवि हत्यछाया वारस अंगुलपमाण पुरिमड्ढे । मासि दुअंगुलहाणी आसाढे निट्ठिआ सधा ॥ १ ॥' सुखावबोधार्थं स्थापना चैषा । द्वादशारयन्त्रकन्यासः ॥ तदनन्तरं क्षमा० पूर्वं साधवः कथयन्ति । भयव बहुपडिपुन्नापोरसी साहवो उय जह्ना हि । इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिका प्रतिलेख्य सर्वं मृन्नारिकेलकाष्ठालाबुमय पात्रनिचय प्रतिलेखयेत् । ततश्चैत्यपरिपाटीप्रभृतिकर्म विधाय ऐर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य पारणा मुखवस्त्रिका प्रतिलेखयेत् । तत इति कथयेत् ।

१ भस्याङ्कविरक्तिन्नपेऽन्यत्र योमितास्ति ।

घता वैरोट्यामभृतीनां कायोत्सर्गस्तुतयः। ततो नमस्कारपूर्वं मुखवस्त्रिकाप्रतिलेखन वन्दनक। तत इच्छामो-
णुसट्ठिय नमोर्हत्सिद्धा० पूर्वकं। 'नमोस्तु वर्धमानाय स्पर्धमानाय कर्मणा। तज्जयावाप्तमोक्षाय परोक्षाय कुती-
र्थिना ॥ १॥ येषां विकचारविन्दराज्याज्यायः क्रमकमलावलिं दधत्या। सदृशैरिति सगत प्रशस्य कथित सन्तु
शिवाय ते जिनेन्द्राः ॥ २ ॥ कषायतापार्दितजन्तुनिर्वृतिं करोतु यो जैनमुखाम्बुदोद्गतः। स शुक्रमासो-
द्भववृष्टिसंनिभो दधातु तुष्टिं मयि विस्तरो गिरां ॥ ३ ॥' इति स्तुतित्रयपाठः। शक्रस्तवपाठः। स्तोत्रकथन
आचार्योपाध्यायगुरुसाधुनमन दैवसिकप्रायश्चित्तविशोधनाकायोत्सर्गः चतु० चतुष्टयचिन्तन चतु० भणन
क्षमा० द्वयपूर्वं भणति भग० सज्झाय संदिसावेमि सज्झायं करेमि इत्युक्त्वा नमस्कारत्रयपाठः। ततः
क्षुद्रोपद्रवोपशमनार्थं कायोत्सर्गः चतुष्टयचिन्तन मुखेन चतु० भणन०। ततः प्रव्रज्याविधानपाठः। इति
दैवसिकप्रतिक्रमणविधिः ॥

अथ पाक्षिके तु। 'मुहपत्ती वंदणयं संबुद्धाखामणं तहा लोए। वंदणपत्तेयं खामणाणि वंदणय सुत्तं च
॥ १ ॥ सुत्तं अब्भुट्ठाणं उस्सग्गो पुत्तिवंदण तहेय। पज्जंतिय खामणयं तह चउरो त्थोभवंदणय ॥ २ ॥' प्रति-
क्रमणसूत्रकथन यावत् दैवसिकप्रतिक्रमणवत्। ततः क्षमा० पूर्वक इति वदेत् भग० पक्खियमुहपत्तिय प
डिलेहेमि इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिका प्रतिलेखयेत्। ततो वन्दनक। ततः इच्छा० भग० संबुद्धाखामणेण अब्भुट्ठि-
ओमि अब्भिंतरपक्खियं खामेमि। इत्थ खामेमि पक्खियं जं किंचि अपत्तियं पर० इत्यादि यावत् तस्स

मिच्छामि दुक्कडं। तत ऊर्ध्वीभूय भग० पक्खिअ आलोएमि इत्थं आलोएमि पक्खियं जो मे० इत्यादि। तदनन्तर गुरुः कथयति चउत्थेण पडिक्कमह इच्छाकारि जीणिआलोयउ तेहरिहि एकउपवास लेखइ तपश्चरणु एकु उपवासु। अथवा यिआयिल अथवा ३ निवी अथवा ४ एकासणा अथवा २ सहस्र सज्झायए तलइ तपश्चरणि करी। यथाशक्ति पक्षदिवसमाहिं प्रवेश करिज्जउ। पुनर्वन्दनक। तत ऊर्ध्वीभूय इति वदेत् देवसिय आलोइय वइक्कत प्रत्येकखामणेणं अब्भुट्ठिओमि अब्भितरपक्खियं खामेमि इत्युक्त्वा पूर्वं गुरुः स्थापनाचार्यं क्षामयति इच्छा० भग० पक्खिय खामेमि इत्थ खामेमि पक्खिय ज किंचि इति दण्डकमुक्त्वा पुनः क्षमा० पूर्वं भग० सुखतपु। पुनः क्षमाश्रमणेन भग० सुखपाक्षिकु। पुनः क्षमाश्रमणेन भग० पक्षदिवसमाहि अभक्तिआसातना मनवचनकायखण्डनाविराधना कीधी हुइए तस्स०। ततः शिष्याः गुरुं ज्येष्ठादिअनुक्रमेण क्षमयन्ति। शिष्यो यदा भणति भग० पक्खिय खामेमि तदा गुरुः क० अहमवि खामेमि तुम्भे। शिष्यः क्षामणदण्डक कथयति तदा गुरुः क० ज किंचि अपत्तिय परपत्तिय अविणया सारिया वारिया चोइया पडिचोइया तस्स०। यदा शिष्यः क्षमा० पूर्वं सुखत० पाक्षिकइतिक० तदा गुरुः क० देवगुरुप्रसादेन। यदा शिष्य. क्षमाश्रमणेन भग० पक्षदिवसमाहि अभक्तिआसातना इत्यादिक० तदा गुरुः क० पक्षदिवसमाहि अमस्यउअ समाधान उपजाव्यउ तस्स०। एव ज्येष्ठकनिष्ठानुक्रमेण यतिश्राद्धाना क्षमितिक्षामणा। ततो गुरुः कथयति इच्छाकारेण चउरासीलक्खजीवयोनिमध्ये पृथ्वीकायअप्कायतेजस्कायवायुकायवनस्प-

चता वैरोट्याप्रभृतीनां कायोत्सर्गस्तुतयः। ततो नमस्कारपूर्वं मुखवस्त्रिकाप्रतिलेखन वंदनक। तत इच्छामो-
णुसट्ठिय नमोर्हत्सिद्धा० पूर्वकं। 'नमोस्तु वर्धमानाय स्पर्धमानाय कर्मणा। तज्जयावाप्तमोक्षाय परोक्षाय कुती-
र्थिनां ॥ १॥ येषा विकचारविन्दराज्याज्याय' क्रमकमलावलिं दधत्या। सदृशैरिति सगत प्रशस्य कथित सन्तु
शिवाय ते जिनेन्द्राः ॥ २॥ कषायतापार्जितजन्तुनिर्वृतिं करोतु यो जैनमुखाम्बुदोद्गतः। स शुक्रमासो-
द्भवदृष्टिसन्निभो दधातु तुष्टिं मयि विस्तरो गिरां ॥ ३॥' इति स्तुतित्रयपाठः। शक्रस्तवपाठः। स्तोत्रकथन
आचार्योपाध्यायगुरुसाधुनमन दैवसिकप्रायश्चित्तविशोधनाकायोत्सर्गः चतु० चतुष्टयचिन्तन चतु० भणन
क्षमा० द्वयपूर्वं भणति भग० सज्झाय संदिसावेमि सज्झायं करेमि इत्युक्त्वा नमस्कारत्रयपाठः। ततः
क्षुद्रोपद्रवोपशमनार्थं कायोत्सर्गः चतुष्टयचिन्तन मुखेन चतु० भणन०। ततः प्रव्रज्याविधानपाठः। इति
दैवसिकप्रतिक्रमणविधिः॥

अथ पाक्षिके तु। 'मुहपत्ती वंदणय संबुद्धाखामणं तहा लोए। वंदणपत्तेय खामणाणि वंदणय सुत्त च
॥ १॥ सुत्त अब्भुट्ठाण उस्सग्गो पुत्तिवंदण तहय। पज्जतिय खामणय तह चउरो त्थोभवंदणय ॥ २॥' प्रति-
क्रमणसूत्रकथन यावत् दैवसिकप्रतिक्रमणवत्। ततः क्षमा० पूर्वक इति वदेत् भग० पक्खियमुहपत्तिय प
डिलेहेमि इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिकां प्रतिलेखयेत्। ततो वंदनक। ततः इच्छा० भग० संबुद्धाखामणेण अब्भुट्ठि-
ओमि अब्भिंतरपक्खियं खामेमि। इच्छं खामेमि पक्खिय जं किंचि अपत्तिय पर० इत्यादि यावत् तस्स

मिच्छामि दुक्कड । तत ऊर्ध्वीभूय भग० पक्खिअ आलोएमि इत्थ आलोएमि पक्खियं जो मे० इत्यादि ।
तदनन्तर गुरुः कथयति चउत्थेण पडिक्कमह इच्छाकारि जीणिआलोयउ तेहरिहि एकउपवास लेखइ तपश्चरणु
एकु उपवासु । अथवा बिआबिल अथवा ३ निवी अथवा ४ एकासणा अथवा २ सहस्र सज्झायए तलइ
तपश्चरणि करी । यथाशक्ति पक्षदिवसमाहिं प्रवेश करिज्जउ । पुनर्वन्दनक । तत ऊर्ध्वीभूय इति वदेत् देव-
सिय आलोइय पडिक्कत प्रत्येकखामणेण अब्भुट्ठिओमि अब्भिंतरपक्खिअय खामेमि इत्युक्त्वा पूर्वं गुरुः स्था-
पनाचार्यं क्षामयति इच्छा० भग० पक्खिय खामेमि इत्थ खामेमि पक्खिय ज किंचि इति दण्डकमुक्त्वा
पुनः क्षमा० पूर्वं भग० सुखतपु । पुनः क्षमाश्रमणेन भग० सुखपाक्षिकु । पुन. क्षमाश्रमणेन भग० पक्षदि-
वसमाहि अभक्तिआसातना मनवचनकायखण्डनाविराधना कीधी हुइए तस्स० । ततः शिष्याः गुरुं ज्ये-
ष्ठादिअनुक्रमेण क्षमयन्ति । शिष्यो यदा भणति भग० पक्खिय खामेमि तदा गुरुः क० अहमवि खामेमि
तुब्भे । शिष्य क्षामणदण्डक कथयति तदा गुरुः क० ज किंचि अपत्तिय परपत्तिय अविणया सारिया वारिया
चोइया पडिचोइया तस्स० । यदा शिष्यः क्षमा० पूर्व सुखत० पाक्षिकइतिक० तदा गुरुः क० देवगुरुप्रसादेन ।
यदा शिष्य क्षमाश्रमणेन भग० पक्षदिवसमाहि अभक्तिआसातना इत्यादिक० तदा गुरुः क० पक्षदिव-
समाहि श्रमलउश तसाधान उपजाव्यउ तस्स० । एव ज्येष्ठकनिष्ठानुक्रमेण यतिश्राद्धाना क्षमितिक्षामणा ।
ततो गुरुः कथयति इच्छाकारेण चउरासीलक्खजीवयोनिमध्ये पृथ्वीकायअप्कायतेजस्कायवायुकायवनस्प-

प्रथमे यामे साधु' कथयति भग० बहुपडिपुन्ना पोरसी राइसंथारए ठामि । मुखवस्त्रिकां प्रतिलिख्य शक्रस्तव पठेत् । मध्यरीत्या चैत्यवन्दनक ॥ ॥ श्राद्धानां च्यग्रत्वे कदाचित्र प्रतिक्रमणसामग्री भवति तदा प्रभातसन्ध्ययोः श्राद्धा' ऐर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य उत्कृष्टचैत्यवन्दनेन देववन्दन विधाय गुरोरग्रे मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य वन्दनमालोचनं प्रत्याख्यान कुर्वन्ति ज्ञानपूजारात्रिकमङ्गलप्रदीपान्ते श्रुतकायोत्सर्गं यथा । तमतिमिरपडलविद्धंसणस्स इत्यादिश्रुतस्तव पठित्वा पूर्ववत् श्रुतकायोत्सर्ग' नमस्कार स्तुत्वा पारयित्वा श्रुतस्तुतिकथन । ततः 'निव्वुइपसासणयं जयइ सया सव्वभावदेसणयं । कुसमयमयनासणयं जिणदवरवीरसासणयं ॥ १ ॥' इत्यावश्यकोक्तप्रतिक्रमणयोजना ॥ ॥ अथ कायोत्सर्गयोजना । तत्र कायोत्सर्ग' जिनचैत्यश्रुततीर्थज्ञानदर्शनचारित्रसमस्तपूजाराधनार्थं क्रियमाणः कायोत्सर्गः वंदणवत्तिया इत्यादिपूर्वकं करणीयः । प्रायश्चित्तविशोधनार्थं उपद्रवनिवारणार्थं श्रुतदेवताराधनार्थं समस्तचतुर्णिकायदेवताराधनार्थं वंदणवत्तियाए इत्यादि न करणीय किंतु अन्नत्थ० इत्याद्येव वाच्य । तथाच ऐर्यापथिकी कायोत्सर्गः सर्वत्रापि एकचतुर्विंशतिस्तवमय' प्रायश्चित्तविशोधनार्थं क्षुद्रोपद्रवोपशमनार्थं चतुर्णिकायदेवताराधनार्थं इष्टार्हत्प्रणमनार्थं कायोत्सर्गास्ते चतुर्मतु० मयाः कायोत्सर्गे चतु० चिन्तन । चन्दे सुनिम्मलयरा इतिपर्यन्त ये च उत्कृष्टदेववन्दने श्रुतदेवताद्याराधने सत्युत्तराः कायोत्सर्गाः ये च स्वाध्यायोपगतास्ते सर्वे एकनमस्कारचिन्तनरूपा. प्रतिक्रमणमध्यगताः कायोत्सर्गास्तत्रैव निवेदिताः । अन्ये च ये अभिग्रहैः साधुभिः कायोत्सर्गाः क्रियन्ते स्वमनीषितचतु०

एकचतु० नमस्काराभिग्रहचिन्तनरूपाः । तथा सम्यक्त्वारोपणनन्दीयोगोद्वहनोद्देशादिषु ये कायोत्सर्गास्ते
चिन्तनरूपाः । इत्यावश्यके कायोत्सर्गयोजना ॥ ॥ अथ प्रत्याख्यान । तत्र दशविधप्रत्याख्यानानि । उग्गए
सूरे नवकारसहिय पच्चक्खाहि चउव्विहंपि आहार असण पाण खाइम साइम अन्नत्थणाभोगेण सहसागा-
रेण विगइसेसिआओ पच्चक्खाहि अन्न० सह० लेवालेवेण गिहत्थसंसट्ठेण उक्खित्तविवेगेण पडुचमक्खेण
पारिट्ठावणियागारेण महत्तरागारेण सव्वसमाहिवत्तियागारेण बिआसण पच्चक्खा० दुविहंपि आहार असण
खाइम अन्नत्थ० सह० सागारियागारेण आउंटणपसारणेण गुरुअब्भुट्ठाणेण पारि० मह० सव्व० द्रव्यसचि-
त्तदेसावगासिय भोग परिभोग पच्च० अन्न० सह० मह० सव्व० वोसिरइ २ पोरसिय पच्च० उग्गए सूरे चउ०
अ० पा० खा० सा० अन्न० सह० पच्छन्नकालेण दिसामोहेण साहुवयणेण सव्व० विगइसेसियाउ पच्च० अ-
न्न० सह० लेवा० गिहत्थ० उक्खि० पडुचमक्खिएण पारि० मह० सव्वसमा० एकासण पच्च० त्रिविहंपि आ-
हार असण खाइम साइम अन्नत्थ० सह० सागा० आउ० गुरु० पारि० मह० सव्व० द्रव्यसचित्तदेसावगा-
सिय भोगपरिभोग पच्चक्खाहि अन्न० सह० मह० सव्व० वोसिरामि ४ साढपोरसहिय पच्च० उग्गए सूरे
चउ० असण ४ अन्नत्थ० सह० पच्छ० दिसा० साहु० सव्व० निव्विगइय पच्च० अ० सहसा० लेवा० गिहत्थ०
उक्खित्त० पडु० पारि० मह० सव्व० एकासण पच्च० त्रिविह० अ० खा० सा० अन्न० सह० सागा० आउ०
गुरु० पारि० मह० सव्व० द्रव्यसचित्तनियमु० देसा० भोग० अन्न० सह० मह० सव्व० वोसिरइ ६ सूरेउग्गे

प्रथमे यामे साधुः कथयति भग० बहुपडिपुन्ना पोरसी राइसंथारए ठामि । मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य शक्रस्तव
पठेत् । मध्यरीत्या चैत्यवन्दनक ॥ ॥ आद्धाना च्यग्रत्वे कदाचिन्न प्रतिक्रमणसामग्री भवति तदा प्रभातस-
व्ययोः श्राद्धाः ऐर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य उत्कृष्टचैत्यवन्दनेन देववन्दन विधाय गुरोरग्रे मुखवस्त्रिकां प्रतिलिख्य
वन्दनमालोचनं प्रत्याख्यान कुर्वन्ति ज्ञानपूजारात्रिकमङ्गलप्रदीपान्ते श्रुतकायोत्सर्गं यथा । तमतिमिरपडल-
विद्धंसणस्स इत्यादिश्रुतस्तव पठित्वा पूर्ववत् श्रुतकायोत्सर्गः नमस्कार स्मृत्वा पारयित्वा श्रुतस्तुतिकथन ।
ततः 'निव्वुइपसासणय जयइ सया सव्वभावदेसणय । कुसमयमयनासणय जिणवरवीरसासणय ॥ १ ॥'
इत्यावश्यकोक्तप्रतिक्रमणयोजना ॥ ॥ अथ कायोत्सर्गयोजना । तत्र कायोत्सर्गं जिनचैत्यश्रुततीर्थज्ञान-
दर्शनचारित्रसमस्तपूजाराधनार्थं क्रियमाणः कायोत्सर्गं वंदणवत्तिया इत्यादिपूर्वकं करणीयः । प्रायश्चित्तवि-
शोधनार्थं उपद्रवनिवारणार्थं श्रुतदेवताराधनार्थं समस्तचतुर्णिकायदेवताराधनार्थं वंदणवत्तियाए इत्यादि न
करणीय किंतु अन्नत्थ० इत्याद्येव वाच्य । तथाच ऐर्यापथिकी कायोत्सर्गं सर्वत्रापि एकचतुर्विंशतिस्तवमयः
प्रायश्चित्तविशोधनार्थं क्षुद्रोपद्रवोपशमनार्थं चतुर्णिकायदेवताराधनार्थं इष्टार्हत्प्रणमनार्थं कायोत्सर्गास्ते चतु-
र्गतु० मयाः कायोत्सर्गे चतु० चिन्तन । चन्दे सुनिम्मलयरा इतिपर्यन्त ये च उत्कृष्टदेववन्दने श्रुतदेवता-
राधने सत्युत्तराः कायोत्सर्गा ये च स्वाध्यायोपगतास्ते सर्वे एकनमस्कारचिन्तनरूपाः प्रतिक्रमणमध्य
गताः कायोत्सर्गास्तत्रैव निवेदिताः । अन्ये च ये अभिग्रहैः साधुभिः कायोत्सर्गाः क्रियन्ते स्वमनीषितचतु०

नमस्काराभिग्रहचिन्तनरूपाः । तथा सम्यक्त्वारोपणनन्दीयोगोद्वहनोद्देशादिषु ये कायोत्सर्गास्ते एकचतु०
चिन्तनरूपाः । इत्यावश्यके कायोत्सर्गयोजना ॥ ॥ अथ प्रत्याख्यान । तत्र दशविधप्रत्याख्यानानि । उग्गए
सूरे नवकारसहिय पच्चक्खाहि चउव्विहंपि आहार असण पाण खाइम साइम अन्नत्थणाभोगेण सहसागा-
रेण विगइसेसिआओ पच्चक्खाहि अन्न० सह० लेवालेवेण गिहत्थससट्ठेण उक्खित्तविवेगेण पडुच्चमक्खेण
पारिट्ठावणियागारेण महत्तरागारेण सव्वसमाहिवत्तियागारेण बिआसण पच्चक्खा० दुविहंपि आहार असण
खाइम अन्नत्थ० सह० सागारियागारेण आउट्टणपसारणेण गुरुअब्भुट्ठाणेण पारि० मह० सव्व० द्रव्यसचि-
त्तदेसावगासिय भोग परिभोग पच्च० अन्न० सह० मह० सव्व० वोसिरइ २ पोरसिय पच्च० उग्गए सूरे चउ०
अ० पा० खा० सा० अन्न० सह० पच्छन्नकालेण दिसामोहेण साहुवयणेण सव्व० विगइसेसियाउ पच्च० अ-
न्न० सह० लेवा० गिहत्थ० उक्खि० पडुच्चमक्खिएण पारि० मह० सव्वसमा० एकासण पच्च० त्रिविहंपि आ-
हार असण खाइम साइम अन्नत्थ० सह० सागा० आउ० गुरु० पारि० मह० सव्व० द्रव्यसचित्तदेसावगा-
सिय भोगपरिभोग पच्चक्खाहि अन्न० सह० मह० सव्व० वोसिरामि ४ साढपोरसहिय पच्च० उग्गए सूरे
चउ० असण ४ अन्नत्थ० सह० पच्छ० दिसा० साहु० सव्व० निव्विगइय पच्च० अ० सहसा० लेवा० गिहत्थ०
उक्खित्त० पडु० पारि० मह० सव्व० एकासण पच्च० त्रिविहं० अ० खा० सा० अन्न० सह० सागा० आउ०
गुरु० पारि० मह० सव्व० द्रव्यसचित्तनियमु० देसा० भोग० अन्न० सह० मह० सव्व० वोसिरइ ६ सूरेउग्गे

प्रथमे यामे साधुः कथयति भग० बहुपडिपुन्ना पोरसी राइसथारए ठामि । मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य शक्रस्तव
पठेत् । मध्यरीत्या चैत्यवन्दनक ॥ ॥ आद्यानां व्यग्रत्वे कदाचिन्न प्रतिक्रमणसामग्री भवति तदा प्रभातस-
न्ध्ययोः आद्या ऐर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य उत्कृष्टचैत्यवन्दनेन देववन्दनं विधाय गुरोरग्रे मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य
वन्दनमालोचनं प्रत्याख्यानं कुर्वन्ति ज्ञानपूजारात्रिकमङ्गलप्रदीपान्ते श्रुतकायोत्सर्गे यथा । तमतिमिरपडल-
विद्धंसणस्स इत्यादिश्रुतस्तव पठित्वा पूर्ववत् श्रुतकायोत्सर्गं नमस्कारं स्मृत्वा पारयित्वा श्रुतस्तुतिकथनं ।
ततः 'निव्वुइपसासणय जयइ सया सव्वभावदेसणय । कुसमयमयनासणय जिणवरवीरसासणय ॥ १ ॥'
इत्यावश्यकोक्तप्रतिक्रमणयोजना ॥ ॥ अथ कायोत्सर्गयोजना । तत्र कायोत्सर्गः जिनचैत्यश्रुततीर्थज्ञान-
दर्शनचारित्रसमस्तपूजाराधनार्थं क्रियमाणः कायोत्सर्गः वंदणवत्तिया इत्यादिपूर्वकं करणीयः । प्रायश्चित्तवि-
शोधनार्थं उपद्रवनिवारणार्थं श्रुतदेवताराधनार्थं समस्तचतुर्णिकायदेवताराधनार्थं वंदणवत्तियाए इत्यादि न
करणीयं किंतु अन्नत्थ० इत्याद्येव वाच्य । तथाच ऐर्यापथिकी कायोत्सर्गं सर्वत्रापि एकचतुर्विंशतिस्तवमयः
प्रायश्चित्तविशोधनार्थं क्षुद्रोपद्रवोपशमनार्थं चतुर्णिकायदेवताराधनार्थं इष्टार्हत्प्रणमनार्थं कायोत्सर्गास्ते चतु-
श्चतु० मयाः कायोत्सर्गो चतु० चिन्तन । चन्दे सु निम्मलयरा इतिपर्यन्तं ये च उत्कृष्टदेववन्दने श्रुतदेवता-
याराधने सत्युत्तराः कायोत्सर्गा ये च स्वाध्यायोपगतास्ते सर्वे एकनमस्कारचिन्तनरूपाः प्रतिक्रमणमध्य-
गताः कायोत्सर्गास्तत्रैव निवेदिताः । अन्ये च ये अभिग्रहैः साधुभिः कायोत्सर्गाः क्रियन्ते समनीपितचतु०

यथा। 'सचित्त १ दृव २ विगई ३ वाहण ४ तंबोल ५ वत्थ ६ कुसमेसु ७। आसण ८ सयण ९ विलेवण १० बंभ ११ दिसि १२ न्हाण १३ भत्तेसु १४ ॥ १ ॥ सचित्तानि अप्रासुकभक्ष्याणि १ द्रव्याणि प्रासुकभक्ष्याणि २ विकृतयः पूर्वोक्ता दश ३ वाहनानि अश्वादीनि ४ ताम्बूलं क्रमुकपत्रादि ५ वस्त्राणि आच्छादनानि ६ कुसुमानि माल्यानि ७ आसनानि वेत्रासनपट्टप्रभृतीनि ८ शयनानि खट्वातूलिकादीनि ९ विलेपनानि चन्दनकस्तूरिकादीनि १० ब्रह्मव्रत ११ दिक्षु देशावकासिक १२ स्नान स्नेहोद्वर्तनजलमय १३ भक्त अन्न १४ एतेषां गृहिणो यथाशक्ति प्रतिदिन संख्या कुर्वन्ति । वोसिरामि वोसिरइ व्युत्सृजामि व्युत्सृज इति परित्यागवाचक पद । इत्यावश्यके प्रत्याख्यानयोजना ॥

नृपादीनां नियोगिनां परसेवकानां बहुव्यवसायानां च कृते आवश्यकविधिर्यथा । सर्ववस्त्रालंकारसहितोपि शुचिर्भूत्वा देवाग्रे शुचिस्थाने वा पूर्वोदङ्मुखः कृतोत्तरासङ्गः उपविष्टः सन् पूर्वं परमेष्ठिमन्त्र पठेत् । ततः । 'पंचमहव्वयजुत्तो पंचविहायारपालणसमत्थो। पञ्चसमिओ तिगुत्तो छत्तीसगुणो गुरू मज्झं' ॥१॥ ततः इच्छाका० भग० इरियावहियं इत्यारभ्य यावत्तस्स मिच्छामि दुक्कड इतिपर्यन्त ऐर्यापथिकीं पठेत् । ततः करेमि भंते सामाइय सावज्ज जोग पच्चक्खामि जाव आवस्सय पज्जुवासामि दुविह० शेषो दण्डकः पूर्ववत् । तदनन्तर शक्रस्तव सव्वेसिं तेसिं पुणो तिविहेण तिदण्डवीरियाण इतिपर्यन्त पठेत् । चतुर्विंशतिस्तव सिद्धा सिद्धिं मम दिसन्तु इतिपर्यन्त, श्रुतस्तव धम्मुत्तर वड्ढउ इतिपर्यन्तं, सिद्धस्तव सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु

उक्खित्त० पडु० पारि० मह० सव्व० एकासणं एकलट्ठाण पच्च० त्रिवि० ३ अ० न्ना० सा० अन्न० सह० मा-
गारि० गुरु० पारि० मह० सव्व० प्र० स० नि० देसा० भोग० अन्न० सह० मह० सव्व० वोसिरइ । पच्चक्खा-
णापच्चक्खाण । गंठि० पच्च० असण ४ अन्न० सह० मह० सह० विगइसेसि० अन्न० सह० लेवा० गिह०
उक्खित्त० पडु० पारि० मह० सव्व० एकासण अट्ठकवल पच्च० त्रिवि० ३ अ० न्ना० सा० अन्न० सह० सागा०
आउ० गुरु० पारि० मह० सव्व० प्र० स० नि० देसावगासिय भोगपरिभोग पच्चक्खाइ । अन्न० सह० मह०
सव्व० वोसिरइ अट्ठकवल ॥ इति विविधतपच्चक्खाणानि ॥ ॥ 'पच्चक्खाइ परस्येति पच्चक्खामि तथात्मन ।
पाणस्सेति च साधूनां द्रव्यादि गृहिणा पुनः ॥ १ ॥' यथा साधूना पाणस्स लेवाडेण वा अलेवाडेण वा
अत्थेण वा बहुलेण वा ससित्थेण वा असित्थेण वा वोसिरइ । इति साधूना वाक्य कथ-
नीय ॥ ॥ गृहिणा यथा । द्रव्यसचित्तनियमेति । 'नवकारपोरसीए पुरिमड्ढेकासणे अभत्तट्ठे । उप्पो० सा०
सू० सू० सू० नेया पच्चमक्खरा कमसो ॥ १ ॥' सार्धपौरुषी अपार्धपौरुषी पूर्वार्धपोरन्तर्व्यपेते तपोराकारादि
तद्वत् ॥ ॥ अभिग्रहास्तु मनःकल्पिताः यथा । 'अङ्गुट्ठमुट्ठिगंठी घरसे उस्सास थिबुगजोइक्खे । भणिय
सक्कियमेय धीरेहिं अणतनाणीहिं ॥ १ ॥' तथाच मुनयः प्रत्याख्यानान्ते पाणस्स लेवाडेण वा इत्यादि प्र-
त्याख्याति । श्राद्धास्तु द्रव्यसचित्तदेसावगासिय इति । तत्रागारचतुष्क पूर्वमेवोक्तं यथा । इच्चाइ सेसेसु
चत्तारि इति वचनात् । तथाच श्राद्धाः प्राभातिकप्रतिक्रमणमध्ये प्रत्याख्यानावौ सचित्तादिसंख्यां कुर्वन्ति

यथा। 'सचित्त १ दव्व २ विगई ३ वाहण ४ तंबोल ५ वत्थ ६ कुसमेसु ७। आसण ८ सयण ९ विलेवण १० बंभ ११ दिसि १२ न्हाण १३ भत्तेसु १४ ॥ १ ॥ सचित्तानि अप्रासुकभक्ष्याणि १ द्रव्याणि प्रासुकभक्ष्याणि २ विकृतयः पूर्वोक्ता दश ३ वाहनानि अश्वादीनि ४ ताम्बूलं क्रमुकपत्रादि ५ वस्त्राणि आच्छादनानि ६ कुसुमानि माल्यानि ७ आसनानि वेत्रासनपट्टप्रभृतीनि ८ शयनानि खट्वातूलिकादीनि ९ विलेपनानि चन्दनकस्तूरिकादीनि १० ब्रह्मव्रत ११ दिक्षु देशावकासिक १२ स्नान स्नेहोद्वर्तनजलमय १३ भक्त अन्नं १४ एतेषां गृहिणो यथाशक्ति प्रतिदिन संख्यां कुर्वन्ति। वोसिरामि वोसिरइ व्युत्सृजामि व्युत्सृज इति परित्यागवाचक पद। इत्यावश्यके प्रत्याख्यानयोजना ॥

नृपादीनां नियोगिनां परसेवकानां बहुव्यवसायानां च कृते आवश्यकविधिर्यथा। सर्ववस्त्रालंकारसहितोपि शुचिर्भूत्वा देवाग्रे शुचिस्थाने वा पूर्वोदङ्मुखः कृतोत्तरासङ्गः उपविष्टः सन् पूर्वं परमेष्ठिमन्त्रं पठेत्। तत'। 'पंचमहव्वयजुत्तो पंचविहायारपालणसमत्थो। पंचसमिओ तिगुत्तो छत्तीसगुणो गुरू मज्झ' ॥१॥ ततः इच्छाका० भग० इरियावहियं इत्यारभ्य यावत्तस्स मिच्छामि दुक्कडं इतिपर्यन्तं ऐर्यापथिकीं पठेत्। ततः करेमि भंते सामाइयं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जाव आवस्सयं पज्जुवासामि दुविहं० शेषो दण्डकः पूर्ववत्। तदनन्तरं शक्रस्तवं सव्वेसिं तेसिं पुणो तिविहेण तिदण्डविरियाणं इतिपर्यन्तं पठेत्। चतुर्विंशतिस्तवं सिद्धा सिद्धिं मम दिसन्तु इतिपर्यन्तं, श्रुतस्तवं धम्मुत्तरं वड्ढउ इतिपर्यन्तं, सिद्धस्तवं सिद्धा सिद्धिं मम दिसतु

इतिपर्यन्त । ततः । 'अज्ञानतिमिरान्धाना ज्ञानाञ्जनशलाकया । नेत्रमुन्मीलित येन तस्मै श्रीगुरवे नम ॥१॥'
इति पठित्वा आयरिय उवज्झाए इति गाथात्रय पठेत् । ततो ये मया क्रोधमानमायालोभा रूपाया शब्द-
रूपरसगन्धस्पर्शलालसतया कृता तेषा मिथ्या मे दुष्कृत । यद्देवस्य प्रतिमादि दुःस्थापनतच्छासनलङ्घननि-
न्दनोपहासादि कृत तद्भगवन्तोऽर्हन्त. क्षम्यन्ता । यच्च गुरूणा त्रयस्त्रिंशदाशातनारूप अविनय कृत तद्गुरव
क्षम्यन्ता । यच्च मिथ्यात्वहिंसानृतस्तेयमैथुनपरिग्रहार्तरौद्रै धर्मलङ्घन कृत तद्भगवान् धर्मः क्षम्यता । पुस्तु-
स्तकादिदुःस्थापनेन अदेशकालादिपाठेन ज्ञानाशातन कृत तद्भगवानागम क्षम्यता । यच्च शङ्कादिभि मि
थ्यात्वपोषणेन दर्शनलङ्घन कृत तद्भगवद्दर्शन क्षम्यता । यावद्बन्धच्छविच्छेदाप्यतिभारारोपणान्नरोधै
प्राणातिपाताणुव्रतलङ्घन तस्य मिथ्या मे दुष्कृत १ मिथ्योपदेशाभ्याख्यानकूटलेखन्यासापहारमन्त्रभेदै मृषावा-
दाणुव्रतलङ्घन कृत तस्य मिथ्या मे दुष्कृत २ स्तेयानुज्ञातस्तदादानराजपलङ्घनप्रतिरूपकरणकूटमानादिभि.
यददत्तादानाणुव्रत० ३ इत्वरानात्तागमपरविवाहनातिरागानङ्गक्रीडाभि यन्मैथुनाणुव्रत० ४ धनधान्यरूप्य-
कुप्यक्षेत्रवास्तुद्विपदचतुष्पदसंख्यालङ्घनेन यत्परिग्रहाणुव्रत० ५ ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमस्मृत्यभावक्षेत्रवृ-
द्धिभिर्यद्दिग्विरतिगुणव्रत० ६ सचित्ततत्सम्बद्धतत्सम्मिश्रसन्धानदुःपक्वाहारै अङ्गारवनशकटभाटकस्फोटजी-
विकाभिः दन्तलाक्षारसकेशविषवाणिज्यैर्यन्त्रपीडानिर्लाञ्छनासतीपोषणदवदानसरःशोषैः खरकर्मभिर्यद्भो-
गोपभोगमानगुणव्रत० ७ संयुक्ताधिकरणोपभोगातिरेकमौखर्यकन्दर्पकौत्कुच्यैर्यदनर्थदण्डविरतिगुणव्रत० ८

मनोवाक्कायदुःप्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थानैः सामायिकशिक्षाव्रत० ९ प्रयोगानयनपुद्गलक्षेपशब्दरूपानुपातैर्देशावकाशिकशिक्षाव्रत० १० अनादरस्मृत्यनुपस्थापनअदृष्टाप्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरणैर्यत्पौषधगुणव्रत० ११ सचित्तक्षेपविधानकालातिक्रममत्सरान्यापदेशैर्यदतिथिसंविभागगुणव्रतलङ्घनं कृत तस्य मिथ्या मे दुष्कृत १२। सर्वमपि दिवारात्रौ यदुच्चरित (दुश्चिन्तित) दुर्भाषित दुश्चेष्टित तस्य मिथ्या मे दुष्कृत इति पठित्वा। ततः चत्तारिमङ्गल अरिहन्तामङ्गल सिद्धामङ्गल साहूमङ्गलं केवलिपन्नत्तो धम्मो मङ्गल १ चत्तारिलोगुत्तमा अरिहन्तालोगुत्तमा सिद्धालोगुत्तमा साहूलोगुत्तमा केवलिपन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमो २ चत्तारिसरण पवज्जामि अरिहंते सरण पवज्जामि ३ इति पठेत्। तदनन्तर जिनस्तोत्रपाठः। ततः। शिवमस्तु सर्वजगतः परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः। दोषाः प्रयान्तु नाशं सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ॥ १ ॥ इति कथन। ततः परमेष्ठिमन्त्र पठित्वा। मनोवाक्काययोगाना शुभसंस्थापनान्मया। शुभावश्यककार्येण पूर्णं सामायिक कृत ॥ १ ॥ अतीचारैरभग्न मे सामायिकमनुत्तर। अर्हद्गुरुप्रसादेन पुनरस्तु क्षणे क्षणे ॥ २ ॥ पुनः पुनरस्तु सामायिक इति सामायिकपारणश्लोकः। ततः प्रत्यक्षतया वा मनसा वा गुरुवन्दन। इति नृपतियोगिकार्यव्याक्षिप्ताना गृहिणा संक्षेपतः प्रतिक्रमणविधिः संपूर्णः ॥ ॥ कदाचित्कस्यचित्प्रज्ञामान्द्येन सामायिकप्रत्याख्यानदण्डक मुखपाठेन नायाति तेन चित्ताभिग्रहेणैव सामायिकप्रत्याख्याने करणीये पर चाय विशेषः दण्डकोच्चारणेनाहृत सामायिक प्रत्याख्यान च। अतीचारागमनैरभग्न भवति तन्मध्याकारोच्चारणव-

शात् मनस्यादते तु दण्डकोच्चारवर्जिते सामायिके प्रत्याख्याने भग्ने भवत. तद्धेदे प्रायश्चित्तविधिप्रक्रमोक्त प्रायश्चित्तमाचरणीयं। तथा च। 'जिनार्चनगुरोः पूजा सिद्धान्तपठनं तथा। वैयावृत्त्यं मुनीनां च बिम्बपुस्तकयोरपि ॥ १ ॥ धर्मोपदेशश्रवणं व्याख्यानं धर्मशास्त्रकं। प्रमार्जनादि वा कार्यं प्रतिपत्तिर्गुरोरपि ॥ २ ॥ परमेष्ठिमन्त्रजापः स्तोत्रपाठोऽर्हतामपि। इत्यादिधर्मवैयग्र्ये सर्वमावश्यकं विदुः ॥ ३ ॥ मध्याह्नान्मध्यरात्रं च यावद्दैवसिकं विदुः। मध्यरात्राच्च मध्याह्नं यावत्कर्म च रात्रिकं ॥ ४ ॥' इत्याचार्यश्रीवर्धमानसूरिकृते आचारदिनकरे उभयधर्मस्तम्भे षड्विधावश्यककीर्तनो नामाष्टत्रिंशत्तम उदयः ॥ ३८ ॥ ग्रन्थाग्र २५०० ॥

एकोनत्रिंशत्तम उदयः।

अथ तपोविधिरुच्यते ॥ तत्राय। यद्दूरं यद्दुराराध्यं यच्च दूरे व्यवस्थितम्। तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥ १ ॥ ततः शिवकुमारवच्चरति मन्दिरस्थोपि यः स देवपरिषद्यपि द्युतिमहत्त्वविस्फूर्तिभृत्। कृशानुकृशतापनोल्लसितवर्णकं काञ्चनं सुधातुषु विशिष्टतां नृपतिमौलितामेति च ॥ २ ॥ ततः सकलकर्मभिर्विविधलब्धिकृद्विश्रितं गृहे पुरि च दुर्मरोप्यहह नन्दिषेणो द्विजः। व्रते शमतपःपरः सुरनरैकवन्द्यो भवेप्रविज्वलनतापितः श्रयति दीप्तिमायो घटः ॥ ३ ॥ यस्तपोविधिराम्नातो जिनैर्गीतार्थसाधुभिः। तं तथा कुर्वता सन्तु मनोवाञ्छितसिद्धयः ॥ ४ ॥ असत्या दानशक्तौ च देहशक्तिमवेक्ष्य च। अनुष्ठेयं पुण्यवद्भिस्त-

पःकर्म सुदुष्कर ॥ ५ ॥ तद्धि द्वादशरूप स्याद्बाह्याभ्यन्तरभेदतः । सयोज्य षड्विध बाह्यमुपवासादिकर्मभिः ।
॥ ६ ॥ तपोविधिः श्रेणियुक्त्या प्रोक्तोऽर्हद्भिश्च साधुभिः । कश्चित्केवलिसदिष्टः कश्चिद्गीतार्थभाषितः ॥ ७ ॥
कश्चित्फलादिभिश्चीर्णस्त्रिविधः स तपोविधिः । योगोपधानमुख्यो यः स विधिः केवलीरितः ॥ ८ ॥ कल्याणा-
दिपुण्डरीकतपोमुख्यो मुनीरितः । रोहिणीकल्पवृक्षादिविधिः फलतपोमयः ॥ ९ ॥ एष समील्य विद्वद्भिस्तपः-
श्रेणि प्रदर्शिता । कार्यं न साधुसाध्वीभिः प्रतिमाद्युपासकैः ॥१०॥ कृतोपधानैः सम्यक्त्वधारिभिः फलदं
तपः । नोक्ता योगा गृहस्थैश्च शेष सर्वं तपोपि हि ॥११॥ विधेय श्रावकैः शान्तैः श्राविकाभिस्तथाविध । शा-
न्तोऽल्पनिद्रोऽल्पाहारो निष्कामो निःकषायकः ॥ १२ ॥ धीरोऽन्यनिन्दारहितो गुरुशुश्रूषणे रतः । कर्मक्ष-
यार्थी प्रायेण रागद्वेषविवर्जितः ॥ १३ ॥ दयालुर्विनयापेक्षी प्रेत्येहफलनिःस्पृहः । क्षमी नीरुक् निरुत्सेको जी-
वस्तपसि योज्यते ॥ १४ ॥ षाण्मासिके वार्षिके च मासोर्ध्वं तपसि स्फुटे । त्यक्त प्रतिष्ठादीक्षासु काल तस्मि-
न्नपि त्यजेत् ॥ १५ ॥ शुभे मुहूर्ते प्रारब्धे काण्डान्यायान्तु यान्तु वा । पक्षमासदिनाब्दानि न पश्येत्तत्र दूषण
॥ १६ ॥ मृदुध्रुवचरक्षिप्रैर्वारैर्भौम शनिं विना । आपाटनतपोनन्द्यालोचनादिषु भ शुभ ॥ १७ ॥ क्रियमाणे
तपस्यन्तस्तपः पुण्यतिथौ यदि । आयाति नियमात्कार्यं दुर्लभ्यो नियमः सता ॥ १८ ॥ प्रवर्धमानः सस्थाप्य
पश्चात्तत्क्रियतां तपः । तपोमध्ये तपः कार्यं गरिष्ठं तप आचरेत् ॥ १९ ॥ अवशेषं लघु तपः कार्यं पश्चात्त-
तोपि हि । अनाभोगादिभिर्भग्ने तपःकर्मणि मध्यतः ॥ २० ॥ आलोचनीय तत्तत्र कार्यं पश्चात्तपोऽथवा ।

शात् मनस्याहते तु वृणकोचारवर्जिते सामायिके प्रत्याख्याने भग्ने भवतः तद्भङ्गे प्रायश्चित्तविधिप्रक्रमोक्त प्रायश्चित्तमाचरणीय। तथा च। 'जिनार्चनगुरोः पूजा सिद्धान्तपठन तथा। वैयावृत्य मुनीना च चिम्यपुस्तकयोरपि ॥ १ ॥ धर्मोपदेशश्रवण व्याख्यानं धर्मशास्त्रक। प्रमार्जनादि वा कार्यं प्रतिपत्तिर्गुरोरपि ॥ २ ॥ परमेष्ठिमन्त्रजापः स्तोत्रपाठोऽर्हतामपि। इत्यादिधर्मवैयत्य सर्वमावश्यक विदुः ॥ ३ ॥ मध्याह्नान्मध्यरात्र च यावद्दैवसिक विदुः। मध्यरात्राच मध्याह्न यावत्कर्म च रात्रिक ॥ ४ ॥' इत्याचार्यश्रीवर्धमानसूरिकृते आचारदिनकरे उभयधर्मस्तम्भे षडावश्यककीर्तनो नामाष्टत्रिंशत्तम उदयः ॥ ३८ ॥ ग्रन्थाग्र २५०० ॥

एकोनत्रिंशत्तम उदयः।

अथ तपोविधिरुच्यते ॥ तत्राद। यद्दूर यद्दुराराध्य यच्च दूरे व्यवस्थितम्। तत्सर्वं तपसा साध्य तपो हि दुरतिक्रमम् ॥ १ ॥ ततः शिवकुमारवदरति मन्दिरस्थोपि यः स देवपरिषद्यपि द्युतिमहत्त्वविस्फूर्तिभृत्। कुशलकुशतापनोल्लसितकर्णक काञ्चन सुधातुषु विशिष्टता नृपतिमौलितामेति च ॥ २ ॥ ततः सकलकर्मभिर्विविधलब्धिकृच्छ्रित गृहे पुरि च दुर्भरोप्यहह नन्दिषेणो द्विजः। भवे शमतपःपरः सुरनरैकवन्द्यो भवप्रविज्वलनतापितः भयति वीप्सितार्थो भटः ॥ ३ ॥ यस्तपोविधिराम्नातो जिनैर्गीतार्थसाधुभिः। त तथा कुर्वतां सन्तु मनोवाञ्छितसिद्धयः ॥ ४ ॥ असत्या दानशक्तौ च देहशक्तिमवेक्ष्य च। अनुष्ठेय पुण्यवद्भिस्त-

पःकर्म सुदुष्कर ॥ ५ ॥ तद्धि द्वादशरूप स्याद्बाह्याभ्यन्तरभेदतः । सयोज्य षड्विध बाह्यमुपवासादिकर्मभिः ॥ ६ ॥ तपोविधिः श्रेणियुक्त्या प्रोक्तोऽर्हद्भिश्च साधुभिः । कश्चित्केवलिसंदिष्टः कश्चिद्गीतार्थभाषितः ॥ ७ ॥ कश्चित्फलादिभिश्चीर्णस्त्रिविधः स तपोविधिः । योगोपधानमुख्यो यः स विधिः केवलीरितः ॥ ८ ॥ कल्याणादिपुण्डरीकतपोमुख्यो मुनीरितः । रोहिणीकल्पवृक्षादिविविधिः फलतपोमयः ॥ ९ ॥ एव समील्य विद्वद्भिस्तपःश्रेणिः प्रदर्शिता । कार्य न साधुसाध्वीभिः प्रतिमाद्युपासकैः ॥१०॥ कृतोपधानैः सम्यक्त्वधारिभिः फलद तपः । नोद्या योगा गृहस्थैश्च शेष सर्वं तपोपि हि ॥११॥ विधेय श्रावकैः शान्तैः श्राविकाभिस्तथाविध । शान्तोऽल्पनिद्रोऽल्पाहारो निष्कामो निःकषायकः ॥ १२ ॥ धीरोऽन्यनिन्दारहितो गुरुशुश्रूषणे रतः । कर्मक्षयार्थी प्रायेण रागद्वेषविवर्जितः ॥ १३ ॥ दयालुर्विनयापेक्षी प्रेत्येहफलनिःस्पृहः । क्षमी नीरुक् निरुत्सेको जीवस्तपसि योज्यते ॥ १४ ॥ षाण्मासिके वार्षिके च मासोर्ध्वे तपसि स्फुटे । व्यक्त प्रतिष्ठादीक्षासु काल तस्मिन्नपि त्यजेत् ॥ १५ ॥ शुभे मुहूर्ते प्रारब्धे काण्डान्यायान्तु यान्तु वा । पक्षमासदिनाब्दानि न पश्येत्तत्र दूषण ॥ १६ ॥ मृदुध्रुवचरक्षिप्रैर्घोरैर्भौम शनि विना । आघाटनतपोनन्यालोचनादिषु भ शुभ ॥ १७ ॥ क्रियमाणे तपस्यन्तस्तपः पुण्यतिथौ यदि । आयाति नियमात्कार्यं दुर्लङ्घ्यो नियमः सता ॥ १८ ॥ प्रवर्धमानः सस्थाप्य पश्चात्तत्क्रियता तपः । तपोमध्ये तपः कार्यं गरिष्ठ तप आचरेत् ॥ १९ ॥ अवशेष लघु तपः कार्य पश्चात्तपोपि हि । अनाभोगादिभिर्भग्ने तपःकर्मणि मध्यतः ॥ २० ॥ आलोचनीय तत्तत्र कार्यं पश्चात्तपोऽन्यथा ।

क्रमजे तपसि प्रायो न गणेयस्तिथिक्रमः ॥ २१ ॥ तिथिजे तपसि श्रेष्ठा सूर्योद्गमगता तिथि । तिथे पाते च
पूर्वस्मिन्नह्नि वृद्धौ परत्र वा ॥ २२ ॥ कार्ये तिथितपःकर्म प्राहेति भगवान् जिन । फलवृद्ध्यै रसत्यागावृत्तिस-
क्षेपतस्तथा ॥ २३ ॥ ऊनोदर्यमनशन कायक्लेशान्तरेषु च । अधिक यत्तपस्तत्तु ज्ञेय वृद्ध्योत्तरोत्तर ॥ २४ ॥
मौहूर्तिक प्राहरिक सार्धप्राहरिक तथा । मध्याह्नमापराह्न च तपः कालोत्तरोत्तर ॥ २५ ॥ सन्ध्याविकृतिकः चैव
तथा नैर्विकृत पुनः । आचाम्लमेकसिक्थ च रसत्यागोत्तरोत्तर ॥ २६ ॥ द्विभक्तमेकभक्त च सकपायवल्द-
त्तिक । उपवासमनीर च वृत्तिसंक्षेपणोत्तर ॥ २७ ॥ तपःप्रारम्भणे कार्यमष्टधा जिनपूजन । तपोनिर्वाहसि
द्ध्यर्थं पौष्टिक विधिसंयुत ॥ २८ ॥ ग्रहदिक्पालयक्षाणा मुद्रानैवेद्यसत्फलैः । पदर्चन गुरुः कुर्यात्तपौष्टिक-
मुवाहत ॥ २९ ॥ पुस्तकाम्बरपात्रासाशन शुद्धगुरुष्वपि । सघार्चन क्षेत्रदेवीपुरदेवतपूजन ॥ ३० ॥ योगोप-
धानप्रतिमासु नन्द्यः कार्या मुनीन्द्रैर्विधिसन्निवेदिताः । शेषे तपःकर्मणि चाक्षसस्तवैरावश्यकादिर्व्रतपावना
विधिः ॥ ३१ ॥ शुद्ध तपः केवलमप्युदार सोद्यापनस्यास्य पुनस्तुमः किं । रूप यथा धेनुगुणेन तत्तु द्राक्षासि-
ताक्षोद्युत सुधैव ॥ ३२ ॥ वृक्षो यथा दोहदपूरणेन कायो यथा सद्रसभोजनेन । विशेषशोभा लभते यथो-
केनोद्यापनेनैव तथा तपोपि ॥ ३३ ॥ उपधानानि सर्वाणि श्रावकप्रतिमा यते. । एकादश गृहस्थस्य योगा
सैद्धान्तिका क्रमात् ॥ ३४ ॥ इन्द्रियाणा जयश्चैव कषायजय एव च । योगशुद्धिर्धर्मचक्र तथैवाष्टाह्निकाद्वय
॥ ३५ ॥ कर्मसूदनमन्तानि जिनोक्तानि तपांसि वै । नियोगानि गृहस्थस्य सर्वोपयोगीनि वै यते ॥ ३६ ॥

उपधानतप' १ आद्यप्रतिमातपः २ यतिप्रतिमातपः ३ योगतपः ४ इन्द्रियजयतपः ५ कषायजयतपः ६ योगशुद्धितप ७ धर्मचक्रतपः ८ अष्टाह्निकातपोद्वय ९।१० कर्मसूदनतपः ११ इति जिनोक्तानि तपासि ॥ ॥

कल्याणकानि ज्ञान च दर्शन चरण तथा । चान्द्रायण वर्धमान ततः परमभूषण ॥ १ ॥ दीक्षा च ज्ञाननिर्वाणे तथोनोदरिकातपः । सलेखना सर्ववीर तथा च कनकावली ॥ २ ॥ मुक्तावली रत्नमाला सिंहनिःक्रीडितद्वय । भद्र चैव महाभद्र ततो भद्रोत्तर पुन' ॥ ३ ॥ ततश्च सर्वतोभद्र गुणरत्नमथाङ्कक । सावत्सर नन्दिसरः पुण्डरीक तथैव च ॥ ४ ॥ माणिक्यप्रस्तारी पद्मोत्तरसमवसरणयुगलानि । गणधरमशोकवृक्ष ससतिशतक नमस्कार ॥ ५ ॥ पूर्वचतुर्दशकमथो एकावलिका च दशविधो धर्मः । पञ्चपरमेष्ठिसज्ञा पञ्चम्याद्वितयमथ सघः ॥ ६ ॥ आधीयते च मनुजैः सर्गादिफलार्थिभिर्विमलवृत्तैः । तस्माद्घन महाघनमथ वर्गश्रेणिमेरुतपः ॥ ७ ॥ द्वात्रिंशत्कल्याणकमथच्यवनजन्मलोकनालीनि । कल्याणाष्टाह्निकमथ सूर्यायनमन्तरा वज्र ॥ ८ ॥ आचाम्ल वर्धमान ततस्तपः स्यान्महावीर । माघश्रेणिर्लक्षप्रतिपद्गीतार्थकथिततपः ॥ ९ ॥ साधुसाध्वीश्रावकाणा श्राविकाणा महात्मना । तपास्याचरणीयानि गीतार्थकथितानि वै ॥ १० ॥ कल्याणकतपः १ ज्ञानतपः २ दर्शनतपः ३ चारित्रतपः ४ चान्द्रायणतपः ५ वर्धमानतपः ६ परमभूषणतपः ७ दीक्षातपः ८ ज्ञानतपः ९ निर्वाणतप' १० ऊनोदरीतपः ११ सलेखनातपः १२ सर्वसख्याश्रीमहावीरतपः १३ कनकावलीतपः १४ मुक्तावलीतपः १५ रत्नावलीतप. १६ लघुसिंहनिःक्रीडिततपः १७ बृहत्सिंहनिःक्रीडिततपः १८ भद्रतपः १९ महाभद्र-

तपः २० भद्रोत्तरतपः २१ सर्वतोभद्रतप' २२ गुणरत्नसंवत्सरतपः २३ अङ्गतपः २४ संवत्सरतपः २५ नन्दीश्वरतपः २६ पुण्डरीकतप' २७ ॥ माणिक्यप्रस्तारिकातपः २८ पद्मोत्तरतपः २९ समवसरणतप' ३० द्वितीयसमवसरणतपः ३१ गणधरतप' ३२ अशोकवृक्षतपः ३३ सप्ततिशततपः ३४ नमस्कारतपः ३५ चतुर्दशपूर्वतपः ३६ एकावलीतपः ३७ दशविधयतिधर्मतपः ३८ पञ्चपरमेष्ठितपः ३९ लघुपञ्चमीतपः ४० बृहत्पञ्चमीतप' ४१ चतुर्विधसंघतपः ४२ घनतपः ४३ महाघनतपः ४४ वर्गतपः ४५ श्रेणितपः ४६ मेरुतपः ४७ द्वात्रिंशत्कल्याणकतपः ४८ च्यवनतपः ४९ जन्मतपः ५० लोकनालितपः ५१ कल्याणकाष्टाह्निकातपः ५२ सूर्यायनतपः ५३ आचाम्लवर्धमानतप' ५४ महावीरतप. ५५ माघमालातपः ५६ लक्षप्रतिपत्तपः ५७ इति गीतार्थाचीर्णानि तपांसि ॥ ॥ 'सर्वाङ्गसुन्दरतपो १ निरुजशिख २ सुभगता त्रिदशवृक्ष ३ । दमयन्त्या ४ यतिजनक ५ साक्षयनिधि ६ मुकुटसप्तमी ७ च तपः ॥ १ ॥ अम्बा ८ श्रुतदेवी ९ रोहिणी १० च मातृरितपश्च ११ सुखसंपत् १२ । अष्टापदसोपान १३ निर्वृतिकुण्ड १४ स्वदुःखदर्शियुग १५ ॥ २ ॥ गौतमपात्र १६ निर्वाण १७ दीपक १८ तदनु चामृताष्टमिका १९ । तस्मादखण्डदशमी २० परत्रपालिश्च २१ सोपान २२ ॥ ३ ॥ कर्मचतुर्थ २३ परमेष्ठिफल २४ भवेषव्यदशमिका २५ चैव । नन्द्यावर्तयुग २६।२७ पुनरेतत्फलतप इति ख्यात ॥ ४ ॥ दमयन्त्यादेर्दृष्टान्तदर्शनाद्रोहिणीगुणश्रवणात् । कार्यं फलार्थिभिरिद गृहिभिः फलतप इति ख्यात ॥ ५ ॥ सर्वाङ्गसुन्दरतपः १ निरुजशिखतपः २ सौभाग्यकल्पवृक्षतपः ३ दमयन्तीतपः ४ आयतिजनकतप. ५ अक्षयनि-

धितप' ६ मुकुटसप्तमीतपः ७ अम्बातपः ८ श्रुतदेवीतपः ९ रोहिणीतपः १० मातर्तपः ११ सर्वसुखसंपत्तितपः
१२ अष्टापदपावडीतपः १३ मोक्षदण्डतपः १४ अदुःखदर्शितपोद्वय १६ गौतमपडिग्गहतपः १७ निर्वाणदीप-
तप' १८ अमृताष्टमीतप' १९ अखण्डदशमीतपः २० परतपालितपः २१ पावडीतपः २२ कर्मचतुर्थतपः २३
नवकारफलतपः २४ अविधवादशमीतपः २५ बृहन्नन्द्यावर्ततपः २६ लघुनन्द्यावर्ततपः २७ इति सप्तविंशति-
फलतपासि ॥ तत्र उपधानतपो व्रतारोपाधिकाराद्वसेय १ गृहस्थस्यैकादशप्रतिमाव्रतारोपसंस्काराद्वसेयाः
२ यतेर्द्वादशप्रतिमातपो यतिधर्मोत्तरायणात्प्रतिमाधिकाराद्वसेय ३ सैद्धान्तिकायोगायोगोद्वहनाधिकाराद्-
वसेयाः ४॥ ॥ अथावशेषा व्याख्यायन्ते चत्वारि व्याख्यातानि। तेषु पूर्वं जिनोक्ताना कथन। पञ्चममिन्द्रिय-
जयतपः। 'पूर्वार्धमेकभक्त च विरसाम्ले उपोषित। प्रत्येकमिन्द्रियजयः पञ्चविंशतिवासरैः ॥ १ ॥' इन्द्रियाणा

५ इन्द्रियजयतप आगाढदिन २५					
स्पर्श	पु १	ए १	नि १	आं १	उप १
रस	पु १	ए १	नि १	आं १	उप १
घ्राण	पु १	ए १	नि १	आं १	उप १
चक्षु	पु १	ए १	नि १	आं १	उप १
श्रोत्र	पु १	ए १	नि १	आं १	उप १

स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्ररूपाणा जयार्थं तप इन्द्रियजयतपः। तत्र एकमे-
कमिन्द्रिय प्रति क्रमेण पूर्वार्ध १ एकभक्त २ निर्विकृतिक ३ आचाम्ल ४ उ-
पवास ५ रूपाणि। एव पञ्चपञ्च प्रत्याख्यानानि पञ्चविंशत्या दिनैः पर्यन्ते ता-
वद्भूमिशयन ब्रह्मचर्यं यत्नकन्यासः। उद्यापने जिनाग्रतः सर्वपक्वान्नभक्ष्यफ-
लप्रकारान्तराणा पञ्चविंशतिसख्यया ढौकन। एतत्सख्यया साधुभ्योपि
दान। एतत्करणे सर्वेन्द्रियाणा दुःप्रवृत्तिनिषेधः फलं। इति यतिश्राद्धकर-

तपः २० भद्रोत्तरतपः २१ सर्वतोभद्रतपः २२ गुणरत्नसंवत्सरतपः २३ अङ्गतपः २४ संवत्सरतपः २५ नन्दीश्वरतपः २६ पुण्डरीकतप २७ ॥ माणिक्यप्रस्तारिकातपः २८ पद्मोत्तरतपः २९ समवसरणतपः ३० द्वितीयसमवसरणतप. ३१ गणधरतपः ३२ अशोकवृक्षतपः ३३ सप्ततिशततपः ३४ नमस्कारतप ३५ चतुर्दशपूर्वतपः ३६ एकावलीतपः ३७ दशविधयतिधर्मतप ३८ पञ्चपरमेष्ठितपः ३९ लघुपञ्चमीतपः ४० बृहत्पञ्चमीतपः ४१ चतुर्विधसंघतपः ४२ घनतपः ४३ महाघनतपः ४४ वर्गतपः ४५ श्रेणितपः ४६ मेरुतपः ४७ द्वात्रिंशत्कल्याणकतपः ४८ च्यवनतपः ४९ जन्मतपः ५० लोकनालितपः ५१ कल्याणकाष्टाह्निकातपः ५२ सूर्यायनतपः ५३ आचाम्लवर्धमानतप ५४ महावीरतपः ५५ माघमालातपः ५६ लक्षप्रतिपत्तपः ५७ इति गीतार्थाचीर्णानि तपांसि ॥ ॥ 'सर्वाङ्गसुन्दरतपो १ निरुजशिख २ सुभगता त्रिदशवृक्ष ३ । दमयन्त्या ४ यतिजनक ५ साक्षयनिधि ६ मुकुटसप्तमी ७ च तपः ॥ १ ॥ अथा ८ श्रुतदेवी ९ रोहिणी १० च मातरितपश्च ११ सुखसपद् १२ । अष्टापदसोपान १३ निर्वृतिदण्ड १४ स्वदुःखदर्शियुग १५ ॥ २ ॥ गौतमपात्र १६ निर्वाण १७ दीपक १८ तदनु चामृताष्टमिका १९ । तस्मादखण्डदशमी २० परमपालिश्च २१ सोपान २२ ॥ ३ ॥ कर्मचतुर्थं २३ परमेष्ठिफल २४ मवैधव्यदशमिका २५ चैव । नन्द्यावर्तयुग २६।२७ पुनरेतत्फलतप इति ख्यात ॥ ४ ॥ दमयन्त्यादेर्दृष्टान्तदर्शनाद्रोहिणीगुणश्रवणात् । कार्यं फलार्थिभिरिद गृहिभिः फलतप इति ख्यात ॥ ५ ॥ सर्वाङ्गसुन्दरतपः १ निरुजशिखतपः २ सौभाग्यकल्पवृक्षतपः ३ दमयन्तीतपः ४ आयतिजनकतप. ५ अक्षयनि-

धितपः ६ मुकुटसप्तमीतपः ७ अम्बातपः ८ श्रुतदेवीतपः ९ रोहिणीतपः १० माउंरतपः ११ सर्वसुखसपत्तितपः १२ अष्टापदपावडीतपः १३ मोक्षदण्डतपः १४ अदुःखदर्शितपोद्वय १६ गौतमपडिगहातपः १७ निर्वाणदीपतपः १८ अमृताष्टमीतपः १९ अखण्डदशमीतपः २० परतपालितपः २१ पावडीतपः २२ कर्मचतुर्थतपः २३ नवकारफलतपः २४ अविधवादशमीतपः २५ बृहन्नन्द्यावर्ततपः २६ लघुनन्द्यावर्ततपः २७ इति सप्तविंशतिफलतपासि ॥ तत्र उपधानतपो व्रतारोपाधिकाराद्वसेय १ गृहस्थस्यैकादशप्रतिमाव्रतारोपसंस्काराद्वसेयाः २ यतेर्द्वादशप्रतिमातपो यतिधर्मोत्सरायणात्प्रतिमाधिकाराद्वसेय ३ सैद्धान्तिकायोगायोगोद्वहनाधिकाराद्वसेयाः ४॥ ॥ अथावशेषा व्याख्यायन्ते चत्वारि व्याख्यातानि। तेषु पूर्वं जिनोक्ताना कथन। पञ्चममिन्द्रियजयतपः। 'पूर्वार्धमेकभक्त च विरसाम्ले उपोषित। प्रत्येकमिन्द्रियजयः पञ्चविंशतिवासरैः ॥ १ ॥' इन्द्रियाणा स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्ररूपाणा जयार्थं तप इन्द्रियजयतपः। तत्र एकमेकमिन्द्रियं प्रति क्रमेण पूर्वार्ध १ एकभक्त २ निर्विकृतिक ३ आचाम्ल ४ उपवास ५ रूपाणि। एव पञ्चपञ्च प्रत्याख्यानानि पञ्चविंशत्या दिनैः पर्यन्ते ताम्रद्भूमिशयन ब्रह्मचर्यं यत्रकन्यासः। उद्यापने जिनाग्रतः सर्वपक्वान्नभक्ष्यफलप्रकारान्तराणा पञ्चविंशतिसंख्यया ढौकन। एतत्संख्यया साधुभ्योपि दान। एतत्करणे सर्वेन्द्रियाणा दुःप्रवृत्तिनिषेधः फल। इति यतिश्राद्धकर-

५ इन्द्रियजयतप आगाढदिन २५					
स्पर्श	पु १	ए १	नि १	आं १	उप १
रस	पु १	ए १	नि १	आं १	उप १
घ्राण	पु १	ए १	नि १	आं १	उप १
चक्षु	पु १	ए १	नि १	आं १	उप १
श्रोत्र	पु १	ए १	नि १	आं १	उप १

णीयमागाढमिन्द्रियजयतपः ॥५॥ ॥ अथ कषायजतपः । ‘एकभक्तं निर्विकृति सजलाचाम्लमनशनं तथा । कषाय-

६ कषायजयतपआगाढं १६				
क्रोध	ए १	नि १	आं १	उप १
मान	ए १	नि १	आं १	उप १
माया	ए १	नि १	आं १	उप १
लोभ	ए १	नि १	आं १	उप १

जय एकस्मिन्कषायेऽन्येष्वपीदृशः ॥ १ ॥’ कषायाणां क्रोधमानमायालोभानां जयार्थं तपः कषायजयतपः । तत्रैकमेकं कषायं प्रति एकभक्तं १ निर्विकृतिकं २ आचाम्लं ३ उपवासो ४ रूपं प्रत्याख्यानचतुष्कं दिनचतुष्टयं । सर्वमप्येतत् षोडशभिर्दिनैः पूर्यते । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने षोडशसङ्ख्यसर्वफलजातिपक्वान्नषड्विकृतिढौकनं देवाग्रे । यतिभ्योऽप्येतद्वस्तुदानं । एतत्फलं सर्वकषायविनाशः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढं कषायजतपः ॥६॥ ॥ अथ योगशुद्धितपः । ‘योगे प्रत्येकमरसमाचाम्लं चाप्यु-

७ योगशुद्धतपआगा ९			
मन	नि १	आं १	उ १
वचन	नि १	आं १	उ १
काया	नि १	आं १	उ १

पोषितं । एवं नवदिनैर्योगशुद्धिः संपूर्यते ततः ॥ १ ॥’ योगानां मनोवाक्कायानां शुद्धिकारित्वाद्योगशुद्धिः । तत्र मनःप्रति प्रथमेऽह्नि निर्विकृतिकं १ । द्वितीये आचाम्लं २ तृतीये उपवासः ३ एवं वचःकायौ प्रत्यपि । एवं नवभिर्दिनैः पूर्यते । यन्त्रन्यासः । उद्यापने जिनाग्रे षड्विकृतिढौकनं । साधुभ्यस्तद्दानं । एतत्फलं मनोवाक्कायानां शुद्धता भवति । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढं योगशुद्धितपः ॥७॥ ॥ अथ धर्मचक्रतपः ।‘ विधाय प्रथमं षष्ठं षष्टिमेकान्तरं तथा । उपवासं धर्मचक्रे कुर्याद्वह्न्यर्कवासरैः ॥ १ ॥’ धर्मस्य चक्रं समूहः । अथवा भगवतोऽर्हतोऽतिशयरूपं धर्मचक्रं तत्प्राप्तिहेतुत्वाद्धर्मचक्रं । तत्र पूर्वं षष्ठतपः ततोऽनन्तरं षष्टिरुपवासा एकान्तरिताः । एवं दिनान्यु-

त्तरशतदिनैः पूर्यन्ते । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने स्वर्णमय रूप्यमय वा रत्नजडित धर्मचक्र निर्माय महापूजापूर्वक जिनाग्रे ढौकयेत् । तदनन्तर यथाशक्ति सघपूजा । एतत्फल निरतिचारबोधिप्राप्तिः।

८ धर्मचक्रतप आषाढदिन १२३ पूर्यते

उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा
उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा
उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा
उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा
उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा
उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा

इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ धर्मचक्रतप' ॥ ८ ॥ ॥अथ लघुअष्टाह्निकातप.। 'अष्टमीभ्या समारभ्य शुक्लाश्वयुजचैत्रयो' । राका यावत्ससवर्षं स्वशक्त्याष्टाह्निकातपः ॥ १ ॥' सदैव पुण्यानां अष्टानामह्ना समाहारोष्टाह्निका । आश्वयुजशुक्लचैत्रशुक्लाष्टमीमारभ्य पूर्णिमा यावदष्टदिनानि स्वशक्त्या एकभक्तनिर्विकृतिकाचाम्लोपवासैः प्रत्याख्यानानि विधेयानि । तत्र बृहत्स्नात्रविधिना जिनस्नात्र यावत्तेषु दिनेषु ससवर्षं विदध्यात्। यन्त्रकन्यासः। उद्यापने षट्पञ्चाशत्सख्यया पुष्पफलनैवेद्यपक्वान्नैर्जिनपूजा साधुभ्यस्तद्दान च। यथा-

८।१० चैत्रशुक्लाष्टम्यादि दिन ८।१७ आसोजशुक्लाष्टम्यादि ८

ति	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	ति	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
थि	ए	नि	आं	उ	ए	नि	आं	उ	थि	ए	नि	आं	उ	ए	नि	आं	उ

णीयमागाढमिन्द्रियजयतपः ॥५॥ ॥ अथ कषायजतपः । 'एकभक्तं निर्विकृति सजलानशने तथा । कषाय-

६ कषायजयतपआगाढं १६				
क्रोध	ए १	नि १	आं १	उप १
मान	ए १	नि १	आं १	उप १
माया	ए १	नि १	आं १	उप १
लोभ	ए १	नि १	आं १	उप १

जय एकस्मिन्कषायेऽन्येष्वपीदृश ॥ १ ॥' कषायाणां क्रोधमानमायालोभानां जयार्थं तपः कषायजयतपः । तथैकमेकं कषायं प्रति एकभक्तं १ निर्विकृतिकं २ आचाम्लो ३ पवासौ ४ रूपं प्रत्याख्यानचतुष्कं दिनचतुष्टयं । शेषेष्वप्येवं षोड-शभिर्दिनैः पूर्यते । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने षोडशसंख्यसर्वफलजातिपक्वान्नषड्-विकृतिढौकनं देवाग्रे । यतिभ्योऽप्येतद्वस्तुदानं । एतत्फलं सर्वकषायविनाशः ।
इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढं कषायजतपः ॥६॥ ॥ अथ योगशुद्धितपः। 'योगे प्रत्येकमरसमाचाम्लं चाप्यु-

७ योगशुद्धतपआगा ९			
मन	नि १	आं १	उ १
वचन	नि १	आं १	उ १
काया	नि १	आं १	उ १

पोषितं । एवं नवदिनैर्योगशुद्धिः संपूर्यते ततः ॥ १ ॥' योगानां मनोवाक्कायानां शुद्धि-कारित्वाद्योगशुद्धिः । तत्र मनःप्रति प्रथमेह्नि निर्विकृतिकं १ । द्वितीये आचाम्लं २ तृ-तीये उपवासः ३ एवं वचःकायौ प्रत्यपि । एवं नवभिर्दिनैः पूर्यते । यन्त्रन्यासः । उद्यापने जिनाग्रे षड्विकृतिढौकनं । साधुभ्यस्तद्दानं । एतत्फलं मनोवाक्कायानां शुद्धता भवति ।
इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढं योगशुद्धितपः ॥७॥ ॥ अथ धर्मचक्रतपः।' विधाय प्रथमं षष्ठं षष्टिमेकान्तरं तथा । उपवासं धर्मचक्रे कुर्याद्व्यर्कवासरैः ॥ १ ॥' धर्मस्य चक्रं समूहः । अथवा भगवतोऽर्हतोऽतिशयरूपं धर्मचक्रं तत्प्राप्तिहेतुत्वाद्धर्मचक्रं । तत्र पूर्वं षष्ठतपः ततोऽनन्तरं षष्टिरुपवासा एकान्तरिताः । एवं विंशत्यु-

धेय यत्तवागाव जगौ जिनः ॥ २ ॥' इति जिनोक्तानि तपांसि ॥ ॥ अथ गीतार्थाचीर्णानि तपास्यभिधीयन्ते । यथा । तत्र प्रथमं कल्याणकतपः । उपजातिः—'यस्मिन्दिने तीर्थकरस्य गर्भावतारजन्मव्रतकेवलानि । मोक्षो घभूवात्र दिने तपो यत्कल्याणकं तत्समुदाहरन्ति ॥ १ ॥ कल्याणक एकस्मिन्नेकाशनमेतयोर्द्वये चिरस । आचाम्ल त्रितयेपि हि चतुष्टयेप्यनशनं प्राहुः ॥ २ ॥ एवं कृत्वा प्रतिवर्षं पूर्यते वर्षसप्तकात् । कल्याणतप एतद्धि तद्दिनान्यागमाद्वदेत् ॥ ३ ॥'—सम्मं नमिऊण जिणे चउवीस तेसिं चेव पत्तेयं । वुच्छं चुइजम्मणदिक्खानाणनिव्वाणकल्लाणे ॥ १ ॥ कत्तियबहुले पंचमि संभवनाणं दुवालसीएऊ । नेमि चुइ पउमजम्मो तेरसि पउमप्पहे दिक्खा ॥ २ ॥ पनरसि मुक्खो वीरे सिअबारसि तइअ अरसुविहिनाणं । मग्गसिरकसिणपंचमि जम्मो सुविहिस्स छट्ठवयं ॥ ३ ॥ दसमीइ वीरदिक्खा इक्कारसि पउमनाहनिव्वाणो । सिअदसमि जम्म मुक्खो अरस्स इक्कारसीइ पुणो ॥ ४ ॥ अरदिक्खा नमिनाणं मल्लिजिणे जम्मदिक्खनाणाइं । चउद्दसि जम्मो पुन्निम निक्खमणं संभवजिणस्स ॥ ५ ॥ पोसाइदसमिगारसि पासे बारसीतेरसीससिणो । जइसंख जम्मवया सीयलनाणं चउद्दसीए ॥ ६ ॥ सुद्धेछट्ठी विमले नवमी संतिस्सि कारसी अजिए । अभिनन्दणे चउद्दसि पुन्निमधम्मे अ नाणाइं ॥ ७ ॥ माहाइछट्ठि पउमचुइ बारसी सीअलस्स जम्मवया । तेरसि मुक्खाउसभे सिअंसेऽमावसा नाणं ॥ ८ ॥ सियबीयनाणजम्मा वसुपुज्जअभिनंदणाण अह जम्मो । तइआई विमलधम्माण चउत्थि दिक्खाइ विमलस्स ॥ ९ ॥ अट्ठमि जम्मो अजिए नवमीबारसीतेरसीसु वयं । अजि-

शक्तिसंघपूजा । एतत्फलं दुर्गतेरभावः । इति यतिश्राद्धविधेय आगाढं लघुअष्टाह्निकातपोद्वयं ॥ १० ॥ ॥ अथ कर्मसूदनतपः । 'प्रत्याख्यानान्यष्टौ प्रत्येकं कर्मणां विघाताय । इति कर्मसूदनतपः पूर्णं स्याच्चुगरस ६४ मिताहोभिः ॥ १ ॥ उपवास १ मेकभक्तं २ तथैकसिक्थं ३ कस्थिती ४ दत्ति ५ । निर्विकृतिकं ६ माचाम्लं ७ चाष्टग्रास ८ क्रमात्कुर्यात् ॥ २ ॥' कर्माणि ज्ञानावरण १ दर्शनावरण २ वेदनीय ३ मोहनीय ४ आयु ५ नाम ६ गोत्र ७ अन्तराय ८ रूपाणि सूदयति सर्वथा छिनत्तीति कर्मसूदनं। तत्रैक कर्म १ प्रति उपवास २ एकसिक्थ ३ एकस्थान ४ एकदत्ति ५ निर्विकृतिक ६ आचाम्ल ७ अष्टकवल ८ रूप । दिनाष्टके प्रत्याख्यानाष्टकं कुर्यात् । एवं कर्माष्टकेपि । एवं चतुःषष्ट्या दिनैः पूर्यन्ते । यत्रकन्यासः । उद्यापने रूप्यमय वृक्ष स्वर्णमय कुठार मोदकचतुःषष्टिं पुस्तकाग्रे ढौकयेत् । बृहत्स्नात्रविधिना जिनस्नात्र संघपूजा च । एतत्फलं कर्मक्षयः । इति यतिश्राद्धविधेयमागाढं कर्मसूदनतपः ॥ ११ ॥ इत्येव यतिश्राद्धकरणीयानि ,जिनोक्तान्येकादशतपांसि संपूर्णानि ॥ ॥ 'उद्यापने च गृहिभिः कार्यं कर्म यथोदितं । कारार्प्य यतिभिः श्राद्धास्तदभावे च मानसं ॥ १ ॥ यद्दिनान्तरितं कार्यं तदनागाढमुच्यते । एकश्रेण्या दि-

११ कर्मसूदनतपः आगाढं दिन ६४								
ज्ञाना	उ	ए	सी	एग	एद	नि	आं	अष्ट
दर्शना	उ	ए	सी	एग	एद	नि	आं	अ०
वेद	उ	ए	सी	एग	एद	नि	आं	अ०
मोह	उ	ए	सी	एग	एद	नि	आं	अ०
आयु	उ	ए	सी	एग	एद	नि	आं	अ०
नाम	उ	ए	सी	एग	एद	नि	आं	अ०
गोत्र	उ	ए	सी	एग	एद	नि	आं	अ०
अन्त	उ	ए	सी	एग	एद	नि	आं	अ०

धेय यत्तद्यागाद जगौ जिनः ॥ २ ॥' इति जिनोक्तानि तपांसि ॥ ॥ अथ गीतार्थाचीर्णानि तपांस्यभिधीयन्ते । यथा । तत्र प्रथम कल्याणकतपः । उपजातिः—'यस्मिन्दिने तीर्थकरस्य गर्भावतारजन्मव्रतकेवलानि । मोक्षो यमूवात्र दिने तपो यत्कल्याणक तत्समुदाहरन्ति ॥ १ ॥ कल्याणक एकस्मिन्नेकाशनमेतयोर्द्वये चिरस । आचाम्ल त्रितयेपि हि चतुष्टयेप्यनशन प्राहुः ॥ २ ॥ एवं कृत्वा प्रतिवर्षं पूर्यते वर्षसप्तकात् । कल्याणतप एतद्धि तद्दिनान्यागमाद्वदेत् ॥ ३ ॥'—सम्म नमिऊण जिणे चउवीस तेसि चेव पत्तेय । वुच्छं चुइजम्मणादिक्खानाणनिव्वाणकल्लाणे ॥ १ ॥ कत्तियपहुले पचमि समयनाण दुवालसीएक । नेमि चुइ पउमजम्मो तेरसि पउमप्पहे दिक्खा ॥ २ ॥ पनरसि मुक्खो वीरे सिअयारसि तइअ अरसुविहिनाण । मग्गसिरकसिणपचमि जम्मो सुविहिस्स छट्ठचय ॥ ३ ॥ दसमीइ वीरदिक्खा इक्कारसि पउमनाहनिव्वाणो । सिअदसमि जम्म मुक्खो अरस्स इक्कारसीइ पुणो ॥ ४ ॥ अरदिक्खा नमिनाण मल्लिजिणे जम्मदिक्खनाणाइ । चउद्दसि जम्मो पुन्निम निक्खमण समवजिणस्स ॥ ५ ॥ पोसाइदसमिगारसि पासे चारसीतेरसीससिणो । जइसस्स जम्मचया सीयलनाण चउद्दसीए ॥ ६ ॥ सुद्धेछट्ठी विमले नवमी संतिस्सि कारसी अजिए । अभिनन्दणे चउद्दसि पुन्निमधम्मे अ नाणाइ ॥ ७ ॥ माहाइछट्ठि पउमचुइ चारसी सीअलस्स जम्मचया । तेरसि मुक्खाउसभे सिज्जसेऽमावसा नाण ॥ ८ ॥ सियबीयनाणजम्मा वसुपुज्जभिनदणाण अट्ठ जम्मो । तइआई विमलधम्माण चउत्थि दिक्खाइ विमलस्स ॥ ९ ॥ अट्ठमि जम्मो अजिए नवमीयारसीतेरसीसु चय । अजि-

शक्तिसंघपूजा । एतत्फलं दुर्गतेरभाव । इति यतिश्राद्धविधेय आगाढ लघुअष्टाह्निकातपोऽयं ॥ १० ॥ ॥
अथ कर्मसूदनतप । 'प्रत्याख्यानान्यष्टौ प्रत्येक कर्मणा विघाताय । इति कर्मसूदनतप पूर्णं स्याद्युगरस ६४
मिताहोभिः ॥ १ ॥ उपवास १ मेकभक्त २ तथैकसिक्थै ३ कस-
स्थिती ४ र्दत्ति ५ । निर्विकृतिक ६ माचाम्ल ७ चाष्टग्रास ८ क्रमा-
त्कुर्यात् ॥ २ ॥' कर्माणि ज्ञानावरण १ दर्शनावरण २ वेदनीय ३
मोहनीय ४ आयु ५ नाम ६ गोत्र ७ अन्तराय ८ रूपाणि सूदयति
सर्वथा छिनत्तीति कर्मसूदन। तत्रैकं कर्म १ प्रति उपवास २ एकसिक्थ
३ एकस्थान ४ एकदत्ति ५ निर्विकृतिक ६ आचाम्ल ७ अष्टकवल ८
रूप । दिनाष्टके प्रत्याख्यानाष्टक कुर्यात् । एव कर्माष्टकेपि । एव च-
तुःषष्ट्या दिनैः पूर्यन्ते । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने रूप्यमय वृक्ष स्वर्ण-
मय कुठार मोदकचतुःषष्टिं पुस्तकाग्रे ढौकयेत् । बृहत्स्नात्रविधिना

११ कर्मसूदनतपः आगाढ दिन ६४								
ज्ञाना	उ	ए	सी	एग	एद	नि	आं	अट
दर्शना	उ	ए	सी	एग	एद	नि	आं	अ०
वेद	उ	ए	सी	एग	एद	नि	आं	अ०
मोह	उ	ए	सी	एग	एद	नि	आं	अ०
आयु	उ	ए	सी	एग	एद	नि	आं	अ०
नाम	उ	ए	सी	एग	एद	नि	आं	अ०
गोत्र	उ	ए	सी	एग	एद	नि	आं	अ०
अंत	उ	ए	सी	एग	एद	नि	आं	अ०

जिनस्नात्र संघपूजा च । एतत्फलं कर्मक्षयः । इति यतिश्राद्धविधेयमागाढं कर्मसूदनतपः ॥ ११ ॥ इत्येव यति-
श्राद्धकरणीयानि जिनोक्तान्येकादशतपांसि सपूर्णानि ॥ ॥ 'उद्यापने च गृहिभिः कार्यं कर्म यथोदित ।
कारायं यतिभिः श्राद्धास्तदभावे च मानस ॥ १ ॥ यद्दिनान्तरितं कार्यं तदनागाढमुच्यते । एकश्रेण्या दि-

धेय यत्तदागाद जगौ जिनः ॥ २ ॥' इति जिनोक्तानि तपासि ॥ ॥ अथ गीतार्थाचीर्णानि तपास्यभिधीयन्ते । यथा । तत्र प्रथम कल्याणकतपः । उपजातिः—'यस्मिन्दिने तीर्थकरस्य गर्भावतारजन्मव्रतकेवलानि । मोक्षो बभूवात्र दिने तपो यत्कल्याणक तत्समुदाहरन्ति ॥ १ ॥ कल्याणक एकस्मिन्नेकाशनमेतयोर्द्वये विरस । आचाम्ल त्रितयेपि हि चतुष्टयेप्यनशन प्राहुः ॥ २ ॥ एव कृत्वा प्रतिवर्ष पूर्यते वर्षसप्तकात् । कल्याणातप एतद्धि तद्दिनान्यागमाद्वदेत् ॥ ३ ॥'—सम्म नमिऊण जिणे चउवीस तेसि चेव पत्तेय । वुच्छं चुइजम्मणदिक्खानाणनिवाणकल्लाणे ॥ १ ॥ कत्तियबहुले पचमि सभवनाण दुवालसीएऊ । नेमि चुइ पउमजम्मो तेरसि पउमप्पहे दिक्खा ॥ २ ॥ पनरसि मुक्खो वीरे सिअबारसि तइअ अरसुविहिनाणं । मग्गसिरकसिणपचमि जम्मो सुविहिस्स छट्ठचय ॥ ३ ॥ दसमीइ वीरदिक्खा इक्कारसि पउमनाहनिवाणो । सिअदसमि जम्म मुक्खो अरस्स इक्कारसीइ पुणो ॥ ४ ॥ अरदिक्खा नमिनाण मल्लिजिणे जम्मदिक्खनाणाइ । चउदसि जम्मो पुन्निम निक्खमण सभवजिणस्स ॥ ५ ॥ पोसाइदसमिगारसि पासे बारसीतेरसीससिणो । जहसंख जम्मवया सीयलनाण चउदसीए ॥ ६ ॥ सुद्धेलट्ठी विमले नवमी संतिस्सि कारसी अजिए । अभिनन्दणे चउदसि पुन्निमधम्मे अ नाणाइं ॥ ७ ॥ माहाइछट्ठि पउमचुइ बारसी सीअलस्स जम्मवया । तेरसि मुक्खाउसभे सिज्जसेऽमावसा नाण ॥ ८ ॥ सियबीयनाणजम्मा वसुपुज्जभिनन्दणाण अट्ठ जम्मो । तइआई विमलधम्माण चउत्थि दिक्खाइ विमलस्स ॥ ९ ॥ अट्ठमि जम्मो अजिए नवमीबारसीतेरसीसु वय । अजि

शक्तिसंघपूजा । एतत्फल दुर्गतेरभाव । इति यतिश्राद्धविधेय आगाढ लघुअष्टाह्निकातपोद्वय ॥ १० ॥ ॥
अथ कर्मसूदनतपः । 'प्रत्याख्यानान्यष्टौ प्रत्येक कर्मणां विघाताय । इति कर्मसूदनतपः पूर्णं स्याद्युगरस ६४ मिताहोभिः ॥ १ ॥ उपवास १ मेकभक्तं २ तथैकसिक्थं ३ कस्थिती ४ दत्ति ५ । निर्विकृतिक ६ माचाम्ल ७ चाष्टग्रास ८ क्रमात्कुर्यात् ॥ २ ॥' कर्माणि ज्ञानावरण १ दर्शनावरण २ वेदनीय ३ मोहनीय ४ आयु ५ नाम ६ गोत्र ७ अन्तराय ८ रूपाणि सूदयति सर्वथा छिनत्तीति कर्मसूदन। तत्रैक कर्म १ प्रति उपवास २ एकसिक्थ ३ एकस्थान ४ एकदत्ति ५ निर्विकृतिक ६ आचाम्ल ७ अष्टकवल ८ रूप । दिनाष्टके प्रत्याख्यानाष्टक कुर्यात् । एष कर्माष्टकेपि । एव चतुष्षष्ट्या दिनैः पूर्यन्ते । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने रूप्यमय वृक्ष स्वर्णमय कुठार मोदकचतुःषष्टिं पुस्तकाग्रे ढौकयेत् । बृहत्स्नात्रविधिना जिनस्नात्र संघपूजा च । एतत्फल कर्मक्षयः । इति यतिश्राद्धविधेयमागाढं कर्मसूदनतपः ॥ ११ ॥ इत्येव यतिश्राद्धकरणीयानि जिनोक्तान्येकादशतपांसि संपूर्णानि ॥ ॥ 'उद्यापने च गृहिभिः कार्यं कर्म यथोदित । काराप्यं यतिभिः श्राद्धात्तदभावे च मानस ॥ १ ॥ यद्दिनान्तरितं कार्यं तदनागाढमुच्यते । एकश्रेण्या दि-

११ कर्मसूदनतपः आगाढं दिन ६४								
ज्ञाना	उ	ए	सी	एग	एद	नि	आं	अष्ट
दर्शना	उ	ए	सी	एग	एद	नि	आं	अ०
वेद	उ	ए	सी	एग	एद	नि	आं	अ०
मोह	उ	ए	सी	एग	एद	नि	आं	अ०
आयु	उ	ए	सी	एग	एद	नि	आं	अ०
नाम	उ	ए	सी	एग	एद	नि	आं	अ०
गोत्र	उ	ए	सी	एग	एद	नि	आं	अ०
अंत	उ	ए	सी	एग	एद	नि	आं	अ०

अट्ठमि नमिजम्मु नवमि कुंथुचुई । सिअचीअ सुओ सुमई पंचमि छट्ठि नेमिजम्मवया ॥ २४ ॥ पासस्सट्ठमि मुक्खो सुवयजुइ पुन्निमाइ भद्दवए । संतिससि चवणमुक्खो सत्तमि अट्ठमि सुपासचुई ॥ २५ ॥ सियनवमि सुविहिमुक्खो नेमिस्सा सोअवमायसानाण । पुन्निम सुनअनमिजिनवल्लह पयवेसु पणयाण ॥ २६ ॥ नारकाणामपि मुहूर्तप्रमोदकारित्वात्त्रिभुवनत्रयस्य कल्याणकराणीति कल्याणकानि । तानि च शुभदिने कल्याणकदिने प्रारभ्यन्ते । यस्यां यस्यां तिथौ आगमवचनेन जिनानां कल्याणकमायाति तत्र च्यवनजन्मदीक्षाज्ञाननिर्वाणलक्षणं । तद्दिने एकस्मिन्कल्याणके एकभक्तं द्वयोर्निर्विकृतिकं त्रिष्वाचाम्लं चतुर्षूपवासः । पञ्चकल्याणकसमे प्रथमदिने उपवासो द्वितीयदिने एकभक्तं ॥ एग उववासो दो अंबिलाइ निव्विआइ तेरस हवंति । एगासणाइ चुलसी कल्लाणतवस्स परिमाणं ॥ १ ॥ एवं वर्षं संपूर्णं वर्षसप्तकमेवमेव कुर्यात् । तदन्ते उद्यापने जिनाग्रतश्चतुर्विंशतिसंख्यया स्नानपट्टस्नात्रकलशचन्दनपात्रधूपदहनपात्रपरिधापनिकानैवेद्यपात्रकुम्पिकाप्रभृतिपूजोपकरणानां बृहत्स्नात्रविधिना जिनस्नात्रं चतुर्विंशतिसंख्यया सर्वपक्वान्नजातिफलजातिढौकनं चतुर्विंशतिस्वर्णमयरत्नजटिततिलकदानं साधुभ्यो वस्त्रान्नपात्रदानं संघवात्सल्यं संघपूजा च । अथवा जिनानां च्यवनजन्मदिनेषु प्रत्येकमेकैकोपवासः । दीक्षाज्ञाननिर्वाणेषु येन तीर्थंकरेण यादृक् तपो रचितं तादृगेवैकान्तरोपवासरीत्या विधीयते । इयं द्वितीया कल्याणकतपोरीतिः ॥ यत्नकन्यासः । उद्यापनं पूर्ववत् । एतत्फलं तीर्थंकर-

१ उपवास एकना चार एकासणा ४ आयंबिल एकना त्रण गणतां ६ निविना बेगणतां २६—८४ एकासणा सर्व मळीने १२० एकासणानि० ।

अभिनंदणचम्माण फग्गुणे कसिणछट्ठीए ॥ १० ॥ नाणसुपासे सत्तमि सुपासमुक्खो ससिस्स नाण च ।
सुविहिसुईनवमीए इक्कारसि नाणमुसमस्स ॥ ११ ॥ सिज्जसजम्मसुघय नाण बारसद्दिदिक्खसेअसे । तेरसि
चउद्दसि जम्मो पनरसि दिक्खाइ वसुपुज्जे ॥ १२ ॥ सियचीय चउत्थि अट्ठमि चवण अरमल्लिसभवजिणाण ।
बारसि मुक्खो मल्लिस्स जयइ मुणिसुव्वयवय च ॥ १३ ॥ चित्ताइचउत्थि पासे चवण नाण च पचमी चवण ।
ससिणो छसमे अट्ठमि जन्मवया सुद्धतइयाए ॥ १४ ॥ कुथूनाण पचमि सिद्धीसभव अणतअजियाण ।
नवमिहिं मुक्खो सुविहस्स नाण मिक्कारसीए उ ॥ १५ ॥ तेरसिजम्मो वीरे पुक्खिमपउमस्स नाणमह पढ्ले ।
वइसाहपडिवबीआ कुथु तह सीअले मुक्खो ॥ १६ ॥ पचमीहिं कुथुदिक्खा सीअलचुइ छट्टि दसमि नमि-
मुक्खो । तेरसि जम्मो चउद्दसि दिक्खा नाण अणतस्स ॥ १७ ॥ चवदसि जाओ कुथु सिअचउत्थिचुओभि-
नंदणो जयइ । सत्तमि धम्मोवि चुओ अट्ठमि अभिनंदणो सिद्धो ॥ १८ ॥ जम्मट्ठमि नवमियव सुमइ जिणे
दसमि केवल वीरे । बारसि तेरसि चुअ विमल अजिय अह जिट्ठबहुलमि ॥ १९ ॥ छट्टि चुई सेअसे सुवय-
जम्मट्ठमी नवमिमुक्खो । तेरसि जम्म मुक्खो चउद्दसि दिक्खा य सतिस्स ॥२०॥ सिअपचमी य मुक्खो धम्मे
नवमीइ वासपुज्जचुई । बारसि सुपासजम्मो तेरसि दिक्खा सुपासस्स ॥ २१ ॥ आसाढबहुचउत्थी उसमचुई
सत्तमी विमलमुक्खो । नमिदिक्खा नवमीए सिअछट्ठिहिं वीरजिणचवण ॥ २२ ॥ अट्ठमि सिद्धो नेमी
वसुपुज्जो निव्वुओ चउद्दसीए । सावणबहुले तइआ सिद्धिगओ जयइ सेअसो ॥ २३ ॥ सत्तमि चवणमणते

अट्ठमि नमिजम्मु नवमि कुंथुचुई । सिअपीअ चुओ सुमई पंचमि छट्ठि नेमिजम्मवया ॥ २४ ॥ पासस्सट्ठमि
मुक्खो सुव्वयचुइ पुन्निमाइ भद्दवए । सत्तिससि चवणमुक्खो सत्तमि अट्ठमि सुपासचुई ॥ २५ ॥ सियनवमि
सुविहिमुक्खो नेमिस्सा सोअवमावसानाण । पुन्निम मुनअनमिजिनवल्लह पयदेसु पणयाण ॥ २६ ॥ नार-
काणामपि मुहूर्तप्रमोदकारित्वात्त्रिजगत्त्रयस्य कल्याणकराणीति कल्याणकानि । तानि च शुभदिने कल्याणकदिने
प्रारभ्यन्ते । यस्यां यस्यां तिथौ आगमवचनेन जिनानां कल्याणकमायाति तत्र च्यवनजन्मदीक्षाज्ञाननि-
र्वाणलक्षण । तद्दिने एकस्मिन्कल्याणके एकभक्त द्वयोर्निर्विकृतिक त्रिष्वाचाम्ल चतुर्षूपवासः । पञ्चकल्याणक-
सगमे प्रथमदिने उपवासो द्वितीयदिने एकभक्त ॥ एग उववासो दो अंबिलाइ निविआइ तेरस हवंति ।
एगासणाइं चुलसी कल्लाणतवस्स परिमाण ॥ १ ॥ एवं वर्षं सपूर्य वर्षसप्तकमेवमेव कुर्यात् । तदन्ते उद्यापने
जिनाग्रतश्चतुर्विंशतिसंख्यया स्नानपट्टस्नात्रकलशचन्दनपात्रधूपदहनपात्रपरिधापनिकानैवेद्यपात्रकुम्पिकाप्रभृ-
तिपूजोपकरणाना बृहत्स्नात्रविधिना जिनस्नात्र चतुर्विंशतिसंख्यया सर्वपक्वान्नजातिफलजातिढौकनं चतुर्विंश-
तिस्वर्णमयरत्नजटिततिलकदान साधुभ्यो वस्त्रान्नपात्रदान संघवात्सल्य संघपूजा च । अथवा जिनानां च्यवन-
जन्मदिनेषु प्रत्येकमेकैकोपवास. । दीक्षाज्ञाननिर्वाणेषु येन तीर्थकरेण यादृक् तपो रचित तादृगेवैकान्तरोपवा-
सरीत्या विधीयते । इय द्वितीया कल्याणकतपोरीतिः ॥ यन्त्रकन्यासः । उद्यापन पूर्ववत् । एतत्फल तीर्थकर-

१ उपवास एकमा चार एकासणा ४ आयम्बिल एकमा त्रण गणवां ३ निविना बेगणवां २६–८४ एकासणा सर्व मळीने १२० एकासणानि० ।

नामकर्मयन्ध. । इति यतिश्राद्धविधेयमागाढ कल्याणकतप' ॥ १ ॥ ॥ अथ ज्ञानतप' । एकान्तरोपवासैश्च त्रिभिर्वापि निरन्तरैः । कार्यं ज्ञानतपश्चोद्यापने ज्ञानस्य पूजन ॥ १ ॥ ज्ञानाराधनार्थं तपः ज्ञानतपः। तत्रोपवासत्रय एकान्तरं निरन्तर वा यथाशक्ति विधीयते। उद्यापने साधुभ्यः वस्त्रान्नपात्रदान । इति श्राद्धकरणीयमागाढ ज्ञान-

४ ज्ञानादित्रीणि तपांसि आगाढानि ३										
ज्ञान	उ	उ	उ	ज्ञान	उ	पा	उ	पा	उ	पा
दर्श	उ	उ	उ	ज्ञान	उ	पा	उ	पा	उ	पा
चारि	उ	उ	उ	ज्ञान	उ	पा	उ	पा	उ	पा

तपः ॥ २ ॥ ॥ दर्शनतपोपि ज्ञानवत् । नवर उद्यापने वृहत्स्नात्रविधिना स्नात्र जिनप्रतिमाग्रे पङ्क्तिढौकन साधुभ्यो वस्त्रान्नपात्रदान सम्यक्त्वोद्भावनाश्रवण । एतत्फल विमलबोधिप्राप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढं दर्शनतपः ॥ ३ ॥ ॥ चारित्रतपोपि ज्ञानवत् ॥ यत्नकन्यासः । नवर उद्यापने यतिभ्य' पङ्क्तिवस्त्रान्नपात्रदान । एतत्फल विमलचारित्रप्राप्ति' । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ चारित्रतपः ॥ ४ ॥ ॥ अथ चान्द्रायणतपः ॥ चान्द्रायण च द्विविध प्रथम यवमध्यम । द्वितीय वज्रमध्य तु तयोश्चर्या विधीयते ॥ १ ॥ यवमध्ये प्रतिपद् शुक्लामारभ्य वृद्धितः । एकैकयोर्ग्रासदत्त्यो राका यावत्समानयेत् ॥ २ ॥ ततः कृष्णप्रतिपदमारभ्यैकैकहानितः । अमावास्यां तदेकत्वे यवमध्य च पूर्यते ॥ ३ ॥ वज्रमध्ये कृष्णपक्षमारभ्य प्रतिपत्तिथिः । कार्या पञ्चदशग्रासदत्तिभ्यां हानिरेकत' ॥ ४ ॥ अमावास्यां च परतो ग्रासदत्ती विवर्धयेत् । यावत्पञ्चदशैव स्यु. पूर्णमास्यां च मासतः ॥ ५ ॥ एव मासद्वयेन स्यात्पूर्णं च यववज्रकं । चान्द्रायणं यतेर्दत्तैः तस्या ग्रासस्य

अथ चाग्रायणतपः

१ मास		६ कार्तिकवदि		
प	५	नाण संभवजिणस्स	उप	१
मि	१२	चवण नेमिजिणस्स	उप	१
	१२	जम्मो पउमप्पहस्स	उप	१
प	१३	दिक्खा पउमप्पहस्स	उप	१
प	१५	मुक्खो वीरजिणस्स	उप	१
		कार्तिकसुदि		
प	३	नाण सुविहिजिणस्स	उप	१
प	१२	नाण अरनाहस्स	उप	१
२ मास		मार्गसिरवदि		
प	५	जम्मो सुविहिनाहस्स	उ	१
प	६	दिक्खा सुविहिनाहस्स	उ	१
प	१०	दिक्खा वीरजिणस्स	उ	१
प	११	मुक्खो पउमप्पहस्स	उ	१०

		मार्गसिरसुदि		
नि	१०	जम्मो अरजिणस्स	उ	१
	१०	मुक्खो अरजिणस्स	उ	१०
उ	११	दिक्खा अरजिणस्स	उ	१
	११	नाण नमिजिणस्स	उ	२
	११	जम्मो मल्लिजिणस्स	उ	१
	११	दिक्खा मल्लिजिणस्स	उ	१
प	११	नाण मल्लिजिणस्स	उ	१
प	१४	जम्मो संभवजिणस्स	उ	१
प	१५	दिक्खा संभवजिणस्स	उ	१
३ मास		पौषवदि		
प	१०	जम्मो पासजिणस्स	उ	१
प	११	दिक्खा पासजिणस्स	उ	१
प	१२	जम्मो चंदप्पहस्स	उ	१
प	१३	दिक्खा चंदप्पहस्स	उ	२
प	१४	नाण सीयलजिणस्स	उ	१

		पौषसुदि		
प	६	नाण विमलजिणस्स	उ	२
प	९	नाण संतिजिणस्स	उ	२
प	११	नाण अजियजिणस्स	उ	२
प	१४	नाणं अभिनंदणस्स	उ	२
प	१५	नाण धम्मनाहस्स	उ	२
४ मास		माघवदि		
प	६	चवण पउमप्पहस्स	उ	१
नि	१२	जम्मो सीयलजिणस्स	उ	१
	१२	दिक्खा सीयलजिणस्स	उ	२
प	१३	मुक्खो रिसहजिणस्स	उ	१
प	१५	नाण सेयंसजिणस्स	उ	२
		माघसुदि		
नि	२	नाण वासुपुज्जस्स	उ	१
	२	जम्मो अभिणंदणस्स	उ	१

नामकर्मबन्ध' । इति यतिश्राद्धविधेयमागाढ कल्याणकतप' ॥ १ ॥ ॥ अथ ज्ञानतप' । एकान्तरोपवासैश्च त्रिभिर्वापि निरन्तरै' । कार्यं ज्ञानतपश्चोद्यापने ज्ञानस्य पूजन ॥ १ ॥ ज्ञानाराधनार्थं तपः ज्ञानतपः। तत्रोपवासत्रय एकान्तर निरन्तर वा यथाशक्ति विधीयते। उद्यापने साधुभ्यः वस्त्रान्नपात्रदान । इति श्राद्धकरणीयमागाढ ज्ञानतप ॥ २ ॥ ॥ दर्शनतपोपि ज्ञानवत् । नवर उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिना स्नात्र जिनप्रतिमाग्रे पङ्क्तिढौकन साधुभ्यो वस्त्रान्नपात्रदान सम्यक्त्वोच्चारणाश्रवण । एतत्फलं विमलबोधिप्राप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ दर्शनतप' ॥ ३ ॥ ॥ चारित्रतपोपि ज्ञानवत् ॥ यन्त्रकन्यासः । नवर उद्यापने यतिभ्य' पङ्क्तिढौकनवस्त्रान्नपात्रदान । एतत्फल विमलचारित्रप्राप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ चारित्रतपः ॥ ४ ॥ ॥ अथ चान्द्रायणतपः ॥ चान्द्रायण च द्विविध प्रथम यवमध्यम । द्वितीय वज्रमध्य तु तयोश्चर्या विधीयते ॥ १ ॥ यवमध्ये प्रतिपद शुक्लामारभ्य वृद्धितः । एकैकयोर्ग्रासदत्त्यो राका यावत्समानयेत् ॥ २ ॥ ततः कृष्णप्रतिपदमारभ्यैकैकहानितः । अमावास्या तदेकस्ये यवमध्य च पूर्यते ॥ ३ ॥ वज्रमध्ये कृष्णपक्षमारभ्य प्रतिपत्तिथिः । कार्या पञ्चदशग्रासदत्तिभ्यां हानिरेकतः ॥ ४ ॥ अमावास्याश्च परतो ग्रासदत्ती चिवर्धयेत् । यावत्पञ्चदशैव स्युः पूर्णमास्यां च मासतः ॥ ५ ॥ एव मासद्वयेन स्यात्पूर्णं च यववज्रकं । चान्द्रायण यतेर्दत्तेः सख्या ग्रासस्य

४ ज्ञानादित्रीणि तपांसि आगाढानि ३										
ज्ञान	उ	उ	उ	अप	उ	पा	उ	पा	उ	पा
दर्श	उ	उ	उ	अप	उ	पा	उ	पा	उ	पा
चारि	उ	उ	उ	अप	उ	पा	उ	पा	उ	पा

		वैशाखसुदि		
प	४	चवण अभिनंदनस्स	उ	१
प	७	चवण धम्मस्सजिणस्स	उ	१
मि	८	मुक्खो अभिनंदनस्स	स	१०
	८	जम्मो सुमइजिणस्स	उ	१
प	९	दिक्खा सुमइ० "	उ	१
प	१०	नाण सीयलजिणस्स	उ	२
प	१२	चवण विमलजिणस्स	उ	१
प	१३	चवण अजियजिणस्स	उ	१

८मास		ज्येष्ठवदि		
प	६	चवण सेयसस्स	उ	१
प	८	जम्मो मुणिसुव्वय	उ	१
९	९	मुक्खो मुणिसुव्वय	उ	१०
मि	१३	जम्मो संतिना०	उ	१
	१३	मुक्खो संतिना०	उ	१०
प	१४	दिक्खा संतिना०	स	२

		ज्येष्ठसुदि		
प	५	मुक्खो धम्मनाहस्स	उ	१०
प	९	चवण वासुपुज्जस्स	उ	१
प	१२	जम्मो सुपासस्स	उ	१
प	१३	दिक्खा सुपासस्स	उ	२

९मास		आषाढवदि		
प	४	चवण रिसहस्स	उ	१
प	७	मुक्खो विमलस्स	उ	१०
प	९	दिक्खा नमिनाहस्स	उ	२

		आषाढसुदि		
प	६	चवण वीरजिणस्स	उ	१
प	८	मुक्खो नेमिजिणस्स	उ	१०
प	१४	मुक्खो वासुपुज्जस्स	उ	१०

१०मास		श्रावणवदि		
प	३	मुक्खो सेयसस्स	स	१०
प	७	चवण अणंतस्स	उ	१
प	८	जम्मो नमिनाहस्स	उ	१
प	९	चवण कुंथुनाहस्स	उ	१

		श्रावणसुदि		
प	२	चवण सुमति०	उ	१
प	५	जम्मो नेमि०	उ	१
प	६	दिक्खा नेमि०	उ	२
प	८	मुक्खो पास०	उ	१०
प	२५	च० मुनिसु०	उ	१

११मास		भाद्रवावदि		
प	७	चवण संतिस्स	उ	१
प	७	मु० चंदप्पभस्स	उ	१
प	८	चवण सुपासस्स	स	१

मि	१	जम्मो विमलस्स	उ	१
	१	जम्मो धम्मनाहस्स	उ	१
प	४	दिक्खा विमलस्स	उ	२
प	८	जम्मो [illegible]	उ	१
प	९	दिक्खा [illegible]	उ	२
प	१२	दिक्खा अभिणंदणस्स	उ	२
प	१३	दिक्खा धम्मस्स	उ	२
५ मास		फागुणवदि		
प	६	णाण सुपासस्स	उ	२
मि	७	मुक्खो सुपासस्स	उ	१०
	७	णाण चंदप्पहस्स	उ	२
प	९	चवणं सुविहिस्स	उ	१
प	११	णाण रिसहस्स	उ	२
मि	१२	जम्मो सेयंसस्स	उ	१
	१२	णाण मुणिसुव्वयस्स	उ	२
प	१३	दिक्खा सेयंसस्स	उ	२
प	१४	जम्मो वासुपुज्जस्स	उ	१
प	१५	दिक्खा वासुपुज्जस्स	उ	१

		फागुणसुदि		
प	२	चवण अरजिणस्स	उ	१
प	४	चवण मल्लिजिणस्स	उ	१
प	८	चवण संभवजिणस्स	उ	१
नि	१२	मुक्खो मल्लिजिणस्स	उ	१०
	१२	दिक्खा मुणिसुव्वयस्स	उ	२
६ मास		चेत्तवदि		
नि	४	चवण पासजिणस्स	उ	१
	४	णाण पासजिणस्स	उ	२
प	५	चवण चंदप्पहस्स	उ	१
	८	जम्मो रिसहजिणस्स	उ	१
नि	८	दिक्खा रिसहजिणस्स	उ	२
		चेत्तसुदि		
प	३	णाण कुंथुजिणस्स	उ	२
जो	५	मुक्खो संभवजिणस्स	उ	१०

	५	मुक्खो अणंतजिणस्स	उ	१०
	५	मुक्खो अजियजिणस्स	उ	१०
प	९	मु० सुमइजिणस्स	उ	१०
प	११	णाण सुमइजिणस्स	उ	२
प	१३	जम्मो महावीरस्स	उ	१
प	१५	णाण पउमप्पहस्स	उ	२
७ मास		वइसाहवदि		
प	१	मुक्खो कुंथुनाहस्स	उ	१०
प	२	मुक्खो सीयलजिणस्स	उ	१०
प	५	दिक्खा कुंथुनाहस्स	उ	२
प	६	चवण सीयलजिणस्स	उ	१
प	१०	मुक्खो नमिजिणस्स	उ	१०
प	१३	जम्मो अणंतजिणस्स	उ	१
पुणो	१४	दिक्खा अणंतजिणस्स	उ	२
	१४	णाण अणंतजिणस्स	उ	२
	१४	जम्मो कुंथुजिणस्स	उ	१

		वेशाखसुदि		
प	४	चवणं अभिनंदणस्स	उ	१
प	७	चवण धम्मस्सजिणस्स	उ	१
मि	८	मुक्खो अभिनंदणस्स	उ	१०
	८	जम्मो सुमइजिणस्स	उ	१
प	९	दिक्खा सुमइ० "	उ	१
प	१०	नाण वीरस्सजिणस्स	उ	२
प	१२	चवण विमलजिणस्स	उ	१
प	१३	चवण अजियजिणस्स	उ	१
८मास		ज्येष्ठवदि		
प	६	चवण सेयंसस्स	उ	१
प	८	जम्मो मुणिसुव्वय	उ	१
९	९	मुक्खो मुणिसुव्वय	उ	१०
मि	१३	जम्मो संतिना०	उ	१
	१३	मुक्खो संतिना०	उ	१०
प	१४	दिक्खा संतिना०	उ	२

		ज्येष्ठसुदि		
प	५	मुक्खो धम्मनाहस्स	उ	२०
प	९	चवण वासुपुज्जस्स	उ	१
प	१२	जम्मो सुपासस्स	उ	१
प	१३	दिक्खा सुपासस्स	उ	२
९मास		आषाढवदि		
प	४	चवण रिसहस्स	उ	१
प	७	मुक्खो विमलस्स	उ	१०
प	९	दिक्खा नमिनाहस्स	उ	२
		आषाढसुदि		
प	६	चवण वीरजिणस्स	उ	१
प	८	मुक्खो नेमिजिणस्स	उ	१०
प	१४	मुक्खो वासुपुज्जस्स	उ	२०

१०मास		श्रावणवदि		
प	३	मुक्खो सेयंसस्स	उ	१०
प	७	चवण अणंतस्स	उ	१
प	८	जम्मो नमिनाहस्स	उ	१
प	९	चवण कुंथुनाहस्स	उ	१
		श्रावणसुदि		
प	२	चवण सुमति०	उ	१
प	५	जम्मो नेमि०	उ	१
प	६	दिक्खा नेमि०	उ	२
प	८	मुक्खो पास०	उ	१०
प	२५	च० मुनिसु०	उ	१
११मास		भाद्रपदवदि		
प	७	चवण संतिस्स	उ	१
प	७	मु० चंदप्पभस्स	उ	१
प	८	चवण सुपासस्स	उ	१

प ९	भाद्रपदसुदि सु० सुविधि	च १०
१२मास प ११ प १५	आश्विनवदि ना० गर्भापहारस्स ना० नेमिजिनस्स	च १ च १
प १५	आश्विनसुदि चवन नमिनाहस्स	च १

देहिनाम् ॥ ६ ॥ चन्द्रस्य अयन हानिवृद्धिभिस्तद्रूप तच्चान्द्रायण । यववन्मध्य स्थूलमाद्यन्तहीन मध्य यस्य तद्यवमध्यं । वज्रवन्मध्य सूक्ष्ममाद्यन्तस्थूल मध्य यस्य तद्वज्रमध्य । अत्र स्थूलहीनते दत्तिग्रासयु स्वस्तोकत्वप्रतिबद्धे । पूर्वं यवमध्यचान्द्रायणे शुक्ले प्रतिपदमारभ्य एकैकग्रासदत्तिवृद्ध्या पूर्णिमायावत्पञ्चदशसंख्ये कवलदत्ती जायेते आद्ययत्योः । ततः कृष्णप्रतिपदमारभ्यैकैकहान्या यावदमावास्या आद्ययत्योरेकैकग्रासदत्ती जायेते । इति यवमध्यचान्द्रायण ॥ वज्रमध्ये तु कृष्णप्रतिपदमारभ्य पञ्चदशसंख्यग्रासदत्तिभ्यामेकैकहान्या आद्ययत्योरमावास्यामेकैकग्रासदत्ती जायेते । ततः शुक्लप्रतिपदमारभ्यैकैकग्रासद-

यवमध्यचान्द्रायणतपः शुक्लपक्षेवृद्धिः																यवमध्यचान्द्रायणतप कृष्णपक्षेहानिः															
शुक्ल तिथि	१ क	२ क	३ क	४ क	५ क	६ क	७ क	८ क	९ क	१० क	११ क	१२ क	१३ क	१४ क	१५ क	१५ क	१४ क	१३ क	१२ क	११ क	१० क	९ क	८ क	७ क	६ क	५ क	४ क	३ क	२ क	१ क	कृष्णपक्षः

वज्रमध्यचान्द्रायणतपः कृष्णपक्षेहानिः																वज्रमध्यचान्द्रायणतपः शुक्लपक्षेवृद्धिः															
कृष्ण तिथि	१५ क	१४ क	१३ क	१२ क	११ क	१० क	९ क	८ क	७ क	६ क	५ क	४ क	३ क	२ क	१ क	१ क	२ क	३ क	४ क	५ क	६ क	७ क	८ क	९ क	१० क	११ क	१२ क	१३ क	१४ क	१५ क	शुक्लपक्षः

त्तिवृद्ध्या आद्यपत्यो' पूर्णिमां यावत्पञ्चदशग्रासवृत्ती भवतः । एव वज्रमध्यचान्द्रायणमपि मासेन पूर्यते । यवमन्यासः । एव मासद्वय पूरयित्वा उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिना स्नात्र विधाय पक्विकृतिनैवेद्यसहितं रूप्यमय चन्द्र सुवर्णमय यव सुवर्णमयांश्च षष्टिकावत्कवलसंख्यया मोदकांश्चाशीत्यधिकचतु'शतसंख्यानि ४८० जिनप्रतिमाग्रे ढौकयेत् । साधुभ्यो वस्त्रान्नपात्रदान सघपूजा च । एतत्फल सर्वपापापगमः पुण्यवृद्धिश्च । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढं द्विविध चान्द्रायणतपः ॥ ५ ॥ ॥ अथ वर्धमानतपः । 'ऋषभादेर्जिनसंख्यावृद्ध्या

६ वर्धमानतपदिन ६२५ अथैकैक जिनप्रति सख्यादि ६२५ आगाढंदिन २५

ऋषभ	अ	सं	अ	सु	प	सु	चं	सु	शी	श्रे	वा	वि	अ	ध	शां	कु	अ	म	मु	न	ने	पा	वर्ध
१ ए	२ ए	३ ए	४ ए	५ ए	६ ए	७ ए	८ ए	९ ए	१० ए	११ ए	१२ ए	१३ ए	१४ ए	१५ ए	१६ ए	१७ ए	१८ ए	१९ ए	२० ए	२१ ए	२२ ए	२३ ए	२४ ए
वर्ध	पा	ने	न	मु	म	अ	कु	शां	ध	अ	वि	वा	श्रे	शी	सु	च	सु	प	सु	अ	सं	अ	ऋ
१ ए	२ ए	३ ए	४ ए	५ ए	६ ए	७ ए	८ ए	९ ए	१० ए	११ ए	१२ ए	१३ ए	१४ ए	१५ ए	१६ ए	१७ ए	१८ ए	१९ ए	२० ए	२१ ए	२२ ए	२३ ए	२४ ए
ऋष	अ	सं	अ	सु	प	सु	च	सु	शी	श्रे	वा	वि	अ	ध	शां	कु	अ	म	मु	म	ने	पा	वर्ध
२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए

प १	मार्गशुदि सु० सुविधि	उ १०
१२मास प ११ प १५	आश्विनवदि सा० गर्भापहारस्स सा० नेमिविमस्स	उ १ उ १
प १५	आश्विनसुदि चर्म नमिनाहस्स	उ १

वेष्टिताम् ॥ ६ ॥ चन्द्रस्य अयन हानिवृद्धिभिस्तद्रूप तच्चान्द्रायण । यव-वन्मध्य स्थूलमाद्यन्तहीन मध्य यस्य तद्यवमध्यं । वज्रवन्मध्य सूक्ष्म-माद्यन्तस्थूल मध्य यस्य तद्वज्रमध्य । अत्र स्थूलहीनते वृत्तिग्रासयो-स्त्वस्तोकत्वप्रतिपत्त्वे । पूर्वं यवमध्यचान्द्रायणे शुक्ले प्रतिपदमारभ्य एकै-कग्रासवृत्तिवृद्ध्या पूर्णिमायावत्पञ्चदशग्रासरूपे कवलदत्ती जायेते आद्य-यत्योः । ततः कृष्णप्रतिपदमारभ्यैकैकहान्या यावदमावास्या आद्यय-त्योरेकैकग्रासदत्ती जायेते । इति यवमध्यचान्द्रायण ॥ वज्रमध्ये तु कृष्णप्रतिपदमारभ्य पञ्चदशसंख्यग्रासदत्तिभ्यामेकैकहान्या आद्ययत्यो-रमावास्यामेकैकग्रासदत्ती जायेते । ततः शुक्लप्रतिपदमारभ्यैकैकग्रासद-

यवमध्यचान्द्रायणतपः शुक्लपक्षेवृद्धिः																यवमध्यचान्द्रायणतपः कृष्णपक्षेहानिः															
शुक्ल तिथि	१ क	२ क	३ क	४ क	५ क	६ क	७ क	८ क	९ क	१० क	११ क	१२ क	१३ क	१४ क	१५ क	१५ क	१४ क	१३ क	१२ क	११ क	१० क	९ क	८ क	७ क	६ क	५ क	४ क	३ क	२ क	१ क	कृष्णपक्षः
वज्रमध्यचान्द्रायणतपः कृष्णपक्षेहानिः																वज्रमध्यचान्द्रायणतपः शुक्लपक्षेवृद्धिः															
कृष्ण तिथि	१५ क	१४ क	१३ क	१२ क	११ क	१० क	९ क	८ क	७ क	६ क	५ क	४ क	३ क	२ क	१ क	१ क	२ क	३ क	४ क	५ क	६ क	७ क	८ क	९ क	१० क	११ क	१२ क	१३ क	१४ क	१५ क	शुक्लपक्ष

त्तिवृद्ध्या श्राद्धयत्यो. पूर्णिमां यावत्पञ्चदशग्रासदत्ती भवतः । एव वज्रमध्यचान्द्रायणमपि मासेन पूर्यते । यवन्यासः । एव मासद्वय पूरयित्वा उद्यापने वृहत्स्नात्रविधिना स्नात्र विधाय पङ्क्तिकृतिनैवेद्यसहित रूप्यमय चन्द्र सुवर्णमय वज्र सुवर्णमयाश्च षष्टिकावत्कवलसंख्यया मोदकाश्चाशीत्यधिकचतुःशतसख्यानि ४८० जिनप्रतिमाग्रे ढौकयेत् । साधुभ्यो वस्त्रान्नपात्रदान सघपूजा च । एतत्फल सर्वपापापगमः पुण्यवृद्धिश्च । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढं द्विविध चान्द्रायणतपः ॥ ९ ॥ ॥ अथ वर्धमानतपः । ऋषभादेर्जिनसख्यावृद्ध्या

९ वर्धमानतपदिन ६२५ अथैकैक जिनप्रति सख्यादि ६२५ आगाढंदिन २५

ऋषभ	अ	सं	अ	सु	प	सु	चं	सु	शी	श्रे	वा	वि	अ	ध	शां	कु	अ	म	मु	न	ने	पा	वर्ध
१ ए	२ ए	३ ए	४ ए	५ ए	६ ए	७ ए	८ ए	९ ए	१० ए	११ ए	१२ ए	१३ ए	१४ ए	१५ ए	१६ ए	१७ ए	१८ ए	१९ ए	२० ए	२१ ए	२२ ए	२३ ए	२४ ए
वर्ध	पा	ने	न	सु	म	अ	कु	शां	ध	अ	वि	वा	श्रे	शी	सु	च	सु	प	सु	अ	सं	अ	ऋ
१ ए	२ ए	३ ए	४ ए	५ ए	६ ए	७ ए	८ ए	९ ए	१० ए	११ ए	१२ ए	१३ ए	१४ ए	१५ ए	१६ ए	१७ ए	१८ ए	१९ ए	२० ए	२१ ए	२२ ए	२३ ए	२४ ए
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	अं	प	सु	चं	सु	शी	श्रे	वा	वि	अ	ध	शां	कु	अ	म	मु	न	ने	पा	वर्ध
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए	२५ ए

तावन्ति चैकभक्तानि । वीरादेरप्येव वलमान वर्धमानतप ॥ १ ॥ अथवैकैकमर्हत प्रत्येकाशनस्थानि च । पश्च विंशतिसख्यानि पट्टशताङ्केन पूर्यंते ॥ २ ॥ वर्धते तद्वर्धमान । तत्र ऋषभनाथस्यैकमेकभक्त अजितस्य द्वे एव क्रमेण यावच्छ्रीवर्धमानस्य चतुर्विंशतिः पुनर्वलमानरीत्या श्रीवर्धमानस्यैकैकभक्त पार्श्वनाथस्य द्वे यावदृष-भस्य पश्चानुपूर्व्या पश्चविंशतिः इतिपरिवर्तनद्वायनैका रीतिः । अथवैकैक जिनमति पश्चविंशतिसख्यान्येक-भक्तानि विधेयानि । इय द्वितीया रीतिः । रीतिद्वयमपि पट्टशताद्दात्पश्चविंशत्युत्तरात् ६२५ समाप्यते । तपःकारिणा द्वयोर्मध्यादेका रीतिः पट्टशताङ्केन पश्चविंशत्युत्तरेण समाप्या । यत्रकन्यास । उद्यापने चतु-र्विंशतिजिनानां बृहत्स्नात्रविधिना स्नात्र चतुर्विंशतिसख्यपुष्पफलपक्वान्नजातिढौकन । सघवात्सल्य सघ पूजा च । एतत्फल तीर्थंकरनामकर्मबन्धः । इति श्राद्धकरणीयमागाढ वर्धमानतप ॥ ६ ॥ ॥ अथ परमभूषण-तपः । द्वात्रिंशताचाम्लैरेकभक्तैस्त्वन्तरे । वासराणा चतुष्षष्ट्या तप. परमभूषण ॥१॥ परमाणि भूषणानि

७ परमभूषणतपः आगाढ दिनसख्या ६४

आं	ए	आं	ए	आं	ए	आं	ए	आं	ए	आं	ए	आं	ए	आं	ए
आं	ए	आं	ए	आं	ए	आं	ए	आं	ए	आं	ए	आं	ए	आं	ए
आं	ए	आं	ए	आं	ए	आं	ए	आं	ए	आं	ए	आं	ए	आं	ए
आं	ए	आं	ए	आं	ए	आं	ए	आं	ए	आं	ए	आं	ए	आं	ए

चतु-
ज्ञानदर्शनचारित्रादीनि यस्मात्परमभूषण । अत्रैकाशनैकान्तरितानि द्वात्रिंशदाचाम्लानि कुर्यात् । चतु-
पष्टिदिनैः पूर्यते । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वकं जिनप्रतिमायाः सुवर्णमयरत्नजटितसर्वाङ्गी-
णाभरणदानं द्वात्रिंशत्संख्यया सर्वप्रकारफलढौकनं । एतत्फलं परमसंपद्गुणप्राप्तिः ॥ दीक्षातपसि चार्ह-

८ दीक्षातप अगाढं दिन ७२

ऋ	अ	सं	अ	सु	प	सु	च	सु	शी	श्रे	वा	वि	अ	ध	शां	कु	अ	म	सु	न	ने	पा	वीर
उ २ ए १	उ २ ए १	उ २ ए १	उ ए १	उ २ ए १	उ २ ए १	उ २ ए १	उ २ ए १	उ २ ए १	उ २ ए १	उ १ ए १	उ २ ए १	उ २ ए १	उ २ ए १	उ २ ए १	उ २ ए १	उ २ ए १	उ १ ए १	उ २ ए १	उ २ ए १	उ २ ए १	उ २ ए १	उ १ ए १	उ २ ए १

तां दीक्षानुकारि तपसां व्रतं । जगृहे तत्तथा कार्यमेकान्तरितयुक्तितः ॥ १ ॥ तद्यथा । सुमइत्थ निच्चभत्तेण वासु-
पुज्जो जिणो चउत्थेण । सो मल्लीवि अ अट्ठमेण सेसा उ छट्ठेण ॥ १ ॥ अर्हतां दीक्षयानुकरणीयं तपः दी-
क्षातपः तत्र सुमतिनित्यभक्तेन दीक्षां जगृहे तत्रैकभक्तं कार्यं । वासुपूज्यो जिनोपि चतुर्थेन पार्श्वो मल्लिर-
ष्टमेन शेषाः षष्ठेन एवमेकैकान्तरितैकभक्तैरुपवासा विधीयन्ते । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने एकभक्तं बृहत्स्ना-
त्रविधिना जिनस्नात्रं अष्टप्रकारपूजा षड्विकृतिढौकनं । एतत्फलं विमलव्रतप्राप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीय-
मागाढं दीक्षातपः ॥ ८ ॥ ॥ अथ ज्ञानतपः । 'येन तीर्थकृता येन तपसा ज्ञानमाप्यते । तत्तत्तथा विधेयं

९ केवलज्ञानतपः अनागाढ दिन ७५।९

ऋ		अ		सं		अ		सु		प		सु		चं		सु		शी		श्रे		वा		वि		अ		ध		शां		कु		अ		म		मु		म		ने		पा		वीर	
उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए
१	१	२	१	२	१	२	१	२	१	२	१	२	१	२	१	२	१	२	१	२	१	२	१	२	१	२	१	२	१	१	१	१	१	२	१	१	१	२	१	२	१	१	१	१	१	२	१

स्यादेकान्तरितभुक्तितः ॥ १ ॥' यथा । अट्ठमभत्तवसणे पासो सह मल्लिरिट्ठनेमीण । वासुपुज्जचउत्थेण छट्ठभत्तेण सेसाण ॥ १ ॥ ज्ञानेनोपलक्षित तपो ज्ञानतपः तत्र श्रीऋषभमल्लिनेमिपार्श्वानामष्टमेन वासुपूज्यस्य चतुर्थेन शेषाणां षष्ठेन एव मनुष्येणाप्येकान्तरितोपवासैकभक्तैः कार्यं । यन्त्रकन्यासः । उद्यापन दीक्षावत् । एतत्फल विशुद्धिज्ञानावाप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमनागाढ केवलज्ञानतपः ॥ ९ ॥ ॥ अथ निर्वाणतप. ।

१० निर्वाणतपः अनागाढ दिन ४५।२

ऋ		अ		सं		अ		सु		प		सु		चं		सु		शी		श्रे		वा		वि		अ		ध		शां		कु		अ		म		मु		न		ने		पा		वीर	
उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए	उ	ए
१	१	१०	१	१०	१	१०	१	१०	१	२	१	९	१	२०	२	१	१	९	१	२	१	२	१	१०	२	१०	१	१०	१	१०	१	१०	१	१०	१	१०	१	१०	१	२	१	१	२	१०	१	२	१

'येन तीर्थकृता येन तपसा मुक्तिराप्यते । तत्तत्तथा विधेय स्यादेकान्तरितभूस्थितः ॥ १ ॥' यथा—निर्वाणमंत-
किरिया सा चउदसमेण पढमनाहस्स । सेसाण मासिएण वीरजिणंदस्स छट्टेण ॥ १ ॥ निर्वाणेनोपलक्षित
तप' प्रथमजिनेन्द्रस्य चतुर्दशमभक्तेन शेषाणा मासोपवासेन वीरस्य षष्ठेन एवमेकान्तरिकैकभक्तैर्विधेयानि ।
यत्रकन्यासः । उद्यापने बृहत्स्नात्रपूर्वं चतुर्विंशतिसख्यया सर्वं फलनैवेद्यपक्वान्नढौकन साध्वर्चन सघपूजा
च । एतत्फल भवाष्टकान्तर्मोक्षप्राप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ निर्वाणतपः ॥ अत्र दीक्षाज्ञाननिर्वा-
णतपसा कल्याणकतपस्यप्यन्तर्भावोस्ति । परत्वेष विशेषः कल्याणकतपसा आगाढतया कल्याणकदिनाना
प्रत्याख्यानस्पर्शेन सपद्यते । एतानि यथायोगमनागाढतया तत्कृततपःसख्यया यथायोगेन सपद्यन्ते । एकस्मि-
न्दिने च्यवनादिकल्याणकद्वये एकैकस्य जिनस्य वा दिनद्वयस्य वा आराधन कृत्वा भोक्तव्य पारणक कर्त-
व्यमित्यर्थे नियमो नास्ति। पर दीक्षाज्ञाननिर्वाणकल्याणकत्रयेपि दिनत्रयस्याराधन कृत्वा ततः पारण विधेय।
एकस्याराधन कृत्वा न करणीय। एतानि तपास्येकान्तरोपवासैः कर्तव्यानि ॥ १० ॥ ॥ अथ ऊनोदर्यतपः।
तच पञ्चविधमागमे । यथा । अप्पाहार १ अवह्ना २ दुभाग ३ पत्ता ४ तहेव देसूणा ५। अट्ठ ८ दुवालस १२
सोलस १६ चउवीस २४ तहिकतीसाय ३१ ॥ १ ॥ ऊनोदरस्य भाव ऊनोदर्यं १। अथ यथासख्यसम्बन्धः।
स यथा। एकादिभिरष्टान्तैः कवलैरल्पाहारा १ नवाधिभिर्द्वादशान्तैः कवलैरपार्धा २ त्रयोदशादिभिः षोड-
शान्तैर्द्विभागा ३ सप्तदशादिभिश्चतुर्विंशत्यन्तैः प्राप्ता ४ पञ्चविंशत्यादिभिरेकत्रिंशदन्तैः किंचिदूना ५। इय

९ केवलज्ञानतपः अनागाढं दिन ७५१९																							
ऋ	अ	सं	अ	सु	प	सु	च	सु	सी	श्रे	वा	वि	अ	ध	शां	कु	अ	म	मु	न	मे	पा	वीर
उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए
१ १	२ १	२ १	२ १	२ १	२ १	२ १	२ १	२ १	२ १	२ १	२ १	२ १	२ १	२ १	२ १	२ १	२ १	१ १	२ १	१ १	१ १	१ १	२ १

स्यादेकान्तरितद्भूसित' ॥ १ ॥' यथा । अट्ठमभत्तवसणे पासो सह मल्लिरिट्ठनेमीण । वासुपुज्जचउत्थेण छट्ठभत्तेण सेसाण ॥ १ ॥ ज्ञानेनोपलक्षितं तपो ज्ञानतप' तत्र श्रीऋषभमल्लिनेमिपार्श्वानामष्टमेन वासुपूज्यस्य चतुर्थेन शेषाणां षष्ठेन एव मनुष्येणाप्येकान्तरितोपवासैकभक्तैः कार्यं । यन्त्रकन्यासः । उद्यापन दीक्षावत् । एतत्फल विशुद्धिज्ञानावाप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमनागाढ केवलज्ञानतपः ॥ ९ ॥ ॥ अथ निर्वाणतपः ।

१० निर्वाणतपः अनागाढं दिन ६९१२																							
ऋ	अ	सं	अ	सु	प	सु	च	सु	सी	श्रे	वा	वि	अ	ध	शां	कु	अ	म	मु	न	मे	पा	वीर
उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए	उ ए
१ १	१० १	१० १	१० १	१ १	२ १	१ १	१ १	१० १	१० १	१० १	१० १	२ १	१ १	१० १	१० १	१० १	१० १	१० १	१० १	२ १	२ १	१० १	२ १

प्रतिग्रासा उत्कृष्टा ५। पञ्चदशभिर्दिनैः पूर्यते। यन्त्रकन्यासः। एषा द्रव्योनोदरिका ॥ ॥ भावोनोदरिका

११पुरुषस्योनोदरिका तप आगाढ ग्रा०		जघन्यमध्यमोत्कृष्टे	लोकप्रवाहोनोदरीतपः		स्त्रियमत्पूनोदर्यतपः	आगाढ		अ म उ ग्रासः	स्त्रियां	लोकप्रवाहोनोदरी
असमाहारा	१।२।३।४। ५।६।७।८	अ १। म २।३।४।५ उ ६।७।८	प्रथमदिने	कवल ८	१।२।३।४।५।६।७	असमा	अ १।२। म	३।४।५।६। ६।७	प्रथम दिने	कवल ७
उपार्धा	९।१०।११ १२	अ ९। म १०।११ उ १२	द्वितीयदिने	कव ल१२	८।९।१०।११	उपा	अ ८ म ९	उ० १०।११	द्वितीय दिने	कव ल११
द्विभागा	१३।१४।१५ १६	अ १३। म १४। उ १५। १६	तृतीयदिने	कव ल१६	१२।१३।१४	द्विभा	अ १२ म १३	उ० १४	तृतीय दिने	कव ल१४
प्राप्ता	१७।१८।१९ २०।२१।२२ २३।२४	अ १७।१८ म १९।२० २१।२२ उ २३।२४	चतुर्थदिने	कव ल२४	१५।१६।१७।१८।१९ २०।२१	प्राप्ता	अ १५।१६	म १७।१८।१९ उ २०।२१	चतुर्थ दिने	कव ल२१
किंचिदूना	२५।२६।२७ २८।२९।३० ३१	अ २५।२६। म २७। २८।२९ उ ३०।३१	पञ्चमदिने	कव ल३१	२२।२३।२४।२५। २६।२७	किंचि	अ २२।२३। २६।२७	म २४।२५ उ	पञ्चम दिने	कव ल२७

च पञ्चविधाप्यूनोदरिका प्रत्येकं त्रिभेदा भावनीया । सा यथा । एकादिभिः कवलैर्जघन्या द्व्यादिभिर्मध्यमा अष्टादिभिरुत्कृष्टा । एवं पञ्चविधापि तत्तद्भागकवलैस्त्रिविधा ज्ञेया । तत्राल्पाहारा एकग्रासेन जघन्या द्वित्रिचतुःपञ्चग्रासैर्मध्यमा षट्सप्ताष्टग्रासैरुत्कृष्टा १ । उपार्धा नवग्रासैर्जघन्या दशैकादशग्रासैर्मध्यमा द्वादशभिरुत्कृष्टा २ । द्विभागा त्रयोदशभिर्ग्रासैर्जघन्या चतुर्दशपञ्चदशभिर्मध्यमा षोडशभिरुत्कृष्टा ३ । प्राप्ता सप्तदशाष्टादशभिर्ग्रासैर्जघन्या एकोनविंशतिविंशत्येकविंशतिद्वाविंशतिभिर्मध्यमा त्रयोविंशतिचतुर्विंशतिभिरुत्कृष्टा ४ । किंचिदूना पञ्चविंशतिषड्विंशतिग्रासैर्जघन्या । सप्तविंशत्यष्टाविंशत्येकोनत्रिंशद्भिर्मध्यमा । त्रिंशदेकत्रिंशद्भिरुत्कृष्टा ५ । एवं द्वात्रिंशत्कवलसङ्ख्यया पुरुषस्यैवमूनोदरिका पञ्चदशादिनैः पूर्यते । स्त्रियास्तु सप्तविंशतिकवलानुसारेण तत्तद्भागैः पञ्चविधाप्यूनोदरिका । सा यथा । एकादिसप्तान्तैरल्पाहारा १ । अष्टाद्येकादशान्तैरुपार्धा २ । द्वादशादिचतुर्दशान्तैर्द्विभागा ३ । पञ्चदशाद्येकविंशत्यन्तैः प्राप्ता ४ । द्वाविंशत्यादिसप्तविंशत्यन्तैः किंचिदूना ५ । एभिरपि जघन्यमध्यमोत्तमभागैः प्रत्येकं त्रिधा । यथा । अल्पाहारा एकद्विग्रासा जघन्या त्रिचतुःपञ्चग्रासा मध्यमा षट्सप्तग्रासा उत्कृष्टा १ । उपार्धा अष्टग्रासा जघन्या नवग्रासा मध्यमा दशैकादशग्रासा उत्कृष्टा २ । द्विभागा द्वादशग्रासैर्जघन्या त्रयोदशभिर्मध्यमा चतुर्दशभिरुत्कृष्टा ३ । प्राप्ता पञ्चदशषोडशभिर्ग्रासैर्जघन्या सप्तदशाष्टादशैकोनविंशतिग्रासैर्मध्यमा विंशतिएकविंशतिग्रासा उत्कृष्टा ४ । किंचिदूना द्वाविंशतित्रयोविंशतिग्रासा जघन्या चतुर्विंशतिपञ्चविंशतिग्रासा मध्यमा षड्विंशतिसप्तविं-

शतिभासा उत्कृष्टा ५ । पञ्चदशभिर्दिनैः पूर्यते । यश्चकन्यासः । एषा द्रव्योनोदरिका ॥ ॥ भावोनोदरिका

११पुरुषस्योनोदरिका तप आगार प्रा०		जघन्यमध्यमो त्कृष्टे	लोकप्रधाहोमोद रीतपः		स्त्रियस्त्रूनोदर्यैतपः	आगार		ज म उ प्रासः	दिवसः	लोकप्रधा होमोदरी
अल्पा-हारा	१।२।३।४। ५।६।७।८	ज १। म २।३।४।५ उ ६।७।८	प्रथमदिने	कवल ८	१।२।३।४।५।६।७	अल्पा	ज १।२। म	३।४।५।६। ७	प्रथम दिने	कवल ७
उपा र्धा	९।१०।११ १२	ज ९। म १०।११ उ १२	द्वितीयदिने	कव ल१२	८।९।१०।११	उपा	ज ८ म ९	उ० १०।११	द्वितीय दिने	कव ल११
द्विभा गा	१३।१४।१५ १६	ज१३। म १४।उ १५। १६	तृतीयदिने	कव ल१६	१२।१३।१४	द्विभा	ज १२ म १३	उ० १४	तृतीय दिने	कव ल१४
प्राप्ता	१७।१८।१९ २०।२१।२२ २३।२४	ज १७।१८म१९।२० २१।२२ उ २३।२४	चतुर्थदिने	कव ल२४	१५।१६।१७।१८।१९ २०।२१	प्राप्ता	ज १५।१६	म१७।१८।१९ उ २०।२१	चतुर्थ दिने	कव ल२१
किंचि-दूना	२५।२६।२७ २८।२९।३० ३१	ज २५।२६। म २७। २८।२९ उ ३०।३१	पञ्चमदिने	कव ल३१	२२।२३।२४।२५। २६।२७	किंचि	ज २२।२३। २४।२७	म २४।२५ उ	पञ्चम दिने	कव ल२७

पुनरागमे यथा। कोहाईण निरोहो चाओ जिणवयणभावणाओ अ। भावेनोणोदरिआ पन्नत्ता वीयराएहिं ॥ १ ॥ लोकवाहोनोदरी पुन: प्रथमदिने ग्रासानामष्टक ८ द्वितीये दिने द्वादशक १२ तृतीये षोडशक १६ चतुर्थे चतुर्विंशतिक २४ पञ्चमे एकत्रिंशतिक ३१ स्त्रिया पुनः प्रथमदिने ग्रासाना सप्तक ७ द्वितीये एकादशक ११ तृतीये चतुर्दशक १४ चतुर्थे एकविंशतिक २१ पञ्चमे सप्तविंशतिक २७ पञ्चभिर्दिनै पूर्यते ॥ ज्ञानादित्रिकस्योनोदरिकाप्रमाणमागमोक्त यथा। नवचउसट्ठीपणवीससोलनवछसयसट्ठि तह सोल। चउसट्ठीचउसट्ठी तीसा चउसयअसीअहिआ ॥ १ ॥ अडयालइक्कवण्णा छसयाअडसमहिया पच। नाणतिगाई ऊणोदर तु तयदिणपमाणमिण ॥ २ ॥ उद्यापने जिनस्याष्टविधपूजा सघवात्सल्य सघपूजा च। एतत्फल विशिष्टभोगमोक्षप्राप्तिः। इति श्रीपतिश्राद्धकरणीयमागाढमोनोदर्यतपः ॥ ११ ॥ ॥ अथ सलेखनतपः। चत्तारि विचित्ताइ विगइनिजूहियाइ चत्तारि। सवच्छराइ दुन्नि उ एगतरियं च आयाम ॥ १ ॥ नाइविगिट्ठो

१२ संलेखनातप आगाढं एतानि तपांसि यथोक्तैकान्तरितानि वर्ष १२
वर्ष ४ यावत् उ ४। ए। उ ३। ए। उ ७। ए। उ ५ ए। उ ६। ए उ १५।एउ १०ए।पूरणीयो
वर्ष ४ यावत् ए १ नि। उ ३ नि। उ ७ नि। उ ५ नि। उ ६। नि। उ १५ नि। उ १०नि
वर्ष २ यावत् उ १ नि। आं। नि। इत्यादिपूरणीया
मास ६। यावत् उ १ आं। उ ३। आं। उ ३ आं। पूरणीया
मास ६ यावत् उ ४ आं। उ ७। आं। पूरणीया
वर्ष १ यावत्। आचाम्लानि कर्तव्यानि

अ तवो छम्मासे परिमिय तु आयामं । अवरे वि अद्धमासे होइ विगिट्ठ तवोकम्म ॥ २ ॥ वास कोडीस-हिय आयामाय तु आणुपुव्वीए । एसो बारसवरिसाइ होइ सलेहणाइ तवो ॥ ३ ॥ सलिखितसर्वभावकृत

१३ सर्वसंख्याश्रीमहावीरतपः अनागाढ							
उप	१०८०	उप	६०	उप	१२०	उप	११
"	६६०	"	६०	"	१२०	"	१
"	४५	"	६०	"	१२०		
"	४५	"	९०	"	१२०		
"	७५	"	९०	"	१८०		
"	७५	"	१२०	"	१०५	एवं दिन ७५	
"	६०	"	१२०	"	४५८	१५ वर्षे १२	
"	६०	"	१२०	"	६६	मास ६ दिन	
"	६०	"	१२०	"	१४९	१५ एकान्तरे पूर्णे इति	

पक्ष पक्ष	७२
मास पक्ष	१२
मास १॥	२
मास २॥	२
मास २	६
मास ३	२
छठ	२२९
मास ४	९
अठम	१२
मास ६	१
मास ६ ऊ ५	१
प्रतिमा	१२
भद्रादिक	१
पारणासर्व	३४९
संख्या सप	
१२ वर्षे	
६॥ मास	

पाप विशोषयतीति सलेखना । एतद्व्याख्यान यतिधर्मान्त्याधिकारादवसेय । एतत्फल सद्गतिः । यन्त्रन्यासः ॥ इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ सलेखनातपः ॥ १२ ॥ ॥ अथ सर्वसख्याश्रीमहावीरतपः । महावीरेण कृत तपो महावीरतपः । तथेद् । नवकिरचाउम्मासे छक्किरदोमासिए उवासी अ । बारस य मासिआई बावत्तरिअद्धमासाइ ॥ १ ॥ इक्क किर छम्मास दो किर तेमासिए उवासीय । अड्ढाइज्जाइ दुवे दो चेव दुविड्ढमासाई ॥ २ ॥ भद्द च महाभद्द पडिम

तत्तो अ सवओ भद्द । दोचसारिद्सेय य दिवसे ठासी अ अणुबद्ध ॥ ३ ॥ गोअरमभिग्गहजुअ खमणं छम्मासियं च कासी य । पचदिवसेहिं ऊण अवहिओ वच्छनयरीए ॥ ४ ॥ दसदोअकिरमहप्पा ठाइमुणी-एगराइअ पडिमा । अट्ठमभत्तेण जई इक्किक्क चरमरयणीय ॥ ५ ॥ दो चेव य छट्ठसए अउणातीसे उवासिओ भयवं । कायाइ निचभत्त चउत्थभत्तं च से आसि ॥ ६ ॥ तिण्णिसए दिवसाण अउणापण्णे उ पारणा-कालो । उक्कुडुअरिसिज्माण पि अ पडिमाण सए बहुए ॥ ७ ॥ सवपि तवोकम्म अप्पाणय आसि वीरना-हस्स । पवज्जाए दिवसे पढमे खित्तमि सवमिण ॥ ८ ॥ बारस चेव य वासा मासा छच्चेव अद्धमासो अ । वीरवरस्स भगवओ एसो छउमत्थपरियाओ ॥ ९ ॥ बावत्तरिअद्धमासा बारमासिअ दुविवट्टय दोअड्ढाइ य छद्विमासा दुति, नवचउमासि अ, दो छम्मासा पचदिनऊण छठदोस पगुणतीस य बारठम पारणाय तिसय एगुणपचास य इह खिवसु सोल पडिमा दिवस वयदिवसेण सिउ मेलविओ पक्खहिअसट्ठबारस वरिस अति वीरकेवलिलहिओ ॥ १ ॥ भगवान् श्रीमहावीरो द्वासप्ततिपक्षक्षपणानि द्वादशमासक्षपणानि द्वे सार्ध-मासक्षपणे द्वे सार्धद्विमासक्षपणे षट् द्विमासक्षपणानि द्वे त्रिमासक्षपणे नव चतुर्मासक्षपणानि एक षण्मा-सक्षपण द्वितीय च षण्मासक्षपण पञ्चदिवसोनं कौशाम्ब्या एकोनत्रिंशदधिक षट्शतद्वय द्वादशाष्टमानि एकोनपञ्चाशदधिक पारणादिनशतत्रय षोडश प्रतिमादिनानि व्रतग्रहण दिवस च अकार्षीत् । एवं द्वाद-शवर्षाणि सपोद्मपक्षा श्रीमहावीरस्य छद्मस्थे तपांसि) एतानि यथाक्रम एकान्तरितोपवासैः सर्वी-

यानि । यक्षकन्यासः । उद्यापने श्रीमहावीरस्य बृहत्स्नात्रविधिना स्नात्र पहिकृतिफलढौकन संघवात्सल्य सघपूजा च । सर्वतपसोऽशक्तित्वे एकमपि किंचित्तपः स्वशक्तिकालानुसारेण विधीयते । उद्यापन च पूर्ववत् । एतत्फल तीर्थंकरनामकर्मबन्धः । इति यतिश्राद्धकरणीयमनागाढ सर्वसख्याश्रीमहावीरतपः ॥ १३ ॥

॥ अथ कनकावलीतप' । तपसः कनकावल्याः काहलाद्दाडिमे अपि । लता च पदक चान्यलता दाडिमकाहले ॥ १ ॥ एक १ द्वि २ त्र्यु ३ पवासतः प्रगुणित संपूरिते काहले तत्राष्टाष्टमितैश्च षष्ठकरणैस्सपाद्येद्दाडिमे । एकाद्यैः खलु षोडशान्तगणितै' श्रेणी उभे युक्तितः षष्ठैस्तैः कनकावली किल चतुस्त्रिंशन्मितैर्नायकः

काहली	२	२	२	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	
पा	पा	पा	२		२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
१	२	३	२	२	२																

१४ । ६० कनकावलीतपसि दिन ३८४ पारणकदिन ८८ आगाढ

१	२	३	२	२	२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
व	व	व	२		२																
काहलांक	२	२	२	व	व	व	व	व	व	व	व	व	व	व	व	व	व	व	व	पारणांतरित	

			पा			पा			
				२	२				
			२	२	२	२			
		२	२	२	२	२	२		
२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
		२	२	२	२	२	२		
			२	२	२	२			
				२	२				
			पा			पा			

तत्तो अ सवओ भद्द । वीअवत्तारिदसेव य दिवसे ठासी अ अणुबद्धं ॥ ३ ॥ गोअरमभिग्गहजुअं खमणं
छम्मासिय च कासी य । पंचदिवसेहिं ऊणं अव्वहिओ वच्छनयरीए ॥ ४ ॥ दसदोअकिरमहप्पा ठाइमुणी-
एगराइअं पडिमा । अट्ठमभत्तेण जई इक्किक्कं चरमरयणीअं ॥ ५ ॥ दो चेव य छट्ठसए अउणातीसे उवासिओ
भयवं । न कयाइ निच्चभत्तं चउत्थभत्तं च से आसि ॥ ६ ॥ तिण्णिसए दिवसाण अउणापण्णे उ पारणा-
कालो । उक्कुडुअनिसिज्जाण ठिअ पडिमाण सए बहुए ॥ ७ ॥ सव्वंपि तवोकम्मं अप्पाणय आसि वीरना-
हस्स । पव्वज्जाए दिवसे पढमं खित्तंमि सव्वमिणं ॥ ८ ॥ बारस चेव य वासा मासा छच्चेव अद्धमासो अ ।
वीरवरस्स भगवओ एसो छउमत्थपरियाओ ॥ ९ ॥ बावत्तरिअद्धमासा बारमासिअ दुन्निहतुं दोअड्ढाइ य
छद्दिमासा इति नवचउमासि अ दो छम्मासा पंचदिनऊण छठ्ठदोस चउणतीसं य बारठ्ठम पारणाय तिसय
पगुणपचास य इइ लिवस्तु सोल पडिमा दिवस वयदिवसेण सिउ मेलविओ पक्खसहिअसट्ठबारस वरिस-
अति वीरकेवलिलहिओ ॥ १ ॥ भगवान् श्रीमहावीरो द्वासप्ततिपक्षक्षपणानि द्वादशमासक्षपणानि द्वे सार्ध-
मासक्षपणे द्वे सार्धद्विमासक्षपणे षट् द्विमासक्षपणानि द्वे त्रिमासक्षपणे नव चतुर्मासक्षपणानि एकं षण्मा-
सक्षपणं द्वितीयं च षण्मासक्षपणं पञ्चदिवसोनं कौशाम्ब्यां एकोनत्रिंशदधिकं षट्शतकं द्वादशाष्टमानि
एकोनपञ्चाशदधिकं पारणादिनशतत्रयं षोडश प्रतिमादिनानि व्रतग्रहणदिवसं च अकार्षीत् । एवं द्वाद-
शवर्षाणि अपोवपाखा श्रीमहावीरस्य छद्मस्थस्य तपांसि । एतानि यथाशक्ति भव्यैरितोपवासैः करणी-

वलीतपः । मुक्तावल्या चतुर्थादिषोडशान्तावलीद्वय । पूर्वानुपूर्व्यापश्चानुपूर्व्याज्ञेय यथाक्रम ॥१॥ एकद्व्येकगुणैकषेदवसुधाबाणैकषड्भूमितिः ससैकाष्टमहीनवैकदशभिर्भूरुद्रभूमानुभिः । भूविश्वेशशिमन्विलातिथिधराविद्याशुरीभिर्मतैरेतद्व्युत्क्रमणोपवासगणितैर्मुक्तावली जायते ॥२॥ तपस्विना कण्ठाभरणत्वे निर्मला मुक्तावलीव मुक्तावली । तत्र पूर्वं चतुर्थं तपःपारणक। पुनः षष्ठ कृत्वा पारणक पुनश्चतुर्थं कृत्वा पारणक पुनश्च अष्टम कृत्वा पारणक पुनश्चतुर्थ कृत्वा पारणक पुनर्दशम पुनः पारणक। पुनश्चतुर्थ पुनः पारणक पुनर्द्वादशक पुनः पारणक पुनश्चतुर्थं पुनः पारणक पुनश्चतुर्दशमक पुनः पारणक पुनश्चतुर्थ पुनः पारणक पुनः सप्तोपवासाः पारणक पुनश्चतुर्थं पुन. पारणक पुनरष्टोपवासाः पुनः पारणक पुनश्चतुर्थं पुनः पारणक पुनर्नवोपवासाः पुनः पारणक पुनश्चतुर्थं पुनः पारणक पुनर्दशोपवासाः पुनः पारणक पुनश्चतुर्थं पुन. पारणक पुनरेकादश उपवासाः पुनः पारणक पुनश्चतुर्थ पुनः पारणक पुनर्द्वादशोपवासाः पुनः पारणक पुनश्चतुर्थं पुनः पारणक पुनस्त्रयोदशोपवासाः पुनः पारणक पुन-

पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	०
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	०
ध।१५ मुक्तावलीतपः दिन ३०० पार वि ६० आ० सर्वदिनसंख्या ३६०																० ७७
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	०
उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	०

यतः द्वितीयद्वात्रिंशत्कास्थाष्टसप्तानि विधेयानि । पुनर्द्विरेकोपवासेः पूर्ववत् द्वितीयाद्यात्रिंशकादष्टिका पूर्वा इति तपोदिनानि चतुःशतानि चतुस्त्रिंशदधिकानि ४३०

॥ २ ॥ तपस्विना हृदयभूषणकारित्वात्कनकावली । तस्या प्रथम चतुर्थं कृत्वा पारण ततः षष्ठ कृत्वा पारण तत अष्टम कृत्वा पारण इत्येका काहलिका पूर्यते । ततोष्टौ षष्ठानि कुर्यात् । इत्येक दाडिमक पूर्यते । तत एकमुपवास कृत्वा पारयेत् । ततो द्वावुपवासौ कृत्वा पारयेत् ततस्त्रीन् ततश्चतुरः पञ्च षट् सप्त अष्टौ नव दश एकादश द्वादश त्रयोदश चतुर्दश पञ्चदश षोडशोपवासान् क्रमेण कृत्वा पारयेत् । इत्येका लता पूर्यते । ततश्चतुस्त्रिंशत्षष्ठानि विदध्यात् । एतावता पदक पूर्यते । ततः षोडशोपवासान्कृत्वा पारयेत् । ततः पञ्चदशचतुर्दशत्रयोदशद्वादशएकादशदशनवअष्टसप्तषट्पञ्चचतुरस्त्रीन्द्वौएक उपवासान्कृत्वा पारयेत् इत्येव द्वितीया लता पूर्यते । ततोष्टौ षष्ठानि विदध्यात् । इति द्वितीय दाडिमक पूर्यते । ततोऽष्टम ततः षष्ठ ततश्चतुर्थं कुर्यात् । इति द्वितीया काहलिका पूर्यते ॥ एककाहलिकादाडिमकलतासमाप्तौ पदक कृत्वा तत प्रतिलोमगत्या लतादाडिमककाहला विधीयन्ते । एते चोपवासा. चतुर्थाष्टमषष्ठाद्याअपि उत्क्रमासपारणकाः निरन्तरा एव विधेयाः । एतन्मध्ये पारणका अष्टाशीतिः उपवासाश्चतुरशीत्युत्तराणि त्रीणि शतानि सर्वाग्रेण एकोनवर्षेण त्रिभिर्मासैः द्वाविंशत्यादिनै. पूर्यते । एतन्मध्ये पारणक चतुर्धा सर्वकामिताहारैर्वा निर्विकृतिकेन वा अलेपद्रव्येण वा आचाम्लेन वा । यन्त्रकन्यास' । उद्यापने उपवाससङ्ख्यया सुवर्णटकावलिमालया बृहत्स्नात्रविधि विधाय प्रतिमाकण्ठ भूषयेत् । षड्विकृतिढौकन यतिभ्यो वस्त्रान्नपात्रदान संघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल स्वर्गभोगमोक्षप्राप्तिः । इति श्राद्धकरणीयमागाढ कनकावलीतपः ॥ १४ ॥ ॥ अथ मुक्ता-

वलीतपः । मुक्तावल्या चतुर्थादिषोडशान्तावलीद्वय । पूर्वानुपूर्व्यापश्चानुपूर्व्याज्ञेय यथाक्रम ॥१॥ एकद्व्येकगुणे-कवेदवसुधाबाणैकषड्भूमिति' ससैकाष्टमहीनवैकदशभिर्भूरुद्रभूभानुभिः । भूविश्वेशशिमन्विलातिथिधरा-धिपाशुरीभिर्मतैरेतद्व्युत्क्रमणोपवासगणितैर्मुक्तावली जायते ॥२॥ तपस्विना कण्ठाभरणत्वे निर्मला मुक्ता-वलीव मुक्तावली । तत्र पूर्वं चतुर्थं तपःपारणक। पुनः षष्ठ कृत्वा पारणक पुनश्चतुर्थं कृत्वा पारणक पुनश्च अष्टमं

पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	०
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	०
धा१५ मुक्तावलीतपः दिन ३०० पार दि ६० आ० सर्वदिनसंख्या ३६०															०	७७
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	०
उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	०

यदा द्वितीयदाडिमकस्थाष्टाष्टमानि विधेयानि । पुनर्द्विकेनैकोपवासैः पूर्ववत् द्वितीयदाडिमकाहलिका पूर्णा इति तपोदिनानि चतुःशतानि चतुर्विंशत्यधिकानि ४२४

कृत्वा पारणक पुनश्चतुर्थं कृत्वा पारणक पुनर्दशम पुनः पारणक। पुनश्चतुर्थं पुनः पारणक पुनर्द्वादशक पुनः पारणक पुनश्चतुर्थं पुनः पारणक पुनश्चतुर्दशमक पुनः पारणक पुनश्चतुर्थं पुनः पारणक पुनः सप्तोपवासाः पारणक पुनश्चतुर्थं पुन. पारणक पुनरष्टोपवासा. पुनः पारणक पुनश्चतुर्थं पुनः पारणक पुनर्नवोपवासाः पुनः पारणक पुनश्चतुर्थं पुनः पारणक पुनर्दशोपवासाः पुनः पारणक पुनश्चतुर्थं पुन. पारणकं पुनरेकादश उपवासाः पुनः पारणक पुनश्चतुर्थं पुनः पारणक पुनर्द्वादशोपवासाः पुनः पारणक पुनश्चतुर्थं पुनः पारणक पुनस्त्रयोदशोपवासाः पुनः पारणक पुन-

चतुर्थं पुनः पारणकं पुनश्चतुर्दशोपवासाः पुनः पारणकं पुनश्चतुर्थं पुनः पारणकं पुनः पञ्चदशोपवासाः पुनः पारणकं पुनश्चतुर्थं पुनः पारणकं पुनः षोडशोपवासाः पुनः पारणकं । एतदेव प्रतिलोमगत्या द्वितीयश्रेण्यां क्रियते । यथा षोडशोपवासाः पारणकं पुनश्चतुर्थं पुनः पारणकं पुनः पञ्चदशोपवासाः पुनः पारणकं इत्यादि यावच्चतुर्थं पुनः पारणकं । इति मुक्तावलीतपोऽत्र विधिपूर्वकं जिनप्रतिमायाः स्थूलमुक्तावलीरोपणं सङ्घवात्सल्यं सङ्घपूजा च । एतत्फलं विविधगुणसंतानावाप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढं मुक्तावलीतपः ॥१५॥

॥ अथ रत्नावलीतपः । काहलिका दाडिमकं लता तरलं एव च । अन्या लता दाडिमकं काहली चेति च क्रमात् ॥ १ ॥ एकद्वित्र्युपवासैः स्वः काहल्यौ दाडिमे पुनः । तरलश्चाष्टममयो रत्नावल्यां तले न्यसेत् ॥ २ ॥

पा	पा	पा	३	३	३	३	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा
१	२	३	३ ३	३ ३	३ ३	३	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६

क्षा २

काहलादाडिमौ ॥ १६ ॥ रत्नावलीतपसि दिन ४३४ पारणक ८८ आगार्

	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	व	व	व	व	व	व	व	व	व	व	व	व	व	व	व	व

क्षा १

				३	३				
			३	३	३	३			
		३	३	३	३	३	३		
३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
		३	३	३	३	३	३		
			३	३	३	३			
				३	३				[illegible]

एकद्वित्र्युपवासतो भ्रम इमे सपादिते काहले अष्टाष्टाष्टमसपदा विरचयेत् युक्त्या पुनर्दाडिमे । एकाद्यैः खलु षोडशान्तगणितैः श्रेणीद्वय च क्रमात् पूर्यं स्यात्तरलोष्टमैरपि चतुस्त्रिंशन्मितैर्निर्मलैः ॥ २ ॥ रत्नानां गुणमयानामावली रत्नावली । तत्र प्रथमकाहलिकायां एक उपवासः ततः पारणक द्वौ उपवासौ पारणक त्रय उपवासाः पारणक । ततो दाडिमके अष्टाष्टमानि कुर्यात् । ततो लतायां एक उपवासः पारणक द्वौ उपवासौ पारणक एव क्रमेण पारणकान्तरिताः षोडशपर्यन्ता निरन्तरा उपवासाः । ततः पदके चतुस्त्रिंशदष्टमानि ततो विलोमतया षोडशाद्येकान्त उपवासाः पारणान्तरिता निरन्तराः इति द्वितीया लता पूर्यते । पारणक दिनानि अष्टाशीतिः ८८ । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक बहुमूल्यनिजासनिर्मलनानाप्रकार-रत्नजातिमयी रत्नमाला जिनप्रतिमाकण्ठे समारोप्या सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल विविधसतानलक्ष्मीमासि । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ रत्नावलीतपः ॥१६॥ ॥ अथ लघुसिंहनिःक्रीडिततपः । गच्छन्सिंहो यथा नित्य पश्चाद्भागं विलोकयेत् । सिंहनिःक्रीडिताख्य च तथा तप उदाहृत ॥ १ ॥ एकद्व्येकत्रियुग्मैर्युगगुणविशिखैर्वेदषट्पञ्चसप्तैः षट्कुम्भाश्वैर्निधानाष्टनिधिहयगजैः षट्हयैः पञ्चषड्भिः । वेदैर्बाणैर्युगद्वित्रिशशिभुजकुभिश्चोपवासैश्च मध्ये कुर्वाणानां समन्तादशनमिति तपः सिंहनिःक्रीडित स्यात् ॥ २ ॥ सिंहवन्निःक्रीडित पश्चादवलोकन तथैव तपसा परिवृत्तोपवासकरण सिंहनिःक्रीडित । तत्र प्रथममेकोपवासः पुनः पारणक द्वौ उपवासौ पारणक पुनरेकोपवासः पारणक त्रय उपवासाः पारणक द्वौ उपवासौ पारणक चत्वार

श्चतुर्थं पुन' पारणक पुनश्चतुर्दशोपवासा' पुनः पारणक पुनश्चतुर्थं पुन' पारणक पुनः पञ्चदशोपवासा' पुनः पारणक पुनश्चतुर्थं पुनः पारणक पुन' षोडशोपवासा' पुन' पारणक । एतदेव प्रतिलोमगत्या द्वितीयश्रेण्या क्रियते । यथा षोडशोपवासा' पारणक पुनश्चतुर्थं पुनः पारणक पुन' पञ्चदशोपवासा॰ पुनः पारणक इत्यादियावच्चतुर्थं पुन' पारणक । इति मुक्तावलीतपोऽत्र विधिपूर्वक जिनप्रतिमायाः स्थूलमुक्तावलीरोपण सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल विविधगुणसतानावाप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ मुक्तावलीतपः ॥१५॥

॥ अथ रत्नावलीतपः । काहलिका दाडिमकं लता तरल एव च । अन्या लता दाडिमक काहली चेति च क्रमात् ॥ १ ॥ एकद्वित्र्युपवासे स्तः काहल्यौ दाडिमे पुनः । तरलश्चाष्टमधो रत्नावल्या तले न्यसेत् ॥ २ ॥

पा	पा	पा	३	३	३	३	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	क्षा २
१	२	३	३ ३	३ ३	३ ३	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	

काहलदाडिमौ ॥ १६ ॥ रत्नावलीतपसि दिन ४३४ पारणक ८८ आगाढं

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	
पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	क्षा १

				३	३				
			३	३	३	३			
		३	३	३	३	३	३		
३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
		३	३	३	३	३			
			३	३	३	३			
				३	३			पदक	

लजातिनैवेद्यढौकन सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल कर्मक्षयावासिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ लघुसिंहनिःक्रीडित तप. ॥ १७ ॥ ॥ अथ बृहत्सिंहनिःक्रीडित तपः । एकद्व्येकत्रिपीटयोनिधमलैर्वेदत्रिवीणाब्धिभि' षट्पञ्चाश्च रसाष्टससनवभिर्नागैश्च विभ्रन्दकैः । रुद्राशारविरुद्रविश्वविबुधैर्मार्तण्डमन्वन्वितैर्विश्वे-

पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा
१	२	१	३	२	४	३	५	४	६	५	७	६	८	७	९	८	१०	९	११	१०	१२	११	१३	१२	१४	१३	१५	१४	१६

१८ बृहत्सिंहनि क्रीडिततपोदिन ४९७ पारणकदिन ६१ सर्वदिन ५५७ आगाढ

१	२	१	३	२	४	३	५	४	६	५	७	६	८	७	९	८	१०	९	११	१०	१२	११	१३	१२	१४	१३	१५	१४	१६	१५	३	१५
उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	०	पा

देवतिथिप्रमाणमनुभिश्वाष्टिप्रतिथ्यान्वितै ॥ १ ॥ कलामनुतिथित्रयोदशचतुर्दशाङ्कान्वितैस्त्रयोदशशिवाशुभिर्दशगिरीशनन्दैरपि । दशाष्टनवससभिर्गजरसाश्च बाणै रसैश्चतुर्विशिखवह्निभिर्युगभुजाग्निभूर्वीन्दुभिः ॥२॥ उपवासैः क्रमात्कार्याः पारणा अन्तरान्तराः । सिंहनि क्रीडित नाम बृहत्सजायते तपः ॥ ३ ॥ अत्र बृहत्सिंहनि क्रीडिते एकोपवास' पारणक द्वौ उपवासौ पारणक एकोपवासः पारणक त्रय उपवासाः पारणक द्वौ उपवासौ पारणक चत्वार उपवासाः पारणक त्रय उपवासाः पारणक पञ्चोपवासाः पारणक चत्वार उपवासाः

उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	•	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•
१	पा	२	पा	१	पा	३	पा	२	पा	४	पा	३	पा	५	पा	४	पा	६	पा	५	पा	७	पा	६	पा	८	पा	७	पा	९	पा

१७ लघुसिंहनिष्क्रीडिततपोदिन १५४ पारणकदिन ३३ आगाढ। सर्वदिन १८७

१	पा	२	पा	१	पा	३	पा	२	पा	४	पा	३	पा	५	पा	४	पा	६	पा	५	पा	७	पा	६	पा	८	पा	७	पा	९	पा
उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•

उपवासा' पारणकं त्रय उपवासा' पारणक पञ्च उपवासाः पारणक चत्वार उपवासाः पारणक षट् उपवासाः पारणकं पुन' पञ्चोपवासाः पारणक सप्तोपवासाः पारणक पुन' षडुपवासा. पारणक अष्टोपवासा. पारणक पुन' सप्तोपवासाः पारणक नव उपवासाः पारणक पुनरष्टोपवासा. पारणक एतावता गतिमध्य। पुनर्द्वितीया गतिर्विलोमतया यथा। नवोपवासाः पारणक सप्तोपवासाः पारणक अष्टोपवासा' पारणक षट् उपवासा. पारणक सप्तोपवासाः पारणक पञ्चोपवासाः पारणक षट् उपवासा' पारणक चत्वार उपवासाः पारणक पञ्चो-पवासाः पारणक त्रय उपवासाः पारणक चत्वार उपवासाः पारणक द्वौ उपवासौ पारणक त्रय उपवासा' पारणक एकोपवास' पारणक द्वौ उपवासौ पारणक एकोपवासः पारणक इति उपवासाश्चतुःपञ्चाशदुत्तर शत १५४ पारणकदिनानि त्रयस्त्रिंशत्। यन्त्रकन्यासः। उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वकं उपवाससंख्यया पुष्पफ-

लजातिनैवेद्यढौकन सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल कर्मक्षयावासिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ लघुसिंहनि'ष्क्रीडित तप' ॥ १७ ॥ ॥ अथ बृहत्सिंहनिःक्रीडित तपः । एकद्व्येकत्रिपीटयोनियमलैर्वेदत्रिषी- णाब्धिभि' षट्पश्चाश्च रसाष्टससनवभिर्नागैश्च विभ्रत्क्कैः । रुद्राशारविरुद्रविश्वधिबुधैर्मार्तण्डमन्वन्वितैर्विश्वे-

१	२	१	३	२	४	३	५	४	६	५	७	६	८	७	९	८	१०	९	११	१०	१२	११	१३	१२	१४	१३	१५	१४	१६
पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा

१८ बृहत्सिंहनिःक्रीडिततपोदिन ४९७ पारणकदिन ६१ सर्वदिन ५५७ आगाढ

उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	•	पा
१	२	१	३	२	४	३	५	४	६	५	७	६	८	७	९	८	१०	९	११	१०	१२	११	१३	१२	१४	१३	१५	१४	१६	३	१५

देवतिथिप्रमाणमनुभिश्चाष्टिप्रतिश्यान्विते ॥ १ ॥ कलामनुतिथित्रयोदशचतुर्दशाङ्कान्वितैस्त्रयोदशशिवाशु- भिर्दशगिरीशनन्दैरपि । दशाष्टनवससभिर्गजरसाश्च बाणै रसैश्चतुर्भिशिखवह्निभिर्युगभुजाभ्रिमूर्वीन्दुभिः ॥२॥ उपवासैः क्रमात्कार्याः पारणा अन्तरान्तराः । सिंहनि क्रीडित नाम बृहत्सजायते तपः ॥ ३ ॥ अत्र बृहत्सिं- हनि क्रीडिते एकोपवास. पारणक द्वौ उपवासौ पारणक एकोपवासः पारणक त्रय उपवासा. पारणक द्वौ उपयासौ पारणक चत्वार उपवासाः पारणक त्रय उपवासा. पारणक पञ्चोपवासाः पारणक चत्वार उपवासाः

उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	•	०	उ	०	उ	०	उ	•	उ	०	उ	•	उ	•
१	पा	२	पा	१	पा	३	पा	२	पा	४	पा	३	पा	५	पा	४	पा	६	पा	५	पा	७	पा	६	पा	८	पा	७	पा	९	पा	८	पा

१७ लघुसिंहनिःक्रीडिततपोदिन १५४ पारणकदिन ३३ आगाढ । सर्वदिन १८७

१	पा	२	पा	१	पा	३	पा	२	पा	४	पा	३	पा	५	पा	४	पा	६	पा	५	पा	७	पा	६	पा	८	पा	७	पा	९	पा
उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•	उ	•

उपवासाः पारणक त्रय उपवासा' पारणक पञ्च उपवासाः पारणक चत्वार उपवासाः पारणक षट् उपवासा' पारणकं पुनः पञ्चोपवासा' पारणक सप्तोपवासाः पारणक पुनः षडुपवासा, पारणक अष्टोपवासाः पारणक पुनः सप्तोपवासाः पारणक नव उपवासाः पारणक पुनरष्टोपवासाः पारणक एतावता गतिमध्य । पुनर्द्वितीया गतिर्विलोमतया यथा । नवोपवासाः पारणक सप्तोपवासाः पारणक अष्टोपवासा' पारणक षट् उपवासाः पारणक सप्तोपवासाः पारणक पञ्चोपवासा' पारणक षट् उपवासाः पारणक चत्वार उपवासाः पारणक पञ्चो-पवासाः पवाणक त्रय उपवासा' पारणक चत्वार उपवासाः पारणक द्वौ उपवासौ पारणक त्रय उपवासा पारणक एकोपवास' पारणक द्वौ उपवासौ पारणक एकोपवासः पारणक इति उपवासाश्चतु'पञ्चाशदुत्तर शत १५४ पारणकदिनानि त्रयस्त्रिंशत् । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक उपवाससंख्यया पुष्पफ-

वात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल उपशमश्रेणिप्राप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ वृहत्सिंहनिःक्रीडित तप' ॥ १८ ॥ ॥ अथ भद्रतपः । एकद्वित्रिचतु'पञ्चत्रिचतुःपञ्चमूद्वयैः । पञ्चैकद्वित्रिवेदैश्च द्वित्रिवेदेपुभूमिभि' ॥ १ ॥ पञ्चैकद्वित्रिभिश्चोपवासकैः श्रेणिपञ्चक । भद्रे तपसि मध्यस्थपारणाश्रेणिसयुत ॥ २ ॥ भद्रकारित्वाद्भद्र । तत्र प्रथमश्रेणौ क्रमात् एकद्वित्रिचतुःपञ्चोपवासैर्निरन्तरैः पारणकानि द्वितीयश्रेणौ त्रिचतुःपञ्चैकद्व्युपवासैर्निरन्तरैः पारणकानि । तृतीयश्रेणौ पञ्चैकद्वित्रिचतुरुपवासैर्निरन्तरैः पारणकानि चतुर्थश्रेणौ द्वित्रिचतुःपञ्चैकोपवासैर्निरन्तरैः पारणकानि पञ्चमश्रेणौ चतुःपञ्चैकद्वित्रिरुपवासैर्निरन्तरैः पारणकानि एव उपवासाः पञ्चसप्तति' ७५ पारणकदिनानि पञ्चविंशतिः २५ सर्वसख्या शत । यन्त्रन्यास' । उद्यापने जिनस्नात्र सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल कल्याण । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ भद्रतपः ॥ १९ ॥ ॥ अथ महाभद्रतपः । एकद्वित्रिचतु'पञ्चषट्सप्तनिरुपोषणैः । निरन्तरैः पारणकमाद्यश्रेणौ प्रजायते ॥ १ ॥ द्वितीयपाल्या वेदेषुषट्सप्तैकद्विवह्निभिः । तृतीयपाल्या सप्तैकद्वित्रिवेदशरै रसैः ॥ २ ॥ चतुर्थपाल्या त्रिचतुःपञ्चषट्सप्तभूभुजैः । पञ्चम्या रससप्तैकद्वित्रिवेदशिलीमुखैः ॥ ३ ॥ षष्ठ्या द्वित्रिचतुःपञ्चषट्सप्तैकैरुपोषणैः । सप्तम्या

१९ भद्रतप आगाढ दिन १००									
उ १	पा	उ २	पा	उ ३	पा	उ ४	पा	उ ५	पा
उ ३	पा	उ ४	पा	उ ५	पा	उ १	पा	उ २	पा
उ ५	पा	उ १	पा	उ २	पा	उ ३	पा	उ ४	पा
उ २	पा	उ ३	पा	उ ४	पा	उ ५	पा	उ १	पा
उ ४	पा	उ ५	पा	उ १	पा	उ २	पा	उ ३	पा

पारणक षडुपवासाः पारणक पञ्चोपवासाः पारणक सप्तोपवासाः पारणक षडुपवासाः पारणक अष्टोपवासा' पारणक सप्तोपवासा' पारणक नवोपवासाः पारणक अष्टोपवासाः पारणक दशोपवासा. पारणक नवोपवासा' पारणक एकादशोपवासा' पारणक दशोपवासा. पारणक द्वादशोपवासा पारणक एकादशोपवासा' पारणक त्रयोदशोपवासा' पारणक द्वादशोपवासाः पारणक चतुर्दशोपवासाः पारणक त्रयोदशोपवासा पारणक पञ्चदशोपवासा' पारणक चतुर्दशोपवासा' पारणक षोडशोपवासाः पारणक पञ्चदशोपवासाः पारणक एतावता मध्ये पुनर्द्वितीया गतिर्विलोमतया षोडशोपवासाः पारणक चतुर्दशोपवासा' पारणक पञ्चदशोपवासाः पारणक त्रयोदशोपवासा' पारणक चतुर्दशोपवासाः पारणक द्वादशोपवासा. पारणक त्रयोदशोपवासा पारणक एकादशोपवासाः पारणक द्वादशोपवासाः पारणक दशोपवासाः पारणक दशोपवासा. पारणक एकादशोपवासाः पारणक नवोपवासाः पारणक दशोपवासाः पारणक अष्टोपवासाः पारणक नवोपवासा पारणक सप्तोपवासा पारणक अष्टोपवासाः पारणक षडुपवासाः पारणक सप्तोपवासा पारणक पञ्चोपवासा' पारणक षडुपवासाः पारणक चत्वार उपवासा' पारणक पञ्चोपवासा पारणक त्रय उपवासा पारणक चत्वार उपवासाः पारणक द्वौ उपवासौ पारणक त्रय उपवासाः पारणक एक उपवास' पारणक द्वौ उपवासौ पारणक एक उपवास' पारणक। एवमुपवासानां सप्तनवत्युत्तरा चतुःशती ४९७ पारणाविमाश्चे कषष्टि ६१। यन्त्रकन्यास'। उद्यापने बृहत्स्नानविधिपूर्वक उपवाससंख्यया पुष्पफलनैवेद्यादिदौकनं संघ-

तपो भवेत् ॥ ३ ॥ अत्र उपवासाः पञ्चसप्तत्युत्तरं शत १७५ पारणकदिनानि पञ्चविंशतिः २५ । यत्र कन्यासं
उद्यापन भद्रवत् । एतत्फल वाञ्छितप्राप्ति । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ भद्रोत्तरतपः ॥ २१ ॥ ॥ अथ
सर्वतोभद्रतपः । आद्याः पञ्चषडश्वनागनवभिर्दिग्रुद्रसुभिः श्रेणिका नागेन्दक्कुपशिवाशररसैरश्वैर्द्वितीया

च सा । रुद्रेशीणरसाश्वनागनवभिर्दिग्भिस्तृतीया भवेत्तुर्या सप्तगजैश्च नन्ददशभिः श्रीकण्ठबाणै रसैः ॥ १ ॥ काष्ठारुद्रशरै रसैर्हयगजैर्नन्दान्वितैः पञ्चमी षष्ठी षड्तुरगेभनन्ददशभिः श्रीकण्ठबाणैः पर । नन्दाशाशिवबाणषड्हयगजैः पूर्णावलिः सप्तमी ते वै पारणकान्तरा निगदिता नित्योपवासा बुधैः ॥ २ ॥ सर्वतो भद्रकारित्वात्सर्वतोभद्र । एव सर्वतोभद्रतपसि उपवासाना द्विनवत्युत्तरा त्रिशती ३९२ पारणकदिनान्येकोनपञ्चाशत् ४९ ।

२२ सर्वतोभद्रतप आगाढ उ० ३९२ पा० ४९ सर्व० ४४१

उ ५	पा	उ ६	पा	उ ७	पा	उ ८	पा	उ ९	पा	उ१०	पा	उ११	पा
उ ८	पा	उ ९	पा	उ१०	पा	उ११	पा	उ ५	पा	उ ६	पा	उ ७	पा
उ११	पा	उ ५	पा	उ ६	पा	उ ७	पा	उ ८	पा	उ ९	पा	उ१०	पा
उ ७	पा	उ ८	पा	उ ९	पा	उ१०	पा	उ११	पा	उ ५	पा	उ ६	पा
उ१०	पा	उ११	पा	उ ५	पा	उ ६	पा	उ ७	पा	उ ८	पा	उ ९	पा
उ ६	पा	उ ७	पा	उ ८	पा	उ ९	पा	उ१०	पा	उ११	पा	उ ५	पा
उ ९	पा	उ१०	पा	उ११	पा	उ ५	पा	उ ६	पा	उ ७	पा	उ ८	पा

२० महाभद्रतप आगाढ उपवासाः १९६ पारणानि ४९ सर्व २४५													
उ १	पा	उ २	पा	उ ३	पा	उ ४	पा	उ ५	पा	उ ६	पा	उ ७	पा
उ ४	पा	उ ५	पा	उ ६	पा	उ ७	पा	उ १	पा	उ २	पा	उ ३	पा
उ ७	पा	उ १	पा	उ २	पा	उ ३	पा	उ ४	पा	उ ५	पा	उ ६	पा
उ ३	पा	उ ४	पा	उ ५	पा	उ ६	पा	उ ७	पा	उ १	पा	उ २	पा
उ ६	पा	उ ७	पा	उ १	पा	उ २	पा	उ ३	पा	उ ४	पा	उ ५	पा
उ २	पा	उ ३	पा	उ ४	पा	उ ५	पा	उ ६	पा	उ ७	पा	उ १	पा
उ ५	पा	उ ६	पा	उ ७	पा	उ १	पा	उ २	पा	उ ३	पा	उ ४	पा

पञ्चपट्सप्तभूयुग्मत्रिचतुष्टयोः ॥ ४ ॥ एव सपूर्यते सप्तश्रेणिभिर्मध्यपारणै । महाभद्र तपः सप्तप्रस्तारपरिवारित ॥ ५ ॥ महाभद्रकारित्वान्महाभद्र । यन्त्रकन्यास. । अत्रोपवासाः षण्णवत्युत्तर शत १९६ पारणकदिनान्येकोनपञ्चाशत् ४९ । उद्यापने वृहत्स्नात्रविधिना जिनपूजा सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल सर्वविघ्नविनाश पुण्यप्राप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ महाभद्रतप ॥ २० ॥

२१ भद्रोत्तरतप आगाढ दिन २००									
उ ५	पा	उ ६	पा	उ ७	पा	उ ८	पा	उ ९	पा
उ ७	पा	उ ८	पा	उ ९	पा	उ ५	पा	उ ६	पा
उ ९	पा	उ ५	पा	उ ६	पा	उ ७	पा	उ ८	पा
उ ६	पा	उ ७	पा	उ ८	पा	उ ९	पा	उ ५	पा
उ ८	पा	उ ९	पा	उ ५	पा	उ ६	पा	उ ७	पा

॥ अथ भद्रोत्तरतप । भद्रेण कल्याणेन उत्तर भद्रोत्तर । आद्यश्रेणौ पञ्चषट्भिः सप्ताष्टनवभिस्तथा । द्वितीयायां च सप्ताष्टनवपाणरसैरपि ॥ १ ॥ तृतीयायां नन्दबाणषट्सप्ताष्टभिरुत्तमे । चतुर्थ्यां रससप्ताष्टनवबाणमिते. क्रमात् ॥ २ ॥ पञ्चम्यामष्टनन्देषुषट्सप्तभिरुपोषणेः । निरन्तर पारणाभिर्भद्रोत्तर-

२३ गुणरत्नसंवत्सरतप मास १६ आगाढ

१ मास	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा
२ मास	२	पा	२	पा	२	पा	२	पा	२	पा	२	पा	२ पा २ पा २ पा २ पा उ २० पा १० सर्व ३०																				
३ मास	३	पा	३	पा	३	पा	३	पा	३	पा	३	पा	३ पा उ २४ पा ८ सर्व ३२																				
४ मास	४	पा	४	पा	४	पा	४	पा	४	पा	उ २४ पा ६ सर्व ३०																					
५ मास	५	पा	५	पा	५	पा	५	पा	५	पा	उ २५ पा ५ सर्व ३०																					
६ मास	६	पा	६	पा	६	पा	६	पा	उ २४ पा ४ सर्व २८																							
७ मास	७	पा	७	पा	७	पा	उ २१ पा ३ सर्व २४																									
८ मास	८	पा	८	पा	८	पा	उ २४ पा ३ सर्व २७																									
९ मास	९	पा	९	पा	९	पा	उ २७ पा ३ सर्व ३०																									
१० मास	१०	पा	१०	पा	१०	पा	उ ३० पा ३ सर्व ३३																									
११ मास	११	पा	११	पा	११	पा	उ ३३ पा ३ सर्व ३६																									
१२ मास	१२	पा	१२	पा	उ २४ पा २ सर्व २६																											
१३ मास	१३	पा	१३	पा	उ २६ पा २ सर्व २८																											
१४ मास	१४	पा	१४	पा	उ २८ पा २ सर्व ३०																											
१५ मास	१५	पा	१५	पा	उ ३० पा २ सर्व ३२																											
१६ मास	१६	पा	१६	पा	उ ३२ पा २ सर्व ३४																											

यश्चकन्यास' । उद्यापन भद्रवत् । कश्चिदेतेषा चतुर्णामप्युद्यापने उपवाससख्यया पुष्पफलपक्वान्नादिढौकन जिनाग्रे वदीर्यते । एतत्फल सर्वशान्ति कर्मक्षयान्मोक्षावाप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ सर्वतोभद्र-तप' ॥ २२ ॥ ॥ अथ गुणरत्नसंवत्सरतप' । गुणरत्न षोडशभिर्मासैस्सपूर्यते पुनस्तत्र । मासे मासे चैकादि-षोडशान्ता' स्युरुपवासाः ॥ १ ॥ गुणरत्नाना प्राप्तिहेतुत्वाद्गुणरत्न तच्च षोडशमासैः पूर्यते । तत्र प्रथममासे एकैकेनोपवासेन पारणकानि तत्रोपवासाः पञ्चदश पारणकानि पञ्चदश सर्वदिनानि त्रिंशत् । द्वितीयमासे उपवासद्वयान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासा विंशतिः पारणकानि दश सर्वदिनानि त्रिंशत् । तृतीयमासे उपवासत्रयान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासाश्चतुर्विंशतिः पारणकान्यष्टौ सर्वदिनानि द्वात्रिंशत् । चतुर्थमासे चतुरुपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासाश्चतुर्विंशति पारणकानि षट् सर्वदिनानि त्रिंशत् । पञ्चममासे पञ्चोपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासाः पञ्चविंशति' पारणकानि पञ्च सर्वदिनानि त्रिंशत् । षष्ठमासे षडुपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासाश्चतुर्विंशतिः पारणकानि चत्वारि सर्वदिनान्यष्टाविंशति' । सप्तममासे सप्तोपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासा एकविंशति' पारणकानि त्रीणि सर्वदिनानि चतुर्विंशति' । अष्टममासे अष्टोपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासाश्चतुर्विंशति' पारणकानि त्रीणि सर्वदिनानि सप्तविंशतिः । नवमे मासे नवोपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासाः सप्तविंशति' पारणकानि त्रीणि सर्वदिनानि त्रिंशत् । दशममासे दशोपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रो-

२६ गुणरत्नसंवत्सरतपः मास १६ आगाढ

१ मास	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा
२ मास	२	पा	२	पा	२	पा	२	पा	२	पा	२	पा	२ पा २ पा २ पा २ पा उ २० पा १० सर्व ३०																				
३ मास	३	पा	३	पा	३	पा	३	पा	३	पा	३	पा	३ पा उ २४ पा ८ सर्व ३२																				
४ मास	४	पा	४	पा	४	पा	४	पा	४	पा	उ २४ पा ६ सर्व ३०																						
५ मास	५	पा	५	पा	५	पा	५	पा	५	पा	उ २५ पा ५ सर्व ३०																						
६ मास	६	पा	६	पा	६	पा	६	पा	उ २४ पा ४ सर्व २८																								
७ मास	७	पा	७	पा	७	पा	उ २१ पा ३ सर्व २४																										
८ मास	८	पा	८	पा	८	पा	उ २४ पा ३ सर्व २७																										
९ मास	९	पा	९	पा	९	पा	उ २७ पा ३ सर्व ३०																										
१० मास	१०	पा	१०	पा	१०	पा	उ ३० पा ३ सर्व ३३																										
११ मास	११	पा	११	पा	११	पा	उ ३३ पा ३ सर्व ३६																										
१२ मास	१२	पा	१२	पा	उ २४ पा २ सर्व २६																												
१३ मास	१३	पा	१३	पा	उ २६ पा २ सर्व २८																												
१४ मास	१४	पा	१४	पा	उ २८ पा २ सर्व ३०																												
१५ मास	१५	पा	१५	पा	उ ३० पा २ सर्व ३२																												
१६ मास	१६	पा	१६	पा	उ ३२ पा २ सर्व ३४																												

पञ्चकल्याणं । उद्यापनं महद्वत् । कश्चिदेतेषां चतुर्णामप्युद्यापने उपवाससंख्यया पुष्पफलपक्वान्नादिढौकनं जिनाग्रे विधीयते । एतत्फलं सर्वशान्तिः कर्मक्षयान्मोक्षावाप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढं सर्वतोभद्र-तपः ॥ २२ ॥ ॥ अथ गुणरत्नसंवत्सरतपः । गुणरत्नं षोडशभिर्मासैस्संपूर्यते पुनस्तत्र । मासे मासे चैकादि-षोडशान्ताः स्युरुपवासाः ॥ १ ॥ गुणरत्नानां प्राप्तिहेतुत्वाद्गुणरत्नं तच्च षोडशमासैः पूर्यते । तत्र प्रथममासे एकैकेनोपवासेन पारणकानि तत्रोपवासाः पञ्चदश पारणकानि पञ्चदश सर्वदिनानि त्रिंशत् । द्वितीयमासे उपवासद्वयान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासा विंशतिः पारणकानि दश सर्वदिनानि त्रिंशत् । तृतीयमासे उपवासत्रयान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासाश्चतुर्विंशतिः पारणकान्यष्टौ सर्वदिनानि द्वात्रिंशत् । चतुर्थमासे चतुरुपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासाश्चतुर्विंशतिः पारणकानि षट् सर्वदिनानि त्रिंशत् । पञ्चममासे पञ्चोपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासाः पञ्चविंशतिः पारणकानि पञ्च सर्वदिनानि त्रिंशत् । षष्ठमासे षडुपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासाश्चतुर्विंशतिः पारणकानि चत्वारि सर्वदिनान्यष्टाविंशतिः । सप्तममासे सप्तोपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासा एकविंशतिः पारणकानि त्रीणि सर्वदिनानि चतुर्विंशतिः । अष्टममासे अष्टोपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासाश्चतुर्विंशतिः पारणकानि त्रीणि सर्वदिनानि सप्तविंशतिः । नवमे मासे नवोपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासाः सप्तविंशतिः पारणकानि त्रीणि सर्वदिनानि त्रिंशत् । दशममासे दशोपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रो-

यथाशक्ति पूर्यतेऽङ्गतपः स्फुटं ॥१॥ अङ्गाना आचारादीनामेकादशाना तप अङ्गतपः । तत्र शुभे मासे चन्द्र-
बले शुक्लैकादश्या यथाशक्ति एकाशननिर्विकृतिकाचाम्लोपवासैस्तप आरभेत । पक्षे पक्षे एकादश्या तदेव
तप कुर्वीत यावदेकादशमासै पूर्यते । उद्यापन ज्ञानपञ्चमीवत् । पञ्चकन्यासः । एतत्फल आगमाराधनम् ।
इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढमङ्गतप ॥ २४ ॥ ॥ अथ संवत्सरतप । सांवत्सरतपः सांवत्सरिके पाक्षि-

२५ संवत्सरतपः अनागाढ	
पक्ष २४ वर्षमध्ये	उ २४
कार्तिकचतुर्मासे	उ २
फाल्गुनचतुर्मासे	उ २
आषाढचतुर्मासे	उ २
पर्यूषणपर्वणि	उ ३

केऽपि च । चातुर्मासे कृतलोचे क्रियते तद्दु-
दीर्यते ॥ १ ॥ संवत्सरे निश्चयेन कृते
सांवत्सर तत्र पाक्षिकालोचन । प्रत्येकमे-
कैकोपवासकरणे उपवासाश्चतुर्विंशतिः ।
चातुर्मासिकालोचने प्रत्येक द्व्युपवास-
करणे उपवासाः षट् संवत्सरालोचने उ-
पवासत्रय एष वत्सरे उपवासास्त्रयस्त्रिं-
शत् । पञ्चकन्यासः । उद्यापन पूर्ववत् ।
एतत्फल संवत्सरकृतपापक्षयः । इति य-

२६ नन्दीश्वर तप आगाढ वर्ष ७												
१ वर्षे	उ	०	०	०	●	●	०	०	●	●	●	●
२ वर्षे	उ	०	●	०	०	०	●	०	●	●	०	●
३ वर्षे	उ	●	●	०	०	●	●	०	०	●	●	०
४ वर्षे	उ	०	०	०	०	०	●	०	●	●	●	●
५ वर्षे	उ	०	०	०	०	०	०	०	०	●	०	०
६ वर्षे	उ	●	●	●	०	●	●	०	०	०	०	०
७ वर्षे	उ	०	०	●	०	०	०	०	●	●	०	●
१२	उ	०	●	●	०	०	०	०	०	०	●	०

तिश्राद्धकरणीयमनागाढ सांवत्सरतप ॥ २५ ॥ ॥ अथ नन्दीश्वरतपः । नन्दीश्वरतपो दीपोत्सवदर्शाद्दुदी

पवासास्त्रिंशत् पारणकानि त्रीणि सर्वदिनानि त्रयस्त्रिंशत् । एकादशमासे एकादशोपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासास्त्रयस्त्रिंशत् पारणकानि त्रीणि सर्वदिनानि षट्त्रिंशत् । द्वादशममासे द्वादशोपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासाश्चतुर्विंशति पारणके द्वे सर्वदिनानि षड्विंशति । त्रयोदशममासे त्रयोदशोपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासा षड्विंशतिः पारणे द्वे सर्वदिनान्यष्टाविंशति । चतुर्दशममासे चतुर्दशोपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासा अष्टाविंशतिः पारणे द्वे सर्वदिनानि त्रिंशत् । पञ्चदशममासे पञ्चदशोपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासास्त्रिंशत् पारणे द्वे सर्वदिनानि द्वात्रिंशत् । षोडशमासे षोडशोपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासा द्वात्रिंशत् पारणे द्वे सर्वदिनानि चतुस्त्रिंशत् । एतत्तप समनुष्ठितवृद्धिदिने षोडशमासैरेव पूर्यते । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक जिनपूजा सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल गुणस्थानारोह । यन्त्रकन्यास । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ गुणरत्नसंवत्सरतप. ॥ २३ ॥

२४ मास ११ एकादशी २२ आगारं						
प्रथमेमा	उ	छ	११	छ	११	ति
द्वितीये	उ	छ	११	छ	११	ति
तृतीये	उ	छ	११	छ	११	ति
चतुर्थे	उ	छ	११	छ	११	ति
पञ्चमे	उ	छ	११	छ	११	ति
षष्ठेमा	उ	छ	११	छ	११	ति
सप्तमे	उ	छ	११	छ	११	ति
अष्टमे	उ	छ	११	छ	११	ति
नवमे	उ	छ	११	छ	११	ति
दशमे	उ	छ	११	छ	११	ति
एकादशे	उ	छ	११	छ	११	ति

नान्दपुण्या पुरुषः पुण्या अगणितमण्डकैर्भोजन दद्यात् । पश्चात्तस्या हरिद्राराग कौसुम्भवस्त्रयुगल ताम्बूल कङ्कणनूपुरादि दद्यात् । साधुसाध्वीना रजोहरणमुखवस्त्रिकावस्त्रपात्राद्यगणितमण्डकदान समस्तु श्राद्धगृहेषु अगणितमण्डकैर्लोभन । एतत्फल सिद्धिप्राप्तिः । इति श्राद्धकरणीयमागाढ पुण्डरीकतपः ॥ २७ ॥ ॥ अथ माणिक्यप्रस्तारिकातप । माणिक्यप्रस्तारी चाश्विनशुक्लस्य पक्षसंयोगे । आरभ्यैकादशिका राका यावद्विदध्याच्च ॥ १ ॥ माणिक्यवत्तपसः प्रस्तारो यस्या सा माणिक्यप्रस्तारी । तत्र आश्विनशुक्लैकादश्यामुपवासः द्वादश्यामेकभक्त त्रयोदश्या निर्विकृतिक चतुर्दश्यामाचाम्ल पूर्णिमास्यां द्विभुक्त । अथवा एकादश्यामुपवासः द्वादश्यामाचाम्ल त्रयोदश्या निर्विकृतिक चतुर्दश्यामेकभक्त पूर्णिमाया द्विभक्त । पर प्रभाते सूर्ये अनुदिते पञ्चस्वपि दिनेषु स्नानपूर्वक अविधवायाः सुभगाया मुखमण्डन उद्वर्तन च कुर्यात् ।

२८ माणिक्यप्रस्तारिकातप आगाढ

१	वर्षे	११उ	१२ए	१३नि	१४आ	१५द्वि	आगाढ
२	वर्षे	११उ	१२ए	१३नि	१४आ	१५द्वि	ऽथवा
३	वर्षे	११उ	१२ए	१३नि	१४आ	१५द्वि	ऽथवा
४	वर्षे	११उ	१२ए	१३नि	१४आ	१५द्वि	ऽथवा

ततः स्वयमपि शुचिभव्यवस्त्राणि कौसुम्भवस्त्रयुगुल वा परिधाय यथासपत्ति भूषणानि च धृत्वा अखण्डाक्षताञ्जलिं भृत्वा उपरि जातीफलमेक न्यस्य मङ्गलाचारपूर्वक चैत्यस्य प्रदक्षिणा दत्त्वा जिनाग्रे न्यसेत् । द्वितीयप्रदक्षिणाया नालिकेर तृतीयप्रदक्षिणाया सपत्र सवृन्त बीजपूर अक्षताञ्जलिमुपरिकरण पूगीफल देवाग्रे स्थापयेत् । चतुर्थप्रदक्षिणाया अक्षताञ्जलिमुपरि न्यस्य स्थाल देवाग्रे स्थापयेत् । चतुर्थप्रदक्षिणा दत्त्वा ततः

रित । सप्तवर्षाणि वर्षं वा क्रियते च तदर्चने ॥ १ ॥ नन्दीश्वरचैत्यानामाराधनार्थं तपो नन्दीश्वरतपः । तत्र दीपोत्सवोमावास्या पटलिखित नन्दीश्वर पूरयित्वा उपवासैर्वा स्वशक्तित आचाम्लैकभक्तनिर्विकृतिकैर्वा तप आरभ्यते । अमावास्याममावास्या समागतायां तदेव तपः क्रियते यावत्सप्तवर्षाणि । साम्प्रत प्रवाहात्-वेकवर्षं वा । यत्रकन्यास । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिना जिनपूजा कृत्वा स्वर्णमयकारितनन्दीश्वराग्रे द्विपञ्चाशत्सङ्ख्यया द्विपञ्चाशत् फलजातयः द्विपञ्चाशत् पक्वान्नजातयः द्विपञ्चाशत्सङ्ख्यया पुष्पजातयो ढौक्यन्ते । सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल भवाष्टकान्ते मोक्षः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ नन्दीश्वरतप ॥२६॥

२७ पुडरीकतप आगाढं वर्ष ७ चैत्रादारभ्यते												
१ वर्षे	उ १	पू	पू	पू	पू	पू	पू	पू	पू	पू	पू	पू
२ वर्षे	उ १	पू	पू	पू	पू	पू	पू	पू	पू	पू	पू	पू
३ वर्षे	उ १	पू	पू	पू	पू	पू	पू	पू	पू	पू	पू	पू
४ वर्षे	उ १	पू	पू	पू	पू	पू	पू	पू	पू	पू	पू	पू
५ वर्षे	उ १	पू	पू	पू	पू	पू	पू	पू	पू	पू	पू	पू
६ वर्षे	उ १	पू	पू	पू	पू	पू	पू	पू	पू	पू	पू	पू
७ वर्षे	उ १	पू	पू	पू	पू	पू	पू	पू	पू	पू	पू	पू

॥ अथ पुण्डरीकतपः । सप्तवर्षाणि वर्षं वा पूर्णमास्या यथाबल । कुर्वता पुण्डरीकाख्य तपस्तत्सज्ञयोच्यते ॥ १ ॥ पुण्डरीकस्य श्रीऋषभप्रथमगणधरस्य आराधनार्थं तप. पुण्डरीकतप. । स च चैत्रपूर्णिमास्या श्रीविमलाद्रौ सिद्धस्तद्दिने श्रीपुण्डरीकप्रतिमा-पूजापूर्वक यथाशक्ति एकाशनादिभिस्तप मारभ्यते । पुण्डरीक-पूजा तु कुसुम्भरक्तपरिधापनिकया कुसुम्भरक्तपट्या च नेत्राञ्ज-नेन सुरभिहरिद्रारागेण । ततः पूर्णिमाया यथाशक्ति तपो विद-ध्यात् । एव सप्तवर्षान्ते वर्षान्ते वा । यन्त्रकन्यास । उद्यापने श्रीम-

विद्ध्यात्। षोडशदिनानि नित्य समवसरणपूजा। एव वर्षचतुष्टय सपूर्य उद्यापने समवसरणस्य बृहत्स्ना-
त्रविधिपूर्वक स्थालचतुष्टये पक्वान्नढौकन सघवात्सल्य सघपूजा च। यन्त्रकन्यासः। एतत्फल साक्षादर्ह-
द्दर्शन। इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ समवसरणतपः ॥ ३० ॥ ॥ अथ द्वितीय समवसरणतपः। भाद्रपद-
कृष्णचतुर्थीमारभ्य शुक्लचतुर्थी यावत् यथाशक्ति तपो विधीयते। शेष पूर्ववत्॥ इति समवसरणतपोद्वय
॥३१॥ ॥ अथ एकादशगणधरतपः। चरमजिनस्यैकादश शिष्या गणधारिणस्तदर्थं च। प्रत्येकमनशनान्यथा

३२ एकादशगणधरतपः आगाढ उ० ११ पा० ११

इन्द्रभूति	उ १	पा	अग्निभूति	उ १	पा	वायुभूति	उ १	पा	व्यक्त	उ १	पा
अकपित	उ १	पा	अचलभूति	उ १	पा	मैतार्य	उ १	पा	प्रभास	उ १	पा
सुधर्मा	उ १	पा	मण्डिक	उ १	पा	मौर्यपुत्र	उ १	पा			

चाम्लान्यथा विद्ध्याच ॥१॥ गणधराराध-
नार्थं तपो गणधरतपः। आराधनार्थं प्रत्येक-
मेकादशोपवासानेकान्तरान् आचाम्लानि
वा विदधीत। यन्त्रकन्यासः। उद्यापने
गणधरमूर्तिपूजन सघवात्सल्य संघपूजा च। एतत्फलं केवलावाप्तिः। इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ गणधर-
तपः ॥ ३२ ॥ ॥ अथ अशोकवृक्षतपः। आश्विनशुक्लप्रतिपदमारभ्य तिथिश्च पञ्चजिनशक्त्या। कुर्यात्तपसा
सहिताः पञ्चसमा इदमशोकतपः॥ १ ॥ अशोकवृक्षवन्मङ्गलरूपमशोकवृक्षतपः। तत्र आश्विनशुक्लप्रतिपदमा-
रभ्य पञ्चमीं यावत् पञ्च दिनानि अशोकद्रुमसहितजिनपूजापूर्वक यथाशक्ति तपो विदधीत यावत्पञ्च वर्षाणि।

सप्तधान्यानि लवण च । अष्टोत्तरशतहस्तप्रमाण वस्त्र रक्तगुञ्जा अष्टोत्तरशत कौसुम्भवस्त्र देवाग्रे ढौकयेत् । एष वर्षचतुष्टय कुर्यात् । उद्यापने अष्टोत्तरशतप्रमाण सुकुमारिका पूर्णकुम्भप्रदीपादेया एक रूप्यमय दीप स्वर्णवर्तिसहित च दद्यात् । सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल विमलगुणावाप्ति । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ माणिक्यप्रस्तारिकातपः ॥ २८ ॥ ॥ अथ पद्मोत्तरतप[1] । प्रत्येक नवपद्मेष्वष्टाष्टप्रत्येकसख्यया । उपवासा मीलिताः स्युर्द्वासप्ततिरनुत्तराः ॥ १ ॥ पद्मवत् श्रिया उत्तर उत्कृष्ट पद्मोत्तर । तत्र नव पद्मानि तेषु प्रत्येकमष्टावष्टौ दलानि तत्सख्यया द्वासप्तत्युपवासा एकान्तरा विधीयन्ते ॥ यन्त्रकन्यास । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक अष्टदलस्वर्णमयकमलनवक ढौकनीय सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल महालक्ष्मीप्राप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ पद्मोत्तरतपः ॥ २९ ॥ ॥ अथ समवसरणतपः । श्रावणमथ भाद्रपद कृष्णप्रतिपदामिहादिता नीत्वा । षोडशदिनानि कार्यं वर्षचतुष्क स्वशक्तितपः ॥ १ ॥ समवसरणस्य आराधनार्थं तप. समवसरणतप । तत्र श्रावणकृष्णप्रतिपद भाद्रपदकृष्णप्रतिपद वा प्रारभ्य स्वशक्त्या द्विभक्तैकभक्तादि

६० समवसरणतप आगाढं भाद्रपदैकार्यश्रावण

१षमा	उ१	सि	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५		१
२षमा	उ१	सि	१६	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५		छ१
३षमा	उ१	सि	१६	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५		छ१
४षमा	उ१	सि	१६	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५		छ१

[1] पद्मोत्तरतपः २९ अस्याकृतिरस्मिन्ग्रन्थेऽस्माभिर्योजितास्ति ।

न्यष्टषष्टिः । पञ्चकन्यासः । उद्यापने रूप्यमयपट्टिकायां सुवर्णलेखिन्या पञ्चपरमेष्ठिमन्त्रं लिखित्वा ज्ञानपूजां विदध्यात् । अष्टषष्टिसंख्यया फलपुष्पमुद्रापक्वान्नढौकनं संघवात्सल्यं संघपूजा च । एतत्फलं सर्वसुखप्राप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ नमस्कारतपः ॥ ६५ ॥ ॥ अथ चतुर्दशपूर्वतपः । शुक्लपक्षे तपः कार्यं

६५ नमस्कारतपः आगाढ यथोदिन ६८

१ पदेऽक्षर ७।	० न	मो	अ	रि	हं	ता	णं	प	=७
२ पदेऽक्षर	५	न	मो	सि	द्धा	णं	प	५	=
३ पदेऽक्षर	०	न	मो	आ	य	रि	या	णं	प ७
४ पदेऽक्षर	० न	मो	उ	व	ज्झा	या	णं	।	प ७
५ पदेऽक्षर	९ न	मो	लो	ए	स	व्व	सा	हूण	प ९
६ पदेऽक्षर	८ ए	सो	पं	च	न	मु	क्का	रो	प ८
७ पदेऽक्षर	८ स	व्व	पा	व	प्प	णा	स	णो	प ८
८ पदेऽक्षर	८ म	ग	ला	ण	च	स	व्वे	सिं	प ८
९ पदेऽक्षर	७।८ प	ढ	मं	ह	व	इ	मं	ग	लपू ९

६६ चतुर्दशपूर्वतप आगाढ ।

शुक्ल	चतुर्दशी	१४	२ अग्रायणीय	१४
पू	उत्पादपू १	१४	अस्तिप्रवाद ४	पू
पू	वीर्यप्रवाद ३	१४	सत्यप्रवाद ६	पू
पू	ज्ञानप्रवाद ५	१४	कर्मप्रवाद ८	पू
पू	आत्मप्रवाद ७	१४	विद्याप्रवाद १०	पू
पू	प्रत्याख्यान ९	१४	प्राणायाम १२	पू
पू	कल्याणनाम ११	१४	लोकबिंदुसार	पू
पू	क्रियाविशाल १३	१४	पू	पू

३३ अशोकवृक्षतपः आगाढ							
१ अष्ट	१	२	३	४	५	वि	उ
२ अष्ट	१	२	३	४	५	वि	उ
३ अष्ट	१	२	३	४	५	वि	उ
४ अष्ट	१	२	३	४	५	वि	उ
५ अष्ट	१	२	३	४	५	वि	उ

यन्त्रकन्यासः। उद्यापने अशोकवृक्षसहितं नव्यं जिनबिम्बं कारयित्वा विधिना प्रतिष्ठाप्य षड्विकृतिपूगफलादिभिः पूजयेत्। संघवात्सल्यं संघपूजा च। एतत्फलं सर्वसुखप्राप्तिः। इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढं अशोकवृक्षतपः ॥ ३३ ॥

॥ ॥ अथ सप्तत्युत्तरशततपः। सप्ततिशतं जिनानामुद्दिश्यैकैकमेकभक्तं च। कुर्वाणानामुद्यापनात्तपः पूर्यते सम्यक् ॥ १ ॥ सप्ततिशतजिनानामाराधनार्थं तपः सप्ततिशततपः। तत्र सप्ततिशतजिनानुद्दिश्य सप्ततिशतमेकभक्तानि कुर्यादेकश्रेण्या अथवा विंशत्येकभक्तानि कृत्वा पारणकानि। यन्त्रन्यासः। उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिं विधाय सप्ततिशतसंख्यया सर्वपक्वान्नपुष्पफलढौकनं संघवात्सल्यं संघपूजा च। एतत्फलं आर्यक्षेत्रजन्म। इति यतिश्राद्धकरणीयमनागाढं सप्ततिशततपः ॥३४॥ ॥

३४ सप्ततिशततपः अनागाढ			
एकभक्त	२०	पारणक	१
एकभक्त	२०	पारणक	१
एकभक्त	२०	पारणक	१
एकभक्त	२०	पारणक	१
एकभक्त	२०	पारणक	१
एकभक्त	२०	पारणक	१
एकभक्त	२०	पारणक	१
एकभक्त	२०	पारणक	१
एकभक्त	२०	पारणक	१

॥ अथ नमस्कारतपः। नमस्कारतपश्चाष्टषष्टिसंख्यैकभक्तकैः। विधीयते च तत्पाद-संख्यायाश्च प्रमाणतः ॥ १ ॥ नमस्कार आराधनार्थं तपः नमस्कारतपः। तत्र प्रथमपदे वर्णसंख्यासप्तैकभक्तानि द्वितीयपदे पञ्च तृतीये सप्त चतुर्थे सप्त पञ्चमे नव षष्ठे सप्तमेऽष्टौ अष्टमेऽष्टौ नवमे नव वाष्टौ वा गुणीतायविशेषात्। एवं एकभक्ता-

न्यष्टपष्टि । पञ्चकन्यासः । उद्यापने रूप्यमयपट्टिकायां सुवर्णलेखिन्या पञ्चपरमेष्ठिमन्त्र लिखित्वा ज्ञानपूजां विध्यात् । अष्टषष्टिसंख्यया फलपुष्पमुद्रापकान्नढौकनं संघवात्सल्य संघपूजा च । एतत्फलं सर्वसुखप्राप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ नमस्कारतपः ॥ ३५ ॥ ॥ अथ चतुर्दशपूर्वतपः । शुक्लपक्षे तपः कार्य

३५ नमस्कारतपः आगाढ तपोदिन ६८

१ पदेऽक्षर ७	७ न	मो	अ	रि	हं	ता	णं	पु	=७
२ पदेऽक्षर	५	न	मो	सि	द्धा	णं	पु	५	=
३ पदेऽक्षर	७	न	मो	आ	य	रि	या	णं	पु ७
४ पदेऽक्षर	७ न	मो	उ	व	ज्झा	या	णं	।	पु ७
५ पदेऽक्षर	९ न	मो	लो	ए	स	व्व	सा	हूण	पु ९
६ पदेऽक्षर	८ ए	सो	पं	च	न	मु	क्का	रो	पु ८
७ पदेऽक्षर	८ स	व्व	पा	व	प्प	णा	स	णो	पु ८
८ पदेऽक्षर	८ मं	ग	ला	णं	च	स	व्वे	सिं	पु ८
९ पदेऽक्षर	९।८ प	ढ	म	हं	व	इ	मं	ग	पु ९

३६ चतुर्दशपूर्वतप आगाढ ।

छठ	चतुर्दशी	१७	२ अग्रायणीय	१४
पु	उत्पादपू १	१४	अस्तिप्रवाद ४	पु
पु	वीर्यप्रवाद ३	१४	सत्यप्रवाद ६	पु
पु	ज्ञानप्रवाद ५	१४	कर्मप्रवाद ८	पु
पु	आत्मप्रवाद ७	१४	विद्याप्रवाद १०	पु
पु	प्रत्याख्यान ९	१४	प्राणावाय १२	पु
पु	कल्याणनाम ११	१४	लोकबिंदुसार	पु
पु	क्रियाविशाल १३	१४	पु	पु

चतुर्दशचतुर्दशीः । चतुर्दशानां पूर्वाणां तपस्तेन समाप्यते ॥ १ ॥ चतुर्दशाना पूर्वाणामाराधनार्थं तप. चतुर्दशपूर्वतपः । तत्र शुभसयोगे । शुक्लचतुर्दशीं प्रारभ्य चतुर्दशमासेषु शुक्लचतुर्दशीषु यथाशक्ति एकाशनादि तपो विधेय । यत्रकन्यास' । उद्यापने ज्ञानपञ्चमीवत् चतुर्दशसख्यैः पुस्तकादिभिर्ज्ञानपूजा सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल सम्यक्श्रुतज्ञानावाप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ चतुर्दशपूर्वतपः ॥२६॥ ॥ अथ एकावलीतपः । एकद्वित्र्युपवासैः काहलके द्वे तथा च दाडिमके । वसुसख्यैश्च चतुर्थैः श्रेणी कनकाव-

पा	पा	पा	१	१	१	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा
पा	पा	पा	१		१	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
१	२	३	१	१	१																

काहली दाडिमौ ६० । ३७। एकावलीतपसि दिन ३३४ पारणा ८८ आगार

१	२	३	१	१	१	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
पा	पा	पा	१		१																
			१	१	१	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा

आवली २									पदकं
				१	१				
			१	१	१	१			
		१	१	१	१	१	१		
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
		१	१	१	१	१	१		
			१	१	१	१			
				१	१				
आवली १									पारणांतर

लीवत् ॥ १ ॥ चतुर्स्त्रिंशच्चतुर्थैश्च पूर्यते तरलः पुनः । समाप्तिमेति साधूनामेवमेकावलीतपः ॥ २ ॥ एकावलीवदुपवासैस्तप एकावलीतपः । तत्र प्रथमकाहलिकायां एकद्वित्र्युपवासैर्निरन्तरैः क्रमात्पारणकानि । ततो

दाडिमकस्याष्टमचतुर्थानि पारणान्तरितानि । तत एकद्वित्र्यादिभिः षोडशान्तैः पारणकान्तरैर्निरन्तरैरुपवासैरेका आवलिका पूर्यते । ततः पदकस्य चतुस्त्रिंशच्चतुर्थानि पारणान्तरितानि । ततो विलोमक्रमेण षोडशादिभिरेकान्तैः पारणान्तरितैर्निरन्तरोपवासैर्द्वितीयावलिका पूर्यते । पुनरष्टचतुर्थैः पारणान्तरैर्द्वितीयदाडिमकं पूर्यते । ततस्त्रिद्व्येकोपवासैर्द्वितीया काहलिकां पूरयेत् । अत्रोपवासाना त्रिशती चतुस्त्रिंशदुत्तरा ३३४ पारणकदिनान्यष्टाशीतिः ८८ । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिना पूजा विधाय प्रतिमाया बृहन्मुक्तावल्येकावलीहार समारोपयेत् सघवात्सल्य संघपूजा च । एतत्फल विमलगुणावाप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढमेकावलीतपः ॥ ३७ ॥ ॥ अथ दशविधयतिधर्मतपः । संयमादौ दशविधे धर्मे एकान्तरा अपि । क्रियन्त उपवासा यत्तत्तपः पूर्यते हि तैः ॥१॥ दशविधस्य यतिधर्मस्याराधनार्थं तपः दशविधयतिधर्मतपः । तत्र त्रयोदशोपवासा एकान्तरिता विधेयाः । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वकं कुर्यात् सघयात्सल्य संघपूजा च ।

३८ यतिधर्मतपः आगाढ

संयम	उ १	पा	सूनृत	उ १	पा	शौच	उ १	पा	ब्रह्म	उ १	पा
क्षांति	उ १	पा	मार्दव	उ १	पा	ऋजुता	उ १	पा	शुचि	उ १	पा
						आर्किंचन्य	उ १	पा			

एतत्फल विशुद्धधर्मप्राप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ यतिधर्मतपः ॥३८॥ ॥ अथ पञ्चपरमेष्ठितपः । उपवासैकस्थाने आचाम्लैकाशने च निर्विकृतिः । प्रतिपरमेष्ठि च पञ्च प्रत्याख्यानस्य भवतीद ॥१॥

चतुर्दशचतुर्दशीः । चतुर्दशानां पूर्वाणां तपसोन समाप्यते ॥ १ ॥ चतुर्दशानां पूर्वाणामाराधनार्थं तपः चतुर्दशपूर्वतपः । तत्र शुभसयोगे । शुक्लचतुर्दशीं प्रारम्य चतुर्दशमासेषु शुक्लचतुर्दशीषु यथाशक्ति एकाशनादि तपो विधेय । यन्त्रकन्यास । उद्यापने ज्ञानपञ्चमीवत् चतुर्दशसंख्य पुस्तकादिभिर्ज्ञानपूजा सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल सम्यक्श्रुतज्ञानावाप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ चतुर्दशपूर्वतपः ॥३६॥
॥ अथ एकावलीतपः । एकद्वित्र्युपवासैः काहलके द्वे तथा च दाडिमके । वसुसंख्यैश्च चतुर्थैः श्रेणी कनकाव-

पा	पा	पा	१	१	१	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा
पा	पा	पा	१		१	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
१	२	३	१	१	१																
काहलौ दाडिमौ १० । ३७ । एकावलीतपसि दिन ३३४ पारणा ८८ आगाढ																					
१	२	३	१	१	१	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
ब	ब	ब	१		१																
			१	१	१	ब	ब	ब	ब	ब	ब	ब	ब	ब	ब	ब	ब	ब	ब	ब	ब

आवर्त २									पदकं
				१	१				
			१	१	१	१			
		१	१	१	१	१	१		
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
		१	१	१	१	१	१		
			१	१	१	१			
				१	१				
आवर्ती १									पारणांतरं

लीयम ॥ १ ॥ चतुस्त्रिंशच्चतुर्थैश्च पूर्यते तरलः पुनः । समाप्तिमेति साधूनामेवमेकावलीतपः ॥ २ ॥ एकावलीवदुपवासैस्तप एकावलीतप । तत्र प्रथमकाहलिकायां एकद्वित्र्युपवासैर्निरन्तरैः क्रमात्पारणकानि । ततो

कुसुमादिपर्चः शुभतन्दुलैः पूरितवप्रः चारुस्वस्तिकोपरिधृतपरिपूर्णप्रदीपितपञ्चवर्तिप्रदीपः फलादिमलिवि-
धानपूर्वं शिरःप्रक्षिपितगन्धाक्षतचन्दनः गुरुसमीपे शुक्लपञ्चमीं प्रारभ्य तथा पञ्चमासीं शुक्लपञ्चमीषु द्विभ-
क्तानि पञ्चमासीं एकभक्तानि पञ्चमासीं निर्विकृतिकानि पञ्चमासीमाचाम्लानि पञ्चमासीमुपवासाः एव मा-
सपञ्चविंशत्या पूर्यते । केष्वपि गच्छान्तरेषु मासपञ्चविंशत्यामपि एकमेव यथारब्ध द्विभक्तमेकभक्त वा नि-
र्विकृतिक वा आचाम्ल वा उपवासो वा विधीयते । यश्रकन्यासः । उद्यापने जिनस्य बृहत्स्नात्रविधिः पञ्च-
सख्यया विविधपकान्नफलमुद्राढौकन पुस्तकाग्रे पुस्तकस्य च वर्तिकादोरक उत्तरीयक वेष्टनक पिंछिका निः-
क्षपण जपमाला वासकूपक लेखिनी मषीभाजन मुखवस्त्रिका छुरी कर्तरी नखहनी दण्डप्रोञ्छनक कमली ठव-
णीदोरी पाटुला दावडी दीवी अगलूहणाश्रीखण्डीवासपुडी वीजणीप्रभृति ज्ञानोपकरण । अष्टप्रकारपूजापू-
र्वक पञ्चपञ्चसख्यढौकनीय । सघवात्सल्यं सघपूजा च । एतत्फल ज्ञानलाभ' । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढं
लघुपञ्चमीतपः ॥ ४० ॥ ॥ अथ बृहत्पञ्चमीतपः । एवमेव तपो वर्षपञ्चक कुर्वता नृणां । बृहत्पञ्चमिकायास्तु
तपः सपूर्यतेऽखिल ॥ १ ॥ समाप्त्यारम्भौ लघुपञ्चमीवत् शुक्ल २ पञ्चमीषु वर्षमेक द्व्यशनानि वर्षमेकमेकभ-
क्तानि वर्षमेकं निर्विकृतिकानि वर्षमेकमाचाम्लानि वर्षमेकमुपवासाः शुक्लपञ्चमीषु एव पञ्चसवत्सराः
पूर्यन्ते । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने लघुपञ्चमीवत् पर वस्तुसख्या पञ्चविंशतिपञ्चविंशतिरूपा । एतत्फलं महा-
ज्ञानावाप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ बृहज्ज्ञानपञ्चमीतपः ॥ ४१ ॥ ॥ अथ चतुर्विधसघतपः । उपवा-

पञ्चानां परमेष्ठिनामाराधनार्थं तपः परमेष्ठितपः । तत्र प्रथमपरमेष्ठिनं प्रति प्रथममुपवास' । तत एकाशन तत आचाम्ल तत एकाशन ततो निर्विकृतिक ततोपि पूर्वार्धं अष्टग्रास । एव परेषा चतुर्णामपि परमेष्ठिना इति पञ्चत्रिंशद्दिनै' पूर्यते । पञ्चकन्यास' । उद्यापने ज्ञानपञ्चमीवत् पञ्चभिः पञ्चभि' पुस्तकादिभिर्विधिर्विधेयः । सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल सर्वविघ्नोपशमः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ पञ्चपरमेष्ठितप' ॥ ३९ ॥ ॥ अथ लघुपञ्चमीतपः । लघुपञ्चम्या ह्यशनादिपञ्चमासोत्तर तपः कृत्वा । तत्पञ्चविधसमाप्तो स-

३०। ३९। पञ्चपरमेष्ठितप आगाढ							
नमोअरि ०	उ	ए	आं	ए	नि	पु	अठकव
नमोसिद्धा०	उ	ए	आं	ए	नि	पु	अठक०
नमोआय ०	उ	ए	आं	ए	नि	पु	अठक०
नमोउवज्झा०	उ	ए	आं	ए	नि	पु	अठक०
नमोलोएस०	उ	ए	आं	ए	नि	पु	अठक०

४० लघुपञ्चमीतप आगा० । ४१ बृहत्पञ्चमीतपआ०				
मास ५	त्रिभक्त	वर्ष	त्रि	पुष्ठ ५
मास ५	एकभक्त	वर्ष	ए	पुष्ठ ५
मास ५	निभक्त	वर्ष	नि	पुष्ठ ५
मास ५	आंबिल	वर्ष	आं	पुष्ठ ५
मास ५	उपवास	वर्ष	उ	पुष्ठ ५

माप्यते मासपञ्चविंशत्या ॥ १ ॥ पञ्चम्यां तप' तत्र चतुर्मासी श्रावणभाद्रपदआश्विनकार्तिकपौषचैत्रवर्ज-यित्वा पुरुषो महिला वा जिनभवने ज्ञानादिपुष्पैर्विरचितजिनपूजां तदग्र विधिवेदय पुस्तकं तत्र विहित-

कुसुमादिपूजः शुभतन्दुलैः पूरितसद्मः चारुस्वस्तिकोपरिघृतपरिपूर्णप्रदीपितपञ्चवर्तिप्रदीपः फलादिबलिविधानपूर्वं शिरःप्रक्षिपितगन्धाक्षतचन्दनः गुरुसमीपे शुक्लपञ्चमीं प्रारभ्य तथा पञ्चमासीं शुक्लपञ्चमीषु विभक्तानि पञ्चमासीं एकभक्तानि पञ्चमासीं निर्विकृतिकानि पञ्चमासीमाचाम्लानि पञ्चमासीषूपवासाः एव मासपञ्चविंशत्या पूर्यते । केष्वपि गच्छान्तरेषु मासपञ्चविंशत्यामपि एकमेव यथारब्धं [illegible] वा निर्विकृतिकं वा आचाम्लं वा उपवासो वा विधीयते । पञ्चकन्यासः । उद्यापने [illegible] सम्पत्त्या विविधपक्वान्नफलकुसुमढौकन पुस्तकाय पुस्तकार्थं च [illegible] लक्षण जपमाला पासकुपक लेखिनी मषीभाजन कुलपट्टिका छुरी कर्तरी [illegible] दोरी पाटुका [illegible] लंगाटूपणा [illegible] पुष्टी [illegible] ज्ञानोपकरणं । [illegible] संघवात्सल्यं संघपूजा च । एतत्फलं ज्ञानलाभः । इति [illegible] पञ्चमीतपः ॥ १० ॥ ॥ अथ [illegible] तपः । [illegible] ॥ १ ॥ [illegible] तपः ॥ ५१ ॥ ॥ अथ [illegible] । [illegible]

सद्वय कृत्वा ततो वत्सर ६० सख्यया । एकान्तरोपवासैश्च पूर्णं सघतपो भवेत् ॥ १ ॥ चतुर्विधस्य सघस्याराधनार्थं तपश्चतुर्विधसघतपः । तत्र उपवासद्वय निरन्तर विधाय पारण कृत्वा षष्टिरुपवासा एकान्तरा विधेया । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फलं तीर्थंकरनामकर्म । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ चतुर्विधसघतपः ॥ ४२ ॥ ॥ अथ घनतपः । एकद्व्येकद्व्येकयुग्मशशिसख्ययोपवासैश्च । पारणकान्तरितैरपि निरन्तरैः पूर्यतेऽत्र घन ॥ १ ॥ अङ्कानां घनयुक्त्या तपो घनतपः । तत्र एकोपवासः पारणक द्वौ उपवासौ पारणक एकोपवास' पारणक द्वौ उपवासौ पारणक पुनः द्वौ उपवासौ पारणक एकोपवासः पारणक द्वौ उपवासौ पारणक एकोपवासः पारणक एव उपवासाः द्वादश पारणकान्यष्टौ ।

४२ चतुर्विधसंघतप आगाढ दिन १२२

उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा
उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा
उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा
उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा
उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा
उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा
उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा
उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा
उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा
उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा
उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा
उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा

४३ घनतप आगाढ

उ १	पा	उ २	पा
उ १	पा	उ २	पा
उ २	पा	उ १	पा
उ २	पा	उ १	पा

यन्त्रकन्यासः । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक उपवाससख्यया फलपुष्पपक्वान्नजातिढौकन संघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल महालक्ष्मीः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ घनतपः ॥ ४३ ॥ ॥ अथ महाघनतपः ।

४४ महाघनतप आगाढ						
उ १	पा	उ	२	पा	उ ३	पा
उ २	पा	उ	३	पा	उ १	पा
उ ३	पा	उ	१	पा	उ २	पा
उ २	पा	उ	३	पा	उ १	पा
उ ३	पा	उ	१	पा	उ २	पा
उ १	पा	उ	२	पा	उ ३	पा
उ २	पा	उ	३	पा	उ १	पा
उ ३	पा	उ	१	पा	उ २	पा
उ २	पा	उ	३	पा	उ १	पा

महाघनतपः श्रेष्ठमेकद्वित्रिभिरेव हि । उपवासैर्नवकृत्वः पृथक्श्रेणिमुपागतैः ॥ १ ॥ घनाद्बाहुल्यान्महाघन । तत्र प्रथमश्रेणौ एकद्वित्रि उपवासा निरन्तराः पारणान्तरिताः द्वितीयश्रेणौ द्वित्र्येकोपवासाः । तृतीयाया त्र्येकद्व्युपवासाः चतुर्थ्यां द्वित्र्येकोपवासाः पञ्चम्या त्र्येकद्व्युपवासाः षष्ठ्यामेकद्वित्रिउपवासाः सप्तम्या द्वित्र्येकोपवासाः अष्टम्या एकद्व्युपवासाः नवम्या द्वित्र्येकोपवासाः एव उपवासाश्चतुःपञ्चाशत् पारणकानि सप्तविंशतिः सर्वदिनान्येकाशीतिः । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वकमेकाशीतिसख्यया पक्वान्नफलजातिढौकन सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल सार्वभूमर्द्धिप्राप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ महाघनतपः ॥ ४४ ॥ ॥ अथ वर्गतपः । एकद्व्येककयुग्मभूमियमलैरेकद्विभूमिद्विकैर्द्व्येकद्वीन्दुयुगैकयुग्मधरणीयुग्मेन्दुयुग्मैककैः । एकद्व्येकभुजद्विचन्द्रधरणीयुग्मैकयुग्मे-

न्दुभिर्द्व्येकद्व्येकयुगैर्युगेन्दुधरणीयुग्मैकयुग्मेन्दुभिः ॥ १ ॥ द्विद्व्येकद्विमहीद्विभूमियुगलद्व्याद्व्याद्विभूमिद्वयैर्द्व्ये-कद्व्येकमहीद्विचन्द्रयुगलैः श्रेण्यष्टकस्य गते. । वर्गाख्यं तप उच्यते घनशनैर्मध्योल्लसत्पारणै-सर्वत्रापि निरन्तरैरपि दिनान्यस्मिन्खषट्भू-मयः ॥ २ ॥ वर्गाङ्कैस्तपः वर्गतपः । तत्र एक-द्विएकद्विएकद्विएकद्विएकउपवासैर्निरन्तरैः पा-रणान्तरितैः प्रथमा श्रेणिः । एकद्विद्विएक-द्विएकद्विएकउपवासैर्द्वितीया श्रेणिः । द्विएक-द्विएकएकद्विएकद्विउपवासैस्तृतीया श्रेणिः । द्विएकएकद्विएकद्विएकद्विउपवासैश्चतुर्थी श्रे-

८५ वर्गतपः आगाढं दिनसंख्या १६०

उ	१	पा	२	पा	१	पा	२	पा	१	पा	२	पा	१	पा	२
उ	१	पा	२	पा	२	पा	१	पा	२	पा	१	पा	२	पा	१
उ	२	पा	१	पा	२	पा	१	पा	१	पा	२	पा	१	पा	२
उ	२	पा	१	पा	१	पा	२	पा	१	पा	२	पा	१	पा	२
उ	१	पा	२	पा	१	पा	२	पा	२	पा	१	पा	१	पा	२
उ	१	पा	२	पा	१	पा	२	पा	२	पा	१	पा	२	पा	१
उ	२	पा	१	पा	२	पा	१	पा	१	पा	२	पा	२	पा	१
उ	२	पा	१	पा	२	पा	१	पा	२	पा	१	पा	२	पा	१

णिः । एकद्विएकद्विद्विएकएकद्विउपवासैः पञ्चमी श्रेणिः । एकद्विएकद्विद्विएकद्विएकउपवासैः षष्ठी श्रेणिः । द्विएकद्विएकएकद्विद्विएकउपवासैः सप्तमीश्रेणिः । द्विएकद्विएकद्विएकद्विएकउपवासैरष्टमी श्रेणिः । एवं श्रेण्य-ष्टकेन षण्णवतिउपवासैः पूर्यते । पारणकानि चतुःषष्टिः । सर्वदिनानि षष्ठ्युत्तर शतं । उद्यापने बृहत्स्नात्रवि-धिपूर्वकं षष्ठ्युत्तरशतसंख्यया पक्वान्नफलादिढौकनं संघवात्सल्यं संघपूजा च । एतत्फलं महर्धिः । श्रावक-

न्यासः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ वर्गतपः ॥ ४५ ॥

४६ श्रेणितप आगाढ उ०८३ पा० २७ दिन ११०

							उ १	पा	उ २	पा
					उ १	पा	उ २	पा	उ ३	पा
				१०	२	पा	३	पा	४	पा
		पा	उ २	पा	३	पा	४	पा	५	पा
उ १	पा	पा२	३	पा	४	पा	५	पा	६	पा
पा १	पा २	पा३	४	पा	५	पा	६	पा	७	पा

४७ पञ्चमेरुतप आगाढ

प्रथममेरुतपः	उ	५	पा	५
द्वितीयमेरुतप०	उ	५	पा	५
तृतीयमेरु०	उ	५	पा	५
चतुर्थमेरु०	उ	५	पा	५
पञ्चममेरु०	उ	५	पा	५

॥ अथ श्रेणितपः । श्रेणौ षट् श्रेणयः प्रोक्ता एको द्वौ प्रथमे क्षणे । द्वितीयादिषु चैकाङ्कक्रमवृद्ध्याभिजायते ॥ १ ॥ श्रेण्यङ्कैस्तपः श्रेणितपः । तत्र प्रथमश्रेणौ एकद्विउपवासा निरन्तराः पारणान्तरिताः । द्वितीयायां एकद्वित्रिउपवासाः तृतीयाया एकद्वित्रिचतुरुपवासाः चतुर्थ्यां एकद्वित्रिचतुःपञ्चोपवासाः । पञ्चम्या एकद्वित्रिचतुःपञ्चषडुपवासाः एव षडुपवासाः षष्ठ्या एकद्वित्रिचतुःपञ्चषट्सप्तोपवासाः एव त्र्यशीत्युपवासैः सप्तविंशतिपारणैर्दशोत्तरशतदिनैः षड्भिः श्रेणिभिः पूर्यते । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने दशोत्तरशतसंख्यया पक्वान्नफलजातिढौकनं बृहत्स्नात्रविधिः । संघवात्सल्य संघपूजा च । एतत्फलं क्षपणकश्रेणिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ श्रेणितपः ॥ ४६ ॥ ॥ अथ मेरुतपः । प्रत्येकं पञ्चमेरूणामुपोषणकपञ्चकं । एकान्तरं मेरुतपस्तेन संजायते शुभं ॥ १ ॥ मेरुसंख्यया तपः

न्तुभिर्द्व्येकद्व्येकयुगैर्युगेन्दुधरणीयुग्मैकयुग्मेन्दुभिः ॥ १ ॥ द्विद्व्येकद्विमहीद्विभूमियुगलव्याप्याद्विभूमिद्वयैर्द्व्य-
कद्व्येकमहीद्विचन्द्रयुगलैः श्रेणाष्टकस्य गतैः ।
वर्गाख्य तप उच्यते ह्यनशनैर्मध्योल्लसत्पारणै
सर्वत्रापि निरन्तरैरपि दिनान्यस्मिन्खपट्भू-
मयः ॥ २ ॥ वर्गाङ्कस्तपः वर्गतपः । तत्र एक-
द्विएकद्विएकद्विएकद्विएकउपवासैर्निरन्तरैः पा-
रणान्तरितैः प्रथमा श्रेणिः । एकद्विद्विएक-
द्विएकद्विएकउपवासैर्द्वितीया श्रेणिः । द्विएक-
द्विएकएकद्विएकद्विउपवासैस्तृतीया श्रेणिः ।
द्विएकएकद्विएकद्विएकद्विउपवासैश्चतुर्थी श्रे-
णिः । एकद्विएकद्विद्विएकएकद्विउपवासैः पञ्चमी श्रेणिः । एकद्विएकद्विद्विएकद्विएकउपवासैः षष्ठी श्रेणिः ।
द्विएकद्विएकएकद्विद्विएकउपवासैः सप्तमीश्रेणिः । द्विएकद्विएकद्विएकद्विएकउपवासैरष्टमी श्रेणिः । एवं श्रेण्य-
ष्टकेन षण्णवतिउपवासैः पूर्यते । पारणकानि चतुःषष्टिः । सर्वदिनानि षष्ठ्युत्तर शतं । उद्यापने बृहत्स्नात्रवि-
धिपूर्वकं षष्ठ्युत्तरशतसंख्यया पक्वान्नफलादिढौकनं संघवात्सल्यं संघपूजा च । एतत्फलं महर्द्धेय । यत्रा-

४५ वर्गतपः आगाढ दिनसंख्या १६०

उ	१	पा	२	पा	१	पा	२	पा	१	पा	२	पा	१	पा	२
उ	१	पा	२	पा	१	पा	१	पा	२	पा	१	पा	२	पा	१
उ	२	पा	१	पा	२	पा	१	पा	१	पा	२	पा	१	पा	२
उ	२	पा	१	पा	१	पा	२	पा	१	पा	२	पा	१	पा	२
उ	१	पा	२	पा	१	पा	२	पा	२	पा	१	पा	१	पा	२
उ	१	पा	२	पा	१	पा	२	पा	२	पा	१	पा	२	पा	१
उ	२	पा	१	पा	२	पा	१	पा	१	पा	२	पा	२	पा	१
[illegible]	२	पा	१	पा	२	पा	१	पा	२	पा	१	पा	२	पा	१

तितीर्थंकरानुद्दिश्य तद्दिनानि-
विनापि यथाशक्ति एकान्तरा-
श्चतुर्विंशत्युपवासा विधीयन्ते ।
उद्यापने वृहत्स्नात्रविधिपूर्वकं
जिनाग्रे चतुर्विंशतिसख्यया,प-

५० च्यवनजन्मतपोद्वय अनागाढ यन्त्राकृतिः

उ १ ऋ	पा	उ १ अ	पा	उ १ सं	पा	उ १ अ	पा	उ १ सु	पा	उ १ प	पा
उ १ सु	पा	उ १ च	पा	उ १ सु	पा	उ १ सी	पा	उ १ श्र	पा	उ १ वा	पा
उ १ वि	पा	उ १ अ	पा	उ १ ध	पा	उ १ शां	पा	उ १ कु	पा	उ १ अ	पा
उ १ म	पा	उ १ मु	पा	उ १ न	पा	उ १ ने	पा	उ १ पा	पा	उ १ व	पा

क्वान्नफलजातिढौकन सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल सम्पत्तिः । जन्मतपोऽप्येवमेव । यन्त्रकन्यासः । इति यतिश्राद्धकरणीयमनागाढ च्यवनजन्मतपोद्वय ॥ ५० ॥ ॥ अथ सूरायणतपः । सूरवदयनं हानिवृद्ध्या यस्य

५१ यवमध्ये सूरायणतपः कृष्णपक्षे हानिः २																यवमध्ये सूरायणतपः शुक्लपक्षे वृद्धिः															
कृष्ण तिथि	१५ आ	१४ आ	१३ आ	१२ आ	११ आ	१० आ	९ आ	८ आ	७ आ	६ आ	५ आ	४ आ	३ आ	२ आ	१ आ	शुक्ल तिथि	१ आ	२ आ	३ आ	४ आ	५ आ	६ आ	७ आ	८ आ	९ आ	१० आ	११ आ	१२ आ	१३ आ	१४ आ	१५ आ
५१ वज्रमध्ये सूरायणतपः कृष्णपक्षे हानिः																वज्रमध्ये सूरायणतप शुक्लपक्षे वृद्धि २															
कृष्ण तिथि	१५ आ	१४ आ	१३ आ	१२ आ	११ आ	१० आ	९ आ	८ आ	७ आ	६ आ	५ आ	४ आ	३ आ	२ आ	१ आ	शुक्ल तिथि	१ आ	२ आ	३ आ	४ आ	५ आ	६ आ	७ आ	८ आ	९ आ	१० आ	११ आ	१२ आ	१३ आ	१४ आ	१५ आ

तत्सूरायन । तत्र सूरायणतपो वज्रमध्ययवमध्यचान्द्रायणवत् । नवरं कृष्णप्रतिपदि प्रारम्भः । यन्त्रकन्यासः ।

मेरुतपः । तत्र पञ्चमेरूनुद्दिश्य पञ्चविंशत्युपवासा एकान्तरा विधीयन्ते । पञ्चकन्यासः । उद्यापने बृहत्स्नात्र-विधिपूर्वकं स्वर्णमयपञ्चमेरुढौकनं सघवात्सल्यं सघपूजा च । एतत्फल उत्तमप्राप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमनागाढं पञ्चमेरुतपः ॥ ४७ ॥ ॥ अथ द्वात्रिंशत्कल्याणकतपः । उपवासत्रय कृत्वा द्वात्रिंशदुपवासका । एकभक्तान्तरास्तस्मादुपवासत्रय वदेत् ॥ १ ॥ द्वात्रिंशदुपवासैरुपलक्षितानि कल्याणकानि द्वात्रिंशत्कल्याणकानि । तत्र प्रथम निरन्तर उपवासत्रय तत एकाशन ततो द्वात्रिंशदुपवासा एकाशनान्तरिताः ततो निरन्तर उपवासत्रय ततः पारणकं एवमुपवासा अष्टत्रिंशत् पारणकानि चतुस्त्रिंशत् सर्वदिनानि द्वासप्तति । पञ्चकन्यासः । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वकं द्वात्रिंशत्संख्यया पक्वान्नफलजातिढौकनं सघवात्सल्यं सघपूजा च । एतत्फल तीर्थंकरनामकर्म । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढं द्वात्रिंशत्कल्याणकतप ॥ ४८ ॥ ॥ अथ च्यवनतप । चतुर्विंशतितीर्थंकरानुद्दिश्य च्यवनात्मकं । विना कल्याणकदिने कार्यानयानपयति ॥ १ ॥ च्यवनार्थं तपश्च्यवनतप । तत्र चतुर्विंश-

४८ द्वात्रिंशत्कल्याणकतप आगाढ

उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा
उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा
उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा
उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा
उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा
उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा
उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा
उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा	उ १	पा

वेषाग्रे पुरुषप्रमाणतण्डुलपुञ्जोपरि ढौकनीयः नानाविधपक्वान्न च संघवात्सल्य संघपूजा च। एतत्फल परम ज्ञान। इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढं लोकनालितप ॥ ५२ ॥ ॥ अथ कल्याणकाष्टाह्निकातपः। नेवभक्ताष्टक[1] कार्यमर्हत्कल्याणपञ्चके। प्रत्येक पूर्यते तच्च बृहद्दष्टाह्निकातपः ॥ १ ॥ कल्याणकैश्च नवजन्मव्रतकेवलज्ञाननिर्वाणरूपैः संयुक्तानि अष्टाष्टावहानि कल्याणाष्टाह्निका। तत्र ऋषभाद्येकस्यैकस्यार्हत एकैक कल्याणक प्रति अष्टाष्टावेकभक्तानि चत्वारिंशदेकभक्तैरेकस्यार्हतः कल्याणकानि पूर्यन्ते। एव परेषामपि षष्ट्यधिकनवशतदिनैः पूर्यते। कदाचिद्दिनान्तरविच्छेदेन निजान्तरतपसि क्रियमाणे न दोषः।

५३ अष्टाह्निकातप अनागाढ एकस्य जिनस्य									
अन्यजिनानामपि एवैव बुद्धिः कल्प्या									
ऋषभस्य	च्य०	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १
ऋषभस्य	ज०	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १
ऋषभस्य	व्र०	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १
ऋषभस्य	ज्ञा०	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १
ऋषभस्य	नि०	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १

उद्यापने जिनाग्रे विंशत्युत्तरशतसङ्ख्यया सर्वफलजातिसर्वपक्वान्नजातिढौकनं बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक यतिभ्यो वस्त्रान्नपात्रपानदान संघवात्सल्य संघपूजा च। एतत्फल तीर्थकरनामकर्मबन्धः। यत्यकन्यासः। इति यतिश्राद्धकरणीयमनागाढ कल्याणकाष्टाह्निकातपः ॥ ५३ ॥ ॥ अथ आचाम्लवर्धमानतपः। उपवासान्तरितानि

1 एकभक्ताष्टकमिति पाठः।

उद्यापने चन्द्रस्थाने सूर्यः। शेषं तथैव । एतत्फलं महाराज्यप्राप्तिः। इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ द्वरायण-तपः ॥ ५१ ॥ ॥ अथ लोकनालितपः ॥ सप्त पृथ्व्यो मध्यलोक कल्पा ग्रैवेयका अपि। अनुत्तरा मोक्षशिला

५२ लोकनालितपः	क्र० १
अ १	मुक्तिशिला
आं १	सर्वार्थसिद्धि
आं १	अपराजित
आं १	जयंत
आं १	वैजयंत
आं १	विजय
५	पञ्चानुत्तर
नि १	सुदर्शन
नि १	सुप्रतिबद्ध
नि १	मनोरम
नि १	सर्वतोभद्र
नि १	सुविशाल
नि १	सौमनस
नि १	सुमनस
नि १	प्रीतिकर
नि १	आदित्य
९	ग्रैवेयक
१२	द्वादशकल्पा
ए १	अच्युत
ए १	आरण
ए १	प्राणत
ए १	आनत
ए १	सहस्रार
ए १	शुक्र
ए १	लांतक
ए १	ब्रह्म
ए १	माहेन्द्र
ए १	सनत्कुमार
ए १	ईशान
ए १	सौधर्म
उ १	मध्यलोक
ए १	महातम
ए १	तमःप्रभा
ए १	धूमप्रभा
ए १	पंकप्रभा
ए १	वालुका
ए १	शर्करा
ए १	रत्नप्रभा
०	तम
०	पृथ्वी

लोकनालिरितीर्यते ॥ १ ॥ एकभक्तान्युपवास एकभक्तानि नीरसाः। आचाम्लान्युपवासाश्च क्रमात्तु तपः स्मृतं ॥ २ ॥ लोकनालिक्रमेण तपः लोकनालितपः। तत्र रत्नप्रभादिसप्तपृथ्वीरुद्दिश्य निरन्तराणि सप्तैकभक्तानि ततो मध्यलोकमुद्दिश्य उपवासः। ततो द्वादशकल्पानुद्दिश्य द्वादशैकभक्तानि। ततो नवग्रैवेयकानुद्दिश्य नव निर्विकृतिकानि। पञ्चानुत्तरानुद्दिश्य पञ्चाम्लानि। ततो मुक्तिशिलामुद्दिश्य एकोपवास एव पञ्चविंशतिदिनैः पूर्यते। यन्त्रकन्यासः। उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वकं रूप्यमयसप्तपृथ्व्यः सुवर्णमयो मध्यलोकः नानामणिमयाः कल्पग्रैवेयकानुत्तराः स्फटिकमयी मुक्तिशिला तदुपरि काञ्चनरत्नन्यासः। स च

वेषाग्रे पुरुषप्रमाणतण्डुलपुञ्जोपरि ढौकनीयः नानाविधपक्वान्न च संघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल परम ज्ञान । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढं ढोकनालितपः ॥ ५२ ॥ ॥ अथ कल्याणकाष्टाह्निकातपः । नैवभक्ताष्टक कार्यमर्हत्कल्याणपञ्चके । प्रत्येक पूर्यते तच्च वृहद्वृष्टाह्निकातपः ॥ १ ॥ कल्याणकैश्च नवजन्मव्रतकेवलज्ञाननिर्वाणरूपैः सयुक्तानि अष्टाष्टावहानि कल्याणाष्टाह्निका । तत्र ऋषभाद्येकस्यैकस्यार्हत एकैक कल्याणक प्रति अष्टाष्टावेकभक्तानि चत्वारिंशदेकभक्तैरेकस्यार्हतः कल्याणकानि पूर्यन्ते । एव परेषामपि षष्ट्यधिकनवशतदिनैः पूर्यते । कदाचिद्दिनान्तरविच्छेदेन निजान्तरतपसि क्रियमाणे न दोषः ।

५२ अष्टाह्निकातप अनागाढ एकस्य जिनस्य									
अन्यजिनानामपि एवैव युक्ति कल्या									
ऋषभस्य	च्य०	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १
ऋषभस्य	ज०	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १
ऋषभस्य	व्र०	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १
ऋषभस्य	ज्ञा०	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १
ऋषभस्य	नि०	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १	ए १

उद्यापने जिनाग्रे विंशत्युत्तरशतसख्यया सर्वफलजातिसर्वपक्वान्नजातिढौकन वृहत्स्नात्रविधिपूर्वक यतिभ्यो वस्त्रान्नपात्रपानदान संघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल तीर्थकरनामकर्मबन्धः । यन्त्रकन्यासः । इति यतिश्राद्धकरणीयमनागाढ कल्याणकाष्टाह्निकातपः ॥ ५३ ॥ ॥ अथ आचाम्लवर्धमानतपः । उपवासान्तरितानि

१ एकभक्ताष्टकमिति पाठः ।

५४ आचाम्लवर्धमानतपः आगाढ घप १४ मास ३ दिन २० पूर्यते

आं	उ	आं	उ	आं	उ	आं	उ	आं	उ	आं	उ	आं	उ	आं	उ	आं	उ	आं	उ
१	१	२	१	३	१	४	१	५	१	६	१	७	१	८	१	९	१	१०	१
११	१	१२	१	१३	१	१४	१	१५	१	१६	१	१७	१	१८	१	१९	१	२०	१
२१	१	२२	१	२३	१	२४	१	२५	१	२६	१	२७	१	२८	१	२९	१	३०	१
३१	१	३२	१	३३	१	३४	१	३५	१	३६	१	३७	१	३८	१	३९	१	४०	१
४१	१	४२	१	४३	१	४४	१	४५	१	४६	१	४७	१	४८	१	४९	१	५०	१
५१	१	५२	१	५३	१	५४	१	५५	१	५६	१	५७	१	५८	१	५९	१	६०	१
६१	१	६२	१	६३	१	६४	१	६५	१	६६	१	६७	१	६८	१	६९	१	७०	१
७१	१	७२	१	७३	१	७४	१	७५	१	७६	१	७७	१	७८	१	७९	१	८०	१
८१	१	८२	१	८३	१	८४	१	८५	१	८६	१	८७	१	८८	१	८९	१	९०	१
९१	१	९२	१	९३	१	९४	१	९५	१	९६	१	९७	१	९८	१	९९	१	१००	१

प शतपर्यन्त तथैकमारभ्य । वृद्ध्या निरन्तरतया भवति तदाचाम्लवर्धमान च ॥ ८ ॥ आचाम्लैर्वर्धमान आचाम्लवर्धमान तत्रैकमाचाम्ल उपवासः द्वे आचाम्ले उपवास एव शतमाचाम्लाना एकादिवृद्ध्या उपवासान्तरितविधेय चतुर्दशभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासैर्विंशत्यादिनै. पूर्यते । तन्मध्ये पारणक । यत्रकन्यास । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक चतुर्विंशतिजिनपूजा संघवात्सल्य संघपूजा च । एतत्फल तीर्थंकरनामकर्मबन्धः । इति यतिश्रावककरणीयमनागाढमाचाम्लवर्धमानतप ॥ ५४ ॥ ॥ अथ माघमालातप । आरभ्य पोषदशमीपर्यन्ते माघशुक्ल-

५५ माघमालातप आगाढ प्रथम वर्षे पौषवदिदशमी १०										प	११	१२	प	१३	प	१४	प	०	माघसुदि पडिवा	१	प	२	प	३	प	०
४	५	६	७	८	९	१०	प	मा	११	प	१२	प	१३	प	१४	प	१५	प	एवं द्वितीयवर्षे तृतीयचतुर्थेपि एवमेव तिथयः							

पूर्णायां । स्नात्वार्हन्तं संपूज्य चैकभक्तं विदध्याच्च ॥ १ ॥ माघमासे मालारूपं करणीयं माघमाला । तत्र पौषकृष्णदशमीमारभ्य माघपूर्णिमापर्यन्तं स्नात्वा जिनार्चनं एकभक्तं च कुर्यात् । एवं वर्षचतुष्टयं कृत्वा उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वकं जिनाग्रे घृतमयं मेरुं सुवर्णमणिगर्भितं ढौकयेत् । संघवात्सल्यं संघपूजा च । एतत्फलं परमसुखप्राप्तिः । यन्त्रकन्यासः । इति श्राद्धकरणीयमागाढं माघमालातपः ॥ ५५ ॥ ॥ अथ महावीरतपः । महावीरतपो ज्ञेयं वर्षाणि द्वादशैव च । त्रयोदशैव पक्षाश्च पञ्चकल्याणपारणे ॥१॥ महावीरस्य छद्मस्थकालतपः महावीरतपः । तत्र द्वादशवर्षत्रयोदशपक्षपर्यन्तं निरन्तरं दशोपवासान्तरितानि पारणकानि । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वकं श्रीमहावीरप्रतिमाग्रे स्वर्णमयं न्यग्रोधतरुं ढौकयेत् । संघवात्सल्यं संघपूजा च । एतत्फलं कर्मक्षयः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढं

५६ महावीरतप आगाढ प्रथमवर्षे										उ १०	पा	१०	पा	१०	पा	१०	पा
उ १०	पा	१०	पा	१०	पा	१०	पा	१०	पा	१०	पा	१०	पा	१०	पा	१०	पा
१०	पा	१०	पा	१०	पा	१०	पा	१०	पा	१०	पा	१०	पा	१०	पा	१०	पा
१०	पा	१०	पा	१०	पा	१०	पा	१०	पा	१०	पा	१०	पा	१०	पा	१०	पा
१०	पा	१०	पा	१०	पा	१	पा	१०	पा	१०	पा	१०	पा	१०	पा	१०	पा

महावीरतप ॥ ५६ ॥ ॥ अथ लक्षप्रतिपत्तपः । शुक्लप्रतिपदः सूर्यसंख्या एकाशनादिभिः । समर्थनीयास्तपसि लक्षप्रतिपदाख्यके ॥ १ ॥ शुक्लप्रतिपदमारभ्य प्रतिपत् १२ वर्षमेकं यावद्यथाशक्त्येकाशनादितपः लक्षप्रतिपच्छ्रावकश्राविकाभिः कार्यो । उद्यापने पूजापूर्वं लक्षधान्य ढौकनीयं । लक्षसंख्याधान्यानां निबन्धो यथा । चोखामाणा ५ पाइली १ मुगसेइ १ पाइली २ मोठसेइ १ पाइली २ जवसेइ २ तिलपाइ ७ गोधूमसेइ ८ चवलासेइ ३ चणासेइ १ कांगुमाणा ३ कोद्रवमाणा ३ वल्लमाणा ५ तूवरिसेइ ४ जुवारिमाणा ५ । एतत्फलं अगण्यलक्ष्मीप्राप्तिः । इति श्राद्धकरणीयमागाढं लक्षप्रतिपत्तपः ॥ ५७ ॥ इति तपोधिकारे गीतार्थोक्तानि तपांसि संपूर्णानि ॥

अथ फलतपांसि । यथा । तत्र प्रथमं सर्वाङ्गसुन्दरतपः । शुक्लपक्षेऽष्टोपवासा आचाम्लान्तरिताः क्रमात् । विधीयन्ते तेन तपो भवेत्सर्वाङ्गसुन्दरं ॥ १ ॥ सर्वाङ्गाणि सुन्दराणि जायन्ते यस्मात्तत्सर्वाङ्गसुन्दरं । तत्र शुक्लपक्षे प्रतिपदुपवासं विधाय अष्टोपवासाः सप्ताचाम्लान्तरिता विधेया यथाशक्ति संयमाविदग्धविधर्मपालनं कषायपरिहारोपि पूर्णिमायां उद्यापयेत् । यतः कन्यासः । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिं वि-

१ सर्वाङ्गसुन्दरतपः आगाढ दिन १५ पारणक प्रतिपदायां

शुक्ल	१ प्र	२ द्वि	३ तृ	४ च	५ पं	६ ष	७ स	८ अ	९ न	१० द	११ ए	१२ द्वा	१३ त्र	१४ च	१५ पू
तिथि	उ १	आं	उ	आं	उ	आं	उ	आं	उ	आं	उ	आं	उ	आं	उ

धाय जिनाग्रे स्वर्णमयपुरुष रत्नजटित ढौकयेत् । सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल सर्वाङ्गसुन्दरता । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ सर्वाङ्गसुन्दरतपः ॥ १ ॥ ॥ अथ निरुजशिखतपः । तपो निरुजशिख्यास्य विधेय तद्वदेष हि । नवर कृष्ण पक्षे तु करण तस्य शस्यते ॥ १ ॥ निरुजा रोगरहिता शिखा चूला

२ निरुजशिखातपः आगाढ दिन १५ कृष्णपक्षप्रतिपदात्

कृष्ण	१ प्र	२ द्वि	३ तृ	४ च	५ पं	६ ष	७ स	८ अ	९ न	१० द	११ ए	१२ द्वा	१३ त्र	१४ च	१५ पू
तिथि	उ १	आं	उ	आं	उ	आं	उ	आं	उ	आं	उ	आं	उ	आं	उ

यस्य तन्निरुजशिख । तत्र कृष्णपक्षे सर्वाङ्गसुन्दरवद्विधिः । यन्त्रकन्यासः । एतत्फल आरोग्य । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ निरुजशिखतपः ॥ २ ॥ ॥ अथ सौभाग्यकल्पवृक्षतपः । सौभाग्यकल्पवृक्षस्तु चैत्रेऽनशनसञ्चयैः । एकान्तरैः पर कार्यास्तिथौ चन्द्रादिके शुभे ॥ १ ॥ सौभाग्यस्य दाने कल्पवृक्ष

३ सौभाग्यकल्पवृक्षतप आगाढ चैत्रशुक्लप्रतिपदात

च शु	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा
चै कृ	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा

इव सौभाग्यकल्पवृक्षः । तत्र चैत्रमासे सर्वस्मिन् एकान्तरोपवासा विधेयाः । यन्त्रकन्यास्तः । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक सुवर्णरूप्यमयसाङ्गोपाङ्गकल्पवृक्षढौकन सघवात्सल्यं सघपूजा च । एतत्फल सौभाग्य-

महावीरतपः ॥ ५६ ॥ ॥ अथ लक्षप्रतिपत्तपः । शुक्लप्रतिपदः सूर्यसंख्या एकाशनादिभिः । समर्थनीयास्तपसि लक्षप्रतिपदाख्यके ॥ १ ॥ शुक्लप्रतिपदमारभ्य प्रतिपत् १२ वर्षमेकं यावद्यथाशक्त्येकाशनादितपः लक्षप्रतिपच्छ्रावकश्राविकाभिः कार्यं । उद्यापने पूजापूर्वं लक्षधान्यं ढौकनीयं । लक्षसंख्याधान्यानां नियन्थो यथा । घोघामाणा ५ पाइली १ मुगसेइ १ पाइली २ मोठसेइ १ पाइली २ जवसेइ २ तिलपाइ ७ गोधूमसेइ ८ चउलासेइ ३ चणासेइ १ कांगुमाणा ३ कोद्रवमाणा ३ उडदमाणा ५ तूवरिसेइ ४ जुवारिमाणा ५ । एतत्फलं अगण्यलक्ष्मीप्राप्तिः । इति श्राद्धकरणीयमागाढं लक्षप्रतिपत्तपः ॥ ५७ ॥ इति तपोधिकारे गीतार्थोक्तानि तपांसि संपूर्णानि ॥

अथ फलतपांसि । यथा । तत्र प्रथमं सर्वाङ्गसुन्दरतपः । शुक्लपक्षेऽष्टोपवासा आचाम्लान्तरिताः क्रमात् । विधीयन्ते तेन तपो भवेत्सर्वाङ्गसुन्दरं ॥ १ ॥ सर्वाङ्गाणि सुन्दराणि जायन्ते यस्मात्तत्सर्वाङ्गसुन्दरं । तत्र शुक्लपक्षे प्रतिपदुपवासं विधाय अष्टोपवासाः सप्ताचाम्लान्तरिता विधेया यथाशक्ति संयमादिदयाविषयधर्मपालनं कषायपरिहारोपि पूर्णिमायां उद्यापयेत् । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिं वि-

१ सर्वांगसुन्दरतपः आगाढ दिन १५ पारणकं प्रतिपदायां

शुक्ल	१ प्र	२ द्वि	३ तृ	४ च	५ पं	६ ष	७ स	८ अ	९ न	१० द	११ ए	१२ द्वा	१३ त्र	१४ च	१५ पू
तिथि	उ १	आं	उ	आं	उ	आं	उ	आं	उ	आं	उ	आं	उ	आं	उ

घाय जिनाग्रे स्वर्णमयपुरुष रत्नजटित ढौकयेत् । सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल सर्वाङ्गसुन्दरता । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ सर्वाङ्गसुन्दरतपः ॥ १ ॥ ॥ अथ निरुजशिखतपः । तपो निरुजशिख्यास्य विधेय तद्वदेव हि । नवर कृष्ण पक्षे तु करण तस्य श-स्यते ॥ १ ॥ निरुजा रोगरहिता शिखा चूला यस्य तन्निरुजशिख । तत्र कृष्णपक्षे सर्वाङ्गसुन्दरवद्विधिः । यथाकन्यासः । एतत्फल आरोग्य । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ निरुजशिखतपः ॥ २ ॥

२ निरुजशिखातपः आगाढ दिन १५ कृष्णपक्षप्रतिपदात

कृष्ण	१ प्र	२ द्वि	३ तृ	४ च	५ प	६ ष	७ स	८ अ	९ न	१० द	११ ए	१२ द्वा	१३ त्र	१४ च	१५ पू
तिथि	उ १	आं	उ	आं	उ	आं	उ	आं	उ	आं	उ	आं	उ	आं	उ

॥ अथ सौभाग्यकल्पवृक्षतपः । सौभाग्यकल्पवृक्षस्तु चैत्रेऽनशनसचयैः । एकान्तरैः पर कार्यास्तिथौ चन्द्रादिके शुभे ॥ १ ॥ सौभाग्यस्य दाने कल्पवृक्ष इव सौभाग्यकल्पवृक्ष' । तत्र चैत्रमासे सर्वस्मिन् एकान्तरोपवासा विधेयाः । यथाकन्यास्त । उद्यापने वृहत्स्नात्रविधिपूर्वक सुवर्णरूप्यमयसाङ्गोपाङ्गकल्पवृक्षढौकन सघवात्सल्यं सघपूजा च । एतत्फल सौभाग्य-

३ सौभाग्यकल्पवृक्षतप आगाढ चैत्रशुक्लप्रतिपदात

चै शु	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा
चै कृ	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा	उ	पा

प्राप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढं सौभाग्यकल्पवृक्षतपः ॥ ३ ॥ ॥ अथ दमयन्तीतप' । दमयन्त्या प्रति-

४ दमयन्तीतप आगाढं अन्येषामपि जिनानामेव विधिः आ २१ पा व पा																					
ऋषभस्य	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १

जिनमाचाम्लान्येकविंशतिः । कृतानि सन्ततान्येव दमयन्तीतपो हि तत् ॥ १ ॥ दमयन्त्या नलवियुक्तया कृत तपः दमयन्तीतपः । तत्र जिनजिनप्रति विंशतिर्विंशतिराचाम्लानि एकैक शासनदेवतायाः एव निरन्तरतया विधीयन्ते । शक्त्यनुसारेण एकैकजिनस्याचाम्लपूरणे पारणकान्यपि भवन्ति साम्प्रतिककालापेक्षया । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने सर्वसङ्ख्यया चतुरुत्तरा पञ्चशती फलपक्वान्नजातिमुद्रादीकन बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक आचाम्लाना सर्वसङ्ख्यया चतुरुत्तरा पञ्चशती। सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल आपन्निगम' । इति श्राद्धकरणीयमनागाढं दमयन्तीतपः ॥ ४ ॥ ॥ अथायतिजनकतपः । कार्यं द्वात्रिंशदाचाम्लैः स्वसत्त्वेन

५ आयतिजनकतप आगाढ । तत्र द्वात्रिंशदाचाम्लानि निरन्तराणि एकश्रेण्या करणीयानि																															
आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १	आं १

निरन्तरैः । एवं स्यादायतिशुभ तप उद्यापनान्वित ॥ १ ॥ आयतिं उत्तरकाल शुभ जनयति आयतिजनक । यश्चकन्यासः । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक चतुर्विंशतिसख्यया पुष्पफलपक्वान्नढौकन सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल उत्तरकाले शुभ । इति श्राद्धकरणीयमागाढ आयतिजनकतपः ॥ ५ ॥ ॥ अथाक्षयनिघितप. । घट संस्थाप्य देवाग्रे गन्धपुष्पादिपूजितं । तपो विधीयते पक्ष तदक्षयनिधि स्फुट ॥ १ ॥ अक्षयनिधिवदक्षयनिधि । तत्र भाद्रपदकृष्णचतुर्थ्यां जिनबिम्बाग्रे गोमयलेपन विधाय स्थापनकोपरि चित्रित गन्धपुष्पपूजित स्वर्णमणिमुद्राफलक्रमुकादिगर्भित घट स्थापयेत् । पक्ष यावत्तस्य नित्यपूजन जिनस्य प्रदक्षिणात्रयपूर्वक अक्षताञ्जलिक्षेपः नैवेद्यढौकन यथाशक्ति द्विभक्तैकभक्तादिप्रत्याख्यान नृत्यगीतोत्सवादि । एव पर्युषणापर्यन्त वर्षचतुष्टय विधेय । यश्चकन्यासः । उद्यापने वृहद्विधिपूर्वक नानापक्वान्नबलिढौकन सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल सर्वसपत् । अथवा अक्षतमुष्टिं प्रतिदिन घटे निक्षिपेत् यावत्स घटः पूर्यते तावद्दिनानि प्रतिदिनमेकाशनानि विदध्यात् । इति श्राद्धकरणीयमागाढ अक्षयनिधितपः ॥ ६ ॥ ॥ अथ मुकुटसप्तमीतपः । आषाढादि च पौषान्त सप्तमासान् शितिष्वपि । सप्तमीषूपवासाश्च विधेयाः सप्त निश्चित ॥ १ ॥ मुकुटोद्यापनेन उपलक्षिता सप्तमी मुकुटसप्तमी । तत्र आ-

चतु	प	पं	ए	प	ए	स	ए	०
द्रव्याप	द्वा	ए	थ	ए	च	ए	अ	०
मासमुपि	प	छि	ए	द	प	च	ए	द्या	ध

६ अक्षयनिधितप आगाढं माद्रपदादि						
च	ए	न	ए	द	ए	०

७ मुकुटसप्तमीतप आगाढ			
श्रावणवदि	विमलनाथ	०	उ
भाद्रपदवदि	अनन्तनाथ	०	उ
आश्विनवदि	चन्द्रप्रभशान्ति	०	उ
कार्तिकवदि	नेमिनाथ	०	उ
मार्गशिरवदि	ऋषभनाथ	०	उ
पौषवदि	महावीर	०	उ
माघवदि	पार्श्वनाथ	०	उ

पाढश्रावणभाद्रपदआश्विनकार्तिकमार्गशीर्षपौपकृष्णसप्तमीपूपवासा'। तासु क्रमेण विमलनाथ १ अनन्तनाथ २ चन्द्रप्रभशान्ति ३ नेमि ४ ऋषभ ५ महावीर ६ पार्श्वनाथ ७ तीर्थकृता बृहत्स्नात्रविधिना पूजा। यन्त्रकन्यास'। उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक रूप्यमयलोकनालेरुपरि सस्थित सुवर्णमय रत्नजटित मुकुट ढौकयेत्। सप्तसङ्ख्यया पक्वान्नफलजातिं च सघवात्सल्य सघपूजा च। एतत्फल वाञ्छितप्राप्तिः। इति श्राद्धकरणीयमागाढ मुकुटसप्तमीतपः ॥ ७ ॥ ॥ अथ अम्बातप'। शुक्लादिपञ्चमीष्वेव पञ्चमासेषु वै तपः। एकभक्तादि वै कार्यमम्बापूजनपूर्वक ॥ १ ॥ अम्बाराधनार्थं तपः अम्बातपः। तत्र पञ्चसु शुक्लपञ्चमीषु नेमिजिनाम्बापूजनपूर्वक यथाशक्ति तपो विधेयं। यन्त्रकन्यासः। उद्यापने विमलधातुभिर्यथोक्त अम्बामूर्तिविधापन तत्प्रतिष्ठापन कल्पोक्तविधिना नित्य तत्पूजन सघवात्सल्य सघपूजा च। तत्फल अम्बावरप्राप्तिः। इति श्राद्धकरणीयमागाढ अम्बातपः ॥ ८ ॥ ॥ अथ श्रुतदेवतातपः। एकादशेषु शुक्लेषु पक्षेष्वेकादशीषु च। यथाशक्ति तपः कार्यं वाग्देव्यर्च-

८ अम्बातप आगाढ मास ५		
शुक्ल	पं	उ
शुक्ल	प	उ
शुक्ल	प	उ
शुक्ल	प	उ
शुक्ल	प	उ

९ श्रुतदेवीतप आगाढ		
श्रुतदेवता	शुक्लएकाद	उप
श्रुतदेवता	शुक्लएकाद	उप
श्रुतदेवता	शुक्लएकाद	उप
श्रुतदेवता	शुक्लएकाद	उप
श्रुतदेवता	शुक्लएकाद	उप
श्रुतदेवता	शुक्लएकाद	उप
श्रुतदेवता	शुक्लएकाद	उप
श्रुतदेवता	शुक्लएकाद	उप
श्रुतदेवता	शुक्लएकाद	उप
श्रुतदेवता	शुक्लएकाद	उप

नपूर्वक ॥ १ ॥ श्रुतदेव्याराधनार्थं तपः श्रुतदेवीतपः । तत्र एकादशीषु शुक्लैकादशीषु श्रुतदेवीपूजापूर्वक यथाशक्ति तपो विधेय । यथ्रकन्यासः । उद्यापने श्रुतदेवीमूर्तिनिर्मापण तत्प्रतिष्ठापन विधिना पूजा सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल श्रुतप्राप्तिः । इति श्राद्धकरणीयमागाढ श्रुतदेवीतपः ॥ ९ ॥ ॥ अथ रोहिणीतपः । रोहिण्या च तपः कार्यं वासुपूज्यार्चनायुत । सप्तवर्षं सप्तमासीसु पवासादिभि' पर ॥ १ ॥ रोहिणीनक्षत्रे तपः रोहिणीतपः । तत्राक्ष(य)ततृतीयासन्नरोहिण्यां वासुपूज्यजिनपूजापूर्वक तत्प्रारम्भः । ततो रोहिणीनक्षत्रे समागते सप्तवर्षाणि सप्तमासानि यावदुपवासाचाम्लानि निर्विकृतिकादि यथाशक्त्य तपो विधेय । यद्येकापि रोहिणी विस्मरति तदा तपसः पुनः प्रारम्भः । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने श्रीवासुपूज्यप्रतिमाग्रे बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक स्वर्णमयमशोकवृक्ष ढौकयेत् सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल अवैधव्यसौभाग्यसुखप्राप्तिः । इति श्राद्धकरणीयमागाढ रोहिणीतपः ॥ १० ॥ ॥ अथ मातरतपः । माग्रस्य शुक्लपक्षे तु प्रारभ्य सप्तमीं तिथिं । त्रयोदश्यन्तमाधेय तपो मातरिसञ्ज्ञक ॥ १ ॥ मात्राराधनार्थं तपः मातरतपः ।

१० रोहिणीतप आगाढ			
रो	वर्ष ७	मास ७	उपवा

७ मुकुटसप्तमीतप आगाढ			
आषाढवदि	विमलनाथ	०	उ
श्रावणवदि	अनन्तनाथ	०	उ
भाद्रपदवदि	चन्द्रप्रभशान्ति	०	उ
आश्विनवदि	नेमिनाथ	०	उ
कार्तिकवदि	आदिनाथ	०	उ
मार्गशिरवदि	महावीर	०	उ
पौषवदि	पार्श्वनाथ	०	उ

षाढश्रावणभाद्रपदआश्विनकार्तिकमार्गशीर्षपौषकृष्णसप्तमीषूपवासाः। तासु क्रमेण विमलनाथ १ अनन्तनाथ २ चन्द्रप्रभशान्ति ३ नेमि ४ ऋषभ ५ महावीर ६ पार्श्वनाथ ७ तीर्थकृता बृहत्स्नात्रविधिना पूजा। यन्त्रकन्यासः। उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक रूप्यमयलोकनालेरुपरि सस्थित सुवर्णमय रत्नजडित मुकुट ढौकयेत्। सप्तसख्यया पक्वान्नफलजातिं च सघवात्सल्य सघपूजा च। एतत्फल वाञ्छितप्राप्तिः। इति श्राद्धकरणीयमागाढ मुकुटसप्तमीतपः ॥ ७ ॥ ॥ अथ अम्बातप. । शुक्लादिपञ्चमीष्वेव पञ्चमासेषु वै तपः । एकमक्तादि वै कार्यमम्बापूजनपूर्वक ॥ १ ॥

८ अम्बातप आगाढ मास ५		
शुक्ल	पं	उ
शुक्ल	पं	उ
शुक्ल	पं	उ
शुक्ल	पं	उ
शुक्ल	पं	उ

अम्बाराधनार्थं तप' अम्बातप'। तत्र पञ्चसु शुक्लपञ्चमीषु नेमिजिनाम्बापूजनपूर्वक यथाशक्ति तपो विधेय। यन्त्रकन्यासः। उद्यापने विमलधातुभिर्यथोक्त अम्बामूर्तिविधापन तत्प्रतिष्ठापन कल्पोक्तविधिना नित्य तत्पूजन सघवात्सल्य सघपूजा च। तत्फल अम्बावरप्राप्तिः। इति श्राद्धकरणीयमागाढ अम्बातपः ॥ ८ ॥ ॥ अथ श्रुतदेवतातपः। एकादशेषु शुक्लेषु पक्षेष्वेकादशीषु च। यथाशक्ति तप' कार्यं वाग्देव्यर्च-

तिथिषु तप एकाशनादिक । विधेय सर्वसंपत्ति सुखे तपसि निश्चितं ॥ १ ॥ सर्वसुखसंपत्तिहेतुत्वात्सर्वसुखसंपत्ति । तत्र प्रतिपत्सत्कमेकभक्त द्वितीयाया द्वे एव वृद्ध्या यावत्पूर्णिमायाः पञ्चदश । पर यदि कापि तिथिर्विस्मरति तदा सा पुनरादितो विधेया । एवं विंशत्युत्तरशतदिनैः पूर्यते । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वकं विंशत्युत्तरशतसंख्यया फलपक्वान्नजातिढौकन सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फलं सुखप्राप्तिः । इति श्राद्धकरणीयमागाढ सर्वसुखसंपत्तितपः ॥ १२ ॥ ॥ अथाष्टापदपावडीतपः । आश्विनाष्टाहिकास्वेव यथाशक्तितपःक्रमैः । विधेयमष्टवर्षाणि तप अष्टापदःपर ॥ १ ॥ अष्टापदारोहार्थं तपः अष्टापदपावडीतपः । तत्र आश्विनाष्टाहिकासु यथाशक्ति तपो विधेय । देवाग्रे स्वर्णमय सोपान संस्थाप्य अष्टप्रकारपूजाभिः पूजयेत् । एव अष्टवर्षाण्यष्टसोपानानि विदध्यात् । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने चतुर्विंशतिसंख्यया पक्वान्नफलजातीना बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक ढौकनं । सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल दुर्लभप्राप्तिः ॥ इति श्राद्धकरणीयमागाढं अष्टापदपावडीतपः ॥ १३ ॥ ॥ अथ मोक्षदण्डतपः । यावन्मुष्टिप्रमाण स्याद्गुरुदण्डस्य तावतः । विदधीतैकान्तराश्चोपवासान्सुसमाहितः ॥ १ ॥ मोक्ष-

१३ अष्टापदपावडीतप आगाढ

व १	अष्टु	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	पू
व २	अष्टु	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	पू
व ३	अष्टु	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	पू
व ४	अष्टु	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	पू
व ५	अष्टु	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	पू
व ६	अष्टु	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	पू
व ७	अष्टु	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	पू
व ८	अष्टु	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	पू

११ भातरतप आगाढ			
१ व	भाद्रशुक्ल	स० आ० ए० पु० हा० भ०	प
२ व	भाद्रशुक्ल	७।८।९।१०।११।१२।१३	पृ
३ व	भाद्रशुक्ल	७।८।९।१०।११।१२।१३	प
४ व	भाद्रशुक्ल	७।८।९।१०।११।१२।१३	पृ
५ व	भाद्रशुक्ल	७।८।९।१०।११।१२।१३	प
६ व	भाद्रशुक्ल	७।८।९।१ ।११।१२।१३	पृ
७ व	भाद्रशुक्ल	७।८।९।१ ।११।१२।१३	प

तत्र भाद्रपदशुक्लसप्तमीमारभ्य त्रयोदशीपर्यन्तं दुग्धदधिघृतकरम्भपायसलपनश्रीघृतपूरैर्जिनमातृका पूजयित्वा यथाशक्ति एकभक्तादितपो विधेय। तच्च सप्तवर्षपर्यन्तं। पर वर्षद्वये वर्षद्वये उद्यापन अनया रीत्या विधेय। भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्यां चतुर्विंशतिसंख्यया पूपकादाडिमादिफलजाति क्षिप्रचटीपात्राणि जिनमातृणामग्रे ढौकयेत्। सपुत्रश्राविकायाश्च वस्त्राङ्गराग–ताम्बूलादि देय। सप्तमवर्षोद्यापने च जिनमातृणामग्रे सप्तम्यां तैलढौकन अष्टम्यां घृतढौकन नवम्यां पक्वान्नढौकन दशम्यां गोदुग्ध ढौकन एकादश्यां दधिढौकन द्वादश्यां गुडढौकन त्रयोदश्यां क्षिप्रचटी कणिकाहरीतकी धान्याका मेथी गुड अजन शलाका सप्तसप्तसंख्यगतपञ्चमुक्तढौकन सपुत्रश्राविकाया नालिकेरदान संघवात्सल्य संघपूजा च। एतत्फल पुत्रप्राप्तिः। यत्र-कन्यासं। इति श्राद्धकरणीयमागाढ मातरतप ॥ २१ ॥ ॥ अथ सर्वसुखसंपत्तितपः। एकादिपञ्चदश्या

१२ सर्वसुखसंपत्ति तप आगाढ			
ति ति	प १	पू	१
ति	२	पू	२
ति	३	पू	३
ति	४	पू	४
ति	५	पू	५
ति	६	पू	६
ति	७	पू	७
ति	८	पू	८
ति	९	पू	९
ति	१०	पू	१०
ति	११	पू	११
ति	१२	पू	१२
ति	१३	पू	१३
ति	१४	पू	१४
ति	१५	पू	१५

तिथिषु तप एकाशनादिक । विधेय सर्वसपत्सि सुखे तपसि निश्चित ॥ १ ॥ सर्वसुखसंपत्तिहेतुत्वात्सर्वसुखसपत्सि । तत्र प्रतिपत्सक्तमेकमक्त द्वितीयाया द्वे एव वृद्ध्या यावत्पूर्णिमायाः पञ्चदश । पर यदि कापि तिथिर्विस्मरति तदा सा पुनरादितो विधेया । एवं विंशत्युत्तरशतदिनैः पूर्यते । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने वृहत्स्नात्रविधिपूर्वक विंशत्युत्तरशतसख्यया फलपक्वान्नजातिढौकनं सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फलं सुखप्राप्तिः । इति श्राद्धकरणीयमागाढ सर्वसुखसपत्तितपः ॥ १२ ॥ ॥ अथाष्टापदपावडीतपः । आश्विनाष्टाहिकास्वेव यथाशक्तितपःक्रमैः । विधेयमष्टवर्षाणि तप अष्टापदः पर ॥ १ ॥ अष्टापदारोहार्थं तपः अष्टापदपावडीतपः । तत्र आश्विनाष्टाहिकासु यथाशक्ति तपो विधेय । देवाग्रे स्वर्णमय सोपान सस्थाप्य अष्टप्रकारपूजाभिः पूजयेत् । एव अष्टवर्षाण्यष्टसोपानानि विदध्यात् । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने चतुर्विंशतिसख्यया पक्वान्नफलजातीनां बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक ढौकनं । सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल दुर्लभप्राप्तिः ॥ इति श्राद्धकरणीयमागाढं अष्टापदपावडीतपः ॥ १३ ॥ ॥ अथ मोक्षदण्डतपः । यावन्मुष्टिप्रमाण स्याद्गुरुदण्डस्य तावतः । विदधीतैकान्तराश्चोपवासान्मुसमाहितः ॥ १ ॥ मोक्ष-

१३ अष्टपदपावडीतप आगाढ

व १	ऽष्टसु	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	प
व २	ऽष्टसु	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	प
व ३	ऽष्टसु	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	प
व ४	ऽष्टसु	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	प
व ५	ऽष्टसु	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	प
व ६	ऽष्टसु	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	प
व ७	ऽष्टसु	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	प
व ८	ऽष्टसु	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	प

११ मातरतप आगाढ

१ व	भाद्रशुक्ल	स भाग० द० पू० शा० भ०	पू
२ व	भाद्रशुक्ल	७।८।९।१०।११।१२।१३	पू
३ व	भाद्रशुक्ल	७।८।९।१०।११।१२।१३	पू
४ व	भाद्रशुक्ल	७।८।९।१०।११।१२।१३	पू
५ व	भाद्रशुक्ल	७।८।९।१०।११।१२।१३	पू
६ व	भाद्रशुक्ल	७।८।९।१०।११।१२।१३	पू
७ व	भाद्रशुक्ल	७।८।९।१०।११।१२।१३	पू

तत्र भाद्रपदशुक्लसप्तमीमारभ्य त्रयोदशीपर्यन्त दुग्धदधिघृतकरम्यपायसलपनश्रीघृतपूरैर्जिनमातृका पूजयित्वा यथाशक्ति एकभक्ताद्रितपो विधेय । तच्च सप्तवर्षपर्यन्त । पर वर्षद्वये वर्षद्वये उद्यापन अनया रीत्या विधेय । भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्या चतुर्विंशतिसंख्ययापूपकादाडिमादिफलजातिं क्षिप्रचटीपात्राणि जिनमातृणामग्रे ढौकयेत् । सपुत्रश्राविकायाश्च वस्त्राङ्गराग–ताम्बूलादि देय । सप्तमवर्षोद्यापने च जिनमातृणामग्रे सप्तम्या तैलढौकन अष्टम्यां घृतढौकन नवम्या पक्वान्नढौकन दशम्या गोदुग्ध ढौकन एकादश्या दधिढौकन द्वादश्या गुडढौकन त्रयोदश्या क्षिप्रचटी कणिकाहरीतकी धान्याका मेथी शुद अजन शलाका सप्तसप्तसंख्यगतपक्वभुक्तढौकन सपुत्रश्राविकाया नालिकेरदान सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल पुत्रप्राप्ति । यन्त्रकन्यास । इति श्राद्धकरणीयमागाढ मातरतपः ॥ ११ ॥ ॥ अथ सर्वसुखसंपत्तितपः । एकाविंशत्या

१२ सर्वसुखसंपत्तितप आगाढ

१	पू	प १	ति ति
२	पू	२	ति
३	पू	३	ति
४	पू	४	ति
५	पू	५	ति
६	पू	६	ति
७	पू	७	ति
८	पू	८	ति
९	पू	९	ति
१०	पू	१०	ति
११	पू	११	ति
१२	पू	१२	ति
१३	पू	१३	ति
१४	पू	१४	ति
१५	पू	१५	ति

निश्चितं ॥ १ ॥ सर्वसुखसंपत्तिहेतुत्वात्सर्वसु-
तिथिषु तप एकाशनादिक । विधेय सर्वसपत्ति सुखे तपसि खसपत्ति । तत्र प्रतिपत्सकृमेकभक्त द्वितीयाया द्वे एव वृद्धया यावत्पूर्णिमायाः पञ्चदश । परं यदि कापि तिथिर्विस्मरति तदा सा पुनरादितो विधेया । एवं विंशत्युत्तरशतदिनैः पूर्यते । यक्षकन्यासः । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वकं विंशत्युत्तरशतसख्यया फलपक्वान्नजातिढौकनं सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फलं सुखप्राप्तिः । इति श्राद्धकरणीयमागाढ सर्वसुखसपत्तितपः ॥ १२ ॥ ॥ अथाष्टापदपावडीतपः । आश्विनाष्टाहिकास्वेव यथाशक्तितपःक्रमैः । विधेयमष्टवर्षाणि तप अष्टापदःपर ॥ १ ॥ अष्टापदारोहार्थं तपः अष्टापदपावडीतपः । तत्र आश्विनाष्टाहिकासु यथाशक्ति तपो विधेय । देवाग्रे स्वर्णमय सोपान सस्थाप्य अष्टप्रकारपूजाभिः पूजयेत् । एव अष्टवर्षाण्यष्टसोपानानि विदध्यात् । यक्षकन्यासः । उद्यापने चतुर्विंशतिसख्यया पक्वान्नफलजातीना बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक ढौकनं । सघवात्सल्य संघपूजा च । एतत्फल दुर्लभप्राप्तिः ॥ इति श्राद्धकरणीयमागाढं अष्टापदपावडीतपः ॥ १३ ॥ ॥ अथ मोक्षदण्डतपः । यावन्मुष्टिप्रमाण स्याद्गुरुदण्डस्य तावतः । विदधीतैकान्तराश्चोपवासान्सुसमाहितः ॥ १ ॥ मोक्ष-

१३ अष्टापदपावडीतप आगाढ										
व १	ऽअसु	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	प
व २	ऽअसु	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	प
व ३	ऽअसु	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	प
व ४	ऽअसु	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	प
व ५	ऽअसु	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	प
व ६	ऽअसु	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	प
व ७	ऽअसु	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	प
व ८	ऽअसु	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	प

१४ मोक्षदण्डतप आगाढ

१४	उ	उ १	उ १	उ १	उ १	उ १	उ १	उ १	उ १	उ १	उ १	उ १	उ १	उ १	उ १	उ १	उ १	उ १	उ १	उ १	उ ०	उ ०	उ ०	उ ०	उ ०
शुद्धि		पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा

दण्डस्य तपः मोक्षदण्डतपः । तत्र यावन्मुष्टिप्रमाणो गुरुदण्डो भवति तावत उपवासानेकान्तरान्विदध्यात् । पर्यन्तोपवासे गुरुदण्डस्य चन्दनचर्चितस्य परिधापनिकादान नालिकेराक्षतदान । यावन्मुष्टिप्रमाणता तावत्संख्यया फलमुद्रापकाक्षरजातिदान संघवात्सल्य संघपूजा च । पञ्चकन्यास' । एतत्फल विपद्भङ्गः । इति श्राद्धकरणीयमागाढ मोक्षदण्डतपः ॥ १४ ॥

१५ अदुःखदर्शितप आगाढ   १६ द्वितीय अदुःखदर्शितप आगाढ

प्रथममासे शुक्ल	१	उ १	अष्टमेमासे शुक्ल	८	उ	१	प्र	उ	पा	अ	उ	पा
द्वितीयमासे शुक्ल	२	उ १	नवमेमासे शुक्ल	९	उ	१	द्वि	उ	पा	न	उ	पा
तृतीयमासे शुक्ल	३	उ १	दशमेमासे शुक्ल	१०	उ	१	तृ	उ	पा	त	उ	पा
चतुर्थमासे शुक्ल	४	उ १	एकादशेमासे शुक्ल	११	उ	१	च	उ	पा	पू	उ	पा
पञ्चममासे शुक्ल	५	उ १	द्वादशेमासे शुक्ल	१२	उ	१	पं	उ	पा	द्वा	उ	पा
षष्ठमासे शुक्ल	६	उ १	त्रयोदशेमासे शुक्ल	१३	उ	१	ष	उ	पा	त्र	उ	पा
सप्तममासे शुक्ल	७	उ १	चतुर्दशेमासे शुक्ल	१४	उ	१	स	उ	पा	च	उ	पा
०	८	उ १	पंचदशेमासे शुक्ल	१५	उ	१	०	०	०	पू	उ	पा

॥ अथ अदुःखदर्शितपः । शुक्लपक्षेषु कर्तव्या' क्रमात्पञ्चदशस्वपि । उपवासास्तिथिष्वेव पूर्यंते विधिनैव तत् ॥ १ ॥ न दुःखानि प्रभु पीक्षस्य तद्दु'-

खदर्शि । तत्र एकस्या शुक्लप्रतिपद्युपवासः । द्वितीयमासे शुक्लद्वितीयायामुपवासः । एव पञ्चदशसु मासेषु शुक्लपक्षेषु यावत्पूर्णिमाया उपवासाः पञ्चदश संख्यया भवन्ति । यद्येकापि तिथिर्विस्मरति तदा पुनरपि तिथिरारभ्यते । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने श्रीऋषभदेवस्य पूजन रूप्यमयवृक्षः तच्छाखाया सुवर्णमयपालनक पट्टसूत्रग्रन्थित पट्टसूत्रमयतूलिका तदुपरि सुवर्णमयपुत्तलिका पञ्चदशसख्यया पक्वान्नफलजाति-ढौकनं । पर तिथौ तिथौ नव नव नैवेद्य फल च ढौकनीय संघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल सर्वदुःखप्रणाशः । इति श्राद्धकरणीयमागाढ अदुःखदर्शितपः ॥ १५ ॥ ॥ द्वितीयादुःखदर्शितपसि पञ्चदशोपवासा एकान्तरिताः तिथिंविनापि विधेयाः शेष तथैव । इति द्वितीय अदुःखदर्शितप आगाढ ॥ १६ ॥ ॥ अथ गौतमपड्गिहातपः । एकासु पञ्चदशसु स्वशक्तेरनुसारतः । तपः कार्यं गौतमस्य पूजाकरणपूर्वक ॥ १ ॥ गौतमपात्रोपलक्षित तपः गौतमपात्रतपः । तत्र पञ्चदशपूर्णिमा यावत् श्रीगौतम-मूर्तिपूर्वक यथाशक्ति प्रत्याख्यान विधेय । उद्यापने श्रीगौतमस्य श्रीमहावीरस्य च बृहत्स्नात्रविधिपूजा । रूप्यमयपात्र काष्ठमय च द्वे पायसपूरिते गुरवे दद्यात् । सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल विविधलब्धयः । यन्त्रकन्यासः इति

१७ गौतमपड्गिहातपः

शुक	पू	उ	१
शुक	पू	उ	१
शुक	पू	उ	१
शुक	पू	उ	१
शुक	पू	उ	१
शुक	पू	उ	१
शुक	पू	उ	१
शुक	पू	उ	१
शुक	पू	उ	१
शुक	पू	उ	१
शुक	पू	उ	१
शुक	पू	उ	१
शुक	पू	उ	१
शुक	पू	उ	१
शुक	पू	उ	१

वेष्टनकक्षोलिकासहिते

श्राद्धकरणीयमागाढ गौतमपडिग्रहातपः ॥ १७ ॥ ॥ अथ निर्वाणदीपतपः । वर्षत्रय दीपमाला पूर्वे मुदधे दिनद्वये । उपवासद्वय कार्यं दीपप्रस्तारपूर्वक ॥ १ ॥ निर्वाणमार्गे दीप इव निर्वाणदीपः । तत्र दीपमालिकायाश्चचतुर्दश्यमावास्ययो उपवासद्वय विधेय । तत्र हि रात्रद्वयेपि श्रीमहावीराग्रे अखण्डाक्षतदीपदान । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने वर्षत्रयान्ते बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक महावीरपूजा दीपसहस्रदान सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल मोक्षमार्गमाप्ति । इति श्राद्धकरणीयमागाढ निर्वाणदीपतप ॥ १८ ॥ ॥ अथामृताष्टमीतपः । शुक्लाष्टमीषु चाष्टासु आचाम्लादितपांसि च । विदधीत स्वशक्त्या च ततस्तत्पूरण भवेत् ॥ १ ॥ अमृताभिषेकेणोपलक्षिता अष्टमी अमृताष्टमी । तत्र अष्टसु शुक्लाष्टमीषु आचाम्लान्येव विधेयानि । यन्त्रकन्यास । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक घृतदुग्धभृत कलशमाणकमात्रमोदकसहितं ढौकयेत् । सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल आरोग्यं । इति श्राद्धकरणीयमागाढ अमृताष्टमीतपः ॥ १९ ॥ ॥ अथ अखण्डदशमीतपः । शुक्लासु दशसख्यासु निजशक्त्या तपोविधिं । विदधीत ततः पूर्तिस्तस्य संपद्यते क्रमात् ॥ १ ॥ अखण्डायां दशम्यां

१८ निर्वाणदीपतप आगाढ

१ वर्षे	कार्तिकवदि	१४ ०	उ	उ
२ वर्षे	कार्तिकवदि	१४	उ	उ
३ वर्षे	कार्तिकवदि	१४ ०	उ	उ

१९ अमृताष्टमीतप आगाढ

शुक्ल	८	उ	शुक्ल	८	उ	शुक्ल	८	उ
शुक्ल	८	उ	शुक्ल	८	उ	शुक्ल	८	उ
शुक्ल	८	उ	शुक्ल	८	उ	शुक्ल	८	उ

२० अखण्डदशमीतप आगाढ							
शुक्ल	१०	उ	१	शुक्ल	१०	उ	१
शुक्ल	१०	उ	१	शुक्ल	१०	उ	१
शुक्ल	१०	उ	१	शुक्ल	१०	उ	१
शुक्ल	१०	उ	१	शुक्ल	१०	उ	१
शुक्ल	१०	उ	१	शुक्ल	१०	उ	१

तपः अखण्डदशमीतपः । तत्र दशसु शुक्लदशमीषु यथाशक्त्या तपो विधेयं । यक्षकन्यासः । उद्यापने दशसंख्यया अक्षपक्कालफलजातिढौकनं अखण्डिताक्ष-तैर्नैवेद्यं अखण्डपट्टेन परिधापनिका अखण्डघृतधाराश्रयदानं चैत्यपरिधौ । संघ-वात्सल्यं संघपूजा च । एतत्फलं अखण्डसुखं । इति श्राद्धकरणीयमागाढं अख-ण्डदशमीतपः ॥ २० ॥ ॥ अथ परत्रपालितपः । पञ्चवर्षाणि वीरस्य कल्याणि-कसमासितः । उपवासत्रयं कृत्वा द्वात्रिंशदरसांश्चरेत् ॥ १ ॥ परलोके पालिरिव

२१ परत्रपालितप आगाढ दिन ३५						
उ १	नि १	नि १	नि १	नि १	नि १	नि १
नि १	नि १	नि १	नि १	नि १	नि १	नि १
नि १	नि १	नि १	नि १	नि १	नि १	नि १
नि १	नि १	नि १	नि १	नि १	नि १	
नि १	नि १	नि १	नि १	नि १	नि १	

परत्रपालिः । तत्र दीपोत्सवादारभ्य निरन्तरं तपः उपवासत्रयं कृत्वा निरन्तराणि द्वात्रिंशन्निर्विकृतिकानि विदध्यात् । एवं पञ्चवर्षाणि । के-चिदत्रोपवासान्येकान्तराण्याहुः । यक्षकन्यासः । उद्यापने प्रतिवर्षं सेईसत्कलपनश्रीपालिं स्थाले विधाय सुरभिघृतेनापूरयेत् । चरमोद्या-पने बृहत्स्नात्रविधिः संघवात्सल्यं संघपूजा च । एतत्फलं परत्र स-द्गतिः । इति श्राद्धकरणीयमागाढं परत्रपालितपः ॥ २१ ॥ ॥ अथ सोपान(पावडी)तपः । ससाष्टनवदशभिस्तद्गुणैस्तिथिसक्रमैः । दत्तिभिः पूर्यते चैव सोपानतप उत्तमं ॥ १ ॥

श्राद्धकरणीयमागाढ गौतमपडिग्रहतपः ॥ १७ ॥ ॥ अथ निर्वाणदीपतपः । वर्षत्रय दीपमाला पूर्वे मुदये दिनद्वये । उपवासद्वय कार्यं दीपप्रस्तारपूर्वक ॥ १ ॥ निर्वाणमार्गे दीप इव निर्वाणदीपः । तत्र दीपमालिकायाश्चचतुर्दश्यमावास्ययो उपवासद्वय विधेय । तत्र हि रात्रद्वयेपि श्रीमहावीराग्रे अखण्डाक्षतदीपदान । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने वर्षत्रयान्ते बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक महावीरपूजा दीपसहस्रदान सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल मोक्षमार्गप्राप्ति । इति श्राद्धकरणीयमागाढ निर्वाणदीपतप ॥ १८ ॥

१८ निर्वाणदीपतप आगाढ

१ वर्षे	कार्तिकवदि	१४ ०	उ	उ
२ वर्षे	कार्तिकवदि	१४	उ	उ
३ वर्षे	कार्तिकवदि	१४ ०	उ	उ

॥ अथामृताष्टमीतपः । शुक्लाष्टमीषु चाष्टासु आचाम्लादितपांसि च । विदधीत स्वशक्त्या च ततस्तत्पूरण भवेत् ॥ १ ॥ अमृताभिषेकेणोपलक्षिता अष्टमी अमृताष्टमी । तत्र अष्टसु शुक्लाष्टमीषु आचाम्लान्येव विधेयानि । यन्त्रकन्यास । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक घृतदुग्धभृत कलश माणकमात्रमोदकसहित ढौकयेत् । सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल आरोग्यं । इति श्राद्धकरणीयमागाढ अमृताष्टमीतपः ॥ १९ ॥ ॥ अथ अखण्डदशमीतप । शुक्लासु दशसख्यासु निजशक्त्या तपोविधिं । विदधीत ततः पूर्तिस्तस्य संपद्यते क्रमात् ॥ १ ॥ अखण्डायां दशम्यां

१९ अमृताष्टमीतप आगाढ

शुद्ध	८	उ	शुद्ध	८	उ	शुद्ध	८	उ
शुद्ध	८	उ	शुद्ध	८	उ	शुद्ध	८	उ
शुद्ध	८	उ	शुद्ध	८	उ	शुद्ध	८	उ

यते। द्वितीयाष्टके द्वे एवमेकैकदत्तिवृद्ध्या नेयं । यावदष्टमेऽष्टके प्रतिदिनमष्टौ दत्तयो गृह्यन्ते। तृतीया नवनवमिकाया नवनवकान्विधीयते। एकाशीतिदिनानीत्यर्थः। अत्रापि प्रथमनवके प्रतिदिनमेकादत्तिः एकैकवृद्ध्या च नवके प्रतिदिन नव दत्तयः चतुर्थी दशदशमिका दशदशकान् यावत्क्रियते शत दिनानीत्यर्थः ।

२२ सोपानतप आगाढ नवनवमिका

१ नवके	दत्ति	१	१	१	१	१	१	१	१	१	दि ९
२ नवके	दत्ति	२	२	२	२	२	२	२	२	२	दि ९
३ नवके	दत्ति	३	३	३	३	३	३	३	३	३	दि ९
४ नवके	दत्ति	४	४	४	४	४	४	४	४	४	दि ९
५ नवके	दत्ति	५	५	५	५	५	५	५	५	५	दि ९
६ नवके	दत्ति	६	६	६	६	६	६	६	६	६	दि ९
७ नवके	दत्ति	७	७	७	७	७	७	७	७	७	दि ९
८ नवके	दत्ति	८	८	८	८	८	८	८	८	८	दि ९
९ नवके	दत्ति	९	९	९	९	९	९	९	९	९	दि ९

२२ सोपानतप आगाढ दशदशमिका

१ दशके	दत्ति	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	दि १०
२ दशके	दत्ति	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	दि १०
३ दशके	दत्ति	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	दि १०
४ दशके	दत्ति	४	५	४	४	४	४	४	४	४	४	दि १०
५ दशके	दत्ति	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	दि १०
६ दशके	दत्ति	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	दि १०
७ दशके	दत्ति	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	दि १०
८ दशके	दत्ति	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	दि १०
९ दशके	दत्ति	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	दि १०
१० दशके	दत्ति	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	दि १०

मोक्षारोहे सोपानमिव सोपानतपः । तत्र सप्तमिकाद्याश्चतस्रः प्रतिमाः प्रतिपाद्यन्ते यथा सप्तसप्तमिका अष्टाष्टमिका नवनवमिका दशदशमिका चेति । अत्राद्या सप्तसप्तमिका एकोनपञ्चाशद्दिनानीत्यर्थः । तत्राद्यसप्तके प्रतिदिनमेकैका दत्तिर्गृह्यते । द्वितीयसप्तके प्रतिदिन दत्तिद्वय । तृतीयसप्तके प्रतिदिन दत्तित्रिक । चतुर्थे प्रतिदिन दत्तिचतुष्टय । एवमेकैकदत्तिवृद्ध्या ज्ञेय । यावत्सप्तमसप्तके प्रत्यह दत्तिसप्तक ग्राह्य । द्वितीयाष्टाष्टमिका अष्टौ अष्टकान् क्रियते । चतुःषष्टिदिनानीत्यर्थः । अत्रापि प्रथमाष्टके प्रतिदिनमेकैका दत्तिर्गृ-

२२ सोपानतप आगाढ सप्तसप्तमिका तपः

१ सप्तके	दत्ति	१	१	१	१	१	१	१	दि ७
२ सप्तके	दत्ति	२	२	२	२	२	२	२	दि ७
३ सप्तके	दत्ति	३	३	३	३	३	३	३	दि ७
४ सप्तके	दत्ति	४	४	४	४	४	४	४	दि ७
५ सप्तके	दत्ति	५	५	५	५	५	५	५	दि ७
६ सप्तके	दत्ति	६	६	६	६	६	६	६	दि ७
७ सप्तके	दत्ति	७	७	७	७	७	७	७	दि ७

२२ सोपानतप आगाढ अष्टाष्टमिकातपः

१ अष्टके	दत्ति	१	१	१	१	१	१	१	१	दि ८
२ अष्टके	दत्ति	२	२	२	२	२	२	२	२	दि ८
३ अष्टके	दत्ति	३	३	३	३	३	३	३	३	दि ८
४ अष्टके	दत्ति	४	४	४	४	४	४	४	४	दि ८
५ अष्टके	दत्ति	५	५	५	५	५	५	५	५	दि ८
६ अष्टके	दत्ति	६	६	६	६	६	६	६	६	दि ८
७ अष्टके	दत्ति	७	७	७	७	७	७	७	७	दि ८
८ अष्टके	दत्ति	८	८	८	८	८	८	८	८	दि ८

नमस्कारफलतपः । कृत्वा नवकभक्तानि तदुद्यापनमेव च । शक्तिहीनैर्विधेय च पूर्ववत्तत्समापन ॥ १ ॥

नमस्कारफलदायितपः नमस्कारफलतपः । तत्र अष्टषष्ट्यैकाशनेष्वसमर्थः पदसख्यया नवैकाशनानि विद्ध्यात् । यन्त्रकन्यासः । उद्यापन च पूर्ववत् । एतत्फलं पूर्ववत् । इति श्राद्धकरणीयमागाढ नमस्कारफलतपः ॥ २४ ॥ ॥ अथ अविधवादशमीतप । भाद्रपदशुक्लदशमी दिन एकाशनमथो निशायां च । अम्बापूजनजागरणकर्मणी सुविधिना कुर्यात् ॥ १ ॥ अवैधव्यार्थं दशमी अविधवादशमी । तत्र भाद्रपदशुक्लदशम्यामेकभक्त विदध्यात् निशि जागरण अम्बापूजन नालिकेरादि फलधानी १० पक्वान्नधानी १० ढौकन एव तावत्कर्तव्य यावद्दशवर्षाणि । उद्यापने इन्द्राणीपूजा सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल अवैधव्यं । यन्त्रकन्यासः । इति श्राद्धकरणीयमागाढ अविधवादशमीतपः ॥ २५ ॥ ॥ अथ बृहन्-

२४ नवकारफलतपः		
नमोअरिहंताणं १	५	१
नमोसिद्धाण २		
नमोआयरियाण ३		
नमोउवज्झायाणं ४		
नमोलोएसव्वसाहूणं ५		
एसोपचनमुक्कारो ६		
सव्वपावप्पणासणो ७		
मगलाणचसव्वेसिं		
पढमहवइमगलं ९		

२५ अविधवादशमी तप आगाढ			
१ वर्षे	भाद्रपदसुदि	१०	उ
२ वर्षे	भाद्रपदसुदि	१०	उ
३ वर्षे	भाद्रपदसुदि	१०	उ
४ वर्षे	भाद्रपदसुदि	१०	उ
५ वर्षे	भाद्रपदसुदि	१०	उ
६ वर्षे	भाद्रपदसुदि	१०	उ
७ वर्षे	भाद्रपदसुदि	१०	उ
८ वर्षे	भाद्रपदसुदि	१०	उ
९ वर्षे	भाद्रपदसुदि	१०	उ
१०वर्षे	भाद्रपदसुदि	१०	उ

अत्रापि प्रथमदशके प्रतिदिनमेका दत्तिः । ततश्चैकैकदत्तिवृद्ध्या दशमदशके प्रतिदिन दशदत्तयः । यन्त्रकाणि यथा । एष नवभिर्मासैश्चतुर्विंशत्यादिनैश्चतस्रोपि प्रतिमाः समर्थ्यन्ते । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक नानापक्वान्नफलढौकनं सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल मोक्षमार्गः । इति आद्धकरणीयमागाढ सोपानतपः ॥ २२ ॥ ॥ अथ कर्मचतुर्थं तपः । उपवासत्रय कुर्यादादावन्ते निरन्तर । मध्ये षष्टिमितान्कुर्यादुपवासांश्च सान्तरान् ॥१॥ कर्मणा चतुर्थं खण्डनरूप कर्मचतुर्थं । तत्र पूर्वं निरन्तरमुपवासत्रय ततः षष्टिरुपवासा एकाशनान्तरिताः पुनरुपवासत्रय निरन्तर । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक रूप्यमय वृक्ष स्वर्णकुठार च ढौकयेत् । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल कर्मच्छेदः । इति आद्धकरणीयमागाढं कर्मचतुर्थतपः ॥ २३ ॥ ॥ अथ

२३ कर्मचतुर्थतप आगाढ

उ १	पा १	उ १	प	उ १	प	उ	प	उ १	प	उ	प	उ	प
उ १	प	उ	प	उ	प	उ	प	उ	प	उ	प	उ	प
उ	प	उ	प	उ	प	उ	प	उ	प	उ	प	उ	प
उ	प	उ	प	उ	प	उ	प	उ	प	उ	प	उ	प
उ	प	उ	प	उ	प	उ	प	उ	प	उ	प	उ	प
उ	प	उ	प	उ	प	उ	प	उ	प	उ	प	उ	प
उ	प	उ	प	उ	प	उ	प	उ	प	उ	प	उ	प
उ	प	उ	प	उ	प	उ	प	उ	प	उ	प	उ	प
उ	प	उ	प	उ	प	उ	प	उ	प	उ	प	उ	प

घत् ॥ १ ॥ तत्र प्रथम नन्द्यावर्ताराधनार्थमुपवासः । ततो धरणेन्द्राम्बिका श्रुतदेवीश्रीगौतमाराधनार्थं आम्बा-
म्लचतुष्टय । ततः परमेष्ठिरत्नत्रयाराधनार्थं आचाम्लाष्टक । ततः षोडशविद्यादेव्याराधनार्थं षोडशैकम-
क्तानि । ततश्चतुर्विंशतिशासनयक्षिण्याराधनार्थं चतुर्विंशत्येकभक्तानि । ततो दशदिक्पालाराधनार्थं दशै ।
कभक्तानि । ततो ग्रहक्षेत्रपालाराधनार्थं दशैकभक्तानि । ततश्चतुर्णिकायदेवताराधनार्थं चत्वार्येकभक्तानि-
ततः सर्वाराधनार्थमुपवासः एवमुपवासद्वय द्वादशाचाम्लानि चतुःषष्ट्येकभक्तानि सर्वदिनान्यष्टाविंशतिः ।
उद्यापने चैत्ये बृहत्स्नात्रविधिः । धर्मागारे लघुनन्द्यावर्तपूजन पूर्ववत् । संघवात्सल्य संघपूजा च । एतत्फल
परत्र तीर्थंकरनामगोत्र इह च सर्वदेवसान्निध्य । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ लघुनन्द्यावर्ततपः ॥ २७ ॥
इति फलतपांसि सप्तविंशतिः । इति त्रिविधान्यपि तपांसि संपूर्णानि ॥

अथ विंशतिस्थानकानि । अर्हत्पूजा १ सिद्धपूजा २ प्रवचनपूजा ३ गुरुपूजा ४ स्थविरपूजा ५ बहुश्रुत-
पूजा ६ तपस्विपूजा ७ ज्ञानोपयोग ८ सम्यक्त्वपालन ९ विनयकरणं १० आवश्यककरण ११ ब्रह्मचर्य १२
धर्मध्यान १३ यथाशक्तितपः १४ वैयावृत्त्य १५ समाधिः १६ अपूर्वज्ञानपाठः १७ श्रुतभक्तिः १८ ज्ञानपूजा
१९ संघपूजादिकरण २० इति विंशतिस्थानकाराधन ॥ एतेषु तपःकरणस्य न निश्चयः किंत्वेषा मुक्ताना आ-
राधनमेव करणीय ॥ अरहत १ सिद्ध २ पवयण ३ गुरु ४ थेर ५ बहुस्सु ए ६ तवस्सी ७ य । वत्सलया य
एसिं अभिक्खनाणोवउग्गे ८ य ॥ १ ॥ दसण ९ विणए १० आवस्सए ११ य सील व्वए १२ निरइयारो ।

न्यावर्ततपः। बृहन्नन्यावर्तविधिसंख्ययैकाशनादिभिः। पूरणीय तपश्चोद्यापने तत्पूजन महत् ॥ १ ॥ नन्द्यावर्ताराधनार्थं तपः नन्द्यावर्ततपः। तत्र प्रथममुपवासो नन्द्यावर्ताराधनाय। ततः सौधर्मेन्द्रईशानेन्द्रश्रुतदेवतानामाचाम्लत्रय। ततोऽर्हदादि अष्टकाना आराधनार्थं अष्टाचाम्लानि। ततश्चतुर्विंशतिजिनमात्राराधनार्थं चतुर्विंशतिरेकभक्तानि। ततः षोडशविद्यादेव्याराधनार्थं षोडशैकभक्तानि। ततश्चतुर्विंशतिलोकान्तिकाराधनार्थं चतुर्विंशतिरेकभक्तानि। ततश्चतुःषष्टीन्द्राराधनार्थं चतुःषष्टिरेकभक्तानि। ततश्चतुष्षष्टीन्द्रदेव्याराधनार्थं चतुष्षष्टिरेकभक्तानि। ततश्चतुर्विंशतिशासनयक्षाराधनार्थं चतुर्विंशतिरेकभक्तानि। ततश्चतुर्विंशतिशासनयक्षिण्याराधनार्थं चतुर्विंशतिरेकभक्तानि। ततो दशदिक्पालाराधनार्थं दशैकभक्तानि। ततो ग्रहक्षेत्रपालाराधनार्थं दशैकभक्तानि। ततश्चतुर्णिकायदेवताराधनार्थं चत्वार्येकभक्तानि। तत सर्वाराधनार्थमुपवासः। अत्रोपवासद्वय एकादशाचाम्लानि द्विशती चतुःपञ्चुत्तरा एकभक्ताना। एव सप्तसप्तत्यधिकेन दिनशतत्रयेन पूर्यते। यन्त्रकन्यासः। उद्यापने चैत्ये बृहत्स्नात्रविधिः धर्मागारे नन्द्यावर्तपूजा प्रतिष्ठाविधिवत्। संघपूजा संघवात्सल्य। एतत्फल परलोके तीर्थकरनामकर्म इहलोके सर्वर्द्धय सर्वदेवतसान्निध्य। इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ बृहन्नन्द्यावर्ततपः ॥ २६ ॥ ॥ अथ लघुनन्द्यावर्ततपः। नन्द्यावर्ताराधनार्थं तपः नन्द्यावर्ततप। लघोश्च नन्द्यावर्तस्य तपः कार्यं विशेषत। तदाराधनसंख्याभिरुद्यापनमिहापि-

१ पञ्चोत्तरशत २१ भक्ताकृतिरस्मिन्नन्येऽप्यत्र बोधितानि। २ भक्ताकृतिरन्यत्र बोधितानि।

वत् ॥ १ ॥ तत्र प्रथम नन्द्यावर्ताराधनार्थमुपवासः । ततो धरणेन्द्राम्बिका श्रुतदेवीश्रीगौतमाराधनार्थं आचाम्लचतुष्टय । ततः परमेष्ठिरत्नत्रयाराधनार्थं आचाम्लाष्टक । ततः षोडशविद्यादेव्याराधनार्थं षोडशैकभक्तानि । ततश्चतुर्विंशतिशासनयक्षिण्याराधनार्थं चतुर्विंशत्येकभक्तानि । ततो दशदिक्पालाराधनार्थं दशैकभक्तानि । ततो ग्रहक्षेत्रपालाराधनार्थं दशैकभक्तानि । ततश्चतुर्णिकायदेवताराधनार्थं चत्वार्येकभक्तानि । ततः सर्वाराधनार्थमुपवासः एवमुपवासद्वय द्वादशाचाम्लानि चतुःषष्ट्येकभक्तानि सर्वदिनान्यष्टाविंशतिः । उद्यापने चैत्ये बृहत्स्नात्रविधिः । धर्मागारे लघुनन्द्यावर्तपूजन पूर्ववत् । सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल परत्र तीर्थकरनामगोत्र इह च सर्वदेवसान्निध्य । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ लघुनन्द्यावर्ततपः ॥ २७ ॥ इति फलतपासि सप्तविंशतिः । इति त्रिविधान्यपि तपासि सपूर्णानि ॥

अथ विंशतिस्थानकानि । अर्हत्पूजा १ सिद्धपूजा २ प्रवचनपूजा ३ गुरुपूजा ४ स्थविरपूजा ५ बहुश्रुतपूजा ६ तपस्विपूजा ७ ज्ञानोपयोग ८ सम्यक्त्वपालन ९ विनयकरणं १० आवश्यककरण ११ ब्रह्मचर्यं १२ धर्मध्यान १३ यथाशक्तितपः १४ वैयावृत्त्य १५ समाधिः १६ अपूर्वज्ञानपाठः १७ श्रुतभक्तिः १८ ज्ञानपूजा १९ सघपूजाविकरण २० इति विंशतिस्थानकाराधन ॥ एतेषु तपःकरणस्य न निश्चयः किंत्वेषा मुक्ताना आराधनमेव करणीय ॥ अरहत १ सिद्ध २ पवयण ३ गुरु ४ थेर ५ बहुस्सु ए ६ तवस्सी ७ य । वत्सलया य एसि अभिक्खनाणोवओगे ८ य ॥ १ ॥ दंसण ९ विणए १० आवस्सए ११ य सील व्वए १२ निरइयारो ।

न्यावर्ततपः । बृहन्नन्यावर्तविधिसंस्थयैकाशनादिभिः । पूरणीय तपश्चोद्यापने तत्पूजन महत् ॥ १ ॥ नन्द्यावर्ताराधनार्थं तपः नन्द्यावर्ततपः । तत्र प्रथममुपवासो नन्द्यावर्ताराधनाय । ततः सौधर्मेन्द्रईशानेन्द्रश्रुतदेवतानामाचाम्लत्रयं । ततोऽर्हदादि अष्टकाना आराधनार्थं अष्टाचाम्लानि । ततश्चतुर्विंशतिजिनमात्राराधनार्थं चतुर्विंशतिरेकभक्तानि । ततः षोडशविद्यादेव्याराधनार्थं षोडशैकभक्तानि । ततश्चतुर्विंशतिलोकान्तिकाराधनार्थं चतुर्विंशतिरेकभक्तानि । ततश्चतुःषष्टीन्द्राराधनार्थं चतुःषष्टिरेकभक्तानि । ततश्चतुष्षष्टीन्द्रदेव्याराधनार्थं चतुष्षष्टिरेकभक्तानि । ततश्चतुर्विंशतिशासनयक्षाराधनार्थं चतुर्विंशतिरेकभक्तानि । ततश्चतुर्विंशतिशासनयक्षिण्याराधनार्थं चतुर्विंशतिरेकभक्तानि । ततो दशदिक्पालाराधनार्थं दशैकभक्तानि । ततो ग्रहक्षेत्रपालाराधनार्थं दशैकभक्तानि । ततश्चतुर्णिकायदेवताराधनार्थं चत्वार्येकभक्तानि । ततः सर्वाराधनार्थमुपवासः । अत्रोपवासद्वय एकादशाचाम्लानि द्विशती चतुःपष्ठ्युत्तरा एकभक्तानि । एवं सप्तसप्त्यधिकेन दिनशतद्वयेन पूर्यते । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने चैत्ये बृहत्स्नात्रविधिः धर्मागारे नन्द्यावर्तपूजा प्रतिष्ठाविधिवत् । संघपूजा संघवात्सल्य । एतत्फल परलोके तीर्थंकरनामकर्म इहलोके सर्वर्द्धिः सर्वदेवतसान्निध्य । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ बृहन्नन्द्यावर्ततपः ॥ २६ ॥ ॥ अथ लघुनन्द्यावर्ततप. । नन्द्यावर्ताराधनार्थं तपः नन्द्यावर्ततप । लघोश्च नन्द्यावर्तस्य तप कार्यं विशेषतः । तदाराधनसंख्याभिरुद्यापनमिहादि-

१ पत्रोत्तरतपः २१ यन्त्राकृतिरस्मिन्ग्रन्थेऽन्यत्र योजितास्ति । २ यन्त्राकृतिरन्यत्र योजितास्ति ।

आचार्यपदोचितलग्ने स्वगुरुरन्यो वा कश्चिद्वयोवृद्धो ज्ञानवृद्धो गीतार्थोचार्यः पूर्ववद्वासाभिमन्त्रण विधाय वासक्षेप कृत्वा गणधरविद्यया तिलक करोति तदन्वये आचार्योपाध्यायसाधुसाध्वीश्रावकश्राविका अपि परमेष्ठिमन्त्रपाठपूर्वं तथैव श्रीखण्डेन तिलक कुर्वन्ति । ततो वृद्धगुरुः पूर्ववदभिमन्त्रितवासाक्षतवान साधुश्राद्धेभ्यः करोति । ततो वृद्धाचार्य'—क्षमासमणाण सुत्तेण अत्थेण तदुभयेण गुरुगुणेहिं वुड्ढाहि नित्थारगपारगो होहि इत्युक्ते सर्वेपि वासाक्षतक्षेप कुर्वन्ति । ततो वन्दनकविधिः पूर्ववत् । अन्येषामुपाध्यायसाध्वादीना गणानुज्ञा गणमुख्यत्वकथन वाचनानुज्ञाधिकारादवसेय । इति पदारोपाधिकारे यतिपदारोपविधिः ॥

॥ अथ विप्राणां । तेषां च आचार्योपाध्यायस्थानपतिकर्माधिकारिभेदाच्चतुर्धा पदक्रमः । तत्राचार्याः शुद्धसम्यग्दृष्टयो द्वादशव्रतधरा अन्यदैवतलिङ्गिप्रणामसभाषणसस्तवविवर्जितास्त्यक्तसावद्याः दुष्प्रतिग्रहरहिता नित्य कृतप्रत्याख्याना भवन्ति । तद्यथा—स्वभावादल्पसतुष्टा अल्पभाषणतत्पराः । जिनागमात्पर नैव पठन्ति श्रुतमादरात् ॥ १ ॥ नित्य धौतवस्त्रभाजो द्वादशव्रतधारिणः । सम्यगभ्यस्ततत्त्वार्थाः प्रमाणग्रन्थवेदिनः ॥ २ ॥ प्रायः सावद्यविरता मिथ्यादृक्सङ्गवर्जिताः । धीराः शान्ता गुणोपेताः सर्वशास्त्रविदस्तथा ॥ ३ ॥ प्रतिष्ठादिसर्वकर्मकरणाभ्यासशालिनः । प्रत्याख्यानरताः प्रायः प्राय' प्राशुकभोजिनः ॥४॥ नित्यस्नानरता दान्ता वाग्मिनो मन्त्रवेदिनः । षट्कर्मसाधनाभ्यग्रहदयास्ते द्विधैव हि ॥ ५ ॥ साधूपास्तिपरा नित्य शुद्धवशसमुद्भवाः । प्रायः कनकहस्ताश्च दुष्प्रतिग्रहवर्जिताः ॥ ६ ॥ प्राणात्ययेपि शूद्रान्नभोजनेऽतिपराङ्मुखाः । वार्ताकमू-

मूलपट्टाभिसेओ कओ तहिं मयणसुंदरीएवि । सेसाण अट्ठण्ह कओ अ लहुपट्टअभिसेओ॥१०६५॥
मइसायरो अ इक्को तिन्नेव य धवलसिट्ठिणो मित्ता। एए चउरोऽवि तया रन्ना निअमंतिणो ठविआ॥
कोसंबीनयरीओ अणाविओ धवलनंदणो विमलो। सो कणयपट्टपुव्वं सिट्ठी संठाविओ रन्ना॥१०६७॥
अट्ठाहियाउ चेईहरेसु काराविऊण विहिपुव्वं । सिरिसिद्धचक्कपूआ च कारए परमभत्तीए ॥ १०६८॥
ठाणे ठाणे चेईहराइं कारेइ तुंगसिहराइं । घोसावेइ अमारिं दाणं दीणाण दावेइ ॥ १०६९ ॥

तत्र मदनसुन्दर्य्या अपि मूलपट्टाभिषेकः, सा मूलपट्टराज्ञीपदे स्थापितेत्यर्थः, च पुनः शेषाणां अष्टानां राज्ञीनां लघुपट्टाभिषेकः कृतः ॥ १०६५ ॥ तदा एकश्च मतिसागर श्रीण्येव च धवलश्रेष्ठिनो मित्राणि एते चत्वारोऽपि राज्ञा श्रीपालेन निजमन्त्रिणः स्थापिताः ॥ १०६६ ॥ तथा कोशाम्बीनगरीतो विमलो नाम धवलनन्दनो-धवलश्रेष्ठिपुत्र आनायित, स विमलो राज्ञा श्रीपालेन कनकपट्टपूर्व-सौवर्णपट्टबन्धकपूर्वकं श्रेष्ठी सं-सम्यक् प्रकारेण स्थापित ॥ १०६७॥ तथा श्रीपा चैत्यगृहेषु-जिनमन्दिरेषु अष्टाहिकामहोत्सवान् कारयित्वा विधिपूर्व परमभक्त्या श्रीसिद्धचक्रपूजां च कारयति ॥१०६८॥ स्थाने स्थाने तुङ्गानि-उच्चानि शिखराणि येषां तानि तुङ्गशिखराणि चैत्यगृहाणि कारयति, तथाऽमारिं-सर्वजन्तुभ्योऽभयदानं घोषयति, पुनः दीनेभ्यो दानं दापयति, इत्थं पुण्यकृत्यानि करोतीत्यर्थ ॥ १०६९ ॥

नायमग्गेण रज्जं पालंतो पियअमाहिं सजुत्तो । सिरिसिरिपालनरिंदो इंदुव्व करेइ लीलाओ ॥
अह अजिअसेणनामा रायरिसी सो विसुद्धचारित्तो । उप्पन्नावहिनाणो समागओ तत्थ नयरीए ॥
तस्सागमणं सोऊण नरवरो पुलइओ पमोएण । माइपियाहिं समेओ सपत्तो वंदणनिमित्तं ॥
तिपयाहिणित्तु सम्मं त मुणिनाहं नमित्तु नरनाहो । पुरओ अ संनिविट्ठो सपरिवारो अ विणयपरो ॥
सोऽवि सिरिअजिअसेणो मुणिराओ रायरोसपरिमुक्को । करुणिक्कपरो परमं धम्मसरूवं कहइ एवं ।

न्यायमार्गेण राज्यं पालयन् प्रियतमाभिः—वल्लभाभिः संयुक्तः—सहितः श्रीश्रीपालनरेन्द्र इन्द्र इव लीलाः—क्रीडाः करोति ॥ १०७० ॥ अथ स श्रीअजितसेननामा राजर्षिस्तत्र नगर्यां—चम्पायां समागतः, कीदृशः सः ?—विशुद्ध—निर्मलं चारित्रं यस्य स तथाऽत एव उत्पन्नं अवधिज्ञानं यस्य स तथाभूतः ॥ १०७१ ॥ तस्य—राजर्षेरागमनं श्रुत्वा नरवरो—राजा श्रीपालः प्रमोदेन—हर्षेण पुलकितः—उल्लसितरोमोद्गमः सन् मात्रा जनन्या प्रियाभिश्च—वल्लभाभिः समेतः—सहितो वन्दननिमित्तं—मुनेः वन्दनार्थं सम्प्राप्तः ॥ १०७२ ॥ नरनाथो—राजा श्रीपालस्तं—मुनिनाथं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य पुनः सम्यग् नत्वा—प्रणम्य पुरतः—अग्रतश्च संनिविष्टः, कीदृशो नरनाथः ?—सपरिवारः—परिवारसहितश्च पुनर्विनयपरः ॥१०७३॥ सः श्रीअजितसेनोऽपि मुनिराजो रागरोषपरिमुक्तो रागद्वेषाभ्यां समन्ताद्रहितः, पुनः करुणा परा—प्रकृष्टा यस्य स तथाभूतः सन् एवं—वक्ष्यमाणप्रकारेण परमं—प्रधानं धर्मस्य स्वरूपं कथयति ॥ १०७४ ॥

मूलपट्टाभिसेओ कओ तहिं मयणसुंदरीएवि । सेसाण अट्ठण्ह कओ अ लहुपट्टअभिसेओ॥१०६५॥

मइसायरो अ इक्को तिन्नेव य धवलसिट्ठिणो मित्ता। एए चउरोऽवि तया रन्ना निअमंतिणो ठविआ॥

कोसंबीनयरीओ अणाविओ धवलनंदणो विमलो। सो कणयपट्टपुव्वं सिट्ठी सठाविओ रन्ना ॥१०६७॥

अट्ठाहियाउ चेईहरेसु काराविऊण विहिपुव्वं । सिरिसिद्धचक्कपूअं च कारए परमभत्तीए ॥ १०६८॥

ठाणे ठाणे चेईहराइं कारेइ तुंगसिहराइं । घोसावेइ अमारिं दाणं दीणाण दावेइ ॥ १०६९ ॥

तत्र मदनसुन्दर्य्या अपि मूलपट्टाभिषेकः, सा मूलपट्टराज्ञीपदे स्थापितेत्यर्थः, च पुनः शेषाणां अष्टानां राज्ञीनां लघुपट्टाभिषेकः कृतः ॥ १०६५ ॥ तदा एकश्च मतिसागर श्रीण्येव च धवलश्रेष्ठिनो मित्राणि एते चत्वारोऽपि राज्ञा श्रीपालेन निजमन्त्रिणः स्थापिताः ॥ १०६६ ॥ तथा कोशाम्बीनगरीतो विमलो नाम धवलनन्दनो-धवलश्रेष्ठिपुत्र आनायित, स विमलो राज्ञा श्रीपालेन कनकपट्टपूर्वं-सौवर्णपट्टबन्धकपूर्वकं श्रेष्ठी सं-सम्यक् प्रकारेण स्थापित ॥ १०६७॥ तथा श्रीपा चैत्यगृहेषु-जिनमन्दिरेषु अष्टाहिकामहोत्सवान् कारयित्वा विधिपूर्वं परमभक्त्या श्रीसिद्धचक्रपूजां च कारयति ॥१०६८॥ स्थाने स्थाने तुङ्गानि-उच्चानि शिखराणि येषां तानि तुङ्गशिखराणि चैत्यगृहाणि कारयति, तथाऽमारिं-सर्वजन्तुभ्योऽभयदानं घोषयति, पुनः दीनेभ्यो दानं दापयति, इत्थं पुण्यकृत्यानि करोतीत्यर्थः ॥ १०६९ ॥

महंतेण च पुन्नेण, जाएवि गुरुसंगमे । आलस्साईहिं रुद्धाणं, दुल्लहं गुरुदंसणं ॥ १०८० ॥
कहं कहंपि जीवाण, जाएऽवि गुरुदंसणे । धुग्गाहियाण धुत्तेहिं, दुल्लहं पज्जुवासणं ॥ १०८१ ॥
गुरुपासेऽवि पत्ताण, दुल्लहा आगमस्सुई । जं निद्दा विगहाओ अ, दुज्जयाओ सयाइवि ॥ १०८२ ॥
सपत्ताए सुईएवि, तत्तबुद्धी सुदुल्लहा । ज सिंगारकहाईसु, सावहाणमणो जणो ॥ १०८३ ॥
उवइट्ठेऽवि तत्तंमि, सद्धा अच्चंतदुल्लहा । ज तत्तरुइणो जीवा, दीसंति विरला जए ॥ १०८४ ॥

कदाचित् महता पुण्येन च गुरुसङ्गमे जातेऽपि आलस्यादिभिः त्रयोदशवस्करै रुद्धानां प्राणिनां गुरुदर्शन दुर्लभं, ते चामी " आलस्समोहवन्ना थंभा कोहा पमाय किवणत्ता । भयसोगा अन्नाणा, वक्खेव कुऊहला रमणा ॥१॥" ॥ इति ॥१०८०॥ जीवानां कथंकथमपि—केन केनापि प्रकारेण गुरुदर्शने जातेऽपि धूर्तैर्व्युद्ग्राहितानां—भ्रान्तचित्तीकृतानां पर्युपासन—गुरुसेवन दुर्लभम् ॥ १०८१ ॥ गुरुपार्श्वे प्राप्तानामपि आगमस्य—सिद्धान्तस्य श्रुतिः—श्रवणं दुर्लभा, यत्—यस्मात्कारणात् निद्रा विकथाश्च सदापि दुर्जयाः सन्ति, तत्प्रसङ्गात् श्रवणं दुर्लभमपीत्यर्थः ॥ १०८२ ॥ श्रुतौ—आगमश्रवणे सम्प्राप्तायामपि तत्त्वबुद्धिः सुदुर्लभा, यत्—यस्मात्कारणात् जनो—लोकः शृङ्गारकथादिषु—शृङ्गारहास्यादिकथासु सावधान—ऐकाग्र्ययुक्त मनो यस्य स तथा बहुर्दृश्यन्ते इति शेषः ॥ गुरुभिस्तत्त्वे उपदिष्टेऽपि श्रद्धा—आस्तिक्यं अत्यन्तदुर्लभा, यद्—यस्मात् कारणात्तत्त्वेषु—जिनोक्तपदार्थेषु रुचिर्येषां ते तत्त्वरुचयो जीवा जगति—लोके विरला दृश्यन्ते ॥ १०८४ ॥

भो भो भव्वा ! भवोहंमि, दुल्लहो माणुसो भवो। चुल्लगाईहिं नाएहिं, आगमंमि विआहिओ ॥१०७५॥
लद्धंमि माणुसे जम्मे, दुल्लहं खित्तमारिअ। ज दीसंति इहाणेगे, मिच्छा भिल्ला पुलिंदया ॥१०७६॥
आरिएसु अ खित्तेसु, दुल्लहं कुलमुत्तमं। जं वाहसुणियाईण, कुले जायाण को गुणो ? ॥ १०७७ ॥
कुले लद्धेऽवि दुल्लंभ, रूवमारुग्गमाउअं। विगला वाहिआऽकालमया दीसंति ज जणा ॥ १०७८ ॥
तेसु सव्वेसु लद्धेसु, दुल्लहो गुरुसंगमो। ज सया सव्वखित्तेसु, पाविज्जंते न साहुणो ॥ १०७९ ॥

भो ! भो ! भव्या भवौघे—भवसमूहे मानुषो—मनुष्यसम्बन्धी भवो—जन्म आगमे—सिद्धान्ते चुल्लकादिभिः—चुल्लगपासगधन्ने इत्यादिभिर्ज्ञातैः—दृष्टान्तैः दुर्लभो—दुष्प्रापो व्याख्यात—उक्तः ॥ १०७५ ॥ कदाचित् मानुषे जन्मनि लब्धे सति आर्यं क्षेत्रं दुर्लभं यत्—यस्मात्कारणात् इह भरते अनार्यक्षेत्रेषु अनेके—बहवो म्लेच्छा भिल्लाः पुलिन्दाश्च म्लेच्छभेदा एव दृश्यन्ते—विलोक्यन्ते ॥ १०७६ ॥ आर्येषु च क्षेत्रेषु उत्तमं कुलं दुर्लभं यत्—यस्मात्कारणात् व्याधसौनिकादीनां—लुब्धकखाटिकादीनां कुलेषु जातानां—उत्पन्नानां को गुणः ?, न कोऽपीत्यर्थः ॥ १०७७ ॥ कुले लब्धेऽपि रूपं—परिपूर्णेन्द्रियपञ्चकं तथा आरोग्यं नीरोगता तथा आयुष्कं—महदायुः एतत्त्रयं दुर्लभम्, यत्—यस्मात्कारणात् जना—उत्तमकुलोद्भवा अपि बहवो लोका विकला—हीनेन्द्रियास्तथा व्याधिता—रोगिणस्तथाऽकाले मृता दृश्यन्ते ॥ १०७८ ॥ तेषु रूपादिषु सर्वेषु लब्धेष्वपि गुरुसङ्गमः—सद्गुरोः सङ्गो दुर्लभः, यत्—यस्मात्कारणात् सर्वक्षेत्रेषु सदा साधवो न प्राप्यन्ते ॥ १०७९ ॥

महतेण च पुन्नेण, जाएवि गुरुसगमे । आलस्साईहिं रुद्धाणं, दुल्लहं गुरुदंसग ॥ १०८० ॥
कहं कहवि जीवाण, जाएऽवि गुरुदंसणे । वुग्गाहियाण धुत्तेहिं, दुल्लह पज्जुवासण ॥ १०८१ ॥
गुरुपासेऽवि पत्ताण, दुल्लहा आगमस्सुई । ज निद्दा विगहाओ अ, दुज्जआओ सयाइवि ॥ १०८२ ॥
सपत्ताए सुईएवि, तत्तबुद्धी सुदुल्लहा । ज सिंगारकहाईसु, सावहाणमणो जणो ॥ १०८३ ॥
उवइट्ठेऽवि तत्तंमि, सद्धा अच्चतदुल्लहा । ज तत्तरुइणो जीवा, दीसंति विरला जए ॥ १०८४ ॥

कदाचित् महता पुण्येन च गुरुसङ्गमे जातेऽपि आलस्यादिभि त्रयोदशतस्करै रुद्धानां प्राणिनां गुरुदर्शन दुर्लभ, ते चामी “ आलस्समोहवन्ना थभा कोहा पमाय किवणत्ता । भयसोगा अन्नाणा, वक्खेव कुऊहला रमणा ॥२॥” ॥ इति ॥ १०८० ॥ जीवानां कथंकथमपि–केन केनापि प्रकारेण गुरुदर्शने जातेऽपि धूर्तैर्व्युद्ग्राहितानां–भ्रान्तचित्तीकृतानां पर्युपासन–गुरुसेवन दुर्लभम् ॥ १०८१ ॥ गुरुपार्श्वे प्राप्तानामपि आगमस्य–सिद्धान्तस्य श्रुति –श्रवण दुर्लभा, यत्–यस्मात्कारणात् निद्रा विकथाश्च सदापि दुर्जया सन्ति, तत्प्रसङ्गात् श्रवण दुर्लभमपीत्यर्थः ॥ १०८२ ॥ श्रुतौ–आगमश्रवणे सम्प्राप्तायामपि तत्त्वबुद्धिः सुदुर्लभा, यत्–यस्मात्कारणात् जनो–लोकः शृङ्गारकथादिषु–शृङ्गारहास्यादिकथासु सावधान–ऐकाग्र्ययुक्तं मनो यस्य स तथा दृश्यन्ते इति शेषः ॥ गुरुभिस्तत्त्वे उपदिष्टेऽपि श्रद्धा–आस्तिक्य अत्यन्तदुर्लभा, यद्–यस्मात् कारणात्तत्त्वेषु–जिनोक्तपदार्थेषु रुचिर्येषां ते तत्त्वरुचयो जीवा जगति–लोके विरला दृश्यन्ते ॥ १०८४ ॥

आयाए तत्तसद्धाए, तत्तबोहो सुदुल्लहो । ज आसन्नसिवा केई, तत्त बुज्झंति जंतुणो ॥ १०८५ ॥
तत्त दसविहो धम्मो, खंती मद्दव अज्जव । मुत्ती तवो दया सच्च, सोय बंभमकिंचणं ॥ १०८६ ॥
खंतीनाममकोहत्त, मद्दव माणवज्जण । अज्जव सरलो भावो, मुत्ती निग्गथया दुहा ॥ १०८७ ॥
तवो इच्छानिरोहो य, दया जीवाण पालणं । सच्च वक्कमसावज्ज, सोय निम्मलचित्तया ॥ १०८८ ॥
बंभमट्ठारभेअस्स, मेहुणस्स विवज्जणा । अकिंचणं न मे कज्ज, केणावि त्थित्ति ऽणीहया ॥ १०८९ ॥

तत्त्वश्रद्धायां—तत्त्वप्रतीतौ जातायामपि तत्त्वबोधः—तत्त्वज्ञानं सुदुर्लभः, यद्—यस्मात्कारणात्केचिद् आसन्न—निकट शिवमुक्तिर्येषां ते आसन्नशिवा एव जन्तवो—जीवाः तत्त्वं बुध्यन्ते, न सर्वेऽपीत्यर्थः ॥ १०८५ ॥ तत्त्वं किमित्याह—तत्त्व दशविधो धर्मस्तथाहि—क्षान्तिः१ मार्दव२ मार्जवं३ मुक्तिः४ तपः५ दया६ सत्य७ शौच ८ ब्रह्म ९ माकिञ्चन्य१० ॥ १०८६ ॥ अथैषामर्थानाह—क्षान्तिर्नाम अक्रोधत्व—क्रोधाभाव १ मार्दवं—मानवर्जनम् २ आर्जवम् सरलो भाव—अभिप्राय ३ मुक्तिर्द्विधा निर्ग्रन्थता—निर्लोभता, द्रव्यतो भावतश्च परिग्रहरहितत्वमित्यर्थः४ ॥ १०८७ ॥ इच्छाया निरोधश्च तप उच्यते५ जीवानां पालन—रक्षण दया उच्यते६ असावद्य—निर्दोषं वाक्य सत्यमुच्यते७ निर्मलचित्तता शौचमुच्यते८ ॥ १०८८ ॥ अष्टादशभेदस्य मैथुनस्य विवर्जन ब्रह्म उच्यते, तत्र औदारिकवैक्रियभेदाद् द्विविधं मैथुनं, तदेकैकमपि मनोवाक्कायै करणकारणानुमतिभेदान्नवविध, द्वयोर्मिलने अष्टादशविधमितिह, केनापि वस्तुना मम कार्यं न—नास्ति इत्येव याऽनीहता—निःस्पृहता तद् आकिञ्चन्यमुच्यते१० ॥ १०८९ ॥

एसो दसविहोद्देसो, धम्मो कप्पदुमोवमो । जीवाण पुण्णपुण्णाण, सव्वसुक्खाण दायगो ॥१०९०॥
धम्मो चिंतामणी रम्मो, चिंतिअत्थाण दायगो । निम्मलो केवलालोअलच्छिविच्छिड्डिकारओ ॥
कल्लाणिक्कमओ वित्तरूवो मेरूवमो इमो । सुमणाणं मणोतुट्ठिं, देइ धम्मो महोदओ ॥ १०९२ ॥

दशविधा-दशप्रकारा उद्देशा-अवयवा नामोच्चारणानि वा यस्य स तथाभूत एष धर्मः कल्पद्रुमोपमः-कल्पवृक्षसदृशः पूर्णपुण्येभ्यो जीवेभ्यः सर्वसौख्यानां दायकोऽस्ति, पूर्णं पुण्यं येषां ते पूर्णपुण्यास्तेभ्यः, कल्पवृक्षाणामपि दशविधत्वात्तदुपमा धर्मे उक्त ॥ १०९० ॥ धर्मश्चिन्तामणिरिव रम्यो-मनोज्ञश्चिन्तितार्थानां-वाञ्छितार्थानां दायको दाताऽस्ति, कीदृशो धर्मो ?-निर्मलो-निर्दोषो अत एव केवलालोकः केवलज्ञानरूपप्रकाशः सा एव लक्ष्मीः-सम्पत् तस्या विच्छिड्डिः-विस्तारस्तत्कारकः ॥ १०९१ ॥ कल्याण-मङ्गल मेरुपक्षे कल्याणम्-सुवर्णं तदेव एकं स्वरूपमस्येति कल्याणैकमयः पुनर्वित्त प्रसिद्ध रूप-स्वरूप यस्य स तथा द्वयोस्तुल्य विशेषणमिद, पक्षे मेरुपक्षे वृत्त-वर्तुलं रूपम् आकृतिर्यस्य स तथा, पुनर्महान् उदयो यस्मात् स महोदय, मेरुपक्षे महानुदय-उन्नत्य यस्य स तथाऽत एव मेरुणा गिरिराजेन उपमा यस्य स मेरूपमोऽयं धर्म, सुमनसां-शोभनमनोवृत्तीनां जनानां मेरुपक्षे देवानां मनसि तुष्टिं-तोषं ददाति ॥ १०९२ ॥

आयाए तत्तसद्धाए, तत्तबोहो सुदुल्लहो । ज आसन्नसिवा केई, तत्त बुज्झति जतुणो ॥ १०८५ ॥
तत्त दसविहो धम्मो, खती मद्दव अज्जव । मुत्ती तवो दया सच्च, सोय बंभमकिंचणं ॥ १०८६ ॥
खंतीनाममकोहत्त, मद्दवं माणवज्जण । अज्जवं सरलो भावो, मुत्ती निग्गहया दुहा ॥ १०८७ ॥
तवो इच्छानिरोहो अ, दया जीवाण पालण । सच्च वक्कमसावज्ज, सोयं निम्मलचित्तया ॥ १०८८ ॥
बंभमट्ठारभेअस्स, मेहुणस्स विवज्जण । अकिंचण न मे कज्ज, केणाविऽथि त्तिऽणीहया ॥ १०८९ ॥

तत्त्वश्रद्धायां-तत्त्वप्रतीतौ आतायामपि तत्त्वबोधः-तत्त्वज्ञान सुदुर्लभः, यद्-यस्मात्कारणात्केचित् आसन्न-निकट शिव-मुक्तिर्येषां ते आसन्नशिवा एव जन्तवो-जीवाः तत्त्वं बुध्यन्ते, न सर्वेऽपीत्यर्थः ॥ १०८५ ॥ तत्त्व किमित्याह-तत्त्वं दश विधो धर्मः तद्यथा हि-क्षान्तिः१ मार्दव२ आर्जवं३ मुक्तिः४ तपः५ दया६ सत्य७ शौचं ८ ब्रह्म ९ आकिञ्चन्य१० ॥ १०८६ ॥ अथैषामर्थानाह-क्षान्तिर्नाम अक्रोधत्व-क्रोधाभाव १ मार्दव-मानवर्जनम्२ आर्जवम् सरलो भाव-अभिप्राय ३ मुक्तिर्द्विधा निर्ग्रहता-निर्लोभता, द्रव्यतो भावतश्च परिग्रहरहितत्वमित्यर्थः४ ॥ १०८७ ॥ इच्छाया निरोधश्च तप उच्यते५ जीवानां पालन-रक्षण दया उच्यते६ असावद्य-निर्दोष वाक्यं सत्यमुच्यते७ निर्मलचित्तता शौचमुच्यते८ ॥ १०८८ ॥ अष्टादशभेदस्य मैथुनस्य विवर्जनं ब्रह्म उच्यते, तत्र औदारिकवैक्रियभेदाद् द्विविध मैथुन, तदेकैकमपि मनोवाक्कायै करणकारणानुमतिभेदान्नवविध, द्वयोर्मिलने अष्टादशविधमिति९, केनापि वस्तुना मम कार्यं न-नास्ति इत्येव याऽनीहता-निःस्पृहता तद् आकिञ्चन्यमुच्यते१० ॥ १०८९ ॥

एअस्सेवावबोहेणं, तत्त नाणंपि निच्छय। एअस्साराहणारूवं, तत्त चारित्तमेव य ॥ १०९७ ॥
इत्तो जा निज्जरा तीए, रूव तत्त तवोऽवि अ। एवमेआइं सव्वाइ, पयाइं तत्तमुत्तमं ॥ १०९८ ॥
तत्तो नवपइ एसा, तत्तभूआ विसेसओ। सव्वेहिं भव्वसत्तेहिं, नेआ झेआ य निच्चसो ॥ १०९९ ॥
एय नवपय भव्वा !, झायता सुद्धमाणसा। अप्पणो चेव अप्पमि, सक्ख पिक्खति अप्पय ॥११००॥
अप्पमि पिक्खिए ज च, खणे खिज्जइ कम्मय। न त तवेण तिव्वेण, जम्मकोडीहिं खिज्जए॥११०१॥

एतस्य धर्मस्यैव अवबोधेन—सम्यग्ज्ञानेन निश्चयं—निश्चयात्मकं वस्तुनिर्णयजनकं ज्ञानमपि तत्त्वं, च पुनरेतस्य धर्मस्य आराधनारूप चारित्रमपि तत्त्व, एवशब्दोऽप्यर्थे ॥ १०९७ ॥ इत —अस्माच्चारित्रात् या कर्म्मणां निर्जरा तस्या रूपं—स्वरूप तपोऽपि च तत्त्वमस्ति एवम्—अमुना प्रकारेण एतानि सर्वाणि पदानि उत्तमं—सर्वोत्कृष्टं तत्त्वमस्ति, अत्र जातावेकवचनम् ॥ १०९८ ॥ तत —तस्मात्कारणात् एषा—अनन्तरोक्ता नवानां पदानां समाहारो नवपदी सर्वैर्भव्यसत्त्वै —भव्यप्राणिभिर्विशेषत-स्तत्त्वभूता ज्ञेया नित्यशो ध्येया—ध्यातव्या च ॥ १०९९ ॥ एतां नवपदीं ध्यात्वा शुद्धं मानस—मनो येषां ते शुद्धमानसाः सन्तो ध्यायन्तो नरा आत्मना—स्वयमेव आत्मनि—स्वस्मिन् साक्षात्—प्रत्यक्ष आत्मानं प्रेक्षन्ते—पश्यन्ति ॥११००॥ आत्मनि प्रेक्षिते—दृष्टे सति क्षणे—क्षणमात्रे यत्र कर्म क्षीयते तत्कर्म तीव्रेण तपसा जन्मकोटिभिरपि न क्षीयते ॥ ११०१ ॥

सुगुत्तसत्तखित्तीए, सव्वस्सव य सोहिओ । धम्मो जयइ संविचो, जम्बूदीवोवमो इमो ॥ १०९३ ॥

एसो अ जेहिं पन्नत्तो, तेऽवि तत्त जिणुत्तमा । एअस्स फलभूआ य, सिद्धा तत्त न संसओ ॥१०९४॥

दसता एयमायार, तत्तमायरिआवि हु । सिक्खयता इम संसे, तत्तमुज्झावयावि अ ॥ १०९५ ॥

साहयता इम सम्म, तत्तरूवा सुसाहुणो । एअस्स सद्दहाणेण, सुतत्त दसणपि हु ॥ १०९६ ॥

सर्वस्वनत्–सर्वगृहस्थारवत् सुगुप्ता–सुष्ठु रचिता या सप्तक्षेत्री 'जिणभवणबिम्ब पुत्थये'त्यादिका जम्बूद्वीपपक्षे भरतैरावत विदेहहैमवतहैरण्यवतहरिवर्षरम्यकारूपा तया शोभितो–विराजित., पुनः स–सम्यक् वृत्तम्–आचारो यत्र स जम्बूद्वीपपक्षे संवृत्तः–सम्यग् वर्तुलोऽत एव जम्बूद्वीपेन उपमा यस्य स तथाभूतोऽयं धर्मो जयति, सर्वोत्कर्षेण वर्तते इत्यर्थः ॥ १०६३॥ एष धर्मो यैः प्रज्ञप्तः–प्रदर्शितस्ते जिनोत्तमा–जिनेन्द्रा अपि तत्त्व, एतस्य धर्मस्य फलभूता' सिद्धाश्च तत्त्व-न संशय , अत्र सन्देहो नास्तीत्यर्थः ॥ १०६४ ॥ एतं धर्मरूपमाचारं दर्शयन्त आचार्या अपि तत्त्व, तथा शिष्यान् इमं धर्मं शिक्षयन्तोऽध्यापका–उपाध्याया अपि च तत्त्वम् ॥ १०९५ ॥ इमं धर्मं सम्यक् साधयन्तः सुसाधवस्तत्त्वरूपा सन्ति, एतस्य धर्मस्य श्रद्धानेन दर्शन–सम्यक्त्वमपि सुष्ठु–शोभन तत्त्वम् ॥ १०६६ ॥

एअस्सेवावबोहेण, तत्तं नाणंपि निच्छयं। एअस्साराहणारूवं, तत्तं चारित्तमेव य ॥ १०९७ ॥
इत्तो जा निज्जरा तीए, रूव तत्त तवोऽवि अ। एवमेआइं सव्वाइं, पयाइं तत्तमुत्तमं ॥ १०९८ ॥
तत्तो नवपइ एसा, तत्तभूआ विसेसओ। सव्वेहिं भव्वसत्तेहिं, नेआ झेआ य निच्चसो ॥ १०९९ ॥
एय नवपय भव्वा !, झायता सुद्धमाणसा। अप्पणो चेव अप्पमि, सक्ख पिक्खति अप्पय ॥११००॥
अप्पमि पिक्खिए ज च, खणे खिज्जइ कम्मय। न त तवेण तिव्वेण, जम्मकोडीहिं खिज्जए॥११०१॥

एतस्य धर्मस्यैव अवबोधेन–सम्यग्ज्ञानेन निश्चयं–निश्चयात्मक वस्तुनिर्णयजनकं ज्ञानमपि तत्त्व, च पुनरेतस्य धर्मस्य आराधनारूप चारित्रमपि तत्त्व, एवशब्दोऽप्यर्थे ॥ १०९७ ॥ इत–अस्माच्चारित्रात् या कर्मणां निर्जरा तस्या रूप–स्वरूपं तपोऽपि च तत्त्वमस्ति एवम्–अमुना प्रकारेण एतानि सर्वाणि पदानि उत्तमं–सर्वोत्कृष्टं तत्त्वमस्ति, अत्र जातावेकवचनम् ॥ १०९८ ॥ तत –तस्मात्कारणात् एषा–अनन्तरोक्ता नवानां पदाना समाहारो नवपदी सर्वैर्भव्यसत्त्वै–भव्यप्राणिभिर्विशेषत-स्तत्त्वभूता ज्ञेया नित्यशो ध्येया–ध्यातव्या च ॥ १०९९ ॥ एतां नवपदीं ज्ञात्वा शुद्धं मानस–मनो येषां ते शुद्धमानसाः सन्तो ध्यायन्तो नरा आत्मना–स्वयमेव आत्मनि–स्वस्मिन् साक्षात्–प्रत्यक्ष आत्मान प्रेक्षन्ते–पश्यन्ति ॥११००॥ आत्मनि प्रेक्षिते–दृष्टे सति क्षणे–क्षणमात्रे यत्त कर्म क्षीयते तत्कर्म तीव्रेण तपसा जन्मकोटिभिरपि न क्षीयते ॥ ११०१ ॥

ता तुज्झे भो महाभागा !, नाऊण तत्तमुत्तम । सम्म झायह ज सिग्घ, पावेहाणंदसंपय ॥ ११०२ ॥
एव सो मुणिराओ काऊण देसणा ठिओ जाव । ताव सिरिपालराया विणयपरो जपए एव॥११०३॥
नाणमहोयहि! भयव केण कुकम्मेण तारिसो रोगो। बालत्ते मह जाओ ? केण सुकम्मेण समिओ अ ? ॥
केण च कम्मणाऽह ठाणे ठाणे अ परिसिं रिद्धिं । सपत्तो ? तह केण कुकम्मणा सायरे पडिओ ? ॥
तह केण नीअकम्मेण चेव डुंबत्तणं महाघोर । पत्तोऽह ? त सव्व कहेह काऊण सुपसाय ॥११०६॥

ततः—तस्मात्कारणात् भो ! महाभागा—अहो ! महाभाग्यवन्तो यूयमिद उत्तम तत्त्व ज्ञात्वा सम्यग् यथा स्यात्तथा ध्यायत, यत्—यतः शीघ्र आनन्दसम्पद—परमाह्लादरूपसम्पत्तिं प्राप्नुत ॥११०२॥ सोऽजितसेनो मुनिराज एवम्—उक्तप्रकारेण देशनां कृत्वा यावत् स्थितस्तावत् श्रीपालो राजा विनयपरः सन् एव—वक्ष्यमाणप्रकारेण जल्पति—वदति ॥ ११०३ ॥ हे ज्ञानमहोदधे—हे ज्ञानसमुद्र ! हे भगवन् ! केन कुकर्मणा मम बालत्वे तादृशो रोगो जात—उत्पन्न ? च पुन केन सुकर्मणा शान्तो—नाशम्प्राप्तः ? ॥११०४॥ च पुनः केन कर्मणाऽहं स्थाने स्थाने ईदृशीं ऋद्धिं सम्प्राप्त ? तथा केन—कर्मणाऽहं सागरे—समुद्रे पतित ? ॥ ११०५ ॥ तथा केन नीचकर्मणा एवाहं महाघोरं—महादारुण डुम्बत्व प्राप्त ? तत्सर्वं सुतरामतिशयेन प्रसादं कृत्वा कथय ॥ ११०६ ॥

तो भणइ मुणिवरिंदो नरवर! जीवाण इत्थ संसारे। पुव्वकयकम्मवसओ हवंति सुक्खाइं दुक्खाइं ॥
इत्थेव भरहवासे हिरण्णउरनामयम्मि वरनयरे। सिरिकंतो नाम निवो पावद्धिपसत्तओ अस्थि ॥
तस्सऽत्थि सिरिसमाणा सरीरसोहाइ सिरिमई देवी। जिणधम्मनिउणबुद्धी विसुद्धसमत्तसीलजुआ ॥
तीए अ नरवरिंदो भणिओ तुह नाह! जुज्जइ न एअं। पावद्धिमहावसणं निबंधणं नरयदुक्खाणं ॥
भीरुणसत्थकरेहिं तुरयारूढेहिं जं हणिज्जंति। नासंतावि हु ससया सो किर को खत्तिआयारो? ॥

ततः—तदनन्तरं मुनिवरेन्द्रो भणति हे नरवर— हे राजन्! अत्र—अस्मिन् संसारे जीवानां पूर्वकृतकर्मणां वशात् सुखानि दुःखानि च भवन्ति ॥ ११०७ ॥ अत्रैव भरतक्षेत्रे हिरण्यपुरनामके प्रधाननगरे पापर्द्धौ—आखेटके प्रसक्त—आसक्तः श्रीकान्तो नाम नृपो—राजाऽस्ति—आसीदित्यर्थः ॥ ११०८ ॥ तस्य राज्ञः शरीरशोभया श्रीसमाना—लक्ष्मीतुल्या श्रीमतीनाम देवी-पट्टराज्ञी अस्ति, कीदृशी?-जिनधर्मे निपुणा—दक्षा बुद्धिर्यस्याः सा तथा, पुनर्विशुद्धे—निर्मले ये सम्यक्त्वशीले—सम्यग्दर्शनब्रह्मचर्ये ताभ्यां युता—सहिता ॥११०९॥ तया च श्रीमत्या नरवरेन्द्रो भणित, कथमित्याह—हे नाथ—हे स्वामिन्! एतत् पापर्द्धिमहाव्यसनं तव न युज्यते, कीदृशमेतत्?—नरकदुःखानां निबन्धनं—कारणम् ॥ १११० ॥ भीषणानि—भयङ्कराणि शस्त्राणि करेषु—हस्तेषु येषां ते भीषणशस्त्रकरास्तैस्तुरगारूढैः—अश्वारूढैर्नरैर्पलायन्तोऽपि शशका—जन्तुविशेषा हन्यन्ते—मार्यन्ते स किल कः क्षत्रियाणां आचारः?, न कोऽपीत्यर्थः ॥ ११११ ॥

ता तुज्झे भो महाभागा !, नाऊण तत्तमुत्तम । सम्मं झाएह ज सिग्घ, पावेहाणदसपय ॥ ११०२ ॥
एव सो मुणिराओ काऊण देसणा ठिओ जाव । ताव सिरिपालराया विणयपरो जपए एव॥११०३॥
नाणमहोयहि! भयव केण कुकम्मेण तारिसो रोगो। बालत्ते मह जाओ ? केण सुकम्मेण समिओ अ ? ॥
केण च कम्मणाऽह ठाणे ठाणे अ परिसिं रिद्धिं । सपत्तो ? तह केण कुकम्मणा सायरे पडिओ ? ॥
तह केण नीअकम्मेण चेव डुवत्तणा महाघोर । पत्तोऽह ? त सव्व कहेह काऊण सुपसाय ॥११०६॥

ततः–तस्मात्कारणात् भो ! महाभागा–अहो ! महाभाग्यवन्तो यूयमिद उत्तम तत्त्व ज्ञात्वा सम्यग् यथा स्यात्तथा ध्यायत, यत्–यतः शीघ्र आनन्दसम्पद–परमाह्लादरूपसम्पत्तिं प्राप्नुत ॥११०२॥ सोऽजितसेनो मुनिराज एवम्–उक्तप्रकारेण देशनां कृत्वा यावत् स्थितस्तावत् श्रीपालो राजा विनयपरः सन् एव–वक्ष्यमाणप्रकारेण जल्पति–वदति ॥ ११०३ ॥ हे ज्ञानमहोदधे–हे ज्ञानसमुद्र ! हे भगवन् ! केन कुकर्मणा मम बालत्वे तादृशो रोगो जात–उत्पन्न ? च पुन केन सुकर्मणा शान्तो–नाशम्प्राप्तः ? ॥११०४॥ च पुनः केन कर्मणाऽहं स्थाने स्थाने ईदृशीं ऋद्धिं सम्प्राप्त ? तथा केन–कर्मणाऽहं सागरे–समुद्रे पतित ? ॥ ११०५ ॥ तथा केन नीचकर्मणा एताद्द महाघोर–महादारुण डुम्बत्व प्राप्त ? तत्सर्वं सुतरामतिशयेन प्रसादं कृत्वा कथय ॥ ११०६ ॥

त चेव भणतेहिं तेहिं वंठेहिं दुट्ठचित्तेहिं । उवसग्गिओ मुणिंदो खमापरो लिट्ठुलट्ठीहिं ॥ १११७ ॥
जह जह ताडंति मुणिं ते दुट्ठा तह तहा समुच्छसइ । हासरसो नरनाहे मुणिनाहे उवसमरसो य ॥
ते कयमुणिउवसग्गा निब्भग्गा हणिअभूरिमयवग्गा । नरवइपुट्ठिविलग्गा पत्ता निअयंमि नयरंमि ॥
अन्नदिणे सो पुणरवि राया मिगयागओ निअ सिन्नं । मुत्तूण हरिणपुट्ठीइ धाविओ इक्कगो चेव ॥
नइतडवणे निलुक्को सो हरिणो नरवरो तओ चुक्को । जा पिच्छइ ता पासइ नइउवकंठे ठिअं साहुं ॥

तदेव—नृपोक्तमेव वचन भणद्भिः—जल्पद्भिस्तैर्दुष्टचित्तैः षण्ढैः(षठैः) मुनीन्द्रो लेष्टुभिः—लोष्टैर्यष्टिभिः—लकुटैः उपसर्गित—उपद्रुतः, कीदृशो मुनीन्द्रः ?—क्षमापरः—क्षमाप्रधानः ॥ १११७ ॥ ते दुष्टा वण्ठा यथा यथा मुनिं ताडयन्ति तथा तथा नरनाथे—नृपे हास्यरसः समुच्छ्वसति, मुनिनाथे—मुनीश्वरे च उपशमरसः—शान्तरसः समुच्छ्वसति ॥ १११८ ॥ कृतो मुनेरुपसर्गो यैस्ते तथाऽत एव निर्भाग्या—भाग्यहीनाः पुनर्हता भूरयो—बहवो मृगवर्गा—मृगसमूहा यैस्ते तथा, ते वण्ठा नरपतेः पृष्ठौ विलग्नाः सन्तो निजके—स्वकीये नगरे प्राप्ताः ॥ १११९ ॥ अन्यस्मिन्दिने स—राजा पुनरपि मृगयायां गतो निजं सैन्यं मुक्त्वा—त्यक्त्वा एककः—एकाकी एव हरिणस्य पृष्ठौ धावितः ॥ ११२० ॥ स हरिणो नद्यास्तटे यद्वन तत्र 'निलुक्को'—त्ति घनवृक्षाद्याच्छादितत्वाददृश्यतां गतस्तदा नरवरो—राजा ततो मृगाच्च्युतः सन् यावत्प्रेक्षते—विलोकयति तावन्नद्या उपकण्ठे—समीपे स्थित साधु पश्यति ॥ ११२१ ॥

जत्थ अकयावराहा मया वराहाइणोऽवि निन्नाहा । मारिज्जंति वराया सा सामिअ! केरिसी नीई ॥
हतूण परप्पाणं अप्पाणं जे कुणंति सप्पाणं । अप्पाणं दिवसाणं कए ते नासंति अप्पाणं ॥१११३॥
इच्चाइजिणिंदागमउवएससएहिं बोहयंतीए । तीए न सक्किओ सो निवारिउं पावव्वसणाओ ॥
अन्नदिणे सो सत्तहिं सएहिं उब्भडदुट्ठवंठेहिं । मइआसत्तो पत्तो कत्थवि एगंमि वणगहणे॥१११५॥
दट्ठूण तत्थ एगं धम्मज्झयसजुअं मुणिवरिंदं । राया भणेइ एसो चमरकरो कुट्टिओ कोऽवि ॥१११६॥

यत्र नीतिमार्गे न कृतोऽपराधो यैस्तेऽकृतापराधा मृगा–हरिणा वराहादयः–शूकरादयोऽपि निर्नाथा–अनाथा वराका–दुर्बला जीवा मार्यन्ते सा स्वामिन्! कीदृशी नीतिः ? ॥१११२॥ परात्मान–परजीवं हत्वा ये जीवास्तन्मांसभक्षणेन आत्मान सप्राणं–सबलं कुर्वन्ति ते दुष्टा अल्पानां–स्तोकानां दिवसानां कृते च–निमित्तं आत्मानं नाशयन्ति ॥ १११३ ॥ इत्यादि-भिर्जिनेन्द्रागमसम्बन्धिभिरुपदेशानां शतैर्बोधयन्त्या तया राज्या स राजा पापव्यसनान्निवारयितुं न शक्योऽभूत् ॥१११४॥ अन्यस्मिन्दिने स श्रीकान्तो राजा सप्तभिः शतैः उद्भटदुष्टवण्ठैः पुरुषैः सह मृगयायां–पापर्द्धौ आसक्तः सन् कुत्राप्येकस्मिन् वनगहने–दुरवगाहवने प्राप्तः ॥ १११५ ॥ तत्र वने एकं धर्मध्वजेन–रजोहरणेन सयुतं–सहितं मुनिवरेन्द्रं दृष्ट्वा राजा भणति, मक्षिकापनयनार्थं चामरं करे यस्य स चामरकर एष कोऽपि कुष्ठिकोऽस्ति ॥ १११६ ॥

त चेव भणतेहिं तेहिं वठेहिं दुट्ठचित्तेहिं । उवसग्गिओ मुणिंदो खमापरो लिट्ठुलट्ठीहिं ॥ १११७ ॥
जह जह ताडंति मुणिं ते दुट्ठा तह तहा समुछलइ । हासरसो नरनाहे मुणिनाहे उवसमरसो अ ॥
ते कयमुणिउवसग्गा निब्भग्गा हयिअभूरिमयवग्गा । नरवइपुट्ठिविलग्गा पत्ता निअयंमि नयरंमि ॥
अन्नदिणे सो पुणरवि राया मिगयागओ निअ सिन्नं । मुत्तूण हरिणपुट्ठीइ धाविओ इक्कगो चेव ॥
नइतडवणे निलुक्को सो हरिणो नरवरो तओ चुक्को । जा पिच्छइ ता पासइ नइउवकठे ठिअं साहुं ॥

तदेव–नृपोक्तमेव वचनं भणद्भिः–जल्पद्भिस्तैर्दुष्टचित्तैः वण्ठैः(पठैः) मुनीन्द्रो लेष्टुभिः–लोष्टैर्यष्टिभिः–लकुटैः उपसर्गित–उपद्रुतः, कीदृशो मुनीन्द्रः ?–क्षमापरः–क्षमाप्रधानः ॥ १११७ ॥ ते दुष्टा वण्ठा यथा यथा मुनिं ताडयन्ति तथा तथा नरनाथे–नृपे हास्यरस समुच्छलति, मुनिनाथे–मुनीश्वरे च उपशमरसः–शान्तरसः समुच्छलति ॥ ११११८ ॥ कृतो मुनेरुपसर्गो यैस्ते तथाऽत एव निर्भाग्या–भाग्यहीनाः पुनर्हता भूरयो–बहवो मृगवर्गा–मृगसमूहा यैस्ते तथा, ते वण्ठा नरपते–राज्ञः पृष्ठौ विलग्ना सन्तो निजके–स्वकीये नगरे प्राप्ताः ॥ १'१६ ॥ अन्यस्मिन्दिने स–राजा पुनरपि मृगयायां गतो निजं सैन्य मुक्त्वा–त्यक्त्वा एकक:–एकाकी एव हरिणस्य पृष्ठौ धावितः ॥ ११२०॥ स हरिणो नद्यास्तटे वने तत्र 'निलुक्को'–त्ति घनवृक्षाद्याच्छादितत्वाददृश्यतां गतस्तदा नरवरो–राजा ततो मृगाच्च्युतः सन् यावत्प्रेक्षते–विलोकयति तावन्नद्या उपकण्ठे–समीपे स्थित साधुं पश्यति ॥ ११२१ ॥

तं दट्ठूण पावेणं तेण तहा पिल्लिओ मुणिवरिंदो । सहसत्ति जहा पडिओ नईजले तो पुणो तेण ॥
सजायकिंपिकरुणाभावेणं कड्ढिऊण सो मुक्को । को जाणइ जीवाणं भावपरावत्तमइविसमं ? ॥
गिहमागएण तेणं निअभावयाओ निवेइओ सहसा । सिरिमइदेवीपुरओ तीए अ निवो इमं भणिओ ॥
अन्नेसिंपि जीआण पीडाकरणं हवेइ कडुअफलं । जं पुण मुणिजणपीडाकरणं तं दारुणविवागं ॥

तं साधुं दृष्ट्वा तेन पापेन क्रूरेण राज्ञा तथा-तेन प्रकारेण कराभ्यां प्रेरितो यथा मुनिवरेन्द्रः सहसेति-अकस्मात् नदीजले पतितः तदनन्तरम् ॥ ११२२ ॥ पुनस्तेन राज्ञा सञ्जात-समुत्पन्नं किमपि करुणाभावो-दयापरिणामो यस्य स तेन तथाभूतेन सता स मुनीन्द्रः 'कड्ढिऊण' त्ति जलमध्यान्निष्कास्य नदीतटे मुक्तः, कथमेतज्जातमित्याह-जीवानां अतिविषमं भावपरावर्त्त(न)-परिणामविपर्ययं को जानाति ? अतिशयितज्ञानिनं विना ?, न कोऽपीत्यर्थः, सुगममेतत् ॥ ११२३ ॥ गृहमागतेन तेन राज्ञा सहसा-सद्यः श्रीमत्या-देव्याः पुरत-अग्रतो निजावदातः-स्वकीयनिर्मलभावो निवेदितो-ज्ञापितः, तदा तया नृप इदं-वक्ष्यमाणं भणितः, तृपायेदमुक्तमित्यर्थः ॥ ११२४ ॥ अन्येषामपि जीवानां पीडाकरणं कटुकं फलं यस्य तत् कटुकफलं भवति, यत्पुनर्मुनिजनस्य पीडाकरणं तद्दारुणो विपाको यस्य तद्दारुणविपाकं, अतिभयङ्करफलप्रदमित्यर्थः ॥ ११२५ ॥

जओ—साहूण हीलाए हाणी हासेंण रोयणं होइ। निंदाइ वहो वधो ताडणया वाहिमरणाई ॥११२६॥
मुणिमारणेण जीवाणऽणंतसंसारिआण बोहीवि। दुलहा च्चिअ होइ धुवं भणिअमिणं आगमेऽवि जओ॥
चेइअदव्वविणासे इसिघाए पवयणस्स उड्डाहे। संजइचउत्थभंगे मूलग्गी बोहिलाभस्स ॥११२८॥
तं सोऊण नरिंदो किंपि समुल्लसिअधम्मपरिणामो। पभणेइ अह पुणरवि न करिस्सं एरिसमकज्जं॥

यत उक्तं शास्त्रे, साधूनां हीलया हानिर्भवति, साधूनां हास्येन—हसनेन रोदनं भवति, साधूनां निन्दया बन्धो वधश्च भवति, साधूनां ताडनया व्याधिमरणादिः—रोगप्राणवियोगादिर्भवति ॥ ११२६ ॥ मुनिमारणेन अनन्तः संसारोऽस्त्येषामित्यनन्तसंसारिकास्तेषां जीवानां बोधि—जिनधर्मप्राप्तिरपि ध्रुवं—निश्चितं दुर्लभैव भवति, यत आगमे—सिद्धान्तेऽपि इदं भणितं—उक्तमस्ति ॥ ११२७ ॥ किमित्याह—चैत्यद्रव्यं—जिनगृहसम्बन्धि द्रव्यं तस्य विनाशे—भक्षणोपेक्षणादिना मूलतो ध्वंसे तथा ऋषिघाते—साधुमारणे तथा प्रवचनस्य—चतुर्विधसङ्घस्य उड्डाहे—कलङ्कदानादिनाऽपवादकरणे तथा संयत्याः—साध्व्याश्चतुर्थव्रतस्य—ब्रह्मचर्यस्य भङ्गे बोधिलाभस्य—अर्हद्धर्मावाप्तेर्मूलेऽग्निर्दत्तः, एतावता एतत्कर्तुः पुनः सद्धर्मलाभो दुर्लभ एवेति [आवश्यकनिर्युक्तौ] ॥११२८॥ तत् राज्ञीवचनं श्रुत्वा नरेन्द्रो—राजा प्रभणति, कीदृशो नरेन्द्रः ?—किमपि समुल्लसितो धर्मपरिणामो यस्य स तथा, किं कथयतीत्याह—अहं पुनरपि ईदृशं अकार्यं—अकृत्यं न करिष्यामि ॥ ११२९ ॥

तं दट्ठूण पावेण तेण सह पिल्लिओ मुणिवरिंदो। सहसत्ति जहा पडिओ नईजले तो पुणो तेण ॥
संजायकिंपिकरुणाभावेणं कड्ढिऊण सो मुक्को। को जाणइ जीवाणं भावपरावत्तमइविसमं ? ॥
गिहमागएण तेण नियभावयाओ निवेइओ सहसा। सिरिमइदेवीपुरओ तीए अ निवो इमं भणिओ ॥
अन्नेसिंपि जीवाणं पीडाकरणं हवेइ कडुअफलं। जं पुण मुणिजणपीडाकरणं तं दारुणविवागं ॥

तं साधु दृष्ट्वा तेन पापेन क्रूरेण राज्ञा तथा–तेन प्रकारेण कराभ्यां प्रेरितो यथा मुनिवरेन्द्र सहसेति–अकस्मात् नदीजले पतितः तदनन्तरम् ॥ ११२२ ॥ पुनस्तेन राज्ञा सञ्जात–समुत्पन्न किमपि करुणाभावो–दयापरिणामो यस्य स तेन तथाभूतेन सता स मुनीन्द्र 'कड्ढिऊण' त्ति जलमध्यान्निष्कास्य नदीतटे मुक्तः, कथमेवञ्जातमित्याह–जीवानां अतिविषमं भावपरावर्त(नं)–परिणामविपर्ययं को जानाति ? अतिशयितज्ञानिन विना ?, न कोऽपीत्यर्थः, सुगममेतत् ॥ ११२३ ॥ गृहमागतेन तेन राज्ञा सहसा–सद्यः श्रीमत्या–देव्याः पुरत–अग्रतो निजभावात्–स्वकीयनिर्मलभावो निवेदितो–ज्ञापित, तदा तया नृप इदं–वक्ष्यमाणं भणितः, नृपायेदमुक्तमित्यर्थः ॥ ११२४ ॥ अन्येषामपि जीवानां पीडाकरणं कटुकं फलं यस्य तत् कटुकफलं भवति, यत्पुनर्मुनिजनस्य पीडाकरणं तद्दारुणो विपाको यस्य तद्दारुणविपाकं, अतिभयङ्करफलप्रदमित्यर्थ ॥ ११२५ ॥

सो मुणिनाहो रन्ना तत्तो आणाविओ निआवास। नमिओ अ पूइओ खामिओ अ त निअयमवराहं॥
पुट्ठो अ सिरिमई भयवं! अन्नाणभावओ रन्ना। साहूण उवसग्ग काऊण कय महापावं ॥११३६॥
तप्पावघायणत्थं किंपि उवाय कहेह पसिऊण। जेण कएण एसो पावाओ छुट्टइ नरेसो ॥११३७॥
तो भणइ मुणिवरिंदो भद्दे! पाव कय अणेण घण। ज गुणिणो उवघाए सव्वगुणाणपि उवघाओ॥
तहवि कयदुक्कयाणवि जियाण जइ होइ भावउल्लासो। ता होइ दुक्कयाण नासो सव्वाणवि खणेण॥

ततः-तदनन्तर राज्ञा स मुनिनाथो निजं-स्वकीय आवास गृहं आनायितश्च पुनर्नतो-नमस्कृतः पूजितो वस्त्रादिना च पुनस्त निजकमपराध क्षामितं ॥ ११३५ ॥ श्रीमत्या पृष्टश्च-हे भगवन्! राज्ञाऽज्ञानभावत साधूनां उपसर्गं कृत्वा महापाप कृतं-उपार्जित ॥ ११३६ ॥ तस्य पापस्य घातनार्थं-विनाशार्थं प्रसद्य-प्रसन्नीभूय कमपि उपाय कथय, येन उपायेन कृतेन एष नरेशो-राजा पापात् छुटति ॥ ११३७ ॥ ततो मुनिवरेन्द्रो भणति-हे भद्रे! अनेन-राज्ञा घनं-सान्द्रं पापं कृतम्, कथमित्याह-यद्-यस्मात्कारणात् गुणिनो-गुणवत पुरुषस्य उपघाते-विनाशे कृते सति सर्वेषामपि गुणानां उपघातो भवति ॥ ११३८ ॥ तथापि कृत दुष्कृत-पाप यैस्ते कृतदुष्कृतास्तेषामपि जीवानां यदि भावोल्लास-शुभपरिणामविशुद्धिर्भवति तत्-तर्हि सर्वेषामपि दुष्कृतानां क्षणेन नाशो भवति ॥ ११३९ ॥

कइवयदिणेसु पुणरवि तेण गवक्ख वट्ठिएण कोवि मुणी। दिट्ठो मलमलिणतणू गोअरचरिअं परिभमंतो ॥
तत्तो सहसा वीसारिऊण तं सिरिमईइ सिक्खंपि । सो राया दुट्ठमणो निअवठे एवमाइसइ ॥
रे रे पुरिसा हुब नयर विट्टालयंतमम्हाणं। कंठे घित्तूण इमं निस्सारह नयरमज्झाओ ॥ ११३२ ॥
तेहिँ नरेहिँ तहच्चिअ कड्ढिज्जंतो पुराउ सो साहू । निअयगवक्खठिआए दिट्ठो तीए सिरिमईए ॥
तो कुविआए तीए राया निब्भच्छिओ कडुगिराए । तो सोऽवि लज्जिओ भणइ देवि मे खमसु अवराहं॥
कतिपयदिनेषु-कियद्दिवसेषु गतेषु पुनरपि गवाक्षस्थितेन तेन राज्ञा कोऽपि मुनिर्दृष्ट, कीदृशो ?-मलेन-रज प्रस्वेद-समुत्थेन मलिना तनुः-कायो यस्य स तथा, पुनः कीदृशः ?-गोचरचर्यां परिभ्रमन् ॥११३०॥ ततो मुनिदर्शनानन्तरं स राजा दुष्टं मनो यस्य स दुष्टमनाः सन् सहसा-सद्यः श्रीमत्याः शिक्षां विसार्य निजकपठान् एवं-वक्ष्यमाणप्रकारेण मादिशति-आज्ञां ददाति ॥ ११३१ ॥ रे रे सेवकाः ! अस्माकं नगरं 'विट्टालयन्त'न्ति अशुद्धं कुर्वन्त एव इमं कण्ठे गृहीत्वा द्रुत-शीघ्रं नगरमध्यात् निस्सारयत-निष्कासयत ॥ ११३२ ॥ एवं राज्ञा उक्ते सति तैर्नरैस्तथैव पुराभिष्कास्यमानः स साधुः निजगवाक्षस्थितया-स्वगवाक्षस्थया तया श्रीमत्या देव्या दृष्टः ॥११३३॥ ततः कुपितया-क्रुद्धया तया राज्या कटुगिरा-कटुकभाषया राजा निर्भर्त्सितः, ततः स राजापि लज्जितः सन् भणति-हे देवि ! ममापराधं क्षमस्व, पुनर्नैव करिष्यामीतिभावः ॥ ११३४ ॥

सो मुणिनाहो रन्ना तत्तो आणाविओ निआवासं। नमिओ अ पूइओ खामिओ य त निअयमवराहं॥
पुट्ठो अ सिरिमईए भयवं! अन्नाणभावओ रन्ना। साहूण उवसग्ग काऊण कय महापाव ॥११३६॥
तप्पावघायणत्थ किंपि उवाय कहेह पसिऊण। जेण कएण एसो पावाओ छुट्टइ नरेसो ॥११३७॥
तो भणइ मुणिवरिंदो भद्दे! पाव कय अणेण घण। ज गुणिणो उवघाए सव्वगुणाणपि उवघाओ॥
तहवि कयदुक्कयाणवि जियाण जइ होइ भावउल्लासो। ता होइ दुक्कयाण नासो सव्वाणवि खणेण॥

तत –तदनन्तर राज्ञा स मुनिनाथो निजं–स्वकीय आवास गृह आनायितश्च पुनर्नतो–नमस्कृत' पूजितो वस्त्रादिना च पुनस्त निजकमपराध क्षामित ॥ ११३५ ॥ श्रीमत्या पृष्टश्च–हे भगवन्! राज्ञाऽज्ञानभावत साधूनां उपसर्गं कृत्वा महापाप कृत–उपार्जित ॥ ११३६ ॥ तस्य पापस्य घातनार्थ–विनाशार्थ प्रसद्य–प्रसन्नीभूय कमपि उपायं कथय, येन उपायेन कृतेन एप नरेशो–राजा पापात् छुटति ॥ ११३७ ॥ ततो मुनिवरेन्द्रो भणति–हे भद्रे! अनेन–राज्ञा घन–सान्द्रं पाप कृतम्, कथ-मित्याह–यद्–यस्मात्कारणात् गुणिनो–गुणवत पुरुपस्य उपघाते–विनाशे कृते सति सर्वेपामपि गुणानां उपघातो भवति ॥ ११३८ ॥ तथापि कृत दुष्कृतं–पापं यैस्ते कृतदुष्कृतास्तेपामपि जीवानां यदि भावोल्लास –शुभपरिणामविशुद्धिर्भवति तत्–तर्हि सर्वेपामपि दुष्कृताना क्षणेन नाशो भवति ॥ ११३६ ॥

कइवयदिणेसु पुणरवि तेण गवक्ख वट्टिएण कोवि मुणी। दिट्ठो मलमलिणतणू गोअरचरिअं परिभमंतो ॥
तत्तो सहसा वीसारिऊण तं सिरिमईइ सिक्खंपि । सो राया दुट्ठमणो निअवंठे एवमाइसइ ॥
रे रे एअं हुवं नयरं विट्टालयंतमम्हाण। कंठे घित्तूण हुअं निस्सारह नयरमज्झाओ ॥ ११३२ ॥
तेहिं नरेहिं तहच्चिअ कड्ढिज्जंतो पुराउ सो साहू । निअयगवक्खठिआए दिट्ठो तीए सिरिमईए ॥
तो कुविआए तीए राया निब्भच्छिओ कडुगिराए । तो सोऽवि लज्जियो भणइ देवि ! मे खमसु अवराहं ॥

कतिपयदिनेषु–कियद्दिवसेषु गतेषु पुनरपि गवाक्षस्थितेन तेन राज्ञा कोऽपि मुनिर्दृष्टः, कीदृशो ?–मलेन–रज प्रस्वेद-समुद्भवेन मलिना तनुः–कायो यस्य स तथा, पुनः कीदृशः ?–गोचरचर्यां परिभ्रमन् ॥११३०॥ ततो मुनिदर्शनानन्तरं स राजा दुष्टं मनो यस्य स दुष्टमनाः सन् सहसा–सद्यः श्रीमत्याः शिक्षां विसार्य निजकण्ठान् एवं–वक्ष्यमाणप्रकारेण आदिशति–आज्ञां ददाति ॥ ११३१ ॥ रे रे सेवकाः ! अस्माकं नगरं 'विट्टालयन्तं' न्ति अशुद्धं कुर्वन्तं एतं द्रुम्मं कण्ठे गृहीत्वा द्रुतं–शीघ्रं नगरमध्यात् निस्सारयत–निष्कासयत ॥ ११३२ ॥ एवं राज्ञा उक्ते सति तैर्नरैस्तथैव पुरान्निष्कास्यमानः स साधुः निजगवाक्षस्थितया–स्वगवाक्षस्थया तया श्रीमत्या देव्या दृष्टः ॥११३३॥ ततः कुपितया–क्रुद्धया तया राज्या कटुगिरा–कटुक-वाचया राजा निर्भर्त्सितः, ततः स राजापि लज्जितः सन् भणति–हे देवि ! ममापराधं क्षमस्व, पुनर्नैव करिष्यामीतिभावः ॥ ११३४ ॥

ते अन्नदिणे रायाएसेण सीहनामनरवइणो । हणिऊण गामभिक्क जा वलिआ गोधण गहिउ ॥
ता पुट्ठि पत्तो सीहो बहुबलकलिओ पयडभुअदंडो । तेण कुविएण सव्वे धाडयपुरिसा हया तत्थ ॥
तेऽवि मरिऊण खत्तिअपुत्ता होऊण तरुणभावेऽवि । साहूवसग्गपावप्पसायओ कुट्ठिणो जाया ॥
जो सिरिकंतो राया पुन्नपभावेण सो तुमं जाओ । सिरिमइजीओ मयणासुंदरि एसा मुणिअतत्ता ॥
जं पुव्वपि हु धम्मुज्जमपरा तुहहिइक्कतल्लिच्छा । आसि इमा त जाया एसा तुह मूलपट्टंमि ॥

अन्यस्मिन्दिने ते सप्तशतपुरुषा राज्ञ आदेशेन–आज्ञया सिंहनाम्नो नरपत –नृपस्य एकं ग्रामं हत्वा गोधन गृहीत्वा यावत्पश्चाद्वलिता ॥ ११४५ ॥ तावद्बहुबलकलितो–बहुसैन्ययुक्तः पुनः प्रचण्डौ भुजदण्डौ यस्य स तथाभूतः सिंहो राजा तेषां पृष्ठे प्राप्तः, तेन सिंहेन कुपितेन सता तत्र प्रदेशे सर्वे धाटकपुरुषा हता –मारिता इत्यर्थ. ॥११४६॥ तेऽपि सप्तशतनृपसेवका मृत्वा क्षत्रियाणां पुत्रा भूत्वा तरुणभावेऽपि-यौवनेऽपि साधूपसर्गपापप्रसादात् कुष्ठिनो जाताः, साधूनामुपसर्गा' साधूपसर्गास्ते एव पापहेतुत्वात्पापं तस्य प्रसादात् कुष्ठोत्पत्तिरभूदित्यर्थः ॥ ११४७ ॥ यः श्रीकान्तो राजा स पुण्यप्रभावेण त्व जात , श्रीमत्या जीव एषा मदनसुंदरी जाता, कीदृशी एषा ?–ज्ञात–ज्ञात तत्त्व यया सा तथा ॥ ११४८ ॥ हु इति निश्चित इय यत्–यस्मात् कारणात् पूर्वमपि धर्मे य उद्यमः स एव परः–प्रधानः यस्या. सा धर्मोद्यमपरा, पुनस्तव यत् हित तत्र एका सा एव लिप्सा यस्याः सा एवम्भूता आसीत् तत्–तस्मात्कारणात् एषा तव मूलपट्टे जाता, मूलपट्टराज्ञी अभूदित्यर्थ. ॥ ११४९ ॥

भावस्सुल्लासकए अरिहाइपसिद्धसिद्धचक्कस्स । आराहणं मुणीहिं उवइट्ठं भव्वजीवाण ॥ ११४० ॥
ता जइ करेइ सम्मं एयस्साराहणं नरवरोऽवि । तो छुट्टइ सयलाण पावाण नत्थि संदेहो ॥११४१॥
तो सिक्खिऊण पूआतवोविहाणाइअं विहिं राया । भत्तीइ सिद्धचक्कं आराहइ सिरिमइसमेओ ॥
पुन्ने अ तवोकम्मे रन्ना महाविए अ उज्जमणे। सिरिमइसहीहिं अट्ठहिं विहिआ अणुमोअणा तस्स॥
सत्तहिं सएहिं तेहिं सेवयपुरिसेहिं तस्स नरवइणो । दट्ठूण धम्मकरणं पसंसिअं किंपि खणमित्तं ॥

भावस्य उल्लासकृते-विशुद्धिनिमित्तं अर्हदादिभिःपदैः प्रसिद्धसिद्धचक्रस्य आराधनं भव्यजीवेभ्यो मुनिभिः उपदिष्टम्॥११४०॥ तत्-तस्मात्कारणात् नरवरोऽपि-राजापि यदि सम्यक् एतस्य-श्रीसिद्धचक्रस्य आराधनं करोति तत्-तर्हि सकलेभ्य -सर्वेभ्य पापेभ्यस्त्रुटति, अत्र सन्देहो नास्ति ॥ ११४१ ॥ ततो राजा पूजायास्तपसश्च यद्विधान-करणं तदादिकं विधिं शिक्षयित्वा श्रीमत्या राज्ञ्या समेतः-सहितो भक्त्या सिद्धचक्रं आराधयति ॥११४२॥ च पुनस्तपः कर्मणि-तपःक्रियायां पूर्णे सति राज्ञा उद्यापने च मण्डिते सति अष्टभिः श्रीमत्या सखीभिस्तस्य-उद्यापनयुक्ततपसोऽनुमोदना-प्रशंसा विहिता-कृता ॥११४३॥ तैः सप्तभिः शतैः सेवकपुरुषैः तस्य नरपतेः-राज्ञो धर्मकरणं-प्रागुक्तरीत्या धर्मकार्यकरणं दृष्ट्वा क्षणमात्रं किमपि प्रशंसितम्-अस्माकं स्वामी सम्यक्कार्यं कुरुते इत्यादिका प्रशंसा कृतेत्यर्थः ॥ ११४४ ॥

हणिऊण गामभिक्क जा चलिआ गोधण गहिउ ॥
ते अन्नदिणे रायाप्पसेण सीहनामनरवइणो । तेण कुविएण सव्वे धाडयपुरिसा हया तत्थ ॥
ता पुट्ठि पत्तो सीहो बहुबलकलिओ पयंडभुअदंडो । साहूवसग्गपावप्पसायओ कुट्ठिणो जाया ॥
तेऽत्ति मरिऊण खत्तिअपुत्ता होऊण तरुणभावेऽवि । सिरिमइजीओ मयणासुंदरि एसा मुणिअतत्ता ॥
जो सिरिकंतो राया पुन्नपभावेण सो तुम जाओ । आसि इमा त जाया एसा तुह मूलपट्टंमि ॥
ज पुव्वपि हु धम्मुज्जमपरा तुहहिइक्कतल्लिच्छा ।
अन्यस्मिन्दिने ते सप्तशतपुरुषा राज्ञ आदेशेन-आज्ञया सिंहनाम्नो नरपते -नृपस्य एक ग्राम हत्वा गोधनं गृहीत्वा याव-
त्पश्चाद्वलिता ॥ ११४५ ॥ तावद्बहुबलकलितो-बहुसैन्ययुक्तः पुनः प्रचण्डो भुजदण्डो यस्य स तथाभूतः सिंहो राजा तेषां
पृष्ठे प्राप्तः, तेन सिंहेन कुपितेन सता तत्र प्रदेशे सर्वे धाटकपुरुषा हताः-मारिता इत्यर्थः ॥११४६॥ तेऽपि सप्तशतनृपसेवका
मृत्वा क्षत्रियाणां पुत्रा भूत्वा तरुणभावेऽपि-यौवनेऽपि साधूपसर्गपापप्रसादात् कुष्ठिनो जाता', साधूनामुपसर्गा' साधूपसर्गा
स्ते एव पापहेतुत्वात्पापं तस्य प्रसादात् कुष्ठोत्पत्तिरभूदित्यर्थ. ॥ ११४७ ॥ यः श्रीकान्तो राजा स पुण्यप्रभावेण त्वं जात ,
श्रीमत्या जीव एषा मदनसुंदरी जाता, कीदृशी एषा ?-मुणित-ज्ञातं तत्त्व यया सा तथा ॥ ११४८ ॥ हु इति निश्चित इय
यद्-यस्मात् कारणात् पूर्वमपि धर्मे य उद्यमः स एव परः-प्रधानः यस्या सा धर्मोद्यमपरा, पुनस्तव यत् हित तत्र एका सा एव
लिप्सा यस्याः सा एवम्भूता आसीत् तत्-तस्मात्कारणात् एषा तव मूलपट्टे जाता, मूलपट्टराज्ञी अभूदित्यर्थ' ॥ ११४९ ॥

भावस्सुद्धासकए अरिहाइपसिद्धसिद्धचक्कस्स । आराहण मुणीहिं उवइट्ठ भव्वजीवाण ॥ ११४० ॥
ता जइ करेइ सम्मं एयस्साराहणं नरवरोऽवि । तो छुट्टइ सयलाण पावाण नत्थि संदेहो ॥११४१॥
तो सिक्खिऊण पूआतवोविहाणाइअं विहिं राया । भत्तीइ सिद्धचक्कं आराहइ सिरिमईसमेओ ॥
पुन्ने अ तवोकम्मे रन्ना महाविए अ उज्जमणे। सिरिमइसहीहिं अट्ठहिं विहिआ अणुमोअणा तस्स॥
सत्तहिं सएहिं तेहिं सेवयपुरिसेहिं तस्स नरवइणो । दट्ठूण धम्मकरणं पसंसिअं किंपि खणमित्त ॥

भावस्य उल्लासकृते-विशुद्धिनिमित्त अर्हदादिभिःपदैः प्रसिद्धसिद्धचक्रस्य आराधनं भव्यजीवेभ्यो मुनिभिः उपदिष्टम्॥११४०॥
तत्-तस्मात्कारणात् नरवरोऽपि-राजापि यदि सम्यक् एतस्य-श्रीसिद्धचक्रस्य आराधन करोति तत्-तर्हि सकलेभ्य -सर्वेभ्य पापेभ्यस्छुट्यति, अत्र सन्देहो नास्ति ॥ ११४१ ॥ ततो राजा पूजायास्तपसश्च यद्विधान-करणं तदादिकं विधिं शिक्षयित्वा श्रीमत्या राज्ञ्या समेत-सहितो भक्त्या सिद्धचक्रं आराधयति ॥११४२॥ च पुनस्तपःकर्मणि-तप क्रियायां पूर्णे सति राज्ञ उद्यापने च महोत्सवे सति अष्टभि श्रीमत्या सखीभिस्तस्य-उद्यापनयुक्ततपसोऽनुमोदना-प्रशंसा विहिता-कृता ॥११४३॥
तै सप्तभिः शतैः सेवकपुरुषै तस्य नरपतेः-राज्ञो धर्मकरणं-प्रागुक्तरीत्या धर्मकार्यकरणं दृष्ट्वा क्षणमात्रं किमपि प्रशंसितम् अस्माकं स्वामी सम्यक्कार्यं कुरुते इत्यादिका प्रशंसा कृतेत्यर्थः ॥ ११४४ ॥

ते अन्नदिणे रायाएसेण सीहनामनरवइणो । हणिऊण गाममिक्कं जा वलिआ गोधणं गहिउं ॥
ता पुट्ठि पत्तो सीहो बहुबलकलिओ पयडभुअदंडो । तेण कुविएण सव्वे धाडयपुरिसा हया तत्थ ॥
तेऽवि मरिऊण खत्तिअपुत्ता होऊण तरुणभावेऽवि । साहूवसग्गपावप्पसायओ कुट्ठिणो जाया ॥
जो सिरिकंतो राया पुन्नपभावेण सो तुमं जाओ । सिरिमइजीवो मयणासुंदरि एसा मुणिअतत्ता ॥
जं पुव्वंपि हु धम्मुज्जमपरा तुहहिइक्कलच्छा । आसि इमा तं जाया एसा तुह मूलपट्टंमि ॥

अन्यस्मिन्दिने ते सप्तशतपुरुषा राज्ञ आदेशेन–आज्ञया सिंहनाम्नो नरपतेः–नृपस्य एकं ग्रामं हत्वा गोधनं गृहीत्वा यावत्पश्चाद्वलिताः ॥ ११४५ ॥ तावद्बहुबलकलितो–बहुसैन्ययुक्तः पुनः प्रकटो भुजदण्डो यस्य स तथाभूतः सिंहो राजा तेषां पृष्ठे प्राप्तः, तेन सिंहेन कुपितेन सता तत्र प्रदेशे सर्वे धाटकपुरुषा हताः–मारिता इत्यर्थः ॥११४६॥ तेऽपि सप्तशतनृपसेवका मृत्वा क्षत्रियाणां पुत्रा भूत्वा तरुणभावेऽपि–यौवनेऽपि साधूपसर्गपापप्रसादात् कुष्ठिनो जाताः, साधूनामुपसर्गाः साधूपसर्गास्ते एव पापहेतुत्वात्पापं तस्य प्रसादात् कुष्ठोत्पत्तिरभूदित्यर्थः ॥ ११४७ ॥ यः श्रीकान्तो राजा स पुण्यप्रभावेण त्वं जातः, श्रीमत्या जीव एषा मदनसुन्दरी जाता, कीदृशी एषा ?–मुणित–ज्ञातं तत्त्वं यया सा तथा ॥ ११४८ ॥ हु इति निश्चितं इयं यत्–यस्मात् कारणात् पूर्वमपि धर्मे य उद्यमः स एव परः–प्रधानः यस्याः सा धर्मोद्यमपरा, पुनस्तव यत् हितं तत्र एका सा एव लिप्सा यस्याः सा एवम्भूता आसीत् तत्–तस्मात्कारणात् एषा तव मूलपट्टे जाता, मूलपट्टराज्ञी अभूदित्यर्थः ॥ ११४९ ॥

भावस्सुल्लासकए अरिहाइपसिद्धसिद्धचक्कस्स । आराहण मुणीहिं उवइट्ठं भव्वजीवाण ॥ ११४० ॥
ता जइ करेइ सम्म एयस्साराहणं नरवरोऽवि । तो छुट्टइ सयलाण पावाण नत्थि संदेहो ॥११४१॥
तो सिक्खिऊण पूआतवोविहाणाइअ विहिं राया । भत्तीइ सिद्धचक्क आराहइ सिरिमइसमेओ ॥
पुन्ने अ तवोकम्मे रन्ना महाविए अ उज्जमणे । सिरिमइसहीहिं अट्ठहिं विहिआ अणुमोअणा तस्स॥
सत्तहिं सएहिं तेहिं सेवयपुरिसेहिं तस्स नरवइणो । दट्ठूण धम्मकरणं पसंसिअं किंपि खणमित्त ॥

भावस्य उल्लासकृते-वृद्धिनिमित्तं अर्हदादिभिः पदैः प्रसिद्धसिद्धचक्रस्य आराधनं भव्यजीवेभ्यो मुनिभिः उपदिष्टम्॥११४०॥ तत्-तस्मात्कारणात् नरवरोऽपि-राजापि यदि सम्यक् एतस्य-श्रीसिद्धचक्रस्य आराधनं करोति तत्-तर्हि सकलेभ्यः-सर्वेभ्यः पापेभ्यश्छुटति, अत्र सन्देहो नास्ति ॥ ११४१ ॥ ततो राजा पूजायास्तपसश्च यद्विधान-करणं तदादिकं विधिं शिक्षयित्वा श्रीमत्या राज्ञ्या समेतः-सहितो भक्त्या सिद्धचक्रं आराधयति ॥११४२॥ च पुनस्तपःकर्मणि-तपःक्रियायां पूर्णे सति राज्ञा उद्यापने च महिते सति अष्टाभिः श्रीमत्याः सखीभिस्तस्य-उद्यापनयुक्ततपसोऽनुमोदना-प्रशंसा विहिता-कृता ॥११४३॥ तैः सप्तभिः शतैः सेवकपुरुषैः तस्य नरपतेः-राज्ञो धर्मकरणं-प्रागुक्तरीत्या धर्मकार्यकरणं दृष्ट्वा क्षणमात्रं किमपि प्रशंसितम्-अस्माकं स्वामी सम्यक्कार्यं कुरुते इत्यादिका प्रशंसा कृतेत्यर्थः ॥ ११४४ ॥

सीहो य घायविहुरो पालित्ता मासमणसणं दिक्ख । जाओऽहमजिअसेणो बालत्ते तुज्झ रज्जहरो ॥
तेण चिअ वेरेण बद्धोऽहं राणएहिं एएहिं । पुव्वकयब्भासेण जाओ मे चरणपरिणामो ॥ ११५७ ॥
सुहपरिणामेण मए जाइं सरिऊण संजमो गहिओ । सोऽहं उप्पन्नावहिनाणो नरनाह ! इह पत्तो ॥
एवं जं जेण जहा जारिस कम्मं कयं सुहं असुहं । तं तस्स तहा तारिसमुवट्ठिअं मुणसु इत्थ भवे ॥
तं सोऊण सिरिपालनरवरो चिंतए सचित्तमि । अहह अहो केरिसयं एअं भवनाडयसरूवं ? ॥

सिंहस नृपो घातै–प्रहारैर्विधुरः–पीडितः सन् एकं मासं यावत् अनशनां–अनशनयुक्तां दीक्षां पालित्वाऽहं अजितसेनो जातोऽस्मि, कीदृशोऽहं ?–बालत्वे तव राज्यहरः ॥ ११५६ ॥ तेनैव वैरेण एतै राणाख्यैः अहं बद्धो–निगडितः, पूर्वं कृतो योऽभ्यासो–दीक्षाभ्यासस्तेन मे–मम चरणपरिणामः–चारित्रपरिणामो जातः ॥ ११५७ ॥ मया शुभपरिणामेन जातिं–पूर्वजन्म स्मृत्वा संयमो गृहीतः, हे नरनाथ !–हे राजन् ! उत्पन्नमवधिज्ञानं यस्य स तथाभूतः सोऽहं इह प्राप्तः ॥ ११५८ ॥ एवं–अमुना प्रकारेण येन प्राणिना यत् शुभं अशुभं यादृशं कर्म यथा कृतं तस्य प्राणिनस्तत्तादृशं कर्म अत्र–अस्मिन् भवे तथा–तेन प्रकारेण उपस्थितं–समीपस्थं मुण–जानीहि ॥ ११५९ ॥ श्रीपालो नाम नरवरो–राजा तन्मुनिवचनं श्रुत्वा स्वचित्ते चिन्तयति–अहह इति खेदे अहो इत्याश्चर्ये एतद्भवनाटकस्य स्वरूपं कीदृशं वर्तते ?, अतिविषममिति भावः ॥ ११६० ॥

तुमए जहा मुणीण विहिआ आसायणा तहा चेव । कुट्ठित्त जलमज्जणमवि डुवत्त च सपत्त ॥
ज च तए तीए सिरिमईइ वयणेण सिद्धचक्कस्स । आराहणा कया त मयणावयणा सुह पत्तो ॥
जो एसो वित्थारो रिद्धिविसेसस्स तुज्झ सजाओ । सो सयलोऽवि पसाओ नायव्वो सिद्धचक्कस्स ॥
सिरिमइसहीहिं जा हैं विहिआ अणुमोअणा तया तुम्ह । ताओ इमाओ जायाओ तुज्झ लहुपट्टदेवीओ॥
एआसु अट्ठमीए ससवत्तीसमुह कहियमासी । खज्जसु सप्पेण तुमति तेण कम्मेण सा दट्ठा ॥
धम्मपससाकरणेण तत्थ सत्तहिं सएहिं सुहकम्म । ज विहिअ तेण इमे गयरोगा राणया जाया ॥

त्वया यथा–येन प्रकारेण मुनीनां आशातना–विराधना विहिता–कृता तथैव–तेनैव प्रकारेण त्वया इहभवे कुष्टित्व ततो जलमज्जनं–समुद्रजले पतन च पुन डुम्बत्वमपि सम्प्राप्तम् ॥११५०॥ च पुनर्यत्त्वया तस्या श्रीमत्या वचनेन सिद्धचक्रस्याराधना कृता तन्मदनसुन्दरीवचनात् इह सुख प्राप्त ॥११५१॥ य एष तव ऋद्धिविशेषस्य विस्तार सञ्जातः स सकलोऽपि–समस्तोऽपि सिद्धचक्रस्य प्रसादः–अनुग्रहो ज्ञातव्य ॥११५२॥ याभि श्रीमत्याः सखीभिस्तदा युवयोरनुमोदना विहिता–कृता ता इमास्तव लघुपट्टदेव्यो जाता ॥ ११५३ ॥ एतासु अष्टसु मध्ये अष्टम्या राज्या प्राग्भवे स्वसपत्न्या सम्मुखं सर्पेण त्व खादयस्वेति कथितमासीत् तेन कर्मणा इह सा सर्पेण दष्टा ॥ ११५४ ॥ धर्मस्य प्रशंसाकरणेन तत्र–प्राग्भवे सप्तभि शतै सेवकैर्यत् शुभकर्म विहितं तेन शुभकर्मणा गतो रोगो येषां ते गतरोगा इमे राणकाख्या जाता ॥ ११५५ ॥

सिरिपालोऽवि हु राया भत्तीए पिअयमाहिं सजुत्तो । पुव्वुत्तविहाणेण आराहइ सिद्धवरचक्क ॥११६६
अह मयणसुंदरी भणइ नाह ! जइआ तए कया पुव्विं । सिरिसिद्धचक्कपूआ तइआ नो आसि भूरि धण॥
इण्हिं च तुम्ह एसा रज्जसिरी अत्थि वित्थरसमेआ । ता कुणह वित्थरेण नवपयपूअं जहिच्छाए ॥
त सोऊण अइगरुअभत्तिसत्तीहिं सजुओ राया । अरिहंताइपयाण करेइ आराहणा एव ॥ ११६९ ॥
नव चेईहरपडिमा जिन्नुद्धाराइ विहिविहाणेण । नाणाविहपूआहिं अरिहंताराहणा कुणई ॥११७०॥

श्रीपालोऽपि राजा प्रियतमाभि —नवराज्ञीभिः सयुक्तः—सहितो भक्त्या पूर्वोक्तविधानेन—पूर्वभणितविधिना सिद्धवरचक्र आराधयति ॥ ११६६ ॥ अथ मदनसुन्दरी नृप भणति—हे नाथ ! यदा त्वया पूर्वं श्रीसिद्धचक्रस्य पूजा कृता तदा भूरि—प्रचुर धनं नो आसीत् ॥ ११६७ ॥ इदानीं च—साम्प्रत पुनर्युष्माक एषा राज्यश्रीः—राज्यलक्ष्मीर्विस्तारेण समेता—युक्ता अस्ति, तत्—तस्मात् कारणात् यथेच्छया विस्तारेण नवपदपूजां कुरुत ॥ ११६८ ॥ तद्राज्ञीवचन श्रुत्वाऽतिगुरुके-अतिमहत्यौ ये भक्तिशक्ति (क्ती) ताभ्यां सयुत.—सहितो राजा एवं—वक्ष्यमाणप्रकारेण अर्हदादिपदाना आराधनां करोति ॥ ११६९ ॥ तथाहि—नव चैत्यगृहाणि—नवसङ्ख्यानि जिनगृहाणि नव प्रतिमाः नव जीर्णोद्धारा इत्यादिना विधिना विधानं—निर्मापण तेन, तथा नानाविधा—अनेकप्रकारा याः पूजास्ताभिरर्हत — अर्हत्पदस्याराधनां करोति ॥ ११७० ॥

पभणेइ अ मे भयव! सपइ चरणस्स नत्थि सामत्थ। तो काऊण पसायं मह उचिअं दिसह करणिज्ज॥
तो भणइ मुणिवरिंदो नरवर! जाणेसु निच्छयं एय। भोगफलकम्मवसओ इत्थ भवे नत्थि तुह चरण॥
किंतु तुम एयाइ अरिहताई नवावि सुपयाइ। आराहतो सम्म नवम सग्गपि पाविहिसि ॥११६३॥
तत्तोवि उत्तरुत्तरनरसुरसुक्खाइ अणुहवंतो अ। नवमे भवमि मुक्ख सासयसुक्ख धुव लहासि॥
त सोऊण राया साणदो निअगिहमि सपत्तो। मुणिनाहोऽवि अ तत्तो पत्तो अन्नत्थ विहरतो॥

च पुनः नृपः प्रभणति–कथयति, हे–भगवन्! सम्प्रति–अधुना मे–मम चरणस्य–चारित्रस्य सामर्थ्यं नास्ति, तत्–तस्मात्कारणात् प्रसादं कृत्वा ममोचितं–मम योग्यं करणीयं–कर्त्तव्यं दिश–कथय॥ ११६१॥ ततो मुनिवरेन्द्रो भणति–हे नरवर! एव निश्चयं जानीष्व भोगः फल येषां तानि भोगफलानि यानि कर्माणि तेषां वशतोऽत्र–अस्मिन् भवे तव चरण–चारित्र नास्ति॥ ११६२। किन्तु त्वं एतानि अर्हदादीनि नवापि सुष्ठु शोभनानि पदानि सम्यक् आराधयन् नवम स्वर्ग–मानतारूयमपि प्राप्स्यसि॥११६३॥ च पुन ततः–तस्मादपि देवलोकात् उत्तरोत्तराणि–अधिकाधिकानि नरसुरसुखानि अनुभवन्–भुञ्जानस्त्व नवमे भवे ध्रुवं–निश्चित मोक्षं लभसे–प्राप्स्यसीत्यर्थः, कीदृशं मोक्षं?–शाश्वत–नित्य सौख्य यत्र स तथा त॥ ११६४॥ तन्मुनिवचनं श्रुत्वा राजा श्रीपाल सानन्दः–आनन्दसहितः सन् निजगृहे सम्प्राप्तः, ततः–तदनन्तर मुनिनाथो–मुनीन्द्रोऽपि विहरन् अन्यत्र–अन्यस्मिन्नगरादौ प्राप्तः॥ ११६५॥

सिरिपालोऽवि हु राया भत्तीए पिअयमाहिँ सजुत्तो । पुव्वुत्तविहाणेण आराहइ सिद्धवरचक्क ॥११६६
अह मयणसुदरी भणइ नाह ! जइआ तए कया पुव्वि । सिरिसिद्धचक्कपूआ तइआ नो आसि भूरि धण॥
इण्हि च तुम्ह एसा रज्जसिरी अत्थि वित्थरसमेआ । ता कुणह वित्थरेण नवपयपूआ जहिच्छाए ॥
त सोऊण अइगरुअभत्तिसत्तीहिँ सजुओ राया । अरिहंताइपयाण करेइ आराहण एव ॥ ११६९ ॥
नव चेईहरपडिमा जिन्नुद्धाराइ विहिविहाणेण । नाणाविहपूआहिँ अरिहंताराहण कुणई ॥११७०॥

श्रीपालोऽपि राजा प्रियतमाभि —नवराज्ञीभि सयुक्तः—सहितो भक्त्या पूर्वोक्तविधानेन—पूर्वभणितविधिना सिद्धवरचक्र आराधयति ॥ १२६६ ॥ अथ मदनसुन्दरी नृप भणति—हे नाथ ! यदा त्वया पूर्वं श्रीसिद्धचक्रस्य पूजा कृता तदा भूरि—प्रचुर धनं नो आसीत् ॥ ११६७ ॥ इदानीं च—साम्प्रत पुनर्युष्माक एषा राज्यश्री —राज्यलक्ष्मीर्विस्तारेण समेता—युक्ता अस्ति, तत्—तस्मात् कारणात् यथेच्छया विस्तारेण नवपदपूजां कुरुत ॥ ११६८ ॥ तद्राज्ञीवचन श्रुत्वाऽतिगुरुके—अतिमहत्यौ ये भक्तिशक्ति (क्ती) ताभ्यां सयुत·—सहितो राजा एवं—वक्ष्यमाणप्रकारेण अर्हदादिपदाना आराधनां करोति ॥ ११६९ ॥ तथाहि—नव चैत्यगृहाणि—नवसङ्ख्यानि जिनगृहाणि नव प्रतिमाः नव जीर्णोद्धारा इत्यादिना विधिना विधानं—निर्मापण तेन, तथा नानाविधा—अनेकप्रकारा याः पूजास्ताभिरर्हत·—अर्हत्पदस्याराधनां करोति ॥ ११७० ॥

पभणेइ अ मे भयव! संपइ चरणस्स नत्थि सामत्थ। तो काऊण पसायं मह उचिअं दिसह करणिज्ज॥
तो भणइ मुणिवरिंदो नरवर! जाणेसु निच्छय एय। भोगफलकम्मवसओ इत्थ भवे नत्थि तुह चरण॥
किंतु तुम एआइ अरिहंताई नवावि सुपयाइ। आराहंतो सम्म नवम सग्गपि पाविहिसि ॥११६३॥
तत्तोवि उत्तरुत्तरनरसुरसुक्खाइ अणुहवंतो अ। नवमे भवमि मुक्खं सासयसुक्ख धुव लहसि॥
त सोऊण राया साणदो निअगिहमि संपत्तो। मुणिनाहोऽवि अ तत्तो पत्तो अन्नत्थ विहरतो॥

च पुन नृप' प्रभणति–कथयति, हे–भगवन्! सम्प्रति–अधुना मे–मम चरणस्य–चारित्रस्य सामर्थ्यं नास्ति, तत्–तस्मात्कारणात् प्रसाद कृत्वा ममोचितं–मम योग्यं करणीय–कर्तव्यं दिश–कथय ॥' ११६१॥ ततो मुनिवरेन्द्रो भणति–हे नरवर! एत निश्चयं जानीष्व भोगः फलं येषां तानि भोगफलानि यानि कर्माणि तेषां वशतोऽत्र–अस्मिन् भवे तव चरण–चारित्र नास्ति ॥ ११६२। किन्तु त्वं एतानि अर्हदादीनि नवापि सुष्ठु शोभनानि पदानि सम्यक् आराधयन् नवम सर्गं–आनतकल्पमपि प्राप्स्यसि ॥११६३॥' च पुनः तत –तस्मादपि देवलोकात् उत्तरोत्तराणि–अधिकाधिकानि नरसुरसुखानि अनुभवन्–भुञ्जानस्त्व नवमे भवे ध्रुवं–निश्चितं मोक्षं लभसे–प्राप्स्यसीत्यर्थः, कीदृशं मोक्ष ?–शाश्वत–नित्यं सौख्य यत्र स तथा त ॥ ११६४ ॥ तन्मुनिवचन श्रुत्वा राजा श्रीपालः सानन्द.–आनन्दसहितः सन् निजगृहे सम्प्राप्तः, ततः–तदनन्तर मुनिनाथो–मुनीन्द्रोऽपि विचरन् अन्यत्र–अन्यस्मिन्नगरादौ प्राप्तः ॥ ११६५ ॥

सिरिपालोऽवि हु राया भत्तीए पिअयमाहिं सजुत्तो । पुव्वुत्तविहाणेणं आराहइ सिद्धवरचक्कं ॥११६६
अह मयणसुंदरी भणइ नाह ! जइआ तए कया पुव्विं । सिरिसिद्धचक्कपूआ तइआ नो आसि भूरि धणं॥
इण्हिं च तुम्ह एसा रज्जसिरी अत्थि वित्थरसमेआ । ता कुणह वित्थरेण नवपयपूअं जहिच्छाए ॥
तं सोऊण अइगरुअभत्तिसत्तीहिं सजुओ राया । अरिहंताइपयाणं करेइ आराहणा एवं ॥ ११६९ ॥
नव चेईहरपडिमा जिन्नुद्धाराइ विहिविहाणेण । नाणाविहपूआहिं अरिहंताराहणा कुणई ॥११७०॥

श्रीपालोऽपि राजा प्रियतमाभि —नवराज्ञीभि सयुक्तः—सहितो भक्त्या पूर्वोक्तविधानेन—पूर्वभाषितविधिना सिद्धवरचक्रं आराधयति ॥ ११६६ ॥ अथ मदनसुन्दरी नृपं भणति—हे नाथ! यदा त्वया पूर्वं श्रीसिद्धचक्रस्य पूजा कृता तदा भूरि—प्रचुरं धनं नो आसीत् ॥ ११६७ ॥ इदानीं च—साम्प्रतं पुनर्युष्माकं एषा राज्यश्रीः—राज्यलक्ष्मीर्विस्तारेण समेता—युक्ता अस्ति, तत्—तस्मात् कारणात् यथेच्छया विस्तारेण नवपदपूजां कुरुत ॥ ११६८ ॥ तद्राज्ञीवचनं श्रुत्वाऽतिगुरुके—अतिमहत्यौ ये भक्तिशक्ती (क्ती) ताभ्यां सयुतः—सहितो राजा एवं—वक्ष्यमाणप्रकारेण अर्हदादिपदानां आराधनां करोति ॥ ११६९ ॥ तथाहि—नव चैत्यगृहाणि—नवसङ्ख्यानि जिनगृहाणि नव प्रतिमा नव जीर्णोद्धारा इत्यादिना विधिना विधानं—निर्मापणं तेन, तथा नानाविधा—अनेकप्रकारा याः पूजास्ताभिरर्हत — अर्हत्पदस्याराधनां करोति ॥ ११७० ॥

पभणेइ अ मे भयव ! संपइ चरणस्स नत्थि सामत्थं । तो काऊण पसायं मह उचिअं दिसह करणिज्जं ॥
तो भणइ मुणिवरिंदो नरवर ! जाणेसु निच्छयं एयं । भोगफलकम्मवसओ इत्थ भवे नत्थि तुह चरणं ॥
किंतु तुमं एयाइं अरिहंताई नवावि सुपयाइं । आराहंतो सम्मं नवमं सग्गंपि पाविहिसि ॥११६३॥
तत्तोवि उत्तरुत्तरनरसुरसुक्खाइं अणुहवंतो अ । नवमे भवंमि मुक्खं सासयसुक्खं धुवं लहसि ॥
तं सोऊण राया साणंदो निअगिहंमि संपत्तो । मुणिनाहोऽवि अ तत्तो पत्तो अन्नत्थ विहरंतो ॥

स पुनः नृपः प्रभणति–कथयति, हे–भगवन् ! सम्प्रति–अधुना मे–मम चरणस्य–चारित्रस्य सामर्थ्यं नास्ति, तत्–तस्मात्कारणात् प्रसादं कृत्वा ममोचितं–मम योग्यं करणीयं–कर्त्तव्यं दिश–कथय ॥११६१॥ ततो मुनिवरेन्द्रो भणति–हे नरवर ! एतं निश्चयं जानीष्व भोगः फलं येषां तानि भोगफलानि यानि कर्माणि तेषां वशतोऽत्र–अस्मिन् भवे तव चरणं–चारित्रं नास्ति ॥ ११६२ । किन्तु त्वं एतानि अर्हदादीनि नवापि सुष्ठु शोभनानि पदानि सम्यक् आराधयन् नवमं स्वर्गं–आनतास्यमपि प्राप्स्यसि ॥११६३॥ स पुनः ततः–तस्मादपि देवलोकात् उत्तरोत्तराणि–अधिकाधिकानि नरसुरसुखानि अनुभवन्–भुञ्जानस्त्वं नवमे भवे ध्रुवं–निश्चितं मोक्षं लभसे–प्राप्स्यसीत्यर्थः, कीदृशं मोक्षं ?–शाश्वतं–नित्यं सौख्यं यत्र स तथा तं ॥ ११६४ ॥ तन्मुनिवचनं श्रुत्वा राजा श्रीपालः सानन्दः–आनन्दसहितः सन् निजगृहे सम्प्राप्तः, ततः–तदनन्तरं मुनिनाथो–मुनीन्द्रोऽपि विचरन् अन्यत्र–अन्यस्मिन्नगरादौ प्राप्तः ॥ ११६५ ॥

सिद्धतसत्थपुत्थयकारावणरक्खणच्चणाईहिं । सज्झायभावणाइहिं नाणपयाराहणं कुणइ ॥ ११७६ ॥
वयनिअमपालणेण विरइक्कपराण भत्तिकरणेण । जइधम्मणुरागेण चारित्ताराहणं कुणइ ॥ ११७७ ॥
आससाइविरहिअ बाहिरब्भिंतर तवोकम्म । जहसत्तीइ कुणतो सुद्धतवाराहणं कुणइ ॥ ११७८ ॥
एमेयाइ उत्तमपयाइ सो दव्वभावभत्तीए । आराहतो सिरिसिद्धचक्कमच्चेइ निच्चंपि ॥ ११७९ ॥

सिद्धान्तशास्त्राणां ये पुस्तकास्तेषां कारण-निर्मापणं पुनर्यत्नतो रक्षणं तथाऽर्चन-धूपचन्दनवस्त्रादिभिः पूजन इत्यादि-स्तथा स्वाध्यायेन-वाचनादिपञ्चप्रकारेण तथा भावनाभिर्ज्ञानस्वरूपचिन्तनरूपाभिर्ज्ञानपदस्याराधनां करोति ॥ ११७६ ॥ व्रतानां-मणुव्रतानां नियमानां-मभिग्रहादीनां पालनेन तथा विरति-सावद्यव्यापारनिवृत्तिः सा एव एका परा-प्रकृष्टा येषां ते तेषां विरत्येकपराणां साध्वादीनां भक्तिकरणेन तथा यतिधर्मे-दशविधसाधुधर्मेऽनुरागेण चारित्रपदस्याराधनां करोति ॥ ११७७ ॥ आशसा-इहपरभवसुखादिवाञ्छा तया विशेषेण रहितं बाह्य उपवासादि आभ्यन्तरं च प्रायश्चित्तादि तपःकर्म यथाशक्ति-स्वशक्त्यनुसारेण कुर्वन् शुद्धतपसो-निर्मलतपस आराधनां करोति ॥ ११७८ ॥ एवं-अमुना प्रकारेण स श्रीपाल एतानि उत्तमपदानि द्रव्यभावभक्त्या आराधयन् नित्य-निरन्तरमपि श्रीसिद्धचक्रमर्चयति-पूजयति ॥ ११७९ ॥

सिद्धाणवि पडिमाण काराबणपूअणापणामेहिं । तग्गयमणझाणेण सिद्धपयाराहण कुणइ ॥११७१॥
भत्तिबहुमाणवंदणवेआवच्चाइकज्जमुज्जुत्तो । सुस्सूसणाविहिनिउणो आयरिआराहण कुणइ॥ ११७२ ॥
ठाणासणवसणाई पढतपाढंतयाण पूरतो । दुविहभत्ति कुणतो उवज्झायाराहण कुणइ ॥ ११७३ ॥
अभिगमणवंदणनमंसणेहिं असणाइवसहिदाणेहिं । वेआवच्चाईहिं अ साहुपयाराहण कुणई ॥
रहजत्ताकरणेण सुतित्थजत्ताहिं सघपूआहिं । सासणपभावणाहिं सुदसणाराहण कुणइ ॥११७५॥

सिद्धानामपि या प्रतिमा' तासां कारण-निर्मापण पूजना-अर्चना प्रणामो-नमस्कारस्तैस्तथा तद्गतेन-तेषु सिद्धेषु गतेन मनसा यत् ध्यान तेन सिद्धपदस्याराधना करोति ॥११७१॥ भक्ति'-मनसि निर्भरा प्रीतिर्बहुमानो-वाग्भक्ति पचिर्वन्दनवैयावृत्ये प्रसिद्धे इत्यादिकार्येषु युक्त-उद्यतस्तथा शुश्रूषणस्य-सेवनस्य यो विधिस्तत्र निपुणो-दक्ष एवम्भूत सन् आचार्यपदाराधनां करोति ॥११७२॥ पठतां पाठयतां च साध्वादीनां स्थानाशनवसनादि-निवासस्थानभोजनवस्त्रादि पूरयन् द्रव्यभावभेदतो द्विविधां भक्तिं कुर्वन् उपाध्यायपदाराधनां करोति ॥११७३॥ अभिगमनं-सम्मुखगमनं वन्दन-स्तुति नमस्यन-नमस्कारकरण तैस्तथा अशनादीनां वसतेश्च दानैश्च पुनर्वैयावृत्त्यादिभि साधुपदाराधनां करोति ॥११७४। रथयात्राकरणेन सुतीर्थयात्रादिभि पुन' सङ्घपूजाभिस्तथा शासनस्य प्रभावनाभि सुदर्शन-सम्यग्दर्शन तस्याराधनां करोति ॥ ११७५ ॥

सिद्धतसत्थपुत्थयकारावणरक्खणच्चणाईहिं । सज्झायभावणाइहिं नाणपयाराहणं कुणइ ॥ ११७६ ॥
वयनिअमपालणेणं विरइक्कपराण भत्तिकरणेण । जइधम्मणुरागेण चारित्ताराहणं कुणइ ॥ ११७७ ॥
आससाइविरहिअं बाहिरब्भिंतरं तवोकम्मं । जहसत्तीइ कुणंतो सुद्धतवाराहणं कुणइ ॥ ११७८ ॥
एमेयाइं उत्तमपयाइं सो दव्वभावभत्तीए । आराहंतो सिरिसिद्धचक्कमच्चेइ निच्चंपि ॥ ११७९ ॥

सिद्धान्तशास्त्राणां ये पुस्तकास्तेषां कारण-निर्मापणं पुनर्यत्नतो रक्षणं तथाऽर्चनं-धूपचन्दनवस्त्रादिभिः पूजनं इत्यादि-तथा स्वाध्यायेन-वाचनादिपञ्चप्रकारेण तथा भावनाभिर्ज्ञानस्वरूपचिन्तनरूपाभिर्ज्ञानपदस्याराधनां करोति ॥ ११७६ ॥ व्रतानां-अणुव्रतानां नियमानां-अभिग्रहादीनां पालनेन तथा विरति-सावद्यव्यापारनिवृत्तिः सा एव एका परा-प्रकृष्टा येषां ते तेषां विरत्येकपराणां साध्वादीनां भक्तिकरणेन तथा यतिधर्मे-दशविधसाधुधर्मेऽनुरागेण चारित्रपदस्याराधनां करोति ॥ ११७७ ॥ आशंसा-इहपरभवसुखादिवाञ्छा तया विशेषेण रहितं बाह्यं उपवासादि आभ्यन्तरं च प्रायश्चित्तादि तपःकर्म यथाशक्ति-स्वशक्त्यनुसारेण कुर्वन् शुद्धतपसो-निर्मलतपस आराधनां करोति ॥ ११७८ ॥ एवं-अमुना प्रकारेण स श्रीपाल एतानि उत्तमपदानि द्रव्यभावभक्त्या आराधयन् नित्यं-निरन्तरमपि श्रीसिद्धचक्रमर्चयति-पूजयति ॥ ११७९ ॥

एव सिरिपालनिवस्स सिद्धचक्कच्चण कुणंतस्स । अभपचमवरिसेहिं जा पुत्र त तवोकम्म ॥ ११८०॥
तचो रन्ना निअरज्जलच्छिविस्थारगरुअसत्तीए । गुरुभत्तीए कारिउमारद्ध तस्स उज्जमण॥ ११८१ ॥
कस्थवि विच्छिन्ने जिणहरमि काउ तिवेइअ पीढं । विच्छिपणा वरकुट्टिमधवलं नवरग-
कयचित्त ॥ ११८२ ॥
सालिपमुहेहिं धन्नेहिं पचवन्नेहिं मतपूएहिं । रइऊण सिद्धचक्क सपुन्नं चित्तचुज्जकर ॥ ११८३ ॥

एवं-अमुना प्रकारेण सिद्धचक्रस्य अर्चन-पूजन कुर्वत श्रीपालनृपस्य अर्द्धपञ्चमवर्षै-सार्द्धचतुर्भिः सवत्सरैर्यावत्तत्तप-कर्म पूर्ण-पूर्णीभूत, अर्द्ध पञ्चमं येषु तानि अर्द्धपञ्चमानि २ यानि वर्षाणि तैरिति विग्रहः ॥११८०॥ तत.-तदनन्तर राज्ञा-श्रीपालेन निजराज्यलक्ष्म्या यो विस्तारस्तेन या गुरुका-महती शक्तिस्तया पुनर्गुर्व्या-महत्या भक्त्या तस्य तपस उद्यापनं कारयितुमारब्धम् ॥ ११८१ ॥ क्वापि विस्तीर्णे जिनगृहे तिस्रो वेदिका यत्र तत्त्रिवेदिक विस्तीर्णं वरकुट्टिमेन-प्रधानबद्ध-भूम्या धवल-उज्ज्वल पुनर्नवरङ्गै-नवीनरङ्गकृद्भ्यै कृतानि चित्राणि-आलेख्यानि यत्र तत्तथाभूत पीठ कृत्वा ॥११८२॥ मन्त्रै पूतानि-पवित्राणि मन्त्रपूतानि तैः पञ्चवर्णैः शालिप्रमुखैर्धान्यै चित्तचोज्जकर सम्पूर्णं सिद्धचक्र रचयित्वेति सम्बन्ध, पश्यतां जनानां चित्ते चोज्ज-आश्चर्य करोतीति विग्रहः ॥ ११८३

तत्थ य अरिहताइसु नवसु पएसु ससप्पिखंडाइं । नालियरगोलयाइं सामन्नेण ठविज्जंति ॥११८४॥
तेण पुणो नरवइणा मयणासहिएण वरविवेएण । ताइंपि गोलयाइं विसेससहियाइं ठवियाइं ॥
जहा–अरिहंतपए धवले चंदणकप्पूरलेवसिअवन्ने । अडकक्केअणचउतीसहीरय गोलय ठविअ ॥
सिद्धपए पुण रत्ते इगतीसपवालअट्ठमाणिक्क । नवरंगघुसिणविहिअप्पलेवगुरुगोलय ठविअ ॥

तत्र–सिद्धचक्रेऽर्हदादिषु नवसु पदेषु सामान्येन सर्पिः–घृतं खण्डश्च–मधुधूलिस्ताभ्यां सहितानि भूतानि ससर्पिःखण्डानि नारिकेलफलानि स्थाप्यन्ते ॥११८४॥ तेन पुनर्नरपतिना–राज्ञा श्रीपालेन मदनसुन्दरीसहितेन तान्यपि गोलकानि विशेषवस्तुयुक्तानि स्थापितानि, कीदृशेन तेन ?–वर–प्रशस्तो विवेको यस्य स तेन ॥ ११८५ ॥ कथमित्याह—यथा धवले–धवलवर्णतया व्यवस्थापितेऽर्हत्पदे चन्दनकर्पूरयोर्लेपनेन सितः–श्वेतो वर्णो यस्य तत्तथा पुनरष्टौ कर्केतनानि–श्वेतरत्नविशेषाश्चतुस्त्रिंशच्च हीरका यस्मिंस्तत्तथाभूतं गोलकं स्थापितं, अत्रायं भावः–अष्टप्रातिहार्यापेक्षयाऽष्टौ कर्केतनानि चतुस्त्रिंशदतिशयापेक्षया तावन्तो हीरका इति ॥ ११८६ ॥ रक्ते–रक्तवर्णतया व्यवस्थापिते सिद्धपदे, पुनः एकत्रिंशत् प्रवाला–विद्रुमा यत्र तत्तथा पुनरष्टौ माणिक्यानि यत्र तत्तथा, पुनर्नवरङ्ग–नवीनरक्तत्वयुक्तं यद् घुसृण–कुङ्कुमं तेन विहितः प्रलेपः–प्रकृष्टलेपो यस्य तत् तथाभूतं गुरु–महत् गोलकं स्थापितं, अष्टकर्मक्षयोत्पन्नाष्टगुणापेक्षयाऽष्टौ माणिक्यानि एकत्रिंशद्गुणापेक्षया तावन्तः प्रवाला इति ॥ ११८७ ॥

एव सिरिपालनिवस्स सिद्धचक्कच्चण कुणतस्स । अधपचमवरिसेहिं जा पुन्न त तवोकम्म ॥ ११८०॥
तत्तो रन्ना निअरज्जलच्छिविस्थारगरुअसत्तीए । गुरुभत्तीए कारिउमारद्ध तस्स उज्जमण ॥ ११८१ ॥
कस्थवि विच्छिन्ने जिणहरमि काउ तिवेइअ पीढं । विच्छिण्ण वरकुट्टिमधवलं नवरग-
कयचित्त ॥ ११८२ ॥
सालिपमुहेहिं धन्नेहिं पचवन्नेहिं मतपूएहिं । रइऊण सिद्धचक्क सपुन्नं चित्तचुज्जकर ॥ ११८३ ॥

एवं-अमुना प्रकारेण सिद्धचक्रस्य अर्चनं-पूजनं कुर्वत श्रीपालनृपस्य अर्धपञ्चमवर्षै-सार्धचतुर्भिः संवत्सरैर्यावत्तत्तप-कर्म पूर्ण-पूर्णीभूतं, अर्धं पञ्चमं येषु तानि अर्धपञ्चमानि २ यानि वर्षाणि तैरिति विग्रह ॥११८०॥ तत-तदनन्तर राज्ञा-श्रीपालेन निजराज्यलक्ष्म्या यो विस्तारस्तेन या गुरुका-महती शक्तिस्तया पुनर्गुर्व्या-महत्या भक्त्या तस्य तपस उद्यापन कारयितुमारब्धम् ॥ ११८१ ॥ कुत्रापि विस्तीर्णे जिनगृहे तिस्रो वेदिका यत्र तत्त्रिवेदिकं विस्तीर्णं वरकुट्टिमेन-प्रधानबद्ध-भूम्या धवल-उज्ज्वल पुनर्नवरङ्गैः-नवीनरङ्गकद्रव्यैः कृतानि चित्राणि-आलेख्यानि यत्र तत्तथाभूतं पीठ कृत्वा ॥११८२॥ मन्त्रैः पूतानि-पवित्राणि मन्त्रपूतानि तैः पञ्चवर्णैः शालिप्रमुखैर्धान्यैः चित्तचोज्जकर सम्पूर्णं सिद्धचक्र रचयित्वेति सम्बन्ध, परमतां जनानां चित्ते चोज्जं-आश्चर्यं करोतीति विग्रह. ॥ ११८३

सेसेसु सिअपएसु चंदणसिअगोलए ठवइ राया । सगसट्ठिगवन्नसयरिपन्नमुत्ताहलसमेए ॥११९१॥
अन्न च नवपयाण उद्देसेण नरेसरो तत्थ । तत्तव्वन्नाइ सुमेरुमालाचीराइ मंडेइ ॥ ११९२ ॥
सोलस अणाहएसु अ गरुआइ सक्कराइ लिंगाइं । मंडावेइ नरिंदो नाणामणिरयण
चित्ताइ ॥ ११९३ ॥

शेषेषु दर्शनादिषु चतुर्षु सितपदेषु-श्वेततया व्यवस्थापितेषु पदेषु राजा श्रीपालः चन्दनेन सितानि-धवलानि गोल-कानि स्थापयति, कीदृशानि गोलकानि ?-सप्तषष्ट्या ६७ एकपञ्चाशता ५१ सप्तत्या ७० पञ्चाशता ५० च मुक्ताफलैः समे-तानि-भृतानि, अयं भावः-दर्शनादिपदेषु भेदापेक्षया क्रमेणैतावन्ति मुक्ताफलानि गोलकेषु-भृतानि, यतः सम्यग्दर्शनस्य चउसद्दहण तिलिंगमित्यादिकाः सप्तषष्टिर्भेदाः, ज्ञानस्य स्पर्शनेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहमतिज्ञानमित्यादिका ५१ भेदाः, चारित्रस्य वयसमणधम्मसंजमेत्यादिकाः सप्ततिर्भेदाः ७० तपस इत्वरानशनतप इत्यादिकाः ५० भेदाः ॥ ११९१ ॥ अन्यच्च नरेश्वरो-राजा श्रीपालो नवपदानां उद्देशेन-नवपदानि उद्दिश्य-आश्रित्येत्यर्थः, तत्र-तस्मिन्पीठे तत्तद्वर्णानि सुमेरुमाला-चीराणि मण्डयति ॥ ११९२ ॥ च पुनः षोडशसु अनाहतेषु पदेषु गुरुकाणि-महान्ति शर्करायाः-सितोपलाया लिङ्गानि नाना-बहुप्रकारैर्मणिरत्नैश्चित्राणि-विचित्राणि नरेन्द्रो-राजा श्रीपालो मण्डयति ॥ ११९३ ॥

कणयाभे सूरिपए गोमेअपंचरयणजुअं । छत्तीसकणयकुसुमं चंदणघुसिणंकियं ठविअं ॥
उज्झायपए नीले अहिलयदलनीलगोलयं ठविअं । चउरिंदनीलकलिअं मरगयपणवीसपयगजुयं ॥
साहुपए पुण सामे समयमयं पंचरायपट्टंकं । सगवीसरिट्ठमणिं भत्तीए गोलयं ठविअं ॥११९०॥

कनकं-सुवर्णं तद्वत् आभा-प्रभा यस्य तत् कनकाभं, तस्मिन् सूरिपदे-आचार्यपदे गोमेदाख्यानि यानि पञ्च रत्नानि तैर्युतं षट्त्रिंशत्कनककुसुमानि-स्वर्णपुष्पाणि यस्मिंस्तथा, पुनश्चन्दनघुसृणाभ्यां अङ्कितं-चिह्नितं ईदृशं गोलकं स्थापितं, ज्ञानादि-पञ्चाचारयुक्तत्वात् पञ्च गोमेदरत्नानि षट्त्रिंशद्गुणोपेतत्वात्तावन्ति स्वर्णपुष्पाणीति ॥ ११८८ ॥ नीले-नीलवर्णतया व्यवस्थापिते उपाध्यायपदेऽहिलता-नागवल्ली तस्या दलैः-पत्रैर्नीलं-नीलवर्णं गोलकं स्थापितम्, कीदृशं गोलकम् ?-चतुर्भिरिन्द्र-नीलैः-नीलमणिभिः कलितं-युक्तं, पुनः मरकतानां-हरिमणीनां पञ्चविंशतिरेव मध्यवर्तिपदकं तेन युतं-युक्तं, द्वादशाङ्गानुयोगादि-चतुरनुयोगयुक्तत्वाच्चत्वार इन्द्रनीलाः पञ्चविंशतिगुणयुक्तत्वात्तावन्तो मरकतमणय इति ॥ ११८९ ॥ श्यामे-श्यामवर्णतया व्यवस्थापिते साधुपदे पुनः सह मृगमदेनेति समृगमदं-कस्तूरीमिश्रमित्यर्थः, पुनः पञ्चभिः राजपट्टैः-वैराटरत्नैरङ्को-भूषा यस्य तत्तथा, यद्वा पञ्च राजपट्टा अङ्के-उत्सङ्गे मध्ये यस्य तत्तथा, पुनः सप्तविंशतिः रिष्टमणयः-श्यामरत्नविशेषा यस्मिंस्तथाभूतं गोलकं भक्त्या स्थापितम्, पञ्चमहाव्रताऽपेक्षया पञ्च राजपट्टाः सप्तविंशतिगुणाऽपेक्षया तावन्तो रिष्टमणय इति ॥ ११९० ॥

सेसेसु सिअपएसु चदणसिअगोलए ठवइ राया । सगसट्ठिगवन्नसयरिपन्नमुत्ताहलसमेए ॥११९१॥

अन्न च नवरयाण उद्देसेण नरेसरो तत्थ । तत्तव्वन्नाइ सुमेरुमालावीराइं मडेइ ॥ ११९२ ॥

सोळस अणाहएसु अ गरुआइ सक्कराइ ळिगाइं । मडावेइ नरिंदो नाणामणिरयण चित्ताइं ॥ ११९३ ॥

शेषेषु दर्शनादिषु चतुर्षु सितपदेषु–श्वेततया व्यवस्थापितेषु पदेषु राजा श्रीपालः चन्दनेन सितानि–धवलानि गोलकानि स्थापयति, कीदृशानि गोलकानि ?–सप्तषष्ट्या ६७ एकपञ्चाशता ५१ सप्तत्या ७० पञ्चाशता ५० च मुक्ताफलैः समेतानि–भृतानि, अय भाव –दर्शनादिपदेषु भेदापेक्षया क्रमेणैतावन्ति मुक्ताफलानि गोलकेषु–भृतानि, यतः सम्यग्दर्शनस्य चउसद्दहण तिलिङ्गमित्यादिकाः सप्तषष्टिर्भेदाः, ज्ञानस्य स्पर्शनेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहमतिज्ञानमित्यादिका ५१ भेदाः, चारित्रस्य पयसमणधम्मसञ्जमेत्यादिकाः सप्ततिर्भेदाः ७० तपस इत्वरानशनतप इत्यादिका ५० भेदाः ॥ ११९१ ॥ अन्यच नरेश्वरो–राजा श्रीपालो नवपदानां उद्देशेन–नवपदानि उद्दिश्य–आश्रित्येत्यर्थः, तत्र–तस्मिन्पीठे तद्वर्णानि सुमेरुमालावीराणि मण्डयति ॥ ११९२ ॥ च पुनः षोडशसु अनाहतेषु पे गुरुकाणि–महान्ति शर्करायाः–सितोपलाया लिङ्गानि नाना–बहुप्रकारैर्मणिरत्नैश्चित्राणि–विचित्राणि नरेन्द्रो–राजा श्रीपालो मण्डयति ॥ ११९३ ॥

कणयाभे सूरिपए गोल्ल गोमेअपचरयणजुअ । छत्तीसकणयकुसुम चंदणघुसिणक्तिप ठविअ ॥
उज्झायपए नीले अहिलयदलनीलगोलय ठविअ । चउवीसनीलकलिअ मरगयपणवीसरयगजुअ ॥
साहुपए पुण सामे समयमयं पचरायपट्टक । सगवीसरिट्ठमणिं भत्तीए गोलए ठविअ ॥११९०॥

कनक–सुवर्णं तद्वत् आभा–प्रभा यस्य तत् कनकाभं, तस्मिन् सूरिपदे–आचार्यपदे गोमेदाख्यानि यानि पञ्च रत्नानि तैर्युक्तं षट्त्रिंशत्कनककुसुमानि–स्वर्णपुष्पाणि यस्मिंस्तत्तथा, पुनश्चन्दनघुसृणाभ्यां चर्चित–लिप्तं ईदृशं गोलकं स्थापितं, ज्ञानादि-पञ्चाचारयुक्तत्वात् पञ्च गोमेदरत्नानि षट्त्रिंशद्गुणोपेतत्वात्तावन्ति स्वर्णपुष्पाणीति ॥ ११८८ ॥ नीले–नीलवर्णे तथा स्व-स्थापिते उपाध्यायपदेऽहिलता–नागवल्ली तस्या दलैः–पत्रैर्नीलं–नीलवर्णं गोलकं स्थापितम्, कीदृशं गोलकम् ? –चतुर्विंशति-नीलैः–नीलमणिभिः कलितं–युक्तं, पुनः मरकतानां–हरिमणीनां पञ्चविंशतिरेव मत्पर्तिपदं तेन युतं–युक्तं, द्वादशाङ्गोपाङ्ग-चतुरनुयोगयुक्तत्वाच्चत्वार इन्द्रनीलाः पञ्चविंशतिगुणयुक्तत्वात्तावन्तो मरकतमणय इति ॥ ११८९ ॥ श्यामे–श्यामवर्णे तथा स्वस्थापिते साधुपदे पुनः सह मृगमदेनेति समृगमदं–कस्तूरी लिप्तमित्यर्थः, पुनः पञ्चभिः राजपट्टैः–वैराटरत्नैरङ्कं–भूषा यस्य तत्तथा, यद्वा पञ्च राजपट्टा अङ्के–उत्सङ्गे मध्ये यस्य तत्तथा, पुनः सप्तविंशति रिष्टमणयः–श्यामरत्नविशेषा यस्मिंस्त-थाभूतं गोलकं भक्त्या स्थापितम्, पञ्चमहाव्रतोपेतत्वात् पञ्च राजपट्टाः सप्तविंशतिगुणोपेतत्वात् तावन्तो रिष्टमणय इति ॥ ११९० ॥

सेसेसु सिअपएसु चंदणसिअगोलए ठवइ राया । सगसट्ठिगवन्नसयरिपन्नमुत्ताहलसमेए ॥११९१॥
अन्न च नवपयाण उद्देसेण नरेसरो तत्थ । तत्तव्वन्नाइ सुमेरुमालाचीराइं मडेइ ॥ ११९२ ॥
सोळस अणाहएसु अ गरुआइ सक्कराइ ठिंगाइं । मडावेइ नरिंदो नाणामणिरयण
चित्ताइं ॥ ११९३ ॥

शेषेषु दर्शनादिषु चतुर्षु सितपदेषु-श्वेततया व्यवस्थापितेषु पदेषु राजा श्रीपालः चन्दनेन सितानि-धवलानि गोल-कानि स्थापयति, कीदृशानि गोलकानि ?-सप्तषष्ट्या ६७ एकपञ्चाशता ५१ सप्तत्या ७० पञ्चाशता ५० च मुक्ताफलैः समेतानि-भृतानि, अयं भावः-दर्शनादिपदेषु भेदापेक्षया क्रमेणैतावन्ति मुक्ताफलानि गोलकेषु-भृतानि, यतः सम्यग्दर्शनस्य चउसद्दहण तिलिङ्गमित्यादिकाः सप्तषष्टिर्भेदाः, ज्ञानस्य स्पर्शनेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहमतिज्ञानमित्यादिका ५१ भेदाः, चारित्रस्य वयसमणधम्मसञ्जमेत्यादिकाः सप्ततिर्भेदाः ७० तपस इत्वरानशनतप इत्यादिकाः ५० भेदाः ॥ ११६१ ॥ अन्यच्च नरेश्वरो-राजा श्रीपालो नवपदानां उद्देशेन-नवपदानि उद्दिश्य-आश्रित्येत्यर्थः, तत्र-तस्मिन्पीठे तत्तद्वर्णानि सुमेरुमाला-चीराणि मण्डयति ॥ ११६२॥ च पुनः षोडशसु अनाहतेषु च स्थलेषु गुरुकाणि-महान्ति शर्करायाः-सितोपलाया स्थिङ्गानि नाना-बहुप्रकारैर्मणिरत्नैश्चित्राणि-विचित्राणि नरेन्द्रो-राजा श्रीपालो मण्डयति ॥ ११६३ ॥

कणयाभे सूरिपए गोल गोमेअपचरयणजुअ । छत्तीसकणयकुसुम चंदणघुसिणक्किय ठविअ ॥
उज्झायपए नीले अहिलयवल्लीदलगोलय ठविअ । चउरिंदनीलकलिअ मरगयपणवीसरयगजुय ॥
साहुपए पुण सामे समयमय पंचरायपट्टक । सगवीसइरिट्ठमणिं भत्तीए गोलय ठविअ ॥११९०॥

कनक-सुवर्णं तद्वत् आभा-प्रभा यस्य तत् कनकाभम्, तस्मिन् सूरिपदे-आचार्यपदे गोमेदारूपाणि यानि पञ्च रत्नानि तैर्युक्तं षट्त्रिंशत्कनककुसुमानि-स्वर्णपुष्पाणि यस्मिंस्तद्यथा, पुनश्चन्दनघुसृणाभ्यां अङ्कित-लिप्तं ईदृशं गोलकं स्थापितम्, ज्ञानादिपञ्चाचारयुक्तत्वात् पञ्च गोमेदरत्नानि षट्त्रिंशद्गुणोपेतत्वात्तावन्ति स्वर्णपुष्पाणीति ॥ ११८८ ॥ नीले-नीलवर्णतया स्थापिते उपाध्यायपदेऽहिलता-नागवल्ली तस्या दलैः-पत्रैर्नीलं-नीलवर्णं गोलकं स्थापितम्, कीदृशं गोलकम् ? -चतुरिन्द्रनीलैः-नीलमणिभिः कलितं-युक्तं, पुनः मरकतानां-हरिमणीनां पञ्चविंशतिरेव मध्यवर्त्तिपदके तेन युतं-युक्तं, द्वादशाङ्गोपाङ्गचतुरनुयोगयुक्तत्वाच्चत्वार इन्द्रनीलाः पञ्चविंशतिगुणयुक्तत्वात्तावन्तो मरकतमणय इति ॥ ११८९ ॥ श्यामे-श्यामवर्णतया स्थापिते साधुपदे पुनः सह मृगमदेनेति समृगमद-कस्तूर्या लिप्तमित्यर्थः, पुनः पञ्चापि राजपट्टाः-वैराटरत्नैरङ्को-भूषा यस्य तद्यथा, यद्वा पञ्च राजपट्टा अङ्के-उत्सङ्गे मध्ये यस्य तद्यथा, पुनः सप्तविंशति रिष्टमणयः-श्यामरत्नविशेषा यस्मिंस्तद्यथाभूतं गोलकं भक्त्या स्थापितम्, पञ्चमहाव्रताऽपेक्षया पञ्च राजपट्टाः सप्तविंशतिगुणाऽपेक्षया तावन्तो रिष्टमणय इति ॥ ११९० ॥

सेसेसु सिअपएसु चंदणसिअगोलए ठवइ राया । सगसट्ठिगवन्नसयरिपन्नमुत्ताहलसमेए ॥११९१॥

अन्नं च नवपयाण उद्देसेणं नरेसरो तत्थ । सत्तट्ठाइ सुमेरुमालावीराइं मंडेइ ॥ ११९२ ॥

सोळस अणाहएसु अ गरुआइ सक्कराइ खिंगाइं । मंडावेइ नरिंदो नाणामणिरयण चित्ताइं ॥ ११९३ ॥

शेषेषु दर्शनादिषु चतुर्षु सितपदेषु-श्वेततया व्यवस्थापितेषु पदेषु राजा श्रीपालः चन्दनेन सितानि-धवलानि गोल-कानि स्थापयति, कीदृशानि गोलकानि ?-सप्तषष्ट्या ६७ एकपञ्चाशता ५१ सप्तत्या ७० पञ्चाशता ५० च मुक्ताफलैः समे-तानि-युतानि, अयं भावः-दर्शनादिपदेषु भेदापेक्षया क्रमेणैतावन्ति मुक्ताफलानि गोलकेषु-भृतानि, यतः सम्यग्दर्शनस्य चउसद्दहण तिलिङ्गमित्यादिकाः सप्तषष्टिर्भेदाः, ज्ञानस्य स्पर्शनेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहमतिज्ञानमित्यादिका ५१ भेदाः, चारित्रस्य ययसमणधम्मसञ्जमेत्यादिकाः सप्ततिर्भेदाः ७० तपस इत्वरानशनतप इत्यादिकाः ५० भेदाः ॥ ११९१ ॥ अन्यच्च नरेश्वरो-राजा श्रीपालो नवपदानां उद्देशेन-नवपदानि उद्दिश्य-आश्रित्येत्यर्थः, तत्र-तस्मिन्पीठे तत्तद्वर्णानि सुमेरुमाला-क्षीराधि मण्डयति ॥ ११९२ ॥ च पुनः षोडशसु अनाहतेषु च श्वेत गुरुकाणि-महान्ति शर्करायाः-सितोपलाया खिल्लानि नाना-बहुप्रकारैर्मणिरत्नैश्चित्राणि-विचित्राणि नरेन्द्रो-राजा श्रीपालो मण्डयति ॥ ११९३ ॥

छगसोलसपचसु सीइ दोसु चउसट्ठि सरसदक्खाओ । कणयकच्चोलिआइ मंडावइ
अट्ठवग्गेसु ॥ ११६४ ॥

मणिकणगनिम्मिआइं नरनाहो अट्ठ बीअपूराइं । वग्गंतर गयपढमे परमिट्ठिपयमि ठावेइ ॥

खारिक्कपुंजयाइं ठावइ अडयालवलयठाणेसु । गुरुपाउआसु अट्ठसु नाणाविहदाडिमफलाणि ॥

नारिंगाइफलाइं जयाइठाणेसु अट्ठसु ठवेइ । चत्तारि उ कोहलए चक्काहिट्ठायगपएसु ॥११६७ ॥

अष्टसु वर्गेषु एकस्मिन्प्रथमे वर्गे अवर्गाख्ये षोडश सरसद्राक्षाः ततः पञ्चसु वर्गेषु प्रत्येकं षोडश षोडश विन्यासादशीतिद्राक्षाः यवर्गशवर्गयोः—यवर्गशवर्गयोः प्रत्येकं द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशद्विन्यासात् चतुष्षष्टिं सरसद्राक्षाः कनककच्चोलिकाभिर्मण्डयति ॥ ११६४॥ नरनाथो—राजा श्रीपालो मणिकनकाभ्यां निर्मितानि—रचितानि अष्टौ बीजपूरकफलानि वर्गाणामन्तरेषु—मध्येषु गते—प्राप्ते प्रथमे—आद्ये परमेष्ठिपदे 'नमो अरिहंताणं' मित्याकारके स्थापयति ॥ ११६५ ॥ अष्टचत्वारिंशद्वलयस्थानेषु खारिकफलपुञ्जानि स्थापयति, तथा अष्टसु गुरुपादुकासु नानाविधानि—बहुप्रकाराणि दाडिमफलानि स्थापयति ॥ ११६६॥ तथाऽष्टसु जयादिस्थानेषु नारङ्गादिफलानि स्थापयति, च पुनः चक्रस्य—सिद्धचक्रस्य अधिष्ठायकपदेषु विमलस्वामिचक्रेश्वरीक्षेत्रपालादिषु चत्वारि कूष्माण्डफलानि स्थापयति ॥ ११६७॥

आसन्नसेवयाण देवीण बारस य वयगाइं । विज्जसुरिजक्खजक्खिणि चउसट्ठिपएसु पूगाइं ॥११९८॥
पीअचलीकूडाइं चत्तारि दुवारपालगपएसु । कसिणबलीकूडाइं चउवीरपएसु ठविआइं ॥ ११९९ ॥
नवनिहिपएसु कंचणकलसाइं विचित्तरयणपुन्नाइं । गहदिसिवालपएसु अ फलफुल्लाइं
सवन्नाइं ॥ १२०० ॥
इच्चाइगुरुअवित्थरसहिअं मंडाविऊणमुज्जमणं । ण्हवणूसवं नरिंदो कारावइ वित्थरविहीए ॥१२०१॥

तथा—आसन्नसेवकानां—निकटसेवाकारिकाणां द्वादशदेवीनां द्वादश च वयगानि—फलविशेषान् स्थापयति, चतुर्थोधिष्ठायकस्य द्वादशदेवीनां च नामानि न ज्ञायन्ते, तथाविधसम्प्रदायाभावात्, तथा 'विज्जसुरि' त्ति विद्यादेव्यः षोडश यक्षाश्चतुर्विंशतिः शासनसुराः यक्षिण्यश्चतुर्विंशतिरेव शासनदेव्यः एवमेतेषु चतुष्षष्टिपदेषु पूगानि—क्रमुकफलानि स्थापयति ॥ ११९८ ॥ चतुर्षु द्वारपालकपदेषु कुमुदादिषु चत्वारि पीतस्य—पीतवर्णस्य बलेः—पक्वान्नादेः कूटानि—पुञ्जानि स्थापितानि, तथा चतुर्षु वीरपदेषु—माणिभद्रादिषु कृष्णवर्णस्य बलेः—पक्वान्नादेः कूटानि स्थापितानि ॥ ११९९ ॥ नवनिधिपदेषु विचित्रैः रत्नैः पूर्णानि—भृतानि काञ्चनस्य—सुवर्णस्य कलशानि स्थापितानि, तथा ग्रहपदेषु दिक्पालपदेषु च स्वस्ववर्णानि फलपुष्पाणि स्थापितानि ॥ १२०० ॥ इत्यादिना गुरुकेण—महता विस्तारेण सहितं उद्यापनं मण्डयित्वा नरेन्द्रो—राजा श्रीपालो विस्तारविधिना स्नपनोत्सवं—स्नात्रमहोत्सवं कारयति ॥ १२०१ ॥

इगसोलसपत्तसु सीइ दोसु चउसट्ठि सरसदक्खाओ । कणयकचोलिआइ मंडावइ अट्ठवग्गेसु ॥ ११६४ ॥

मणिकणगनिम्मिआइ नरनाहो अट्ठ बीअपूराइं । वग्गंतर गयपढमे परमिट्ठिपयंमि ठावेइ ॥

खारिकपुंजयाइ ठावइ अडयालद्धिठाणेसु । गुरुपाउआसु अट्ठसु नाणाविहदाडिमफलाणि ॥

नारिंगाइफलाइं जयाइठाणेसु अट्ठसु ठवेइ । चत्तारि उ कोहलए चक्काहिट्ठायगपएसु ॥११९७ ॥

अष्टसु वर्गेषु एकस्मिन्प्रथमे वर्गे अवर्गाख्ये षोडश सरसद्राक्षाः ततः पञ्चसु वर्गेषु प्रत्येकं षोडश षोडश विन्यासादशीतिर्द्राक्षाः तयोर्द्वयोर्वर्गयोः–यवर्गशवर्गयो प्रत्येकं द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशद्विन्यासात् चतुष्षष्टिं सरसद्राक्षा कनककचोलिकाभिर्मण्डयति ॥ ११६४ ॥ नरनाथो–राजा श्रीपालो मणिकनकाभ्यां निर्मितानि–रचितानि अष्टौ बीजपूरकफलानि वर्गाणामन्तरेषु मध्येषु गते–प्राप्ते प्रथमे–आद्ये परमेष्ठिपदे 'नमो अरिहंताणं' मित्याकारके स्थापयति ॥ ११६५ ॥ अष्टचत्वारिंशल्लब्धिस्थानेषु खारिकफलपुञ्जानि स्थापयति, तथा अष्टसु गुरुपादुकासु नानाविधानि–बहुप्रकाराणि दाडिमफलानि स्थापयति ॥ ११६६ ॥ तथाऽष्टसु जयादिस्थानेषु नारङ्गादिफलानि स्थापयति, च पुनः चक्रस्य–सिद्धचक्रस्य अधिष्ठायकपदेषु विमलस्वामिचक्रेश्वरीक्षेत्रपालादिषु चत्वारि कूष्माण्डकफलानि स्थापयति ॥ ११६७ ॥

उप्पन्नसन्नाणमहोमयाण, सपाडिहेरासणसंठिआण । सद्देसणाणंदियसज्जणाणं, नमो नमो
होउ सया जिणाण ॥ १२०५ ॥

सिद्धाणमाणंदरमालयाण, नमो नमोऽणंतचउक्कयाणं । सूरीण दूरीकयकुग्गहाण, नमो नमो
सूरसमप्पभाण ॥ १२०६ ॥

तथाहि—उत्पन्नं यत्सज्ज्ञान—केवलज्ञानं तदेव महः—तेजस्तत्स्वरूपमेषामिति उत्पन्नसज्ज्ञानमहोमयास्तेभ्यः, पुनः प्रातिहार्यैः—छत्रचामरादिभिः सह वर्त्तते यत्तत्सप्रातिहार्यं ईदृशं यत् आसनं—सिंहासनं तत्र सं—सम्यक् प्रकारेण स्थितेभ्यः, पुनः सद्देशनया—सद्धर्मोपदेशेन आनंदिताः सज्जनाः—सत्पुरुषा यैस्ते तथा तेभ्यः, ईदृशेभ्यो जिनेभ्यः—अर्हद्भ्यः सदा नमो नमो भवतु, नित्यं पुनः पुनर्नमस्कारोऽस्तु इत्यर्थः। १२०५॥ आनन्दरमा—परमानन्दलक्ष्मीस्तस्या आलया—निवासास्तेभ्यः पुनरनन्तं चतुष्कं ज्ञानदर्शनसम्यक्त्वाक्षयवीर्यचतुष्टयं येषां ते तथा तेभ्यः सिद्धेभ्यो नमो नमोऽस्तु, तथा दूरीकृतः कुग्रहः—कुत्सिताभिनिवेशो यैस्ते दूरीकृतकुग्रहास्तेभ्यः पुनः सूरः—सूर्यस्तेन समा—तुल्या प्रभा—ज्योतिर्येषां ते तथा तेभ्यः सूरिभ्यः—आचार्येभ्यो नमो नमोऽस्तु ॥ १२०६ ॥

विहिआए पूआए अट्ठपयाराइ मंगलावसरे । सघेण तिलयमाला मंगलकरणं कयं रन्नो ॥१२०२॥

तओ-जो धुरि सिरि अरिहंतमूलदढपीढपइट्ठिओ । सिद्धसूरिउवज्झाय साहु चउसाहगरिट्ठिओ ॥ दंसणनाणचरित्ततवहिं पडिसाहहिं सुंदरु । तत्तक्खरसरवग्गलद्धि, गुरुपयदलडंबरु ॥ दिसिवालजक्ख-जक्खिणि-पमुहसुरकुसुमेहिं अलंकिओ । सो सिद्धचक्कगुरुकप्पतरु अम्हह मणवंछिअ दिअओ ॥१२०३॥

इच्चाइ नमुक्कारे भणिऊण नरेसरो गहीरसरं । सक्कत्थयं भणित्ता नवपयथवणं कुणइ एवं ॥१२०४॥

अष्टप्रकारायां पूजायां विहितायां-कृतायां सत्यां मङ्गलस्य अवसरे सङ्घेन राज्ञः-श्रीपालस्य तिलकमालयोः मङ्गलकरणं कृतम् ॥ १२०२ ॥ ततश्चैत्यवन्दनं करोति, तत्रादौ नमस्कारमाह-यः श्रीसिद्धचक्ररूपो गुरुः-महान् कल्पतरुः-कल्पवृक्षो धुरि-आदौ अर्हदेव मूलदृढपीठं (तत्र) प्रतिष्ठितः, कीदृशः?-यः सिद्धसूर्युपाध्यायसाधव एव चतस्रः शाखास्ताभिर्गरिष्ठः-अतिमहान्, पुनर्दर्शनज्ञानचारित्रतपोरूपाभिः प्रतिशाखाभिः सुन्दरः, पुनः तत्त्वाक्षराणि ओङ्कारादीनि स्वराः अकारादयः वर्गाः-अवर्गकवर्गादयः लब्धिपदानि अष्टचत्वारिंशत् गुरुपदानि-अर्हत्पादुकादीनि तान्येव दलानां-पत्राणां आडम्बरो यस्य स तथा पुनः दिक्पालयक्षयक्षिणीप्रमुखैः सुरकुसुमैः अलङ्कृतः-शोभितः स सिद्धचक्रगुरुकल्पतरुः अस्माकं मनोवाञ्छितं फलं ददातु ॥१२०३॥ इत्यादि नमस्कारान् भणित्वा नरेश्वरो-राजा श्रीपालो गम्भीरः । स्वरो यत्र कर्मणि तद्यथा स्यात् तथा शक्रस्तवं भणित्वा एवं-वक्ष्यमाणप्रकारेण नवपदानां स्तवनं करोति ॥ १२०४ ॥

इअ नवपयसिद्ध लद्धिविज्जासमिद्ध, पयडिअसरवग्गं ह्रींतिरेहासमग्ग । दिसिवइसुरसार
खोणिपीढावयारं, तिजयविजयचक्क सिद्धचक्क नमामि ॥ १२१० ॥

वज्जतएहिं मंगलतूरेहिं सारुण पभावंतो । साहम्मिअवच्छल्ल करेइ वरसंघपूअं च ॥ १२११ ॥

एव सो नरनाहो सहिओ ताहिं च पट्टदेवीहिं । अन्नेहिवि बहूएहिं आराहइ सिद्धवरचक्क ॥१२१२॥

अह तस्स मयणसुंदरिपमुहाहिं राणियाहिं संजाया । नव निरुवमगुणजुत्ता तिहुअणपालाइणो पुत्ता॥

इति-अमुना प्रकारेण नवपदैः सिद्धं निष्पन्नं पुनर्लब्धिभिः-लब्धिपदैः विद्याभिः-विद्यादेवीभिश्च समृद्धं-समृद्धियुक्तं, पुनः प्रकटिता-प्रकटीकृताः स्वरा वर्गाश्च यस्मिंस्तत्तथा, पुनः ह्रीं इत्यक्षरस्य समन्तात् यास्तिस्रो रेखास्ताभिः, समग्रं-सम्पूर्णं, पुनः दिक्पतिभिः-दिक्पालैः सुरैश्च-शेषसुरैः सारं-प्रधानं, पुनः क्षोणिपीठे-पृथ्वीपीठे अवतारः-अवतरणं यस्य तत्तथा, पुनस्त्रिजगतः-त्रिभुवनस्य विजये-विजयार्थं चक्रमिव त्रिजगद्विजयचक्रं, ईदृशं सिद्धचक्रं अहं नमामि॥ १२१०॥ इति श्रीसिद्धचक्रस्तव. । मङ्गलतूरैः मङ्गलवाद्यैर्वाद्यमानैः शासनं जिनमतं प्रभावयन्-उद्दीपयन् राजा श्रीपालः साधर्म्मिकवात्सल्यं च पुनर्वरां-प्रधानां सङ्घपूजां करोति ॥ १२११ ॥ एवं-अमुना प्रकारेण स नरनाथो-राजा श्रीपालस्ताभिश्च पट्टदेवीभिः सहितो अन्यैरपि बहुभिर्लोकैःसहितः सिद्धवरचक्रं आराधयति ॥१२१२॥ अथ-अनन्तरं तस्य राज्ञो मदनसुन्दरीप्रमुखाभिः राज्ञीभिर्निरुपमगुणैर्युक्तास्त्रिभुवनपालादयो नव पुत्राः सञ्जाताः ॥ १२१३ ॥

सुत्तत्थविच्छारणतप्पराणं, नमो नमो वायगकुंजराणं । साहूण संसाहिअसंजमाणं, नमो
नमो सुद्धदयादमाणं ॥ १२०७ ॥
जिणुत्ततत्ते रुइलक्खणस्स, नमो नमो निम्मलदंसणस्स । अन्नाणसंमोहतमोहरस्स, नमो
नमो नाणदिवायरस्स ॥ १२०८ ॥
आराहिआऽखंडिअसक्किअस्स, नमो नमो संजमवीरियस्स । कम्मद्दुमुम्मूलणकुंजरस्स,
नमो नमो तिव्वतवोभरस्स ॥ १२०९ ॥

सूत्रार्थयोर्विस्तारणे तत्परेभ्यः वाचका–उपाध्यायाः कुञ्जरास्ते–हस्तिन इव गच्छशोभाकारित्वात् समर्थत्वाच्च वाचककुञ्जरास्तेभ्यो नमो नमोऽस्तु, तथा स–सम्यक्प्रकारेण साधितः संयमो यैस्ते तथा तेभ्यः, पुनः दया च दमश्च दयादमौ शुद्धौ दयादमौ येषां ते तथा तेभ्यः साधुभ्यो नमो नमोऽस्तु ॥ १२०७ ॥ जिनोक्ततत्त्वे या रुचिः सा लक्षणं यस्य स तथा तस्मै निर्मलदर्शनाय–उज्ज्वलसम्यग्दर्शनाय नमो नमोऽस्तु, तथाऽज्ञानेन यः सम्मोहो–मतिभ्रमः स एव तमः–अन्धकारं तद् हरतीति अज्ञानसंमोहतमोहरस्तस्मै ज्ञानदिवाकराय–ज्ञानसूर्याय नमो नमोऽस्तु ॥ १२०८ ॥ तथा संयमे–संयमविषये वीर्यं–पराक्रमस्तस्मै नमो नमोऽस्तु, कीदृशाय संयमवीर्याय ?–आराधिताऽखण्डिता सत्क्रिया–साध्वाचाररूपा यस्मात्तत् तथा तस्मै, तथा कर्माण्येव द्रुमा–वृक्षास्तेषां यदुन्मूलनं–उत्खननं तत्र कुञ्जरो हस्ती इव कर्मद्रुमोन्मूलनकुञ्जरस्तस्मै तीव्रतपोभराय नमो नमोऽस्तु॥ १२०९ ।

इअ नवपयसिद्ध लद्धिविज्जासमिद्ध, पयडिअसरवग्ग ह्रींतिरेहासमग्ग । दिसिवइसुरसार
खोणिपीढावयारं, तिजयविजयचक्क सिद्धचक्क नमामि ॥ १२१० ॥

वज्जतएहिं मंगलतूरेहिं सासण पभावतो । साहम्मिअवच्छल्ल करेइ वरसंघपूअं च ॥ १२११ ॥

एवं सो नरनाहो सहिओ ताहिं च पट्टदेवीहिं । अन्नेहिवि बहुएहिं आराहइ सिद्धवरचक्क ॥१२१२॥

अह तस्स मयणसुंदरिपमुहाहिं राणियाहिं सजाया । नव निरुवमगुणजुत्ता तिहुअणपालाइणो पुत्ता॥

इति-अमुना प्रकारेण नवपदैः सिद्धं निष्पन्नं पुनर्लब्धिभिः-लब्धिपदैः विद्याभिः-विद्यादेवीभिश्च समृद्ध-समृद्धियुक्तं, पुनः प्रकटिता-प्रकटीकृता स्वरा वर्गाश्च यस्मिंस्तत्तथा, पुनः ह्रीं इत्यक्षरस्य समन्तात् यास्तिस्रो रेखास्ताभिः, समग्र-सम्पूर्णं, पुनः दिक्पतिभिः-दिक्पालैः सुरैश्च-शेषसुरैः सारं-प्रधानं, पुनः क्षोणिपीठे-पृथ्वीपीठे अवतारः-अवतरणं यस्य तत्तथा, पुनस्त्रिजगतः-त्रिभुवनस्य विजये-विजयार्थं चक्रमिव त्रिजगद्विजयचक्रं, ईदृशं सिद्धचक्र अहं नमामि ॥ १२१० ॥ इति श्रीसिद्धचक्रस्तवः । मङ्गलतूरैः मङ्गलवाद्यैर्घोषमानैः शासनं जिनमतं प्रभावयन्-उद्दीपयन् राजा श्रीपालः साधर्म्मिकवात्सल्यं च पुनर्वरां-प्रधानां संघपूजां करोति ॥ १२११ ॥ एवं-अमुना प्रकारेण स नरनाथो-राजा श्रीपालस्ताभिश्च पट्टदेवीभिः सहितो अन्यैरपि बहुभिर्लोकैःसहित सिद्धवरचक्रं आराधयति ॥१२१२॥ अथ-अनन्तरं तस्य राज्ञो मदनसुन्दरीप्रमुखाभिः राज्ञीभिर्निरुपमगुणैर्युक्तास्त्रिभुवनपालादयो नव पुत्राः सञ्जाताः ॥ १२१३ ॥

गयरहसहस्सनवग नव लक्खाइ च जच्चतुरयाण । पत्तीण नवकोडी तस्स नरिंदस्स रज्जमि ॥१२१४॥
एव नवनवलीलाहिं चेव सुक्खाणि अणुहवंतो सो । धम्मनिईइ पालइ रज्ज निक्कंटय निच्च ॥
रज्ज च तस्स पालयस्स सिरिपालनरवरिंदस्स । जायाइ जाव सम्म नव वाससयाइ पुन्नाइ ॥
ताव निवो त तिहुअणपाल रज्जमि ठावइत्ताण । सिरिसिद्धचक्कनवपयलीणमणो सथुणइ एव ॥
सेसतिभवेहिं मणुएहिं जेहिं विहियारिहाइठाणेहिं । अज्जिज्जइ जिणगुत्त ते अरिहते पणिवयामि ॥

तस्य श्रीपालस्य नरेन्द्रस्य-राज्ञो गजानां-हस्तिनां रथानां च प्रत्येकं सहस्रनवकमासीत्, नव सहस्राणि गजा नव सहस्रा एवैव रथाश्चासन्नित्यर्थः, च पुनः जात्यतुरगाणां-सुलक्षणाश्वानां नव लक्षाणि आसन्, पत्तीनां-पदातीनां नवकोटय आसन् ॥ १२१४॥ एवम्-अनुना प्रकारेण नवनवलीलाभिः-नवनवक्रीडाभिरेव सुखानि अनुभवन् स श्रीपालो धर्मनीत्या-धर्मन्यायेन नित्यं निष्कण्टकं राज्यं पालयति ॥१२१५॥ राज्यं पालयतस्तस्य च श्रीपालनरवरेन्द्रस्य यावन्नववर्षशतानि सम्यग् पूर्णानि जातानि ॥ १२१६ ॥ तावन्नृपः श्रीपालस्त पूर्वोक्त त्रिभुवनपाल-स्वज्येष्ठपुत्र राज्ये स्थापयित्वा श्रीसिद्धचक्रे यानि नवपदानि तेषु लीनं-लग्नं मनो यस्य स सिद्धचक्रनवपदलीनमनाः सन् एवं-वक्ष्यमाणप्रकारेण संस्तौति ॥ १२१७ ॥ शेषा -अवशिष्टास्त्रयो भवा येषां ते पुनर्विहितानि-कृतानि सेवितानीतियावत् अर्हदादिस्थानानि-विंशतिस्थानकानि यैस्ते तथा तैः, एवभूतैर्यैर्जिनगोत्रं-जिननामकर्म अर्ज्यते-उपार्ज्यते तान् अर्हतोऽहं प्रणिपतामि-नमस्करोमि ॥ १२१८ ॥

ते अरिहते पणिवयामि ॥

जे एगभवतरिया रायकुले उत्तमे अवयरति । महसुमिणसूइअगुणा ते अरिहते पणिवयामि ॥

जेर्सि जम्मामि महिम दिसाकुमारीओ सुरवरिंदा य । कुव्वति पहिट्ठमणा ते अरिहते पणिवयामि ॥१२२१॥

आजम्मपिहु जेर्सि देहे चत्तारि अइसया हुंति । लोगच्छेरयभूया ते अरिहते पणिवयामि ॥

जे तिहुनाणसमग्गा खीण नाऊण भोगफलकम्म । पडिवज्जति चरित्त ते अरिहते पणिवयामि ॥

उवउत्ता अपमत्ता सिअझाणा खवगसेणिहयमोहा । पावति केवल जे ते अरिहते पणिवयामि ॥

ये एकभवान्तरिता उत्तमे राजकुले अवतरन्ति, कीदृशा ये ?—महास्वप्नैश्चतुर्दशभिः सूचिता—ज्ञापिता गुणा येषां ते तथा तानर्हतः प्रणिपतामि—प्रणमामि ॥ १२१९ ॥ येषां जन्मनि महिमां महिमानं वा दिक्कुमार्यः पदृपञ्चाशत् सुरवरेन्द्राश्च चतुष्षष्टिः प्रहृष्ट—प्रकर्षेण हर्षितं मनो येषां ते प्रहृष्टमनसः सन्तः कुर्वन्ति, तानर्हतः प्रणिपतामीति पूर्ववत् ॥ १२२० ॥ येषां च हु इति निश्चित, येषां देहे—शरीरे आजन्मापि—जन्मत आरभ्यापि लोके आश्चर्यभूताश्चत्वारोऽतिशया भवन्ति, 'देहोऽद्भुतरूपगन्ध' इत्यादयस्तानर्हतः प्रणिपतामि ॥ १२२१ ॥ ये त्रिभिर्ज्ञानैः—मतिश्रुतावधिभिः समग्राः—सम्पूर्णाः सन्तो भोगः फलं यस्य तद्भोगफलं कर्म क्षीणं ज्ञात्वा चारित्रं प्रतिपद्यन्ते—अङ्गीकुर्वन्ति तानर्हतः प्रणिपतामि ॥ १२२२ ॥ ये उपयुक्ता-उपयोगयुताः पुनरप्रमत्ताः-प्रमादरहिताः पुनः सितं-शुक्लं ध्यानं येषां ते सितध्याना अत एव क्षपकश्रेण्या हतो मोहो यैस्ते तथा, ईदृशाः सन्तःकेवलज्ञानं प्राप्नुवन्ति, तानर्हतः प्रणिपतामि ॥ ११२३ ॥

गयरहसहस्सनवग नव लक्खाइ च जच्चतुरयाण । पत्तीण नवकोडी तस्स नरिंदस्स रज्जंमि ॥१२१४॥
एव नवनवलीलाहिं चेव सुक्खाणि अणुहवतो सो । धम्मानिईइ पालइ रज्ज निक्कटय निच्च ॥
रज्ज च तस्स पालयस्स सिरिपालनरवरिंदस्स । जायाइ जाव सम्म नव वाससयाइ पुन्नाइ ॥
ताव निवे त तिहुअणपाल रज्जंमि ठावइत्ताण । सिरिसिद्धचक्कनवपयलीणमणो सथुणइ एव ॥
सेसतिभवेहिं मणुएहिं जेहिं विहियारिहाइठाणेहिं । अज्जिज्जइ जिणगुत्त ते अरिहते पणिवयामि ॥

तस्य श्रीपालस्य नरेन्द्रस्य-राज्ञो गजानां-हस्तिनां रथानां च प्रत्येकं सहस्रनवकमासीत्, नव सहस्राणि गजा नव सहस्राण्येव रथाश्चासन्नित्यर्थः, च पुनः जात्यतुरगाणां-सुलक्षणाश्वानां नव लक्षाणि आसन्, पत्तीनां-पदातीनां नवकोटय आसन् ॥१२१४॥ एवम्-अमुना प्रकारेण नवनवलीलाभिः-नवनवक्रीडाभिरेव सुखानि अनुभवन् स श्रीपालो धर्मनीत्या-धर्मन्यायेन नित्यं निष्कण्टकं राज्यं पालयति ॥१२१५॥ राज्यं पालयतस्तस्य च श्रीपालनरवरेन्द्रस्य यावन्नववर्षशतानि सम्यग् पूर्णानि जातानि ॥ १२१६ ॥ तावन्नृपः श्रीपालस्त पूर्वोक्तं त्रिभुवनपाल-स्वज्येष्ठपुत्रं राज्ये स्थापयित्वा श्रीसिद्धचक्रे यानि नवपदानि तेषु लीनं-लग्नं मनो यस्य स सिद्धचक्रनवपदलीनमनाः सन् एवं-वक्ष्यमाणप्रकारेण संस्तौति ॥ १२१७ ॥ शेषा -अवशिष्टास्त्रयो भवा येषां ते पुनर्विहितानि-कृतानि सेवितानीतियावत् अर्हदादिस्थानानि-विंशतिस्थानकानि यैस्ते तथा तैः, एवंभूतैर्जिनगोत्रं-जिननामकर्म अर्ज्यते-उपार्ज्यते तान् अर्हतोऽहं प्रणिपतामि-नमस्कुर्वे ॥ १२१८ ॥

ते अरिहंते पणिवयामि ॥

जे एगभवतरिया रायकुले उत्तमे अवयरंति । महसुमिणसूइअगुणा ते अरिहंते पणिवयामि ॥

जेसिं जम्मंमि महिम दिसाकुमारीओ सुरवरिंदा य । कुव्वंति पहिट्ठमणा ते अरिहंते पणिवयामि ॥१२२१॥

आजम्मपिहु जेसिं देहे चत्तारि अइसया हुंति । लोगच्छेरयभूया ते अरिहंते पणिवयामि ॥

जे तिहुनाणसमग्गा खीणं नाऊण भोगफलकम्मं । पडिवज्जंति चरित्तं ते अरिहंते पणिवयामि ॥

उवउत्ता अपमत्ता सिअझाणा खवगसेणिहयमोहा । पावंति केवलं जे ते अरिहंते पणिवयामि ॥

ये एकभवान्तरिता उत्तमे राजकुले अवतरन्ति, कीदृशा ये ?—महास्वप्नैश्चतुर्दशभिः सूचिता—ज्ञापिता गुणा येषां ते तथा तानर्हतः प्रणिपतामि—प्रणमामि ॥ १२१९ ॥ येषां जन्मनि महिमां महिमानं वा दिक्कुमार्यः षट्पञ्चाशत् सुरवरेन्द्राश्च चतुष्षष्टिः प्रहृष्ट—प्रकर्षेण हर्षितं मनो येषां ते प्रहृष्टमनसः सन्तः कुर्वन्ति, तानर्हतः प्रणिपतामीति पूर्ववत् ॥ १२२० ॥ तु इति निश्चितं, येषां देहे शरीरे आजन्मापि—जन्मतः आरभ्यापि लोके आश्चर्यभूताश्चत्वारोऽतिशया भवन्ति, 'तेषां च देहोऽद्भुतरूपगन्धः' इत्यादयस्तानर्हतः प्रणिपतामि ॥ १२२१ ॥ ये त्रिभिर्ज्ञानैः—मतिश्रुतावधिभिः समग्राः—सम्पूर्णाः सन्तो भोगः फलं यस्य तद्भोगफलं कर्म क्षीणं ज्ञात्वा चारित्रं प्रतिपद्यन्ते—अङ्गीकुर्वन्ति तानर्हतः प्रणिपतामि ॥ १२२२ ॥ ये उपयुक्ता—उपयोगयुताः पुनरप्रमत्ताः—प्रमादरहिताः पुनः सितं—शुक्लं ध्यानं येषां ते सितध्याना अत एव क्षपकश्रेण्या हतो मोहो यैस्ते तथा, ईदृशाः सन्तः केवलज्ञानं प्राप्नुवन्ति, तानर्हतः प्रणिपतामि ॥ १२२३ ॥

कम्मक्खइया तह सुरकया य-जेसिं च अइसया हुति । एगारसगुणवीस ते अरिहते पणिवयामि ॥
जे अट्ठपाडिहारेहिं सोहिआ सेविया सुरिंदेहिं । विहरंति सया काल ते अरिहते पणिवयामि ॥
पणतीसगुणगिराए जे अ विबोहं कुणंति भव्वाणं । महिपीढे विहरता ते अरिहते पणिवयामि ॥
अरहंता वा सामन्नकेवली अकयकयसमुग्घाया । सेलेसीकरणेण होऊणमयोगिकेवलिणो ॥ १२२७ ॥
जे दुचरिमंमि समए दुसयरिपयडीओ तेरस अ चरमे । खविऊण सिवं पत्ता ते सिद्धा दिंतु मे सिद्धिं॥

यः पुनः येषां कर्मक्षयजाः-कर्मक्षयोत्पन्ना एकादश अतिशया भवन्ति, तथा सुरैः-देवैः कृताश्च एकोनविंशतिरतिशया भवन्ति, तानर्हतः प्रणिपतामि ॥ १२२४ ॥ ये 'अष्टप्रातिहार्यैः' अशोकवृक्षादिभिः शोभिताः, पुनः सुरेन्द्रैः सेविताः, सदाकाल विचरन्ति, तानर्हतः प्रणिपतामि ॥ १२२५ ॥ पञ्चत्रिंशद्गुणाः यस्यां सा पञ्चत्रिंशद्गुणा या गी-वाणी तया ये च भव्यानां विबोधं-विशिष्टज्ञानं कुर्वन्ति, कीदृशाः सन्तः ?-महीपीठे-पृथ्वीपीठे विचरन्तस्तानर्हत प्रणिपतामि । १२२६ ॥ अर्हन्तः-तीर्थङ्करा वा अथवा सामान्यकेवलिन अकृत कृतो वा समुद्घातः-केवलिसमुद्घातो यैस्ते तथा एवम्भूता ये योगीन्द्राः शैलेशी-करणेन-आत्मप्रदेशस्थिरीकरणरूपेण अयोगिकेवलिनो भूत्वा ॥ १२२७ ॥ द्विचरमे-आयु क्षयसमयात् प्राक्तने समये द्वासप्तति ७२ प्रकृतीर्नामप्रभृतिकर्मोत्तरप्रकृतीः क्षपयित्वा यः पुनश्चरमे समये त्रयोदश प्रकृतीः क्षपयित्वा शिव-मोक्ष प्राप्ताः, ते सिद्धा मे-मह्यं सिद्धिं ददतु ॥ १२२८ ॥

चरमगतिभागोणावगाहणा जे अ एगसमयंमि । संपत्ता लोगग्ग ते सिद्धा दिंतु मे सिद्धिं ॥१२२९॥
पुव्वपओग असंगा बंधणछेया सहावतो वावि । जेसिं उड्डा हु गई ते सिद्धा दिंतु मे सिद्धिं ॥
ईसीपब्भाराए उवरिं खलु जोयणंमि लोगंते । जेसिं ठिई पसिद्धा ते सिद्धा दिंतु मे सिद्धिं ॥१२३१॥
जे अ अणंता अपुणब्भवा य असरीरया अणाबाहा । दंसणनाणुवउत्ता ते सिद्धा दिंतु मे सिद्धिं ॥

चरमा-अन्तिमा अङ्गस्य-शरीरस्य त्रिभागेन ऊनावगाहना-देहमानं येषां ते तथा, ये च ईदृशाः सन्तः एकस्मिन्समये लोकाग्रं सम्प्राप्तास्ते सिद्धा मे सिद्धिं ददतु ॥ १२२९ ॥ पूर्वप्रयोगतो धनुर्मुक्तबाणवत्, तथाऽसङ्गात्-निःसङ्गतया कर्ममलापगमेन अलाबुद्रव्यवत्, तथा बन्धनच्छेदात्-कर्मबन्धनच्छेदनेन एरण्डफलवत्, तथा स्वभावतो वापि धूमवत्, येषां ऊर्ध्वा गतिः प्रवर्त्तते ते सिद्धा मे सिद्धिं ददतु ॥ १२३० ॥ ईषत्प्राग्भारायाः-सिद्धिशिलाया उपरि खलु-निश्चयेन एकस्मिन् योजने लोकान्तोऽस्ति, तत्र येषां स्थितिः-अवस्थानं प्रसिद्धमस्ति ते सिद्धा मे सिद्धिं ददतु ॥ १२३१ ॥ चः पुनः येऽनन्ताः, पुनरपुनर्भवाः-न विद्यते पुनर्भवो येषां ते तथा, पुनरशरीरका-न विद्यते शरीरं येषां ते, तथा पुनरनाबाधा-न विद्यते आबाधा-पीडा येषां ते तथा, पुनर्दर्शनं च ज्ञानं च दर्शनज्ञाने तयोरुपयुक्ता दर्शनज्ञानोपयुक्ताः, येषां प्रथमसमये ज्ञानोपयोगो द्वितीयसमये दर्शनोपयोगोऽस्ति, ते सिद्धा मे सिद्धिं ददतु ॥ १२३२ ॥

जेऽणतगुणा विगुणा इगतीसगुणा अ अहव अट्ठगुणा । सिद्धाणंतचउक्का ते सिद्धा दिंतु मे सिद्धिं॥
जह नगरगुणे मिच्छो जाणतोऽवि हु कहेउमसमत्थो । तह जेसिं गुणे नाणी ते सिद्धा दिंतु मे सिद्धिं॥
जे य अणंतमणुत्तरमणोवमं सासय सयाणंद । सिद्धिसुह संपत्ता ते सिद्धा दिंतु मे सिद्धिं ॥
जे पंचविहायार आयरमाणा सया पयासंति । लोयाणणुग्गहत्थ ते आयरिए नमसामि ॥१२३६॥

ये सिद्धा अनन्तगुणा–अनन्ता ज्ञानादयो येषु ते तथा, पुनर्विगुणा–विगता वर्णादयो गुणा येभ्यस्ते तथा, च पुनरेकत्रिंशत् संस्थानवर्णादिप्रतिषेधरूपा एव गुणा येषु ते तथा, अथवाऽष्टगुणा–अष्टकर्मक्षयसमुद्भवा अष्टौ गुणा येषु ते तथा, पुन सिद्धं–निष्पन्नम् अनन्तचतुष्कं प्रागुक्तलक्षणं येषां ते तथा, ते सिद्धा मे सिद्धिं ददतु ॥ १२३३ ॥ यथा–म्लेच्छो नगर गुणान्–प्रासादनिवासमधुररसभोजनादीन् जानन्नपि अन्येषां म्लेच्छानां पुरस्तात् कथयितुं असमर्थः–समर्थो न भवति, तथा-तेन प्रकारेण येषां सिद्धानां गुणान् जानन्नपि ज्ञानी कथयितुं न समर्थो भवति, ते सिद्धा मे सिद्धिं ददतु ॥ १२३४ ॥ ये च सिद्धिसुखं–मुक्तिसुखं सम्प्राप्तास्ते सिद्धा मे–मह्यं सिद्धिं ददतु, कीदृशं सिद्धिसुखम् ?–' अनन्त ' न विद्यते अन्तो–नाशो यस्य तत्तथा, पुनः ' अनुत्तरं ' न विद्यते उत्तरम्–उत्कृष्टं यस्मात्तत्तथा, पुनः अनुपमं–न विद्यते उपमा यस्य तत्तथा, पुनः 'सदानन्दं' सदा–सर्वस्मिन्काले आनन्दो यत्र तत्तथा ॥ १२३५ ॥ ये ज्ञानादिपञ्चविधाचारम् आचरन्तो लोकानामनुग्रहार्थं सदा प्रकाशयन्ति–प्रकटीकुर्वन्ति तान् आचार्यान् अहं नमस्यामि–नमस्करोमि ॥ १२३६ ॥

देसकुलजाइरूवाइएहिँ बहुगुणगणेहिँ सजुत्ता । जे हुंति जुगे पवरा ते आयरिए नमंसामि ॥
जे निच्चमप्पमत्ता विगहविरत्ता कसायपरिचत्ता । धम्मोवएससत्ता ते आयरिए नमसामि ॥१२३८॥
जे सारणवारणचोयणाहिँ पडिचोयणाहिँ निच्चपि । सारंति निय गच्छं ते आयरिए नमसामि ॥
जे मुणियसुत्तसारा परोवयारिक्कतप्परा दिंति । तत्तोवएसदाणं ते आयरिए नमसामि ॥ १२४० ॥

ये देशकुलजातिरूपादिकैर्बहुभिर्गुणानां गणैः—समूहैः संयुक्ताः—सहिताः सन्तः युगे प्रवरा–मुख्या भवन्ति, तानाचार्यान्
अहं नमस्यामि ॥ १२३७ ॥ ये नित्यम् अप्रमत्ताः—प्रमादरहिताः, पुनः विकथा–राजकथादिकास्ताभ्यो विरक्ता, पुन
परित्यक्ता कषायाः—क्रोधादयो यैस्ते तथा, पुनर्धर्मोपदेशे सक्ता–लग्नाः यद्वा शक्ताः—समर्थास्तानाचार्यान्नमस्यामि
॥ १२३८ ॥ ये आचार्याः स्मारणावारणाचोदनादिभिः पुनः प्रतिचोदनादिभिर्नित्यमपि निज गच्छ सारयन्ति, तत्र
विस्मृतस्य स्मारण स्मारणा अशुद्ध पठतो वारणं वारणा, अध्ययनाद्यर्थं प्रेरणं चोदना, कठोरवचनैः प्रेरण प्रतिचोदना,
इत्थं स्मारणादिभिर्ये स्वगच्छस्य रक्षणं कुर्वन्ति तानाचार्यान्नमस्यामि ॥ १२३९ ॥ मुणितो–ज्ञातः सूत्राणां सारो यैस्ते
तथा, अत एव परोपकारे एवैकस्मिन् तत्पराः सन्तो ये तत्त्वोपदेशदानं ददति, तानाचार्यान्नमस्यामि ॥ १२४० ॥

जेऽणतगुणा विगुणा इगतीसगुणा अ अहव अट्ठगुणा । सिद्धाणतचउक्का ते सिद्धा दिंतु मे सिद्धिं॥
जह नगरगुणे मिच्छो जाणतोऽवि हु कहेउमसमत्थो । तह जेसिं गुणे नाणी ते सिद्धा दिंतु मे सिद्धिं॥
जे अ अणतमणुत्तरमणोवमं सासय सयाणद । सिद्धिसुह सपत्ता ते सिद्धा दिंतु मे सिद्धिं ॥
जे पचविहायार आयरमाणा सया पयासंति । लोयाणणुग्गहत्थं ते आयरिए नमसामि ॥१२३६॥

ये सिद्धा अनन्तगुणा-अनन्ता ज्ञानादयो येषु ते तथा, पुनर्विगुणा-विगता वर्णादयो गुणा येभ्यस्ते तथा, च पुनरेकत्रिंशत् संस्थानवर्णादिप्रतिषेधरूपा एव गुणा येषु ते तथा, अथवाऽष्टगुणा-अष्टकर्मक्षयसमुद्भवा अष्टौ गुणा येषु ते तथा, पुनः सिद्धं-निष्पन्नम् अनन्तचतुष्कं प्रागुक्तलक्षणं येषां ते तथा, ते सिद्धा मे सिद्धिं ददतु ॥ १२३३ ॥ यथा-म्लेच्छो नगरगुणान्-प्रासादनिवासमधुररसभोजनादीन् जानन्नपि अन्येषां म्लेच्छानां पुरस्तात् कथयितुं असमर्थ -समर्थो न भवति, तथा-तेन प्रकारेण येषां सिद्धानां गुणान् जानन्नपि ज्ञानी कथयितु न समर्थो भवति, ते सिद्धा मे सिद्धिं ददतु ॥ १२३४ ॥ ये च सिद्धिसुखं-मुक्तिसुखं सम्प्राप्तास्ते सिद्धा मे-मह्यं सिद्धिं ददतु, कीदृशं सिद्धिसुखम् ?-' अनंत ' न विद्यते अन्तो-नाशो यस्य तत्तथा, पुनः ' अनुत्तर ' न विद्यते उत्तरम्-उत्कृष्टं यस्मात्तत्तथा, पुनः अनुपम-न विद्यते उपमा यस्य तत्तथा, पुनः 'सदानन्द' सदा-सर्वस्मिन्काले आनन्दो यत्र तत्तथा ॥ १२३५ ॥ ये ज्ञानादिपञ्चविधाचारम् आचरन्तो लोकानामनुग्रहार्थं सदा प्रकाशयन्ति-प्रकटीकुर्वन्ति तान् आचार्यान् अहं नमस्यामि-नमस्करोमि ॥ १२३६ ॥

देसकुलजाइरूवाइएहिँ बहुगुणगणेहिँ सजुत्ता । जे हुंति जुगे पवरा ते आयरिए नमंसामि ॥
जे निच्चमप्पमत्ता विगहविरत्ता कसायपरिचत्ता । धम्मोवएससत्ता ते आयरिए नमसामि ॥१२३८॥
जे सारणवारणचोयणाहिँ पडिचोयणाहिँ निच्चपि । सारंति नियं गच्छ ते आयरिए नमसामि ॥
जे मुणियसुत्तसारा परोवयारिक्कतप्परा दिंति । तत्तोवएसदाण ते आयरिए नमसामि ॥ १२४० ॥

ये देशकुलजातिरूपादिकैर्बहुभिर्गुणानां गणैः–समूहैः संयुक्ताः–सहिताः सन्तः युगे प्रवरा–मुख्या भवन्ति, तानाचार्यान्
अहं नमस्यामि ॥ १२३७ ॥ ये नित्यम् अप्रमत्ताः–प्रमादरहिताः, पुनः विकथा–राजकथादिकास्ताभ्यो विरक्ता, पुन
परित्यक्ता कषायाः–क्रोधादयो यैस्ते तथा, पुनर्धर्मोपदेशे सक्ता–लग्नाः यद्वा शक्ताः–समर्थास्तानाचार्यान्नमस्यामि
॥ १२३८ ॥ ये आचार्याः स्मारणावारणाचोदनादिभिः पुनः प्रतिचोदनादिभिर्नित्यमपि निज गच्छ सारयन्ति, तत्र
विस्मृतस्य स्मारण स्मारणा अशुद्ध पठतो वारण वारणा, अध्ययनाद्यर्थं प्रेरणं चोदना, कठोरवचनैः प्रेरणं प्रतिचोदना,
इत्थ स्मारणादिभिर्ये स्वगच्छस्य रक्षण कुर्वन्ति तानाचार्यान्नमस्यामि ॥ १२३९ ॥ मुणितो–ज्ञातः सूत्राणां सारो यैस्ते
तथा, अत एव परोपकारे एवैकस्मिन् तत्पराः सन्तो ये तत्त्वोपदेशदान ददति, तानाचार्यान्नमस्यामि ॥ १२४० ॥

अस्थमिए जिणसूरे केवलिचंदेऽवि जे पईवुव्व । पयडंति इह पयत्थे ते आयरिए नमसामि ॥ १२४१ ॥
जे पावभरक्कंते निवडते भवमहधकूवम्मि । नित्थारयंति जीए ते आयरिए नमसामि ॥ १२४२ ॥
जे मायतायबंधवपमुहेहिंतोऽवि इत्थ जीवाण । साहंति हिअं कज्जं ते आयरिए नमसामि ॥
जे बहुलद्धिसमिद्धा साइसया सासणं पभावंति । रायसमा निच्चिंता ते आयरिए नमसामि ॥

जिन–अर्हन्नेव सूरः–सूर्यस्तस्मिन् 'अस्तमिते' अस्तं गते सति पुनः केवली–सामान्यकेवली स एव चन्द्रस्तस्मिन्नपि अस्तमिते सति प्रदीप इव ये इह–लोके पदार्थान् प्रकटयन्ति–प्रकटीकुर्वन्ति, तानाचार्यान्नमस्यामि ॥ १२४१ ॥ पापस्य यो भरः–अतिशयस्तेन आक्रान्तान् अत एव भवः–संसार एव यो महानन्धकूपस्तस्मिन् निपततो जीवान् ये निस्तारयन्ति तानाचार्यान्नमस्यामि ॥ १२४२ ॥ अत्र–अस्मिन्संसारे ये आचार्या जीवानां मातृतातबान्धवप्रमुखेभ्यो–जननीजनकभ्रात्रादिभ्योऽपि अधिकं कार्यं साधयन्ति, तानाचार्यान्नमस्यामि ॥ १२४३ ॥ बहुभिर्लब्धिभिः समृद्धाः–समृद्धिमन्तः, अत एव सह अतिशयैर्वर्तन्ते इति सातिशयाः सन्तो ये शासनं–जिनमतं प्रभावयन्ति–दीपयन्ति, कीदृशाः ?–ये राजसमा–नृपतुल्याः, अत एव निर्गता चिन्ता येभ्यस्ते निश्चिन्तास्तानाचार्यान्नमस्यामि ॥ १२४४ ॥

जे बारसंगसज्झायपारगा धारगा तयत्थाण । तदुभयवित्थाररया तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥१२४५॥
पाहाणसमाणेऽवि हु कुणंति जे सुत्तधारया सीसे । सयलजणपूयणिज्जे तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥
मोहाहिदट्ठनट्ठप्पनाणजीवाण चेयणं दिंति । जे केऽवि नरिंदा इव तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥
अन्नाणवाहिविहुराण पाणिण सुअरसायणं सारं । जे दिंति महाविज्जा तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥
गुणवणभंजणमणगयदमणंकुससरिसनाणदाणं जे । दिंति सया भवियाण तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥

ये द्वादशाङ्गस्वाध्यायस्य पारगाः—पारगामिनः पुनः तदर्थानां—द्वादशाङ्ग्या अर्थानां धारकाः, पुनः तदुभयस्य—सूत्रार्थरूपस्य विस्तारे रता—रक्तास्तानुपाध्यायानहं ध्यायामि ॥ १२४५ ॥ ये गुरवो हु—इति निश्चितं पाषाणसमानान्—प्रस्तरतुल्यानपि शिष्यान् सूत्रधारया—सूत्ररूपतीक्ष्णशस्त्रधारया सकलजनानां—सर्वलोकानां पूजनीयान् कुर्वन्ति, तानुपाध्यायानहं ध्यायामि ॥ १२४६ ॥ मोह एव अहिः—सर्पस्तेन दष्टा, अत एव नष्टमात्मज्ञानं येषां ते नष्टात्मज्ञाना, एवम्भूता ये जीवास्तेभ्यो ये केऽपि गुरवः चेतनां—चैतन्यं ददति, के इव ?—नरेन्द्रा इव—विषवैद्या इव, तानुपाध्यायानहं ध्यायामि ॥ १२४७ ॥ अज्ञानमेव व्याधिः—रोगस्तेन विधुराः—पीडितास्तेभ्यः प्राणिभ्यः सारं—प्रधानं श्रुतमेव रसायनं—महारोगनाशौषधं ये महावैद्या इव गुरवो ददति तानुपाध्यायानहं ध्यायामि ॥ १२४८ ॥ गुणा एव वनानि तानि भञ्जन्तीति गुणवनभञ्जना ये मदा—जातिमदादयोऽष्टौ त एव गजा—हस्तिनस्तेषां दमने—वशीकरणे अङ्कुशसदृशं यद् ज्ञानं तस्य दानं ये गुरवो भव्येभ्यः सदा ददति तानुपाध्यायान् अहं ध्यायामि ॥ १२४९ ॥

अत्थमिए जिणसूरे केवलिचंदेऽवि जे पईवुव्व । पयडंति इह पयत्थे ते आयरिए नमसामि ॥ १२४१ ॥
जे पावभरक्कंते निवडंते भवमहुधकूवामि । नित्थारयंति जीए ते आयरिए नमसामि ॥ १२४२ ॥
जे मायतायबांधवपमुहेहिंतोऽवि इत्थ जीवाणं । साहंति हिअं कज्जं ते आयरिए नमसामि ॥
जे बहुलद्धिसमिद्धा साइसया सासणं पभावंति । रायसमा निच्चिंता ते आयरिए नमसामि ॥

जिन—अर्हंस्तु सूरः—सूर्यस्तस्मिन् 'अस्तमिते' अस्तं गते सति पुन केवली—सामान्यकेवली स एव चन्द्रस्तस्मिन्नपि अस्तमिते सति प्रदीप इव ये इह—लोके पदार्थान् प्रकटयन्ति—प्रकटीकुर्वन्ति, तानाचार्यान्नमस्यामि ॥ १२४१ ॥ पापस्य यो भरः—अतिशयस्तेन आक्रान्तान् अत एव भवः—संसार एव यो महान् कूपस्तस्मिन् निपततो जीवान् ये निस्तारयन्ति तानाचार्यान्नमस्यामि ॥ १२४२ ॥ अत्र—अस्मिन्संसारे ये आचार्या जीवानां मातृतातबान्धवप्रमुखेभ्यो—जननीजनकभ्रात्रादिभ्योऽपि अधिकं कार्यं साधयन्ति, तानाचार्यान्नमस्यामि ॥ १२४३ ॥ बहुभिर्लब्धिभि समृद्धाः—समृद्धिमन्तः, अत एव सह अतिशयैर्वर्तन्ते इति सातिशयाः सन्तो ये शासनं—जिनमतं प्रभावयन्ति—दीपयन्ति, कीदृशा ?—ये राजसमा—नृपतुल्याः, अत एव निर्गता चिन्ता येभ्यस्ते निश्चिन्तास्तानाचार्यान्नमस्यामि ॥ १२४४ ॥

जे दसणनाणचरित्तरूवरयणत्तएण इक्केण । साहंति मुक्खमग्ग ते सव्वे साहुणो वंदे ॥ १२५४ ॥

गयदुविहदुट्ठझाणा जे झाइअधम्मसुक्कझाणा य । सिक्खति दुविह सिक्ख ते सव्वे साहुणो वंदे ॥

गुत्तित्तएण गुत्ता तिसल्लरहिया तिगारवविमुक्का । जे पालयति तिपइ ते सव्वे साहुणो वंदे ॥

चउविहविगहविरत्ता जे चउविहचउकसायपरिचत्ता । चउहा दिसंति धम्मं ते सव्वे साहुणो वंदे॥

ये दर्शनज्ञानचारित्ररूपरत्नत्रयेण मोक्षमार्गं साधयन्ति, कीदृशेन दर्शन० त्रयेण ?–' एकेन ' एकीभावं गतेन–सम्मिलितेनेत्यर्थः, त्रयाणामेकत्व विना मोक्षमार्गो न सिद्ध्यतीतिभाव., तान् सर्वान् साधून् अह वन्दे ॥ १२५४ ॥ गते द्विविधे–द्विप्रकारे दुष्टध्याने–आर्तरौद्राख्ये येभ्यस्ते गतद्विविधदुष्टध्यानाः, च पुनः ध्याते धर्मशुक्लध्याने यैस्ते तथाभूता सन्तो ये द्विविधशिक्षां–ग्रहणासेवनारूपां शिक्षन्ते, तान् सर्वान् साधून् वन्दे ॥ १२५५ ॥ गुप्तित्रयेण–मनोवाक्कायगुप्तिलक्षणेन गुप्ता गुप्तिमन्तः पुनस्त्रिभिः शल्यैः–मायाशल्यादिभिः रहिता–वर्जितास्तथा त्रिभिर्गौरवैः–ऋद्धिगौरवादिभिर्विमुक्ताः सन्तो ये त्रिपदीं–ज्ञानदर्शनचारित्ररूपां पालयन्ति, तान् सर्वान् साधूनह वन्दे ॥ १२५६ ॥ चतुर्विधाभ्य–चतुष्प्रकाराभ्यः विकथाभ्यो–राजकथादिभ्यो विरक्ताः, पुनः चतुर्विधा–अनन्तानुबन्ध्यादिभेदाच्चतुष्प्रकारा ये चत्वारः कषायाः–क्रोधादयस्ते परित्यक्ता यैस्ते तथा, ईदृशाः सन्तो ये दानादिभेदाच्चतुर्धा–चतुर्भिः प्रकारैर्धर्मं दिशन्ति–प्ररूपयन्ति, तान् सर्वान् साधूनह वन्दे ॥ १२५७ ॥

दिणमासजीवियताइं सेसदाणाइ मुणिउ जे नाणं। मुत्तिंत दिंति सया तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥॥
मत्तागंधे लोयाण लोयणे जे पसत्थसत्थमुहा । उग्घाडयति सम्म तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥१२५१॥
वावन्नवयणचदणरसेण जे लोयपावतावाइं । उवसामयति सहसा तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥१२५२॥
जे रायकुमरतुल्ला गणतत्तिपरा अ सूरिपयजुग्गा । वायंति सीसवग्ग तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥१२५३॥

शेषदानानि दिनमासजीवितान्तानि 'मुषित्वा' ज्ञात्वा ये गुरव सदा मुक्त्यन्त ज्ञान ददति, तान् उपाध्यायानह ध्यायामि, दिन च मासश्च जीवित च—दिनमासजीवितानि तेषु अन्तो येषां तानि शेपदानानि सन्ति इति ज्ञात्वा मुक्तौ अन्तो यस्य तत् मुक्त्यन्तं ज्ञानं—श्रुतज्ञानदान ये ददति तानह ध्यायामीतिभाव. ॥ १२५० ॥ ये गुरवोऽज्ञानेन च न्धानि(नां) लोकानां लोचनानि—नेत्राणि प्रशस्तशास्त्रमुखात् लोचनपक्षे प्रशस्तशस्त्रमुखात् सम्यक् उद्घाटयन्ति, तानुपाध्यायान् अह ध्यायामि ॥ १२५१ ॥ व्यापन्नवचनान्येव चन्दनरस तेन ये गुरवः सहसा—अकस्मात् लोकानां पापतापान् उपशामयन्ति, तानुपाध्यायानह ध्यायामि ॥ १२५२ ॥ ये राजकुमारतुल्याः, च पुन गणतप्तिपरा—गणसमाधानकरणतत्पराः तथा सूरिपदस्य—आचार्यपदस्य योग्याः शिष्यवर्गं वाचयन्ति—शिष्यवर्गाय वाचनां ददति, तानुपाध्यायानह ध्यायामि ॥ १२५३ ॥

जे दसणनाणचरित्तरूवरयणत्तएण इक्केण । साहंति मुक्खमग्ग ते सव्वे साहुणो वंदे ॥ १२५४ ॥
गयदुविहदुट्ठझाणा जे झाइअधम्मसुक्कझाणा य । सिक्खति दुविह सिक्ख ते सव्वे साहुणो वदे ॥
गुत्तित्तएण गुत्ता तिसल्लरहिया तिगारवविमुक्का । जे पालयति तिपइ ते सव्वे साहुणो वदे ॥
चउविहविगहविरत्ता जे चउविहचउकसायपरिचत्ता । चउहा दिसंति धम्मं ते सव्वे साहुणो वदे॥

ये दर्शनज्ञानचारित्ररूपरत्नत्रयेण मोक्षमार्गं साधयन्ति, कीदृशेन दर्शन० त्रयेण ?–' एकेन ' एकीभावं गतेन–सम्मिलितेनेत्यर्थः, त्रयाणामेकत्वं विना मोक्षमार्गो न सिध्यतीतिभाव., तान् सर्वान् साधून् अह वन्दे ॥ १२५४ ॥ गते द्विविधे–द्विप्रकारे दुष्टध्याने–आर्त्तरौद्राख्ये येभ्यस्ते गतद्विविधदुष्टध्याना , च पुनः ध्याते धर्म्यशुक्लध्याने यैस्ते तथाभूता सन्ता ये द्विविधशिक्षा–ग्रहणासेवनारूपां शिक्षन्ते, तान् सर्वान् साधून् वन्दे ॥ १२५५ ॥ गुप्तित्रयेण–मनोवाक्कायगुप्तिलक्षणेन गुप्ता गुप्तिमन्तः पुनस्त्रिभिः शल्यैः–मायाशल्यादिभि रहिता–वर्जितास्तथा त्रिभिर्गौरवैः–ऋद्धिगौरवादिभिर्विमुक्ताः सन्तो ये त्रिपदीं–ज्ञानदर्शनचारित्ररूपां पालयन्ति, तान् सर्वान् साधूनह वन्दे ॥ १२५६ ॥ चतुर्विधाभ्य –चतुष्प्रकाराभ्यः विकथाभ्यो–राजकथादिभ्यो विरक्ताः, पुनः चतुर्विधा–अनन्तानुबन्ध्यादिभेदाच्चतुष्प्रकारा ये चत्वारः कषाया–क्रोधादयस्ते परित्यक्ता यैस्ते तथा, ईदृशा सन्तो ये दानादिभेदाच्चतुर्द्धा–चतुर्भि. प्रकारैर्धर्मं दिशन्ति–प्ररूपयन्ति, तान् सर्वान् साधूनह वन्दे ॥ १२५७ ॥

दिणमासजीवियताइ सेसदाणाइ मुणिउ जे नाण । मुचिंत दिंति सया तेऽहं झापमि उज्झाए ।।।
अन्नाणंधे लोयाण लोयणे जे पसत्थसत्थमुहा । उग्घाडयंति सम्म तेऽहं झापमि उज्झाए ।।१२५१।।
पावत्तवघणचंदणरसेण जे लोयपावतावाइ । उवसामयंति सहसा तेऽहं झापमि उज्झाए ।।१२५२।।
जे रायकुमरतुल्ला गणतत्तिपरा अ सूरिपयजुग्गा । वायंति सीसवग्ग तेऽहं झापमि उज्झाए ।।१२५३।।

शेषदानानि दिनमासजीवितान्तानि 'मुषित्वा' ज्ञात्वा ये गुरवः सदा मुक्तपन्त ज्ञान ददति, तान् उपाध्यायानहं ध्यायामि, दिनं च मासश्च जीवितं च—दिनमासजीवितानि तेषु अन्तो येषां तानि शेषदानानि सन्ति इति ज्ञात्वा मुक्तो अन्तो यस्य तत् मुक्तपन्त ज्ञान—श्रुतज्ञानदान ये ददति तानहं ध्यायामीतिभाव ।। १२५० ।। ये गुरवोऽज्ञानेन अन्धानि(नां) लोकानां लोचनानि—नेत्राणि प्रशस्तशास्त्रमुखात् लोचनपदे प्रशस्तशस्त्रमुखात् सम्यग् उद्घाटयन्ति, तानुपाध्यायान् अहं ध्यायामि ।। १२५१ ।। तापत्रयाशादग्धा एव चन्दनरसेन ये गुरवः सहसा—अकस्मात् लोकानां पापतापान् उपशामयन्ति, तानुपाध्यायानहं ध्यायामि ।। १२५२ ।। ये राजकुमारतुल्याः, च पुनः गणतप्तिपरा—गणसमाधानकरणतत्पराः तथा सूरिपदस्य—आचार्यपदस्य योग्याः शिष्यवर्गं वाचयन्ति—शिष्यवर्गाय वाचनां ददति, तानुपाध्यायानहं ध्यायामि ।। १२५३ ।।

जे दसणनाणचरित्तरूवरयणत्तएण इक्केण । साहंति मुक्खमग्ग ते सव्वे साहुणो वंदे ॥ १२५४ ॥
गयदुविहदुट्ठझाणा जे झाइअधम्मसुक्कझाणा य । सिक्खति दुविह सिक्ख ते सव्वे साहुणो वंदे ॥
गुत्तित्तएण गुत्ता तिसल्लरहिया तिगारवविमुक्का । जे पालयति तिपइ ते सव्वे साहुणो वंदे ॥
चउविहविगहविरत्ता जे चउविहचउकसायपरिचत्ता । चउहा दिसंति धम्मं ते सव्वे साहुणो वंदे॥

ये दर्शनज्ञानचारित्ररूपरत्नत्रयेण मोक्षमार्गं साधयन्ति, कीदृशेन दर्शन० त्रयेण ?–' एकेन ' एकीभाव गतेन–सम्मिलितेनेत्यर्थः, त्रयाणामेकत्व विना मोक्षमार्गो न सिद्ध्यतीतिभावः, तान् सर्वान् साधून् अह वन्दे ॥ १२५४ ॥ गते द्विविधे–द्विप्रकारे दुष्टध्याने–आर्तरौद्राख्ये येभ्यस्ते गतद्विविधदुष्टध्यानाः, च पुनः ध्याते धर्म्मशुक्लध्याने यैस्ते तथाभूता सन्ता ये द्विविधशिक्षां–ग्रहणासेवनारूपां शिक्षन्ते, तान् सर्वान् साधून् वन्दे ॥ १२५५ ॥ गुप्तित्रयेण–मनोवाक्कायगुप्तिलक्षणेन गुप्ता–गुप्तिमन्तः पुनस्त्रिभिः शल्यैः मायाशल्यादिभिः रहिता–वर्जितास्तथा त्रिभिर्गौरवैः–ऋद्धिगौरवादिभिर्विप्रमुक्ताः सन्तो ये त्रिपदीं–ज्ञानदर्शनचारित्ररूपां पालयन्ति, तान् सर्वान् साधूनहं वन्दे ॥ १२५६ ॥ चतुर्विधाभ्य –चतुष्प्रकाराभ्य. विकथाभ्यो–राजकथादिभ्यो विरक्ताः, पुनः चतुर्विधा–अनन्तानुबन्ध्यादिभेदाच्चतुष्प्रकारा ये चत्वारः कषायाः–क्रोधादयस्ते परित्यक्ता यैस्ते तथा, ईदृशाः सन्तो ये दानादिभेदाच्चतुर्धा–चतुर्भिः प्रकारैर्धर्मं दिशन्ति–प्ररूपयन्ति, तान् सर्वान् साधूनह वन्दे ॥ १२५७ ॥

दिणमासजीवियताइ सेसदाणाइ मुणिउ जे नाणं । मुत्तिंत दिंति सया तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥१२५०॥
अन्नाणंधे लोयाण लोयणे जे पसत्थसत्थमुहा । उग्घाडयंति सम्मं तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥१२५१॥
पावत्तवयणचंदणरसेण जे लोयपावतावाइं । उवसामयंति सहसा तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥१२५२॥
जे रायकुमरतुल्ला गणतत्तिपरा अ सूरिपयजुग्गा । वायंति सीसवग्गं तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥१२५३॥

शेषदानानि दिनमासजीवितान्तानि 'मुणित्वा' ज्ञात्वा ये गुरवः सदा मुक्तमन्तं ज्ञानं ददति, तान् उपाध्यायानहं ध्यायामि, दिनं च मासश्च जीवितं च-दिनमासजीवितानि तेषु अन्तो येषां तानि शेषदानानि सन्ति इति ज्ञात्वा मुक्तो अन्तो यस्य तत् मुक्तमन्तं ज्ञानं-श्रुतज्ञानदानं ये ददति तानहं ध्यायामीतिभावः ॥ १२५० ॥ ये गुरवो ज्ञानेन अन्धानि(नां) लोकानां लोचनानि-नेत्राणि प्रशस्तशास्त्रमुखात् लोचनपथे प्रशस्तशास्त्रमुखात् सम्यक् उद्घाटयन्ति, तानुपाध्यायान् अहं ध्यायामि ॥ १२५१ ॥ पापत्राणवचना एव चन्दनरसः तेन ये गुरवः सहसा-अकस्मात् लोकानां पापतापान् उपशामयन्ति, तानुपाध्यायानहं ध्यायामि ॥ १२५२ ॥ ये राजकुमारतुल्याः, च पुनः गणतप्तिपरा-गणसमाधानकरणतत्पराः तथा सूरिपदस्य-आचार्यपदस्य योग्याः शिष्यवर्गं वाचयन्ति-शिष्यवर्गाय वाचनां ददति, तानुपाध्यायानहं ध्यायामि ॥ १२५३ ॥

जे दसणनाणचरित्तरूवरयणत्तएण इक्केण । साहंति मुक्खमग्ग ते सव्वे साहुणो वंदे ॥ १२५४ ॥
गयदुविहदुट्ठझाणा जे झाइअधम्मसुक्कझाणा य । सिक्खंति दुविह सिक्ख ते सव्वे साहुणो वंदे ॥
गुत्तित्तएण गुत्ता तिसल्लरहिया तिगारवविमुक्का । जे पालयंति तिपइ ते सव्वे साहुणो वंदे ॥
चउविहविगहविरत्ता जे चउविहचउकसायपरिचत्ता । चउहा दिसंति धम्मं ते सव्वे साहुणो वंदे॥

ये दर्शनज्ञानचारित्ररूपरत्नत्रयेण मोक्षमार्गं साधयन्ति, कीदृशेन दर्शन० त्रयेण ?–' एकेन ' एकीभाव गतेन–सम्मिलितेनेत्यर्थः, त्रयाणामेकत्व विना मोक्षमार्गो न सिद्ध्यतीतिभावः, तान् सर्वान् साधून् अह वन्दे ॥ १२५४ ॥ गते द्विविधे–द्विप्रकारे दुष्टध्याने–आर्तरौद्राख्ये येभ्यस्ते गतद्विविधदुष्टध्यानाः, च पुनः ध्याते धर्मशुक्लध्याने यैस्ते तथाभूता सन्तो ये द्विविधशिक्षां–ग्रहणासेवनारूपां शिक्षन्ते, तान् सर्वान् साधून् वन्दे ॥ १२५५ ॥ गुप्तित्रयेण–मनोवाकायगुप्तिलक्षणेन गुप्ता–गुप्तिमन्तः पुनस्त्रिभिः शल्यैः–मायाशल्यादिभि रहिता–वर्जितास्तथा त्रिभिर्गौरवैः–ऋद्धिगौरवादिभिर्विमुक्ताः सन्तो ये त्रिपदीं–ज्ञानदर्शनचारित्ररूपां पालयन्ति, तान् सर्वान् साधूनह वन्दे ॥ १२५६ ॥ चतुर्विधाभ्य -चतुष्प्रकाराभ्यः विकथाभ्यो–राजकथादिभ्यो विरक्ताः, पुनः चतुर्विधा–अनन्तानुबन्ध्यादिभेदाच्चतुष्प्रकारा ये चत्वारः कषायाः–क्रोधादयस्ते परित्यक्ता यैस्ते तथा, ईदृशाः सन्तो ये दानादिभेदाच्चतुर्द्धा–चतुर्भिः प्रकारैर्धर्मं दिशन्ति–प्ररूपयन्ति, तान् सर्वान् साधूनह वन्दे ॥ १२५७ ॥

दिणमासजीवियताइ सेसदाणाइ मुणिउ जे नाण । मुत्तित दिंति सया तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥।
अन्नाणंधे लोयाण लोयणे जे पसत्थसत्थमुहा । उग्घाडयंति सम्मं तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥१२५१॥
तावन्नवण्णचंदणरसेण जे लोयपावतावाइं । उवसामयंति सहसा तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥१२५२॥
जे रायकुमरतुल्ला गणतत्तिपरा अ सूरिपयजुग्गा । वायंति सीसवग्गं तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥१२५३॥

शेषदानानि दिनमासजीवितान्तानि 'मुणित्वा' ज्ञात्वा ये गुरव सदा मुक्त्यन्तं ज्ञानं ददति, तान् उपाध्यायानहं ध्यायामि, दिनं च मासश्च जीवितं च–दिनमासजीवितानि तेषु अन्तो येषां तानि शेषदानानि सन्ति इति ज्ञात्वा मुक्तौ अन्तो यस्य तत् मुक्त्यन्तं ज्ञानं–श्रुतज्ञानदानं ये ददति तानहं ध्यायामीतिभावः ॥ १२५० ॥ ये गुरवोऽज्ञानेन म्लानानि(नां) लोकानां लोचनानि–नेत्राणि प्रशस्तशास्त्रमुखात् लोचनपक्षे प्रशस्तशस्त्रमुखात् सम्यग् उद्घाटयन्ति, तानुपाध्यायान् अहं ध्यायामि ॥ १२५१ ॥ तापशामकवर्णा एव चन्दनरसः तेन ये गुरवः सहसा–अकस्मात् लोकानां पापतापान् उपशामयन्ति, तानुपाध्यायानहं ध्यायामि ॥ १२५२ ॥ ये राजकुमारतुल्याः, च पुनः गणतप्तिपरा–गणसमाधानकरणतत्पराः तथा सूरिपदस्य–आचार्यपदस्य योग्याः शिष्यवर्गं वाचयन्ति–शिष्यवर्गाय वाचनां ददति, तानुपाध्यायानहं ध्यायामि ॥ १२५३ ॥

जे दसणनाणचरित्तरूवरयणत्तएण इक्केण । साहंति मुक्खमग्ग ते सव्वे साहुणो वंदे ॥ १२५४ ॥
गयदुविहदुट्ठझाणा जे झाइअधम्मसुक्कझाणा य । सिक्खति दुविह सिक्ख ते सव्वे साहुणो वदे ॥
गुत्तित्तएण गुत्ता तिसल्लरहिया तिगारवविमुक्का । जे पालयति तिपइ ते सव्वे साहुणो वदे ॥
चउविहविगहविरत्ता जे चउविहचउकसायपरिचत्ता । चउहा दिसति धम्मं ते सव्वे साहुणो वदे॥

ये दर्शनज्ञानचारित्ररूपरत्नत्रयेण मोक्षमार्गं साधयन्ति, कीदृशेन दर्शन० त्रयेण ?–' एकेन ' एकीभाव गतेन–सम्मिलितेनेत्यर्थः, त्रयाणामेकत्व विना मोक्षमार्गो न सिध्यतीतिभावः, तान् सर्वान् साधून् अह वन्दे ॥ १२५४ ॥ गते द्विविधे–द्विप्रकारे दुष्टध्याने–आर्तरौद्राख्ये येभ्यस्ते गतद्विविधदुष्टध्यानाः, च पुनः ध्याते धर्म्यशुक्लध्याने यैस्ते तथाभूता सन्ता ये द्विविधशिक्षां–ग्रहणासेवनारूपां शिक्षन्ते, तान् सर्वान् साधून् वन्दे ॥ १२५५ ॥ गुप्तित्रयेण–मनोवाक्कायगुप्तिलक्षणेन गुप्ता–गुप्तिमन्तः पुनस्त्रिभिः शल्यैः–मायाशल्यादिभि रहिता–वर्जितास्तथा त्रिभिर्गौरवैः–ऋद्धिगौरवादिभिर्विमुक्ताः सन्तो ये त्रिपदीं–ज्ञानदर्शनचारित्ररूपां पालयन्ति, तान् सर्वान् साधूनहं वन्दे ॥ १२५६ ॥ चतुर्विधाभ्य -चतुष्प्रकाराभ्य. विकथाभ्यो–राजकथादिभ्यो विरक्ताः, पुनः चतुर्विधा–अनन्तानुबन्ध्यादिभेदाच्चतुष्प्रकारा ये चत्वारः कषायाः–क्रोधादयस्ते परित्यक्ता यैस्ते तथा, ईदृशाः सन्तो ये दानादिभेदाच्चतुर्द्धा–चतुर्भिः प्रकारैर्धर्मं दिशन्ति–प्ररूपयन्ति, तान् सर्वान् साधूनह वन्दे ॥ १२५७ ॥

दिणमासजीवियताइ सेसदाणाइ मुणिउ जे नाणं । मुणिंत दिंति सया तेऽहं झापमि उज्झाए ॥१२५०॥
अन्नाणंधे लोयाण लोयणे जे पसत्थसत्थमुहा । उग्घाडयंति सम्मं तेऽहं झापमि उज्झाए ॥१२५१॥
बावन्नवण्णचंदणरसेण जे लोयपावतावाइं । उवसामयंति सहसा तेऽहं झापमि उज्झाए ॥१२५२॥
जे रायकुमरतुल्ला गणतत्तिपरा अ सूरिपयजुग्गा । वायंति सीसवग्गं तेऽहं झापमि उज्झाए ॥१२५३॥

शेषदानानि दिनमासजीवितान्तानि 'मुणित्वा' ज्ञात्वा ये गुरवः सदा मुणन्तस्त ज्ञानं ददति, तान् उपाध्यायानहं ध्यायामि, दिनं च मासश्च जीवितं च-दिनमासजीवितानि तेषु अन्तो येषां तानि शेषदानानि सन्ति इति ज्ञात्वा मुक्तो अन्तो यस्य तत् मुक्तान्तं ज्ञानं-श्रुतज्ञानदानं ये ददति तानहं ध्यायामीतिभावः ॥ १२५० ॥ ये गुरवोऽज्ञानेन अन्धानि(नां) लोकानां लोचनानि-नेत्राणि प्रशस्तशास्त्रमुखात् लोचनपक्षे प्रशस्तशस्त्रमुखात् सम्यक् उद्घाटयन्ति, तानुपाध्यायान् अहं ध्यायामि ॥ १२५१ ॥ द्वापञ्चाशद्वर्णा एव चन्दनरसः तेन ये गुरवः सहसा-अकस्मात् लोकानां पापतापान् उपशामयन्ति, तानुपाध्यायानहं ध्यायामि ॥ १२५२ ॥ ये राजकुमारतुल्याः, च पुनः गणतप्तिपरा-गणसमाधानकरणतत्पराः तथा सूरिपदस्य-आचार्यपदस्य योग्याः शिष्यवर्गं वाचयन्ति-शिष्यवर्गाय वाचनां ददति, तानुपाध्यायानहं ध्यायामि ॥ १२५३ ॥

जे दसणनाणचरित्तरूवरयणत्तएण इक्केण । साहंति मुक्खमग्ग ते सव्वे साहुणो वंदे ॥ १२५४ ॥
गयदुविहदुट्ठझाणा जे झाइअधम्मसुक्कझाणा य । सिक्खति दुविह सिक्ख ते सव्वे साहुणो वदे ॥
गुत्तित्तएण गुत्ता तिसल्लरहिया तिगारवविमुक्का । जे पालयति तिपइ ते सव्वे साहुणो वदे ॥
चउविहविगहविरत्ता जे चउविहचउकसायपरिचत्ता । चउहा दिसति धम्मं ते सव्वे साहुणो वदे॥

ये दर्शनज्ञानचारित्ररूपरत्नत्रयेण मोक्षमार्गं साधयन्ति, कीदृशेन दर्शन० त्रयेण ?–' एकेन ' एकीभाव गतेन–सम्मिलितेनेत्यर्थः, त्रयाणामेकत्व विना मोक्षमार्गो न सिद्ध्यतीतिभावः, तान् सर्वान् साधून् अह वन्दे ॥ १२५४ ॥ गते द्विविधे–द्विप्रकारे दुष्टध्याने–आर्तरौद्राख्ये येभ्यस्ते गतद्विविधदुष्टध्यानाः, च पुनः ध्याते धर्मशुक्लध्याने यैस्ते तथाभूता सन्ता ये द्विविधाशिक्षां–ग्रहणासेवनारूपां शिक्षन्ते, तान् सर्वान् साधून् वन्दे ॥ १२५५ ॥ गुप्तित्रयेण–मनोवाक्कायगुप्तिलक्षणेन गुप्ता-गुप्तिमन्तः पुनस्त्रिभिः शल्यै –मायाशल्यादिभिः रहिता–वर्जितास्तथा त्रिभिर्गौरवैः–ऋद्धिगौरवादिभिर्विमुक्ताः सन्तो ये त्रिपदीं–ज्ञानदर्शनचारित्ररूपा पालयन्ति, तान् सर्वान् साधूनह वन्दे ॥ १२५६ ॥ चतुर्विधाभ्य -चतुष्प्रकाराभ्यः विकथाभ्यो–राजकथादिभ्यो निरक्ताः, पुनः चतुर्विधा–अनन्तानुबन्ध्यादिभेदाच्चतुष्प्रकारा ये चत्वारः कषायाः–क्रोधादयस्ते परित्यक्ता यैस्ते तथा, ईदृशाः सन्तो ये दानादिभेदाच्चतुर्द्धा–चतुर्भि प्रकारैर्धर्म दिशन्ति–प्ररूपयन्ति, तान् सर्वान् साधूनह वन्दे ॥ १२५७ ॥

उज्झिअपचपमाया निज्जिअपर्चिदिया य पालेंति । पचेव समिईओ ते सव्वे साहुणो वंदे ॥१२५८॥

छज्जीवकायरक्खणनिउणा हासाइछक्कमुक्का जे । धारंति अ वयछक्कं ते सव्वे साहुणो वंदे ॥१२५९॥

जे जियसत्तभया गयअट्ठमया नवावि बंभगुत्तीओ । पालंति अप्पमत्ता ते सव्वे साहुणो वंदे ॥

दसविहधम्मं तह बारसेव पडिमाओ जे अ कुव्वंति । बारसविह तवोवि अ ते सव्वे साहुणो वंदे ॥

उज्झिता त्यक्ताः पञ्च प्रमादा–मद्यादयो यैस्ते तथा, च पुनः निर्जितानि पञ्चेन्द्रियाणि यैस्ते निर्जितपञ्चेन्द्रिया सन्तः पञ्चैव समितीः पालयन्ति, तान् सर्वान् साधून् वन्दे, च पादपूरणे ॥ १२५८ ॥ षड्जीवकायानां–पृथिव्यादीनां रक्षणे निपुणा–दक्षाः, च पुनः हास्यादिषट्कात् मुक्ता–रहिताः सन्तो ये व्रतषट्कं–प्राणातिपातविरमणादिरात्रिभोजन-पर्यन्तं धारयन्ति, तानित्यादि प्राग्वत् ॥ १२५९ ॥ जितानि इहलोकभयादीनि सप्त भयानि यैस्ते तथा, गता अष्टौ मदा–जातिमदाद्यो येभ्यस्ते गताष्टमदाः, पुनः अप्रमत्ताः–प्रमादरहिताः सन्तो ये नवापि ब्रह्मगुप्तीः पालयन्ति, तान् सर्वान् साधून् वन्दे ॥ १२६० ॥ च पुनः ये दशविधं–दशप्रकारं धर्मं–क्षान्त्यादिकं, तथा द्वादशैव प्रतिमाः–साधुसम्बन्धिनी कुर्वन्ति–धारयन्ति, च पुनः द्वादशविधं तपोऽपि–अनशनादिकं कुर्वन्ति, तान् सर्वान् साधूनहं वन्दे ॥ १२६१ ॥

जे सत्तरसजमगा उव्वूढाट्ठारसहस्ससीलंगा । विहरंति कम्मभूमिसु ते सव्वे साहुणो वंदे ॥१२६२॥
जं सुद्धदेवगुरुधम्मतत्तसपत्तिसद्दहणरूवं । वण्णिज्जइ सम्मत्तं तं सम्मद्दसणं नमिमो ॥ १२६३ ॥
जावेगकोडाकोडीसागरसेसा न होइ कम्मठिई । ताव न जं पाविज्जइ तं सम्मद्दसणं नमिमो ॥
भव्वाणमद्धपुग्गलपरियट्टवसेसभवनिवासाणं । जं होइ गंठिभेए तं सम्मद्दसणं नमिमो ॥१२६५॥
जं च तिहा उवसमिअं खओवसमियं च खाइयं चेव। भणियं जिणिंदसमए तं सम्मद्दसणं नमिमो॥

सप्तदशभेदः संयमः अङ्गे-शरीरे येषां ते तथा, पुनरुद्व्यूढानि-उत्कर्षेण धृतानि अष्टादशसहस्रशीलाङ्गानि यैस्ते तथा, एवम्भूतास्सन्तो ये कर्मभूमिषु पञ्चदशसु विहरन्ति-विचरन्ति, तान् साधून् अहं वन्दे ॥ १२६२ ॥ शुद्धा-निर्दोषाः, देवगुरुधर्मा एतत्तत्त्वसंपत्तिः-तत्त्वसम्पत् तस्याः श्रद्धानं रूपं-स्वरूपं यस्य तत्तथाभूतं यत् सम्यक्त्वं सूत्रे वर्ण्यते तत्सम्यग्दर्शनं गुणं वयं नमामः ॥ १२६३ ॥ यावत् एककोटाकोटिसागरोपमाधिकशेषाधिका यस्यां सा तथाभूता कर्मस्थितिर्न भवति तावत् यन्न प्राप्यते तत्सम्यग्दर्शनं नमामः ॥ १२६४ ॥ अर्द्धपुद्गलपरावर्त्तप्रमाणोऽवशेषो भवनिवासः-संसारवासो येषां ते तथा, तेषां भव्यानां ग्रन्थेः-घनरागद्वेषपरिणामरूपस्य भेदे सति यत्सम्यक्त्वं भवति, तत्सम्यग्दर्शनं नमामः ॥ १२६५ ॥ च पुनः यत्सम्यक्त्वं जिनेन्द्राणाम्-अर्हतां समये-सिद्धान्ते त्रिधा-त्रिभिः प्रकारैर्भणितं-कथितं, तथाहि-औपशमिकम् अन्तर्मुहूर्तस्थितिक१, क्षायोपशमिकं षट्षष्टिसागरोपमस्थितिकं२, च पुनः क्षायिकं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमस्थितिक३, तत्र मध्यमं पौद्गलिकं अन्यद्वयमपौद्गलिकं, तत्सम्यग्दर्शनं नमामः ॥ १२६६ ॥

उज्झिअपचपमाया निज्जिअपर्चिंदिया य पालेंति । पचेव समिईओ ते सव्वे साहुणो वंदे ॥१२५८॥
छज्जीवकायरक्खणनिउणा हासाइछक्कमुक्का जे । धारंति अ वयछक्कं ते सव्वे साहुणो वंदे ॥१२५९॥
जे जियसत्तभया गयअट्ठमया नवावि बंभगुत्तीओ । पालंति अप्पमत्ता ते सव्वे साहुणो वंदे ॥
दसविहधम्मं तह बारसेव पडिमाओ जे अ कुव्वंति । बारसविह तवोवि अ ते सव्वे साहुणो वंदे ॥

उज्झिता त्यक्ताः पञ्च प्रमादा-मद्यादयो यैस्ते तथा, च पुनः निर्जितानि पञ्चेन्द्रियाणि यैस्ते निर्जितपञ्चेन्द्रिया सन्त पञ्चैव समितीः पालयन्ति, तान् सर्वान् साधून् वन्दे, च पादपूरणे ॥ १२५८ ॥ षड्जीवकायानां-पृथिव्यादीनां रक्षणे निपुणा-दक्षाः, च पुनः हास्यादिषट्कात् मुक्ता-रहिताः सन्तो ये व्रतषट्कं-प्राणातिपातविरमणादिरात्रिभोजन-पर्यन्तं धारयन्ति, तानित्यादि प्राग्वत् ॥ १२५९ ॥ जितानि इहलोकभयादीनि सप्त भयानि यैस्ते तथा, गता अष्टौ मदा-जातिमदादयो येभ्यस्ते गताष्टमदाः, पुनः अप्रमत्ताः-प्रमादरहिताः सन्तो ये नवापि ब्रह्मगुप्ती पालयन्ति, तान् सर्वान् साधून् वन्दे ॥ १२६० ॥ च पुनः ये दशविधं-दशप्रकारं धर्मं-क्षान्त्यादिकं, तथा द्वादशैव प्रतिमाः-साधुसम्बन्धिनी कुर्वन्ति-धारयन्ति, च पुनः द्वादशविधं तपोऽपि-अनशनादिकं कुर्वन्ति, तान् सर्वान् साधूनहं वन्दे ॥ १२६१ ॥

जे सतरसजमगा उव्वूढाट्ठारसहस्ससीलंगा । विहरंति कम्मभूमिसु ते सव्वे साहुणो वंदे ॥१२६२॥

जं सुद्धदेवगुरुधम्मतत्तसपत्तिसद्दहणरूवं । वण्णिज्जइ सम्मत्तं तं सम्मद्दंसणं नमिमो ॥ १२६३ ॥

जावेगकोडाकोडीसागरसेसा न होइ कम्मठिई । ताव न जं पाविज्जइ तं सम्मद्दंसणं नमिमो ॥

भव्वाणमद्धपुग्गलपरियट्टवसेसभवनिवासाणं । जं होइ गंठिभेए तं सम्मद्दंसणं नमिमो ॥१२६५॥

जं च तिहा उवसमिअं खओवसमियं च खाइयं चेव । भणियं जिणिंदसमए तं सम्मद्दंसणं नमिमो॥

सप्तदशभेदः संयमः अङ्गे—शरीरे येषां ते तथा, पुनरुद्व्यूढानि—उत्कर्षेण धृतानि अष्टादशसहस्रशीलाङ्गानि यैस्ते तथा, एवम्भूतास्ते तो ये कर्मभूमिषु पञ्चदशसु विहरन्ति—विचरन्ति, तान् साधून् अहं वन्दे ॥ १२६२ ॥ शुद्धा—निर्दोषाः, देवगुरुधर्मा एवतत्त्वसंपत्तिः—तत्त्वसम्पत् तस्याः श्रद्धानं रूपं—स्वरूपं यस्य तत्तथाभूतं यत् सम्यक्त्वं शास्त्रे वर्ण्यते तत्सम्यग्दर्शनं गुणं वयं नमामः ॥ १२६३ ॥ यावत् एककोटाकोटिसागरोपमाणि शेषाणि यस्यां सा तथाभूता कर्मस्थितिर्न भवति तावत् यन्न प्राप्यते तत्सम्यग्दर्शनं नमाम ॥ १२६४ ॥ अर्द्धपुद्गलपरावर्त्तप्रमाणोऽवशेषो भवनिवासः—संसारवासो येषां ते तथा, तेषां भव्यानां ग्रन्थेः—घनरागद्वेषपरिणामरूपस्य भेदे सति यत्सम्यक्त्वं भवति, तत्सम्यग्दर्शनं नमामः ॥ १२६५ ॥ च पुनः यत्सम्यक्त्वं जिनेन्द्राणाम्—अर्हतां समये—सिद्धान्ते त्रिधा—त्रिभिः प्रकारैर्भणितं—कथितं, तथाहि—औपशमिकम् अन्तर्मुहूर्त्तस्थितिक१, क्षायोपशमिकं षट्षष्टिसागरोपमस्थितिकं२, च पुनः क्षायिकं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमस्थितिक३, तत्र मध्यमं पौद्गलिकं अन्यद्वयमपौद्गलिकं, तत्सम्यग्दर्शनं नमामः ॥ १२६६ ॥

उज्झिअपचपमाया निज्जिअपचिंदिया य पालेंति । पचेव समिईओ ते सव्वे साहुणो वंदे ॥१२५८॥

छज्जीवकायरक्खणनिउणा हासाइछक्कमुक्का जे । धारंति अ वयछक्क ते सव्वे साहुणो वंदे ॥१२५९॥

जे जियसत्तभया गयअट्ठमया नवावि बंभगुत्तीओ । पालंति अप्पमत्ता ते सव्वे साहुणो वंदे ॥

दसविहधम्म तह बारसेव पडिमाओ जे अ कुव्वंति । बारसविह तवोवि अ ते सव्वे साहुणो वंदे ॥

उज्झिता त्यक्ताः पञ्च प्रमादा-मद्यादयो यैस्ते तथा, च पुनः निर्जितानि पञ्चेन्द्रियाणि यैस्ते निर्जितपञ्चेन्द्रिया

...मितीः पालयन्ति, तान् सर्वान् साधून् वन्दे, च पादपूरणे ॥ १२५८ ॥ षड्जीवकायानां-पृथिव्यादीनां

...पट्कात् मुक्ता-रहिताः सन्तो ये व्रतषट्क-प्राणातिपातविरमणादिरात्रिभोजन

...लोकभयादीनि सप्त भयानि यैस्ते तथा, गता अष्टौ मदा-

... पालयन्ति, तान् सर्वान्

सव्वन्नुपणीयागमभणियाण जहट्ठियाण तत्ताण । जो सुद्धो अवबोहो त सन्नाण मह पमाण ॥
जेण भक्खाभक्ख पिज्जापिज्ज अगम्ममवि गम्म । किच्चाकिच्च नज्जइ त सन्नाण मह पमाण ॥१२७३॥
सयलकिरिआण मूल सद्धा लोअंमि तीइ सद्धाए । ज किर हवेइ मूल त सन्नाण मह पमाण ॥
ज मइसुअओहिमय मणपज्जवरूवकेवलमय च । पचविहं सुपसिद्ध त सन्नाण मह पमाण ॥

सर्वज्ञैः–अर्हद्भिः प्रणीता–प्रज्ञप्ता ये आगमाः–सिद्धान्तास्तेषु भणितानां प्रोक्तानां यथास्थितानां–सद्भूतानां तत्त्वानाम्–जीवादिपदार्थानां यः शुद्धोऽवबोधो–ज्ञान तत् सत्ज्ञानं मम प्रमाणमस्तीति शेष ॥ १२७२ ॥ येन ज्ञानेन भक्ष्य च अभक्ष्य च ज्ञायते, तथा पेय च अपेयं च ज्ञायते, अगम्यं गम्यमपि च वस्तु ज्ञायते, कृत्यं च अकृत्यं च ज्ञायते, तत् सत्ज्ञान मम प्रमाणम्, अत्राय भावः–भक्ष्य–अन्नादि, अभक्ष्यं–मांसादि, पेय–वस्त्रपूतजलादि, अपेय–सुरादि, गम्यं–स्वस्त्र्यादि, अगम्यं–परस्त्रीभगन्यादि, कृत्य–अहिंसादि, अकृत्य–हिंसादीति, ज्ञानं विना एतद्विवेको न भवतीत्यर्थः ॥ १२७३ ॥ लोके सकलक्रियाणां–सर्वशुभानुष्ठानानां मूल श्रद्धाऽस्ति, तस्या श्रद्धाया मूल किलेति–निश्चयेन यद् ज्ञान भवति, तत् सज्ज्ञान मम प्रमाणम् ॥ १२७४ ॥ यद् ज्ञान पञ्चविध–पञ्चप्रकार सुप्रसिद्ध, तदेव पञ्चविधत्वं विशेषणद्वारेणाह–कीदृशम् ?–मति१ श्रुता२ऽवधय३ स्वरूपमस्येति–मतिश्रुतावधिमयं, च पुनः मनःपर्यव४ केवल५स्वरूपमस्येति मन.पर्यवकेवलमयं तत्सज्ज्ञान मम प्रमाणम् ॥ १२७५ ॥

पण वारा उवसमिअ खओवसमिय असखसो होइ । ज खाइअ च इक्कसि त सम्मद्दसण नमिमो ॥
ज धम्मदुममूल भाविज्जइ धम्मपुरप्पवेस च । धम्मभवणपीढ वा त सम्मद्दसण नमिमो ॥१२६८॥
ज धम्मजयाहार उवसमरसभायण च ज विंति । मुणिणो गुणरयणनिहिं त सम्मद्दसण नमिमो ।
जेण विणा नाणंपिहु अपमाण निप्फल च चारित्त । मुक्खोऽवि नेव लब्भइ त सम्मद्दसण नमिमो ॥
ज सद्दहाणलक्खणभूसणपमुहेहिं बहुअभेएहिं । भणिणजइ समयमी त सम्मद्दसण नमिमो ॥

यत् औपशमिकम् आसंसारं पञ्च वारान् भवति, तथा क्षायोपशमिकम् असङ्ख्यवारान् भवति, च पुन क्षायिकम् एकश–एकवारं भवति, तत्सम्यग्दर्शन नमामः ॥ १२६७ ॥ यत् सम्यक्त्व धर्मद्रुमस्य–धर्मरूपवृक्षस्य मूल–मूलमिव भा भ्यते, च पुनः धर्मरूपपुरस्य प्रवेश–प्रवेशद्वारमिव भाव्यते, तथा धर्मरूपं यद्भवन–मन्दिर तस्य पीठ वा–पीठमिव भाव्यते, तत्सम्यग्दर्शन नमामः ॥ १२६८ ॥ तथा–यत्सम्यक्त्वं धर्मरूपस्य जगत आधारमिवाधारं मुनयो ब्रुवन्ति–कथयन्ति, च पुनः यत्सम्यक्त्वमुपशमरूपरसस्य भाजनम्–पात्रमिव भाजन ब्रुवन्ति, तथा–गुणा एव रत्नानि तेषां निधिरिव निधिस्त्व यत्सम्यक्त्व ब्रुवन्ति, तत् सम्यग्दर्शन नमामः ॥ १२६९ ॥ येन सम्यक्त्वेन विना ज्ञानमपि अप्रमाण, च पुनश्चारित्रं निष्फल, तथा मोक्षोऽपि नैव लभ्यते, तत् सम्यग्दर्शन नमामः ॥१२७०॥ बहवो भेदा येषां ते तथा तै., श्रद्धा४ लक्षण५ भूषण५–प्रमुखैर्यत्सम्यक्त्व समये–सिद्धान्ते भण्यते, तत्सम्यग्दर्शनं वयं नमामः । परमार्थसंस्तवादीनि चत्वारि श्रद्धानानि, शमसंवेगादीनि पञ्च लक्षणानि, जिनशासने कौशलमित्यादीनि पञ्च भूषणानि ॥ १२७१ ॥

जं देसविरइरूवं सव्वविरइरूवयं च अणुकमसो । होइ गिहीण जईण तं चारित्तं जए जयइ ॥
नाणंपि दंसणंपि अ संपुराणफलं फलंति जीवाणं । जेण च्चिअ परिअरिया तं चारित्तं जए जयइ ॥
जं च जईण जहुत्तरफलं सुसामाइयाइ पंचविहं । सुपसिद्धं जिणसमए तं चारित्तं जए जयइ ॥
जं पडिवन्नं परिपालियं च सम्मं परूवियं दिन्नं । अन्नेसिं च जिणेहिंवि तं चारित्तं जए जयइ ॥
जं पडिवन्नं परिपालियं च सम्मं परूवियं दिन्नं । अन्नेसिं च जिणेहिंवि तं चारित्तं जए जयइ ॥१२८५॥
छक्खंडागमखंडं रज्जसिरिं चइअ चक्कवट्टीहिं । जं सम्मं पडिवन्नं तं चारित्तं जए जयइ

यच्चारित्रं देशविरतिरूपं च पुनः सर्वविरतिरूपकं अनुक्रमेण 'गृहिणां' गृहस्थानां 'यतीनां' साधूनां भवति, गृहिणां देशविरतिरूपं यतीनां सर्वविरतिरूपमित्यर्थः, तच्चारित्रं जगति जयति, सर्वोत्कर्षेण वर्त्तते इत्यर्थः ॥१२८१॥ ज्ञानमपि दर्शनमपि च उभे अपि येन चारित्रेण 'परिकरिते' परिवृते एव जीवानां सम्पूर्णफलं यथा स्यात्तथा 'फलतः' फलं दत्तः, सम्पूर्णानि निष्फलानि यत्र कर्मणि तत्तथेतिक्रियाविशेषणं, तच्चारित्रं जगति जयति ॥ १२८२ ॥ च पुनर्यच्चारित्रं 'जिनसमये' जिनसिद्धान्ते 'यतीनां साधूनां सुष्ठु-शोभनं सामायिकादि 'पंचविधं' पंचप्रकारं सुतराम्-अतिशयेन प्रसिद्धं वर्त्तते 'यथोत्तर' उत्तरोत्तराधिकं फलं यस्य तत्तथा, तच्चारित्रं जगति जयति ॥ १२८३ ॥ जिनैरपि यच्चारित्रं 'प्रतिपन्नं' अङ्गीकृतं पुनः परिपालितं पुनः सम्यक् प्ररूपितं-उपदिष्टं अन्येभ्यो दत्तं च तच्चारित्रं जगति जयति ॥ १२८४॥ चक्रवर्त्तिभिः अखण्डां षण्णां खण्डानां राज्यश्रियं-राज्यलक्ष्मीं त्यक्त्वा यच्चारित्रं सम्यक् प्रतिपन्नं-अङ्गीकृतं, तच्चारित्रं जगति जयति ॥१२८५ ॥

केवलमणोहिणंपि हु वयणं लोयाण कुणइ उवयारं । जं सुयमइरूवेण तं सन्नाणं मह पमाणं ॥
सुयनाणं चेव दुवालसंगरूवं परूविअं जस्स । लोयाणुवयारकरं तं सन्नाणं मह पमाणं ॥ १२७७ ॥
तत्तुच्चिय जं भव्वा पढंति पाढंति दिंति निसुणंति । पूयंति लिहावंति अ तं सन्नाणं मह पमाणं ॥
जस्स बलेण अज्जवि नज्जइ तियलोयगोयरवियारो । करगहियामलयंपिव तं सन्नाणं मह पमाणं ॥
जस्स पसाएण जणा हवंति लोयंमि पुच्छणिज्जा य । पुज्जा य वण्णणिज्जा तं सन्नाणं मह पमाणं ॥

केवलमनःपर्यायावधीनामर्थात् केवलादिज्ञानत्रयधारिणामपि, वचनं यत् श्रुतमतिज्ञानरूपेण लोकानां-भव्यजन्तूनां उपकारं करोति तत्-तस्मात्कारणात् तत् ज्ञानम्-मतिश्रुतरूपं मम प्रमाणम् ॥१२७६॥ लोकानामुपकारकम् आचारादिद्वादशाङ्गरूपं श्रुतज्ञानमेव यत्र प्ररूपितं तत् सज्ज्ञानं मम प्रमाणम् ॥ १२७७ ॥ तत०-तस्मात्कारणादेव भव्या यत् श्रुतज्ञानं पठन्ति पाठयन्ति ददति निशृण्वन्ति-आकर्णयन्ति पूजयन्ति लेखयन्ति च तत् सज्ज्ञानं मम प्रमाणम् ॥ १२७८ ॥ यस्य श्रुतज्ञानस्य बलेन अद्यापि त्रैलोक्यगोचरः-त्रिभुवनविषयो विचारः, करे-हस्ततले गृहीतम्, आमलक-आर्द्रामलकफलमिव ज्ञायते तत् सज्ज्ञानं मम प्रमाणम् ॥ १२७९ ॥ यस्य-श्रुतज्ञानस्य प्रसादेन जना-लोका लोके-लोकमध्ये प्रच्छनीयाः-प्रष्टुं योग्याः च पुनः पूज्याः-पूजनीयाः च पुनः वर्णनीया-वर्णयितुं योग्या भवन्ति, तत्सज्ज्ञानं मम प्रमाणम् ॥ १२८० ॥

माया य मयणसुंदरिपमुहाओ राणियाओ समयंमि । सुहझाणा मरिऊण तत्थेव य सुरवरा जाया ॥
तत्तो चविऊण इमे मणुअभव पाविऊण कयधम्मा । होहिंति पुणो देवा एव चत्तारि वाराओ ॥
सिरिपालभवाउ नवमे भवंमि संपाविऊण मणुयत्त । खविऊण कम्मरासिं सपाविस्साति परमपयं ॥
एव भो मगहेसर ! कहिय सिरिपालनरवरचरित्त । सिरिसिद्धचक्कमाहप्पसजुत्त चित्तचुज्जकर ॥

माता-कमलप्रभा च पुन मदनसुन्दरीप्रमुखा राज्य' स्वायुषोऽवसानसमये शुभध्यानान्मृत्वा तत्रैव च-नवमे देवलोके सुरवरा जाताः ॥ १३०० ॥ ततः-तस्मादेवलोकाच्च्युत्वा इमे-सर्वेऽपि श्रीपालादिजीवा मनुजभव प्राप्य कृतो धर्मो यैस्ते कृतधर्मास्तः सन्तः पुनः देवा भविष्यन्ति, एव चतुरो वारान् मनुष्या देवाश्च भविष्यन्ति ॥ १३०१ ॥ श्रीपालभवा-न्नवमे भवे मनुजत्व-मनुष्यत्व सम्प्राप्य कर्मणां राशिं-समूहं क्षपयित्वा परमपद-मोक्षं सम्प्राप्स्यन्ति ॥ १३०२ ॥ श्रीगौतमस्वामी श्रेणिकनृपं वक्ति ' भो मगधेश्वर ' मगधाभिधदेशस्वामिन् ! एवम्-अमुना प्रकारेण श्रीपालनाम्नो नरवरस्य-राज्ञः चरित्र कथितं, कीदृशं ?-श्रीसिद्धचक्रस्य यन्माहात्म्यं तेन सयुतं-युक्त, पुनः लोकानां चित्तेषु चोद्यम्-आश्चर्यं करोतीति चित्तचोद्यकरम् ॥ १३०३ ॥

कप्पतरुस्स व जस्सेरिसाउ सुरनरवराण रिद्धीओ । कुसुमाइँ फल च सिव त तवपयमेस वदामि ॥
अइतमसज्झाइ लीलाइवि सव्वलोयकज्जाइ । सिज्झंति झत्ति जेण त तवपयमेस वदामि ॥
दहिदुव्वियाइमगलपयत्थसत्थंमि मंगल पढम । जं वन्निज्जइ लोए त तवपयमेस वदामि ॥
एव च संथुणतो सो जाओ नवपएसु लीणमणो । तह कहवि जहा पिक्खइ अप्पाणं तमय चेव ॥
एयमि समयकाले सहसा पुण्ण च आउयं तस्स । मरिऊण सिरिपालो नवमे कप्पमि सपत्तो ॥

कल्पतरोः–कल्पवृक्षस्य इव यस्य तपस ईदृशः सुरवराणां नरवराणां च ऋद्धयः–सम्पद कुसुमानि–पुष्पाणि सन्ति, च पुनः शिवं–मोक्ष फलं वर्तते, तत्तपःपदमेषोऽहं वन्दे ॥ १२६५ ॥ अत्यन्तं असाध्यानि–साधयितुमशक्यानि सर्वाणि लोकानां कार्याणि येन तपसा लीलयाऽपि–हेलया एव झटिति–शीघ्र सिध्यन्ति तत्तपःपदमेषोऽहं वन्दे ॥ १२६६ ॥ यद् दधिदूर्वादिमङ्गलपदार्थानां सार्थे–समूहे यत्तपः प्रथम मङ्गल वर्ण्यते, तस्य भावमङ्गलरूपत्वात्, तत्तप पदमेषोऽहं वन्दे–स्तवीमि ॥ १२६७ ॥ एवं–अमुना प्रकारेण च संस्तुवन्–सम्यक् स्तुतिं कुर्वन् स श्रीपालः तथा कथमपि नवपदेषु लीन–लग्नं मनो यस्य स लीनमना जातः, यथा आत्मान [तन्मानं] तन्मयं–नवपदमयमेव प्रेक्षते–पश्यति ॥ १२६८ ॥ एत स्मिन् समयरूपे काले सहसा–अकस्मात् तस्य–श्रीपालस्य आयुष पूर्णं, तदा श्रीपालो मृत्वा नवमे कल्पे–मानतदेवलोके सम्प्राप्तः ॥ १२६९ ॥

साहुपयविराहणया आराहणाया य दुक्खसुक्खाइं । रुप्पिणिरोहिणीजीवेहिं किं नहु पत्ताइ गुरुयाइं ॥ १३०९ ॥

दसणपय विसुद्ध परिपालतीइ निच्चलमणाए । नारीइवि सुलसाए जिणराओ कुणइ सुपससं ॥

नाणपयस्स विराहणाफलंमि नाओ हवेइ मासतुसो । आराहणाफलंमी आहरण होइ सीलमई ॥

चारित्तपय तह भावओवि आराहिय सिवभवंमि । जेणं जंबुकुमारो जाओ कयजणचमुक्कारो ॥

वीरमईए तह कहवि तवपयमाराहिय सुरतरुव्व । जह दमयतीइ भवे फलियं तं तारिसफलेहिं ॥

साधुपदस्य विराधनया आराधनया च क्रमेण रुक्मिणीरोहिणीजीवाभ्यां गुरुकाणि-महान्ति दुःखानि सुखानि च किं न हि प्राप्तानि ?, प्राप्तान्येवेत्यर्थः ॥ १३०९ ॥ विशुद्धं-निर्मलं सम्यग्दर्शनपदं परि-सामस्त्येन पालयन्त्याः, पुनः निश्चलं मनो यस्याः सा तथा तस्या नार्या अपि सुलसाया-नागपत्न्या जिनराजो-वर्द्धमानः सुतरां प्रशंसां करोति ॥ १३१० । ज्ञानपदस्य विराधनाफले माषतुषः साधुर्ज्ञातो-दृष्टान्तो भवति, तथा आराधनाफले शीलवतीनाम सती आहरण-दृष्टान्तो भवति ॥ १३११ ॥ शिवकुमारभवे भावतोऽपि चारित्रपदं तथा-तेन प्रकारेण आराधितं येन जम्बूकुमारो जातः, कीदृशः ?-कृतो जनानां-लोकानां चमत्कारो येन स तथा ॥ १३१२ ॥ वीरमत्या-नृपराज्ञ्या तथा-तेन प्रकारेण कथमपि तपःपदमाराधितं, यथा दमयन्त्या-नलनरेन्द्रपट्टराज्ञ्या भवे तत्पदः सुरतरुरिव-कल्पवृक्ष इव तादृशैः फलैः फलितम् ॥ १३१३ ॥

तं सोऊण सेणियराओ नवपयसमुल्लसियभावो । पभणेइ अहह केरिसमेयाण पयाण माहप्प ? ॥
तो भणइ गणी नरवर! पत्त अरिहंतपयपसाएण । देवपालेण रज्ज सक्कत्त कत्तिएणावि ॥ १३०५ ॥
सिद्धपयं झायंता के के सिवसपय न संपत्ता । सिरिपुडरीयपंडवपउममुणिंदाइणो लोए ॥१३०६॥
नाहियवायसमज्जियपावभरोऽवि हु पएसिनरनाहो । ज पावइ सुररिद्धिं आयरियप्पयप्पसाओ सो ॥
लहुयपि गुरुवइट्ठं आराहंतेहिं वयरमज्जाय । पत्तो सुसाहुवाओ सीसेहिं सीहगिरिगुरुणो ॥ १३०८ ॥

तत् श्रीपालचरित्रं श्रुत्वा श्रेणिकराजो नवपदेषु समुल्लसितो भावो यस्य स तथाभूत. सन् प्रकर्षेण भणति-कथयति, 'अहह' इति आश्चर्ये ! एतेषां पदानां कीदृशं माहात्म्य वर्त्तते ?, अचिन्त्यमित्यर्थः ॥ १३०४ ॥ तत.-तदनन्तर गणोऽस्यास्तीति गणी-गणधरगौतमो भणति, हे नरवर-हे राजन् ! अर्हत्पदस्य प्रसादेन देवपालेन-श्रेष्ठिसेवकेन राज्य प्राप्त. का र्तिकेन श्रेष्ठिनापि शक्रत्वम्-इन्द्रत्वं प्राप्तम् ॥ १३०५ ॥ सिद्धपद ध्यायन्तो लोके श्रीपुण्डरीकपाण्डवपद्ममुनीन्द्रादय के के शिवसम्पद-मुक्तिसमृद्धिं न सम्प्राप्ताः ?, बहवः सम्प्राप्ता इत्यर्थः, पद्मो-रामचन्द्र ॥ १३०६ ॥ नास्तिकवादेन समर्जितः-सञ्चितः पापोत्कर्षो येन स तथाभूतोऽपि प्रदेशिनरनाथः-प्रदेशिनामा नृपो यत् सुरऋद्धिं-देवर्द्धिं प्राप्नोति, स आचार्यपदस्य प्रसादः ॥ १३०७ ॥ गुरुणा-सिंहगिरिणा उपदिष्ट-निवेदित लघुकमपि वज्र(अ)-वज्र(सू)नामकं उपाध्याय-वाचनाचार्यं आराधयन्ति सुसाधुवादः सम्यग्विनीताः शिष्या इत्येवंरूपः प्राप्तः ॥ १३०८ ॥

-तं सोऊण सेणिअनरनाहो पमुइओ सचित्तमि । रोमचकयचिअतणू वद्धावणिय च से देई ॥
इत्थतरंमि तिहुयणभाणू सिरिवद्धमाणजिणनाहो । अइसयसिरीसणाहो समागओ तत्थ उज्जाणे ॥
देवेहिं समवसरणं रइयं अच्चतसुंदर सारं । सिरिवद्धमाणसामी उवविट्ठो तत्थ तिजयपहू ॥१३२१॥
गोयमपमुहेसु गणीसरेसु सक्काइएसु देवेसु । सेणिअपमुह निवेसु अ तहिं निविट्ठेसु सव्वेसु ॥
सेणिअमुद्दिस्स पहू पभणइ नरनाह ! तुज्झ चित्तंमि । नवपयमाहप्पमिणं अइगुरुयं कुणइ अच्छरियं॥

तद्वचनं श्रुत्वा श्रेणिकनरनाथः स्वचित्ते प्रमुदितो—हर्षितः, पुनः रोमाञ्चैः—रोमोद्गमैः कचाचिता—कवचयुक्ता तनुः—शरीरं यस्य स तथाभूतः सन् ' से ' त्ति तस्य—तस्मै इत्यर्थः, वर्धापनिकां ददाति—यथोचितं द्रव्यं ददातीत्यर्थः ॥ १३१६ ॥ अत्रान्तरे—अस्मिन्नवसरे त्रिभुवनभानुः—त्रैलोक्यसूर्यः श्रीवर्द्धमानजिननाथः अतिशयश्रिया—प्रातीहार्याद्यतिशयलक्ष्म्या सनाथः—सहितस्तत्रोद्याने समागतः ॥ १३०२ ॥ देवैः अत्यन्तसुन्दरं सारं—प्रधानं समवसरणं रचितं, तत्र—तस्मिन् समवसरणे त्रिजगत्प्रभुः श्रीवर्द्धमानस्वामी उपविष्टः ॥ १३२१ ॥ गौतमप्रमुखेषु गणीश्वरेषु—गणभृद्वरेषु शक्रादिकेषु—सौधर्मेन्द्रादिषु देवेषु चः पुनः श्रेणिकप्रमुखेषु नृपेषु—राजसु सर्वेषु तत्र समवसरणे निविष्टेषु—उपविष्टेषु सत्सु ॥ १३२२ ॥ श्रेणिकमुद्दिश्य—श्रेणिकनृपस्य नामोच्चारं कृत्वा प्रभुः—श्रीवर्द्धमानस्वामी प्रभणति—प्रकर्षेण कथयति, हे नरनाथ—हे राजन् ! इदं नवपदमाहात्म्यं तव चित्ते अतिगुरुकं—महत्तरं आश्चर्यं करोति ॥ १३२३ ॥

किं बहुणा मगहेसर! एयाण पयाण भत्तिभावेण । त आगमेसि होहिसि तित्थयरो नत्थि संदेहो ॥
तम्हा एयाइ पयाइ चेव जिणसासणस्स सव्वस्स । नाऊण भो भविया ! आराहह सुद्धभावेण ॥
एयाइ च पयाइ आराहंताण भव्वसत्ताण । हुतु सयावि हु मंगलकल्लाणसमिद्धिविद्धीओ ॥
एव तिकालगोअरनाणे सिरिगोयमम्मि गणनाहे । कहिऊण ठिए सेणियराओ जा नमवि मुणिनाह ॥
उट्ठेइ तओ हरिसियचित्तो ता तत्थ कोवि नरनाह । विन्नवइ देव ! वद्धाविज्जासि वीरागमेण तुम ॥

हे मगधेश्वर ! किं बहुना कथनेन ?, एतेषां पदानां भक्तिभावेन—भक्तिपरिणामेन त्वं आगामिभवे तीर्थङ्करो भविष्यसि, अत्रार्थे नास्ति सन्देहः ॥ १३१४ ॥ तस्मात् एतानि पदान्येव जिनशासनस्य सर्वस्य ज्ञात्वा भो भविका ! भो भव्या वा शुद्धभावेन यूयं आराधयत ॥ १३१५ ॥ एतानि च पदानि आराधयतां भव्यसत्त्वानां—भव्यजीवानां सदापि हु इति निश्चित मङ्गलकल्याणसमृद्धिवृद्धयो भवन्तु, मङ्गलं—विपदुपशमरूप, कल्याण—सम्पदुत्कर्षरूप, समृद्धिवृद्धयः—परिवारादिवृद्धिरूपा भवन्तु इत्यर्थः ॥ १३१६ ॥ एवं—अमुना प्रकारेण त्रिकालगोचरं—त्रिकालविषयं ज्ञानं यस्य स तथा, तस्मिन् गौतमे गणनाथे—गणेश्वरे कथयित्वा स्थिते सति श्रेणिकराजो मुनिनाथं नत्वा यावत् ॥ १३१७ ॥ ततः स्थानात् उत्तिष्ठति, तावत् हर्षितं चित्तं यस्य स तथाभूतः कोऽपि पुरुषः तत्र प्रदेशे नरनाथं—राजानं विज्ञपयति, 'हे देव' हे—महाराज ! वीरस्य प्रभोरागमेन—अत्रागमनेन त्वं वर्द्धाप्यसे ॥ १३१८ ॥

रूवाईअसहावो केवलसण्णाणदंसणाणंदो । जो चेव य परमप्पा सो सिद्धप्पा न सदेहो ॥ १३२८ ॥
पंचप्पत्थाणमयायरियमहामंतझाणलीणमणो । पंचविहायारमओ आयच्चिअ होइ आयरिओ ॥
महपाणज्झायदुवालसंगसुत्तत्थतदुभयरहस्सो । सज्झायतप्परप्पा एसप्पा चेव उवज्झाओ ॥१३३०॥

रूप पौद्गलिकं, रूपं अतीतः अतिक्रान्तः स्वभावो यस्य स तथा, अत एव केवलाः-परिपूर्णाः सज्ज्ञानदर्शनानन्दा यस्य स तथाभूतो य एव परात्मा स सिद्धात्मा उच्यते, नात्र सन्देहः ॥ १३२८ ॥ पञ्चप्रस्थानमयो यः आचार्यसम्बन्धी महामन्त्रः-प्रधानमन्त्रस्तस्य ध्याने लीनं मनो यस्य स तथा, पुनः पञ्चविधो यः आचारः स प्रधानं यस्य सः तथाभूतः आत्मा एव आचार्यो भवति, पञ्च प्रस्थानानि च विद्यापीठ१ सौभाग्यपीठ२ लक्ष्मीपीठ३ मन्त्रयोगराजपीठ४ सुमेरुपीठ५-नामानि, एषामर्थस्तु सूरिमन्त्रकल्पात् ज्ञेयः, भावध्यानमालाप्रकरणे तु अन्यथा पञ्च प्रस्थानान्युक्तानि, तथाहि-अभयप्रस्थानं१ अकरप्रस्थानं२ अहमिन्द्रप्रस्थानं३ तुल्यप्रस्थानं४ कल्पप्रस्थानं५ चेति, एषां पञ्चानां स्वामिनः पञ्चपरमेष्ठिनः इत्यादि ॥ १३२९ ॥ महाप्राणेन-ध्यानविशेषेण ध्यातं-चिन्तितं द्वादशाङ्गानां सूत्रस्य अर्थस्य तदुभयस्य च रहस्यं येन स तथा पुनः स्वाध्याये-वाचनादिपञ्चप्रकारे तत्पर आत्मा यस्य स तथाभूत एष आत्मा एव उपाध्यायः ॥ १३३० ॥

नदीया लापवळ तरजाणो वळे असी हजारजी ध्यारसेपंचासवले अधीकीजाणो
अढी द्वीपमझारजी ॥ १९ ॥ सं० कूटत्रेवीसपेतीसेंजाणो अढीधीपमझारजी विजय
वली एकसोनेसाठे तिहा धर्मसदाजयकारजी ॥ २० ॥ स० कोडछवीसपनरे लषजा-
णो वलीतीनहजारजी छसे कमलतीसद्रहनां अढीद्वीमझारजी ॥ २१ ॥ स० कोम्सा
ठने पचासलपजाणो उपर पटहजारजी कमलपचासभुइद्रहना अढीधी पमझारजी
॥ २२ ॥ स० कोम्गिुने लापचाळीस उपरनषहजारजी छसकवसर्व असीद्रहनाअढी
धीपमझारजी ॥ २३ ॥ स० कोम्बारेनेपचलषजाणो वलीएकहजारजी दोयसेवृषजंबू
आदिदेइ अढोधीपमझारजी ॥ २४॥स० पाचसें दसमागदादितिर्थ अढीद्वीपमझारजी
ध्यारसेपचासकुम्लदीयाना सुत्रमे धीस्तारजी ॥२५॥ सं० तीनसेचाळीसविद्याधरश्रेणी
नगरसहस्त्रअढारजी सातसेनगरवली अधीकाजाणो अढीद्वीपमझारजी॥ २६ ॥सं० तीन
सेचाळीसअभिउगसेणी तिहांदेव विलसेसुषअपारजी तीनसे चाळीसतमसगुफादिक
अढीद्वीपमझारजी ॥२७॥स० षेसेंचोसठचद्रमा सुर्य अढीद्वीपमझारजी नक्षत्रछतीसेगिनु
जाणु सुत्रांलीजो सम्भालजी॥२८॥ स० सहस इग्यारम्सेनसोळे अहकामहावीरजी अ

ढीपिपे चरजोतकीचक्र पारेथी मजविस्तारजी ॥ २९ ॥ स० लापअम्यासीने सहस-
चालीस सावसेकोम्मकोम्जी अढीद्वीपमेताराजाणो एवली आकनी जोम्जी ॥ ३० ॥
स० कोम्इक्यावनलापइक्यासी पले अम्सठहजारजी सपाचालीसगाथा अपकीजा-
णों एकपदनों विस्तारजी ॥ ३१ ॥ स० एकआकासप्रदेसने उपर जीवनाप्रदेस अनं-
तजी सर्वजीवथी असपेजगुणोछे ग्यागीनों ग्यानअनतजी ॥ ३२ ॥ सं० अम्वएकने
कोम्मीवेसे उपरचाली सलापजी एकजोयण नाहृायप्रमाणे चोरसाजिनवर भापजी ३३
स० अढीउधार सागरनासमया इतलाद्वीपसमुद्रजी दसकोडारसागरनासमया एतलापो
लइयानजी ॥ ३४ ॥ सं० पावीसपचासएकोतरचार अठपीस सिवावनचवदे दोएजी
असीदेवगनानाएकभवमाहीं सक्रइंद्रनेहोयजी॥३५॥ स० आगमनाएबोलअनोपम जे
सरदे नरनारजी सीवनगरीना सुपतेपामे नही सदेह लिगारजी ॥ ३६ ॥ स० इतीसंपूर्ण
पुज्यो जिनवाणी मातासीतला सितला चितकरो भावेजी ससारदावानल उपसमे
भवजनसुणी उलसावेजी पुं० ॥ १ ॥ चतुराइ चुलोथापने करम ईंधणकरो भावेजी
वप अगणी सपूकने किरीया कमाइ चमयोजी पु० ॥ २ ॥ करुणारस घृत पुरजोनि-

र ममताकरोमेदोजी क्षिम्यारुप साजाकरो गुणकागुजा उमेदोजी पुं॰ ॥ ३ ॥ प-
रमारथ पुनीकरो पुनपापड पीचाजाणोजी सतोसरुपीकरो लापसी समतासकर षषा-
णोजी पु॰ ॥ ४ ॥ धरम मोदना मोदककरो जेणाजलेभीषणाषोजी प्रतित रुपी पे-
मकरो प्रेमका घेवर आणोजी पु० ॥५ दयाको दुव ओटावजो दानको दहि जमावोजी
सुषरुपो परफीनली अयोगका ओलावपाणोजी पु॰ ॥ ६ ॥ धमकरो विग्यानका
गुलगुला गुपति रसालोजी भावनारुप भूजाकरो हेतु इष्टात मुसालोजी पु० ॥ ७॥
सेवारूपी सेंवासीरे तत्यका वेषन नाषोजी भजनपकोमी चरपरी सुकथा कचोरी सरा-
वोजी पु॰ ॥ ८ ॥ चोकसी चोखा आणने रूचरुप राइकरीजोजी घाट राष राइक-
रो हिरदा हामीमेधरीजोजी पु॰ ॥९॥ ज्ञानकरो उपसम जलेपापकोमेल पषालोजी
सीलसीणगार सजोसदा कषाय अगनके टालोजी पु॰ ॥ १० ॥ सुगुरु केण कलसो-
षीपे ग्यानकोजल भरलेषोजी मदी गृदो अनुमोदना सुविकी सुपारी ठेवोजी पु॰ ॥
॥ १२ ॥ थीर परणाम थालीकरो विवेककी पाटकी जाणोजी विनय पिगाणी षणाव-
जो सतरुपकुकुचोलाणोजी पुजो॰ ॥ १३ ॥ असे गुण आखाचमइये प्रितिकापान

विचारोजी किर्तिफूल सुभवासना ध्यानकी धुप उदारोजी पु० ॥ १४ ॥ सुकललेसा रु-
इघरो नेमको नैवेद्य लिजेजी आश्रव रजपरी टालवा समरगरणो ढांकी जोजी पु ॥ १ ॥
पर्मेष्टीका गुणगावणा गावजोगीत रसालोजी पुजाकरो इमसासती करम दूषदोय-
विनासोजी पु० ॥ १५ ॥ परमपुत्र चोखोरहे रिधसिद्ध बऊथावेजो सीवरमणीवरे सास-
ती दूषकदेनही आवेजी पु० ॥ १६ ॥ वगणसि सेतिस शितला दिने किनियेद्दसका
योजी तिलोकरिष अनुभवपणे भवि जनकेमनभायोजी पु० ॥ १७ ॥ इतिसपूर्णम् ॥
अथगाकर भले घीराजोजी ॥ प्रभुजी भलेवीराजोजी ॥ प्रमातम म्हाराज मूगतमे भले
विराजोजी समीभोमसुसातराजकम स्वारथ सिद्धविमाण तीणसु बाराजोजन ऊ-
ची ॥ चौत्राळत्र सगण ॥ १ ॥ प्र ॥ लाखपेतालीस लंबी चोडी ॥ सुभकीठे साप आठ-
जोजनदल सीद्धसीलाको ॥ ॐ मापीकी पांष ॥ २ ॥ प्र० ॥ गायडध ओर दारमो-
तीको संप घोडाकीलाल ॥ गरजन सोनामादी मनोदर ॥ फीटीक रतन सुवीसाल ॥
॥ ३ ॥ प्र ॥ सुदाली घठारी मठारीदीपे ॥ नीरमळ ओरनीरदाग ॥ एकजोजन उपर-
लोगाउ ॥ जीणकोछगो भाग ॥ ४ ॥ प्र ॥ तीनसे तेतीसे धनुष कहीजे ॥ चतीस अं-

र ममताकरोमेदोजी क्षिम्यारुप साजाकरो गुणकागुजा ठमेदोजी पुं॰ ॥ ३ ॥ परमारथ पुन्नीकरो पुनपापड धोचाजाणोजी सतोसरुपीकरो लापसी समतासकर षपाणोजी पुं॰ ॥ ४ ॥ धरम मोदना मोदककरो जेणाजलेपीषणावोजी प्रतित रुपी पेम्नकरो प्रेमका घेवर आणोजी पु० ॥५ दयाको दुध ओटावजो दानको दहि जमावोजी सुधुद्धरुपी परफीनछी अयोगका ओलाषपाणोजी पु॰ ॥ ६ ॥ नम्नकरो विग्यानका गुलगुला गुपति रसालोजी भावनारुप भूजाकरो हेतु दृष्टात मुसाछोजी पु० ॥ ७ ॥ सेवारूपी सेवासीरे तत्यका तेवन ठावोजी भजन पकोम्नी चरपरी सुकथा कचोरी सरावोजी पु॰ ॥ ८ ॥ चोकसी चोसा आणने रूचरुप राइकरीजोजी घाट राव राइकरो हिरदा हांमीमेधरीजोजी पु॰ ॥९॥ ज्ञानकरो उपसम जलेपापकोमेल पखालोजी सीलसीणगार सजोसदा कषाय अगनके टालोजी पु॰ ॥ १० ॥ सुगुरु केण कलसोधीषे ग्यानकोजल भरलेषोजी मेदी गूदो अनुमोदना सुतिकी सुपारी ठवोजी पु॰ ॥ ॥ १२ ॥ धीर परणाम थालीकरो विवेककी बाटकी जाणोजी विनय पिंगाणी षणावजो सतरुपकुकुघोलाणोजी पुजो॰ ॥ १२ ॥ असे गुण आसाचम्नइये प्रितिकापान

मादान अकारज करने धनमेलोनहीपूटे कलजूगकाल राषले लेइजाषे षघकीया नविछु
टे ॥ ४ ॥ निषरोषाय पहेरपण निषरो सुषज्ञर निदनसोवे नरसषरो दीठोपण इणसु तू-
चोपण ईणनेरोवे ॥ ५ ॥ पीपल पान कान कूजरसो।मान अणीजल जाणू इणसु मोह
करेसो मूरष अतरग्यान पीछाणू ॥ ६ ॥ कमलापतिकी कमलानारी यातोगणका नारी
राषणकाज अकाजकरे नर कर२यातदगाकी ॥ ७ ॥ कोडयकी कोंपल नहीथाको आ
ठमो चकीदेषी लागीलाय कदेनहीघापे जोमीलेकोरू अनेकी ॥ सो ८ । देवोदान पान्य
सुदेषी मून्येकरदे कालो ठलटोडष आणेहीरदामे आदो लोभकोचालो ॥ सो ॥ ९ ॥
राजामहेवाने माडवीयाहरी हलघर सावलीया मायानारी कामणगारीकूण २मिनषा ठ-
लीया ॥ सो ॥ १० । सेषे काल कुचामण नगरे ॥ चेतमहीने आया ॥ रतनचदकहेमु
जोमीनषसु सेठी पकमीमाया ॥ सो० ॥ ११ ॥ इतीसपूर्ण ॥ लोभी गरु तारेनही वरेसो
तारणहारतूतीरीयो चावे चतुर नीरलोभी गरुघार ॥ १ ॥ ॥ ॥
॥ एई० ॥ लावणी ॥ तिनमनोरथ करेनितजे ॥ भवियण नरनारी ॥ जिनोकू मुक्तिहे
प्यारीजी ॥ जेनधरमके तजके राचो ॥ रागद्देषमाही ॥ जाण्यो जिनधर्म भलो नाही-

गुलमाय॥ सीद्ध अनता रखावीराजी पंनरा भेदकहाय ॥५॥ प्र॥ येकमाहीठे सीद्धअ
नताअनतमाहीमेयेक॥ अनंतसुष अटलअवगेहेणा मीलरह्या जोतमेजोत॥ ६ ॥ प्र
केवलदरसण ज्ञानअनतो॥ सक्त अनतीस्वाम ॥ अजर अमर अवीकार निरंजण ॥
अवीनासी सीवधाम ॥ ७ ॥ प्र॥ जनम मरण भएदुष उचाटण ॥ रोग सोग नही
भोग मात पीता गरु सीष नजाह्य॥ मन वचन तनजोग ॥ ८ ॥ प्र॥ पूरपाटण नही
वसती उजाड॥ चाकर ठाकरनाय करम किरियावेपारनदीसे नही उजवालोगाय ९
अनोपमसुखमे सदाविराजो। तारण तरण जीयाज॥ अलष नीरजण भवडुषभंजण॥
तूमगे गरीब नवाज ॥ १० ॥ प्र॥ उगणीस अम्तीस चेतसुकल॥ बारस आवोरी
मझार॥ तीलोकरिषकहे अधम उधारण॥ कीजो भवदघीपार॥प्र०॥११॥इती संपूर्ण॥
कूड कपटकरी मायारेमेली निठ १ करसरजी पावपलकमे परभवपोहतो पडीरही
सउभरची सुक्रतकरलेरेमूजा थारी पडीरहे लापूजी ॥ १ ॥ कूडकपट करीने चतुराइ
घणीजमाइ पीढी भोलादोला काल सकोला भातनिकली सीढी॥ सो॥ २ ॥ अघकोलेवे
ओमेदेवे बोलेमधुरी वाणी अंभ्रमारे घडीउडावेकर २ अतरकाणी सुक्रत ॥ ३ ॥ कर-

आतमा ॥ सारकरूनाई ॥ सितादिकदेवु नमिटाईजी ॥ इहलोक परलोकतणीञ ॥ घठाकरु नाई ॥ मरणकीटालु आसताईजी ॥ कामभोगकी तृष्णाछेदी ॥ अराधिक था ईं ॥ जावुकद मोक्षमहेल माहीजी ॥ तिलोकरिखकहे गणे तिसरे ॥ विधिजहा विस्ता री ॥ घारे जेईधनहे नरनारीजी ॥ तिन मनोरथ करे नितजे ॥ भवियण नरनारी ॥ जिनोकू मुक्तिहे स्यारीजी ॥ ३ ॥ इतिसपुर्ण ॥ ॥ ॥

॥ ॐनम सिद्ध ॥ अथघोसो॥समरुगुणघर सघपती जेनसुधजती सारदासती चाञन्की अनतसकीजी ॥ अथघन ॥ असखदोमतो पुनकीरती धृद्धिकरोअती करोकरमकवी देवोसिद्धगती चाञनकी अनतसकीजी॥घन॥धरमकीवणी कचेरी भारी सिंघासणधीरजरुपधारी घेटे प्रभुजी सपरञसीयारी सभामेजुडेतीरथचारी अदालतकरे सतजाहारी घोटेकी नहीहे कहुयारी दगाजीवचेतनकाहेयका न्यायतुमसुणलोनीरसकाजी

॥अथ लावणी॥मेरिधनदोलत जमीन अचलदीलथाणी १ तुमकरो अदालतमेरी जगतपतीराणी ॥ शुदचेतनमुदेइ वाणाह्रेजदारी आठुकरम मुदालु कपटभंभरी धीरजकाईष्टापसोधकरलाया १सकायध्यानमज मुनसचथणवाया अरजी आनगुजारी धीस्यात-

जी ॥ क्रोध मान कपट लोभसे राचरह्योप्राणी ॥ धारीनही भगवतकी वाणीजी ॥ ग-
योनारकीमांहि जीवजहा ॥ दूष अनतपायो ॥ घणो जहाजमने घबरायोजी ॥ पन्न २
करहीया देहका ॥ ससतरसे घायो ॥ कालजो तोम २ पायोजी ॥ लह्यो पसु अवतार
॥ तरस थावरमे महाभारी ॥ जनममरणका दूषभारीजी ॥ पायो नर सुरलोक जीवज
हा पुनहीसाहारी ॥ कहाभयो उचगति धारीजी ॥ आरम्भ परिग्रहका फलखोटा ॥
कबकरु परिहारी मनोरथए परथमधारीजी ॥ ति० ॥ १ ॥ दुजोमनोरथ धारेविवेकी ॥
कबथङ्क मुनीवराते ॥ जिणोसे आतमानिज तरतिजी ॥ विनगरम्भ अराधिकता पद
कदलेसु दिक्ष ॥ करु ध्यायनकी रक्षाजी ॥ रागद्वेषसु कदीनिवरतु ॥ देम्मगरम्भ ठक्रि ॥
भितिएक करणीसु मम्भिजी ॥ क्रोध मान माया ओरतृष्णा ॥ एचारीगेम्भी ॥ आत
मावाकदेवुमोमिजी ॥ सातभए सबटले माहेरा ॥ आठुमद छुटे ॥ कदे अंतराय करम
टूटेजी ॥ दुजोमनोरथ एसीरित ॥ चिंतेवारी ॥ २ होत तबनिर्जरा भारीजी ॥ ति० ॥२
करे तिसरे महा मनोरथ ॥ सुणलेणाभाई ॥ कमिफिररहे नहीकाइजी ॥ तपसाकर त
नवनकु सुकाई ॥ संलेखणा घाई ॥ अहारतजु जावजीव ताईजी ॥ रतनकरंड समान

रजा चठाया ॥ जबहम मगणगतवेघबराणा २॥ तुः ॥७॥ हालजर घडेगधाइ हालसु
णाया वघचेतनदे उत्तर सुणोजी महाराया इमानदार सचे मेरेगघाइ २ जाणतसबजीहा
न झूठकहुनाई ॥ कुमदीनीमेरी घतनअपुट घननाणा ॥ तु ॥ ८॥ कमरफेरेवीदारबोतड
पदाना २॥ लुटमचाइबोतकीयाहेराना लक्षचोरासीमादे बोतभमाया ॥ बोतकरायासवाग
कीया मुझकाया ॥ लुटेहरीहरइन्द्रचंद्र नरराया २ ॥ ए ॥ लुटेरीहेकेई वीदानघमे पंम्डित-
कु ॥ मलेनरकके घीचघोतसे नतिकु कहापुनकानाम पापकरघाया २ करकरहीसाका-
मधरमवतलाया ॥ बोतफेलायाजालजीससेलछचाणा २॥ तु ॥ १० ॥ येसोकराइनसा
फ चेतनदरसावे २ अबकरमोकी अफीलहोणे नहीपावे जनममरणदुषरोगसोगमीटजा
वे २ग्यानदरसणमुनसफीकरकीसमझावे॥चेतनकाकरजा अदाजयाफरमाणा २।११ अस
लकरजाजोदेनाहोताकरमोका ॥ चेतनसे दलिघादो मीटिसघघोका तपकानाणारोकदखि
वायाजहारी ॥सुघसजमजमानतकरीहवघसारी॥जयाकरजासेअदासदासुघयाणा २॥तु ॥
१२। अदलन्याषकीयानायहयायातसकरचेतनकुमीलीफारक २तीरयादीलहसकर लग
णीसे अम्तीस साळघोमनदीळसकर कीघीलावणी येहसमझ दिलठसकर॥ तीझोकिर-

ठवाणा ॥१॥ तु ॥१॥ मेजाता सीवपथ करमदीयाघेरा१घोकादेमीले सगलुटा सवमेरा लक्षचोरासीके पिचमोकु अटकाया २ फीर राग द्वेष ब्रढबंदमोकु बधवाया मेपायादुप अनत जेदनहीजाणी॥ तु ॥२॥ येट्टादे वेपार बोतहेजुना मेरहाजोलपकेमाय माफक रोगुना मोयमीलेनही वकीलसचेका नुना१येजगम्मबडा बोतदीनदीनडुना।मेतो आयाव लहीए बमे करमदाणा॥ तु ॥ ३ ॥ अबपुलीकडु तकदीर पुनपरजावे१ जाणामें ज्ञस व हारुनहीन्यामे सतावीस गुणधार वकीलकानुना १ जाणे अरजकी मरज बोतमजमुना मेकीया जाकेमीलाप बोतहरपाणा १॥ तु ॥ ४ ॥ डुनदेपसासनका न्यायजेदवतावा १ मेजाना करमोकाजुलम मसोदाबनवाया तुमबीनकरे कुणन्याय अरजीमेलाया१ सुमती गुपतीछे आठगवा बुलवाया सीलअसेसर चोधरी ठसकुबुलवाणा १॥ तु ॥ ५ ॥ अबअरजी गुजरी उसवपत डुकम फरमाया१॥ प्रभुग्यान चपमासी जेज मुदाला बुलवाया ॥ सोषोले हमसग कछुनहीदावा २ चेतन झगडे जुठ पलकमेंठावा। पचप्रमाद बीषवाद गवासग आणा ॥ तु॰॥ ६ ॥ हमघर आयायेहठपत चलाई १ पायाह करजा बोत हमसे उमाई ॥ २ ॥ राच्या जोगबीलास मनवचकाया २ घाटानफानही जानाक

पीवर वादर मीरचे अथाणो ॥ रायहुडी घरनार चकाणु ॥ करकंस अजण फुल न्मखेरा अम्ग गुवार भुवार फोफरी ॥ कोला मुला फोग सागरी ॥ मुगता ऊगल फल फज- ण ॥ ननणारया चोररसोमे इमरत पापम पान पकोड़ी ॥ न्माजी सरसी न्मलीचणाकी ॥ मेथी रायरजान धणाकी ॥ अचमो चथमो अनमो न्माजी। सुवा पालको पोचराजी ॥ तोरी वेगण नीम्मी परखरी ॥ चदलोइने सादर गावर ॥ लालस्यो ज्रुणक्यो ॥ अमो- ल आमली खरबुजा न्नेबुज मतीरा ॥ मीगदीग अरस जबीरा ॥ कुरणाकेरा पींम्ख- जुरा ॥ आवारेण दाम्मि दाप बीजोरापीसता गुदसेलडी सलुणी ॥ कमलगटा आ- परोम्मचारोली ॥ सेव सीताफलनेबम्मचोरा पाटा मीठालखन्मलीबु ॥ नदी रसी- गोडा जाबु ॥ सीताफल सनमान फोपरी ॥ तेवड दताघाल काकमी ॥ लोचाथुरथ रहरदीग ॥ रकत अकोरा करमदा काला ॥ बम्मीठाळे खाम्म रसाला ॥ मेवाआण धस्या वीद २ का ॥ रूचकर जीमो मादाघीरजी ॥ अदकाघणीजेवेरका ॥ भुषामेरेन- दणा आगली पकड पकड ॥ धीरे २ चलणा ॥ ऊडरसोइ दीधीवधाइ ॥ जीमोमेरे पु- न्नन्मलीबदाइ ॥ सोनेकोथाल रुपाकोतीवेहया ॥ बेसे कुंथर परोसेमाइ॥ अवक्याके

पजीकहे ॥ सारसमझो कहुस्यादाणा २॥१३ ॥ तु॰ ईती सपूर्ण॥ अ॥ एदं० ॥
॥ महावीरस्वामीजीकीसुकमीलोप्यते ॥ श्री तसलादेराणीको मेरेनदन ॥ ढगन
मगनलाल ॥ पेलोमेरे अगन ॥ मुखमल मीसरुकी खटदीखमे ॥ १ ॥ रेसमलाल क-
सीदल पगडी ॥ तासखुले टोपी तेवम्ता ॥ पीतामरअतलसकाकुम्ता ॥ रमक ज-
मक पायघुघरवाजे ॥ सोवनमला कठीदलसाजे ॥ काना कुन्ल मरग मतवाला ॥ हा-
तसाकलाकटसुतरसाला ॥ हीरत फीरत हसकर मुपबोले ॥ माताजी मुजलेलोगोदी
गोदलीयाझवा आलसी ॥ पोडोमाहारा पुत्रपलग परपसीया॥ चणकर वाणीबोलेनीको
जाणो भोजन मागेकीको ॥ जबलग भोजन झवा गुजाई ॥ जीमोमेरे पुत्रमेवापाक
मीठाइ ॥ सोवन थालरुपाको तबयो॥ वेसे कुवर परुसेमाइ ॥ अबक्याकह्ज मनकी च-
तुराइ ॥ जीमे कुवर परुसेमाइ ॥ पेलीथाल ॥ १ ॥ गरगुदीकचनारभलेरी ॥ टीहुरेण
दलकाचरीया काजीमरीया ॥ चमचणा मुगमोठे बगास्या ॥ मेथी पटजी हलद वेसवा
रया मसुर कुलथा चीरकेरला ॥ सागर परवालो लेभलेरी ॥ गोलवम्य राइतो पतोमे ॥
मीरच मरमरी खारुपतोमे ॥ सुरण अदरक पीभरतालो ॥ बोरवरपञा । सकीराणु ॥

रायन्भोगने सीलीरोटी ॥ रामसङ्कनो कनक कनोती जनम्याचायल ॥ ठेक्याठेल रामखीचडी ॥ सेक्यापापड पानपकोमी ॥ गचधुंगारी अमलषाणो ॥ ज्ञोरसुदास्यो ॥ पाचन्भातरो कीयोपाटो ॥ चीणन्भर चुण घणाकोआटो ॥ सुंटमीरचको कीयोरेलको जीनेजीमता आवे सबम्को ॥ ठबठब पीर सकरषाणो ॥ षाम्भीया ॥ मुगताफल फं-जण ॥ पवली पोलीरवो अगाषर ॥ सतपुडी रोटीमे सकर ॥ गंदेसुगदा खटेने षारा ॥ पठरस न्भोजन जीमे वीरकढ़े मेवारीगगादीक न्भरलावोज्ञारी ॥ सबरस न्भोजन क-रोवपाणी ॥ गंगादीक न्भरपीयो पाणी ॥ पकापान काथान्भरचुनो ॥ षोव मुसालाको न्भरङ्गो ॥ चवल सुपारी जायफल हयडे ॥ सुट सुपारी दाल चीणी मुलकमुलकसी-विसलादे नंदा पुनमचदा ॥एकसो ब्तीस न्भोजनकी सुकम्नी संपुरण ॥ इति सपुरण ॥

॥ अय नमो १ रे न्भषीक प्रभुचरणा ॥ मीटजावे सकल डुषमरणारे ॥ १ ॥ न ॥ आ-दे अजीत सम्भव हीतकरणा ॥ अन्भीनदण सुमत सुधघरणारे ॥ न ॥ २ ॥ नीत पदम सुपासजीन्नचरणा ॥ चदाप्रभुजी लछन चंद्रवरणारे ॥ ३ ॥ न ॥ सुवध सीतल अ ताप डुपदरणा श्रेयासवासपुज लेवोसरणारे ॥ न ॥ ४ ॥ होयवीमल जपत न्भयटरणा

मनकी चतुराइ ॥ जिमे कुवर परूसे माइ ॥ उजी ॥ थाल ॥ २ ॥ मालपुवामुरकी-
मनी षाम्सकेरी ॥ उदपेम्नमे सकरम्नेली ॥ दइथडा चीरोजी गलेफीया ॥ घणाजी गी-
दोम्न ॥ कसमस दाणा मोती चुरम्रकवर कालाणा ॥ मसगदमेदा इमरतकुजा ॥ चा
दसइतनगणी ॥ घणापतासा मीठापारेक मीठापाक ॥ मीठागुलाब घेवर इमरतसाक
श्रीफल पुगीमेवापाक मीठाइ ॥ अदरक अम्रायची ॥ उदगुठका उदनीवारो कुरगठ-
का फीणा फीणी मगद सुवाली ॥ षाजासे पुरीमलकाणी ॥ लाडु उमद मुगकाफकि
लकम्नेसइ केसरीयानीका ॥ हातघडा घम्रमेयाका ॥ बरफीवडा घपाण्याद्रोठा ॥ रडी
रेवमी नपसीसोटा ॥ इदरसाइ लुची सकरपारा ॥ सोगाम्यागुड घाणीन्यारी ॥ तील-
पापडी ॥ तीयाडीम्राफी फुली लाडुलावो कपसी ॥ गोलपापडी मेदाकी उजली ॥ म्नर
दोणीजे उद अवटावो ॥ मायषाम्र बुरोग्टकाषो गुलाबसकरी ॥ ऊइरसोइ दीदीवदाइ
॥ जीमोमेरेपुत्र मेवा पाक मीठाइसुनेकीथाल रुपाको तीवायो ॥ मेसेकुव्रर परूसेमाइ
॥ अबक्याकज्ञ मनकी चतुराइ ॥ जीमे कुवर परूसेमाइ ॥ अब क्याकज्ञ मनकी
चतुराइ ॥ तीजी ॥ थाल ॥ ३ ॥ मुगमडोरादालतुवरनी ॥ थारपरूसे मायकुवरनी

रायभोगने सीलीरोटी ॥ रामसइकनो कनक कनोती जनम्याचावल ॥ गेक्यागेला रामखीचडी ॥ सेक्यापापड पानपकोम्भी ॥ गचधुंगारी अमलपाणो ॥ झोरसुदास्यो ॥ पाचभातरो कीयोघाटो ॥ चीणभर चुण चणाकोआटो ॥ सुंटमीरचको कीयोरेलको जीनेजीमता आवे सबम्को ॥ ठपठव पीर सकरघाणो ॥ पाम्बीया ॥ मुगताफल फं-जण ॥ पवली पोलीरवो अगाघर ॥ सतपुडी रोटीमे सकर ॥ गंदेसुगदा खटेने पारा ॥ पठरस भोजन जीमे वीरकद्दे मेतारीगगादीक भरलाघोझारी ॥ सघरस भोजन क-रोवपाणी ॥ गगादीक भरपीयो पाणी ॥ पकापान काथाभरचुनो ॥ घोव मुसालाको भरङ्नो ॥ चवल सुपारी जायफल हयडे ॥ सुट सुपारी दाल चीणी मुलकमुलकसी-तिसलादे नदा पुनमचदा ॥एकसो लवीस भोजनको सुकम्ी संपुरण ॥ इति सपुरण ॥

॥ अथ नमो १ रे भवीक प्रभुचरणा ॥ मीटजावे सकल उधमरणारे ॥१॥ न ॥ आ-दे अजीत सभव हीतकरणा ॥ अभीनदण सुमत सुधघरणारे ॥ न॥ २ ॥ नीत पदम सुपासजीनचरणा ॥ चदाप्रभुजी लछन चंद्रघरणारे ॥ ३ ॥ न ॥ सुवध सीतल अ ताप उपहरणा श्रेयासघासपुज लेवोसरणारे ॥ न ॥ ४ ॥ होयधीमल जपत भयटरणा

अनत धरमजी मेटे जपफीरणारे ॥ न ॥ ५ ॥ सत कुथ अरीकिया न्यावनीरणारे
मली मुनीसुव्रत सुमरणारे ॥ न ॥ ६ ॥ नमी नेमी पार्श्वेकरी पसुकुरणा ॥ महा-
वीरजी चरणो सीसघरणारे ॥ न ॥ ७ ॥ तीलोकरीषकहे उखसेजो वघरणातो समरो
प्रभुतारण तरणारे ॥ नमो ॥ ८ ॥ इति ॥ अथ देवस्तुतीपद ॥ दे० ॥ धरमरूपी
वणायलोनैया ॥ मानो २ सीषमेरीभैयारे ॥ घ ॥ १ ॥ सवोसका पाटया जमैया ॥ क्षि-
म्याकीमे पीललगैयारें ॥ घ ॥ २ ॥ आश्रवका उवारघुरैया ॥ करो चादुवेराग सुदै
यारे ॥ घ ॥ ३ ॥ सतगुरूजीहि चतुरषेवैया ॥ नीजतोरे ओरवीरैयारे ॥ घ ॥ ४ ॥ भ-
वोदधीसु तरणीकीजोचैया तीलोकरीषकहे धरमगहीयारे ॥ घ ॥ ५ ॥ इति ॥ अथ
ज्ञानगुणोपद ॥ दे० ॥ करोज्ञान दीपक उजवालो ॥ जीणसुमीटेव आज्ञानको कारोरे
॥ क ॥ १ ॥ पेलीतग आलसकेटालो ॥ ओमेथीकथा रसकोचाळोरे ॥ क ॥ २ ॥
करो सुगुरूकी सेवाथीसालो ॥ सुत्रसंघी सु पोलदेसी तालोरे ॥ क ॥ ३ ॥ कुमतीकले
स वती कयेवालो । जाणपणावीना कीरीया वेयालोरे ॥ क ॥ ४ ॥ तीलोक रीषकहे
ज्ञानगुणीयालो ॥ वेगीलहेगा मुगतको मालोरे ॥ इतिसपूर्ण ॥ ॥ ॥

ॐनम सिद्द ॥ देसी ॥ सुरतचरणामे ॥ श्री श्रीमंदरस्वामी ॥ थारोध्यानधरुं सिरनामी जुगामिंदर अतरजामी रा ॥ जिनंद जसधारीरे ॥ सरणसुषकारी ॥ चरणबलीहारीरा ॥ आकणी ॥जि॥स॥ जि ॥ १ ॥ बाऊसुबाऊजीसेषा॥ मेचाऊ नितमेषा ॥धन२ देषादी देषारा ॥ जि ॥ २ ॥ सुजात सयप्रभुषाउ ॥ श्रीरीखभ्रानदजी गाउ ॥ अनतविरज सीसनमाउ रा ॥ जि ॥ ३ ॥ सुरप्रभुजीहे सीवदाता ॥ वीसालधरजी विख्याता ॥ दो-भव२मे सुखसाता रा ॥ जि ॥ ४ ॥ वालेसर बजरधरजी ॥ सुणोचंद्रानदन अरजी ॥ माहारा जनम मरणदोवरजीरा ॥ जि ॥ ५ ॥ चंद्र बाहु भुजगदयाला ॥ ठकाया प्रति-पाला ॥ रोकदीना आसवरनाला रा ॥ जि ॥६॥ ईश्वरनेमीश्वरराया ॥ विरसेणसदा सु-खदाया ॥ मह्राभद्रजी कर्मह्टायारा जि ॥ ७ ॥ देवजसजीहे जसवंता ॥ अनंतविरज सीवकता ॥ उपजावे ध्यानधरवारा ॥ जि ॥ ८ ॥ विचरो म्हाविदेहेके माई ॥ प्रभुपा-चसे धनुषउचाई ॥ महेमा जगमाहे सषाईरा ॥ जि ॥ ९ ॥ प्रभु कचन वरणीकाया॥ सवभ्रवजनकेमनभ्राया॥ तिलोकारिखजी नितसिसनमायारा ॥ जी ॥१०॥ इती सपूर्ण एर्द ० ॥ पभी चोबीमे पद ॥ मान बंदे मानमेरी ॥ मतकर गुमानबे ॥ एटेक ॥ काया-

सो अथीरयार ॥ जे सो सक्षा नानवे ॥ माया सोनठे प्यारे ॥ जे सो धनुषचानवे ॥ १ ॥
मा ॥ आठपो अथीरयोमो ॥ अंजली जलजानवे ॥ हमेस छिन२ठीजे ॥ यतिको तोफा-
नवे ॥ मा ॥ २ ॥ जोबन नदी पुरजे सो ॥ तये क्यों अकम्मनवे ॥ नदीके कीनारे रुघ
अत उखम्मनवे ॥ मा ॥ ३ ॥ ओरका नुकसान करे ॥ तो कु नुकसानरे ॥ ओरकुमारे
कुीतो ॥ तो कुकुराजानवे ॥ मा ॥ ४ ॥ पाणी पीलायपाणी मीले ॥ रोटी देतोनानवे ॥
दील डखाए दील डुखेगा ॥ अेहेसानथी अहसानवे ॥ मा ॥ ५ ॥ नेकीका । दरजाने
कमीले बदी सेबदी मानवे ॥ चेन दियचेन होगा ॥ हेरानथी हेगनवे ॥ ६ ॥ तिलो-
करिष सीख देत ॥ दया दिलमे आनवे ॥ दया धरम सारधार ॥ पावेगा निरवानषे ॥
॥ मा ॥ ७ ॥ इती सपूर्ण ॥ ८ ॥ मेदीवाली वद चाकरतेरा ॥ प्रभुजी पटोलीखाइ दो-
नी मेरो ॥ दुवात मगाइ दोकलममगाइ ॥दुकागद मगाइ दउकोरो ॥ अमरापुर जागेरी-
लीषदो ॥ मसत मगन होय मेरो ॥ १ ॥ मे ॥ ज्ञानध्यान करमेल चुणाइ डरा पुहुवा-
जे पेरो ॥ सुमत सीपाइकी चोकी रखाइदो ॥ चोरने पाये कोइ गेलो ॥ २ ॥ मे ॥ पा-
चहती आरजो करवाउ ॥ मन कुरापुघारो ॥ ज्ञानखम्गलेइ ॥ पारठतारु ॥ जबलग

मुजरो मेरो ॥ ३ ॥ मे ॥ दलिचिचे दरीयावयेयअसी गेरो ॥ नाचने पाचे तीनी वेरो ॥ नानकदासरी याइ अरजहे ॥ सग ततारोनीमेरो ॥ ४ ॥ मे ॥ इती सपूर्ण ॥ एकहात सुतारी चाजे नही ॥ नही मानोतोचजाय देषो एकतर पसुप्रीतरहे नही ॥ नही मानो तोलगाय देषो ॥ वीगर बुलाया आदरनही ॥ नही मानो तो जाय देषो ॥ जीम्यापछे सचाद नही ॥ नही मानो तोषाय देषो॥चारुवातसचीहे नमानोतो अजमाय देषो इती ॥

॥ अध्यातम दसरावाकी लावणी॥चीजेदशमीदिन चीजेकरोतुम॥ज्ञानदष्टकरनरनारि येसादशरावा करलो तमगशे मीथ्यामोह रावणमारी॥ येसंसारसागरके आदर करम रुप अमचचपाणी नरमरुपपके नचरइसीमे ॥ दुषजातजहा जगप्राणी ॥ तीनदंरू त्रीकुट दीपहे लालचलका चकचणी ॥ महामोहोरल अवानामयक ॥ राक्षशराजा तसमेधणी क्लेसकेकासिराणीहे उसकी ॥ अकलदार समजोजहारी ॥ यसा० ॥ १ ॥ मीथ्यामोहणी तसकाफरजन ॥ दसमीथ्या दसआन नहे ॥ चीसआअचकी भुजाहे उसके कपटवीया को चाननहे कुबुधनाम चदरनचावेनहे ॥ कठीणकरोचपरकेथ्याही ॥ दोषण दुषण तीनसल तरसलो यदोनुइ उसकेनाई ॥ सजल संभुक चदरनचासुता ॥ कलुप

कआयो ऊसीयारी ॥ य०, २ ॥ ज्ञानरुप सुरज हसपम्गकु॥ साधनकी दीलमे आई॥
मातापिताका ज्ञकमनमाना रक्षावोउसट तारणमाई ॥ज्ञसवपतमे रायराजगरहे ॥ दश
लष्यण दशरथ रायासमरभावना राणीकोसल्पा ॥ धरमरामपुतर जाया समगत सुमी-
वराराणीदुसरीसतलष्मणकीमहेतारी॥य०।३॥सुमतीसीतासेघरमरामका॥बोतबातसेव्या
वनयाएकरोजषोपीवाज्ञकमसे॥तीनुदिसजमेवनमेगया ॥सतलषमणषोपम्गपकम्कर ॥
संजल सबुकका सीरघाया ॥ कबुध चंदरनघाकही पतीस पर उपण ज्ञसलाधाया ॥
सतलषमणतषचढे सामने उणतीनुकु लीयामारी ॥ य ॥ ४ ॥ मीथ्यामोह रावणकेपा
सवो समती सीताकी बम्हइ ॥ कीरेबोत तनलालचवसवाही चलआया लकासाइ ॥
ज्ञलषीयाकानादसुणाके ॥ सुमती सीताकीकरी चोरी ॥ रामलक्षमण जवजाना ज्ञेदये॥
सोचेअनलानी दोरी ॥ झुटसाहा सकतउष्ठी ॥ उसकी सतलक्षमणनेकरी षुवारी ॥ ए ॥
॥ ५ ॥ सतोस सुग्रीव जव भयापक्षपर ॥ बोतभुप ज्ञसकीसगे ॥ जामवानने मनला-
दीक॥ समननाम हणुमतअगे ॥ षबरलायावो सुमतसीताकी ॥ बोतजोरावर दुनीयामे
दानसील तप ज्ञावकी सन्या ॥ लेकेगये लकाठामे ॥ मीथ्यारावण सुणीवात येकीबी

आपकी ठ्ठसीयारी ॥ य० ॥ ६ ॥ चारकषायराक्षसदलभारी ॥ कुध्यानधजाके फरराबे अपकीरतीका वाजेनगारा धीकथाका कम्धागाषे ॥ कुसीलरथमे वेठाछुसीयारी ॥ सावधीसन सस्तरधारे॥रागद्वेषठमराष जोगघर ॥ सद्वेज सुभटसे नद्दोद्दारे ॥ नयने जासक्का यघोसदे ॥ रामआये चढतीणघारी ॥ य ॥ ७ ॥ सतलक्ष्मणतब धीरज धनुषले वेटेशीलरथके माइ ॥ अरु परुजब मीलेआणकर ॥ मीथ्यारावणकु रीसआई अग्यान चक्रमद्या छछमणपर ॥ जोरचलानाही लीगारे ॥ ग्यानचक्र जबमेलाहरीने ॥ येकद ममे रावणमारे ॥ रामलक्ष्मणकी जीतभईतब ॥ जगमेभयाजेजे भारी ॥ य ॥ ८ ॥ सुमती सीताकु लेकरआये ॥ मुक्तअजुध्या राजकरे ॥ जनम मरणडपसकल मीटजद्दा रामराजासो जगमे भरे ॥ समत ठगणीसे साल ३ ८ का पेठ आवोरीके माइ ॥ वीजेदशमीदीन कीधी लाषणी ॥ समक्त दारके दीलभाइ ॥ तीलोकरीषजी कद्देसत रामायनधरम परब करो सुखकारी ॥ य ॥ ९ ॥ इवी सपूर्ण ॥ ॥ ॥

सघईया ॥३ १ ॥ सचेत मयर्षषिम्ह ॥ पारेवासोकरे तन ॥ जंबूदीपमे नमाबे ॥ जीसयतो पीरें ॥ जल बिंडु मधुकर ॥ तेठसरसवसम ॥ षाठएक कनूकम्हे ॥ षस २ ठाणीरें ॥

सवैया
२६७।

प्रतेक वनसपती ॥ असंख्यात गुणाकर ॥ साधारणसुइ अग्र अनंत प्रमाणीयें ॥ त्रस-
देह भिन भिन ॥ केवदे तिलोक चिंन ॥ निज प्राण समजाण ॥ अनुकपा आणीयें ॥
॥ १ ॥ बारे सहस्र आवसे चोविस एक मोरतमे ॥ जनम मरण प्रथवीपाणी तेववा-
यमे ॥ सान्नेपेसठ सब विस करेनिगोदीया ॥ वतिस हजार सो प्रतेकहरी कायमे ॥
बेंद्रीमाहि असी सातेंद्री माहिमणहोए ॥ चोंद्रीमे चालीस सख्या । कही सुत्ररायमे॥
असनी चोविससनी एक भव होए हद ॥ केवहे तिलोकरिष ॥ घींमसोन जायमे ॥२॥
असाढव्भाद्रव मास कार्तिक पुनम चेत॥असजाइचारपह॥उरमेविचारीया॥श्रावण आ-
सोजवद ॥ अगण वेशाखधुर ॥ पढवा चारूहीवेद ॥ आठयसंभारीयो ॥ प्रातका-
ल मध्यदिन ॥ सझा और मध्यरात ॥ असजाइ चार नित्त ॥ दोदोघमी टारीये एव
चारे असजाइ ॥ कही चोथा ठाणा माही ॥ ज्ञानआराध कजन ॥ सुत्रपाठवारीयो ॥३ ॥
आकासकी दश असजाई फरमाई प्रभु ॥ उल्कापात दिशी दाह ॥ गाजबिज जाणी
ए ॥ कम्के गगन वालबीज धब्र जक्खेन ॥ धुवर स्याम स्वेत ॥ रजघातपद चाणीए॥
दशाऊदारिकफूनि ॥ हाड मांस रुध्ररसी ॥ भृष्टासम साण चब्र ॥ रविग्रहण जाणीए ॥

राजमृत्यु विग्रेसवी मिलके पतिशएह ॥ केतहे तिलोकरीष ॥ प्रभूषेण मानीए ॥ ४ ॥ जगमे सरजीषनअमी पचनषकारमतरषा र१जपियेजी षिणनभूलाइये सोबतउठत मुष जावत प्रदेश माहि ॥ रणमे भुजग सिंघ षेषन मराईये ॥ सकट नपडे कोए । भुतव्यतरनहीछले ॥ जलेनअगन न्नघोदधि तरजाईए ॥ ताकुकहाडर सुरलो-कहे विनोदीलाल ॥ जोवेनवकारमतरमनवचधाईए ॥ १ ॥ हिंसाके करइयामुख-झुठकेघोलईया ॥ परघनकेहरईया करूणानजाकेअगहे ॥ रयणकेषवइया मधुपानके पिवईया ॥कुमीसाषकेभरैया ॥ कठोरआतिहीयाहे ॥ नरककेजवईया॥ परनारकेरमइया॥ कदमुलकेभपइया ॥ जानेओरपापकीयाहे ॥ तेहीतरजातएकछिनएकमे विनोदिलाल ॥ जोवेनवकारमतरमनषचषाइर्ये ॥ २ ॥ कोइकेबलदेवताको ॥ भूतप्रेतइष्टनको ॥ कोइ-केषलचक्रिमडिदेषषेतरपालको ॥ कोइकेषलगायषेको ॥ कोइकेषजायषेको ॥ कोइके ठधारको ॥ कोइकेषललरवेको ॥ कोइकेबलमरवेको ॥ कोइकेषलमारवेको ॥ षाघहथी यारको ॥ कहेतविनोदिलाल ॥ जपोनवकारमाल ॥ मेरेतोअनतपलमन्ननषकारको ॥ ३ ॥ कोइकेतोधनहेजीरूपैयानेमहोरघणी ॥ कोइकेतोदेशीयेजीकचनभ्रमरहे ॥ कोइ-

प्रतेक वनसपती ॥ असंख्यात गुणाकर ॥ साधारणसुद्ध अग्र अनंत प्रमाणीयें ॥ त्रस-
देह भिंन भिंन ॥ केतहे तिलोक चिंन ॥ निज प्राण समजाण ॥ अनुकपा आणीयें ॥
॥ १ ॥ बारे सहश्र आठसे चोविस एक मोरतमे ॥ जनम मरण प्रथ्वीपाणी तेउवा-
यमे ॥ साम्पेसठ सग विस करेनिगोदीया ॥ बतिस हजार सो प्रतेकहरी कायमे ॥
पंद्रीमांहि असी साठतेंद्री माहिमणहोए ॥ चोंद्रीमे चालीस सख्या । कही सुत्रायमे॥
असनी चोविससनी एक भव होए हद ॥ केतहे तिलोकारिष ॥ धर्मसोन जायमे ॥२॥
असाढभाद्रव मास कार्तिक पुनम चेत॥असजाइचारपद्द॥उरमेविचारीया॥श्रावण आ-
सोजवद ॥ अगण वेशाखधुर ॥ पडवा चारूहीवेद ॥ आठयसंभारीयो ॥ प्रातका-
ल मध्यदिन ॥ सझा और मध्यरात ॥ असजाइ चार निच ॥ दोदोघमी टारीये एव
बारे असजाइ ॥ कही चोथा ठाणा माही ॥ ज्ञानआराध कजन ॥ सुत्रपाठवारीयो ॥३ ॥
आकासकी दश असजाई फरमाई प्रभु ॥ उल्कापात दिशी दाह ॥ गाजविज जाणी
ए ॥ कम्के गगन वालबीज चद्र जक्षचेन ॥ धुवर स्याम स्वेत ॥ रजघातपद्द चाणीए॥
दशउदारिकफूनि ॥ हाड मास रूधरसी ॥ भूष्णसम साण चद्र ॥ रविग्रहण गणीए ॥

णपर गुणढांकेछलवढे ॥ केतहे तिलोकलोच ॥ ग्रसनाथ धारेते ॥ २ ॥ क्रोधघटजाएए-
क षिम्याकेपम्नगग्रहे ॥ मानघटजातन्नाथ विनेगुणधारेते कपट घटतसोतो सरछसन्ना
थकीय ॥ क्षोन्नघटजात एक। ग्रसना निवारेते ॥ हासघट जात मुषमुनकरछेततद ।
नयघटजातएक धिरजता धारेते ॥ केतहेतिलोकरिष ॥ ज्ञानसोप्रमाद किया किमत
घटवएक हिमवते हारेते ॥ ३ ॥ ठगेमतिपथीजन । शंसार अटषीधन ॥ कायारूपनग
रीमे ॥ रहेकामचोरहे ॥ जीवहे षटाउपामे ॥ आपकरषासकीयो ॥ ठगणीहे पाचयां
को मुछकमे सोरहे ॥ ज्ञानादिकगुणरूप ॥ रतन अमोछधर्म ॥ ठगेतोलेजाएलुट ।
मिथ्यातमचोरहे ॥ कहेतिलोक सतगुरूचोकीदारकहे॥ धाररेषटाठ ठगेमातिहोए न्नोर-
हे ॥ ४ ॥ रीधषतवेहो जाके। समतासदाहीमन ममतानराषे सोतो ॥ कोईसेनलरते ॥
हरषव सतदेष ॥ रोम २ ऊग्रसत ॥ सोमअ्रष्टवेण ॥ मुषसे उचरते ॥ सकतिप्राणदान
देत ॥ अहकारतज ॥ आतरत रूदरगेन ॥ धरमादिकरते केतहेतिलोक चलो हारी ॥
धाकीधारयार ॥ धनधाकी मातकूंसो जायोपसानारते ॥ १५ ॥ ॥
॥ एर्द० अथ श्री षर्द्धमान स्वामीनो दसोटणलीप्यते ॥ श्रीषर्द्धमान जीनेसरकेरो ।

केरतनमाळ ॥ कोइहिरामोतिलाल ॥ कोइकेवसतुसार ॥ दरवअपारहे कहतविनोदीला-
ल॥जपोनवकारमाल ॥ मेरेतोअपुटधनमन्ननवकारहे ॥ ४॥ अरिहतजीकेजपेअष्टकर्मको
विनासहोत॥सिधाजिकेजपेसेविसीध्दपदपाइये॥आचारजजपेसेतिआतमासरूपसुझे॥
उपाध्यायजपेसेतिउचपदपाइये॥साधुजिकेजपेसीवमारगवतायदेत॥ईहलोकपरलोकअ
तिसुपपाइए॥कहेतविनोदिलाल॥जपोनवकारमाळ॥जाकेजापजप्यासेती॥सदासुषपाइये
॥ ५ ॥ दोहा॥असुभकरमकेहरणकु ॥ मिंत्रवडेनवकार ॥ वाणीदुवादशअगमे ॥
सोघलोपोततसार ॥ १ ॥ श्री ॥ छे ॥ श्रीअरिहतंभगवत बारेगुणवंत ॥ सिरीसिध्द
राजमुक्तअष्टगुण धारीहे ॥ आचारजसोतोगुणछतिस विराजमान ॥ पचीसगुणउप
झाय ॥ ज्ञानकेभंडारीहे ॥ साधुसाधे आतमासो । सताविस गुणजुक्त ॥ सबमिलएक
सतआठविस्तारीहे ॥ कहेत तिलोकरिप ॥ मनवचकायकरी ॥ सदाहितगतेसुर वंद-
नाहमारीहे ॥ १ ॥ ज्ञानचधे ग्यानी जोग अनुभोप्रकासभए ॥ समगतवढेएक निश्चल
ताधारेते ॥ सजमवढत सोतो ॥ आश्रवतजतजेतो ॥ तपस्यावधत तनममत निवारेते॥
कलेशावढतटेक ॥ करतनवाक्षेगम ॥ अहकारचडे पराहिणताके भारेते ॥ आपके ओग-

णने छणनेत्याआवे ॥ तेथातो कलोक्योनहीआवे ॥ १० । जीमणने छणनेत्पाजावे ॥ भोजनधारो कीणनेलागे ॥ ले लोटीने छागेजागे ॥ सरसाभोजन आदरसारो कुणनीरभागीकरे नकारो । ११ । जीमणआया अधीक उमाया ॥ पक्तीबध बेठासमभाया गगोदक कचनकी झारी॥बेठाजीमणसब हुसीयारी १२ जबलग भोजन होवे त्यारी ॥ मेवा परुसे सुदरनारी॥पेलीकीसमसदाष मनका।केलाकतली देसकोकनका।१३।पींमषजुर गुठलीकरीत्यारी काजुकली बदामसुप्यारी ॥ चीरोजीअजी पीसताभेरा ॥ अगुर दाम्म षोपरागहेरा । १४ । चटकाकरके सकरमीलाइ ॥ भरभुठा मेलेउमाइ ॥रुपापाट सोवनकीथाली ॥ पकवानकी मनधाराचाली । १५ ॥ लाडु सीहकेसत्यानीकामोती चुर चोगणीकानीका ॥ चुन्या चुरमा लाडुदालका ॥मगद मनोहर रायसालका ॥ ॥ १६ ॥ बेसणओर बाटीकाजाणो॥ मुगदोल्का सरस वषाणो॥ सकरचासणी उम्दा दाळ्का । जुषारमकीसो तातकालका । १७ । कसारकीटीया जुषारधाणीका ॥ बतीसास दाणासाणीका चावल ओर ओलाकाभारीराजगरा तीलीकाजदारी ।१८। सुंठ गुदका ओर पीस्ताइ बदामचीरोजी सकर मीलाइ॥ इत्यादीक चावन मकाराकबलग ना-

कहुदीसोठणजाषजलेरो सीध्दारथनुप कुलमे आया त्रसलादे राणीजी जाया ॥ १ ॥ चे-
तसुदी तेरसतोथजाया ॥ छप कुमारी मंगलगाया ॥ इद्रमीलकर मोछवकीयो ॥ ग ी-
रजीनेश्वर नामजवीयो ॥ २ ॥ दीन उगा नृपमोछवकीना। जाचकलोक अजाचककी-
ना तीजे दीन चदसुरज देषावे छटे धीनसो रातजगावे ॥ ३ ॥ इग्यारमेदीनेअसुची-
टाले पारमेदीन भोजन तजमाले॥ भोजनसाला अधीक षीसाला॥ चीत्रषी चित्री सुर-
गरसाला ॥ ४ ॥ जरी जरतार चवरषासोषे ॥ मुकाफल जुमक मनमोवे ॥ वनातक
नात मुसमलकीचगी ॥ सोदेत सुदर नष२ रगी ॥ ५ ॥ षाजोट चोकी पाट मगाया-
थाल सुवरण रुपाकीलाया रतनकटोरी वाटकीछाल्या ॥ मादे भोजनबहुषीव घाल्या।
॥ ६ ॥आयाक्षत्री राजागाजा ॥ अतीआम्बर षाजागाजा । केइकहाथी केइकघोडा ।
पालखी आगल पादलदोडा ॥ ७ ॥ केइक दुदाला काकडमाला ॥ दीसेकेसजमरजी
मकाला ॥ जीमणनेआवे तजमाला ॥ केइक सुसरानेकेइसाला ॥ ८ ॥ केइक जमा-
इमाहा जोषाला ॥ नष २ भुषण रुपरसाला ॥ केइकजाइ सामासा मामा दोयता
भ्यादीपासा ॥ ९ ॥ ज्ञीसकुलकानेत्याक्षत्री ॥ बुलापाया देइमंगलपत्री ॥ जीम-

मेत्रसदाइ । २९ । अबफळ भात साबआबकी ॥ जाबु लींबु कतली जामकी ॥ सी-
ताफल जामफलषम्भुजा ॥ हरम्न काकमी ओर तरबुजा । ३० ॥पीरणीचकोत अरुदे-
सीकेळ ॥ जबीर बीजोरा आपरोट मेळा फुटकाचरीकाचराम्यारी । फणसरतालु त-
लनात्यारी ॥ ३१ ॥ काले पोढाकी साकी गाठा काट ढीलकर मेल्यासाग टीमरु ॥
करोंदा पाकाअलेला ॥ सरस पुजुरा धामण्यामेला ॥ ३२ ॥कवीठ आवली पेमजीबोरा
॥ श्रीफळ काचा मीठाघणेरा॥गुदाफुदारायणआदी ॥नानावीध फलवातजपीमी॥३३ ॥
अपभोजनकी भइतइयारी कलुएकनाम सुणोनरनारी ॥ अतलसगादीबाजोठ सुरगीथा-
लसुवरण हीरा जडीचगी ॥३४॥ रतन कचोला नानी कटोरी॥माजघोयपुचीकरीकोरीग-
वमेदाकी रोटीधोळी मीठीरोटी पुरणपोली॥३५॥काटीकनक कीरोटीछोटी॥दुपमी सत-
पुम्भिसाठाकी मोटी ॥ घाटी वाफल्या फलकागोला रेल मालचा दसमी ओळा ॥३६॥
चरपरोपुरण रोटीपीरकी गुदकिरोटी पीनानीरकी ॥ पोतघाया कोरमाकी पुडी ॥ मुग
मोठ हरवराकीसमी ॥ ३७ ॥ नुणमीरच भरगरम मुसाला ॥ षाषरातलमा रोटी रसाला
फीका मीठा चोषा सुगधी ॥ भावकेसरचा अधीक सुगंधी ॥ ३८ ॥ रामषीचमी मेवा

मकडुमेन्यारा ॥ १ए ॥ ड्रपेमा कुवाका ताजा । घास कोमळ पांडने पाजा ॥ चरयरा गाठ्या सकरपारा दुवराषम्बा माही ठमारा ॥ २० । परफी केसरीया पीसता-इ ॥ कीनीमेवा अधीक मोलाइ ॥ सरसजलेबी गरमागरमी ठोमे नही कोइ सरमासरमी । २१ । कलाकदमेवा झाका ॥ होयखुसी देखी सवराजा ॥ असल चीरोजी सब सीगोमा ॥ गवाजर२ मेलीगोमा ॥ २३ ॥ सुभ्रफेणीओर चीरोजीदाणा ॥ सावसाइकी अधीक रसाया ॥ अकवरा ओर अदरकन्नाणा ॥ नुकतीदाणा मघदरसाणा । २४ । घेवर सरस पान्कार्फीका । मुरकी पतासा पेठानीका ॥ दइथाडा ॥ ओर सोटने षुरमा ॥ घी सकर मेवाका चुरमा ॥ २५ ॥ दराबो दोठा पुरी कचोरी ॥ मालपुवा ओररेवमी सोरी ॥ सारो सागुनो मीठीसुवाली ॥ वेसकीपापमी सकरघाली ॥ २६ ॥ मुगफलीका लोटजलेरा मोणदइने कीनागहेरा इदर इसा गुजागणीधामे ॥ लुची लापसी चादसाइममे । २७ ॥ गुडघाणी गुदपाकअमंका ॥ उघओटाइ मेल्याथका ॥ पारीसेष ओरपकादाळ ॥ गुलगुलापडी भुजा सुंधीसाल ॥ २८ ॥ कुडला पुडला अपरषणाइ ॥ कलेता दालआधीक पधजाइ ॥ दहीकी जावणीमेलीआइ ॥ पात्र मीठाको

छपाणी बगारचायता ॥ छनीगध घगारीभारी ॥ लुण मीरच राइ ढमकारी ॥ ४८ ॥
गुद्दीको सीपरण मेथीदाणा ॥ सकरसामळ अमलषाणा ॥ षाराषमी ढळषमी भलेरी ॥
पेठाषमी ओरचीणी मज्जतेरी ॥ ४९ ॥ पापमसमीषीचा घमीजाणो ॥ पतळापतोमकी
अधीकरसाणो ॥ पाठषमी पतोमकुडलाइ ॥ रसोळावो दक्षण माइ ॥ ५० ॥ अमृत्योर
सको ढमकास्यो मुरयो आंबाको सुधास्यो करपटामीला चणाकरेला टीमेरी ओरका
चाकोला ॥ ५१ ॥ नीलाषेर केरषडबुजा फुटकाकडी फोगतरबुजा कालींगडा ओरागि-
लकीतरोई बगाकाचरी गुईयातोइ ॥ ५२ ॥ भींडाझीमा कोट कीकोमा षेलरा टीड-
सी करमदाओडा कोराचकी ओरतुमडा सरजणाकाचरा ओरक्षुमडा ॥ ५३ ॥ वालोल
फली चवलाकी भारी गवारफली सागरी ढमकारी कमलगटा षेगणरतालु स-
करकद मुलापोमलु॥५४॥सुवाषायलो पाटीभाजी मेथीचणाबथुवाकीताजी अमलमुला
ओरओरचदजोई पालकोटीमहेपोचोजोइ ॥ ५५ ॥ अबाडीकरडी अजमाकी ळास्यो
लुण्यो पुषामसमाकी घोड्यो घोलपो कलीजाणो चीपाडीछीक चुकाकोमाणो ॥ ५६ ॥
फादीसेया ओरपरजणकी सरुपमवा ओरसीषवणकी चोळीराइ राइजगराकी करज-

कीसाधी ॥ मुगतुयर मीलमाकेईराधी ॥ दुधराषर्मीथुलीढीली काठीधुली जाधरीगोली
॥ ३९ ॥ घिरवगायको नवोतपाई घीलोमी मुपञ्चामी नमाई ॥ लोलोकरता मुंनेथा
के ॥ कुणजोराधर ओफीरहाके ॥ ४० ॥ सकरवुरो गालनेमीसरी ॥ काकवमेलणरच
नवीसरी ॥ सेवपीचञ्चोर षीरषणाइ ॥ षीचमी घुघरीरावसवाइ ॥ ४१ ॥ षीचो पापम
मुगद्यम्दका चणावटला तुयरवीव२का ॥ सेक्यातक्षीयापलामोटा घालीपींठ बाजरी-
कोरोटा ॥ ४२ ॥ मकीमाल कगुणी जवजाणी ॥ रालोघरेटी कुलंथ वपाणी ॥ जालरो-
तीवमे सामोजाणो ॥ कोदराघेरेटी रोढवपाणो ॥ ४३ करचतुराइम्नस्थामुसाला ॥ धान
चोवीसकी जीनसवणाइ ॥ रसाइदारकेइदसका । भोजनकच्चासो जाणरेसका ॥ ४४ ॥
मीरची पकोमी चरमरीभावे ॥ वेलेणयहो वम्नवम्न अरवीआवे ॥ दाल मुगञ्चोर मोठ
मसुरकी । उम्द चणावटालातुयर बीदवोदकी ॥ ४५ ॥ पतेलीकाठी सीस घातलीषा
मुसाला नानाबीध भलीया ॥ कमीगम छमचुरकी जाणो ॥ ञ्चाचोला भाजीकोपण-
माणो ॥ ४६ ॥ बेलामनकारेलमाचुरकी ॥ञामटीभमरत्यो भाजीभुरकी पडीकोलकी
ओरकोरमी ॥ नीपजाइ भतीचतुरगोरमी ॥ ४७ ॥ दापनमी भाजीकोरायतो ॥ अम

हलवे२पुटेपुटे ॥ गोम्हायदेइने ञ्चे ॥ ६७ ॥ पेठनराणा वंगमतगा ॥ सज्ञअघाणा गे
रू२मगा ॥ सघलाहलवे२चाले ॥ वतायलाफीर कोइनेहाले ॥ ६८ ॥ चोळेधीरे २ चा-
लोम्नोजनजीमतीम घेटेयालो ॥ एसीरीते चलकरआया ॥ जाजमगादी तकीया घीठाया
॥ ६९ ॥ वीनअहारको कीयोषषाणो ॥ मुखसोधन मुषवास सुहाणो ॥ जावंत्री ओ
र लवग सुपारी ॥ दालचणी एलायचीप्यारी ॥ ७० ॥ कालीमीरच सुघसवाधी ॥ क
वाचचीणी षीपलहरेव्याधी ॥ कपुरसुधा सीतकथो चुनो ॥ नागरवेलीको दलदुनो॥७१॥
मीम्ले षावक देवेआइ ॥ लेवे सवत्राचीत हरषाइ ॥ ठीम्बीपीपरसरसो अजमो ॥ चु
रणसवादी अहारदजमो ॥ ७२ ॥ पहेराइ फूलनकोमाला ॥ देवेपचरगी जरीदुसाला
केइने दुपटा वरजोम्नी ॥ केइनेचीरा पागपगोडी ॥ ७३ ॥ पचपोसागपेरावेचगी ॥ जा-
मो अगरषी वरपचरगी ॥ दीवीमदील वालावदी ॥ देषत तनमनहोवे आणदी ॥ ७४॥
केइके कठी हारजदीना ॥ केइने कुडल अर्धाकनधीना ॥ वाजुषध अगुठीचगी ॥ सीरे२
पेचदीवी मनरगी ॥ ७५ ॥ हाथी घोम्ने रथ पालषी । केइनेदीना गामनालकी जथाजोग
सघने सनमाने ॥ दुषादसमे दीनमोव्वगाने ॥ ७६ ॥ सीधारथनूप सज्ञमेवोले ॥ कुवर-

म्हे थोरहे सरवारी ॥ ५७ ॥ चणागेलपा दीगकीनाजी जीमेलोका जम्मजम्राजी कु-
षी सुषी थोरघणेरी काहालग नामकह्मदेरी ॥ ५८ लोजीश्राव आमलोकेरी गरममु-
साले धुगारांगदेरी चटणी कोथमीरकीजाणो कर्षाठकी आबकी अधीकरसाणो ॥५९॥
श्रीफळी तली लुणमीरचकी दृषरी मोडमासरसु चीचकी गरममसालाकी केइचटणी
भातरकी षटणी ढटणी ॥ ६० ॥ अथाणो बली थाय षषाणो लीवुमीरची आदोजा-
णो षसोता थोर भीमीतरोइ गलिकीबालोबकलीकोजोइ ॥ ६१ ॥ चवलाषटलामे
थी दाणाको करमदा पारककरे चणाको गषारफळी सुरजणाकीजाणो भातचोरासी
अधीकरसाणो ॥ ६२ ॥ पुम्रीयाजर १ आगेमेले जीमणवालालेताइठेले बालक बुढातरु-
णारोगी बणीरसोइ सो सबजोगी ॥ ६३ ॥ नामनआवे पुराजीणसु थोडीकरचनाकही
मेतीणसु जीमेसवला ज्ञसे ज्ञसे किंचतमातर कोइनरोसे ॥ ६४ ॥ हमनपलसी कोइ
नषोले रषोनदीकोइ भालेभोले जीमतारघाप्यापुरा एक कवो लेवणने नहीसुरा ॥६५
सवलाबोले नाजी नाजी कोइ नबोले मेळोहाजी परुसणवाळा अधीकमनावे जीमण
वाळा करम्भावे ॥ ६६ ॥ मेल्लेसुज सुगधीकपाणी ॥ हातधोया सबहटअपकाणी ॥

नहीवधाणो ॥ ८६ ॥ एसा भोजनवार अनंती । कीनापणन्नसनान शुझंति ॥ इणमे सं-
कारचनमानो केवलज्ञानीकी एहवाणो ॥ ८७ ॥ इमजाणी तप जप आदरजो ॥ चीत
मे समताभावकरजो अनुभव भ्यांनदसारस असो सवातरपतरहे सो पदपासो ॥
॥ ८८ ॥ अघको ओछो जोभीयोकोई ॥ मीछमी डुकम् तसहोइ ॥ सुत्रवचन परमाण
सवाझापालेसोघन २ जगमाइ ॥ ८९ ॥ इतीदसोढणमहावीर सामीजीको संपुर्ण ॥
ॐनमः सिद्धं ॥ जेजेजेजेयोछो जिनवरकी ॥ जोआसाअमर सीवघरकी ॥ जे० ॥ १ ॥
जेसीकाति शशो दिनकरकी भनाआधिक भभुके शरीरकी ॥ जे० ॥२ ॥ जेसी खुसबो-
ही अगर तगरकी ॥ जिणसे सुगघसास मनोहरकीजे० ३जेसीमिठी म्हांहे सकरकी।
वाणी अनतगुणी मधुरकी । जे० ॥४॥ देहीईंदर सुर अनुचरकी ॥ सोभा अनुप जिन
दजीका नुरकी ॥ जे० ॥ ५ ॥ जेसीचाल मराल गजवरकी ॥ तिणसुगमणगति सुं-
दरकीजे० ॥ ६ ॥ चिंताभ्राणीहे भवसागरकी ॥ सवछरिदान इगतजागरकी ॥ जे०।
॥ ७ ॥ घातकरघा करमरुपी अरकी। क्रियाघारीसजम सवरकी । जे० ॥ ८ ॥ के-
वलग्यानदिसा जयफरकी ॥ समोसरणरचना अमरकी ॥ जे० ॥ए॥ करुणा आणीहे

नामथापणनेपोओ ॥ जीणदीन राणीकुषे आयातीणदीनथी दलवल सवाया ॥ ७७ ॥ दीन१वुधीकारण मानो ॥ षृधमान कुवरइमठानो ॥ सज्जसुणी हरषाणागोती नामजथा गुणकुडलमोती ॥ ७८ ॥ घर२मगळमालवधावे गोरडीया मीलमगलगावे ॥ तीरकीड ती रकीम तासावाजे ॥ धिधींधीधी नोबतगाजे ॥ ७९ ॥ धुधु धपमप मादलरगी कुणकुण२करे सारगी झालरवाजे झणझणझणझण ॥ घुघरी घमकेखण २ षणषण ॥ ८० ॥ तुतुनोकरे तुन१तुनतुन ॥ करेतालोकर ठुनठुनन्ननभ्न ॥ घणणण घटानाद उचारे नरसीगो धुधुधुधुकारे ॥ ८१ ॥ घनिकट २ वजेनगारा ॥ इत्यादीकगुण पचासप्रकारा ॥ नाचेपावर सजामजारी दीयोदीसोठण हरषअपारी ॥ ८२ ॥ तीलोकरीषक्हे प्रभु पुनआरी ॥ नामलीयाहरषे नरनारी । जो कोइ दीसोठणकेगावे षावेनहीतो मनहरषावे ॥ ८३ श्रीजीनराजकी कथावीम्तारे करे अनुमोदन प्रेमअपारे ॥ तोपणनीजर पुनहेआरी ॥ इमजाणी सुणजो नरनारी ॥ ८४ ॥ सवत ॥ १९ ॥ सेसेतीससाळे । अमदनगर दक्षण षरसाळे ॥ भाद्रवक्रसन चवदसजाणो । वारसुक्र सीवजोग वषाणो ॥ ८५ ॥ श्रीवृधमान दीसोठणकेरी ॥ कीनीकवीता एहुनलेरी ॥ श्रीजीनपुन प्रसंसाजाणो सुणकर आरम्

दशविध धरमको हारहीयपेरजो दानमान कमदार्थेपेरो ज० ॥ ८ ॥ बियावचविटी दसञ्चगलीमे पेरलो किरीयाको कंदोरो थेपेरो ज० ॥ ९ ॥ सजायको ढपलेवो जाजलो भजनकी प्रभुगुण क्षाल षूबगावो ज० ॥ १० ॥ धरमकुटम संग सुमत सोहागण हिलमिलेगेर पुष खेलोज० ॥ ११ ॥ ज्ञायकीज्ञागथे घोट घोट पिवजो सतोसकी सकर मेलावों ज० ॥ १२ ॥ जिनवाणी पाणीवेराग रग घोळने उपदेशकी पिचरकी जरमारो ज० ॥ १३ ॥ विनयविवेकका थेवाजारे वजावजो नेमकानिसाणथे फररावो त० ध० ॥ १४ ॥ सवरकी सुखमीने गोळकरो ग्यानको गेरकाढोचारातिरथ ज० ॥ १५ ॥ येसोफाग रमोसालथे दयाकी दूकानमाम्सेगो ज० ॥ १६ ॥ ज्ञारीकरमा जाकेदापनही आवसी हलुकरमी हरषावे ज० य० ॥ १७ ॥ नही मानसोवो आगेपसतावसो सतगुरुग्यांन षतावे ज० ध० ॥ १८ ॥ उगणीसे सेतिस फागणाविदमे विजबुधवार दिनआयो ज० ॥ १९ ॥ तिलोकरिखकहे मिरजगाममे धरमको फागसरायो ज० य० ॥ २० ॥ इति धरमफाग उपदेशोसंपूर्ण ॥ ॥ ॥

॥ एर्द० ॥ अथ धनाजीकी लावणी ॥ काकंदी नगरीजञी सरे जितसत्रु दीहाराए

जीव अपरकी ॥ उपदेशनोयदिया पथरकी ॥ जे० ॥ १० ॥ काया माया अथीरहे सुरकी ॥ कोनागेनाति ओळिथीत नरकी । जे० ॥ ११ ॥ परथम थापनाकरि गणधरकी ॥ पछेचार तिरथगुणीवरकी ॥ जे० ॥ १२ ॥ सेवकरे गावेमोक्ष नगरकी ॥ पदवि सिद्धअमर अजरकी ॥ जे० ॥ १३ ॥ एवतारेषजोमहाराजमदेरकी ॥ बताई किर्तिमुष तिर्थंकरकी । जे० ॥ १४ ॥ तिओकारिसकहे धनउण नरकी सेवा भक्ति करे दिलहरकी ॥ जेजे० ॥ १५ ॥ इतिसपूर्णम् ॥ ॥ ॥

पसोखेळजो होरेयसोखेलजोरे फागसदासुखपावो यसोखेलजो धरमकोवाग फूलोसमगत सरधा विरतिकोफल नादकरे भविकायसो० ॥१॥ कूमतिहोळकाने दिजोरे मगालने करमकी धुळभवो भ य० ॥ २॥ समता सरोवरमेस्नानकरो सुगणा । पापको मेळपखालोभ० ॥ ३ ॥ धिरजको धोतियो थेपेरोघणा प्रेमसु जपणा कोजामो थेपेरो भ०। य० ॥ ४ ॥ पर्मारथ पागडी तपोगको उपरणी सीलकोसिरपेच थेचाधोभवि० य० ॥ ॥ ५ ॥ क्षिम्यारुप मेंगो मेलोमाटो घाधो याधोसाचको तपरुप तुररो झुकाधो भ० ॥ ॥ ६ ॥ करुणाका कुडल चोकसीका चोकभ भक्तिकी भमरकमी पेरो भ० ॥ ७ ॥

जोम्ने इमकहे सरे मतमेलोनीराधाररे थेसुणोपीतमजी सजममतलीजो म्हानेगे-
मने थे सुणो कथरजी सजममतलीजोमादानेगेडने थे ठमेलामे ठनीकामण्यासरे ठनी-
करे पुकार थे मतगेडोसाए वासरे मेगेअवलानार सजमलेअतीदोयलोसरे चलणो-
पालाधाररे थे ॥ ९ ॥ घरआव धनोकहेसरे आज्ञादो मोरीमाय जनमेसो जीवेनहीस-
रे इमनास्यो भगवान आज्ञादो मोरीमातजी सरे पीणलापीणीजाए हेतुं सुणमोरी
जरणी अज्ञादेवोतोसजम आदरो ॥ थे ॥ १० ॥ अज्ञादीदी मातजीसरे करमोटे मडा-
ण जाएसुप्या जीनवरने सरे तारो गरीब भगवान पुत्र वलभवणासरे सुप्पायारे हातहो
थेसुणो जीनवरजी आज्ञादीदीठे मादारा पुतने ॥ थे ॥ ११ ॥ मालामोती पोलीयासरे
पोल्या सवसीणगार पचमुष्टी लोचणकीयोसरे माताकेल्यो पोलामुक्कार धनाजी स-
जम आदस्यो सरे ठेम्या सङ्क्परवाररे थे ॥ १२ ॥ बेले२ पारणो सरे जावजीवलग-
ठाय अतरोपाडेनही सरे आमललुखो आदार नवमहीनातपतप्यासरे कर गया
येवापार होथे सुणो जीनवरजी दीष्या दीदीठे मादारापुतने थे सुणो जीनवरजी दी-
प्यादीदीठे मादारा लालने ॥ थे ॥ १३ ॥ गीतारथ गरुभलासरे रतन चद मादाराज

घाग घाघमी घावीयासरे सुंदरसोभाथायदेषतमामनमोवीयासरे नेणाजाएलोभाए
तुसुणमोरीजरणी अह्नादेवोनी सजमआदरु ॥ तुसु ॥ १ ॥ भगवतआया वागमे
सरे घणामुनीपरवार पवरजू सबसेरमेसरे वदणचल्या नरनार । धनोजीपण आवीया
सरे करबेठानमसकाररे ॥ तु ॥ २ ॥ भगवतदे उपदेसनासरे सरबजीवांहीतकार
घाणीसुणी वेरागीयासरे जाण्योअथीर ससार हातजोमने इमकहेसेरलेसु सजम
भाररे ॥ तु ॥ ३ ॥ जीमसुखहोवे तीमकरोरे भगवतदे फुरमाए घरआइ पुत्रकहेसरे
अह्नादो मोरीमाय घचनसुणी पुत्रतणासरे मातागइ मुरछाय ॥ तु ॥ ४ ॥ चेतनथइ
माताकहेसरे सुणपुत्र मोरीबात एकाएकी नानलोसरे ळेमीनेमतीजाए नेणझरे झुरणा
झुरेसरेरोवतबोलीमाए ॥ तु ॥ ५ ॥ कोमलकेससुहामणासरे जाणुंकरणोलोच पाए
अरघाणेचालणोसरे म्योमनेघणोअळोच सीतकालमे सीतघणीसरे ओमनेघणो अ
लोचरे ॥ तु ॥ ६ ॥ घावीस परीसाजीतणासरे करणोउग्रविहार घर २ करणीगोचरी
सरे लेणोनेरिदोषण आहार दोषबयालीस टालणासरे सेणोउष अपाररे ॥ त० ॥ ७ ॥
कोडघतीसीसोनइयासरे भरीयाळे भम्बर सुंदर रुप सुहामणोसरे सोवेषतीसनार हात

जोनि अरजीयाएमके जेतीतेसीनेमुड जोमती थानेधर जाये सुवररे मायके वलीघरजाये
मोटाजती ॥ थे० ॥ १ ॥ येकञीदे फोठण नहीं ठीकके जीन मारग नहीजाणवी राव-
ण पीसणो येतु भरती पेटके परघरपाणीये लावती ॥ थे० ॥ २ ॥ एकलीयेदारी दर-
णी देसके ह्रान्य कुश घोवती वाह्लेनीयेतु सजमञारके पठे दिनकाडेला रोषती ॥ थे
॥ ३ ॥ सुगलीने परायो सीगके जगकरे घणी रावरो सलचाम्बे हेकरे थणअसमानके
पठेफोम्खा खोटपावरो ॥ थे ॥ ४ ॥ चेलीहोषोतोचापेमारापावके वलीवाजे टोलो-
माहरो तवगुराणीये वोञीयेमके काइशोवो जमारोंथायरो ॥ थे ॥ ५ ॥ गुराणीयथे चे-
ल्पामुमके आगमअरथ नजाणीयो जारापरा करमए प्रष्यानही कोयके वीनपुजी वेपा-
री वाणीयो ॥ थे ॥ ६ ॥ नदीरायदगडटोलेके जराकदीनह्रोवे पापटो जारे उपरपेटकीन
ही टकके कासुघमे सीलावटो ॥ थे ॥ ७ ॥ सीषणीयथे सामठीकीधके थोडाकपमसु
पुरोनापमे सामीठीया रपपोचेनाहेके गुरणीने पमे सीदायणो थे ॥ ८ ॥ पमेएसीतका-
ल असमांनके दाहा पमेपेठरीयो गुरणीरेये संगरहीठे सीदायेके जाणेकागगिमोरोमा-
रीयो ॥ थे० ९ ॥ कलेसकरतापे ऊपजे असमादके लोकनींपाकरे देषने काढ्घालो ये-

जघरलालजी इमनणेसरे जाने करुंप्रणाम हीरालालजी इमनणे सरे धन श्रषीजा साद होवे ॥१६॥ समत ओगणीसे यतीसकासरे गडचीतोम्के माए शुदधारसवेसाककीसरे वारस्रज्ञो दीतवार ढाल जोमी धनातणी सरे सूत्रके अनुसारसुजी ॥ ये॥ इतीसंपूरणं ॥

॥ नेमजी ॥ नीठुरथयो साह्य सावलीयो ॥ भिनमेहीछीटिकाइंजी ॥ नि ॥ मनकी धातरही घटअतर ॥ पूछसकी नहीकाईजी ॥ नि ॥ १ जगत सिरोमण । जादवकेपत ॥ कृष्णसरीषा भाइजी ॥ तिणकी लाजरहीकहो केसी ॥ जादव जान लजाईजी नि ॥२ जोकोइ पूनज्ञंने मूजअतर ॥ तोड्साप भराईजी ॥ पिणजगमेकहो न्यायकरेकूण जोज्ञ वेराय अन्याइजी ॥ नि ॥ ३ ॥ जोविरकतरस भाव विसेषे ॥ तोक्युजान वणाइजी पसुवनके सिरदोस दहगए ॥ यालागी कपटाईजी ॥ नि ॥ ४ ॥ तूमनेसिषदीजे कहो कहेसि ॥ कहताज्ञने लघूताइंजी ॥ सषसजनकी सीरहीपूची आदेषी चतूराइजी ॥ नि ॥ ५ ॥ नेम विनातो नेम जिहालग ॥ प्राणरहे घटमांहीजी ॥ सजनभावकारि तूमसे-वीकज्ञ वचन ऊ षाइंजी ॥ नि ॥६॥ पुरस मोरसवेणगयो ॥ तोकीये इषकाईजी ॥ रतनचदजीकहे धनसतीयती॥ जगतगिण्यो सऊमाईजी ॥नि ॥७॥ईती सपूर्ण ॥येसुण

भु ॥ जुगलियांकेरो वास ॥ एकवीस वले पांचसे जोजन ॥ पाचकला सुविलास ॥ मा० ॥६॥रोहितांन रोहितसा नदीया ॥ छेमाहा असराल छपनसहस वली जोनदीयां ॥ किम आवुं करतार ॥ मा० ॥ ७ ॥ महाहेमवय पर्वत आडो ॥ मोटो अति विवसार ॥ च्यार सहसदोयसे दस जोजन ॥ दसकला अधिकार ॥ मा० ॥ ८ ॥ आठसहस सतचार अनेवले एकविस जोजन वास ॥ एककलावले अधिक प्रमाणे षेत्रछेहरीवास॥मा०॥९॥हरिकतांने हरीसीयानामेनदीयाछेप्रतख ॥ बिजी नदीयाछे आर्मीप्रभु ॥ सेसघारे ऐकलाख॥१०॥ प्रवत निंदीयाछेवले आम्पी॥ जोजनवली बीसवार ॥ सहस सतां अठ वयांलीस ॥ दोयकला मुनीराय ॥ मा० ॥ ११ ॥ षेत्रप्रभु जूगलीया केरो ॥ देवकरू वलेनाम ॥ तोपिण पर्वत नीलमप्रमाणे ॥ मोटोछेसुणोसाम ॥ मा० ॥ सीतनामछे नदीयाषमी ॥ सर्वमाही सीरदार ॥ पांचलाखवले विजीनंदीया अनेवले वतीस हजार ॥ मा० ॥ १३॥ कचनगीरी वीरखा घरपर्वत किमउलगीया जाय ॥ त्नय सिंघवन मार्गविखमी ॥ लागेकीमउपाय ॥ मा० ॥ १४॥ लाखजोजनमे ते परवत नामेसुंदर सण सार गजदतावलेमारग विषमीलागेकेम उपाय॥ मा० ॥१५॥नगरी पर्वत वोलावि

जेनधरममे हाणके मतीलजाधो नेपने ॥ थे ॥ १० ॥ नानाय लषणरोमाणस नीचके मुढोदे चालेआपणे साधव्याजे नोलेमत मुम्के अवेसुष कासुहोवे ॥ थे ॥ ११॥ सेणी यअवसरनी जाणके चतुरचुके नही जराषेणने मोटाकुलनीय लोपेनहीलीहके लाजघणीये जारानेणमे ॥ थे ॥ १२ ॥ थानेये सीषदीधीएहेत जाणके कलेसथे आणजोमती थानेकयो एथारेसीषके काजके समताःसु सुणजोसती ॥ थे ॥ १३ ॥ इती संपुर्ण पूर्द० ॥ तुनम सिद्ध ॥ त्रिभवनसाहिवअर्जसुणीजे ॥ दर्सणदीज्यो राज।दर्सणदीजो महेरकरीज्यो ओलग सुणज्यौराज ॥ माहारि विनतामि अवधारो सायब ॥ श्रीमिंदर जीनराज ॥ १ ॥ आपणे माहावीदे पैत्रमै ॥ जंबूण भर्तमक्षार योमेलो कीमहोसी साहव ॥ योही सवल षीचार ॥ मा० ॥ १ ॥ भर्तषीचाबे पर्वत मोटो ॥ नाम अछै वेताड़ ॥ पचिस जोजनरो उचोप्रभुजी ॥ पचास जोजन षीसतार ॥ मा० ॥ ३ ॥ गंगा सिंधु दोनुनदीया ॥ आडीछे करतार ॥ सहस अठाइस षीजीनंदीया ॥ एछे वेडुनों परवार ॥ मा० ॥ ४ ॥ तिण आगल वलेपरवत आमों ॥ चुलहेमवछे नाम ॥ एकसहसवछे बावन जोजन ॥ षारकला अभिराम ॥ मा० ॥ ५ ॥ षेत्र हेमषय आडोछे प्र-

होयोजी ॥ ३ ॥ ज्ञा॰ चक्र छत्र चवरदंम असीमणी कागणीसातोजी सातुं नरकनों नीक-
ट्यो सातपदव्यानदिलहेवीष्यातोजी ॥ ४ ॥ ज्ञा॰ पहलीनरकनो नीकल्यो पदव्या सोलेपा
वेजी बीजीरो पनरे लहे चक्र धृतनही थावेजी ॥ ५ ॥ ज्ञा॰ तीजीरो तेरेलहे टथगया वासु
देवोजी चोथीरो बारेल्हैनहिहोवे देवातदेवोजी ॥ ६ ॥ ज्ञा॰ पचमीरोइज्ञारे ल्हैं केवलज्ञा
नी नहिपावेजी छठीरो दसहीलहे साधुजी नहियावेजी ॥ ७ ॥ ज्ञा॰ सातमीनरकनों नीक-
ल्यो तीर जचमाहि आवेजी हाथीघोम जाणज्यो पदव्यादोही पावेजी ॥ ८ ॥ ज्ञा॰ ॥
भवनपति वितरजोतषि पदवीपावे इकवीसोजी तीरथकर वासुदेवनी वेनहिकहि जगदि
सोजी ॥ ९ ॥ ज्ञा॰ पृथवीपाणीने वनसपति तिरजचमनुष वषाणोंजी कालकरीने
रीपलहै सरव्याउगणीसवखाणोंजी ॥ १० ॥ ज्ञा॰ तीर्थंकर चक्रधृत तणी टलीया
पलवासुदेवोजी तेवीसपदव्यामाहिली च्यारपदव्यानहीलेवेंजी ॥ ११ ॥ ज्ञा॰ तेउ
वाउनो नीकल्यो पदव्या नववषाणोजी एकेंद्रीनी सातुमहि ल्हेहाथी घोडो जाणोजी
॥ १३ ॥ ज्ञा॰ बेंद्री तेंद्री चोंद्री जीवमा पदव्या अठारेपावेजी च्यारवोलव्ये पाछला साधु
मुनीराज नहियावेजी ॥ १४ ॥ ज्ञा॰ पहला दुजादेवलोकरा पदव्या तेविसपावेजी ती

चमे नदीया उघट पाट किण विध आवु सुगणा साहव ॥ मार्ग विषमी वाट ॥ मा० ॥ १६ ॥ कहोमुझ दिषण हेमभरतमे ॥ पोखरापति जीनराय ॥ ओमेलो कीमहोसी होसाहीप ॥ तार्णतीरण जिहाज ॥ मा० ॥ १७ ॥ झरनठारी अवधारो साहब ॥ यामोरी अरदास॥मन षछत सुख सपत दायक ॥ पुरोमाहारी आस ॥ मा० ॥ १८ ॥ निसदिनमाहरेये अलवेसर । षसीयाहिरदे मझार ॥ भवडुख भजन थे देवनीरंजन ॥ पुर्णकलस भमर । मा० ॥ १९ ॥ षरतरहक गुरूसुख साही रूपचद गुणराय ॥ अगरचदकहे श्रीजीनषरजी ॥ तारोगरीब नवाज ॥ मा० ॥ २० ॥ समतअठारे वर्सइक्याशे ॥ पोससुद सुभमास ॥ षिजवुध सुदवार अनोपम ॥ श्रीजीन वचन विलास ॥ संपूर्ण

॥ ॐनम सिद्ध ॥ २४ दन्डक उपर २३ पदव्यानो तवनालिष्यते ॥ वीरामहारा गज थकी उतरो ॥ एदेशी ॥ गोतमगण घरसमरीये समरो सुखदातारो च्चोवीसदन्डक उपरे कहु पदव्यानों षीसतारोजी ॥ १ ॥ भावधरी भवीयणसुणों। आकडी।समादृष्टि श्रावकसुनो षढे केवली जीनवर जाणोंजी चक्रीं हलधर केसवा मन्डलीक पतराजाणों । २ मासिन्यापतिरे गाथापति वर्धकि पोरोहित जाणोंरे सिने हय गय जाणज्यो रतन पचिंद्री

१८२२

पाउणसेनी मनात हरकधरूं नको ॥ धर्म्मनेम येइल कामा ॥ असाता कुनाचि करूं
नको ॥ लक्षान घरी दोलत जारि ॥ त्याचा जरोसा करूनको ॥ पादाता ॥ १ ॥ प्राण
जाइल धर्म्मे आळस होउनको ॥ तुटक ॥ साधु वचन मोडुनको ॥ वैर कुनावर करूं
नको १ नर० उष्ठ० सर० मोक्षे० ॥ सर्वजिवावर समान जाव ॥ उसरा जाव धरूनको
सतगुरसंग होउन दग ॥ उरजनसंग धरूनको ॥ नरसरिरी पाप अघोरी ॥ देहि सुक
ती गुतुनको ॥ होय असातन साधन काया ॥ कालरि मुखिजाउनको ॥ करतायेत
न चिंता रतन ॥ आले हाति टाकुंनको ॥ सोवन थाली भरुंन धुळी ॥ गारि रतन येचु
नको ॥ पुर्वसुकृतहोयल प्राम काष्ठभारा वाधुनको ॥ कल्प तरू उपटन सेनी ॥ कनक
धावरा पेरू नको तुटक अनर्थ धर्म्मकरूनको धर्म्म अम्त्या जाउनको ॥ ३ नर० दुष्ट०
सर० मोक्ष० दुध पाळा आयसे सुकृत त्याला ताकमणुनको ॥ उवसमान जाणन
सेनी ॥ रूइ चिक पिउनको ॥ मद अष्ट महा उष्ट ॥ त्याला देउनको ॥ मुलमिंतर सो-
डुंनसेनी मद मास भकुंनको ॥ अष्टमी पुन्यमतीथी ॥ ये अपराध करूनको ॥ सत जी
नेसी सरणजाऊ ॥ ससारसमुद्रधुडुनको तुटक अनरथात पडुंनको ॥ अचट कर्म करू

जासुं आठमालगे सातऐकिंद्रीनदिथावेजी ॥ १४ ॥ भा० च्यारदेवलोक नवग्रीवेगनां पदव्यापावे दसच्यारोजी हाथीघोडा टलगया सात इकिंद्री नहि होयोजी ॥ १५ ॥ भा पच अणोतर वीमाणना पदव्या आठज पावेजी ठव्याचपद रतनचक्रना । वासुदेव न दियावेजी ॥ १६ ॥ भा० अवतेवीसपदव्यां जीनकही भवजीवाने भागोजी भणे गुणे सुंणे साभले अणघट वैरागोजी ॥ १७ भा० इतिसपूर्णं ॥ १ ॥ ॥

॥ मरठीभासामे लावणी लिख्यते ॥ नरजल्म मामवि येलेन प्राण्या ड्रष्ट वासना धरू नको सरव सुकासी गुतुन सेनीमोक्ष मार्ग चुकुं नको जिनदेवाचे नाम समरणी घर्मी ९ इसरू नको ॥ कुदेव कुगुरूस्वामी ॥ मिथ्या सास्त्रआयक्त नको ॥ देव अरिहत गुरू- नीग्रथ ॥ ज्ञाएदेव भजुनको ॥ दशविध धम्मंमोक्ष मरम ॥ भव सागरथी ठाकुनको ॥ तुटक तु० ॥ त्रीकाल दरसन सोडुनको ॥ रात्रिभोजनकरूनको ॥ जीवजतर चरज्ञन- को ॥ १ ॥ नरजल० ड्रष्ट० सर्व० मोक्ष० ॥ वैद्य भीक्यारी आलेदारी न्यालाना दि मणुनको ॥ सक्तिसारूदेलेन भाकि ॥ त्याला रिकामालाउनको ॥ आइयाप वापको घरि ॥ मुमायासी गुतुनको ॥ क्षिनु भिगुयेससारे ॥ नरकेंउरूये पाऊनको ॥ पुत्रस्वार्थ

नहे रातोपेटे न्नावे नष सुरतमे लावे षोर तातोगात रोदयादीन रोसही सोमनहे दीर-
घहे दातषाय थोरातषज्ञतषाय यसोजाको चींनसोई सषनीको तनहे ॥ हसतनी ॥ ४ ॥
मोटीदेहे मोटेहोटे भूरेवारगोरी अप थोरीलाज पेटन्नरी षातहे अघाइके ढेढयाए पाए-
नकी अगूरी हेटे ढीसष षेगनीसी कुरुपणी षोलेघहे रायके कामजलकीहे गध मदके
गपदकेसी सुरतनकीयो जारजासोसुख पाइके चलेमंद गतीगहे षाधेजाके नएरहे ह-
रनीके लछनए दीयहे देषाएके ॥ उक्ता ॥ प्रथम अक्षरषीन जगजीवामे मधअक्ष-
षीन जगनेपाडे अत अक्षर षीनसुषएज्ञने मीठो सोसामीने नएणेदीठो ॥ काजल ॥
रप्रथम अक्षरषीन मोटो लागेअंतअक्षर षीनपखीसागे मजअक्षरषीन सुषनथाए ते-
आषतो षज्ञसुषसाधे ॥ कागद २ मक्ष अक्षर षीनजलमे षसतो आदअक्षर षीन घर-
तोहतो अत अक्षरषीन सझपे षाली तुमने जो षातमे आली ॥आषडी ॥ अत अ-
क्षरषीन षहेसन्यासी मक्षक्षरषीन कंन्यासी आदअक्षरषीनलीषतावाला सीसो सोयेते
सुकमाला ॥ राषडी ॥ ४ ॥ गरमांमे षहेपेदाहोय धूपलगे लहराय संषीकहे काहो साहेवा
यो नलगेमरजाए ॥ मृदग ॥ ५ ॥ पाषषांना कमीयाचेडे कचीनराध्यो खाए । मास्याषीन

नको॥अष्टकर्म क्षायक करूनसेनी॥मोक्ष पद चुकुनको ४ नर॰ दुष्ट॰॥ इतिपदसपूर्ण ॥
॥ल्ये सारग सारंगल्यो॥सारबोल्यो आय॥ज्यो सार सार कहतो॥मुख कोसारजाय॥१
चारजातकी ॥ पद्मणी हसणीनामथी चित्रणी सषणी जाण चारजेइ तसमूलछेअत्र
सवेईया प्रमाण ॥ पद्मणी ॥ १ ॥ कमलके फूलके सीवास अगसुकूमार कमलसो-
योनीता हा जलपेलीहीए ढीयेलाज मानूगवी चदसो वदन तनचपकसो कूदनसो व-
नी घनी सवठोर जेसी जहाचदीए भावे देव सेवासेत वसनसो रूचीहीये ढीयलाज
मानूगवी हंसकेदीएयोरोक्षाय स्वपकमवेनी नीचनेने मृगनेनी जामेगून सुदर पद्मनी
सो कहीए ॥ चीत्रणी ॥ २ ॥ पीनकटी पीनकूच कीनसेष दलने नगजोनी कारचार
गोरकेसी वनीहे मधुकोसो गधजाके सुरतको जलकोहे छवीहेन वेगनीन पातरीने
स्वानीहे सुदर सुलोम सुकूमार जोगीजेहे चीचस्वेत फूवटुरारे वहाजस्योपानीहे रती
सो नरती उपजोगहीं सोमरती चीत सगीत सोजावहे योचीत्रनी षपानीये ॥
सषणी ॥ ३ ॥ मोटीलाषीन सदेहे गीनी मोटी कटीटेढी चीतषलीकूच गेटे
पोटे मनदे जोनीमे षीगषकाम जलधनो घनेषारु ठतापलो चाढे योडे गाजत जोध-

ज्गुठगमेनदी ॥ बोलेसाचीवाणी ॥ दमडीसाठे सोसो सोगन ॥ ये ॥ ४ ॥ जी ॥
॥ सुकखायन्नरे सायदीषोटी ॥ थापणराषे ताणी ॥ मरमप्रकासे संकनराषे ॥ ये ॥
॥ ५ ॥ जी ॥ श्रेम्नमारेधम्ने उडावे ॥ करकर श्रतरकाणी ॥ मुकसुकेवे घाजषीलेवा ॥
॥ ये ॥ ६ ॥ जी ॥ परनारीसु प्रीतलगावे ॥ नीजनारी डुषदाणी ॥ धनकी तृश्ना दीन२
श्रधकी ॥ ये ॥ ७ ॥ जी ॥ सुषाकहृताउलटीलेषे ॥ क्रोधकरे कलठाणी ॥ नीरखज
डुइने देवेगाली ॥ ये ॥ ८ ॥ जी ॥ तनधन जनको टोटोघरमे ॥ श्रोरसकल वृधजाणी
रहेटेम्ने सदास्वान पुछजो॥ ये ॥९॥जी ॥ मुखसुबोले भालो भोलो॥ महाकपटकी षा-
णी ॥ वात २ मेगा सगसीला ॥ ये ॥ १० ॥ जी ॥ कहे ब्रम्हा मुझने नहींकोई ॥ वे
पार श्रनारजठाणी ॥ कोम्नीसाठे पेजारचलावे ॥ ये ॥ ११ ॥ जी ॥ कोइसु होवेवेर-
भावमन ॥ श्राललगावे जाणी परभवको भ्ररचनराखे ॥ ये ॥ १२ ॥ जी ॥ ठलटी-
कीतो सुलटीबतावे ॥ सुलटी उलटषाणी ॥ चुगलीकरे सुगलोभ्नगी ॥ ये ॥ १३ ॥
जी ॥ पोवेतो श्रोगणको सागर ॥ परकातंगणठाणी॥ करेकननाककटाइ॥ये॥१४॥ जी॥
पगमलतीतो देषेनाहीडुगरे श्रागषताणी अकलसाथे लठकजराखै ॥ ये ॥ १५ ॥ जी ॥

योलेनही पीनमास्या मरजाए ॥ मूदग ॥ ६ ॥ त्रीयाएक मूषवोय चलेषारम श्वेठे नहीपखीकी जातजायके गूफामेबेठे जीवजत मतजाए पत्रन्नठ नदेजाको नहीवकरी नहीतठपक अघीन्देवाको याके वचनसुरपीणघरे कूमरीकहे पुगुढाको अरथकोइ चातूरकरे ॥ लेपणी ॥ ७ ॥ एकनारी याहा ओषदीषाय जीसपरथूके योमरजाय जोकोइ उसका साथीहोय अघोनही पणकाणो जोय॥ ढुलादुक्षी घड्का॥८॥ दोयालक नीरजीव जीनोके न्हीमेहेतारी नही जीनोके पिता जीनोकी स्हेतारी कूवारी बोत ठठसेव्याव सपीमील मगल गावे कूमरन्नणी कूमरीकहे एअरथ धीरला लहे ॥ ढुला ॥ ए॥ एक रुपमे अचरजदेखा म्हलघणी देखाय एकही पता याकेउपर हातठु एकमलाय ॥ व्री ॥ १ ॥ इतीसपूर्ण ॥ ॥ ॥ ॥

॥ एर्द० ॥ नी याको ॥ परम धरमको मरम नजाणे ॥ वातवणावे साणी ॥ वेकहेगघा टेकनछोडे ॥ येसापापीप्राणी ॥ जीणने आगे नरकनीसाणी ॥ १ ॥ नीचेसुतोआगलगावे उपरउटके पाणी कलह करण होय अगवाणी ॥ ये ॥ ४ ॥ जी ॥ लोक देखा जपणापाले ॥ नहीदेये जाहाणी ॥ दमडीसाठे मारेअनता ॥ ये ॥ २ ॥ जी मुपसुतोकहे

ञुठगमेनही ॥ मोळेसाचीवाणी ॥ दमडीसाठे सोसो सोगन ॥ ये ॥ ४ ॥ जी ॥
॥ सुकसायन्नरे सायदीपोटी ॥ थापणराषे ताणी ॥ मरमप्रकासे संकनराषे ॥ ये ॥
॥ ५ ॥ जी ॥ अेम्नमारेधम्नी उडावे ॥ करकर अतरकाणी ॥ मुकसुकेवे घाजषीलेवा ॥
॥ ये ॥ ६ ॥ जी ॥ परनारीसु प्रीतलगावे ॥ नीजनारी ऊपदाणी ॥ घनकी तृश्ना दीन२
अधकी ॥ ये ॥ ७ ॥ जी ॥ सुघाकहतावलटीलेषे ॥ क्रोधकरे कलठाणी ॥ नीरलज
ऊश्ने देवेगाली ॥ ये ॥ ८ ॥ जी ॥ तनधन जनको टोटोघरमे ॥ ओरसकल वृथजाणी
रहेटेम्ने सदारवान पुठजो॥ ये ॥ए॥ जी ॥ मुखसुबोले न्नालो न्नोलो॥ महाकपटकी घा-
णी ॥ वात २ मेगा सगसीला ॥ ये ॥ १० ॥ जी ॥ कहे न्नजा मुझने नहीकोई ॥ वे
पार अनारजठाणी ॥ कोम्नीसाठे पेजारचलावे ॥ ये ॥ ११ ॥ जी ॥ कोइसु होवेवेर-
न्नावमन ॥ आललगावे जाणी परन्नवको न्नररचनराखे ॥ ये ॥ १२ ॥ जी ॥ ऊलटी-
कीतो सुलटीयतावे ॥ सुलटी ठलटषाणी ॥ चुगलीकरे सुगलोन्नंगी ॥ ये ॥ १३ ॥
जी ॥ पोतेतो ओगणको सागर ॥ परकालगणठाणी॥ करेकननाककटाइ॥ये॥१४॥ जी॥
पगमलतीवो देषेनाहीडुगरे आगवताणी अकलसाथे ढठकजराखे ॥ ये ॥ १५ ॥ जी ॥

लुल २ लुल २ करे वंदणा देवे आहारने पाणी ॥ पुठपगडीकरेनीया ॥ ये ॥ १६ ॥
जीजीजीजीकारोदेवे ॥ हसकर वोलेपाणी पुठपग्गमी करेनीया ॥ ये ॥ १७ ॥ जी ॥
परनीनुकसानीमे मनराजी ॥ करेहसी अंधकाणी ॥ देवेनही परकोदीवालो ॥ ये ॥
॥ १८ ॥ जी ॥ दीनउगासु नीया २ सोवेजालग जाणी ॥ वीकथावातमे कालगमावे ॥
॥ १९ ॥ जी ॥ आवेआरत धरम ध्यानमे ॥ पापेचीत हरपाणी ॥ न्नरीसन्नामे मीस-
रवोले ॥ ये ॥ २० ॥ जी ॥ दया धरमको घणोदरोषी ॥ मीथ्यामे अगवानी ॥ धरमीदे-
षी भुसेकुवासे ॥ ये ॥ २१ ॥ ज्ञानकाफटका करमका क्षटका ॥ हलुकरमी सुषदाणी
सुणकेटाले पापकरमके ॥ येसा धरमीप्राणी जीनकुआगे मुगतनीसाणी ॥ ये ॥ २२ ॥
जी ॥ सरलन्नाव समता मनआणो न्नव२मे सुपदाणी तिलोकरिषकहे चेतोसुगणा
मानोश्री जिनवाणी जोणसु आगे मुगत निसाणी ॥ २३ ॥ इतिसपूर्णम ॥ ॥

॥ अथसीतासतीकोतवनलीषंते ॥ धनसीतासती सतधारी । जगतमेहे जसन्नारी ॥
एटेक ॥ जनकजन्क वीदेहदही मेहतारी ॥ जुगल पणेअवतारी ॥ दसरथ सुत श्रीराम
चद्रसु व्यावकीयो सुवीचारी ॥ धावपद जगमाही जाहारी ॥ धन ॥ २ ॥ दसरथमन वे

रागजाणकर ॥ केकैआए उचारी ॥ मुझनदनकु राजदीजीए ॥ वचन ज्मयर मझारी ॥ वीनतीमानोहमारी ॥ धन ॥ १ ॥ तातकरणकेउतारणकारणो ॥ मनमाही सुलटवी चारी ॥ रामलछमण सीतासतीसंगे संचस्या वनमझारी ॥ आयादंम्म कारजेवारी ॥ धन ॥ ३ ॥ लछमणहाथे सीसछेदाणो ॥ संबक जंहागयोमारी रणजुजतापर दुषण त्रसलो ॥ मारधागयातीणवारी ॥ सरुपलेषाजाए उचारी ॥ ध ॥ ४ ॥ सीतारुप अनुपम सुंदर ॥ अपछराके उणीहारी ॥ जोणेसर्गयो जानकीलंका वागमे ॥ सतिधीरजवाधारी ॥ त्यागदीया अहारजोचारी ॥ धन ॥ ५ ॥ राणीमदोदरभाइवीभीषण ॥ समझायो बोतपरकारी ॥ मानीनही कोइको दसकंदर ॥ पापदीसा अघकारी ॥ टलेकेसे जोहोणहारी ॥ ६ ॥ रामचददल वादल लेकर ॥ भयोसयामेकरारी ॥ दसकंदरको सीसउडायो ॥ जीतभइ तीणवारी ॥ रामदल हर्षअपारी ॥ धन ॥ ७ ॥ आयाअजुध्यापुरमेचलाइ ॥ सोका कपटवीचारी ॥ कलक अछतोदीयो सतीपर ॥ मेली वनमझारी नृपवज्ज जंघरखवारी ॥ ध ॥ ८ ॥ मदनाकुस लवणाकुसनामे नंदजायागुणधारी ॥
१ धीजकीयो सीतासती परगट ॥ अगनी फीटीभयोभारी ॥ देवबोले जयकारी ॥ धन ॥ ९ ॥

लुष २ लुष २ करे षंदणा देवे आहारने पाणी ॥ पुत्रपगडीकरेनीया ॥ ये ॥ १६ ॥
जीजीजीजीकारोदेवे ॥ हसकर षोलेवाणी पुत्रपगमी करेनींया ॥ ये॥ १७ ॥ जी ॥
परशनुकसानीमे मनराजी ॥ करेहसी अवकाणी ॥ देवेनही परकोदीवालो ॥ ये ॥
॥ १८ ॥ जी ॥ दीनउगासु नींया २ सोवेजालग जाणी ॥ मीकथावातमे कालगमावे ॥
॥ १९ ॥ जी ॥ आणेआरत धरम ध्यानमे ॥ पापेचीत हरपाणी ॥ नरीसनामे मीस-
रषोठे ॥ ये ॥ २० ॥ जी ॥ दया धरमको घणोदरोषी ॥ मीथ्यामे अगवानी ॥ धरमीदे-
षी भुसेकुवासो ॥ ये ॥ २१ ॥ ज्ञानकाफटका करमका काटका ॥ हलुकरमी सुषदाणी
सुणकेटाले पापकरमके ॥ येसा धरमीप्राणी जीनकुआगे मुगतनीसाणी ॥ ये ॥ २२॥
जी ॥ सरलनाष समता मनआणो नव२मे सुषदाणी तिलोकारिषकहे चेतोसुगणा
मानोश्री जिनवाणी जोणसु आगे मुगत निसाणी ॥ २३ ॥ इतिसपूर्णम ॥ ॥
॥ अथसीतासतीकोस्तवनलीषते ॥ धनसीतासती सतधारी । जगतमेहे जसनारी ॥
एटेक ॥ जनकजन्क वीदेहदेही मेहतारी ॥ जुगअ पणेअषतारी ॥ दसरथ सुत श्रीराम
चन्द्रसु ब्यावकीयो सुवीचारी ॥ धातपर जगमाही जाहारी ॥ धन ॥ १ ॥ दसरथमन वे

रागजाणकर ॥ केकैआए उचारी ॥ मुझनदनकु राजदीजीए ॥ मचन त्रमर मझारी ॥
मीनतीमानोहमारी ॥ धन ॥ १ ॥ तातकरणकेउतारणकारणो ॥ मनमाही सुलटवी
चारी ॥ रामलछमण सीतासतीसंगे संचरया वनमझारी ॥ आयादंमा कारजेधारी ॥
धन ॥ २ ॥ लछमणहाथे सीसछेदाणो ॥ संबक जंदागयोमारी रणजुजताधर दुष-
ण त्रसलो ॥ मारचागयातीणवारी ॥ सरुपलेषाजाए उचारी ॥ ध ॥ ४ ॥ सीतारुप अ
नुपम सुंदर ॥ अपछराके उणीहारी ॥ जोणेसर्गयो जानकीलंका घागमे ॥ सतिधीरज
वाधारी ॥ त्यागदीया अहारजोचारी ॥ धन ॥ ५ ॥ राणीमदोदरत्राइवीभीषण ॥ सम-
झायो घोतपरकारी ॥ मानीनही कोइकी दसकंदर ॥ पापदीसा अधकारी ॥ टलेकेसे
जोहोणहारी ॥ ६ ॥ रामचददल बादल लेकर ॥ त्रयोसयामेकरारी ॥ दसकंदरको
सोसलछायो ॥ जीतत्रइ तीणवारी ॥ रामदल हर्षअपारी ॥ धन ॥ ७ ॥ आयाअजुध्या
पुरमेचलाइ ॥ सोका कपटवीचारी ॥ कलक अछतोदीयो सतीपर ॥ मेली वनमझारी
नृपवज्ज जंघरखधारी ॥ ध ॥ ८ ॥ मदनाकुस लवणाकुसनामे नंदजायागुणधारी ॥
धीजकीयो सीतासती परगट ॥ अगनी फीटीत्रयोत्रारी ॥ देवबोले जयकारी ॥ धन॥ए॥

सनमलेइ सतीसर्गवारमे ॥ इद्रपणे अवतारी ॥ महाविदेमेसु मुक्तिसीधासी ॥ आटक
र्म करीहारी ॥ होसीनीरजण नीराकारी ॥ धन ॥ १० ॥ जगणीस अम्तीसे असाढसु-
ध ज्ञारस ॥ डुगर गणकेधारी ॥ सीतावनमे वीसरामलेइने ॥ जोम्करी सधीचारी ॥
तीलोकरीष कहे हीतकारी ॥ धन ॥ ॥ ११ ॥ केइमजाणी सतसीलअराधे ॥ इणजनमे
जसन्यारी ॥ परभवमे सुषसपत अधकी ॥ ठवरोगाजवपारी ॥ इसमे नही सकालगारी
॥धन ॥ १३ ॥ इति सपुर्ण ॥ ॥ ॥ ॥
॥ दे० ॥ राखीतिवारकरो धर्मराखी मोथ्या ढुरमतिदो ढुरनाखी ॥१॥ सतरूपी वधव सु-
खकारि सुसद्धिनअधिक गुणधारीरा॥२॥नावकी मेररगहीर ल्याणो मनगुपतिकोलो
मोतिकोदाणो रा३ नावको नोमअलेस्या सुनरगी धर्मरिषी राषी सुनचगी रा॥४॥त्या-
गाकि गाठसोकरमाही बाधो समताकीसेषा भलीविधराधो रा ॥५॥ करूणाकसार भली-
विधराखो समताको श्रीफल देवणो आखो स०॥६॥तपकोनाणो रोकमोदीजे किरीया
की कचूकीको खणदीजे रा ॥ ७ ॥ समगत कुकुम ग्यानको पाणी घोलो विवेकसू वि
नयकी पाणी रा ॥ ८ ॥ तत्वको तिलक चोकसगुण चोखा मनावो तेवारये सुषअनो-

स्वारा ॥ ए ॥ तिलोकरिषजीकहे अध्यातम रासी अनुभव ग्यानदीसा अ(भलाखा
रा ॥ १० ॥ इति सपुर्ण ॥ ॥ ॥ ॥
येसीधन तेरसकरवीजो जोचाहोये भवनीसताररे ए ॥ १ ॥ कातककहेथें कातकरहीया
धनतेरस सुवीचारभलारे ग्यानीधनतेरस सुविचाररे ए० ॥ २ ॥ अहिंसा सतदतब्रह्म
अममत पचमहावृतसाररे ए० ॥ ३ ॥ इरजाभाषा एषणाआदिकसुमतीछे पचप्रकार भ०
ए ॥ ० ॥ ४ ॥ मन घचनकाया तिनगुपति ए तेरससुषकार भ० ए० ॥ ५ ॥ खतिमुति
अजव मदव तिजे अंगेकह्या ब्वार भ० ऐ ॥ ६ ॥ एचलद्वार षुलासीवमदीर सुषलभ-
मी हेतइग्यार भ० ए० ॥ ७ ॥ पापकियासुं ळभीजावे सकानहीहे लगार भ० ए० ॥
॥ ८ ॥ तिलोक रीषकहे एघनयीरहे षरचता आवेनहीपार भ० ए० ॥ ८ ॥ इति धन
तेरस सज्झायसपूर्ण ॥ श्रावकधर्मकरोसुषदाई एदेशी ॥ रूपचन्दश नितनीतकीजे
निजरूप प्रगट करीजेरे इंद्रीमन मुभणकरलीजे जपतप ध्यान करीजेरें ए०
॥ १ ॥ पापकी मेलपषालणकीजे सुमन साबुलगाजेरै धिरज धोती सुषुतवागो संवरपा
ग सीरछाजेरे ए० ॥ २ ॥ दयाउपटोकीरीयाकोअतर धर्मध्यान सोलाभदोरे ए सो-

सजमलेइ सतीसर्गधारमे ॥ इन्द्रपणे अवतारी ॥ महाविदेमेसु मुक्तिसीधासी ॥ आटकर्म करीगरी ॥ होसीनीरजण नीराकारी ॥ धन ॥ १० ॥ उगणीस अन्वीसे असाढसुध ग्यारस ॥ डुगर गणकेवारी ॥ सीतावनमे वीसरामलेइने ॥ जोम्करी सधीचारी ॥ तीलोकरीष कहे हीतकारी ॥ धन ॥ ॥ ११ ॥ केइमजाणी सतसीलअराधे ॥ इणान्वमे जसन्वारी ॥ परभवमे सुपसपत अधकी ॥ ववरोगान्वपारी ॥ इसमे नही सकालगारी ॥धन ॥ १३ ॥ इति सपुर्ण ॥ ॥ ॥ ॥

॥ दं० ॥ राखीतिवारकरो धर्मराखी मीथ्या उरमतिदो उरनाखी ॥१॥ सतरूपी वधव सुखकारि सुसद्धीनअधिक गुणधारीरा॥२॥भावकी भेररगदीर ल्याणो मनगुपतिकोलो मोतिकोदाणो रा३ भावको भोम्भलेस्या सुभरगी धर्मरिधी राषी सुभचगी रा॥४॥त्यागकि गाठसोकरमाही बाधो समताकीसेषा भलीविधराखो रा ॥५॥ करूणाकसार भलीविधराखो समताको श्रीफल देवणो आखो स०॥६॥तपकोनाणो रोकमेदीजे किरीयाकी कचूकीको खणदीजे रा ॥ ७ ॥ समगत कुकुम ग्यानको पाणी चोळो विवेकसू विनयकी धाणी रा ॥ ८ ॥ तत्वको तिलक चोकसगुण चोखा मनावो तेधारये सुधभनो-

१५३८

स्तारा ॥ ए ॥ तिलोकरिषजीकहे अध्यातम राखी अनुभव ग्यानदीसा अभिलाखा
रा ॥ १० ॥ इति संपुर्ण ॥ ॥ ॥ ॥
येसोधन तेरसकरलीजो जोचाहोये भवनीसताररे ए ॥ १ ॥ कातककहेयें कातकरहीया
धनतेरस सुवीचारभलारे ग्यानीधनतेरस सुविचाररे ए० ॥ २ ॥ अहिंसा सतदतब्रह्म
अममत पचमहाव्रतसाररे ए० ॥३॥ इरजाभाषा एषणाआदिकसुमतीछे पचप्रकार भ०
ए ॥ ० ॥ ४ ॥ मन वचनकायो तिनगुपति ए तेरससुषकार भ० ए० ॥ ५ ॥ खतिमुति
अजव मदव तिजे अंगेकह्या ज्वार भ० ऐ ॥६॥ एचउदूवार षुलासीषमदीर सुषलछ-
मी हेतइग्यार भ० ए० ॥ ७ ॥ पापकियासुं छछमीजावे सकानहीहे छगार भ० ए० ॥
॥ ८ ॥ तिलोक रीषकहे एधनथीरहे परचता आवेनहीपार भ० ए० ॥ ८ ॥ इति धन
तेरस सज्झायसपूर्ण ॥ श्रावकधर्मकरोसुषदाई एदेशी ॥ रूपचउदश नितनीतकीजे
निजरूप प्रगट करीजेरे इंद्रीमन मुरूणाकरलीजे जपतप स्नान करीजेरें ए०
॥ १ ॥ पापकी मेलपषालणकीजे सुमन साबुलगाजेरै धिरज धोती सुवृतषागो संवरपा
ग सीरछाजेरे ए० ॥ २ ॥ दयाउपटोकीरीयाकोअतर धर्मध्यान सोलाभेदोरे ए सो-

सनमलेइ सतीसर्गवारमे ॥ इद्रपणे अवतारी ॥ महाविदेमेसु मुक्तिसीधासी ॥ आटक र्म करीगरी ॥ होसीनीरजण नीराकारी ॥ धन ॥ १० ॥ उगणीस अम्तीसे असाढसुध ह्रारस ॥ डुगर गणकेधारी ॥ सीतावनमे वीसरामलेइने ॥ जोम्करी सधीचारी ॥ तीलोकरीष कहे हीतकारी ॥ धन ॥ ॥ ११ ॥ केइमजाणी सतसीलआराधे ॥ इणभवमे जसन्मारी ॥ परभवमे सुपसपत अधकी ॥ ववरोगाजवपारी ॥ इसमे नही सकालगारी ॥धन ॥ १३ ॥ इति सपुर्ण ॥ ॥ ॥ ॥

॥ दं० ॥ राखीतिवारकरो धर्मराखी मीध्या उरमातिदो उरनाखी ॥१॥ सतरूपी वधव सुखकारि सुसद्धविनअधिक गुणधारीरा॥२॥ञावकी मेररगहीर ल्याणो मनगुपतिकोलो मोतिकोदाणो रा३ न्मापको भोम्अलेस्या सुन्मरगी धर्मरिधी राघी सुन्मचगी रा॥४॥त्यागाके गाठसोकरमाही बाधो समताकीसेवा भलीविधराधो रा ॥५॥ करूणाकसार भलीविधराखो समताको श्रीफल देवणो आखो स०॥६॥तपकोनाणो रोकम्मेदीजे किरीयाकी कचूकीको खणदीजे रा ॥ ७ ॥ समगत कुकुम ग्यानको पाणी घोलो विवेकसू विनयकी पांणी रा ॥ ८ ॥ सत्यको तिलक चोकसगुण चोखा मनावो वेवारये सुषम्नो-

ओरजहेर भुजगम सिंघ रीछ पसु ब्याल षमरपडेनही कीणउपर क्रव्यसु पेचखे जासी कालरे ॥ ८ ॥ क० जायासो जरूरजासी फुल्यासो कुमलाए बंध्यासोतो बीषरजाएगा वेमनही इणमायहो ॥ ९ ॥ क० जोपीणजावेसो नही आवे करता कोडउपाय पायो आवषोरतन अमोलक षोवेक्यो फोकटमाय हो ॥ १० ॥ क० जबलग इद्रीन पमेही णी तनमे नआवेरोग जरान आवे जबलगप्राणी तपलग धरमको जोगहो ॥ ११ ॥ क० दसकोदरसणी बीसबीसासी तीसको तरसाजोए चालीसको चाको पचासको पाको साठेथकेलो होए ॥ १२ ॥ क सीतरसमीयो असी अमीयो नेउमेनागा जाण सो मे जागो चेतो चतुरनर दीन २ आउघोहाणहो ॥ १३ ॥ मातपीतातीरीया सुत वधव सजनसनेही परवार तन धन जोवन सर्व अथिरहे चेतोक्यो नगमारहो ॥ १४ ॥ क० ग्यान ध्यान तप जपको उपम करजो सुगणलोक परभवपरची साची जीवने लीजो नाणोरोकरे क ॥ १५ ॥ ए संसार असार वावले ममतामोह नीवार कालको भरजो मेटणो तुझने भरले धर्मभन्मरहो क ॥ १६ ॥ उगणीसे अठतीस जेठअधारी तीज तीथी ससीवार तीलोकरीषजी कहे देषाटाकलीमे धर्मसु जे जे कारहोक ॥ १७ ॥ इती सपु-

८६०

१९८८
जठ ...

ला सीणगार सजणकी चितमें राषो ठमेदोरे ॥ ३ ॥ सतवचन तबोल सुहावे तत्वको
तीलककरीजेरे ग्यानको दीपक धर्मकीषाती कर्मकोतेल पुरिजेरे ए० ॥ ४ ॥ ठगणीसे
अन्तीस रूपचन्दश दिनए सझाय षणाइरे तिलोकरीषकहे रूपजोचाहो तोइमकर-
जो भाईचाइरे ए० ॥ ५ ॥ इति रूपचन्दश सज्झायसपूर्ण ॥ ॥ ॥

अथ॥वीतरागवाणी कहीसरे परजीवाहीतकारआश्रवनाळ रोकीयासकोइ धारोसवरसा
रे करलो ऊसीयारी सुकृतधनलोजो म्हरजोकालसु ॥१॥छीन२माही छीजे आउसो ज्यु
अजलीकोनीर ओसबुध पाणीपरपोटो आउपोतेम अथीररे २ क० जोबन जाता जेजन
लागे ज्युनदीको पुर नदी तटको तरवरजाणो कोइदीन जाये जरूररे ॥ ३ ॥ क०
बालक बुढा तरूणी रोगी सुरवीर नरनार हरी हर ईंद्र नरेंद्र सुरा सुर कालनछोडे
लारहो ॥ ४ ॥ क० वैधरत वीतीपात जोगणी षोटा जोग दीसासुल वेला कवेला नदे
षे छिनमेंकरेगे भुलहो ॥ ५ ॥ क षाता पीता सुता जागता करतां बातविचार पाव प
लकको नही भरोसा जबरजस्त ससारहो ॥ ६ ॥ क० झाडपहाड उजाड गाम पुर नदीषा
ल नीवाण षषरनषमे नहीकीण छोडके उपर कालले जावे ताणरे ॥ ७ ॥ क जल अगनी

नद्दी॥ हियेविमासीजोय ॥ ३ ॥ खरचनफामे अटकले ॥ तेतोमूढगवार ॥ कुगुरूना-
परतापथी ॥ जायजमारोहार ॥ ४ ॥ नाटकचेटक ख्यालमे ॥ प्रभूनही माने धर्म ॥
त्यागनमें सवरकह्यो ॥ एजिन आगमममर्म ॥ ५ ॥तेहेनी ओलख कारणे ॥ किनी एहस-
झाए ॥ हलुकरमी सोहरषसी ॥ मिथ्यातिमुरझाय ॥ ६ ॥ दयाधरमहिरदेरूचे ॥ समग-
तलखयणमूल ॥ परम अरथसाऊनकरो ॥ ग्यानी घचनकबूल ॥ ७ ॥ चर्चा प्रश्नोत्तर
मीलमासझाए लिख्यत्ते ॥ मानव जनमरत नतेने पायोरे सतगुरु समझायो ॥ एदेशी।
सिद्धकरण ओसिद्ध जीध्याउ ॥ वली साधूने सीसनमाउरे ॥ कर्लसमगतसेली ॥ मि-
थ्यामविछेली ॥ लहीएसीवचेली ॥ श्री जिनधर्म२नेसाधोरे ॥ समग रतनअराधो श्री-
जिनधर्म ए आकणी ॥ देव अदोसीसोरी अरिहंता ॥ ग्यानदरसण वतारे ॥ चोतिश
अतिसा ॥ त्रिऊलोकनाइसा ॥ जित्याकर्म अरिसा ॥श्री० ॥ २॥ गुरुनिगरंथ करुण
भमरी ॥ आरम्भ परिग्रहधारीरे ॥ सतावीस गुणवता ॥ धर्मदेव सोहंता ॥ भवियणा
तारता ॥ श्री० ॥ ३ ॥ धर्म आग्यानिरवद प्रमुकेरो ॥ यातो सर्व सीद्धात मेहेरोरे ॥
हलुकर्मिपेगणो ॥ सकारचन आणे ॥ सत्यन्याय प्रमाणे ॥ श्री० ॥ ४ ॥ अतिशाल॥

र्णी ॥ एससार सराहकोरे वसनाक्यो अपनाकरी मानारे जो आवेसो सर्व मुसाफीर जो र जयेठठ जाणारे ए १ चारपहेरका मोहवतकरके ठेवट सबठीटकानारे मोहनींद्रावस काहेकुसोते आगुहे घरमकानारे ए २ ग्यान दरसण चारीत्र तपस्या एधनहे सुखदानारे छनके नीठ २ करपायो मोषनगरकु सीधानारे ए ३ कामक्रोध मदमोह लुटेरा ठगणी करहेरानारे गफलतमे धनहरत आनके बहोतपछेगा पस्तानारे ए ॥ ४ ॥ अनतकाल सुकरत चोक्षरी ठसठसे भीतलगा नारे जुसमणभोती अंतफजोती समझतक्यो नही- दीवानारे ए ॥ ५ ॥ मीथ्यारयणी भयरहीहे ग्यानदीपक लगवानारे सतगुरु चोकीदार चेतावे रहोजसीयार सयाणारे ए ॥ ६ ॥ ठगणीसे अम्तीस नीरजलाग्यारस ठेहरचा नगरसरा ठानारे तीलोकरीषजी कहे जोनहीचेतो तोए घोडामए मेदानारे ए ॥ ७ ॥ इती

॥ अथ दयाधर्म मडण हिंस्यामत खम्ण चर्चारुप स्वाध्याय लिख्यत्ते ॥ उहा समगत समगत सबकहे ॥ मिथ्याकहेनकोए ॥ जाघट समगत पाइये ॥ तेघट विरला जोय ॥ १ ॥ आग्यानिरषप जिनतणी ॥ देषोग्यान विचार ॥ कारण आग्या ओलखे ॥ सर्वमाखकेठार ॥ २ ॥ माल विनाथापनाकरी ॥ सरच बम्भवे कोय सोदुकान चाले

वग्यानमे आइंकता आवकहाई श्री० ॥ १३ ॥ कहे प्रतमाकीकरे व्यावच साधू जाने सुद्धअरथ नदी लाधूरे भिजकिवदआणी ग्यान अर्थे जोगाणी ॥ इमसघपेछाणी श्री ॥ १४ ॥ कहे थली कम्मा पुजी जिन प्रतमा एथाव जचे नही चितमारे ॥ पुयाछं गन्नीदीसे न्नेदलान अविसेसे देषो ग्यानरवीसे ॥ श्री ॥ १५ ॥ कयवली कम्मालानना धरमे ॥ पुष्करणी सरवरमेरे ॥ देषोद्रोपदी ठामे ॥ न्नागइपुयाकाम ॥ श्री० ॥ ॥ १६ ॥ प्रश्नोतर ॥ ९ मे ॥ अंणुजोगउवारजी सूत्रमझारो ॥ निखेपाचउविस्तारोरे ॥ कीजे सद्ददर्पकेरा ॥ एवो न्नेद गहेरा जाणपणकाजेठरा ॥ १७ ॥ प्र० मानवा ॥ देव गुरु धर्म निखेपाचारी ॥ जाने मानीजेएकसारीरे ॥ पिनोसरषो विचारो ॥ एसो नही विसवारो ॥ होवतो हमेन्नारो ॥ श्री० ॥ १८ ॥ सतआसरी ॥ चार निखेपासतकारि-दाषे ॥ कहे गणायगसाषेरे ॥ अठेतर्कहेन्यारी ॥ बोलणन्यायतचारी ॥ रितिनही सर-धारी ॥ श्री० ॥ १९ ॥ प्रश्नसरणा आश्री ॥ कहे सरणो चाल्यो प्रतमानो ॥ पाटतिन पहीचानोरे॥ अरिहतकेवलधारी ॥ छदमस्थजेधारी ॥ न्नावित अणगारी ॥ श्री० ॥ २० ॥ चेतसव्वेजिनप्रतमांहि जोथामे ॥तोइहाकिमचल आयेरे प्रतमाथी निजठामे॥ सर्णोक्यो

क्षणाग्याननपावे ॥ नही कबुनर्म मिटावेरे ॥ जीणसुकाजनसिके ॥ युदी हिंस्याको किजे ॥ अनुन्नवरसपिजे ॥ श्री० ॥ ५ ॥ स्नान तिलकफलफूल चमावे ॥ वलीताल मृदगवजावेरे ॥ करेनाटकरंगे ॥अति आणतम्गे वेरागकेन्नगे ॥ श्री० ॥ ६ ॥ सूरिया न्नदेवता नाटककीनो प्रभू आदरनहीदीनोरे नहीजाण्यों न्नलेरो ॥ कारण आश्रवकेरो ॥ हिरदेइमहेरे ॥ श्री० ॥ ७ ॥ कहेद्रोपदादेषो कीनी हे पुग ॥ पणपरमारथ इहाड्गरे॥ परणे तवेवारो॥ ज्वा पचन्नरतारो ॥ नियाणो विचारो ॥ श्री० ॥ ८ ॥ सुरियान्नेप्रतमा पुजनकीनी ॥ सोतो परपरा चिनोरे ॥ अघृति रितन्यारी ॥ करणी न्निनश्रावकारी सो-धो ग्यान वीचारी ॥ श्री० ॥ ९ ॥ जघा चारज प्रतमा बदे जाई ॥ कहे दिप मदीसरे माइरे ॥ दयाधर्मघटावा ॥ हिंस्याधर्म दिढवा ॥ कहे यसापुरावा ॥ श्री० ॥ १० ॥ मानुषोतरपरप्रतमानदाषी जहावंदणा रिष न्नाषीरे॥अंजण गीरीनही जावे ॥जहाप्रतमा थतावेसोतोग्यानसरावे॥श्री ॥११॥ कहे आणमतिग्रमा चेतन वंदे॥आणद श्रावक स्वय म्देरे॥इहा न्यायवीचारोनहि देचत अदारे ॥ जिणसु करे नही उचारो ॥ श्री० ॥१२॥ ब्राह्मी लिपिन्नगवतिघुरे वदी ॥ एठम्मिविचारो सधीरे ॥ निषेपाचौलिपिमाइ ॥

मृतवेल संध्याफुलायारेईत्यादिकथीवेरागीजे ॥वंदणा किमकीजेजथाजोगजाणीजेश्री०
प्र० ॥ २९ ॥ १ढमो॥नाव आसरी कालीडोरी भर्मेसपजमानी मारवापातिकठानीरि
इमभतमाथी न्हाई धर्मकेमनथाई पुछेकोइआई ॥श्री०॥३०॥उत्तर॥अणमति नाविम ॥
फोल्यायीपायो पुपाथी धर्म न थायोरे वेटो धरम जोयारे नही थापनेछारे गुरुन्याय उ
चारे ॥ श्री०३१ ॥ प्र० ॥ २०॥ मो आग्या॥कहे साधुउतरे नदीमे जाणी वहेति आ-
रव्या काडे वाणीरे इमजाणो पुजनमे दिर्घ सोचेनमनमे अंतर निस दिनमे ॥ श्री०
३२॥उत्र॥समणी काडेउनरेतथा नदी एतो काम पम्हे कदीरे नहीआ राषे ढमाषो पुजा
मे ऽरपावो परतषहीकुन्यावो ॥ श्री०॥३३॥प्र० ॥कर्तारित॥कहेद्रवपुया श्रावक करन
भावपूजा मुनी घरनीरे तेतो पाटषतावो पठे चोज लगाषो योहीमवीजीपोमावो ॥
श्री० ॥३४॥प्र० ॥ २१ मो ॥ असादना॥थापनानि असातना नही करीए करतापाप
आचरीए पुजा धर्म क्यों न थावे एसी तर्क लगावे कुगुरु भरमावे ॥ श्री ॥ ३५ उत्र ॥
सुतीला त्रियापति देवदतनामे तेही नामे पुरुष बडु गामरे समनें नहीसेवे पणनाम न
ठेवे पतिनो पिनोठेवे ॥ श्री० ॥ ३६ ॥ थापना आपणा देवसमंधी कराअसादनापंदीरे

नदाडामे ॥ समक्तोपद मुदामे ॥श्री० ॥२१॥ प्र० चेतसब्दे॥ चेतसब्दे प्रतमा हिथता-
ये ॥ व्याकरणि सरावेरे ॥ चितप्रसनताथाये ॥ एहधातु बतावे ॥ अर्थके इसमावे ॥ श्री०
॥ २२ ॥ सिधायतन ॥ कहे जिहा जिनप्रतमा वणो वासो ॥ सिद्धायतननामठेता-
सोरे ॥ सिद्धसिला थारे नामे ॥ आयतण नही तामे ॥ कमोसासते धामे ॥ श्री० ॥
॥ २३ ॥ प्र० पुजाभेद ॥ द्रव पुद्यानो नाम दयाइम बोले ॥ पन्नियो दिसेजे न्नोलेरे॥
इमयज्ञलहीजे ॥ दयाते पुजाकहीजे ॥ कुपक्षनलीजे ॥ श्री० ॥ २४ ॥ प्र १५ थया ॥
सिद्धांत ॥ कहे तुमे बतिस सूतर मानो ॥ अमे पेतालीसजानोरे ॥ तेरेनिकी मद्दानी ॥
निलोयो कुणग्यानी ॥ कहो न्यायसुगनी ॥ श्री० ॥ २५ ॥ उत्तर ॥ तपश्री ग्यानी गुरु
फरमावे ॥ नंदीकी सापकेरावेरे ॥ आठकानाम नमाई ॥ पच नाम लहाई ॥ जामे पा-
ठ फेराई ॥ श्री० ॥२६॥ प्र० १७ ॥ कहेछे चित्र ॥ चित्रकीनारीथी कांम विकारो ॥ प्र-
तिमाथी वेरागवीचारोरे ॥ रागमोहउदारो ॥ एतो भावछे न्यारो ॥ कथो अनुयोग दूवारो
॥श्री०॥ २७॥उत्तर॥वेरागयथाप्रवृति करणसु।कर्मांकीथितजरणसुरे॥दवेस्वयंबुद्धकहावे
प्रत्येक बुद्धकोइथावे ॥ बुद्धबोही सरावे ॥ श्री० ॥२८॥ चोर आंबो वृक्षपादल गया॥

माई दानसालामझारे मदिरनवणाया नही संघचलाया श्रावक न जिमाया ॥ श्री० ॥ ४५ ॥ श्रेणीक राजाये धरमजो पायो अन्नय पमोधजायोरे किषिकृष्ण दलाली मङ्गाणी दक्षाली अंतगडलो सन्नाली ॥ श्री० ॥२६॥ प्र० ॥ २६ ॥ मो न्नर्तीचिन ॥ कहे न्नर्तेश्वर चिमन्नराया गोतमजी वंदणसोक्षायारे नही सूत्रने माई ठेणायीत नाई न्नगो तिमे मनाई ॥ श्री० ॥ ४७ ॥ प्र० ॥ २७ ॥ मो मेलषा ॥ अन्नय कुमर आद्र कुमरने पासे मेली प्रतमा इम न्नासेरे मूल सूत्र मेनाई मेलीतो नषडाई असादना ठेराई ॥ श्री० ४८ ॥ ॥ प्र० ॥ २८ ॥ मो रावण कहे न्नकिकीना रावणराया गोत्ततिर्थंकर पधायारे चोथीनकें सिद्धाया नही होय जिनराया ॥ श्री० ॥४९॥ प्र० ॥ २९ ॥ मो सतरजा ॥ कहे सतरजो सासतोजी पणसोचे नही सुविसेसीरे कसो न्नगवती माइ चैताम सवाइ परयत रहेनाई ॥ श्री० ॥ ५० ॥ प्र० ॥ ३० ॥ मो न्नगवतिमे सोमल कहे आई कुण जात्रातुम माइरे प्रभूतपस्याचताई नियम संजमताई जात्रा सुषदाई ॥ श्री० ॥ ५१ ॥ महानिसिथे वेरसामीना चेला जात्रा गया हठीलारे गुरुदोष चताया नही मानी सोवाया अनता न्नपपंधाया ॥ श्री० ॥ ५२ ॥ तिर्थंकर प्रतमापदे ॥कहे प्रतमा सघने प्रभूपदे यो

टाला पुजन छरजन नही करांतस मदन जाणा लौकीक वंदन ॥ श्री० ॥ ग्र०॥ ४१॥ मो हिंसाथी धर्म॥ सुबुधि पाणीनेपलाटया पुतलीमे माछिजिमकथाठयारे षटनप समकाया जीतसत्रु पुकाया हिंसामे धर्म थाया ॥ श्री० ॥ ३७ ॥ उत्र ॥ समदृष्टी समरिविपेगणे वेकरचधमे धरमनी जाणेरे महालपगार जाणी गुही ब्दोर ठाणी लेषो न्याएपे गणी ॥ श्री० ॥ प्र० ॥२३॥ मो० ॥ मोछष ॥ जनममहोछवेईदर आपे जित विवहार मनावेरे कोईसुर धरमजाणे कोइपुनहीमाने सुत्रपाट गुथाणे ॥ श्री० ॥ ४० ॥ उत्र ॥ वेपहनो विचारोगहेरो सोतो देवसर्दणा छहरोरे कोईजड़ीक देवोसोचेमन एहषो सद्धा प्रभूकी नठेवो ॥ श्री० ॥४१॥ प्र० ॥२४॥ मो दक्षमोछष ॥ दक्षामहोछव ॥ अधिकदिटवे हिंस्यापठेधर्मथावेरे सोतो देखो जमाली थयो समगतठाधी मोछषनयो विसारी ॥ श्री० ॥ ४२ ॥ उत्र ॥ विन महोछव देखो सजेतिराया नेमी राजरपि ठयारे इत्यादिक अनता वरिहे सिधकता समको पुछिपता ॥ श्री० ॥४३॥ प्र० ॥ २५॥ मो ७ क्षेत्रे धन ॥ सातक्षेत्रे श्रावक धनखरचे वार २ इमचर्चेरे देषो तिरथचारी परधन इछावारी सुत्रलिपाणा अधारी ॥ श्री० ॥ ४४ ॥ मो विरोष उत्र ॥ परदेशी समकां धर्मने

माई दानसालामंमाइरे मदिरनवणाया नही संघचलाया श्रावक न जिमाया ॥ श्री० ॥ ४५ ॥ श्रेणीक राजाये घरमजो पायो अन्नय पनोवजायोरे किषिकृष्ण दलाली मक्त माणी दक्षाली अंतगडलो सन्नाली ॥ श्री० ॥२६॥ प्र० ॥ २६ ॥ मो न्नर्तावेंच ॥ कहे न्नर्तेश्वर विवन्नराया गोतमजी वदणसोद्धायारे नही सूत्रने माई ठेणाथीव नाई न्नगो विमे मनाई ॥ श्री० ॥ ४७ ॥ प्र० ॥ २७ ॥ मो मेलवा ॥ अन्नय कुमर आद्र कुमरने पासे मेली प्रतमा इम न्नासेरे मूल सूत्र मेनाई मेढीतो नवडाई असादना ठेराई ॥श्री० ४८ ॥ ॥ प्र० ॥ २८ ॥ मो रावण कहे न्नकिकीना रावणराया गोततिर्थंकर वंधायारे चोथीनर्के सिधाया नही होय जिनराया ॥ श्री० ॥४९॥ प्र० ॥ २९ ॥ मो सतरजा॥ कहे सतरजो सासतोजी पणसोचे नही सुविसेसीरे कह्यो न्नगपती माइ चैताम सवाइ परवत रहेनाई ॥ श्री० ॥ ५० ॥ प्र० ॥ ३० ॥ मो न्नगवतिमे सोमल कहे आई कुण जात्रातुम माइरे प्रभूतपस्यावताई नियम संजमताई जात्रा सुपदाई ॥ श्री० ॥ ५१ ॥ महानिसिथे वेरसामीना चेला जात्रा गया हठीलारे गुरुदोष वताया नही मानी सोवाया अनवा न्नवधंधाया ॥ श्री० ॥ ५२ ॥ तिर्थंकर प्रतमापदे ॥कहे प्रतमा सघने प्रभूवदे घो

छवे स्वपछंदेरे आचारग मझारी सिद्धवंदणा धारी अघरापरहारी ॥ श्री० ॥ ५३ ॥ प्र०॥३१॥ मो सचेत फूलसमो सरण॥ कहे समोसर्णमे फूल वरसावे सचेत पणे दिढावेरे देषान्याय विचारी सचेत नीधारी जावे नरनारी ॥ श्री० ॥ ५४ ॥ प्र० ॥ ३२ ॥ मो तिरथ मानवा आसरि॥कहे जिहा जिनमुनि मुगत सिधाया सोहि तिरथ ठहरायारे सोतो देषो विचारी कल्यातिरथ चारी पंचमो परिहारी ॥ श्री० ॥ ५५ ॥ जिनमते तिर्थ ॥नगवतिमे सोमल कहे आई कुणजात्रा तुममाइरे विरजीतपस्या बताई नियम संजम माई जात्रासुषदाइ ॥ श्री०॥५६॥प्र० ॥ ३३ ॥ ईंद्र कृतथुन॥ कहे जिनवरने निरषाणगमे थुनकरे रणामेरे प्रभुपुन सतासेवा महेमाकरेदेवा यामे धर्म नगहेवा श्री० ॥ ॥५७॥थुनकामदर प्रतमबणाणो प्रथम आश्रवमे जाणोरे दशमे अंगेदेषो परिगृहामाहीलेषो आश्रव पचमे देषो ॥ श्री ॥ ५८ ॥ प्र० ॥ ३४ ॥ हिंस्यामे धर्म सर्धा मेल्हेतो के मुनिहाले चाले तेकेइसवरकालेरे ठनगुणठाणामाई आरंनकिरिया बताई परमादकहाई ॥ श्री० ५९ ॥ प्र० ॥ उत्रा अजोगता कथो संवरसारो जोगसो आश्रवदुवारोरे सुनसो पुनरासी असुनथापापरासी जोषोहिरदेविमासी ॥श्री०॥६०॥प्र०॥ ३५ ॥

पुन धर्मसर्द्धा ॥ वली कहे हाथे चाले मुनीराया हिंस्यामे धर्म छखायारे ॥ तेतोपरचने
जोवे गिणे आश्रवहोवे ईरियावहीआ ठावे ॥ श्री०॥६१॥हिंस्यामे धर्म दयामै धर्मो तो-
किहा थवे कर्मोरे सोचो ज्यमाणी घटमे दया आणी मानोश्री जिनवाणी ॥ श्री० ॥
॥६२॥आग्यादोए प्रकारे बताई प्रवृति निवृति कहाईरे ॥ प्रवृतिमेखचेंथाईनिवृति मेनही
काई गुरून्याव बताई ॥ श्री०॥६३॥पचमहाव्रतगुपि निवार्ते सुमति सोपरवरतीरे कार-
णसरीरसुकरणी एहनीरक्षायो वरणी धर्मलागेउचरणी ॥ श्री०॥६४॥प्र० ॥ ३६ ॥मे
भाव सहितपुजामे अदोष॥कोइ कहे पुजामे रचनेपायो भाव भला हमथापेरे थायेलाभघ
णेरो मिटसी भवफेरो न्यावसोचेनगहेरो ॥श्री०॥६५॥ उत्त॥ग्यानविनानही भावभलेरो
भावसोग्यानकीलहेरोरे ग्यानथीदयाथावे सवपापहटावे अमरापुरजावे॥श्री०॥६६। सुर्त
ईद्रीपोषीजेगाएवजाय घणईद्रीधुपधुपाएरे नयन नाटकजानी स्नानफर्शजमानी ॥
चोरी नही मनठानी॥श्री०॥६७।श्रुतग्यानचढे राज देखे प्रतिमाथाकी किणलेवेरे फ-
लफूलनपाणी लुटेपरप्राणी वली धर्म जजाणी ॥ श्री० ॥ ६८ ॥ प्रभु वदवा-
गयाश्रावकसारा सचेत कीया परिहारारे नही फूलचभया नही नाटकगाया नहीधुपधु-

पाया नहीं स्नानकराया ॥ श्री० ॥६ए ॥ समो सरणमें गयानरनारी पचश्रानिगमधा रीरे मदणाकरी जाई विनसेवापताई हिंस्याकरिनाई ॥ श्री०॥७० ॥ असवारी श्री कारि-घ्रसधारी आरम्नारी गयानृप मदणाधारीरे सोतो धर्ममे घाले लागाकुगुरुचाले जाने-किण विषपाले ॥श्री० ॥७१॥ उन्न ।वेसों पदानिजपदवीकेरी ग्यानदीसा छोड़ेरे प्रभु आग्यानेवारे ठेरे आश्रवदूवारे इमग्यानीठचारे ॥ श्री० ७२ प्र० ॥ ३७ ॥ स्नानमे ध-र्म॥स्नानमजणकरे अंगसुश्रुषा ॥ जामे धर्म सर्दे मतिलुबारे जस्यो मल्लछोड़मे फिरधोवे सोहीमे किमसुद्धहोवे तेमे॥श्री० ॥७३॥तत्र॥ऊदाहर्ण॥चोपा सन्यासणी थीमलीसामी दीपो श्रछतपनामीरे सुदरसण सुचिचरचा छाण्योमुनीथावरचागेमे पासमपरचा॥श्री०॥ ७४ससारमी हत्याम्रश्राणी धर्मथाने आवे पाणीरे तीहांपण हिंसाकरीए दयाकीहाआ दरीए हिंसाकिहापरहरीए ॥श्री०॥ ७५॥पुन उदाहर्ण ॥ स्नानकरणमे धरमजलागे श्राव-क स्नान किमत्यागेरे आणदादिकपम्मापारी दियो स्नान सोटारी सचेत परिहारी ॥ श्री ॥७६॥देषणसे न्हाव॥प्र०॥३ए॥पछी कहे ध्यान मुआहम देषी आपे न्हाव विसेषीरे सो तोरे तुममाई पेठो आसणलगाई देरहामेनकाई॥श्री०॥७७प्र०४०॥चारनिषेपा॥ चार

निषेपापदणीककेथे चारू सरीषाठेथेरे।भावअपणालगावे॥इमचोजवतावे।मनने समझावे ॥ श्री० ॥७८॥तत्र ॥ रिषभ सितलनेंमीनरनामे॥ नांमनिखेपोतामेरे जिणमे भावलगाई चितमे हरषाई ॥ थेनमो किमनाइ श्री० ॥ ७९ ॥ सकरभावे ढुणप्रषेपी करेमोद कसुविसेषीरे ॥ जिमेसकरभावे ॥ मुषषारोइथावे ॥ काइहोएकोरेभावे ॥ श्री०॥ ८० ॥ गृहीवासे होवेजिनराया ॥ तकिनहीमुनिरायारे ॥ तिनग्यान विराजे ॥ लक्षणसङ्गाजे ॥ केइभर्मसोभाजेश्री० ॥८१॥ श्रीजिनसोपावेभवतिरो ॥ रहेसोहीसरीरोरे ॥ साधूश्रावक तेहने ॥ प्रणमेनहीजेहने॥ देषोअतरानएने ॥ श्री० ॥ ८२॥ ठदाहर्ण॥दर्वतिर्थ करकृष्ण मुरारी ॥ नेमप्रभूठचारीरे ॥ तिहाथातिर्थचारी ॥ नम्यानहीएलगारी ॥ अतगडजीमजारी श्री० ॥ ८३ ॥ ठणायगेश्रेणीकराया ॥ विरप्रभूजीदरसायारे ॥ नम्यानहीनरनारी ॥ नहीदीयोधनकारो ॥ ठमोग्यानविचारो ॥ श्री०॥८४ ॥ पुन ॥ मलिजिनजयथागृहवासे ॥ अरणकजीनम्यानहीजासेरे ॥ ठेइनृपनम्यानाई ॥ देषोग्यानलगाई ॥ जिनमारगन्याई ॥ श्री० ॥ ८५॥ समवायगेचोविसीवृतमानो ॥नामनापाठगुथाणोरे॥ वदेसव्दघणाआया आवतिमेनहीलाया ॥ समझोइममाया ॥ श्री० ॥ ८६ ॥ भावसहीवबदणीककहीजे ॥

जिनमतेन्याथलहीजेरे आणीसुद्धभावो ॥ जानेसीसनमायो॥ भव २ सुखपावो ॥ श्री०
॥ ८७ ॥ मा ४ निखेपासतसहीं॥नामजेजिनमावितरउचारो ॥ थापनातनआकारोरे ॥ द्र
व्यलक्षणगजे ॥ अतिशासुविराजे ॥ दर्वेदेहसराजे ॥ श्री० ॥ ८८ ॥ भावेकेवलग्यान-
सोकेवा ॥ ईद्रचोसठकरेसेवारे । घणघातिकहणीया ॥ भावेसोजिनगणीया ॥ सुत्रपाटे-
योभणीया ॥ श्री० ॥ ८९ ॥ भावसहीतजेदेवअराधे ॥ सोसीवमारगसाधेरे ॥ एहन्या-
वनिसका ॥ नहींहेकछुसंका ॥ सदाजितकामंका ॥ श्री० ॥९० ॥ अहारपाणीवसतर
धनमाई ॥ निषेपाचउथाइरे ॥ भावसुद्धसचावे ॥ तिनकेनदीठावे ॥ कारजअरूजावे
श्री०॥ ९१ ॥ धर्मंगमेथापनाकेदीमधे ॥ एमुकनेहसी आषेरे ॥ सोचोकोईन्याई एहक
रणकाई । सुद्धजनदरसाई ॥ श्री० ॥९२ ॥ साधपणोपाल्योनहीजावे ॥ अहारवीसतरा
वीकचावेरे ॥ एहआसरोमोटो ॥ थकेसजुपरोपोटो ॥ लिनोइमओटो ॥ श्री० ॥ ९३ ॥
मोलघेईनेजेपपेराषे ॥ करोमिजंतेउचराषेरे । जाहिपानपवाषे ॥ वासषेपनपावे ॥ नवो
नामयपावेश्री०॥९४॥म० ४१मो श्रावकसूत्रभणनोनिखेद॥कहेश्रावकजोवाचेसिद्धांतो
वेभमेभपअनतोरे॥नहीमेदेषोरोहा॥श्रावकसुयपरीगहा॥सूत्रकीसूझाद्दा॥श्री०॥९५॥

उतर ॥ कहेसुरियानेसुचरखांचो ॥ श्रावकनीषांचोरे ॥ सोतोसर्वअषरतीश्रावकदेसषरती
तेहनेकाईनीरती ॥ श्री० ॥ ९६ ॥ पोतेमहाव्रतएकनदीसे। करेभोजनषह्लीनिसेरे ॥ जन्त्र
मन्त्रप्रजुजे। पापसुनहीधुजे ॥ निजदोसनसुजे॥श्री० ॥९७॥ पोतेतोओगणनादरिया ॥
पालेनहीकाइकिरीयारे ॥सीरपटारषावे ॥ धनन्याजषन्मावे॥षह्लीषागलगावे ॥ श्री०॥९८॥
गोवमसामीनीगादीयबेठा ॥ मुनिगुणमेटपाहेठारे॥ लम्भामाहीसेठो ॥ षाषामाहीजेठो॥
थापनासर्पपेठो ॥श्री०॥ ९९ ॥ श्रावकनागुणथीपणदुरा ॥ सुत्रवाचणनेशुरारे ॥ कहे-
पचमोआरो ॥पचमाहाव्रतधारो॥नहीअणगारो ॥श्री०॥ १००॥ साधुआस्ती॥सतक-
विसमे भगवतीमाइ पुछेगोतमप्रभुताइरे ॥ केतोसासणधारो ॥ कह्योएकविसहजारो ॥
रेसीतिरथचारो ॥ श्री० ॥१०१॥ पुरषएकसदेअलगेदाषे ॥ नषमोउदेशासाषेरे ॥ पणमु
ढनमाने ॥ आपणोमतताणे। आपसासबजाणे ॥श्री०॥ १०२ ॥जीवदयासबसुत्रेदी
ढाई ॥ हिंस्यानेमिरसाइरे ॥हाथेदोपकसाही ।पम्भेकुपकेमाई॥तेहनोकरेकाई ।श्री॥१०३॥
आपफोडीनेदेषणोचाहे ॥ पगकाठीनेधावेरे ॥ मुषभ्निचिनेषावे॥ कठवाढीनेगावे ॥ उल
टोपन्थगसावे। श्री ॥ १०४ ॥ भूषानेभोजनतरसानेपाणी ॥ रोगीनेओषधजाणीरे ॥

पपीनेआकासो ॥ भूलानेपथपासो ॥ नविदयाविमासो ॥ श्री०॥ १०५ ॥ चोपदने पु-
टाकोअधारो ॥ मारतानेसर्ण आधारोरे ॥ नावसागरजाता ॥ नविनेदयामाता ॥ नव ग
सूपदाता ॥ श्री० ॥ १०६ ॥ जिनचक्रवृतीहरीहलधरजाणो ॥ लब्धीअठाविसमानोरे॥
होवेदयाप्रभावे ॥ दसमेअंगेदिखावे ॥ श्रीजिनफरमावे ॥ श्री० ॥ १०७ ॥ दयापालीग-
यामोक्षअनता ॥ भाष्योश्रीभगवतारे ॥ हिंस्याकरेधर्मकामे । समगतनहीपामें ॥ आचा
रगनेठामे॥श्री०॥१०८॥मुरजथीअधकारजयाबे॥चद्रथीअगनझुरावेरे॥अग्नीमेसितलाई
जलदेसिलातराई अराधेदेवताई हिंस्यामेधर्मनाईश्री० १०९ व्याकर्णविनाउपदेशदेनोन
होप्र०४२व्याकर्णभणीयाविनउपदेशो॥देणोनहीलवलेसोरे॥गाढीइमताणे॥अवसरनही
जाणे ॥ मुधिआराप्रमाणे ॥ श्री० ॥११०॥ उत्तर ॥ पचमआराअतेधर्मथाणो ॥ दशमी
कालकनजाणोरे॥महानसीथमेदेषो॥आवषोकपपेषो॥समक्तोहियलेषो॥श्री० ॥ १११ ॥
उपदेसदीपाविनाधर्मनचाले दुषमपचमकालेरे ॥ परषचनअराधि ॥ अनंतासिवसाधी॥
मेगेहटउपाधी॥श्री०॥११२॥प्र०॥४३॥नषोमतकल्पो कोईकदे साधुनिकल्याहमथी ।
आगेरितिसजसमथीरेसोहरिभद्रसामीरे ॥ पचमोध्येनकैसो ॥ महानसीथेउपदेसो

श्री० ११३तत्र॥पचावनसामापांचहजारो॥सुरीमन्त्रतणाधारोरे॥ सुरिनामधराई ॥ जासी
नर्कमाईमहानसीथेचेताईश्री॥०११४॥छकासाधुसाधवीसातसाताआठआठश्रावकशा
वारेश्रावकानवनोका॥जासीनर्कमेथोका ॥ हिंस्याधर्मधोषाका॥ श्री०॥ ११५ ॥ किया-
तिर्थंकरगोतदरचाला ॥ कमलाचार्यदयाचालारे ॥ पढेनगरगजमाया ॥ दरवालाउमाया॥
सातमीनर्केसिधाया भवअनतवधाया ॥ श्री०॥ ११६ । वनिताद्वारामतिचपावषाणी ॥
कम्राजद्गदेहराजाणीरे ॥दियानामधताई । जिनमदरनाई ॥ होश्तोनवमाई । श्री०॥११७
समदृष्टी श्रावकठेटथीदाण्या॥ मिथ्याद्रष्टीपणमाण्यारे ॥ केइकनरभोला ॥ मतिमाहीगं-
पोला ॥ करमाकाजकोला ॥ श्री०॥ ११८ ॥ कोइकाकुलमेजिनअवतरिया॥ गोतिमि
लीमदरकरीयारे ॥ तोसुअधकाई ॥ परपराकुलठाई ॥ पणवर्मनकाई । श्री०॥ ११९ ॥
धर्मअरथेजिनमदरकीनो ॥ एसोकोइसुत्रेमतिचिनोरे ॥ होएतोहमनेवतावो ॥ सु
त्रपाठपुरावो । कटुसंकनलावो ॥ श्री०॥ १२० ॥ विषाद सहीततरका॥प्र० ॥ ४४ ॥ मो
कोइकदे चारसेवर्षपेली ॥ जिणसासणतिरथसेलीरे ॥ किणविधसोरहाइ ॥ पेलासा-
धूनाई । दोरितववताई ॥ श्री० ॥ १२१ ॥ भस्मग्रहवर्षदोयहजारो ॥ कह्योकल्पसूत्रमझा।

रोरे ॥ उदेपुजानीहानो॥ तुमेसवकरीमानो अवकीकोमताणोश्री०॥१२२॥ जस्मग्रहेन।
दोसथीजाणो ॥ हिंस्याधरमदीपाणोरे ॥ साधूरमातिणमाही ॥ सरधासूद्धलाई ॥ निज-
आत्माषचाई ॥ श्री०, ॥ १२३ ॥ थीवलतरीपग्रसेविससालो ॥ दयाधरमउजवालोरे ॥
कियोहेमुनीराया ॥ प्रचर्लीगीभटकाया ॥जवजनमनजाया ॥ श्री०॥ १२४ ॥ कु उत्र ॥
कोईकहेहिवेउदेपुजासधाई ॥ आगेथीहिणताईरे ॥ जस्मग्रहेनेप्रजावे ॥ एसीचोजलगा
वेहिवेग्यानीवतावे ॥ श्री० ॥ १२५ ॥ सुउत्र॥वस्तपालतेजपालनरेसा ॥ विमलसाग-
धानेसासारे ॥ थारामतेपयामोटा ॥ पर्चोधनकेइकोटा ॥ अथेतोदिसेतोटा ॥ श्री० ॥
॥ १२६ ॥ निंषाकरेसाधुप्रतमाकी ॥ प्र० ॥ ४५ ॥ मो प्रतमाकीनिंषामतिजाणो ॥
आश्रवनिंषामानोरे ॥प्रतमासुंनहीरोसो ॥ हिंसकथीनहीजोसो ॥ सिद्धातजरोसो श्री०
॥ १२७ ॥ सूवतर ॥ जथागुणकहीतादोसनधारो ॥ कहीयोहेआग्रकुमारोरे ॥ न्यायमे
रोसलावे॥पातादातघसावे॥काइसोचनआवे॥श्री०॥१२८॥जर्मजजणएदकुमतीचपेटो
समगति थावेसेठोरेहलुकर्मीहरषावे ॥ मिथ्यामतिमुरझावे विवादयमावे ॥ श्री० ॥
॥१२९॥प्र०४६॥ सुवतस॥ देव अदोसीगुरुनिरलोजी॥ धर्म दयामेथोजरि ॥ गयामुग

त अनंता॥जासी गुणवता॥भाष्यो भगवता ॥ श्री० ॥१२०॥ प्र० ॥४७॥ कुतत्वा॥ देव सदोसी गुरुगुणानी हिंस्यामे धरमजमानीरे अनता गयानर्कमाई जासी ओरघणाइ सथ सुत्रे चेताई ॥ श्री ॥ १२१ ॥ कारण ॥ विवादकरणनही किनी सझायो ॥ नही कछुमानकोपायोरे॥ रूचेतो भवी मानो ॥ नही तो तुमेजानो हमने नही ताणो ॥ श्री० ॥ १२२ ॥ पुयकानजीरीषजी समुदायो ॥ एषतारीषजी महारायोरे ॥ गुरुग्याननगीना ॥ सुवबोधजदीना ॥ जिनमारगचिना ॥ श्री० ॥ १२३ ॥ तिलोकारिषजीकिही सूत्र अधारे ॥ निश्चेतो मभुजी सीकारेरे ॥ अजाणोमे जो काइ ॥ विप्रितजोडाई ॥ मिछामीदुक्कर मोताई ॥ श्री०॥१२४॥ सवत उगणीसे बतिससालो ॥ येकयीचर्चामालोरे भणेगुणे भाइबाई उपयोगलगाई ॥ येगोलहे सीवताई ॥ श्री० ॥ १२५॥ अथ ॥ कलस ॥ समकित निरमल भावउजल दयाधर्म अराधिये ॥ भगवतआग्यासदा निरषद ॥ अधकिरसाधीए ॥ विवादवर्जों धर्मे गर्जोंपापेलजा सारए ॥ खमोकर्म मेटो भर्म धर्ते जेजेकारए ॥ भविलदी येभवपारए ॥ १२६ ॥ इति भर्म भजण कुमति चपेटो प्रश्नोत्तर जुगतचर्चा मालासझाय संपूर्णम् ॥ ॥ ॥

रोरे ॥ वदेपुजानीहानो॥ तुंमेसवकरीमानो अवकीकोमताणोश्री०॥१२२॥ जस्मग्रहेन।
दोसथीजाणो ॥ हिंस्याधरमदीपाणोरे ॥ साधूरव्यातिणमाही ॥ सरधासूद्धलाई ॥ निज-
आत्मायचाई ॥ श्री०, ॥ १२३ ॥ थीवठवरीपद्रेसोविससालो ॥ दयाधरमउजवालोरे ॥
कियोहेमुनीराया ॥ द्रवखीगीव्टकाया ॥भवजनमनभाया ॥ श्री०॥ १२४ ॥ कु वत्र ॥
कोईकहेदिषेवदेपुजासधाई ॥ आगेथीहिणवाईरे ॥ भस्मग्रहेनेप्रभावे ॥ एसीचोजलगा
येहिवेग्यानीवतावे ॥ श्री० ॥ १२५ ॥ सुवत्र॥वस्तपालतेजपालनरेसा ॥ विमलसाग-
धन्नेसासारे ॥ थारामतेथयामोटा ॥ पचोंधनकेश्कोटा ॥ अवेतोदिसेतोटा ॥ श्री० ॥
॥ १२६ ॥ नियाकरेसाधुप्रतमाकी ॥ प्र० ॥ ४५ ॥ मो प्रतमांकीनिंद्यामतिजाणो ॥
आश्रवनियामानोरे ॥प्रवमासुंनहीरोसो ॥ हिंसकथीनहीजोसो ॥ सिद्धातन्नरोसो श्री०
॥ १२७ ॥ सूवतर ॥ जथागुणकहीतादोसनधारो ॥ कहीयोहेआद्रकूमारोरे ॥ न्यायमे
रोसलावे॥पातादांतघसावे॥काइसोचनआवे॥श्री०॥१२८॥नर्मन्नजणएहकुमतीचपेटो
समगाति थावेसेवोरेहलुकार्मिहषावे ॥ मिथ्यामतिमुरझावे विषावचनभावे ॥ श्री० ॥
॥१२९।प्र०४६। सुवत्व॥ देव अदोसीगुरुनिरलोभी॥ धर्म दयामेथोभीरि ॥ गयाभ्रम

नीषर पदवां सरमज आवे ॥ नीचने सीसनमावे ॥ न० ॥ ९ ॥ पर्व पयुसण धर्म छ्या
नदीन ॥ खेले चोपमपासा ॥ पापीकितो करे वमाई ॥ धरमीकाकरेहासा ॥ न० ॥ १०
राम्नाम नटख्यालकरे जठे ॥ सगली रातजगावे ॥ ग्यानध्यानकी होयजहांचर्चा ॥
झूक२ झोलाखावे ॥ न० ॥ ११ ॥ होय लडाइचर्चा विकथा ॥ विनतेच्योचढजावे ॥
धरमकाज योलवे कोइ मुपसे पटनट जावे ॥ न० ॥ १२ ॥ पोते तो ओगणको सा-
गर ॥ परनिंयामे राजी ॥ लोक बुराइ सुनहीमरपे ॥ आलदेत परगाजी ॥ न० १३ ॥
अक्रोधि अमानी अमाइ ॥ अलोभीजिनराया जिनको समरणकरेनगेली॥ नेरून्नवानी
नाया ॥न०॥१४॥लोकचम्पे फूलफलादोक देवदेपेरापोमी ॥ तोपणविवेक अंध नहो
समझे फिर२ जावेदोमी ॥ न० ॥ १५ ॥ वाजेजेनी वामण वाण्या मानताकरे फकीरी।
वेविनपाणी परवसमरीया ॥ सोकाइ देगा अमीरी ॥ न० ॥ १६ ॥ नेरूनवानी काल
काचमी ॥ योकमा मेसा चमपे ॥ आपमारने आपहीपावे ॥ देवी नामवतावे ॥ न० ॥
॥ १७ ॥ वेटावेटीकाजे पापी ॥ बकरानैसामारे परकु उपदेकरके मुरप ॥ आपणी
साता विचारे ॥ न०॥ १८॥ करेगणगोर गोरपेरावगेणा गोरकी मगलगाती पुजाकरपणी

श्रीरस्तु ॥ अथ भोलपछतिसीलिख्यते ॥ संतादेषो दुनीया भोली एदेशमिे ॥ भषिका देपोन्याय विचारि ॥ सुगुणादेषो० ॥ भोली दुनीयाभूली भर्ममे ॥ जायज मारो हारी ॥ एटेक ॥ वितरागको मारग तारक ॥ जीवदयाअगवाणी ॥ हिंस्या धरममे अधिकारावे ॥ करे जीवाकीहानी ॥ भ० ॥ १ ॥ दयादानविने मुलधर्मसो ॥ तिनूंहिवा-त ठगवे ॥ भगवत चुकाकहे अग्यानी ॥ भव १ मे दुवपावे ॥ भ० ॥ २ ॥ सामायक पोसाके माहो विकथामांडेकुम्ही ॥ धरमकथामे चितनरावे ॥ रह्यो पापमे बुडी ॥ भ० ॥ ॥ ३ ॥ ग्यानसीषतागलोज डुखे ॥ लम्तावुधडी पाडे ॥ तवनसझायकेजासरमावे ल्या-लगावे अतिगाडे ॥ भ० ॥ ४ ॥ धरमदलाली पगल्यादुखे ॥ पापदलालीदोडे ॥ धरमी नेतो दुरषेढावे ॥ पापीनेरावे गेडे ॥ भ० ॥ ५ ॥ तावतेजारी आवे तनमे ॥ सातदीवस नही पावे धर्म निमते एकउपवासके ॥ करतामनसुकम्वे ॥ भ० ॥ ६ ॥ व्यावमोछव-मे षर्चेसङकम ॥ धनमे आगलगावे ॥ जीवदयामे षर्चणकाजे ॥ दमम्मीमे नटजावे ॥ भ० ॥ ७ ॥॥ धर्म काममे कायरअधिको पापकरणने सुरो ॥ लेलोटोने पावणदोभे ॥ परउपगारथीङरो ॥ भ० ॥ ८ ॥ सजन कुटबी मिलीयाहरषे ॥ सतदेषटलजावे मु-

पीसनेपावे ॥ मनकीवाताजोवे ॥ म० ॥ २९ ॥ मथथीपाणी वेठवात ॥ दीशाबम्भपिपलपु
जे ॥ गायगधेम्मकन्यापुजे ॥ अंतरग्याननसुजे॥ म० ॥ ३० ॥ इत्यादिककीपुजनथापे ॥
करेनन्यायपरिया ॥ घणातुष्टेजोतुरूपरणता ॥ करसेआपसरीषा ॥ म० ॥ ३१ ॥ देहअ
पाषपरवपसारी ॥ ठपरपालपशाले ॥ नहायाघोयाधर्मदोवेतो ॥ मछ्लाजलमेचाले म०
॥ ३२ ॥ श्रीजिनमारगलजल्लपरतक्ष ॥ तिणनेमेलोपतावे ॥ हिंस्याधर्ममलीनसदाही ॥
जीणनेअधिकसरावे ॥ म० ॥ ३३ ॥ गावेबजावेतानजतोभे ॥ जेहनीमहेमासपरी ॥
होएठदासीजगमापासु ॥ तिणनीकरे मसकरी ॥ म० ॥ ३४ ॥ मोहकरमके उदेकरीने
मोलपकरडखपावे ॥ मोलपगतिशीसुणकरस्याणा ॥ श्रीजिनमारगआवे ॥ म० ३५ ॥
इत्यादिकमोलपवातजके परमध्यानकरोषासा ॥ तिलोकरिषरूदेशुकतकीधा होएमुग-
तमेवासा ॥ म० ॥ ३६ ॥ संषतउगणीसे ठतीसफागुण विजदशमी शनीवारे साहखे
डामेएहनिपाई करवापरउपगारे ॥ म० ॥ ३७ ॥ इतिमोलपगतिसी संपुणर्म ॥ ॥

पृ 329

मेपटकी चेटाचेटी चाती ॥ भ० ॥ १९ ॥ देवकी गइहारे नीरषणकाज ॥ वळपुजेनमी
सकरके ॥ सोतेषारमनावे भोली षालकचळधरके ॥ भ० ॥ २० ॥ घणामनष
अरू रावण मरीयो षाजो नाम दशेरो सोदिनदृरषमनावे अधिको षाधे पापघणेरो ॥
॥ २१ ॥ विरजीनेश्वर मुगत पिराज्या ॥ दिवसदिवाळी जाणो दयाधरमतो पाळे नही
और करेजोवांकि हाणो ॥ भ० ॥ २२ ॥ विन्नचारणी ऊइहोळका ॥ नाम्ऊइजगमा
ही ॥ कुमोते मारीगइपापण ॥ सोतेवारथपाई ॥ भ०॥ २३ ॥ धुळउभावेकीचमचावे ॥
षणे होळीका पम्म ॥ षोळे पोटा निरलजऊइने सजेनरककाऊमा ॥ भ० ॥२४॥ पाच-
से साधुको होमजकरतो ॥ व्राह्मणना मनमुची विष्णुकुमर चावनारूप धरके ॥ दियो
पगावलेकुची ॥ २५ ॥ हेमाचल नृपआइतेहने मारताकु दीयोराषी ॥ मगत तेवारथा-
पकरनोळा ॥ हायमे षांधे राषी ॥ भ० ॥ २६ ॥ घरकामनपमरे जीण दीवसे ॥ सोग-
कहे मुपसेती ॥ सराद ठेराइमाळजपावे ॥ ठलटीरीत एचेती ॥ भ० ॥ २७ ॥ मळ अ-
षतार धरयो कहे प्रभूजी मळषावण नही ठोडे वरदा अषतारकहे पली धास्यो ॥ षर-
हामारणदोडे॥ भ० ॥ २८ ॥गळमाताके लाठीमारे ॥ तुळळीमातातोडे जषारमाताकी

पीसनेपावे ॥ मनकीवाताजोडे ॥ भ० ॥ २९ ॥ प्रथवीपाणी वेऊघात ॥ दीशाषम्पपेपलपु
जे ॥ गायगधेम्बकन्यापुजे ॥ अंतरम्याननसुजे॥ भ० ॥ ३० ॥ इत्यादिककीपुजनथापे ॥
करेनन्यायपरिया ॥ घणातुष्टेजोतुरूपरएता ॥ करसेआपसरीषा ॥ भ० ॥ ३१ ॥ देहअ
पावपरतपसारी ॥ ऊपरघाळपषाळे ॥ नहायाधोयाधर्महोवेतो ॥ मछलाजलमेचाले भ०
॥ ३२ ॥ श्रीजिनमारगउजलपरतक्ष ॥ तिणनेमेलोबताये ॥ हिंस्याधर्ममलीनसदाही ॥
जांणनेअधिकसरावे ॥ भ० ॥ ३३ ॥ गाषेबजावेतानजवोरूं ॥ जेहनीमहेमासषरी ॥
होएवदासीजगमायासु ॥ तिणनीकरे मसकरी ॥ भ० ॥ ३४ ॥ मोहकरमके उदेकरीने
मोखपकरउखपावे ॥ मोखपगतिशीसुणकरस्याणा ॥ श्रीजिनमारगआवे ॥ भ० ३५ ॥
इत्यादिकमोखपतावजके धरमध्यानकरोषासा ॥ तिलोकरिषकदेशुक्रतकीधां होएसुग-
तमेवासा ॥ भ० ॥ ३६ ॥ संघतउगणीसे ब्रतीसफागुण विजदशमी शनीवारे साइखे
डुमेएहनिपाई करवापरउपगारे ॥ भ० ॥ ३७ ॥ इतिमोखपगतिसी सपुणर्म ॥ ॥

पृ। ३२८

॥ इतिज्ञानप्रदीपकसमाप्त ॥

इति ज्ञानप्रदीपकं समाप्तम्।